

भूमिका ।

इस श्री ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थके सम्पादनकर्ता श्री जिन तारणतरणस्वामी बड़े भारी जैन सिद्धांतके ज्ञाता और अध्यात्मरसके प्रेमी मध्यप्रांतमें होगये हैं। इनका जन्म वि० संवत् १५०५ व समाधिमरण वि० सं० १५७२ में मल्हारगढ़में हुआ था, जहां उनकी स्मृतिमें बड़ी विशाल शानदार श्री नसियाँजी (श्री निश्रेयजी) बनी है जो वेतवा नदीके तटसे एक मील है। खास नदी तटपर उनके सामायिक करनेका चबूतरा बना है। तथा नदीके मध्यमें भी सामायिक करनेके तीन चबूतरे नजर आते हैं। एक तो बहुत ही स्पष्ट है। यह अच्छे योगाभ्यासी थे, ऐसा स्वामीजी द्वारा रचित ग्रन्थोंसे मालूम पड़ता है।

इस ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थमें निश्चयनयकी या अध्यात्म ज्ञानकी मुख्यता लिये हुए बहुतसा उपयोगी जानने लायक कथन है, जो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों प्रकारके चारित्रके साधक धर्मात्माओंके लिये उपयोगी है। सम्यग्दर्शनका स्वरूप भलेप्रकार दिखा करके स्वामीजीने इस गाथाके अनुसार त्रेपन क्रियाओंका विस्तारसे वर्णन किया है।

गाथा—**गुणवय तव सम पड़िमा, दाणं जल गालणं च अणत्थमियं दंसण णाण चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥**

अर्थात्—आठ मूलगुण + बारह व्रत + बारह तप + समताभाव + ग्यारह प्रतिमा + चार दान + जल गालना + रात्रिको न खाना + सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्नत्रय ऐसी त्रेपन क्रियाएं श्रावकोंकी कही गई हैं।

इस ग्रंथमें आठ मूलगुण, चार दान, तीन रत्नत्रय, जल गालन, रात्रिभोजन निषेध, समताभाव, इन अठारह क्रियाओंका पालन एक अविरत सम्यग्दृष्टीके लिये भी उपयोगी जानके उनका पहले विस्तारसे कथन करके बारह व्रत, बारह तप और ग्यारह प्रतिमाका कथन अध्यात्मिक ढंगसे पढ़ने योग्य किया है।

दिगम्बर साधु किस तरह बहिरंग व अंतरंग परिग्रहके त्यागी होते हैं, इसका बड़ा ही मनोहर कथन लगभग १०० गाथाओंमें पढ़ने योग्य किया है। चौदह गुणस्थानोंका कथन भी ऐसे सरल ढंगसे किया है कि हरएक पाठक समझ जावेगा।

बावन अक्षरोंपर गाथाएं लिखकर अच्छा अध्यात्म विवेचन किया है। छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थोंका कथन एक निराले ही अध्यात्मीक विवेचनके साथ किया है। चार प्रकारका ध्यान विस्तारसे समझाया है। पांच प्रकार सम्यग्दर्शन

भूमिका ।

तथा पांच प्रकारके आचारका कथन करके ग्रंथको समाप्त किया है। हमको इस ग्रंथको विचारते हुए व टीका लिखते हुए जो आनन्द प्रतिभासा इसका हम वर्णन नहीं कर सक्ते हैं। हमको विश्वास है कि तत्वप्रेमी पाठकगण इसे ध्यानपूर्वक आद्योपांत पढ़कर हमारी सम्मतिके साथ अवश्य सहमत हो जायगे।

हम पाठकोंको नमूनेके तौरपर कुछ गाथाओंका संग्रह यहां इसलिये देते हैं जिससे उनको निश्चय होजायगा कि इस ग्रंथके कर्ता जैन सिद्धांतके कितने मर्मी थे। इस ग्रंथमें सर्व कथन दिगम्बर जैन आचार्योंके कथनानुकूल है। कोई बात हमको ऋषिप्रणीत ग्रंथोंके प्रतिकूल नहीं मिली। तथा विद्वान ग्रंथकर्ताने जगह जगह कहा है कि श्री जिन आगमके अनुसार ही कहता हूं।

सम्यग्दर्शनके संवेगादि आठ लक्षणोंको कहते हुए निर्वेदका स्वरूप कहा है—

निव्वेओ निद्दंदो, निःलोहो निव्वियार निकलेसो। सुद्ध सहावेसु रदो सम्मत्त गुनं जानि निव्वेओ ॥ २२१ ॥

भावार्थ—निर्वेद गुण निश्चयसे वेद रहित है, द्वन्द्व रहित है, लोभ रहित है, विकार रहित है, क्लेश रहित है, शुद्ध आत्माके स्वभावमें रमण रूप है, ऐसे सम्यग्दर्शनके निर्वेद गुणको जानो।

अनुकम्पा गुणको निश्चय नयसे इसतरह कहा है—

दर्सति सुद्ध तत्वं, अप्प परमप्प गुने हि दर्सति। अप्पा परमप्पानं, अनुकम्पा लहति निव्वानं ॥ २२९ ॥

भावार्थ—यह निश्चय अनुकम्पा शुद्ध आत्मतत्वको देखनेवाली है। आत्माको परमात्माके गुणोंके समान देखनेवाली है। आत्माका परमात्मारूप अनुभव ही निर्वाणको प्राप्त करा देता है। आत्माकी रक्षा यही अनुकम्पा है।

सम्यग्दर्शनके सम्बन्धमें कहते हैं—

दंसन दिट्ठि स दिट्ठं, कम्म मल दोस मिच्छ संगलियं। गलियं कुज्ञान रागं, जं तिमिरं दिनकरं तेजं ॥ २५४ ॥
दंसन दिट्ठि स दिट्ठं, विहड़ै कम्मान मिच्छ सुह असुहं। विहड़ै मानकसायं, जं सीहं दिट्ठि गयदं जूहेन ॥ २५५ ॥

भावार्थ—जब सम्यग्दर्शनकी दृष्टि पैदा होजाती है तब कर्ममलके दोषसे उत्पन्न मिथ्यात्वभाव बिलकुल गल जाता है। मिथ्या ज्ञान व राग भी गल जाता है। जैसे अंधकार सूर्यके तेजसे भाग जाता है। सम्यग्दर्शनकी दृष्टि जब पैदा होजाती है तब कर्मोंके उदयसे उत्पन्न मिथ्यात्व सम्बन्धी शुभ या अशुभ भाव दूर भाग जाता है। मान कषाय भी चला जाता है। जैसे सिंहको देखते ही हाथियोंके झुंड भाग जाते हैं।

रात्रिभोजन त्यागमें अच्छा कहा है:—

राय आहार विजुत्तो, ज्ञान आहारिनो य संजुत्तो। अनस्तमितं वे चड़ियं, निश्चय व्यवहार संजदो सुद्धो ॥ २९४ ॥

भावार्थ—दो घड़ी दिन रहते भोजन करना रात्रि आहारका त्याग है, यह व्यवहार संयम है। ज्ञानके अनुभवमें लीन रहना निश्चय आहार त्याग व्रत है। अर्थात् रात्रिको भोजन सम्बन्धी भावोंको त्यागकर रात्रि भोजनके त्यागीको आत्मज्ञानका आहार ध्यान स्वाध्याय करना चाहिये।

अस्तेय व्रतको निश्चय नयसे कहा है—

स्तेयं पद रहियं, जिन उक्तंपि लोपनं जाने। अस्तेयं व्रत धारी, स्तेयं स सहाव रहिएन ॥ ३५० ॥

भावार्थ—अपने आत्मीक पदसे छूटकर पर पदमें जाना चोरी है, जिनेन्द्र कथित वचनोंका लोप करना भी चोरी जानो। अनेक व्रतोंको धारनेवाला है परन्तु जो अपने स्वभावमें लीन नहीं है तो वह चोरी सहित अचौर्य व्रत रहित है।

अप्प सरूवं दिट्ठं, अप्पा परमप्प ज्ञान स सरूवं। रागादि विषय विरयं, संसुद्धं चेयना रूवं ॥ ३५४ ॥

भावार्थ—जिसने अपने आत्माके स्वरूपको देख लिया है कि मेरा आत्मा परमात्माके समान पूर्ण ज्ञान स्वरूप है, रागादि व विषयोंसे विरक्त है, परम शुद्ध चेतनामई है, वही निश्चयसे अचौर्यव्रतधारी है। क्योंकि पर भावको अपनाता नहीं है।

दिगम्बर मुनि पांच तरहके वस्त्रोंसे रहित होते हैं। उसके चर्मज, रोमज आदि वस्त्र त्यागको निश्चयसे बहुत उत्तम बताया है।

चरनं सुभाव तिक्तं, चौ गय संसार सरनि नेय कालंमि। विषय वसन संचरनं, चर्मज चेल तिक्तंति स सहावं ॥ ३९७ ॥

भावार्थ—आत्म स्वभावसे रमन रूप भावको छोडकर आचरण पालना, अनंत काल चार गति मय संसारमें भ्रमण कराने वाला है। पांच इन्द्रियोंके विषयोंमें व जूआ आदि व्यसनोंमें आचरण करना ऐसे चर्मज वस्त्रको साधुजन अपने स्वभावमें लीन होकर त्याग देते हैं।

रुचियं कुज्ञान मइओ, रुचियं मिथ्यात विषय सद्भावं। रुचियं पुग्गल रूवं, रोमज तिक्तंति चेयना भावं ॥ ३९९ ॥

भावार्थ-मिथ्याज्ञान स्वरूपकी रुचि करना मिथ्यात्व व इन्द्रियोंके विषयोंकी रुचि करना तथा पुद्गलके स्वभावकी रुचि करना ऐसे रोमज स्वभावको अपने चेतनाके शुद्ध भावमें रमण करके साधुजन छोड़ देते हैं।

ए पंच चेल उत्तं, तिक्तं मन वयन काय सद्भावं। विज्ञान ज्ञान सुद्धं, चेलं तिक्तंति निव्वुए जंति ॥ ४०० ॥

भावार्थ-इस तरह पांच तरहके वस्त्र कहे गए हैं, उनको छोडकर जो साधु मन वचन, काय सम्बन्धी सर्व वस्त्रको त्याग देते हैं। अर्थात् मन वचन, कायकी क्रियाओंको त्याग देते हैं, वे साधु शुद्ध विज्ञानमई आत्मज्ञानमें लीन होकर निर्वाणको जाते हैं।

साधु सिंहासन परिग्रहके त्यागी होते हैं ऐसा निश्चयसे कहा है—

सिंहासनं स उत्तं, चौ गई संसार आसनं सहसा। वन्धं चौविहि उत्तं ज्ञान सहावेन आसनं मुक्कं ॥ ४२३ ॥

भावार्थ-वास्तवमें वही सिंहासन कहा गया है, जो यह आत्मा अपने सिद्ध स्वभावमई आसनको छोड कर सहसा चार गति

रूपी संसारके आसनोंको प्राप्त करता रहता है। तथा चार प्रकार कर्म बन्धको भी सिंहासन कहा गया है। निर्ग्रंथोंने अपने आत्मज्ञानके स्वभावमें थिर होकर इन सर्व आसनोंका मोह त्याग दिया है। यही सिंहासन त्याग है।

मान परिग्रहपर बहुत ही बढ़िया लिखा है—

मानं पुग्गल रूवं, गलंति पूरयंति भाव सद्भावं। मानं अनृत रूवं, ज्ञान सहावेन मान तिक्त च ॥ ४६७ ॥

भावार्थ—यह मान कषाय पुद्गलके समान है। जैसे पुद्गल पूरन गलन स्वभाव है वैसे यह मान है। कभी बढ़ता है, कभी अपमानसे घट जाता है। संसारके क्षणिक मिथ्या पदार्थोंका मान मिथ्या है। साधुजन अपने ज्ञान स्वभावमें ठहरकर मानको ही त्याग देते हैं।

निश्चयसे अनर्थदण्ड व्रतका कैसा बढ़िया स्वरूप ध्यानी साधुमें घटाया है:—

अज्ञान अर्थं न दिट्ठदि, ज्ञान सहावेन भव्व उवसंतो। कीला अप्प सहावं, अप्पा परमप्पओ हवई ॥ ४८४ ॥

भावार्थ–मिथ्या ज्ञान सहित पदार्थ ही अनर्थ है, जहां उसका श्रद्धान न हो किंतु सम्यग्ज्ञानमय आत्म स्वभावके द्वारा सत्य स्वरूपमें शांति प्राप्त की जावे, अर्थात् अपने आत्माके स्वभावमें आपको कील दिया जावे जिससे आत्मा परमात्मा होसके, यही अनर्थ दंडव्रत महाव्रत है।

अनशन तपमें कितनी सुन्दर गाथा कही है—

विरइय संसार सुभावं, विरइय मिच्छात दोस परिनामं। रहयं सुद्ध सहावं, ज्ञान सहावेन अनसनं सुद्धं ॥ ५०६ ॥

भावार्थ—संसारके स्वभावसे विरक्त होकर तथा मिथ्यात्वके सदोषभावसे विरक्त होकर ज्ञानमई स्वभावके द्वारा अपने शुद्ध स्वभावमें रच जाना या रम जाना सो शुद्ध अनशन तप है।

रस परित्याग तपमें कहा है:—

रसियं मिथ्यात मइयं, रसियं संसार सरनि वासंमि। कुज्ञानं रमियानं, ज्ञान सहावेन सयल तिक्त च ॥ ५१६ ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वमई रसिकपनेको, संसार भ्रमणके वासके रसिकपनेको व मिथ्याज्ञानके रसिकपनेको आत्मज्ञानके स्वभावमें ठहर कर छोड़ना रसपरित्याग तप है।

विविक्त शय्यासन तपमें कहा है:—

विविक्त आसन सेज्जा, पुग्गल जीवान विवित्तं सुद्धं। पुग्गल सरनि विमुक्कं, अप्पा अप्पेन दंसनं सद्धं ॥ ५२० ॥

भावार्थ—सर्व परद्रव्य सम्बन्धी आसन व शय्याको त्याग देना, पुद्गलसे शुद्ध जीवको भिन्न समझना, पौद्गलिक मार्गको त्याग देना, आत्माको आत्माके द्वारा शुद्ध देखना या अनुभवना विविक्त शय्यासन तप है।

जिह्वा स्वाद संयममें बहुत अच्छा कहा है—

असुद्धं न चवंतो, रागादि दोस असत्य विरयंमि । इन्द्री विरय अतींद्री, अतींद्री ज्ञान स्वाद स सहावं ॥ ५७८ ॥

भावार्थ—अशुद्ध वचन न बोलना, रागादि दोष व मिथ्या आलापसे विरक्त रहना, इन्द्रिय रहित अतीन्द्रिय आत्मापर लक्ष्य देकर अतीन्द्रिय ज्ञानका स्वाद लेना जिह्वा स्वाद संयम है ।

मनोगुप्तिको कहा है—

मनगुत्ती उवएसं, मन असुहं च असुद्ध परवेसं । मन परिनै तिक्तं च, मन सुद्धप्पा प्रवेस मिलियं च ॥ ६०४ ॥

भावार्थ—मनगुप्तिका उपदेश यह है कि वह अशुद्ध मन जो अशुद्ध पौद्गलिक भावोंमें प्रवेश करता है उसकी इस अशुद्ध परिणतिको त्यागकर शुद्धात्मामें प्रवेश कराकर उसीमें मिला देना मनोगुप्ति है ।

आदान निक्षेपण समितिको कैसा अच्छा कहा है—

आदानं निक्षेपं, आद सहावेन दंसए सुद्धं । निक्खवइ कम्म तिविहं, आद सहावेन सयल दोष निक्षेपं ॥ ६२४ ॥

भावार्थ—आदान निक्षेपका भाव यह है कि आदानका अर्थ है कि आत्माके स्वभावको ग्रहण कर उसे शुद्ध अनुभवना । निक्षेपके अर्थ हैं कि तीन प्रकार द्रव्य, भाव, व नोकर्मको क्षय करना । इसलिये आत्माके स्वभावमें ठहरकर सर्व रागादि दोषोंको हटाना आदाननिक्षेपण समिति है ।

श्री अरहंतके आहार निहार नहीं होता है—

वाहि जर दोष रहिओ, आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो । ज्ञान आहार संजुत्तो, ज्ञानेन ज्ञान अप्प परमप्पा ॥६४८॥

भावार्थ—अरहंत भगवान बाहर जराके दोषसे रहित हैं । आहार व निहारसे रहित शुद्ध हैं । ज्ञान रूपी आहारके करनेवाले हैं । ज्ञानके द्वारा वे ज्ञानका अनुभव कर रहे हैं । उनका आत्मा परमात्मा है ।

इससे प्रगट है कि श्री तारणतरण स्वामीका श्रद्धान दिगम्बराम्नायके अनुकूल था ।

सासादन गुणस्थानका स्वरुप कैसा यथार्थ लिखा है—

अप्पा परु पिच्छंतो, संसय रूवेन भावना जुत्तो, अंतराल व्रतीओ, न भुवनि न सिहरि वे संतो ॥ ६६६ ॥

भावार्थ—आत्मा व परको जानता हुआ जो संशय सहित भावनामें युक्त होजाता है, वह सम्यक्तसे गिरकर मिथ्यात्वमें आता हुआ अंतरालका व्रती है । न तो वह भुवनपर है न वह शिखरपर है—बीचमें है । यह सासादन गुणस्थान है ।

सयोग केवली जिन तेरहवें गुणस्थानका स्वरूप है—

सजोग केवलिनो, आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो। केवलज्ञान उवन्नो, अरहंतो केवली सुद्धो ॥ ७०० ॥

भावार्थ—सयोग केवली भगवान आहार व विहार दोनोंसे रहित शुद्ध वीतराग होते हैं। जिनको केवलज्ञान उत्पन्न होगया है, वे ही शुद्धोपयोगी अरहंत केवली हैं। जीव द्रव्यके गुणोंको कहते हुए कैसी बढ़िया गाथा कही है—

दव्वं दव्व सहावं, जीव दव्वं ति लोय समुद्धं। छह गुन निवास सुद्धं, दोगन अनाइ एक संजुत्तं ॥ ८०६ ॥

भावार्थ—द्रव्य, द्रवण या परिणमन स्वभाव है। जीव द्रव्य तीन लोकमें शुद्ध पदार्थ है। छः गुणोंको (अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, चेतनत्व, अमूर्तत्व) रखनेवाला शुद्ध पदार्थ है। इनमेंसे दो गुण विशेष हैं–चेतनत्व व अमूर्तत्व। संग्रहनयसे जीवमें एक जीवत्व गुण है। जीव अनादि है। स्थावर जीवमें छः सामान्य गुण हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व। दो विशेष गुण हैं–चेतनत्व, अमूर्तत्व।

आर्त ध्यानमें आरति शुद्ध कहकर बढिया गाथा कही है—

आरति अप्प सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं भावं। आरति ज्ञान अवयासं, ज्ञान सहावेन निव्वुए जंती ॥ ८३७ ॥

भावार्थ—आत्माके स्वभावमें आ कहिये सर्व ओरसे रतिका करना, आत्माको परमात्मा रूप निर्मल भावोंसे अनुभवना, आत्मज्ञानके भीतर भले प्रकार लीन होजाना, इस ज्ञानस्वभावी आत्मध्यानके द्वारा भव्य जीव निर्वाण प्राप्त करते हैं। एक विशेष बात इस ग्रन्थमें यह पाई गई कि रिजुमति मनःपर्यय ज्ञानका क्षेत्र जम्बूद्वीप प्रमाण है। देखें गाथा ६३३ जब कि गोम्मटसारकी ४५४ गाथामें उत्कृष्ट क्षेत्र सात आठ योजन ही बताया है। यह विशेषता किस ग्रन्थके आधारसे है, इसकी खोज करनेकी जरूरत है।

इस ग्रंथमें १९० तक संस्कृत मिश्रित भाषा है जब कि १९२ से अंत तक प्राकृत गाथाएं हैं।

इस ग्रंथका उलथा करते समय हमारे पास सात लिखित प्रतियां थीं—

(१) ललितपुरकी प्रति लिखित सं० १६७४ वर्ष श्रावण वदी १३ शनिवार–"शास्त्र लालमती पठनार्थ लिख्यतं।"

नोट—इससे सिद्ध है कि किसी लालमती विदुषी महिलाके पढ़नेके लिये लिखा गया।

(२) ललितपुरकी प्रति—लिखित संवत १६८०। "सोलहसै ऐसीआ वर्षे फागुण वदी नौमी शास्त्र लिखितं।"

(३) इटारसीकी प्रति—लिखित संवत १८६८। "इतिश्री ज्ञान समुच्चयसार ग्रंथ जिन तारनतरन विरचितं समउत्पंनिता। ग्रंथ प्रापतिर्भवति जिन तारनतरन विरचित सुद्ध समिकद्रिष्टी सार्धनं करोति कार्य सिध्यं भवति कथंभूतं–देव, गुरु, धर्म विनैके शास्त्र सार्धनं करोति विनै करोति जोर नमो नमः। मासोत्तम मासे पौष मासे कृष्ण पक्षे तिथि पंचम्यां भृगुवासरे संमद १८६८ प्रवर्तमान्ये श्रीसूर्य दक्षणायने हिमंतुरितौ लिखितं जमुनालाल ब्रह्मामन पठनार्थी लच्छीराम महाजन शुभ संपूर्ण।

(४ मल्हारगढ़की प्रति—लिखित संवत १८६५ ।

(५) ,, ,, ,, आधुनिक, संवत नहीं ।

(६) ,, ,, ,, ,, ,,

(७) सागरकी ,, ,, ,, ,,

इसमेंसे पहली दो प्रतियें बहुत शुद्ध पाई गईं । इस उल्थामें उन्हींके अनुसार पाठ दिया गया है । श्री जिन तारणतरण-स्वामीके मूल वाक्य इनमें पाए जाते हैं । इटारसीकी प्रति भी बहुत विचारपूर्वक लिखी गई है । उससे भी अच्छी मदद मिली । शेष चार प्रतियोंसे भी शब्दकी शंका होनेपर मदद मिली है । जिन जिनवाणी भक्तोंने इन प्रतियोंके देनेकी कृपा की है वे धन्यवादके पात्र हैं ।

श्री श्रावकाचारका उल्था करनेके पीछे उक्त त्यागीकी आत्मभक्ति व सिद्धांत ज्ञान देखकर मेरे यह भाव हुए कि मैं इनके दूसरे ग्रंथोंका भी उल्था करके जगतके कल्याणके हेतु प्रकाश कराऊं । क्योंकि ग्रंथकर्ता ग्रंथ इसीलिये रचते हैं कि जगतके प्राणी उसको पढ़कर सत्य ज्ञानका लाभ प्राप्त करें । श्रीजिन तारणतरणस्वामीके ज्ञानका लाभ सर्वसाधारणको होजावे इसी भावसे प्रेरित हो एक दिन मल्हारगढ़में वेतवा नदीके मध्यमें नौकापर बैठे हुए सेठ मन्नूलालजी–आगासोद व भाई गुलाबचंदजी–ललितपुरको उपदेश किया कि ग्रन्थ प्रकाशके लिये दान करके लक्ष्मीको सफल करना चाहिये । हर्ष है कि मेरे उपदेशको ग्रहण कर व भाई गुलाबचंदजीकी प्रेरणासे उक्त सेठ साहबने २०००) दो हजार रुपयेका दान इस हेतु दिया । तब भाई मथुराप्रसादजी बजाज सागरकी सलाह भी मिलाकर श्री ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थका उल्था करके प्रकाश कराना निश्चित हुआ । इन तीनों जिनवाणी भक्तोंकी असीम प्रेरणासे व इटारसीवाले भाइयोंके आश्रय देनेसे इटारसीवाले भाइयोंकी रक्षामें रहकर इस ग्रन्थका उल्था पूर्ण किया है । जितना २ मैं ग्रन्थका उल्था करता हुआ आगे बढ़ता जाता था, उतना २ मेरा प्रेम ग्रन्थकर्तासे बढ़ता जाता था । श्री जिन तारणतरण स्वामीके गुणोंमें अनुरागने ही मेरे भावोंमें ऐसी शक्ति उत्पन्न की, जिससे मैं उक्त स्वामीके भावको समझ कर भाषामें भावार्थ लिख सका । इसमें मेरा कोई कृत्य नहीं है । यह परम विद्वान उक्त स्वामीका ही प्रताप है । बुद्धि पूर्वक मैंने बहुत सम्हाल कर टीका की है । यदि अज्ञान व प्रमादसे कोई भूल होगई हो तो सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे मुझे अल्पज्ञ जानकर क्षमा प्रदान करेंगे, तथा उसको शोध लेंगे व मुझे सूचित करके सम्मति मिलाकर द्वितीय वारके प्रकाशनमें शुद्ध कर देंगे ।

इटारसी (सी० पी०)
दिगम्बर जैन चैत्यालय
आसो सुदी ६ सोमवार वीर सं० २४५९
ता० २५–९–१९३३ ।

सर्व जिनवाणी भक्तोंका दास—

ब्रह्मचारी सीतल ।

विषय-सूची ।

शुद्धाशुद्धि पत्र !

प्रार्थना—दृष्टिदोषसे ग्रन्थमुद्रणमें जो अशुद्धियां रह गईं हैं उनको कृपाकर प्रथम शुद्ध करलें, फिर ग्रन्थको पढ़ें ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
८	१९	भोगोंमेंसे	योगोंमेंसे	१५९	१८	उज्झय	उज्झाय
१०	८	वीतराग	वीतरागता	१६१	२	वंभामंर	वंभारंभ
१६	१२	सेकं	संके	१८२	१४	न वह	वह
२९	५	सम	वय सम	१८५	१९	वस्त्र	पात्र
३५	९	युक्तं	मुक्तं	२१०	८	भयकार	ममकार
३६	१३	वं	ध्रुवं	२२१	१७	देखती है	नहीं देखती है
३६	२१	शुद्धात्माका	शुद्धात्माके	,,	१८	अशुद्ध…	शुद्ध आत्माको देखती है
३७	६	स्थापित किया है	स्थापित है	२२५	६	तीन	लीन
४८	११	पांच सरोवरोंमें	पांच स्थावरोंमें	२२९	६	ज्ञान	ज्ञानं
८५	११	मोक्षमार्गस्य	दिष्टते मोक्षमार्गस्य	२४०	१०	अन्तरज्ञान	कम आत्मज्ञान
९१	१२	पावद्	यावद्	२४५	१६	हिंसावंदी	हिंसानंदी
९१	,,	ते वां	तेषां	२४९	१४	परिग्रकहो	परिग्रहको
९३	१८	व ड्ढपा	कड्ढया	२५१	१२	क्रोधको	क्रोधकी
१०४	१०	प्रथा ही	तथा ही	२५१	९	इन्द्रियोंको	इन्द्रियोंकी
१२१	६	भविओ	भनिओ	२५९	१	द्रव्य भाव	द्रव्य स्वभाव
१२८	११	या	या क्षयसे	२६२	६	संकल्प न करना	संकल्प करना
१२९	२२	और	ओर	२६३	१७	ऊरेसनं	उद्देसनं
१४६	१३	शेष	दोष	२६८	१	पुण्ण	पुराण
१४९	१०	दोनों	दान	२७२	२१	ढिये	ठिये

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२८३	अंत	रहित	सहित	४११	२०	प	थ
२८५	५	शुभोपयोग	अशुभोपयोग	४२२	५	कुम्भवर्ती	क्रमवर्ती
२८८	९	पांव	पांच	,,	१०	कमसे	क्रमसे
२९७	१९	तुहे	तुहे	४१५	२	ज्ञान ध्यान	ज्ञान दर्शन
३०२	१४	समझा था	समझाया था	,,	११	स्वभाभ	स्वभाव
३१५	१५	अर्च	अर्थ	,,	१८	स्वसंवेन	स्वसंवेदन
३२३	१२	याद न	याद	४३५	१९	नय	सव
३२९	१५	पांच समिति	तेरा प्रकार चारित्र	४३७	८	आमोद	अप्रमाद
३३१	६	पदार्थोंमें	पदार्थोंमें राग करनेमें	४४९	१४	शूद	शुद्ध
३३७	९	शुभोपयोग	शुद्धोपयोग	४६४	१५	अमृत	अनृत
३४५	११	अनुमव	अनुभय	४७२	७	पापों	पदों
३५३	३	तो	वे तो	४७५	१३	दितिय	रितिय
३७१	२	विच्छेद	पिच्छेद	४७६	२१	पुण्प	पुष्प
३७६	९	सं भाई	संमाई	४८०	१९	शब्दों	शल्यों
३७७	५	सम्यक्त	सम्पत्ति	,,	२०	कमी मी	कभी कभी
३८०	१५	दंत धावन त्याग	दंतधावन त्याग वस्त्र त्याग	४९७	२१	पिच्छै)	पिच्छै) व निर्मल शुद्ध
३९८	४	तीन स्वर	३ स्वर				सम्यक्तको अनुभवेगा
३९९	५	दीनं	ऋनं				



ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

श्री तारणतरण स्वामी विरचित—

ज्ञानसमुच्चय सार ।

मंगलाचरण ।

दोहा ।

बंदहुं श्री अरहंत पद, सिद्ध ध्यानमें लाय । आचारज उवझाय मुनि, नमहुं स्व मस्तक नाय ॥
ऋषभदेवसे वीर तक, चौवीसों जिनराय । परमातम मंगल करन, नमहुं चित्त उमगाय ॥
परमागम जिनराजका, धर्म प्रकाशन हार । भवदधि तारण पोत सम, नमहुं पाप हर्तार ॥
गौतम गणधर आदि गुरु, भए पंचमे काल । तिनके पद अरविन्दको, नाऊं मैं निज भाल ॥
कुंदकुंद आचार्यको, उमास्वामि श्रुतनाथ । पूज्यपाद आदिक गुरू, नमहुं नाय निज माथ ॥

अथ श्री जिन तारणतरण स्वामी विरचित ज्ञानसमुच्चय सारकी देश भाषामय वचनिका सर्व साधारणके हित हेतु लिखी जाती है—

मंगलाचरण ।

परमानन्द परं ज्योतिः, चिदानंद जिनात्मनं ।
शुद्धं रूपं समय सिद्धं, विन्दस्थाने नमस्कृतं ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(परमानन्द) उत्कृष्ट अतीन्द्रिय आनन्दके धारी (परं ज्योतिः) उत्कृष्ट ज्ञानरूपी प्रकाशके स्वामी (चिदानंद जिनात्मनं) चैतन्यमई, आनन्दमई व कर्म शत्रुओंके जीतनेवाले (शुद्धं रूपं) शुद्ध स्वरूपके धारी (समय सिद्धं) परमागमसे सिद्ध अथवा जिन्होंने अपने आत्माको सिद्ध कर लिया है (विंदस्थाने) ॐ पदमें विंदुके स्थानपर विराजित ऐसे सिद्धको (नमस्कृतं) नमस्कार करता हूं । ॥ १ ॥

भावार्थ—इस श्लोकमें शुद्ध आत्माको या सिद्ध भगवानको नमस्कार किया गया है जो अनंत ज्ञान व अनन्त सुखके धारी, अमूर्तीक व सर्व कर्मकलंक रहित हैं।

ॐ नमः ऊर्ध शुद्धं च, परमेष्टी च संजुतं।
ति अर्थं स्वयं रूपं, पदविंदं च संस्थितं ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(पदविंदं च संस्थितं) पद व बिंदुमें विराजित ऐसे (ॐ) ॐ को (नमः) नमस्कार करता हूं (ऊर्ध शुद्धं च) जो परम शुद्ध एकाक्षरी मंत्र है (परमेष्टी च संयुतं) जिसमें पांचो परमेष्टी गर्भित हैं (ति अर्थं) जो परमेष्टी तीन रत्नमई पदार्थ हैं (स्वयं रूपं) वे स्वयं ही अपने स्वभावमें स्थित हैं।

भावार्थ—इसमें ॐ मंत्रको स्मरण करके अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पांच परम पदके धारी परमेष्ठीको नमस्कार किया गया है। ॐ शब्द पांच प्रथम अक्षरोंसे बना है। अरहंतका प्रथम अक्षर अ, सिद्ध या अशरीरका प्रथम अक्षर अ, आचार्यका प्रथम अक्षर आ, उपाध्यायका प्रथम अक्षर उ, साधु या मुनिका प्रथम अक्षर म् इसतरह अ + अ + आ + उ + म् मिलके ओम् या ॐ बन जाता है। यह मंत्र परम शुद्ध है, क्योंकि यह मंत्र इस लोकमें प्रसिद्ध पांच परम शुद्ध पदोंका प्रकाशक है। सर्व ही भव्य जीव इन्द्रादिकोंसे वंदनीक इन पांच पदोंको नमस्कार करते हैं। ये पांचों पदवी धारक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इन तीन रत्नोंसे शोभायमान हैं। तथा इन्होंने स्वयं ही अपने पुरुषार्थसे अपना २ स्वभाव प्राप्त किया है। सब ही अपने आत्मीक स्वभावमें तल्लीन हैं।

ज्ञानं च शुद्ध सद्भावं, दर्शनं भुवनत्रयं। सहजानन्द स्वयं रूपं, विंद संयुक्त शास्वतं ॥ ३ ॥
ममात्मा परमं शुद्धं, अमूर्तं अमलं ध्रुवं। विंदस्थाने न तिष्ठंति, नमाम्यहं शिवं ध्रुवं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्ध सद्भावं च ज्ञानं) जो शुद्ध स्वाभाविक ज्ञान सहित है (दर्शनं भुवनत्रयं) जिस ज्ञानने तीन लोकको देख लिया है (सहजानन्द स्वयं रूपं) जो स्वाभाविक आनन्दमई निज स्वभावमें है (शाश्वतं) तथा जो नित्य रहनेवाला है (विंद संयुक्त) ॐ पदमें विंदुसे प्रगट है (मम आत्मा) ऐसा निश्चय नयसे मेरा आत्मा है (परमं शुद्धं) जो परम शुद्ध है (अमूर्तं) वर्णादि मूर्तिसे रहित है (अमलं)

राग द्वेषादि व कर्म मलसे शून्य है (ध्रुवं) जो निश्चित स्वरूप है (शिवं ध्रुवं) व जो सदा ही आनन्द-मय है (विंदस्थाने न तिष्ठति) जो ॐ में बिंदुके समान हमारे ही शरीरमें विराजित है उसको (अहं नमामि) मैं तारणस्वामी नमस्कार करता हूं।

भावार्थ—यहां श्री तारणतरण स्वामीने अपने ही आत्मा पर अपना ध्यान लगाया है तथा उसको सिद्ध भगवानके समान अनुभव किया है। निश्चय नयसे अर्थात् वस्तुके असली स्वरूपकी अपेक्षा देखा जावे तो यही आत्मा जो इस शरीरमें व्यापक है सिद्धके समान परम शुद्ध है, इसीमें सर्वज्ञपना है, इसीमें परमानन्द है। यही पुद्गलमई सर्व गुणोंसे रहित अमूर्तीक है, इसमें कोई कर्म-कलंक नहीं है न इसमें रागद्वेषादि है। यह अजर अमर अविनाशी है। इसका स्वभाव कभी मिटा नहीं, न कभी नाश होसक्ता है। व्यवहार नयसे देखे तो यह आत्मा कर्म सहित व शरीर सहित अशुद्ध दीखता है परंतु सर्व कर्मके सम्बन्धसे रहित इसका स्वरूप विचार करें तो यह बिलकुल शुद्ध सिद्ध भगवानके समान दीखता है। सिद्धके स्वरूपको जाननेका उपाय यही है जो हम अपने आत्माको समझ जावें। इसलिये श्री तारणतरण स्वामीने अपने ही आत्माको सिद्धसम शुद्ध अनुभव करके भाव नमस्कार किया है। ऐसा करके स्वामीने अपने भावको निर्मल करके संसारसे अपना वैराग्य झलकाया है व शुद्ध रूपसे प्रेम प्रकाश किया है।

नमामि सततं भक्त्या, सिद्धचक्रं शिवं ध्रुवं।
केवलिदृष्टस्वभावं च, नमाम्यहं ध्रुव शाश्वतं॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(शिवं) आनन्दमई (ध्रुवं) अविनाशी (सिद्धचक्रं) सिद्ध समूहको (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (सततं) सदा (नमामि) नमस्कार करता हूं (केवलिदृष्टस्वभावं च) जिनके स्वभावको प्रत्यक्ष केवली भगवानने देखा है (ध्रुव शाश्वतं) निश्चय स्वरूप अविनाशी ऐसे सिद्ध समूहको (अहं नमामि) मैं वार२ नमस्कार करता हूं।

भावार्थ—यहां श्लोकमें दो वार नमस्कार शब्द देकरके श्री तारणस्वामीने अपनी गाढ भक्ति सर्व सिद्धोंसे प्रगट की है। अनन्त आत्माएं सिद्ध पदमें विराजमान हैं वे सर्व ही अविनाशी हैं,

निश्चल हैं, परमानन्दमई हैं। हम लोग अनुमान ज्ञानसे व परमागमकी श्रद्धासे अपने आत्माके स्वरूपके समान सिद्धोंको जान करके नमन करते हैं। परन्तु केवली अरहंत भगवानने उनके स्वरूपको प्रत्यक्ष अपने ज्ञानमें देखा है।

रिसहादि वीरनाथं च, भक्तिपूर्वं नमस्कृतं।
केवल दृष्टि समं उक्तं, साथ भव्यलोकयं ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(रिसहादि वीरनाथं च) श्री ऋषभदेवको आदि लेकर श्री महावीर पर्यन्त चौवीस वर्तमान कालके तीर्थंकरोंको (भक्तिपूर्वं नमस्कृतं) भक्ति सहित नमस्कार करता हूं। ये सब अरहंत (केवल दृष्टि) केवलज्ञान दर्शनके रखनेवाले हैं (भव्यलोकयं सार्थं) भव्य जीवोंके लिये प्रयोजनवान-परमोपकारी हैं (समं उक्तं) ये सब गुणोंमें बराबर कहे गए हैं।

भावार्थ—जब कोई तीर्थंकर धर्मरूपी तीर्थका प्रचार करते हैं तब ही वह यथार्थमें तीर्थंकर कहलाते हैं ऐसे महान धर्म-प्रचारक इस भरतक्षेत्रके इस अवसर्पिणी कालमें चौवीस प्रसिद्ध हुए हैं। प्रथमका नाम श्री ऋषभदेव तथा अन्तिमका नाम महावीर है। ये सब ही समान गुण व पदवीके धारी हैं। इनसे भव्य जीवोंको धर्मका उपदेश मिलता है। जिससे वे मिथ्यात्वका वमन कर देते हैं और भवसागरसे पार होजाते हैं। ये सब तेरहवें गुणस्थानधारी गुणोंमें समान होते हैं। उनको यहां श्रद्धा सहित भक्तिपूर्वक नमस्कार किया जाता है।

ज्ञानसमुच्चयसारं, लोकसारं समं ध्रुवं।
वोच्छामि जिन उक्तं च, केवलि दृष्ट जिनागमं ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानसमुच्चयसारं) सम्पूर्ण श्रुतज्ञानका सार जिसमें है ऐसा यह ज्ञानसमुच्चय सार नामका ग्रन्थ है (लोकसारं) जो लोकमें सार है उसको कहनेवाला है (समं) समभावको झलकाने-वाला है (ध्रुवं) यथार्थ निश्चित है (जिन उक्तं च) तथा जिन भगवानका कहा हुआ कथन है (केवलि दृष्ट) केवली भगवानका देखा हुआ (जिनागमं) जिन आगम है उसको (वोच्छामि) कहूंगा।

भावार्थ—इस श्लोकमें श्री तारणस्वामीने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं इस ग्रन्थको कहूंगा जिसमें

जिनवाणीका वही सार बताऊँगा जैसा श्री जिनेन्द्रने देखा है, जाना है व दिव्यवाणीसे कथन किया है। जो कुछ इसमें पदार्थोंका स्वरूप है वह यथार्थ है, सार है व रागद्वेषको मिटानेवाला है। ऐसा कहकर ग्रन्थकर्ताने यह बताया है कि मैं अपनी तरफसे कुछ नवीन बात नहीं कहूंगा। जो कुछ परम्परा परमागममें कथन चला आया है उसीका कुछ उपयोगी सार बताऊँगा।

जिनवाणी हृदयं चिंते, सम्पूर्ण ग्यानसंयुतं।
किंचिन्मात्र कहंतेन, भव्यलोकप्रबोधनं ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(सम्पूर्ण ग्यान संयुतं) पूर्ण श्रुतज्ञानमई (जिनवाणी) जिनवाणी (हृदयं) मनमें (चिन्ते) विचारने योग्य है (भव्यलोक प्रबोधनं) भव्य लोगोंको समझानेके लिये (किंचिन्मात्र) कुछ ही (कहंतेन) कही जाती है।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि जिनागम इतना विशाल है कि वह मनमें जितना चिन्तवन किया जासक्ता है उसका कुछ ही अंश कहा जासक्ता है। केवली भगवान भी जितना जानते हैं उसका अनंतवाँ भाग उनकी वाणीसे प्रगट होता है। गणधर देव जितना सुनते हैं व जितनी धारणा करते हैं उसका कुछ भाग ही द्वादशांग वाणीमें गूंथ सक्ते हैं। उस श्रुत आगमको जानकर जितना चिन्तवनमें आता है उसका कुछ ही भाग कहा जासक्ता है। शब्दोंमें शक्ति ही अल्प है। इस कथनको करके ग्रंथकर्ताने यह बताया है कि जो कुछ थोडासा मैं जिनवाणीको जानता भी हूं उतना कथन नहीं कर सक्ता हूं। मैंने भव्य जीवोंको वस्तु स्वरूप समझानेकी दृष्टिसे ही कुछ कहनेका उद्यम बांधा है।

गुरुका स्वरूप।

गुरुं त्रिलोक अर्थं च, ग्रंथं चेल न दिष्टते।
मृन्मूर्ति समं शुद्धं, ध्यानारूढ गुरु स्थितं ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(गुरुं) गुरु महाराज (त्रिलोक अर्थं च ग्रंथं) तीन लोकके पदार्थोंका स्वरूप ग्रंथोंमें गूंथनेवाले होते हैं (चेल न दिष्टते) उनके वस्त्र नहीं दिखलाई पडता है। वे (मृन्मुर्ति समं) मिट्टीकी मूर्तिके

समान (शुद्ध) शुद्ध है ऐसे (ध्यानारूढ़) ध्यानमें आरुढ ध्यान लीन (गुरुस्थितं) गुरु महाराज रहते हैं।

भावार्थ—यहां बताया है कि तीन लोकमें भरे हुए छः द्रव्योंका स्वरूप शास्त्रोंमें गूंथनेकी शक्ति रखनेवाले वे अचेलक दिगम्बर जैन मुनि होते हैं जो आत्मध्यानमें ऐसे लीन रहते हैं कि देखनेवालोंको मिट्टीकी बनी निर्मल मूर्ति सम दिखते हैं। परिणामोंमें विकार न होनेसे उनकी ध्यान मुद्रा परम शांत दीखती है। ऐसे ही तत्वज्ञानी गुरु जिनवाणीको मनमें चिन्तवन कर सक्ते हैं। तथा कुछ भव्य जीवोंके हितार्थ कह सक्ते हैं।

गुरुं गगन गमनस्य, दिष्टं सम्पूर्ण शाश्वतं।
ऊर्द्ध च सिद्ध समं शुद्धं, रत्नत्रयालंकृतं ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—(गुरुं) गुरु महाराज (गगन गमस्य) आकाशमें रहनेवाले पदार्थोंको (शाश्वतं) जो नित्य है (सम्पूर्ण दिष्टं) पूर्णपने देखनेवाले हैं (रत्नत्रयालंकृतं) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई रत्नत्रयसे विभूषित है इसलिये (सिद्धसमं शुद्धं) सिद्ध भगवानके समान शुद्ध व निर्विकार है (ऊर्द्ध च) तथा उत्कृष्ठ हैं।

भावार्थ—यहां ग्रन्थ करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले गुरु महाराजके गुण बताए हैं कि वे श्रुतज्ञानके द्वारा सर्व जीवादि नित्य पदार्थोंको निश्चय व्यवहार स्वरूप भलेप्रकार यथार्थ जानते हैं। वे व्यवहार व निश्चय रत्नत्रयमई धर्मका भलेप्रकार पालन करते हैं। तथा जिनका अन्तरंग ऐसा ही निर्मल है जैसे सिद्ध भगवान कर्म रहित निर्मल होते हैं। तथा वे जगतके मानवोंमें सबसे बडे हैं। इसीसे उनको गुरु कहते हैं। तब ही ऐसे गुरुको सर्व गृहस्थ व अन्य साधुगण वडी भक्तिसे नमस्कार करते हैं।

जिन उक्तं च उक्तं च, मिथ्या त्यक्तं त्रिभेदयं।
शुद्ध धर्मं ति अर्थ च, भव्यलोक प्रकाशकं ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ—गुरु महाराजका (उक्तं च) कहा हुआ कथन वही है जो (जिन उक्तं च) जिनेन्द्रका कहा हुआ है (त्रिभेद यं मिथ्यात्यक्तं) उसमें तीन प्रकार मिथ्या कथन नहीं है (शुद्ध धर्म) उसमें शुद्ध आत्म-धर्मका वर्णन है जो (ति अर्थ च) रत्नत्रय स्वरूप है (भव्यलोक प्रकाशकं) तथा जो भव्यलोगोंको वस्तु स्वरूप झलकानेवाला है।

भावार्थ—सच्चा गुरु वही है जो अर्हंत भाषित कथनके अनुसार कथन करै। न तो सत्को असत् कहे न असत्को सत् कहे, न सत्यको विपरीत कहे, जो गुण व पर्याय या द्रव्य है उसको नहीं है ऐसा नहीं कहे। तथा जो द्रव्य, गुण व पर्याय नहीं है उसको है ऐसा नहीं कहे। तथा जैसा जो द्रव्य, गुण व पर्याय है उसको वैसा ही कहे, औरका और नहीं कहे।

सम्यक्ज्ञान या सच्चे ज्ञानका स्वरूप स्वामी समंतभद्रने रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहा है—

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्। निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ ४२ ॥

भावार्थ—सर्वज्ञके आगमनका वही ठीक ज्ञान है जो न वस्तुको कम कहे न अधिक कहे न विपरीत कहे, किन्तु सन्देह रहित यथार्थ कहे। गुरु महाराज शुद्ध आत्मीक स्वभावको जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई है। इस तरह व इस चतुरतासे बतलाते हैं कि भव्यजीवोंके ज्ञानमें प्रकाश होजावे।

चार ध्यान कथन।

आरति रौद्र न दिष्टंते, धर्म शुक्लं च संजुतं।
सम्यक्दर्शनं शुद्धं, गुरुं त्रिलोक वंदितं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(आरति रौद्रन दिष्टंते) गुरु महाराजमें व गुरु महाराजके कथनमें आर्तध्यान व रौद्रध्यान या उनका पोषण नहीं है (धर्म शुक्लं च संजुतं) किन्तु उनमें या उनके कथनमें धर्मध्यान व शुक्लध्यान या उनका पोषण है। उनमें या उनके कथनमें (शुद्ध सम्यग्दर्शनं) शुद्ध सम्यग्दर्शन या उसका पोषण है (त्रिलोक वंदितं गुरुं) ऐसे तीन लोकसे वंदने योग्य गुरु महाराज होते हैं।

भावार्थ—सच्चा गुरु वही है जो धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानका अभ्यासी हो, आर्तध्यान व रौद्रध्यानसे रहित हो व शुद्ध निश्चय आत्म-प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शनका धारी हो, ऐसे गुरुको तीन लोकके सज्जन नमस्कार करते हैं। ऐसे गुरुका कथन भी धर्म व शुक्लध्यानका तथा सम्यग्दर्शनका पुष्ट करनेवाला होता है। तथा आर्त व रौद्रध्यानका दूर करनेवाला होता है।

ध्यान चित्तको किसी पदार्थमें एकाग्रता या लीनताको कहते हैं उसके चार भेद हैं दो अशुभ हैं क्योंकि संसारके कारण हैं व दो शुभ हैं क्योंकि मोक्षके कारण हैं। दुःखित परिणाम रखना आर्तध्यान है, दुष्ट भाव रखना रौद्रध्यान है, आत्मीक स्वभावमें प्रेमालु भाव रखना धर्मध्यान ह तथा शुद्ध उपयोगमई वीतराग भाव रखना शुक्लध्यान है। हरएकके चार भेद हैं–अनिष्टके संयोग होनेपर उसके वियोगकी चिंता करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। इष्टके वियोग होनेपर उससे मिलनेकी चिन्ता करना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। रोगादि होनेपर उसकी पीडासे दुःखित भाव रखना पीडा चिंतवन आर्तध्यान है। आगामी भोगोंकी अभिलाषासे उनके मिलनेकी चिन्ता करना निदान आर्तध्यान है। बुद्धिमानको इन चार तरहके आर्तध्यानोंसे बचना योग्य है। हिंसाके करने व करानेकी व अनुमति देनेकी चिंता करना व हिंसामें प्रसन्नताका भाव रखना हिंसानंदी रौद्रध्यान है। मृषा बोलनेका, बुलवानेका व मृषामें अनुमति देनेका भाव रखना व झूठमें आनन्द मानना मृषानंदी रौद्रध्यान है। चोरी करने, कराने व अनुमति देनेका भाव रखना व चोरीमें प्रसन्नता मानना चौर्यानंद रौद्रध्यान है। परिग्रह रखने, रखाने व उसकी अनुमति देनेमें भाव रखना व परिग्रहके होते हुए प्रसन्नता रखना परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है। यह भी छोडने लायक हैं। जिनेन्द्रकी आज्ञानुसार तत्वोंका विचार करना आज्ञा विचय धर्मध्यान है। अपने व दूसरोंके मिथ्यात्व व रागद्वेषोंके नाशका चिंतवन करना अपाय विचय धर्मध्यान है। कर्मोंके विपाकका शुभ व अशुभ फल विचार करके समभाव रखना विपाक विचय धर्मध्यान है। लोकका स्वरूप व लोकमें भरे हुए छः द्रव्योंका स्वरूप व आत्माका शुद्ध स्वरूप विचारना संस्थान विचय धर्मध्यान है।

ध्यानके होते हुए पूर्व अभ्याससे अबुद्धिपूर्वक एक ध्येयसे दूसरे ध्येयपर पलट जाना। मन, वचन, काय, योगोंमेंसे एक योगसे दूसरेपर पलट जाना व एक शब्दके आलम्बनसे दूसरे शब्दके आलम्बनपर चले जाना, पृथक्त्व वितर्क विचार शुक्लध्यान है। किसी एक ध्येयपर किसी एक योगपर किसी एक शब्दपर ही जमे रहना एकत्व वितर्क अवीचार शुक्लध्यान है। योगोंकी चञ्चलता मिटकर अत्यन्त सूक्ष्म काय योगका वर्तना जहां हो वह सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति शुक्लध्यान है। सर्व योगोंकी प्रवृत्तिका रुक जाना, व्युपरत क्रिया निवर्ति शुक्लध्यान है। धर्मध्यान चौथे अविरत सम्य-

ग्दर्शन गुणस्थानसे अप्रमत्त विरत सातवें गुणस्थान तक होता है। फिर आठवेंसे ग्यारहवें तक पहला शुक्लध्यान, बारहवें गुणस्थानमें दूसरा शुक्लध्यान, तीसरा तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें, चौथा चौदहवें अयोग गुणस्थानमें होता है। आर्तध्यान छठे प्रमत्त विरत तक व रौद्रध्यान पांचवें देश-विरत गुणस्थान तक ही सम्भव है। अधिकतर मिथ्यादृष्टी जीवोंके ही ये दो अशुभ ध्यान होते हैं।

जिनवाणी कथन।

सरस्वती ऊर्द्ध अर्द्ध च, मध्यलोक समं ध्रुवं।
सम्पूर्ण शुद्ध सर्वज्ञं, ज्ञान मूर्ति अमूर्तयं ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ—(सरस्वती) श्री जिनेन्द्र द्वारा प्रकाशित वाणीमें भरा हुआ तत्वज्ञान (ऊर्द्ध अर्द्ध च मध्यलोक समं ध्रुवं) ऊर्द्ध लोक, अधोलोक तथा मध्यलोकके समान ध्रुव है या निश्चित है-पुष्ट है (सम्पूर्ण) पूर्ण वस्तुके स्वरूपको अनेकांत स्वरूप बतानेवाला है (शुद्ध) शुद्ध है, निर्विकार है व वीतराग स्वरूप है (सर्वज्ञं) सर्व वस्तुओंको जाननेवाला है (ज्ञान मूर्ति) उसकी मूर्ति ज्ञानमय ही है (अमूर्तयं) उस ज्ञानकी मूर्ति रूपी पुद्गलमई नहीं है।

भावार्थ—अब ग्रन्थकर्ता सरस्वती व शास्त्र ज्ञानकी महिमा करते हैं। अर्थात् श्रुतज्ञानका स्वरूप बताते हैं कि वह ज्ञान ऐसा दृढ व सदा ही रहनेवाला अविनाशी है जैसा यह तीन लोक-मय जगत अविनाशी है। यह सर्वज्ञके केवलज्ञानके समान ही सर्व वस्तुओंको बतानेवाला है तथा वह दोष रहित शुद्ध है और वीतरागताका पोषक है। रागद्वेषादि विकारोंको मिटानेवाला है। जैसे केवलज्ञान अमूर्तीक है, ज्ञान स्वरूप है, वैसे यह श्रुतज्ञान अमूर्तीक है व ज्ञान स्वरूप है। श्रुतज्ञान भी आत्मामें ही पाया जाता है, जडमें नहीं होसक्ता है। श्रुत ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ही प्रगट होता है।

सरस्वती सर्व दर्शं च, सम सम्पूर्ण संजुतं।
लोकालोक प्रकाशं च, दिनयर किरण संजुतं ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ—(सरस्वती) यह श्रुतज्ञान (सर्वं दर्शं च) सर्व पदार्थोंका देखनेवाला है (सम संपूर्ण संजुतं) समताभावकी पूर्णता सहित है (दिनयर किरण संजुतं लोकालोक प्रकाशं च) किरणोंसे पूर्ण सूर्यके समान लोक व अलोकका प्रकाश करनेवाला है।

भावार्थ—श्रुतज्ञान केवलज्ञानके समान छः द्रव्योंके स्वरूपको और लोक तथा अलोकको देखने जाननेवाला है। यह लोकालोक सर्व जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल आकाशमय है। लोकमें छहों द्रव्य हैं, अलोकमें एक मात्र आकाश है। तथा जो कोई यथार्थ भावसे श्रुतज्ञानका अनुभव करते हैं उनके भीतर वीतरागताकी या साम्यभावकी पूर्णता प्राप्त होजाती है। श्रुतज्ञानके बलसे ही ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थानमें वीतरागकी पूर्णता होजाती है। जैसे केवलज्ञान पूर्ण सूर्य समान सदा प्रकाशक है वैसे ही यह श्रुतज्ञान श्रुतज्ञानियोंके भीतर पूर्ण प्रकाशित रहता है।

आप्तमीमांसामें श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्वप्रकाशने। भेदः साक्षाद साक्षाच्चह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥ १०१ ॥

उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः। पूर्वा वा ज्ञान नाशो वा, सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥ १०२ ॥

भावार्थ—सर्व ही जीवाजीवादि तत्वोंके प्रकाश करनेमें स्याद्वादमय श्रुतज्ञान व केवलज्ञान दोनों ही समान प्रमाणभूत हैं। भेद इतना ही है कि श्रुतज्ञान जब परोक्ष है, इंद्रिय व मनकी सहायतासे होता है तब केवलज्ञान प्रत्यक्ष है। परकी सहायता विना शुद्ध आत्माके ज्ञानका विकाश है। यदि ऐसा न हो तो वह परकल्पित अवस्तु ही ठहरे। सो श्रुतज्ञान कल्पित न होकर यथार्थ वस्तु स्वरूप है। केवलज्ञानका फल पूर्ण वीतरागता है। श्रुतज्ञानका फल कर्तव्यका ग्रहण व अकर्तव्यका त्याग है। सामान्यसे सर्व ही ज्ञानका फल अपने२ विषयोंमें अज्ञानका नाश तथा वीतरागता पैदा करना है।

उत्पन्नं जिन कंठे च, कमलासने च संस्थितं।
ज्ञानं पंचमयं शुद्धं, सर्वज्ञं सरस्वतीं नमः ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ—(जिनकंठे च उत्पन्नं) यह श्रुतज्ञान श्री जिनेन्द्रके मुखसे प्रकाशित है (पंचमयं शुद्धं ज्ञानं सर्वज्ञं) पांचवें केवलज्ञानके समान यह शुद्ध ज्ञान है व सर्व पदार्थोंको जाननेवाला है (कमलासने च

संस्थितं) तथा यह कमलाकार मन द्वारा प्रकाशमान होता है (सरस्वतीं नमः) ऐसे श्रुतज्ञानको नमस्कार हो।

भावार्थ—श्री जिनेन्द्र द्वारा जो दिव्यवाणी प्रकाशमान होती है उसीको सुनकर गणधरादि देव द्वादशांगको प्रकाशते हैं। यही श्रुतज्ञान है। यह केवलज्ञानके समान ही निर्दोष व सर्व पदार्थ प्रकाशक ज्ञान है। यद्यपि छः द्रव्योंको यथार्थपने केवलज्ञान व श्रुतज्ञान दोनों प्रकाश करते हैं तथापि श्रुतज्ञान सर्व पर्यायोंको नहीं जान सक्ता है, जब कि केवलज्ञान सर्व पर्यायोंका ज्ञाता है। जगतमें सरस्वती देवीकी मूर्ति कमलपर विराजमान करते हैं उसी अलंकारको लेकर यहां श्रुतज्ञानमई सरस्वतीको कमलाकार मनमें स्थापित कहा है। ऐसी जिनवाणी सरस्वतीको वारवार नमस्कार हो।

देवं गुरुं श्रुतं येन, नमस्कृतं शुद्ध भावना।
संसार भयभीतस्य, त्यक्तंते ज्ञान दृष्टितं ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—(येन ज्ञान दृष्टितं) जिस ज्ञान दृष्टिके धारकने (शुद्ध भावना) शुद्ध भावनासे (देवं गुरुं श्रुतं) देव गुरु शास्त्रको (नमस्कृतं) नमस्कार किया है और वह (संसार भयभीतस्य) इस संसारसे भयवान है सो (त्यक्तंते) इस संसारसे छूट जाता है।

भावार्थ—संसार असार है, दुःखमय है, अतृप्तिकारी है, क्षणभंगुर है, जन्म मरणरूप है, आत्माको पराधीन रखनेवाला है ऐसा समझकर जो इस संसारसे भयभीत है और जिसने ज्ञान दृष्टिसे सच्चे देव शास्त्र गुरुका स्वरूप समझ लिया है वह यदि शुद्ध भावनाके साथ मात्र आत्मानंदके लाभके लिये व कर्मोंके बंधसे छूटनेके लिये इन तीनोंको नमस्कार करता है वह अवश्य इस भयानक संसारसे छूट जाता है।

जिन उक्तं वयन शुद्धं च, ज्ञानेन ज्ञान लंकृतं।
संसार सरनि मुक्तस्य, मुक्तिपंथं स्वयं ध्रुवं ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उक्तं) जिनेन्द्रका कहा हुआ (वयन शुद्धं च) निर्दोष वचन है (संसार सरनि मुक्तस्य) जो संसारके मार्गसे छुड़ानेवाला (मुक्तिपन्थं) मोक्षमार्ग बताता है जिसमें (ज्ञानेन ज्ञानलंकृतं) ज्ञानसे ही ज्ञानकी शोभा है और जो (ध्रुवं) निश्चय स्वरूप (स्वयं) आप ही है।

भावार्थ—श्री अरहंत भगवानने जो दिव्यध्वनिसे उपदेश दिया है वह बिलकुल सत्य व दोष रहित है उसमें सचा मोक्षमार्ग बताया गया है जिसपर चलनेसे भव्यजीव अवश्य ही संसार-मार्गसे छूटकर मुक्त होजाता है वह मार्ग निश्चयनयसे आप आत्मा ही है। उसमें आत्मज्ञानके द्वारा ही अपने ज्ञानोपयोगको अलंकृत किया जाता है। अर्थात् जहां आत्माको परमात्मारूप भावमें अनुभव किया जावे या ज्ञान चेतनारूप अपनेको परिणमाया जावे, आप आपमें मग्नता प्राप्त की जावे वही निश्चय मोक्षमार्ग है। वह केवल स्वात्मानुभवरूप स्वसमय है या कारण समयसार है।

जिन उक्तं मुक्ति मार्गस्य, कर्म खिपति जं बुधैः।
तेनाहं शुद्ध साध्यं च, संसार मुक्तस्य कारणं ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उक्तं जं मुक्ति मार्गस्य) जिनेन्द्रके कहे हुए जिस मोक्षमार्गपर चलकर (बुधैः) बुद्धिमान ज्ञाता पुरुषोंने (कर्म खिपति) कर्मोंको खपाया है (तेन) उसी (संसार मुक्तस्य कारणं) संसारसे मुक्त करनेवाले उपायसे (अहं च) मैं भी (शुद्ध साध्य) शुद्ध साध्य जो सिद्धपद है उसको साधन करूँगा।

भावार्थ—यहां श्री तारण स्वामी कहते हैं कि मैं उसी मार्गपर चलकर अपने साधने योग्य शुद्ध सिद्धपदको प्राप्त करूँगा, जिस जिनोक्त निश्चय आत्मानुभवरूपी मार्गपर चलकर अनेक महात्माओंने कर्मोंका क्षय करके निज आत्मीक पद पाया है।

मिथ्या ज्ञान।

अनादिकाल भ्रमणं च, कुज्ञानं पश्यते बटुः।
ज्ञानं तत्र न दिष्टते, कोशी उदय भास्करं ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ—(बटुः) यह अज्ञानी प्राणी (अनादिकाल भ्रमणं च) अनादिकालसे संसारके अन्धेरेमें भ्रमण कर रहा है (कुज्ञानं पश्यते) इसे मिथ्याज्ञान ही दीखता है (तत्र ज्ञानं न दिष्टते) वहां उसे सम्यग्ज्ञान नहीं दिखलाई पडता है जैसे (कोशी उदय भास्करं) बंद घरके भीतर सूर्यका दर्शन नहीं होसक्ता है।

भावार्थ—जिसके हृदयरूपी घरमें अनादिकालसे मिथ्यात्वका अंधेरा छाया हुआ है व जो

इसी अंधकारमें भ्रमण करते करते उसीका अभ्यासी होगया है उसको सदा मिथ्याज्ञान ही दिखता है अर्थात् वह सदा अशुद्ध ही पर समय रूप रागी द्वेषी आत्माका ही अनुभव करता है। उसको इस मिथ्याज्ञानके अंधकारमें सम्यग्ज्ञानमई शुद्ध आत्माका दर्शन उसी तरह नहीं होता है जैसे बंद घरमें सूर्यका प्रकाश नहीं होता है।

ज्ञानं कुज्ञान जोगेन, उत्पन्नं अस्थान संजुतं।
ज्ञान दृष्टि नोत्पादंते, कुज्ञानं रमते सदा ॥ २० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं) आत्माका ज्ञान स्वभाव (कुज्ञान जोगेन) मिथ्याज्ञानके सम्बन्धसे (अस्थान संजुतं उत्पन्नं) चंचलता सहित व विकल्प सहित या पर स्थानरूप होरहा है। (ज्ञान दृष्टि न उत्पादंते) वहां ज्ञानकी दृष्टि ही नहीं पैदा होती है। इसलिये (सदा कुज्ञानं रमते) यह अज्ञानी सदा मिथ्याज्ञानमें रमण किया करता है।

भावार्थ—मिथ्यात्व कर्म व अनन्तानुबंधी कषायके उदयसे इस अज्ञानी संसारी जीवका ज्ञान विपरीत होरहा है, अपने निज स्थानसे गिरा हुआ है, संकल्प विकल्पमय है, चंचलता सहित है, पर समय रूप पर स्थानमें तन्मय होरहा है, उसको सच्चे आत्माके स्वरूपका ज्ञान ही नहीं पैदा होता है। उसकी आंखें मोक्षमार्गसे बन्द रहती हैं इसलिये वह विचारा मिथ्याज्ञानमें ही रंजायमान रहा करता है। रातादिन इंद्रियोंका दासत्व करता है। परिवारमें कीचके समान फंसा रहता है। भिष्टाका कीडा जैसे भिष्टामें रमे वैसे यह संसारके कामोंमें राजी रहता है। इंद्रियोंके भोगोंको ही ग्रहण योग्य मानता है। अतीन्द्रिय सुखकी गंध भी उसे नहीं सुहाती है।

ज्ञानं कुज्ञान एकत्वं, रजनो दिनकरं यथा।
यदि रजनी उत्पादंते, दिनकरं अस्तंगत ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ–(ज्ञानं कुज्ञान एकत्वं) सम्यग्ज्ञान तथा मिथ्याज्ञानकी एकता (रजनो दिनकरं यथा) रात्रि और सूर्यके समान है (यदि रजनी उत्पादंते) जब रात्रि प्रगट होती है (दिनकरं अस्तंगत) सूर्य अस्त होजाता है।

भावार्थ–सम्यग्ज्ञान जहां नहीं है वहीं मिथ्याज्ञान रहता है, दोनों एक साथ नहीं रह सक्ते।

जब रात्रिका अंधेरा होता है तब सूर्यका उदय नहीं होसक्ता है। जब सूर्यका उदय होता है रात्रि मिट जाती है। सूर्यके उदयसे जैसे जगतके पदार्थ साफ साफ दिखने लग जाते वैसें सम्यग्ज्ञानके प्रकाशसे आत्मा और अनात्मा सब भिन्न २ अपने २ स्वरूपमें दिखते हैं।

सम्यग्ज्ञान।

यदि रजनी च संपूर्ण, उत्पन्नं भानु भास्करं।
रजनी विलयं याति, ज्ञानं कुज्ञान विलीयते ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ–(यदि रजनी च संपूर्ण) जब रात्रि पूरी होजाती है (भास्करं भानु उत्पन्नं) प्रकाशमान सूर्यका उदय होजाता है (रजनी विलयं याति) तब रात्रिका लोप होजाता है उसी तरह (ज्ञानं कुज्ञान विलीयते) सम्यग्ज्ञानके प्रकाशसे मिथ्याज्ञानका लोप होजाता है।

भावार्थ–रात्रि और प्रभात जैसे एक स्थानमें नहीं रह सक्ते हैं वैसे मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान एक स्थानमें नहीं रह सक्ते।

ज्ञान दृष्टि यथा भावं, कुज्ञानं तत्र न दिष्ठते।
ज्ञानेन ज्ञानमय शुद्धं, स्वयं कुज्ञान विलीयते ॥ २३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दृष्टि यथा भावं) जब सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि यथार्थ भावमें पैदा होती है (तत्र कुज्ञानं न दिष्ठते) तब वहां मिथ्याज्ञान नहीं दिखना है (ज्ञानेन ज्ञानमय शुद्धं) सम्यग्ज्ञानके ही प्रतापसे ज्ञान स्वरूप आत्मा शुद्ध होजाता है तब (स्वयं कुज्ञान विलीयते) अपने आप मिथ्याज्ञानका लोप हो जाता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानके प्रकाशसे ही मिथ्याज्ञान नहीं रहता है तथा उसी सम्यग्ज्ञानके अभ्याससे या आत्माके ध्यानसे यह आत्मा कर्म रहित शुद्ध होजाता है।

तस्यास्ति ज्ञान सद्भावं, जिन उक्तंपि साधयं।
संसार भ्रमण मुक्तस्य, मुक्तिगामी न संशयः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ—(तस्य) उसी सम्यग्ज्ञानीके पास (जिन उक्तेपि सार्थयं) जिनेन्द्रके कहे हुए ही पदार्थ-बोधके साथ साथ (ज्ञान सद्भावं अस्ति) ज्ञानका प्रकाश रहता है (संसार भ्रमण मुक्तस्य) जो ज्ञान संसारके भ्रमणसे छुडानेवाला है वह भव्य (मुक्तिगामी न संशयः) विना किसी संशयके मोक्ष पधार जायगा।

भावार्थ—जो सम्यग्ज्ञानी होगा उसको अवश्य जिनवाणीका श्रद्धान व ज्ञान होगा। वह निश्चय और व्यवहारनयसे वस्तु स्वभावको अवश्य जानेगा। क्योंकि जबतक दोनों अपेक्षासे नहीं जाना जायगा तबतक आत्मीक ज्ञानका प्रकाश नहीं होगा।

श्री अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहते हैं—

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थं। भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोपि संसारः ॥ ५ ॥

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थं। व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥ ६ ॥

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः। प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः ॥ ८ ॥

भावार्थ—निश्चय नय यथार्थ असली स्वाभाविक स्वरूप बताता है जब कि व्यवहार नय उसके विरुद्ध औपाधिक, अशुद्ध या भेदरूप या अवस्था विशेष रूप वस्तुको समझाता है। सर्व ही संसारी प्राणी व्यवहारके ज्ञानमें तो चतुर हैं परन्तु निश्चयके ज्ञानसे विमुख होरहे हैं, अपने असली स्वभावको भूल रहे हैं। अज्ञानीको समझानेके लिये ही आचार्य व्यवहारनयसे भी उपदेश करते हैं जिससे अवस्था विशेषका भी ज्ञान होजावे। परन्तु जो कोई केवल व्यवहारको ही जानके संतोष मानले, निश्चयको न जाने उसके लिये उपदेश सफल न होगा। जो कोई व्यवहार और निश्चय दोनोंको यथार्थ जानकर पक्षपात रहित वीतराग या माध्यस्थ होजायगा वही शिष्य जिनेन्द्र भगवानकी देशनाके पूर्ण फलको पाएगा। इस तरह जो जिनेन्द्र कथित आगमको जानेगा वही परसे भिन्न आत्मीक एकाकी शुद्ध स्वभावको ठीक२ समझ सकेगा। उसीके आत्मज्ञान तथा आत्मानुभव प्रकाशित होगा। जो असार संसारके भ्रमणको मिटा देनेवाला है। आत्मज्ञानी ही यथार्थमें सम्यग्ज्ञानी है और वह अवश्य मुक्त होजायगा।

सम्यग्दर्शनकी आवश्यकता।

जिन उक्तं शुद्ध सम्यक्तं, साध्यं भव्यलोकयं।
तस्यास्ति गुणनिरूपं च, शुद्ध साध्यं बुधर्जनैः ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उक्तं शुद्ध सम्यक्तं) जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथन किया हुआ निर्दोष शुद्ध सम्यग्दर्शन (भव्यलोकयं साध्यं) भव्य जीवोंके द्वारा साधने योग्य है (तस्य गुणनिरूपं च अस्ति) उसी सम्यग्ज्ञानीके अन्तरङ्गमें गुणोंके धारी आत्माका स्वभाव झलकता है (बुधैर्जनैः शुद्ध साध्य) बुद्धिमान सम्यग्ज्ञानी महात्माओंके द्वारा ही शुद्ध स्वभाव जो साधने योग्य है वह साधन किया जाता है।

भावार्थ—जिनेन्द्रके आगमका यह कथन है कि निश्चय या शुद्ध सम्यग्दर्शन जिस तरहसे हो अपने भीतर प्राप्त करना चाहिये। जहां निश्चय सम्यक्त होगा वहां ही आत्माके शुद्ध स्वभावका प्रकाश होगा। वहां अवश्य शुद्ध आत्मानुभव होगा, क्योंकि यह नियम है कि सम्यग्ज्ञानी महात्माओंने ही शुद्ध वस्तुको साधन किया है। तथा वे ही मुक्तिपदको पासक्ते हैं—

तं सम्यक्तं उक्तं शुद्धं, केरि सेकं न रूवं। तं सम्यक्तं तिष्ठियत्वं, कथ्यवासं वसंतं।
उत्पन्ने कोपि स्थानं, श्रेष्ठ प्रौढ प्रमाणं। तं सम्यक्तं कस्य क्रान्तं, कस्य दृष्टि प्रयोजनं ॥२६॥

अन्वयार्थ—(तं सम्यक्तं शुद्धं उक्तं) वही सम्यग्दर्शन शुद्ध कहा गया है (केरि संके न रूवं) जहां आत्माके स्वरूपमें शंका न की जावे (तं सम्यक्तं तिष्ठियत्व) उसी सम्यक्तमें जमे रहना चाहिये (कथ्यवासं वसन्तं) किसी भी स्थानपर रहो (उत्पन्न कोपि स्थानं) किसी भी स्थानपर यह सम्यक्त पैदा होसक्ता है (श्रेष्ठ प्रौढ प्रमाणं) यह सम्यक्त ही श्रेष्ठ है, दृढ है व प्रमाणरूप है (तं सम्यक्तं कस्य क्रांतं) यह सम्यक्त किसी जीवके ही प्रकाश होता है (कस्य दृष्टि प्रयोजनं) कोई ही जीवकी दृष्टि अपने अर्थपर जाती है।

भावार्थ—इस कारिकाका जो अर्थ समझमें आया सो लिखा जाता है, यदि कुछ और भाव हो तो ज्ञाताजन सम्हार लें। सम्यग्दर्शन आत्माका एक वचन अगोचर गुण है, जब यह प्रकाशित होता है तब आत्माके स्वभावका स्वाद या अनुभव आता है। विना किसी शंकाके जो कुछ

आत्माका द्रव्य स्वभाव है वह झलक जाता है। किसी भी स्थानपर रहना हो व किसी भी गतिमें जाना हो, सम्यग्दर्शनको दृढतासे रखना चाहिये। यह अद्भुत रत्न है। इसकी पूर्णपने रक्षा करनी चाहिये। यह सम्यक्त हरएक गतिमें व हरएक स्थानमें पंचेंद्रिय संज्ञी जीवके पैदा होसक्ता है। चारों ही गतिमें होसक्ता है, कर्मभूमि, भोगभूमि, आर्यखण्ड, म्लेच्छखण्ड सर्वत्र पैदा होसक्ता है। निश्चय सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है क्योंकि उसीके होनेपर ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान व चारित्र सम्यग्चारित्र होता है। यही दृढ आत्मीक भाव है, यही प्रमाणभूत सत्य है। ऐसा सम्यग्दर्शन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। किसी ही निकट संसारी जीवके भीतर सम्यक्त पैदा होता है, किसी ही भव्य जीवकी दृष्टि आत्माके सच्चे प्रयोजन पर जाती है। ऐसा दुर्लभ सम्यग्दर्शन रूपी रत्न जिसके प्राप्त होजावे उसको उचित है कि उसकी भलेप्रकार रक्षा करे।

तं सम्यक्तं शुद्ध बुद्धं, तिहुवन गरुवं, अप्प परमप्प तुल्यं।
अव्वाबाह अनंतं, अगुरुलघु स्वयं सहज नंद स्वरूपं॥
रूपातीतं व्यक्त रूपं, विमल गुणनिहि, ज्ञानरूपं स्वरूपं।
तं सम्यक्तं तिष्ठियत्वं, ति अर्थ समयं, संपूर्ण शाश्वत पदं ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ—(तं सम्यक्तं) वह सम्यग्दर्शन निश्चयसे (शुद्ध बुद्धं) शुद्ध, बुद्ध, स्वरूप है (तिहुवन गरुवं) तीन लोकमें श्रेष्ठ है (अप्प परमप्प तुल्यं) जहां अपने आत्माको परमात्माके बराबर (अव्वाबाह) बाधा रहित (अनंतं) अनंत (अगुरु लघु स्वयं) अगुरुलघु मय आप ही अर्थात् बडे छोटेकी कल्पना रहित (सहज नंद स्वरूपं) स्वाभाविक आनन्द स्वरूपी (रूपातीतं) पौद्गलीक रूपसे रहित अमूर्तीक (व्यक्तरूपं) तथापि अनुभवमें प्रगट रूप (विमल गुणनिहि) निर्मल गुणोंकी निधि (ज्ञानरूपं स्वरूपं) तथा ज्ञानाकार स्वभावमय अनुभव किया जाता है (तं सम्यक्तं तिष्ठियत्वं) उसी सम्यक्तभावमें तिष्ठना चाहिये (ति अर्थ समयं) जहां तीन रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय आत्मा (संपूर्ण शाश्वत पदं) पूर्ण और अविनाशी पदमें विराजित झलकता है।

भावार्थ—इस कारिकामें निश्चय सम्यग्दर्शनका अच्छा स्वरूप बताया है। जब किसी भव्य

जीवको अपना ही आत्मा श्री सिद्ध परमात्माके समान शुद्ध बुद्ध अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि गुणमई, बाधा रहित, अगुरु लघु गुणमय, परम निर्विकार अमूर्तीक, सहजानंदमय अनुभवमें आता है तब ही वह निश्चय सम्यक्तका धनी है ऐसा कहा जायगा। सम्पूर्ण व सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई आत्माका सदा अविनाशी स्वरूपमें अनुभव ही निश्चय सम्यक्त है।

सम्यक्तं शांत दांतं, वसति भुवनिहि उड्गामी स्वभावो।
उत्पन्नं णंत रूपं, विमलगुणनिहि स्वयं स्वयमेव तत्त्वं ॥
सम्यक्तं स्थान शुद्धं, निवसति भुवनिहि पंचदीप्ति परस्थितं।
सम्यक्तं ऊर्द्ध ऊर्द्धं, कदलि पुलिनं गगन गमन स्वभावं ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्तं) यह सम्यग्दर्शन निश्चयसे (शांत दांतं) शांतिमय है, इंद्रिय दमन रूप है (वसति भुवनिहिं) इसीमें जगतकी निधि वसती है अर्थात् जगतमें सच्चा भंडार है (उड्ढगामी स्वभावो) ऊर्द्ध गमन स्वभाव है अर्थात् उन्नतिशील स्वभाव है (उत्पन्नं णंत रूपं) जहां अनन्त स्वभाव-आत्माका स्वभाव झलक जाता है (विमल गुणनिहि) निर्मल गुणोंकी खान है (स्वयं स्वयमेव तत्त्वं) आपसे आप ही जहां निज तत्वका अनुभव है (सम्यक्तं स्थान शुद्धं) सम्यक्दर्शन ही शुद्ध स्थान है जहां बैठना चाहिये (निवसति भुवनिहि) यहीं लोककी निधि रहती है (पंच दीप्ति परस्थितं) पांचों परमेष्ठियोंमें बिराजता है (सम्यक्तं ऊर्द्ध ऊर्द्धं) यह सम्यग्दर्शन श्रेष्ठमें श्रेष्ठ है (कदलि पुलिनं) यही कमलके पत्तेपर जल बूंदके समान है (गगन गमन स्वभावं) आकाशमें गमन स्वभाव है। अर्थात् आकाश तुल्य निर्मल भावमें परिणमन स्वभाव है।

भावार्थ—यहां भी निश्चय सम्यग्दर्शनका स्वरूप अच्छा बताया है। जब सर्व इंद्रियोंको व मनको रोककर आप आपमें तिष्ठा जाता है वहीं निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। तब सिद्ध समान आत्माका अनुभव होता है। आपसे आप ही आपमें अपना दर्शन होता है। जिसके भीतर यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न बिराजता है वह बड़ा भारी धनी है। वही सबसे श्रेष्ठ मानव है। वही शुद्ध आत्माकी शुद्ध परिणतिमें रमण करता है। सम्यग्दर्शन मानवके कमलमें बूंदके समान शोभायमान

है। जैसे कमलके पत्तेपर पानीकी बूंद मोतीके समान शोभती है, वैसे यह सम्यग्दर्शन हृदय-कमलमें शोभायमान है, यह सम्यग्दर्शन आकाश समान निर्मल भावमें प्रकाशित होता है।

सम्यक्तं कलश शशिनं, सयलगुणनिहि भुवनवृन्द प्रवंद्यं ।
सम्यक्तं कांति कान्त्यं, त्रिभुवन निलयं ज्योतिरूपस्य कांतिः ॥
तं सम्यक्तं दृष्टिनत्वं, परमपय ध्रुवं शुद्ध बुद्धं चतुष्ठं ।
जोयंतो जोग जुक्तं, समय ध्रुवपदं तत्त्ववेदैः स्ववेद्यं ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्तं कलश शशिनं) सम्यग्दर्शन चन्द्रमाके बिम्ब समान प्रकाशित है (सयल गुणनिहि) सर्व गुणोंकी खान है (भुवनवृन्द प्रवंद्यं) तीन भुवनके प्राणियोंसे वंदनीक है (सम्यक्तं कांति त्रिभुवन निलयं कान्त्यं) सम्यग्दर्शनकी कांति या शोभासे तीन जगतका घर प्रकाशित है अर्थात् सम्यग्दर्शनकी शोभा जगत व्यापी है (ज्योति रूपस्य कांतिः) यह सम्यग्दर्शन परम ज्योतिमय आत्माकी कांति है (तं सम्यक्तं दृष्टिनत्वं) इस सम्यग्दर्शनका अनुभव करना योग्य है (परम पय ध्रुवं) यही अविनाशी उत्तम पद है (शुद्ध बुद्धं चतुष्ठं) जहां शुद्ध बुद्ध चार चतुष्टय आकर विराजते हैं। सम्यग्दृष्टी ही अनंत ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यका स्वामी है (जोग जुक्तं जोयंतो) योगाभ्यासके उपायसे ही सम्यग्दर्शन अनुभवमें आता है (समय ध्रुवपदं) यही आत्माका निश्चय पद है (तत्ववेदैः स्ववेद्यं) तत्वज्ञानियोंके द्वारा स्वयं अनुभवगम्य है।

भावार्थ—यहां भी यही बताया है कि जहां शुद्ध आत्माका तद्रूप अनुभव किया जावे वहीं निश्चय सम्यग्दर्शन है। चन्द्रमाकी कांतिकी उपमा भी घटित नहीं होसकती है। यह तो एक अपूर्व आत्माकी ज्योति है। सम्यग्दृष्टी नारकी, पशु, नीच मानव भी तीन लोकमें वंदनीक है। जिसके पास सम्यक्त है वह अवश्य अविनाशी मोक्षपदका धनी है। वह सिद्धके समान आत्माका स्वाद लेता है।

सम्यक्तं शुद्ध गुणं सार्थं, शुद्ध तत्त्व प्रकाशकं ।
शुद्धात्मा शुद्ध चिद्रूपं, शुद्धं सम्यग्दर्शनं ॥ ३० ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्तं) सम्यग्दर्शन (शुद्ध सार्थं गुणं) शुद्ध आत्मा पदार्थका गुण है (शुद्ध तत्व प्रकाशकं) शुद्ध आत्म-तत्वका प्रकाशक है (शुद्धात्मा शुद्ध चिद्रूपं) यह मानों शुद्ध आत्मा है व शुद्ध चेतना स्वभाव है (शुद्धं सम्यग्दर्शनं) ऐसा यह शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—शुद्ध सम्यग्दर्शन आत्माका ही स्वभाव है–गुण है। मानों वह स्वयं शुद्ध आत्मा ही है। शुद्ध आत्माका उसी रूप श्रद्धान करना व अनुभव करना सम्यग्दर्शन है।

सम्यक्तं साधते भव्यः शुद्ध तत्त्व समाचरतु।
सम्यक्तं यस्य तिष्ठंते, ति अर्थं ज्ञान संजुतं ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ—(भव्यः सम्यक्तं साधते) भव्य जीव ही सम्यग्दर्शनको सिद्ध करता है (शुद्धतत्व समाचरतु) उस सम्यक्तीको शुद्ध आत्मीक तत्वका अनुभव करना योग्य है (यस्य ति अर्थं ज्ञान संजुतं सम्यक्तं तिष्ठंते) उसीके रत्नत्रयमई व ज्ञान सहित सम्यक्त तिष्ठता है।

भावार्थ—निश्चय सम्यग्दर्शनके साथ ज्ञान और चारित्र भी गर्भित है। इसलिये ऐसे सम्यक्तको धारनेवाला भव्यजीव ही होता है। वह अवश्य शुद्धात्माके अनुभवका अभ्यास करता है।

सम्यक्तं उत्पादते भावं, देव गुरु धर्म शुद्धयं।
विज्ञानं जे विजानंते, सम्यक्तं तस्य उच्यते ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्त देव गुरु धर्मं शुद्धयं भावं उत्पादते) सम्यग्दर्शन शुद्ध देव गुरु धर्ममें श्रद्धा उत्पन्न कर देता है (जे विज्ञानं विजानंते तस्य सम्यक्तं उच्यते) जो कोई भेद विज्ञानको समझता है उसीके सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन जिसके होगा वही सच्चे देव गुरु धर्मका श्रद्धावान होगा, वही अरहन्त सिद्ध परमात्माके आत्मीक गुणोंको पहचानकर उनको पूज्यनीय देव मानेगा, वही आत्मरमी वीतरागी परिग्रह रहित साधुको गुरु मानेगा; वही रत्नत्रय स्वरूप धर्मको धर्म मानेगा। सम्यग्दर्शन उसीके कहा जायगा जिसके भीतर भेदविज्ञान हो, जो द्रव्य दृष्टिसे जीवको पुद्गलके सर्व विकारोंसे भिन्न सिद्ध सम शुद्ध अनुभव करता हो।

देव देवाधिदेवं च, देवं त्रिलोक वंदितं ।
ति अर्थं समयं शुद्धं, सर्वज्ञं पंच दीप्तयं ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थ—(देव देवाधिदेवं च) सच्चा देव देवोंका देव अर्थात् इन्द्रादि देवोंसे पूज्यनीक है (त्रिलोक वंदितं देवं) तीन लोकके भक्तोंद्वारा वन्दनीक है (ती अर्थं समयं शुद्धं) वह रत्नत्रय स्वरूप शुद्ध आत्मा है (सर्वज्ञं पंच दीप्तयं) वही सर्वज्ञ है, पांचवें केवलज्ञानकी दीप्ति सहित है ।

भावार्थ—यहां सच्चे देवका स्वरूप बताया है । वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी पूर्णता सहित होता है, उसकी आत्मा कर्म कलंक रहित शुद्ध होती है, उसमें केवलज्ञान प्रकाशमान रहता है, इससे वह सर्वज्ञ होता है । सर्वज्ञ वीतरागी परमात्माको ही सच्चा देव कहते हैं । अरहंत और सिद्धमें ये दोनों गुण मिलते हैं, इसलिये इनहीको देवरूपसे श्रद्धा करके अन्य अल्पज्ञ रागी द्वेषी देवोंकी श्रद्धाको दूर करना चाहिये ।

ॐ वं ऊर्द्ध सद्भावं, परमेष्ठी च संजुतं ।
सर्वज्ञं शुद्ध तत्वं च, विंदस्थानं नमस्कृतं ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वं) ॐकार मंत्र (परमेष्ठी च संजुतं) पांचों परमेष्ठी सहित है (ऊर्द्ध सद्भावं) उत्तम सत्यभावको बतानेवाला है (विंदस्थानं) इसमें जो विंदुका स्थान है वह (नमस्कृतं) नमस्कारके योग्य (सर्वज्ञं शुद्ध तत्वं च) सर्वज्ञ व शुद्ध परमात्म तत्वका प्रकाशक है ।

भावार्थ—ॐ मंत्र अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पांचों पदोंको रखता है । उसके ऊपर जो बिंदु है वही सर्वज्ञ वीतराग देवको झलकानेवाला है ।

परमेष्ठी उत्पन्नं शुद्धं, शुद्ध सम्यक्त संजुतं ।
तस्यास्ति गुण प्रोक्तं च, ज्ञानं शुद्ध समं ध्रुवं ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—(परमेष्ठी शुद्धं उत्पन्नं) अरहंत सिद्ध परमेष्ठी शुद्ध भावको पैदा कर चुके हैं (शुद्ध सम्यक्त संजुतं) उनके शुद्ध सम्यग्दर्शन है (तस्य गुण अस्ति प्रोक्तं च) उन्हींके ही यथार्थ देवपनेका गुण है तथा उन्हींके देवपना कहा भी गया है (ज्ञानं शुद्ध समं ध्रुवं) उन्हींके समता सहित अविनाशी शुद्ध ज्ञान है ।

भावार्थ—ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोंका नाश होनेसे अरहंत व सिद्धका आत्मा अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत बल, शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध चारित्रका स्वामी होजाता है उन्हींके ही परम समतारूप राग द्वेष रहित शुद्ध आत्मीक ज्ञान होता है। आत्मीक गुण सर्व उन्हींके भीतर दीप्तमान होते हैं इसीसे उनको ही देव मानना योग्य है।

पयकमले कद्लं, कदले पुलिनं जं जानुस्थितं पुलिने गगनं
गगने कलशं, तं ऊर्ध्वगुनं, कलशे शशिनं, शशिने भवनं
तं धर्मपदं, परमेष्टि पदं, तं पंचदितं, ध्रुव केवलि उवनं ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(पयकमले कदलं) जैसे जलमें कमलका पत्ता है जलसे स्पर्श नहीं करता है व (कदले पुलिनं) कमलके पतेपर जलकी बूंद है व (पुलिने गगनं) जलकी बूंदके भीतर आकाश है व (जानुस्थितं जं कलशं गगने) जंघापर रक्खा हुआ कलश आकाशमें है (कलशे शशिनं) घडेमें चंद्रमा है (शशिने भवनं) चंद्रमाके विमानमें भवन है उसी तरह (तं ऊर्ध्वगुनं) वह उत्कृष्ट गुणका धारी आत्मा अपने शरीरमें है, शरीरमें रहकर भी शरीरसे भिन्न है (तं धर्मपदं) यही उत्तम पद है (परमेष्टिपदं) यही परमेष्टी पद है (तं पंचदितं) वहीं पांच परमेष्टी पद या पांच ज्ञान प्रकाशित हैं (ध्रुव केवलि उवनं) वही अविनाशी है, वहीं केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ—यह दिखलाया है कि अपना आत्मा ही स्वभावसे परमात्मा है। कर्म व शरीरके भीतर व्यापक होनेपर भी उसी तरह अलग है जैसे जलसे कमलका पत्ता अलग है, व कमलके पत्तेसे उसपर रक्खी जलकी बूंद अलग है व जलकी बूंदसे आकाश अलग है जो उस बूंदमें व उसके चारों तरफ है व अपनी जांघपर रक्खे हुए कलशसे कलश आधार आकाश भिन्न है व घडेमें चंद्रमाका बिम्ब दिखता है। परन्तु घडेसे चंद्रमा अलग है व चन्द्रमाके विमानके आधार चन्द्रभवन है। परन्तु वह चन्द्र विमानसे अलग है। यही अपना आत्मा ही अरहंतादि परमेष्ठी है यही केवलज्ञानका स्थान है।

उत्पाद्यो उपयोगं येन, धर्म सद्भाव संजुतं ।
पदविंदं ध्रुवं नित्यं, उदितं परमं पदं ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(येन) जिस परमात्माने (धर्म सद्भाव संजुतं उपयोगं उत्पाद्यो) धर्ममय स्वभाव सहित उपयोगको प्राप्त कर लिया है उसके (पदविंदं) बिंदुरूप पद (परमं पदं) ऐसा उत्कृष्ट पद (ध्रुवं नित्यं) जो निश्चल व अविनाशी है सो (उदितं) उदय होगया है।

भावार्थ—स्वाभाविक आत्मीक धर्म शुद्धोपयोग है सो उस परमात्माके भीतर बना रहता है। जगतमें उत्कृष्ट पद सिद्धपद है। जो कभी मिटना नहीं औरका और होता नहीं न कभी लोप होता है। तथा यही ॐ मंत्रमें विदित बिंदुसे झलकता है—

पांच परमेष्ठी।

अयं आत्मा तत्वं, ति अर्थ शुद्ध समं ध्रुवं ।
आचरणं शुद्ध सर्वज्ञं, लोकालोकेन लंकृतं ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थ—(अयं आत्मा तत्वं) यही आत्माका स्वभाव (ति अर्थ शुद्ध समं ध्रुवं) रत्नत्रयमई शुद्ध, समतामई तथा ध्रुव है (शुद्ध आचरणं) वहीं शुद्ध चारित्र है (लोकालोकेन लंकृतं सर्वज्ञं) लोक अलोकके ज्ञानसे शोभित वही सर्वज्ञ है।

भावार्थ—परमात्मा तत्व सदा शुद्ध, वीतराग, कर्म बन्ध शून्य व लोकालोक प्रकाशक है, वही परम समतामई भाव है, अमिट है और रत्नत्रयमई है।

ऊर्ध अंध मध्यं च, साधओ शुद्धार्थ ध्रुवं ।
पंच दीप्तिं च उत्पाद्यं, सर्वज्ञं सर्व दर्शितं ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थ—जिसने (ऊर्ध अध मध्यं च) ऊपर नीचे मध्यमें सम्पूर्णपने (ध्रुवं शुद्धार्थ साधओ) निश्चल शुद्ध पदार्थको साधन कर लिया है (सर्वज्ञं सर्व दर्शितं पंच दीप्तिं च उत्पाद्यं) व सर्वज्ञपना सर्व दर्शीपना अर्थात् पंचम केवलज्ञानको उत्पन्न कर लिया है।

ह्रींकारं च स्थिरीभूतं, अर्हंतं सर्व मंगलं ।
लोकालोकं च स्थानं च, पदविंदं केवलं ध्रुवं ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ—(ह्रींकारं) ह्रीं मंत्रमें २४ तीर्थंकर (स्थिरीभूतं) विराजित हैं (अर्हंतं) ये सब अर्हंत परमात्मा हैं (सर्वं मंगलं) सर्व प्रकार मंगल स्वरूप है (लोकालोकं च स्थानं च) लोक अलोक जिनके ज्ञानमें स्थान पारहा है (पदविंदं) बिंदु पदसे लक्षित हैं (केवलं) केवल या असहाय हैं (ध्रुवं) और अविनाशी हैं।

भावार्थ—२४ तीर्थंकर अर्हंत परमात्मा कर्मोपाधि रहित असहाय, अविनाशी पदमें बिराजमान हैं जिनकी भक्ति करनेसे मंगल होता है, पाप कटता है, पुण्यका बन्ध होता है।

सर्वज्ञं सर्वदर्शी च, लोकालोक समं ध्रुवं ।
पंच स्थानमयं शुद्धं, विंद स्थिर समं ध्रुवं ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थ—परमात्मा (सर्वज्ञं सर्वदर्शी च) सर्व पदार्थोंके ज्ञाता व सर्व पदार्थोंके द्रष्टा होते हैं, तथा (लोकालोक समं ध्रुवं) लोक और अलोक जैसे निश्चल है वैसे अपने स्वरूपमें निश्चल हैं (पंच स्थान मयं) पंचम गति मोक्षमें विराजित हैं (शुद्धं) रागादि व कर्मादि रहित शुद्ध हैं (विंद स्थिर समं ध्रुवं) जैसे बिंदु स्थिर है वैसे सदा थिर रहनेवाले हैं।

भावार्थ—यहां सिद्ध परमात्माका वर्णन है। देव, नारक, पशु, मानव चार गति नाशवंत है जब कि पंचम गति, सिद्ध गति अविनाशी है। उसमें विराजित सिद्ध परमात्मा सदा ही अपने वीतराग भावमें स्थिर रहते हैं।

परमेष्ठी च संजुक्तं, ॐवंकारं सिद्धं ध्रुवं ।
बिंदु स्थानेषु तिष्टंते, सुस्थिरं शाश्वतं पदं ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थ—(ॐवंकारं) ॐ मंत्रमें गर्भित (सिद्धं) सिद्ध भगवान (परमेष्ठी च संजुक्तं) परम पदमें विराजित हैं (ध्रुवं) अविनाशी हैं (बिन्दु स्थानेषु तिष्टंते) ॐ मंत्रमें जो बिंदु है उसमें स्थापित हैं। (सुस्थिरं शाश्वतं पदं) सिद्ध पदमें भलेप्रकार निश्चल है और नित्य है।

भावार्थ—उसमें भी सिद्ध भगवानका ही स्तवन है। सिद्ध पद परम पद है यही सिद्ध करने योग्य है-

नन्तानन्त चतुष्टं च, दर्शनं ज्ञान अनन्त यं ।
वीर्यं नन्त सुखं शुद्धं, नन्तानन्त गुणं ध्रुवं ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(नन्तानन्त चतुष्टं च) उन अर्हंत व सिद्ध भगवान सच्चे देवोंमें अनन्त चतुष्टय पाए जाते हैं (दर्शनं ज्ञान अनन्त यं) अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान (वीर्यं नन्त सुखं) अनन्त वीर्य और अनन्त सुख (शुद्धं नन्तानन्त गुणं) और शुद्ध अनन्त गुण हैं (ध्रुवं) ये सब अविनाशी हैं।

भावार्थ—यहां सच्चे देवको ही बताए जारहे हैं। सच्चे देव अर्हन्त व सिद्ध परमात्मा ही हैं। ज्ञानावरण कर्मके नाशसे अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणके क्षयसे अनन्त दर्शन, अन्तराय कर्मके नाशसे अनन्त वीर्य और मोहनीय कर्मके नाशसे अनन्त सुख है। यद्यपि मोहनीय कर्मके नाशसे क्षायिक सम्यग्दर्शन और क्षायिक चारित्र है। तथा चारों ही घातिया कर्मोंके नाशसे अनन्त अतीन्द्रिय सुख है तथापि मोहनीयके उदयसे आत्मीक सुखका विकाश मुख्यतासे नहीं होने पाता है। इसलिये अनन्त सुखकी प्रगटता मोहनीयके नाशसे कही जाती है। इसके सिवाय उनका आत्मा परम शुद्ध होगया है। अतएव उनके भीतर शुद्ध स्वभावमें अनन्त सुख मौजूद है, जिनको कहा नहीं जासक्ता। ये सब गुण सदा ही विकाश करेंगे, कभी इनका क्षय नहीं होगा।

ममात्मा अमलं शुद्धं, ममात्मा शुद्धात्मनं ।
देहस्थोपि अदेही च, ममात्मा परमात्म ध्रुवं ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ—(मम आत्मा अमलं शुद्धं) निश्चयनयसे देखा जावे तो यह मेरा आत्मा भाव कर्म, द्रव्य कर्म, नोकर्म रहित शुद्ध है (ममात्मा शुद्धात्मानं) मेरा आत्मा ही शुद्धात्मा है (देहस्थोपि अदेही च) इस देहके भीतर विराजमान है तथापि मूर्तीक देह रहित अमूर्तीक है (ममात्मा परमात्मा ध्रुवं) यह मेरा आत्मा ही निश्चयसे परमात्मा है।

भावार्थ—परमात्माको पहचाननेका सबसे सुगम उपाय यह है कि हम अपने आत्माके असली स्वरूपको जाने। यदि निश्चय नयसे जो मूल द्रव्यको देखनेवाला है देखा जावे तो इस मेरे आत्मा द्रव्यसे और अरहंत व सिद्ध परमात्मा द्रव्यसे कोई भी गुणोंकी अपेक्षा अंतर नहीं है। जैसे म्यानमें तलवार रहती है वैसे इस शरीरमें विराजित है। तौभी जैसे म्यानसे तलवार जुदी है वैसे ही

शरीरसे यह आत्मा भिन्न है। कर्मोंका शरीर भी सूक्ष्म पुद्गलोंसे बना है। आत्मा जड़ नहीं है चेतन है-अमूर्तीक है इसलिये इसका सम्बन्ध जड़से बिलकुल नहीं है। क्रोधादि विकार भी आत्माके स्वभावमें नहीं हैं। मोहनीय कर्मके उदयसे आत्मामें प्रगट होते हैं। जो कोई अर्हन्त व सिद्ध होता है और अनंत गुणोंका स्वामी होता है वह आत्मा ही तो है। जब पुद्गल कर्मका सम्बन्ध छूट जाता है तब आत्मा ही अपने असली स्वरूपमें झलक जाता है वही परमात्मा या शुद्धात्मा है। इसलिये हमको उचित है कि अपने देहके भीतर ही परमात्मा देवका दर्शन करके मनन करें व उसका ध्यान करें, यही सच्चा परमात्माका अवलोकन है। बाहरी सब उपाय इसी आत्मदर्शनके लिये ही बताए गए हैं।

त्रि अक्षरं च एकत्वं, ॐ नमं पि संजुतं।
नमं नमामि उत्पन्नं, नमाम्यहं विंदुसंजुतं ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थ—(त्रि अक्षरं च एकत्वं) तीन अक्षरोंको एकत्र किया जावे तो (ॐ नमं पि संजुतं) ॐ नमः यह संयोग किया हुआ मंत्र बन जायगा (नमं नमामि उत्पन्नं) नमः शब्दसे नमामि लेना चाहिये (अहं नमामि विंदु संजुतं) मैं बिंदु सहित ॐ पदको नमस्कार करता हूं।

भावार्थ—ॐ नमः मंत्रका जप व ध्यान करनेसे परमात्माका ही जप व ध्यान है।

उपाध्ये गुण प्रोक्तं च, शुद्ध सम्यक्त भावना।
अंग पूर्व जानंते, सार्द्धं च शुद्धात्मनं ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(उपाध्ये गुण प्रोक्तं च) उपाध्याय परमेष्ठीके पचीस गुण कहे गए हैं वे (शुद्धात्मनं च सार्द्धं अंग पूर्व जानंते) शुद्ध आत्माके साथ साथ ग्यारह अंग चौदह पूर्वको जानते हैं (शुद्ध सम्यक्त भावना) उनके शुद्ध सम्यग्दर्शनकी भावना रहती है।

भावार्थ—पांच परमेष्ठीमेंसे उपाध्यायमें यह मुख्यता है कि वे साधु होकर द्वादशांगवाणीको जानते हैं उसका पठन-पाठन करते हैं तथापि निश्चयसे वे शुद्ध आत्माको पहचान कर अपने ही शरीरके भीतर अपने ही आत्माको परमात्माके समान अनुभव करते हैं वे निश्चय सम्यग्दर्शनकी भावनामें तल्लीन रहते हैं।

श्रुतज्ञान ।

अर्थागं तिअर्थं शुद्धं च, समयं पूर्ण साधयं ।
शुद्धं तत्वं च सर्द्धन्ते, अर्थं च विंजनं पदं ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थ—(अर्थागं तिअर्थं शुद्धं च) द्वादशांगका प्रयोजन यह है कि शुद्ध रत्नत्रयको जाना जावे (समयं पूर्ण साधयं) समय अर्थात् आत्माको पूर्ण रूपसे साधन किया जावे। अंग पूर्वका ज्ञाता (अर्थं च विंजनं पदं च शुद्ध तत्वं च सर्द्धन्ते) शास्त्रके शब्दोंको, पदोंको और उनके अर्थको तथा निश्चयसे शुद्धात्माको श्रद्धानमें रखता है।

भावार्थ—११ अङ्ग १४ पूर्वके जाननेका सार यह है कि हम मोक्षमार्गको अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रको व्यवहारनय तथा निश्चयनयसे यथार्थ जानें और यथार्थ ज्ञानके द्वारा अपने आत्माकी पूर्णता होनेका साधन करें। जिस तरह वह अंग पूर्वका ज्ञाता शब्द, पद, वाक्यको व उनके भावको यथार्थ समझता है वैसे वह शुद्धात्माको भी समझकर अपने श्रद्धानमें पक्का रखता है।

श्रुतांगं श्रुत जानाति, शाश्वतं अस्तितं श्रुतं ।
ज्ञानेन ज्ञान सद्भावं, श्रूयते शाश्वतं पदं ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थ—(श्रुतांगं श्रुत जानाति) श्रुतज्ञान मय द्वादशांग सर्व श्रुतज्ञानको जानता है (जो श्रुतं शाश्वतं अस्तितं) जो श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा सुना गया है व जो सदा अपने अस्तित्वको रखता है (ज्ञानेन ज्ञान सद्भावं शाश्वतं पदं श्रूयते) श्रुतके द्वारा अपने ज्ञानसे ज्ञान स्वभावी अविनाशी मोक्षपदको या निजपदको सुना जाता है या जाना जाता है।

भावार्थ—जो कुछ अर्हंत भगवान अपनी दिव्य वाणीसे उपदेश करते हैं उसीको सुनकर गणधरादि द्वादशांग श्रुतमें रचते हैं। यह श्रुत या श्रुतका ज्ञान भी प्रवाहकी अपेक्षा सदासे चला आया है क्योंकि सदा ही तीर्थंकर कहीं न कहीं होते रहते हैं। उनका उपदेश होता है व द्वादशांगका निर्माण होता है। सर्व शास्त्रके पढनेका व समझाए जानेका हेतु यह है कि हम अपने ज्ञानके द्वारा अपने शुद्धात्माके स्वभावको समझें और मोक्षपदका निर्णय करके उसकी प्राप्तिका उपाय करें।

शब्दार्थं शब्द वेदंते, व्यंजनं पद विंदते ।
अप्पा परमप्पयं तुल्यं, शब्द ज्ञान प्रयोजनं ॥४९॥

अन्वयार्थ—(शब्द शब्दार्थं वेदंते) शब्दोंसे शब्दार्थका बोध होता है (व्यंजनं पद विंदते) शब्दोंसे पद जाना जाता है (अप्पा परमप्पयं तुल्यं) आत्मा परमात्माके बराबर है यह जानना ही (शब्द ज्ञान प्रयोजनं) शास्त्र ज्ञानका मतलब है।

भावार्थ—शब्द वे ही हैं जिनसे कुछ अर्थ निकले। उन सार्थ शब्दोंको मिलाकर पद बनते हैं, पदोंके समूहको शास्त्र कहते हैं। ऐसे श्रुतज्ञानके जाननेका प्रयोजन वास्तवमें यही है कि हम अपने आत्माका द्रव्यदृष्टिसे परमात्माके बराबर वीतराग विज्ञानमई अनुभव करें। उसे रागी, द्वेषी व संसारी न अनुभव करें। यही हमारा अनुभव कार्यकारी है क्योंकि इसीके प्रतापसे आत्मा कर्मोंसे छूटकर परमात्मा होता है।

अष्टांगं शुद्ध स्थानं च, पंच दीप्ति निरूपणं ।
ज्ञान पंच उत्पायंते, स्थानं सर्वज्ञ संजुतं ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—(अष्टांगं) आठ अंग सहित (शुद्ध स्थानं च) शुद्ध ज्ञानका अभ्यास करना (पंच दीप्ति निरूपणं) पंच दीप्ति अर्थात् पांच परमेष्ठी पद या पांच ज्ञानका प्रगट करनेवाला है (ज्ञान पंच उत्पादंते) इसीसे पंचमज्ञान केवलज्ञान पैदा होता है (सर्वज्ञ संजुतं स्थानं) सर्वज्ञपनेके साथ जो स्थान है वही ज्ञानका पूर्ण स्थान है।

भावार्थ—श्रुतज्ञानका ऊपर महात्म्य कहा है इस श्रुतज्ञानका अभ्यास नीचे लिखे प्रमाण आठ अंग सहित यथार्थ करना चाहिये। इसी अभ्यासके करनेसे पांच दीप्ति या पांच परमेष्ठी पद प्रगट होंगे। व इसीसे ज्ञानका अंतिम स्थान केवलज्ञान प्रकाशित होगा। पांच दीप्तिसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान व केवलज्ञान भी लेसक्ते हैं। प्रयोजन यह है कि भाव श्रुतज्ञान आत्मानुभव स्वरूप है यही सर्व ऋद्धि सिद्धिका कारण है व करने योग्य है।

ग्रन्थार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधानं च। बहुमानेन समन्वितमनिन्हवं ज्ञानमाराध्यम् ॥ ३६ ॥ पुरु०

(१) ग्रन्थका शुद्ध उच्चारण, (२) अर्थका शुद्ध करना, (३) उभय-ग्रंथ और अर्थ दोनोंका शुद्ध पढना, (४) काले-योग्य कालमें शास्त्र पढना, (५) विनयके साथ पढना, (६) सोपधानं-धारण करते हुए पढना, (७) बहुत मान करते हुए-आदरसे शास्त्रको विराजमान करके पढना, (८) अनिन्हव-अर्थात् अपने गुरुका व अपने जाने हुए ज्ञानका न छुपाना।

सम अंग शुद्धं च, व्रतं च समय संजुतं।
ॐ वं ह्रीयं श्रियं शुद्धं, ध्यानारूढ समं ध्रुवं ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—(वय सम अंग शुद्धं च) आयुकी मर्यादाके बराबर अंगकी शुद्धि होना उचित है (व्रतं च समय संजुतं) चारित्र वही शुद्ध है जो आत्मीक अनुभव सहित है या स्वसमय मई स्वरूपाचरण सहित है। (ॐ वं ह्रीयं श्रियं शुद्धं) ॐ, ह्रीं, श्रीं मंत्रकी शुद्धि तब ही है जब (ध्यानारूढ समं ध्रुवं) निश्चल समतारूपसे ध्यानमें लीन रहा जावे।

भावार्थ—मानवकी शोभा यही है जो वह अपनी आयुके अनुसार अपने शरीरको रक्खे। अर्थात् जबतक विद्याभ्यास करे, कुमार अवस्था रहे तबतक ब्रह्मचर्य पाले। सादे योग्य वस्त्र पहने, अंगको शुद्ध रक्खे। युवानवयमें गृहस्थ होकर गृहस्थके योग्य शरीरका आचरण करे मर्यादाका पहनावा व वर्ताव रक्खे। वृद्धावस्थामें शरीरको ब्रह्म लीन वैराग्य पूर्ण सादा रक्खे। इसी तरह व्रत या चारित्रकी शुद्धि तब ही है जब आत्माका अनुभव करता रहे। इसी तरह श्रुतज्ञानके ॐ ह्रीं श्रीं मंत्रोंका जप व ध्यान तब ही कार्यकारी है जब निश्चल आत्म-ध्यानमें लीन रहे व समभावमें वर्ते।

व्यंजनं पद शुद्धं च, विज्ञानं ज्ञान जोइते।
रत्नत्रय मयं शुद्धं, साधनं उपदेशनं ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ—(व्यंजनं पद शुद्धं च विज्ञानं ज्ञान जोइते) शुद्ध शब्द व पदोंके विशेष ज्ञानसे ज्ञानका प्रकाश होता है (रत्नत्रय मयं शुद्धं साधनं उपदेशनं) उसीमें रत्नत्रयमई शुद्ध आत्म तल्लीनता रूप मोक्ष-मार्गका साधन है ऐसा उपदेश किया गया है।

भावार्थ—शास्त्रमें जब शुद्ध शब्द व पदोंको पढकर ज्ञान प्राप्त किया जायगा तब उस ज्ञानसे

ज्ञानका प्रकाश होगा। तब हमें मालूम होगा कि शास्त्रमें यही उपदेश है कि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्माकी एकता ही मोक्षका मार्ग है।

समय सम्पूर्ण सार्धं च, तिअर्थं च ऊर्धं पदं।
पंच दीप्तिं च शुद्धं च, ज्ञानं चरण दर्शनं ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ—(समय सम्पूर्ण सार्धं च) सर्व शास्त्रका सार प्रयोजन यह है कि उसमें (तिअर्थं) तीन पदार्थ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका वर्णन हो (च ऊर्धं पदं) और उत्कृष्ट पद जो सिद्ध पद उसका कथन हो (पंच दीप्तिं च) पांच दीप्ति अर्थात् पांच परमेष्ठी या पांच ज्ञानोंका कथन हो (शुद्धं च ज्ञानं चरण दर्शनं) तथा शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका वर्णन हो।

भावार्थ—शास्त्रका रचनेका, पढने पढानेका सार मतलब तब ही निकलेगा जब उससे व्यवहार नयसे तथा निश्चयनयसे कथन किये हुए मोक्षमार्गका ठीक२ स्वरूप विदित हो। मुख्यतासे परमात्माके पदका बोध हो। पांचों परमेष्ठीका स्वरूप मालूम हो। मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय तथा केवलज्ञानका भेद समझमें आवे।

नन्तानन्त दृष्टी च, नन्त चतुष्टयं ध्रुवं।
सादि अनादि शुद्धिं च, आत्मानं परमात्मानं ॥ ५४ ॥

अन्ववार्थ—(नन्तानन्त दृष्टी च) अनन्त या क्षायिक सम्यग्दर्शन (ध्रुवं नन्त चतुष्टयं) अविनाशी व अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त बल व अनन्त सुख (सादि अनादि शुद्धिं च) और सादि या अनादि सम्बन्ध रखनेवाले कर्मोंकी शुद्धि (आत्मानं परमात्मानं) तथा आत्मा और परमात्माका कथन जिसमें हो वही आगम है।

भावार्थ—आगमका प्रयोजन यही है जिससे हमें निर्मल व क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका ज्ञान हो। यह सम्यक्त कभी छूटता नहीं, अनन्तानन्त काल तक रहता है। जिससे हमें अनन्त चार चतुष्टयकी प्राप्तिका बोध हो, जिससे हमें उन आठों कर्मोंके नाशका उपाय मालूम हो जिनका संबंध इस जीवके साथ प्रवाह या सन्तानकी अपेक्षा अनादि है, किंतु संयोग या वियोग होते रहनेकी

अपेक्षा सादि है। तथा संसारी आत्मा व परमात्माका भेद मालूम पड़े कि यद्यपि व्यवहारनयसे इन दोनोंमें भेद है, परन्तु निश्चयनयसे आत्मा तथा परमात्मा समान है।

नन्त रंग तरलं अंगं, शुद्धं जिन उक्त सार्थयं।
शद्ध तत्वं समं शुद्धं, विमलं निर्मलं ध्रुवं ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ—(नन्त रंग तरलं अंगं) अनन्त रंगोंकी तरंगोंसे जो आगम भरपूर है। अर्थात् जिसमें अनन्त नयोंकी या अपेक्षाओंकी दृष्टिसे कथन नानाप्रकार किया गया हो (शुद्धं) जो पूर्वापर विरोध आदि दोषोंसे रहित हो वही आगम (जिन उक्तं सार्थयं) जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ प्रयोजनवान है। उसी शास्त्रमें (शुद्ध तत्वं समं शुद्धं विमलं निर्मलं ध्रुवं) शुद्ध आत्मीक तत्वका कथन है जो समतारूप है, सर्व प्रकार रागादि दोषोंसे रहित है व द्रव्य कर्म नोकर्मसे शून्य है।

भावार्थ—जिन भगवानके कहे हुए आगमको स्याद्वाद इसीलिये कहते हैं कि उसमें अनन्त स्वभावधारी वस्तुका स्वरूप भिन्न २ अपेक्षाओंसे अनेक प्रकार कहा गया है। जैसे समुद्रकी शोभा तरंगोंसे है वैसे आगमकी शोभा नानाप्रकार नयोंके द्वारा कथनसे है। मुख्यतासे उस आगममें शुद्ध आत्मीक तत्व दर्शाया हो जो पूर्णपने निर्मल है व निश्चल अविनाशी है।

पर समय अंग शुद्धं च, परम तत्वं च सार्थयं।
तत्वं काय पदार्थं च, द्रव्यं शुद्धं समं ध्रुवं ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ—(पर समय) उत्कृष्ट आत्मा (अंग शुद्धं च) यही शुद्ध द्वादशांगका सार है। द्वादशांगमें (तत्वं) सात तत्व, (काय) पांच अस्तिकाय (पदार्थं च) नौ पदार्थ (द्रव्यं) छः द्रव्य (सार्थयं च) और प्रयोजनभूत (परम तत्वं) उत्कृष्ट तत्व (शुद्धं समं ध्रुवं) जो शुद्ध है समतारूप है तथा अविनाशी है उनका वर्णन है।

भावार्थ—द्वादशांग वाणीमें जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंका, पुण्य पाप मिलाकर नौ पदार्थोंका, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल इन छः द्रव्योंका व काल रहित पांच अस्तिकायोंका कथन है। तथा साथ ही परम शुद्ध साम्यभाव रूप अविनाशी परमात्म तत्वका कथन है। द्वादशांग वाणीका सार तो यही परमात्मा ही है—

श्रुतं च शुद्धं सार्थं च, अर्थांगं ऊर्ध्वं जुतं ।
ऊर्ध्व अर्ध मध्यं च, त्रिभुवनं विंद संयुतं ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थ—(श्रुतं) द्वादशांग श्रुतज्ञान (शुद्धं सार्थं च) दोष रहित है व अर्थ पूर्ण है (अर्थांगं ऊर्ध्वं जुतं) द्वादशांग वाणीके अर्थका एक अंग उत्कृष्ट परमात्मा है उसके साथ ही उसका वर्णन है (ऊर्ध्वं अर्ध मध्यं च) ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मध्यलोक (त्रिभुवनं) ऐसे तीन लोकका स्वरूप बतानेवाली है (विंद संयुतं) तथा विंद जो सिद्धपद उस करके सहित है। अर्थात् सिद्ध भगवानको मुख्यतासे झलकानेवाली है।

भावार्थ—द्वादशांगके मुख्य वक्ता सर्वज्ञ वीतराग भगवान है। अतएव उस वाणीके कथनमें कोई दोष नहीं है व सर्व ही कथन सार्थक है, निरर्थक नहीं है। तीन लोकके सर्व पदार्थोंको कथन करनेवाली है, मुख्यतासे परमात्म तत्वको बतानेवाली है।

अग पूर्व जानाति, भावनं शुद्ध भावना ।
शुद्धात्मा चेतनं नित्यं, शुद्धं सार्थं सदा बुधैः ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थ—(सदा बुधैः) सदा ही विद्वान लोग (अंग पूर्व जानाति) ग्यारह अंग चौदह पूर्वको जानते हुए (शुद्ध भावना भावनं) शुद्ध भावनाओंको विचारते रहते हैं (शुद्धात्मा चेतनं नित्यं शुद्धं सार्थं) साथमें चैतन्य स्वरूप अविनाशी शुद्ध पदार्थ शुद्धात्माकी भावना अवश्य करते हैं।

भावार्थ—द्वादशांग वाणीका ज्ञान प्राप्त करके विद्वानोंको योग्य है कि संसार देह भोगोंसे वैराग्यकी वृद्धिके लिये वे शुद्ध बारह भावनाओंको चिन्तवन करते रहें, साथमें अपने ही शुद्ध चैतन्य रूप अविनाशी आत्माकी भी भावना करते रहें, क्योंकि यही द्वादशांगका सार है।

शुद्ध सम्यग्दर्शनका स्वरूप ।

शुद्धं च सर्व शुद्धं च, सर्वज्ञं शाश्वतं पदं ।
शुद्धात्मा शुद्ध ध्यानस्य, शुद्धं सम्यग्दर्शनं ॥ ५९ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्धं च सर्व शुद्धं च) शुद्ध सर्व पदार्थोंमें शुद्ध एक (सर्वज्ञं शाश्वतं पदं) सर्वज्ञ स्वरूप अविनाशी पद है। वही (शुद्ध ध्यानस्य शुद्धात्मा) शुद्ध ध्यानका विषयभूत ध्येय शुद्धात्मा है। शुद्धात्माका ध्यान ही (शुद्धं सम्यग्दर्शनं) शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—शुद्ध मूल भूत, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इन छः द्रव्योंके भीतर एक सर्वज्ञ वीतराग अविनाशी शुद्धात्माका पद ही सार है। निर्मल धर्मध्यान व शुक्लध्यानका यही मुख्य ध्येय है। जहां शुद्धात्माका अनुभव है वहीं निश्चय सम्यग्दर्शन है। निश्चय सम्यक्त निश्चय सम्यग्ज्ञान व निश्चय सम्यक्चारित्रमई ज्ञान शुद्धात्मा है। जो शुद्धात्मानुभव करनेवाले हैं वे ही मोक्षमार्गी हैं व वे ही रत्नत्रय स्वरूपको पानेवाले हैं।

पूर्वं पूर्वपरं जिनोक्त परमं, पूर्वं परं शाश्वतं। पूर्वं धर्मधुरा धरंति मुनयो, शुद्धं च शुद्धात्मनं ॥
शुद्धं सम्यग्दर्शनं च समयं, प्रोक्तं च पूर्वं जिनं। ज्ञानं चरण समं स्वयं च अमलं सम्यक्तबीजं बुधैः ॥ ६०

अन्वयार्थ—(पूर्वं) चौदह पूर्व जो जिनवाणीके भेद हैं (पूर्वपरं) अत्यन्त प्राचीन हैं (जिनोक्त) जिन भगवानके कहे हुए हैं (परमं पूर्वपरं शाश्वतं) ये उत्कृष्ट पूर्व परम अविनाशी हैं (मुनयो पूर्वं धर्मधुरा च शुद्धं च शुद्धात्मनं धरंति) मुनिगण पूर्वोंके ज्ञान रूपी धर्मकी धुराके रूपमें निर्मल शुद्धात्माको धारण कर लेते हैं यही शुद्धात्माका अनुभव (शुद्धं सम्यग्दर्शनं) शुद्ध व निश्चय सम्यग्दर्शन है (च समयं) यही आत्मा है (पूर्वं जिनं प्रोक्तं च) प्राचीनकालसे ही जिनेन्द्रोंने ऐसा कहा है-(ज्ञानं चरणं समं) ज्ञान और चारित्रके साथ (स्वयं च अमलं) स्वयं ही यह आत्मा निर्मल है। यही आत्मज्ञान (सम्यक्तबीजं) सम्यग्दर्शनका बीज है (बुधैः) विचारवानोंके द्वारा यही जानने योग्य है।

भावार्थ—पहले कुछ श्लोकोंमें ग्रन्थकर्ताने अंग रूप जिनवाणीका सार शुद्धात्माका ज्ञान या अनुभव ही बताया था। अब इस श्लोकमें १४ पूर्वकी तरफ संकेत है। ये अनादिकालसे चले आए

हुए हैं, यद्यपि जिनेन्द्रके द्वारा कहे हुए हैं। जो साधुगण पूर्वोंको जानते हैं, वे अवश्य निर्मल शुद्धात्माको जानते हैं, शुद्धात्माका श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र निश्चयसे एक शुद्धात्मा ही है। यही आत्मज्ञान सम्यग्दर्शनको प्रगट करनेके लिये बीजके समान है ऐसा बुद्धिमानोंने कहा है।

विश्व पूर्वं च शुद्धं च, शुद्ध तत्वं समं ध्रुवं ।
शुद्धं ज्ञानं च चरणं च, लोकालोकं च लोकितं ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थ—(विश्व पूर्वं च शुद्धं) सर्व ही चौदह पूर्व शुद्ध व दोष रहित हैं (शुद्धतत्वं समं ध्रुवं) शुद्ध आत्मीक तत्वको साम्यरूप व नित्य बताते हैं (शुद्ध ज्ञानं च चरणं) शुद्ध ज्ञान व शुद्ध चारित्रका उपदेश करते हैं (लोकालोकं च लोकितं) तथा लोक और अलोकके स्वरूपको दिखलानेवाले हैं।

भावार्थ—चौदह पूर्वोंमें जो कुछ कथन है सो सर्व दोष रहित है। उनका भी सार यही है कि निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान व निश्चय सम्यक्चारित्र एक शुद्धात्मतत्व है, उसका कथन उसमें किया गया है व लोकालोक जिन छः द्रव्योंसे रचित है उनका भी यथार्थ कथन है।

लोकितं शुद्ध तत्वं च, शुद्ध ध्यान समागमं ।
विश्वलोकं ति अर्थं च, आत्मनं परमात्मनं ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्धतत्वं च लोकितं) चौदह पूर्वोंमें शुद्ध तत्वोंको दिखाया गया है (शुद्ध ध्यान समागमं) शुद्ध ध्यानकी प्राप्तिका उपाय बताया गया है (विश्वलोकं) सर्व लोकके स्वरूपको (तिअर्थं) तीन पदार्थ अर्थात् रत्नत्रय धर्मको व (आत्मनं परमात्मनं) आत्मा तथा परमात्माको बताया गया है।

भावार्थ—११ अंग, १४ पूर्वोंके नाम व उनका स्वरूप श्री तारणतरण श्रावकाचारसे जानना योग्य है। यहां यह बताया है कि १४ पूर्वोंके भी ज्ञानका समुच्चयसार यही है जो शुद्ध तत्वको जानकर शुद्ध ध्यान किया जावे, आत्माको परमात्मपदमें पहुंचाया जावे व परमानन्दका लाभ लिया जावे।

अस्तित्वं अस्ति शुद्धं च, आत्मनः परमात्मनः ।
परमात्मा परमं शुद्धं, अप्पा परमप्प समं बुधैः ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थ—(आत्मनः परमात्मनः शुद्धं अस्तित्वं च अस्ति) आत्मा और परमात्माका शुद्ध स्वाभाविक अस्तित्व बना रहता है (परमात्मा परमं शुद्धं) परमात्मा परम शुद्ध आत्माको कहते हैं। (आत्मा परमप्प समं) आत्मा परमात्माके समान निश्चयसे है (बुधैः) बुद्धिमानोंने ऐसा कहा है।

भावार्थ—यहां यह दिखाया है कि संसारी आत्मा तथा परमात्मा-दोनोंका अस्तित्व या दोनोंकी सत्ता कभी नाश नहीं होती है। स्वाभाविक शुद्ध गुणोंकी सत्ता दोनोंमें सदा रहती है। निश्चयसे दोनों ही बराबर हैं। आत्मा सो परमात्मा-परमात्मा सो आत्मा। व्यवहारमें अंतर इतना है कि परमात्मा कर्म रहित शुद्ध है जब कि संसारी आत्मा कर्म सहित अशुद्ध है।

नास्ति घातिकर्माणः नास्ति शल्यं च रागयं।
दोषं नास्ति मलं युक्तं, नास्ति कुज्ञान दर्शनं ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थ—(घातिकर्माणः नास्ति) परमात्माके चार घातीय कर्म नहीं हैं (शल्यं च नास्ति) तीन शल्य नहीं हैं (च रागयं दोषं नास्ति) न रागद्वेष हैं (मलं युक्तं) सर्व मलसे रहित हैं (कुज्ञान दर्शनं नास्ति) न मिथ्याज्ञान है न मिथ्या मार्गका उपदेश है।

भावार्थ—परमात्मा-मुख्यतासे अरहंत परमात्मा उसे कहते हैं जिसके ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म, मोहनीय कर्म तथा अन्तराय कर्म इन चार घातीय कर्मोंका अभाव है। इनके नाश होनेसे अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र तथा अनन्त वीर्य प्रगट होगया है। न उनके माया, मिथ्या, निदान ये तीन शल्य हैं न कुछ भी रागद्वेष है, वे परम वीतराग हैं। उनके १८ मल या दोष नहीं हैं। श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है—

क्षुत्पिपासाजरातंकजन्मांतकभयस्मयाः। न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिसके क्षुधा, तृषा, जरा, मरण, जन्म, रोग, भय, गर्व, राग, द्वेष, मोह, चिंता, खेद, स्वेद, निद्रा, आश्चर्य, मद, अरति ऐसे १८ दोष नहीं हैं न जिसके अन्य कोई शारीरिक व मानासिक मल है न जिसके कोई मिथ्याज्ञान है और न जिसका उपदेश कभी मिथ्या होता है, वह आप्त है।

प्रज्ञा अपूर्व शुद्धं च, परमज्ञान समागमं।
परमात्मा परमं शुद्धं, शुद्धं ध्यान समं बुधैः ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थ—(अपूर्वं शुद्धं च प्रज्ञा) परमात्माके भावोंमें अपूर्व अर्थात् उत्तम व शुद्ध प्रज्ञा या भेद विज्ञान है (परमज्ञान समागमं) इसीसे उत्कृष्ट केवलज्ञानका प्रकाश हुआ है (परमात्मा परमं शुद्धं) परमात्मा परम शुद्ध है (शुद्ध ध्यान समं बुधैः) शुद्ध ध्यानके समान है। अर्थात् शुद्ध आत्मीक ध्यानमय है ऐसा बुद्धिमानने कहा है।

भावार्थ—भेदविज्ञान ही केवलज्ञानका कारण है। जिस विवेक ज्ञानसे आत्माको सर्व पर द्रव्य परभाव व रागादि विभावोंसे भिन्न जैसा वह है वैसा ही जाना जावे उस ज्ञानको प्रज्ञा या भेद विज्ञान करते हैं। उत्तम व निर्दोष प्रज्ञाके द्वारा ही अरहंत भगवानने केवलज्ञान प्रकाशित किया है। परमात्माका आत्मा बिलकुल शुद्ध वीतराग है, वहां शुद्ध आत्मीक ध्यान है। आत्मा आत्मामें ही समभावसे तल्लीन है। शुद्ध ध्यानका जो स्वरूप है वही परमात्माका निश्चल आकार है। बुद्धिमानोंने ऐसा कहा है व निश्चय किया है। जो अपना हित चाहें उनको उचित है कि ऐसे ही परमात्माका भजन व पूजन करें। इस श्लोकमें ज्ञानप्रवाद पूर्वकी ओर लक्ष्य है, इसके पहले दो श्लोकोंमें अस्ति नास्ति पूर्वकी तरफ लक्ष्य है।

प्रत्याख्यानं च पूर्वं च, परोक्षं प्रत्यक्षं ध्रुवं।
परत्यक्षं अमलं शुद्धं, कर्म क्षिपति बुधजनैः ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थ—(प्रत्याख्यान पूर्वं च) प्रत्याख्यान नामा पूर्वमें परवस्तुके त्यागका वर्णन है (परोक्षं प्रत्यक्षं ध्रुवं) यह त्याग परोक्ष व प्रत्यक्ष दो प्रकारका है, जिसमें प्रत्यक्ष त्याग निश्चय त्याग है (परत्यक्षं अमलं शुद्धं) प्रत्यक्ष त्याग निर्मल शुद्ध है (बुधजनैः कर्म क्षिपति) यह बुद्धिमानोंके कर्मोंका क्षय करता है।

भावार्थ—चौदह पूर्वोंमें प्रत्याख्यान नामके पूर्वमें पापोंका त्याग कैसे हो इसका यम नियम रूपसे कथन है। यह त्याग दो तरहका है—एक परोक्ष या व्यवहार प्रत्याख्यान दूसरा प्रत्यक्ष या निश्चय प्रत्याख्यान। व्यवहार त्यागमें आहार त्याग, रस त्याग आदि किया जाता है उससे पुण्य कर्मका मुख्यतासे बंध होता है। निश्चय प्रत्याख्यानमें केवल अपने एक शुद्धात्माका और सर्व पर पदार्थोंका त्याग किया जाता है। जिससे आत्मानुभव पैदा होजाता है। यही वह ध्यानकी अग्नि है जिससे भेद ज्ञानी महात्माओंके कर्मोंका क्षय होता है।

नंतानंत स्वयं दृष्टं, धरयंति धर्म ध्रुवं ।
धर्म शुक्लं च ध्यानं च, शुद्ध तत्वं साध्यं बुधैः ॥ ६७ ॥

अन्वयार्थ—(बुधैः शुद्ध तत्वं साध्यं) बुद्धिमान भेदज्ञानी शुद्ध आत्मतत्वका साधन करते हैं वही (धर्मं शुक्लं च ध्यानं च) धर्मध्यान व शुक्लध्यानका अभ्यास है उस ध्यानमें (नंतानंत स्वयं दृष्टं) अनंतानंत गुणोंका धारी आत्मा स्वयं अनुभवमें आता है (धरयंति धर्मं ध्रुवं) जो ध्यान निश्चय आत्मधर्ममें स्थापित किया है ।

भावार्थ—ज्ञानीजन धर्मध्यान व शुक्लध्यान दोनोंमें पर पदार्थसे विमुख होकर एक अपने शुद्ध आत्मध्यानका अभ्यास करते हैं यही वास्तवमें मोक्षमार्ग साधक धर्म है, जो साधकको निज स्वाभाविक अनंत गुणोंके धारी आत्मामें स्थापित कर देता है ।

वेदंते वेद वेदांगं, वेदंते भुवनत्रयं ।
अर्थं रत्नत्रयं शुद्धं, विद्यमानलोकं ध्रुवं ॥ ६८ ॥

अन्वयार्थ—आत्मीक श्रुतज्ञान विद्या या केवलज्ञान विद्या (वेद वेदांगं वेदंते) द्वादशांग वेद व उसके अंग प्रत्यंगको जानता है । (भुवनत्रयं वेदंते) तीन भुवनको जानती है (रत्नत्रयं शुद्धं अर्थं) रत्नत्रयमई शुद्ध आत्मपदार्थको तथा (ध्रुवं विद्यमान लोकं) निश्चल अस्तिरूप इस जगतको भी जानता है ।

भावार्थ—यहां विद्यानुवाद पूर्वपर संकेत है । यह श्रुतज्ञान सर्व विद्याओंको व उनके भेदोंको जानता है तथा तीनलोकका स्वरूप जानता है । तथा लोकके भरे हुए जीवादि छः द्रव्योंको जानता है । विशेष करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई आत्मतत्वको जानता है ।

अनोकर्ममलं शुद्धं, वारंवारं च सार्थयं ।
शुद्धतत्त्व दर्शनं नित्यं, आत्मनं परमात्मनं ॥ ६९ ॥

अन्वयार्थ—तत्वज्ञानी महात्मा (अनोकर्म) नोकर्म अर्थात् शरीर रहित (अमलं) कर्म मल रहित (शुद्धं) शुद्ध (सार्थयं च) पदार्थको ही अर्थात् (आत्मनं परमात्मनं शुद्ध तत्वं नित्यं वारंवारं दर्शनं च) आत्मा या परमात्मामई शुद्ध तत्वका ही नित्य वारवार दर्शन करते हैं ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी महात्मागण अपने ध्यानमें कभी परमात्माको लेते हैं कभी अपने आत्माको लेते हैं। वे इस अपने शुद्ध तत्वको या पदार्थको शरीरादि रहित व आठ कर्ममल रहित वार-वार सदाकाल अपने अनुभवमें लेते हैं। धारावाही आत्माका अनुभव ही मोक्षका उपाय है।

कल्यानं कल्पयं शुद्धं, पूर्व कल्पंति शाश्वतं।
ज्ञानमयं च तत्वार्थं, कल्यानं ध्यान संजुतं ॥ ७० ॥

अन्वयार्थ—(कल्यानं कल्पयं पूर्वं) कल्यान प्रवाद पूर्व (शुद्ध शाश्वतं ज्ञानमयं च तत्वार्थं कल्यानं ध्यान संजुतं कल्पंति) शुद्ध अविनाशी ज्ञानमई निश्चय तत्वको जो कल्यानकारक है व ध्यान सहित है उसको बताता है।

भावार्थ—कल्यानप्रवाद पूर्वमें तीर्थंकरोंके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण, इन पांच कल्याणकोंका व्यवहार नयसे कथन है। यहां निश्चय पर लगाकर कहते हैं कि निश्चय नयसे वह पूर्व आत्मकल्याणका मार्ग ही बताता है कि ध्यानमें एकतान होकर शुद्ध ज्ञानमई अविनाशी आत्माका अनुभव किया जावे।

मध्यस्थान मयं रूपं, पद विंदं च विंदते। त्रिलोकं अर्थं शुद्धं, ज्ञानं चरणं तं ध्रुवं ॥ ७१ ॥
सम्यक्तं च समयं शुद्धं, पंच दीप्ति समं पदं। त्रिलोकं त्रिभुवनं अर्थं अप्पा परमप्पयं ध्रुवं ॥७२॥

अन्वयार्थ—(त्रिलोकं) त्रिलोक बिंदुसार पूर्व (मध्यस्थान मयं रूपं पद विंदं च विंदते) मध्यमस्थानमई पदोंको रखनेवाला है। इसके ११॥ करोड मध्यम पद हैं। यह पूर्व (त्रिलोकं अर्थं) तीन लोकके पदार्थोंको (शुद्धं ध्रुवं तं ज्ञानं चरणं सम्यक्तं च) शुद्ध निश्चय ज्ञान चारित्र व सम्यग्दर्शनको (शुद्धं समयं) शुद्ध आत्माको (पंच दीप्तिसमं पदं) पांच परमेष्ठियोंके समभाव रूपी पदको (त्रिभुवनं अर्थं) तीन लोककी पर्यायोंको (ध्रुवं अप्पा परमप्पयं) निश्चय आत्मा व परमात्माको बताया है।

भावार्थ—यहांपर त्रिलोक बिंदुसार पूर्वपर संकेत है। इसमें व्यवहारनयसे तीन लोकका वर्णन है, निश्चयनयसे इसमें भी तीन लोकके छः द्रव्योंका यथार्थ स्वरूप कहकर उनमें शुद्ध आत्मा तथा

परमात्माका स्वरूप ही बताया है। प्रयोजन यह है कि इस पूर्वके पढ़नेका भी फल यही है कि शुद्धात्माका अनुभव किया जावे।

मध्यं च पद विंदं च, पदार्थं पद वेदन्ते।
व्यंजनं पदार्थं शुद्धं, ममात्मा अमलं ध्रुवं ॥ ७३ ॥

अन्वयार्थ—(मध्यमं च पद विंदं च पदार्थं पद वेदंते) मध्यम पदसे पदार्थोंका बोध होता है (व्यंजनं पदार्थं शुद्धं) उन मध्यम पदके धारी अंग तथा पूर्वोंमें जितने शब्द हैं वे शुद्ध हैं तथा जितना पदार्थ वर्णन किया गया है वह सब यथार्थ है, उनमें सार कथन (ममात्मा अमलं ध्रुवं) यह है कि यह मेरा आत्मा निश्चयसे निर्मल है-सिद्ध सम शुद्ध है।

भावार्थ—द्वादशांग वाणीसे द्रव्योंके गुण पर्यायोंका ठीक २ बोध होता है। उस वाणीके जाननेका सार यही है कि हम अपने आत्माको पहचाने कि इसका असली स्वभाव कर्ममल रहित शुद्ध बुद्ध अविनाशी परमानंद रूप है।

विशल्यं शल्य मुक्तस्य, क्रीयते ध्यान शुद्धयं।
परमानन्द आनन्दं, परमात्मा परमं पदम् ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थ—(शल्य मुक्तस्य) शल्य रहित महात्मा (विशल्यं ध्यान शुद्धयं क्रीयते) शल्य रहित निर्मल धर्मध्यान कर सक्ता है जो (परमानंद) परम आनन्द देनेवाला है। उस ध्यानसे (आनंदं परमात्मा परमं पदं) आनन्दमय परमात्माका उत्तम पद प्राप्त होता है।

भावार्थ—हमको उचित है कि माया मिथ्या निदान इन तीन शल्योंको छोड़कर शुद्ध आत्माके ध्यानका अभ्यास करें। इस ध्यानमें कुछ भी कष्ट नहीं होता है किन्तु परम सुखका अनुभव होता है और इसीसे कर्म कटते जाते हैं। शीघ्र ही वह अवसर आजाता है जब यह आत्मा परमात्मा होजावे।

लोकालोकं च वेदंते, विद्यमानो सुयं प्रभा।
कुज्ञानं विलयं याति, ज्ञानं भुवन भास्करं ॥ ७५ ॥

अन्वयार्थ—(विद्यमानो श्रुतं प्रभा) वर्तमान उपलब्ध श्रुतज्ञान भी (लोकालोकं च वेदंते) लोक व अलोकके पदार्थोंको जान लेता है। इस (भुवन भास्करं ज्ञानं कुज्ञानं विलयं याति) इस जगत प्रकाशी ज्ञानसे मिथ्या ज्ञानका नाश होजाता है।

भावार्थ—द्वादशांग वाणी बहुत विशाल है इस समय उपलब्ध नहीं है। जितना कुछ वर्तमानमें जिन आगम प्राप्त है उसको भी यदि समझ लिया जावे तो लोक अलोक जिन छः द्रव्योंका समूह है उन छः द्रव्योंके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होजावे। उसकी बुद्धिमें निश्चय व्यवहार रूपसे यह जगत जैसा है वैसा प्रतिभासने लग जावे तब मिथ्याज्ञानका तुर्त प्रलय होजावे।

पूर्वं पूर्वं उक्तं च द्वादशांगं समुच्चयं।
ममात्मा अङ्ग सार्धं च, आत्मनं परमात्मनं ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थ—(द्वादशांगं पूर्वं पूर्वं समुच्चयं च उक्तं) द्वादशांगका तथा हरएक पूर्वका सार यही कहा गया है कि (मम त्मा अंग सार्धं च) यद्यपि मेरा आतमा शरीर सहित है तथापि निश्चयसे (आत्मनं परमात्मनं) यह आत्मा परमात्मा है ऐसा जानना योग्य है।

भावार्थ—सर्व जिनवाणीके कहने व जाननेका सार यही है कि हम निश्चय रत्नत्रयरूपी आत्मानुभवको पहुंच जावे। हमें यह गाढ निश्चय हो कि हमारा स्वभाव बिलकुल परमात्माके समान शुद्ध बुद्ध आनंदमय वीतराग और अमूर्तीक है तथा ऐसा ही हमें पक्का ज्ञान हो व इसही ज्ञान श्रद्धानमें हमारा अमल हो। हमें शरीर सहित आत्मामें भी यह अनुभव होने लग जावे कि आत्मा परमात्मा रूप है कर्म व शरीरादि सर्व पुद्गलमय है। रागादि पुद्गलका विकार है।

सम्यक्दर्शनं शुद्धं, ज्ञानं शुद्धमयं ध्रुवं। चरणं शुद्धपदं सार्थं, सहकारेण तपं ध्रुवं ॥ ७७ ॥
आराहनं च चत्वारि, भावनं शुद्ध चेयनं। मूर्द मूर्ति समं शुद्धं, अप्पा परमप्प संजुतं ॥७८॥

अन्वयार्थ—(शुद्धं सम्यक् दर्शनं) शुद्धात्माकी प्रतीति रूप निश्चय शुद्ध सम्यग्दर्शन है (शुद्धमयं ध्रुवं ज्ञानं) उसी शुद्ध स्वरूपका निश्चल स्वसंवेदन ज्ञान सम्यग्ज्ञान है (शुद्ध पदं सार्थं चरणं) शुद्ध पदार्थमें तन्मय होना निश्चय सम्यक्चारित्र है (सहकारेण तपं ध्रुवं) इन तीन रत्न सहित आत्मामें तपना सो

(चत्वारि आराहनं च) ये चार आराधनाएं निश्चयसे (शुद्ध चेयनं भावनं) शुद्ध चेतनाकी निश्चय तप है। (चत्वारि आराहनं च) ये चार आराधनाएं निश्चयसे (शुद्ध चेयनं भावनं) शुद्ध चेतनाकी भावना हैं। (मृद मूर्ति समं शुद्धं) मिट्टीकी मूर्तिके समान शुद्ध रूपसे एकाग्रता है अर्थात् (अप्पा परमप्प संजुतं) आत्माको परमात्मासे संयोग कराना है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व सम्यक्तप ये चार आराधनाएं मोक्षमार्ग हैं। जहां शुद्धात्मारूप अपनेको जानकरके परम रुचि सहित अपने आत्मामें तन्मयता प्राप्त की जाती है व उसीमें थिरता बढाई जाती है, तब अपनी सूरत मिट्टीकी गढी मूर्तिके समान निश्चल ध्यानमय होजाती है। उसी एकाग्रतामें सच्चा आत्मध्यान है। यही योग है जहां आत्माको परमात्माके साथ जोडा गया है अर्थात् परमात्माके स्वरूपमें अपनेको तन्मय किया गया है। यही आत्मानुभवरूप मोक्षमार्ग है। ऐसा समझना ही जिनवाणीका सार है।

अप्पा परमप्प तुल्यं च, परमानंद नंदितं ।
परमप्पा परमं शुद्धं, अमलं निर्मलं ध्रुवं ॥ ७९ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्प तुल्यं च) यह आत्मा परमात्माके समान है। दोनोंके स्वभावमें निश्चयसे कोई अंतर नहीं है। यह आत्मा (परमानंद नंदितं) परमानंदमें कल्लोल करनेवाला है। (परमप्पा परमं शुद्धं अमलं निर्मलं ध्रुवं) परमात्मा परम शुद्ध है, रागादि रहित वीतराग है, कर्ममल रहित निर्मल है तथा अविनाशी है।

भावार्थ—परमात्मा और अपने आत्मामें एकता समझना ही सार है। अपनी बुद्धिमें भेद विज्ञानके द्वारा अपने ही आत्माको कर्मोंसे भिन्न देखना चाहिये। तब वही आत्मा परमात्माके समान दीखेगा, वीतराग विज्ञानमय झलकेगा, परमानंदसे परिपूर्ण अमृतमय अनुभवमें आवेगा। यही साक्षात् मोक्षमार्ग है और जिनवाणीके ज्ञानका समुच्चयसार है। यही समझलेना आत्माका परम हित प्राप्त कर लेना है।

कारणं कार्य्य सिद्धं च, तं कारण कार्य उद्यमं ।
स कारणं कार्य शुद्धं च, कारणं कार्यं सदा बुधैः ॥ ८० ॥

अन्वयार्थ—(कारणं कार्यं सिद्धं च) कारणसे ही कार्यकी सिद्धि होती है (तं कारण कार्यं उद्यमं) कारण

वही है जिसके कार्यके सिद्ध करनेका पुरुषार्थ किया जासके (स कारणं कार्य शुद्धं च:) यहां मोक्षसाधनमें कारण और कार्य दोनों शुद्ध हैं (बुधैः सदा कारणं कार्यं) बुद्धिमानोंको सदा उसी शुद्ध कारणको करते रहना चाहिये।

भावार्थ—यहां बताया है कि विना कारणके कार्य नहीं होता है। साधनके विना साध्य नहीं होता है। तथा जैसा कार्य व साध्य हो वैसा ही उसका साधन या कारण होना चाहिये। जिस उपायको प्रयोग करनेसे कार्यकी सिद्धि होसके वही यथार्थ कारण है। मोक्षमार्गमें आत्माको परमात्मा बनाना है अतएव परमात्मा रूप आपका अनुभव ही सच्चा साधन है। शुद्धोपयोग ही सत्य साधन है जिससे सिद्ध शुद्ध पद प्राप्त होसके। तत्वज्ञानी पंडितोंको उचित है कि सदा ही शुद्धात्माके अनुभवका उद्यम करते रहें। विना पुरुषार्थके कार्यकी सफलता दुर्लभ है।

कारणं दर्शनं ज्ञानं, चरणं शुद्ध तपः ध्रुवं।
शुद्धात्मा चेतना नित्यं, कार्यं परमात्मा ध्रुवं ॥ ८१ ॥

अन्वयार्थ—(ध्रुवं) निश्चयसे (शुद्धं दर्शनं ज्ञानं चरणं तपः) शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व सम्यक्तप अथवा (नित्य शुद्धात्मा चेतना) नित्य शुद्ध आत्माका अनुभव करना (कारणं) मोक्षका साधन है (कार्यं ध्रुवं परमात्मा) कार्य या साध्य अविनाशी परमात्मपद है।

भावार्थ—यहां कारण कार्य या साधन साध्यको प्रगट किया है। मोक्षका साक्षात् साधन भेद व अभेद रत्नत्रय है। अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता है जिसे हम अभेद रूपसे एक ज्ञान चेतना या शुद्धात्मानुभव कहते हैं। इस उपायसे अविनाशी निज परमात्मपद झलक जाता है। तत्वसारमें श्री देवसेनाचार्य कहते हैं—

जो खलु सुद्धो भावो सो अप्पणितं च दंसणं णाणं। चरणंपि तं च भणियं सा सुद्धा चेयणा अहवा ॥ ८ ॥
तं अवियप्पं तच्चं तं सारं मोक्खकारणं तं च। तं णाऊण विसुद्धं झायह होऊण णिग्गंथो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो कोई आत्माका शुद्ध भाव है वही निश्चयसे अपना सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है। वही शुद्ध चेतना है, वही निर्विकल्प तत्व है, वही सार है, वही मोक्षका कारण है, उसे पहचानकर

निर्ग्रंथ होकर उसे शुद्ध तत्वको ध्याना चाहिये। रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही साधन है। ऐसा श्री अमृतचन्द्राचार्यने तत्वार्थसारमें कहा है—

पश्यति स्वस्वरूपं यो जानाति च चरत्यपि। दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव स स्मृतः॥ ८॥

भावार्थ—जो अपने ही स्वरूपको श्रद्धान करता है, उसे ही जानता है, उसे ही अपने अनुभवमें लेता है वही सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्मा कहा गया है ऐसा स्व समयरूप व स्व संवेदनरूप व स्वानुभवरूप आत्मा ही मुक्तिका उपाय है।

उपादेय गुण जानाति, शुद्ध सम्यक्त भावनां।
रागद्वेष न दिष्टन्ते, मिथ्या माया विलीयते॥ ८२॥

अन्वयार्थ–ज्ञानी जीव (उपादेय गुण शुद्ध सम्यक्त भावनां जानाति) ग्रहण करने योग्य जो शुद्ध सम्यक्दर्शनकी भावना है उसको जानता है। उसके भीतर (राग, द्वेष न दिष्टंते) राग द्वेष नहीं दिखलाई पड़ते हैं। (मिथ्या माया विलीयते) उसके पाससे मिथ्यात्व व मायाचार भाग गया है।

भावार्थ—ज्ञानी महात्मा शुद्ध आत्मीक भावनाको ही ग्रहण करने योग्य उपयोगी उपाय मोक्षमार्गमें जानते हैं। वे मिथ्यात्वको व मायाचारको छोडकर शुद्ध मनसे निश्चल होकर व सब राग द्वेषको त्यागकर परम समता भावको आलम्बन करके मात्र शुद्धात्मानुभवका अभ्यास करते हैं।

मिथ्या सम्यक् मिथ्यात्वं, प्रकृति मिथ्या न दिष्टते।
कुज्ञानं शल्य तिक्तं च, ज्ञानेन ज्ञानलंकृतं॥ ८३॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या सम्यक् मिथ्यात्वं प्रकृति मिथ्या न दिष्टते) उस तत्वज्ञानीके भीतर तीन तरहका मिथ्यात्व नहीं दिखलाई पडता है (कुज्ञानं शल्य तिक्तं च) मिथ्याज्ञान व तीन शल्य छूट गई हैं। (ज्ञानेन ज्ञानलंकृतं) ज्ञानसे ही ज्ञानकी शोभा होरही है।

भावार्थ—दर्शन मोह तीन प्रकारका है। जिसके उपशम या क्षायिक सम्यक्त होता है उसके इन तरहके दर्शन मोहका उदय नहीं होता है। मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे बिलकुल भी तत्वश्रद्धान नहीं होता। सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे तत्वश्रद्धानमें कुछ अतिचार लगता है, सदोष सम्यक्त होता

है। सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे सत्य तथा असत्य मिला हुआ श्रद्धान होता है। निर्मल सम्यक् दर्शनमें ये तीनों नहीं होते हैं। न वहां कोई मिथ्या ज्ञान है। कुमति कुश्रुत कुअवधि नहीं है, न वहां माया मिथ्या निदान शल्य हैं। निर्मल आत्मज्ञानसे आत्माका ज्ञानोपयोग विभूषित होरहा है। ऐसी अवस्था जहां होती है वहीं मोक्षमार्ग होसक्ता है।

मिथ्या मिथ्यामयं दृष्टं, असत्य सहित भावना।
अनृतं अचेत दिष्टन्ते, मिथ्यातं निगोयं पतं ॥ ८४ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या मिथ्यामयं दृष्टं) मिथ्यात्वकर्मके उदयसे श्रद्धान बिलकुल मिथ्यारूप होता है। (असत्य सहित भावना) असत्य पदार्थोंके लाभकी भावना रहती है। (अनृतं अचेत दिष्टंते) वहां सब झूठ ही झूठ व अज्ञान ही अज्ञान दिखलाई पडता है (मिथ्यातं निगोयं पतं) ऐसे मिथ्यात्वके फलसे यह जीव निगोदमें जाकर बिलकुल अज्ञानी एकेन्द्रिय होजाता है।

भावार्थ—सर्व पापोंमें बडा पाप मिथ्यात्व है। इसका फल भी बहुत बुरा है। यह जीवको मनुष्य पर्यायसे निगोदमें डाल देता है। साधारण वनस्पतिको निगोद कहते हैं। जहां अनंत एकेन्द्रिय जीव साथ २ जन्मे व मरें जिनका श्वासादि साथ २ साधारण हो वे निगोद जीव हैं। प्रायः कंदमूलमें निगोद राशि रहती है। सूक्ष्म निगोद राशि तीन लोकमें व्याप्त है, बादर भी बहुत स्थानोंपर हैं। निगोदमें यह जीव बहुत कम ज्ञानी होजाता है फिर निगोदसे निकलकर पृथ्वी आदि पर्याय ही पाना कठिन है। त्रस पर्याय होना बहुत दुर्लभ है। ऐसे निगोदमें जानेका कारण मुख्यतासे मिथ्यात्वका सेवन है। शरीरादि रूप ही अपनेको मानना, धनादि व कुटुम्बादिमें अति गृद्धता रखकर इन्हींको अपना मानना, अपने आत्माके शुद्ध स्वभावपर विश्वास न लाना, इंद्रिय सुखको ही सुख जानना, अतिन्द्रिय आत्मिक सुखपर लक्ष्य न देना, विषय भोगोंके लिये आतुर रहना, उन हीसे जीवनकी सफलता समझना, कषायोंकी पुष्टिका निरंतर यत्न करना, स्वार्थ सिद्ध करनेको अन्याय, अभक्ष्य, आदिसे भय न मानना, संसारके कार्य सफल करानेके हेतुसे रागी, द्वेषी देवोंको, परिग्रहधारी गुरुओंको व आत्मज्ञान शून्य सराग सदोष धर्मको मानना, यह सब मिथ्यात्वका दोष है। मिथ्यात्वके प्रभावसे प्राणी असत्य जो इन्द्रिय सुख है या स्त्री पुत्रादि व धनादिका सम्बन्ध है

उन ही को प्राप्तिकी या उन हीके बने रहनेकी रात दिन भावना किया करता है उसे आत्म-भावना सुहाती नहीं। वह सदा ही मिथ्या कल्पनाएं किया करता है। सदा ही अज्ञानमें फंसा रहता है। आत्म-ज्ञानसे शून्य रहना ही अज्ञान है। संसार असार है, इसे सार जानना ही अज्ञान है। शरीर नाशवंत है इसे सदा बने रहना जानना ही अज्ञान है। भोग रोगवत् दुःखकारी है उन्हींको सच्चा सुख मानना अज्ञान है।

शुद्ध तत्त्व स्वयं रूपं, मुक्तिपथ जिन भासितं।
अन्यो अज्ञान सद्भावं, मिथ्याव्रत तपः क्रिया ॥ ८५ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्ध तत्त्व स्वयं रूपं) शुद्ध आत्मिक तत्त्व जो अपना ही स्वभाव है उसीमें लीनता (मुक्तिपथ जिन भासितं) मोक्षका मार्ग है। ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है (अन्यः) इससे अन्य जो कोई मार्ग है वह (अज्ञान सद्भावं) अज्ञान स्वरूप है (मिथ्याव्रत तपः क्रिया) आत्मानुभव शून्य व्रत, तप, चारित्र सब मिथ्या है।

भावार्थ—श्री जिनेन्द्र भगवानने मोक्षका मार्ग वास्तवमें निज शुद्ध आत्माका श्रद्धान ज्ञान तथा आचरण या आत्मानुभव बताया है। जहां आत्मानुभव होगा वहां सम्यग्दर्शन अवश्य होगा। यही अपने आत्माका स्वभाव है, यही शुद्धोपयोग है। यदि इस निश्चय सम्यक्तका लाभ नहीं है तो मिथ्याज्ञानका ही सद्भाव कहा जायगा। अनेक प्रकार शास्त्रोंका ज्ञान होनेपर भी वह सब मिथ्याज्ञान ही है। तथा अनेक प्रकार मुनि व श्रावकका व्रत पालना, अनशनादि १२ प्रकारका तप करना, खानपानादिमें शास्त्र विधिसे सर्व क्रिया पालना आत्मज्ञान विना सब मिथ्या है। सम्यक्त सहित ही इनकी शोभा है। आत्मानुशासनमें श्री गुणभद्राचार्य कहते हैं—

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः। पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्तसंयुक्तं ॥

भावार्थ—शांत भाव, शास्त्रज्ञान चारित्र व तप इनकी कीमत कङ्कड पत्थरके समान है, यदि मिथ्यात्व सहित हो। परन्तु यदि ये सब आत्मज्ञान सहित सम्यक्त सहित हो तो इनका मूल्य महामणियोंके बराबर है।

ज्ञान सहकारिनो जीवः, व्रत तप क्रिया संजुतं ।
यदि ज्ञान विना भावं, मिथ्या व्रत तप क्रिया ॥ ८६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहकारिनो जीवः) जो जीव आत्मज्ञान सहित है वही (व्रत तप क्रिया संजुतं) व्रत, तप, व चारित्रयुक्त है (यदि ज्ञान विना भावं ; यदि भावोंमें आत्मज्ञान नहीं है तो (व्रत तप क्रिया मिथ्या) व्रत तप चारित्र सब मिथ्या हैं ।

भावार्थ—आत्माकी उन्नतिके हेतु व शुद्धात्माके अनुभवमें निराकुलतासे तिष्ठनेके हेतुसे जो बाहरी व्रत, तप, क्रिया पाली जावे तब तो वे सम्यक् हैं-यथार्थ हैं । परंतु यदि ऐसा आत्मीक शुद्ध भाव नहीं है केवल पुण्यकी वृद्धिके हेतु व पापोंसे बचनेके हेतु व्रतादि साधे जावें तो वे मिथ्यात्व सहित होनेसे मिथ्या हैं, वे मोक्षमार्ग नहीं हैं ।

सम्यग्ज्ञान ।

मतिज्ञान दर्शनं कृत्वा, श्रुतज्ञानं अनुव्रतं ।
अवधिज्ञानं तपः सार्धं, ज्ञान सहकारि लब्धयं ॥८७॥

अन्वयार्थ—(दर्शनं मतिज्ञान कृत्वा श्रुतज्ञानं) दर्शनोपयोग पूर्वक मतिज्ञान होता है, मतिज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान होता है । (अनुव्रतं) श्रुतज्ञान पूर्वक व्रत होते हैं (अवधिज्ञानं तपः सार्धं ज्ञान सहकारि लब्धयं) अवधिज्ञान एकलब्धि या ऋद्धि है जो तप करनेसे आत्मज्ञानके साथ पैदा होती है ।

भावार्थ—वस्तुका सामान्य ग्रहण दर्शन है । जब इंद्रिय या मन द्वारा किसी पदार्थको जाना जाता है अर्थात् उपयोग जब किसी विषयको जाननेके लिये तय्यार होता है तब प्रथम समयमें निराकार ग्रहण रूप दर्शनोपयोग होता है फिर पदार्थ ग्रहण रूप अवग्रह आदि रूप मतिज्ञान होता है मतिज्ञानसे जब हम वाणी सुनते हैं व शास्त्रको देखते हैं तब मन विचार करता है व मनद्वारा श्रुतज्ञान होता है । द्रव्य शास्त्रका भाव ज्ञान होना श्रुतज्ञान है । श्रुतज्ञान ही सारज्ञान है क्योंकि यथार्थ श्रुतज्ञान वही है जो आत्माको परसे भिन्न जानकर स्वानुभव कर सके । इस स्वानुभव

सहित श्रुतज्ञानके होते हुए सम्यग्दृष्टी होता है। पश्चात् अणुव्रत या महाव्रत होसक्ते हैं। यथार्थ आत्मानुभवरूप श्रुतज्ञानके विना व्रत हो ही नहीं सक्ते। यह श्रुतज्ञान ही केवलज्ञानका कारण है, अवधिज्ञानरूपी पदार्थोंको जानना है। यह एक शक्ति विशेष है या ऋद्धि है जो ज्ञानपूर्वक तप करनेसे प्रगट होती है। इसके प्रकाश विना भी केवलज्ञान होसक्ता है।

ज्ञानहीनं कृतं येन, व्रत तप क्रिया अनेकधा।
कष्टं निरो सहसे सोपि, मिथ्या विषय रंजितं ॥८८॥

अन्वयार्थ—(येन ज्ञानहीनं अनेकधा व्रत तप क्रिया कृतं) जिसने आत्मज्ञानमई श्रुतज्ञानके विना अनेक प्रकार व्रत तप क्रियाकी (सोपि निरो कष्टं सहसे) वह केवल मात्र कष्टको ही सहता है (मिथ्या विषय रंजितं) उसका रंजायमान पना मिथ्या इंद्रियोंके विषयोंमें है।

भावार्थ—जिसको आत्मज्ञान न होगा उसको अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव न होगा। तब उसका सर्व चारित्र पालना, तप करना, मोक्षके लिये साधनभूत न होगा किंतु मात्र कष्ट सहना होगा। जहां परिश्रमका फल न मिले तो उसे वृथा ही परिश्रम कहते हैं। जितना तप, जप, चारित्रका साधन, दिगम्बर होकर परीषह सहना आदि किया जाता है वह यदि कर्मोंको काटकर मोक्षके लिये न हो तो मात्र कष्ट ही कष्ट है। मिथ्यादृष्टी साधुका रंजायमान पना अंतरंगमें मिथ्या इंद्रियोंके विषय सुखमें है। वह परलोकमें बहुत सुखके लोभसे तप करता है। उसे आत्म-स्वभावमई अतीन्द्रिय सुखकी खबर ही नहीं है, जब कि सम्यग्दृष्टी अणुव्रत या महाव्रत पालता हुआ आत्मानंदमें मगन रहनेकी चेष्टा करता है।

ज्ञान सहकारि शुद्धं च, ज्ञानहीनो अशुद्धयं।
ज्ञान सह मुक्तिमार्गस्थः ज्ञानहीनो मिथ्या संयुतं ॥ ८९ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहकारि शुद्धं च) आत्मज्ञानके साथ तो व्रतादि चारित्र व तप शुद्ध हैं (ज्ञानहीनो अशुद्धयं) परन्तु आत्म-ज्ञानके विना वे सब अशुद्ध हैं मिथ्या हैं (ज्ञान सह मुक्तिमार्गस्थः) जो सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र पालता है वह मोक्षमार्गमें चलनेवाला है (ज्ञानहीनो मिथ्या संयुतं) यदि आत्मज्ञान नहीं है तो सर्व व्रतादि मिथ्यात्व सहित होनेसे संसार मार्ग हैं।

भावार्थ—आत्माका आत्मारूप श्रद्धान जहां होगा वहां पूर्ण वैराग्य होगा, वह संसार शरीर भोगोंसे पूर्ण उदासीन होगा। तथा वह आत्मिक सुखका परम रसिक होगा। ऐसा रसिक जीव ही मोक्षमार्गी है, उसीका व्रतादि सब मोक्षमार्ग है। परन्तु यदि किसीको यह स्वात्माका अनुभव सहित ज्ञान नहीं हुआ तो वह मिथ्यात्वी है-संसार शरीर भोगोंमें आसक्त है उसका जप, तप, व्रत, मात्र संसार बढाने हीका कारण है। उसका उद्देश्य ही संसार है जब कि सम्यक्तीका ही उद्देश्य मोक्ष है।

मिथ्या विषय संजुक्तं, संसार सरनि रंजितं।
थावर विकल अदेवं वा, विषयं व्रत तपः श्रुतं ॥ ९० ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या विषय संजुक्तं) जो कोई भी मिथ्यात्व व इंद्रियोंके विषयोंमें लीन होगा वह (संसार सरनि रंजितं) वह संसारके मार्गमें ही रंजायमान होरहा है (व्रत तपः श्रुतं विषयं) उसका व्रत, तप, शास्त्रज्ञान सब इंद्रियोंके विषयोंके हेतुसे है (थावर विकल अदेवं वा) उसका फल यह होगा कि वह पांच सरोवरोंमें व दौन्द्रिय, तेंद्रिय, चतुरिन्द्रिय, जन्तुओंमें वा देवत्व रहित पंचेंद्रिय पशु व मानवोंमें पैदा होगा।

भावार्थ—मिथ्यात्वका जहां उदय है वहां न तो आत्माका सच्चा श्रद्धान है न आत्मीक सच्चे सुखकी रुचि है। इसलिये ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव इंद्रियोंके विषयोंका लोभी होता हुआ मोक्षमार्गसे बिलकुल विरोधी संसार मार्गमें ही चल रहा है। वह भी कदाचित् कोई व्रत, तप या शास्त्रके ज्ञानका साधन करता है उस साधनमें उसका भीतरी उद्देश्य इंद्रिय विषयकी ओर रहता है। मनोज्ञ भोगादि प्राप्त हों इस उद्देश्यसे वह धर्म साधन करता है। मिथ्याती जीव अधिकांश स्थावरोंमें, विकलत्रयोंमें, पशुओंमें व दीन हीन मानवोंमें पैदा होते हैं। मिथ्यात्व ही निगोदमें पटकता है। यदि कोई अत्यन्त वैरागी हुआ तप करता है और मिथ्यात्वकी वासना सहित है तो कदाचित् देवगति पाता है और नौवें ग्रैवेयिक तक चला जाता है परंतु वह कभी मोक्ष नहीं पासक्ता—उसका संसारभ्रमण नहीं टलता है।

ज्ञान सहकारिनो जीवः, आत्म शुद्धात्म साधते।
परमात्मा परमं शुद्धं, निश्चयं ज्ञान सुभावनं ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहकारिनो जीवः) आत्मज्ञान सहित जीव (आत्म शुद्धात्मसाधते) आप ही अपने शुद्ध आत्माका साधन करता है, उसका आत्मा (निश्चय ज्ञान सुभावनं परमं शुद्धं परमात्मा) निश्चय ज्ञान स्वभावी परम शुद्ध परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव किसीकी सहायतासे नहीं किंतु अपने ही आत्मानुभव रूपी साधनसे उन्नति करते करते शुद्ध आत्मा होजाता है, जहां सहज ज्ञान प्रकाशित होजाता है, सर्व संसारके दुःखोंसे छूट जाता है।

ज्ञानं च दर्शनं शुद्धं, ज्ञानं चरण संजुतं।
ज्ञान सह तपं शुद्धं, ज्ञानं केवल लोचनं ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च दर्शनं शुद्धं) निश्चय सम्यग्ज्ञान व निश्चय सम्यग्दर्शन शुद्ध दर्शन व शुद्ध ज्ञान हैं (ज्ञानं चरण संजुतं) सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र शुद्ध सम्यक्चारित्र है (ज्ञान सह तपं शुद्धं) सम्यग्ज्ञान सहित तप शुद्ध है (ज्ञानं केवल लोचनं) आत्मज्ञान ही केवल आत्माकी सच्ची आंख है।

भावार्थ—आत्मज्ञान सहित या आत्मानुभव सहित जो श्रद्धान है वही निश्चय सम्यग्दर्शन या शुद्ध सम्यग्दर्शन है। आत्मानुभव सहित जो सम्यग्ज्ञान है वही निश्चय या शुद्ध सम्यग्ज्ञान है। आत्मानुभव सहित जो सम्यक्चारित्र है वही निश्चय या शुद्ध सम्यक्चारित्र है। आत्मानुभव सहित जो सम्यक् तप है वही निश्चय या शुद्ध तप है। वास्तवमें आत्मानुभव ही आत्माकी सच्ची ज्ञान दृष्टि है। जिस दृष्टिसे अपना स्वभाव दीखे, कर्म नोकर्म रहित शुद्ध वीतराग परमात्मारूप दीखे वही सच्ची ज्ञान दृष्टि है। जैन सिद्धान्तका यही सार है जो आत्मज्ञानको प्राप्त किया जावे।

दर्शनं दर्शते शुद्धं, ज्ञानं लोकलोकितं।
दर्शनं ज्ञान योगेन, चरणं व्रत तपः श्रुतं ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थ—(दर्शनं शुद्धं दर्शते) सम्यग्दर्शन शुद्ध आत्माका श्रद्धान करता है। (ज्ञानं लोकलोकितं) सम्यग्ज्ञान तीन लोकको देखने वाले आत्माको जानता है। (दर्शन ज्ञान योगेन) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके सम्बन्धसे (चरणं व्रत तपः श्रुतं) चारित्र व्रत तप व शास्त्रज्ञान सफल होते हैं।

॥ ४९ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आत्माको अनात्मासे भिन्न जानकर पक्का श्रद्धान रखते हैं। जब इन दोनों गुणोंके होते हुए आत्मानुभूतिका प्रकाश होजाता है तब श्रावक व मुनिका चारित्र, अणुव्रत, महाव्रत, बारह प्रकारका तप व विशेष श्रुतका अभ्यास सब यथार्थ व मोक्षमार्गमें सहाई होते हैं। जड़ आत्मज्ञान है उसके विना धर्मकी न्यू नहीं दी जासक्ती है। न्यू विना धर्मका मकान नहीं खडा किया जासक्ता है।

अनेक श्रुत जानाति, व्रत तप क्रिया अनेकधा।
अनेक कष्ट कर्तानि, ज्ञानहीनो वृथा भवेत् ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानहीनो) जो कोई आत्मज्ञानसे शून्य है वह यदि (अनेक श्रुत जानाति) बहुतसे शास्त्रोंको जानता है। (अनेकधा व्रत तप क्रिया) अनेक प्रकार व्रत तप व आचरण पालके (अनेक कष्ट कर्तानि) बहुत कष्ट सहता है तौभी वह सब (वृथा भवेत्) निरर्थक चला जाता है, मोक्षसाधक नहीं होता है।

भावार्थ—जो कोई बहुत परिश्रम करके न्याय व्याकरण छंद अलंकार आदि शास्त्रोंको जाने परन्तु अध्यात्मज्ञान शून्य हो तो उसका ज्ञान केवल संसार वर्द्धक है। उसी तरह कोई बहुत कष्ट सहकर बेला, तेला, सप्ताह, पक्ष, मास भरका उपवास करे, कठिन कठिन तप करे, रस त्यागे, पर्वत व स्मशानमें जाकर तप तपे, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह त्याग इन पांच व्रतोंको एक देश व सर्व देश पाले, शुद्ध भोजन करे, पूजा पाठ विधान आदि अनेक धर्मक्रिया करे परन्तु आत्मानुभवका स्वाद न ले सक्ता हो तो उसका यह सारा परिश्रम वृथा है, उसे मोक्षमार्गी नहीं बना सक्ता है। वह शुभ मंद कषायसे भले ही पुण्य बांधके स्वर्गादिमें चला जावे परन्तु उसकी विषयवासना बनी रहती है, वह संसारसे कभी पार नहीं होसक्ता। अतएव हमें उचित है कि जिस तरह होसके सम्यग्दर्शन सहित आत्माका ज्ञान हासिल करें।

आत्मा शुद्धात्मभावेन, शुद्ध दृष्टिं समाचरतु ।
अन्यत् मिथ्यामयं प्रोक्तं, विषयं लोकरंजनं ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थ—(आत्मा शुद्धात्मभावेन) आत्माको उचित है कि शुद्ध आत्माकी भावना करते हुए (शुद्ध दृष्टिं समाचरतु) शुद्ध आत्म प्रतीतिके साथ शुद्धात्मामें चर्या करें। अर्थात् आत्म-ध्यान करे। (अन्यत्) आत्मज्ञान विना जो कुछ है सो (मिथ्यामयं प्रोक्तं) मिथ्यात्व सहित कहा गया है। वह सब (विषयं) इंद्रियोंके विषयोंकी भावना सहित हैं। तथा (लोकरंजनं) लोगोंको दिखानेवाला है।

भावार्थ—जो भव्यजीव अपना सच्चा हित करना चाहे उनका यह कर्तव्य है कि वह भेदज्ञान द्वारा अपने आत्माको शुद्ध एकाकार परमात्मावत् अनुभव करे, इसीका दृढ अभ्यास करे। आत्मज्ञानके विना जो कुछ आचरण है वह मिथ्या है। क्योंकि वहां मिथ्यात्वका विष मिला है, वह सब विषयोंकी इच्छाको अन्तरङ्गमें लिये हुए है या मान कषायकी वासनाको लिये हुए है, मात्र लोगोंको रिझानेवाला है, जगतको प्रसन्न करके अपनी महिमा फैलानेका ही उपाय है। विषय कषायवर्द्धक धर्माचरण सच्चा धर्म नहीं है, संसारको बढानेवाला है।

प्रथमं भाव शुद्धं च, अशुद्धं त्यक्तं पराङ्मुखं ।
परिणाम बंध मुक्तं च, उपभोग त्यक्त मनः श्रुतं ॥ ९६ ॥

अन्वयार्थ—(प्रथमं भाव शुद्धं च) प्रथम ही यह जरूरी है कि शुद्ध आत्माकी भावना की जावे (पराङ्मुखं अशुद्धं त्यक्तं) शुद्ध आत्मीक भावके विरोधी सर्व अशुद्ध भावोंका राग छोड दिया जावे (परिणाम बन्ध मुक्तं च) क्योंकि परिणामोंसे ही कर्मोंका बन्ध होता है और परिणामोंसे ही कर्मोंसे मोक्ष होती है। (उपभोग त्यक्त मनः श्रुतं) इंद्रिय भोगोंकी इच्छाको छोड़कर मनको शास्त्रके मननमें लगाना चाहिये।

भावार्थ—जो अपना हित करना चाहे उसको प्रथम ही यह योग्य है कि मोक्ष और मोक्षमार्गको समझले। मोक्ष आत्माका शुद्ध पूर्ण भाव है। मोक्षमार्ग आत्माका शुद्ध रूपसे श्रद्धान ज्ञान व ध्यान है। जिसके मनसे पांच इंद्रियोंके भोगोंकी वासना निकल गई हो तथा मनमें शुद्ध

आत्माकी भावना दृढ होगई हो, शुद्धात्मानुभवका प्रेम पैदा होगया हो वही मोक्षमार्गपर चलनेवाला है। शुद्धात्माके अनुभवसे ही कर्मोंका क्षय होता है। यह भाव निश्चित है कि जीवोंके परिणामोंसे ही संसार है, परिणामोंसे ही मुक्ति है। विषयोंके प्रेममें संसार है, विषयातीत आत्म प्रेममें मोक्षमार्ग है। अपने परिणामोंमें शुद्धात्मासे रंजायमानपना पैदा करना उचित है।

उपभोगं अशुद्ध भावस्य, संसार विषय रंजितं।
मनसि उत्पादते जीवः, उपभोगं तत्र निश्चय ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थ—(संसार विषय रंजितं) संसारके विषयभोगोंमें रुचि रखना व आनंदित होना (अशुद्ध भावस्य उपभोगं) अशुद्ध भावका उपभोग है (जीवः मनसि उत्पादते) यह जीव अपने मनमें पैदा किया करता है (तत्र उपभोगं निश्चयं) वहां उसके अशुद्ध भावमें अवश्य विषयोंका उपभोग है ऐसा ही मानना होगा।

भावार्थ—साक्षात् पांचों इंद्रियोंके भोगोंको न करते हुए जो अंतःकरणमें उन विषयोंकी तरफ रुचि होना या रंजायमानपना है वही अशुद्ध भावोंके द्वारा विषयोंका भोग है। ऐसे मानसिक भोगोंको वह मिथ्यात्व व कषायोंसे पूर्ण अज्ञानी जीव निरंतर किया करता है। यही मिथ्यात्वभाव है।

उपभोगं मन विचलंते, भोगं तस्य प्रवर्तते।
विकथा राग रंजंते, उपभोगं भोग उच्यते ॥ ९८ ॥

अन्वयार्थ—(उपभोगं मन विचलंते) जिस किसीका मन उपभोगोंके लिये चलायमान होगा (तस्य भोगं प्रवर्तते) उसीके ही भोगोंका भोग प्रवर्तेगा। वही (विकथा राग रंजंते) विकथाओंके रागमें रंजायमान होगा। इसलिये (उपभोगं भोग उच्यते) मन द्वारा उपभोगको भोग कहा जाता है।

भावार्थ—सारे संसारके भोगोंके भोगनेके लिये सबसे पहले मनमें लालसा पैदा होती है। मनके चंचल होने हीसे उसका वचन व शरीर भोगोंमें प्रवर्तता है। यदि मनमें विषयवासना न हो तो वचन व कायसे भोगोंकी क्रिया कदापि न हो। तब ही वह स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथाके करनेमें बड़ा राजी रहता है। इसलिये मनके भीतर भोगोंका अशुद्ध भाव या राग

अवश्य ही भोग कहा जाता है। परिणामोंसे ही कर्मबन्ध होता है। भावोंमें विषयवासनाके रहते हुए मानसिक भोग सम्बन्धी कर्माश्रव अवश्य होगा, भोग भोगना हो या न हो। इसलिये जो स्वहित करना चाहे उसे उचित है कि वह अंतःकरणसे विषयभोगकी वासनाको निकाल कर फेंकदें, उसके स्थानपर आत्मानंदके भोगकी रुचि उत्पन्न करे। यह कथन सैनी पंचेंद्रिय मानवकी अपेक्षासे है।

हावभाव उत्पाद्यंते, विभ्रम अनेय चिन्तनं ।
कटाक्षं निरीक्षणं जाव, उपभोगं तस्य उच्यते ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थ—मनके भीतर वासना रहते हुए (हावभाव उत्पाद्यंते) हाव भाव पैदा होते हैं अर्थात् प्यारके आकर्षण-चोंचले उठ आते हैं (अनेय विभ्रम चिन्तनं) अनेक तरहके विचार या भ्रमपूर्ण भाव या भावोंकी विशेष चेष्टाएं चिंतवनमें आजाती हैं (जाव कटाक्ष निरीक्षनं) यहांतक कि टेढी दृष्टिसे देखना प्रारम्भ होजाता है (तस्य उपभोगं उच्यते) साक्षात् भोग न करते हुए भी ऐसी चेष्टावालेके उपभोग कहा जाता है।

भावार्थ—मानसिक भोगकी धाराको यहां बताया है कि जब मनमें विषय भोगका विचार होता है तब विषय भोगके दिखानेवाले अंग उपंगके संकेत उठ पडते हैं। मनमें धारावाही अनेक कुभाव आ जाते हैं, तिरछी नजरसे पदार्थोंको प्रेमभाव सहित देखने लगता है। जैसे किसीको मिठाई खानेकी वासना है वह उस इच्छाके लिये घबडाता है, अनेक तरहकी चेष्टा करता है, दूरसे मिठा-ईको देखकर रागकी दृष्टिसे देखने लगता है। इसी तरह कोई कामभोगकी वासना रखता है वह स्त्रीकी चिंता करता है। उसके लिये घबडाता है, कुचेष्टाएं करता है, मनोज्ञ स्त्रीको देखकर टेढी नजरसे देखता है। इन दो रसना व स्पर्शन इंद्रियोंके दृष्टांतोंमें मिठाई न खाते हुए व स्त्री भोग न करते हुए भी भोगोंका होना कहा जाता है। यह मिथ्यात्व वासित अशुद्ध भावका एक नमूना है।

स्वप्नं यस्य न शुद्धं च, उपभोगं तस्य संजुतं ।
मनस्य विकलितं येन, उपभोग भाव समं ध्रुवं ॥ १०० ॥

अन्वयार्थ—(यस्य स्वप्नं शुद्धं न च) जिस किसीको सुपने शुद्ध न आते हों (तस्य उपभोगं संजुतं)

उसका भाव उन भोगोंके साथ रमा हुआ है (येन मनस्य विकलितं) जिसके मनमें घवडाहट है, भोगोंके लिये बेचैनी है (ध्रुवं उपभोग भाव समं) निश्चयसे वह उपभोग करनेवाले भावके समान ही मलीन है।

भावार्थ—जिसके अन्तःकरणमें विषय-भोगोंकी चाहकी वासना होती हैं उसीको अशुद्ध खोटे विषय-भोग सम्बन्धी सुपने आते हैं। उसका मन विषय-भोगोंमें अवश्य रागी है। नहीं तो कभी भी वैसे खोटे स्वप्ने न आवें। जिसके मनमें विषय-सेवनकी आकुलता है वह मन, वचन व कायसे विषयभोग न करता हुआ भी मनसे विषयभोग करता हुआ भोगीके समान अशुद्ध या मलीन है। वास्तवमें ग्रन्थकर्ताने अशुद्ध भावका अच्छा चित्रण किया है। जो विषयोंसे वैरागी होगा व आत्मानन्दका प्रेमी होगा उसको विषयभोग सम्बन्धी सुपने भी नहीं आएंगे। जिधर चित्तकी प्रवृत्ति जागते हुए होती है उसी प्रकारके स्वप्न आते हैं।

शुद्ध व अशुद्ध उपभोग।

उपभोगं वे विजानाति, शुद्धं अशुद्धं परं।
शुद्धं मुक्ति मार्गस्य, अशुद्धं निगोयं पतं ॥ १०१ ॥

अन्वयार्थ—(उपभोगं वे विजानाति) ज्ञानी दो प्रकारके उपभोगोंको पहचानता है (शुद्धं परं अशुद्धं) एक शुद्ध उपभोग दूसरा अशुद्ध उपभोग (शुद्धं मुक्ति मार्गस्य) शुद्ध उपभोग मोक्षमार्ग है (अशुद्धं निगोयं पतं) अशुद्ध उपभोगसे निगोदमें पतन होता है।

भावार्थ—भोगना या स्वाद लेना या रंजायमान होना दो प्रकार है। एक शुद्ध उपभोग, दूसरा अशुद्ध उपभोग। जहां अपने ही शुद्ध आत्माका अनुभव या स्वाद या भोग किया जावे वह शुद्ध उपभोग है। इससे कर्मोंकी निर्जरा होती है, आत्मा बलवान होता है, अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आता है। यह भोग मोक्षका मार्ग है। परन्तु जो इंद्रियोंके विषयोंमें रंजायमानपना है, भोगोंमें आसक्त होकर उनहीमें रुचि सहित वर्तना है, भोगाभिलाषी होकर भोगोंके लिये आत्मज्ञानकी परवाह न करके उचितानुचित चाहे जैसा कर्तव्य करता है, ऐसा भाव उपभोग निगोदकी अज्ञान व परा-

धीन पर्यायमें जीवको पटकनेवाला है। ज्ञानी ऐसा जानकर अशुद्ध उपभोगसे बचनेकी श्रद्धा व दृढ भावना कर लेता है।

शुद्धं उपभोगयं जेन, मति श्रुत ज्ञान चिंतनं ।
अवधि मनःर्पर्यय शुद्धं, केवलं भाव समं जुतं ॥ १०२ ॥

अन्वयार्थ—(जेन शुद्धं उपभोगयं) जो शुद्ध भावोंका उपभोग करता है वही (मति श्रुत ज्ञान चिंतनं) सम्यक् मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानका चिंतवन करता है (अवधि मनःपर्यय शुद्धं केवलं) उसीके अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान तथा शुद्ध केवलज्ञान प्रगट होता है (भाव समं जुतं) वही समभावसे युक्त होता है।

भावार्थ—शुद्ध आत्माके भोगका फल यह है कि उसका मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान यथार्थ रहता है, उसका शास्त्रका जानना सफल है, क्योंकि वह आत्माका अनुभव करता रहता है। इसी शुद्ध आत्माके उपभोगसे उसको सुअवधिज्ञानकी तथा मनःपर्यय ज्ञानकी ऋद्धि पैदा होजाती है। तथा इसी शुद्ध आत्मीक आनन्दका उपभोग करते करते वह क्षपकश्रेणी चढकर घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञानी होजाता है। जो शुद्ध आत्माका भोग करता है उसीके परिणामोंमें समताभाव जागता रहता है। वही निराकुल जीवन विताता है।

अक्षर स्वर व्यंजनं जेन, पदश्रुत चिंतनं सदा ।
अवकाशं ज्ञानमयं शुद्धं, उपभोगं ज्ञान उच्यते ॥१०३॥

अन्वयार्थ—(जेन सदा अक्षर स्वर व्यंजनं पदश्रुत चिंतनं) जो सदा जिनवाणीके अक्षर, स्वर, व्यंजन, पद व वाक्योंका चिंतवन करता रहता है (अवकाशं) और अवसर निकालकर (ज्ञानमयं शुद्धं) ज्ञानमई शुद्ध आत्माका चिंतवन करता है (उपभोगं ज्ञान उच्यते) उसीको ज्ञान उपभोग कहा जाता है।

भावार्थ—आत्मज्ञानका व जिनवाणीका स्वाद लेना ज्ञान उपभोग है। जो अपना हित करना चाहे उसको सदा ही जिनवाणीके शब्दोंका अर्थ सहित पठन, पाठन, मनन करना चाहिये, णमोकार मंत्रका स्मरण करना चाहिये, जप करना चाहिये तथा संध्याके समय तीनों काल प्रातः, दोपहर व सांझको सामायिक करते हुए शुद्ध आत्माको अनुभव करनेका अभ्यास करना चाहिये।

ध्यान और स्वाध्याय करना ही ज्ञानका उपभोग है। सम्यग्ज्ञानका बारबार भोग करना ही हितकारी है। सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

धर्मामृतं सदा पेयं दुःखातंकविनाशनम्। यस्मिन् पीते परं सौख्यं जीवानां जायते सदा ॥ ६९ ॥

भावार्थ—आत्महितैषियोंको उचित है कि दुःखरूपी रोगके नाश करनेवाले धर्मरूपी अमृतका सदा पान करते रहना चाहिये जिसके पानसे जीवोंको सदा परम सुख होता है। आत्मज्ञानका ध्यानद्वारा भोग सर्वोत्तम है। यदि चित्त न लगे तब शास्त्रद्वारा आत्माका विचार करते रहना चाहिये। इंद्रिय विषयका उपभोग अशुद्ध है-ज्ञान उपभोग शुद्ध उपभोग है।

यस्य उपभोग चित्तार्थः, तस्य भोगं समाचरतु।
शुद्धं मुक्तिपथं येन, अशुद्धं दुर्गतिकारणं ॥ १०४ ॥

अन्वयार्थ—(यस्य उपभोग चित्तार्थः) जिस प्रकारके उपभोग करनेका चित्तमें प्रयोजन हो (तस्य भोगं समाचरतु) उसी प्रकारके भोगका आचरण करे (येन शुद्धं मुक्तिपथं) जो कोई शुद्ध आत्मज्ञानका उपभोग करता है वह मोक्षमार्गपर चलता है (अशुद्धं दुर्गतिकारणं) जो कोई अशुद्ध इंद्रियोंके उपभोगमें आसक्त होता है वह (दुर्गतिकारणं) खोटी गतिमें जाता है।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि जिस तरहका मनमें उद्देश्य हो वैसा आचरण पालना चाहिये। उपभोग दो प्रकारके हैं-शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध उपभोगसे मोक्ष होगी, अशुद्ध उपभोगसे संसार बढ़ेगा। यदि यह दृढ श्रद्धा हो कि यह संसार दुःखोंका सागर है इससे छूटकर मोक्षके परमानन्दको प्राप्त करना ठीक है तो यही योग्य है कि शुद्ध आत्मज्ञानका उपभोग लिया जावे, शुद्धात्मामें रमणकर परमानन्द भोगा जावे या शास्त्रोंके द्वारा आत्मज्ञानका स्वाद लिया जावे और जो मोक्षका प्रयोजन नहीं है, संसारमें ही भ्रमण करना है तो फिर इन्द्रियोंका उपभोग जो अशुद्ध है व संसारका कारण है बना ही हुआ है। इन्द्रियोंकी तृष्णामें डूबा हुआ जैसे अनादिकालसे संसारमें भ्रमण करता रहा वैसे आगामी भी भ्रमण करता रहेगा।

प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण ।

प्रमाणं दुविहं प्रोक्तं, जिनशासने च समं ध्रुवं ।
परोक्षं आदि जानाति, प्रत्यक्षं परमं बुधैः ॥ १०५ ॥

अन्वयार्थ—(प्रमाणं दुविहं जिनशासने प्रोक्तं) प्रमाण दो प्रकारका जिन आगममें कहा गया है (समं च ध्रुवं) यह प्रमाण समतारूप है तथा निश्चय स्वरूप है (परोक्षं आदि जानाति) पहला परोक्ष प्रमाण है उसको ज्ञानी जानता है (बुधैः परमं प्रत्यक्षं) महान् ज्ञानियोंके द्वारा दूसरा उत्कृष्ट प्रत्यक्ष प्रमाण जाना जाता है ।

भावार्थ—जिसके द्वारा आत्मा व अनात्माका निश्चय करें वह ज्ञान प्रमाण है, व्यवहारसे प्रमाणके मुख्य दो भेद हैं–परोक्ष, प्रत्यक्ष। जो ज्ञान इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है वह परोक्ष प्रमाण है, जैसे-मतिज्ञान श्रुतज्ञान। जो ज्ञान विना परकी सहायताके स्वयं आत्मा द्वारा होता है वह प्रत्यक्ष है। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष व उत्कृष्ट प्रत्यक्ष है। निश्चयसे आत्मानुभवरूप श्रुतज्ञान समतारूप परोक्ष प्रमाण है जब कि प्रत्यक्ष आत्माका अनुभवरूप परम समतामई केवलज्ञान है सो उत्तम प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्वसंवेदनरूप श्रुतज्ञान परोक्ष होनेपर भी आत्माका साक्षात्कार करता है, रागद्वेष रहित समतारूप है। तथा यही श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष केवलज्ञानका कारण है। श्रुतज्ञान द्वारा आत्मध्यानसे ही शुद्ध केवलज्ञान प्रगट होता है।

यस्य परोक्षं चिन्तंते, प्रत्यक्षं तस्य दिष्टते ।
जिन उक्तं समं शुद्धं, प्रमाणं भाव समाचरतु ॥ १०६ ॥

अन्वयार्थ—(यस्य परोक्षं चिन्तंते) जो परोक्ष श्रुतज्ञान द्वारा आत्माका चिंतवन करता है (तस्य प्रत्यक्षं दिष्टते) उसको प्रत्यक्ष आत्मा केवलज्ञानमई प्रगट होजाता है (जिन उक्तं समं शुद्धं) जिनेन्द्रने कहा है कि दोनों प्रमाण ज्ञान समतारूप, शुद्ध है (प्रमाणं भाव समाचरतु) हे भव्य जीवो ! भाव प्रमाण ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञानमें लीन हो ।

भावार्थ—आत्माका अनुभव स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है, समतारूप है तथा शुद्ध है। क्योंकि उस

॥ ५७ ॥

समय रागद्वेष-भाव नहीं होते हैं। यह आत्मानुभव ही जीवको क्षपकश्रेणी चढा देता है और यह जीव शीघ्र ही सर्व ज्ञानावरणको क्षय करके पूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञानको पालेता है। मोक्षका साधक श्रुतज्ञान द्वारा प्राप्त शुद्ध आत्माका अनुभव ही है। यही अनुभव कर्म बंधनोंको काट देता है और जीवको मुक्त भवनमें पहुंचा देता है।

परोक्ष ज्ञान सद्भावं, प्रत्यक्षं ज्ञान उच्यते।
परोक्षं दृष्टते जावा, दर्शनं ताव निश्चयं ॥ १०७ ॥

अन्वयार्थ—(परोक्ष ज्ञान सद्भावं) जो स्वाभाविक श्रुतज्ञानमई व आत्मानुभव रूप परोक्ष ज्ञान है (प्रत्यक्षं ज्ञान उच्यते) वही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है (परोक्षं दृष्टते जावा ताव निश्चयं दर्शनं) जबतक परोक्ष आत्मानुभव दिखलाई पडता है तबतक निश्चय सम्यग्दर्शन तो अवश्य होता ही है।

भावार्थ—स्वाभाविक आत्मानुभवमें इन्द्रिय व मन भी रुक जाते हैं। जब इन्द्रिय विषयोंको ग्रहण करना छोडे और मन नाना प्रकार विकल्पोंको करना छोडे तब ही स्वात्मानुभव होता है। इसलिये इसे ही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कहते हैं क्योंकि उस समय ज्ञान द्वारा अपना ही स्वाद लेरहा है। परोक्ष इसलिये कहते हैं कि यह ज्ञान श्रुतज्ञान है। जो श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमसे पैदा होता है। यह केवलज्ञानकी तरह प्रत्यक्ष नहीं है, केवलज्ञानके होते हुए सर्व ज्ञानावरणका क्षय होजाता है इसलिये वही पूर्ण प्रत्यक्ष है।

परोक्षं आचरणं नित्यं, प्रत्यक्षं चरण उच्यते।
परोक्षं तप सहावेन, प्रत्यक्ष तप ज्ञानं ध्रुवं ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थ—(नित्यं परोक्षं आचरणं) सदा परोक्ष श्रुतज्ञानमें आचरण करना है सो (प्रत्यक्षं चरण उच्यते) प्रत्यक्ष आचरण कहाता है। (परोक्षं तप सहावेन) परोक्ष श्रुतज्ञान द्वारा तपमई वर्ताव (प्रत्यक्ष तप ज्ञानं ध्रुवं) प्रत्यक्ष निश्चय आत्मज्ञानमई तप कहा जाता है।

भावार्थ—स्वरूपाचरण चारित्र आत्मानुभवमें लीन होना है अर्थात् परोक्ष श्रुतज्ञानमें आचरण करना है। यही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष चारित्र कहाता है। परोक्ष श्रुतज्ञानके द्वारा आत्माके स्वभावमें

तपना है सो ही स्वरूपासक्त निश्चय प्रत्यक्ष तप है। आत्मामें चलना आचरण है, आत्मामें तपना तप है। जहांतक केवलज्ञान नहीं वहांतक श्रुतज्ञान द्वारा आत्माके निश्चय रूपका श्रद्धान व ज्ञान होता है। इसी आत्माके श्रद्धान व ज्ञानमें चलना निश्चय चारित्र है व इसीमें तपना निश्चय ज्ञानमई तप है।

उपभोगं परोक्षं न जानाति, शुद्धभावं स्वयं ध्रुवं।
निर्गुणं गुणं न जानाति, मिथ्यात्व सहकारिना ॥ १०९ ॥

अन्वयार्थ—(परोक्षं उपभोगं शुद्धभावं स्वयं ध्रुवं न जानाति) पांच इंद्रिय व मनद्वारा जहां इंद्रियोंका भोग व मनके विकल्पोंका भोग है वह उपभोग शुद्ध आत्मीक निश्चयभावको नहीं जानता है। (निर्गुणं मिथ्यात्व सहकारिना गुणं न जानाति) सम्यक्त गुण रहित भाव मिथ्यात्वके कारणसे आत्मीक गुणको नहीं जान सक्ता है।

भावार्थ—जिस किसीकी गाढ रुचि पांच इंद्रियोंके भोगोंमें होती है उसका मन भी उन्हींके अशुद्ध विचारोंमें लीन रहता है, उसके भावोंमें मिथ्यात्व कर्मके उदयसे घोर अंधकार रहता है। उसका सम्यक्त गुण आच्छादित रहता है इसलिये वह आत्मीक स्वभावका श्रद्धान व ज्ञान न करता हुआ उसका अनुभव भी नहीं कर सक्ता है। ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव परोक्ष उपभोगमें लीन रहता है, आत्माका साक्षात् भोग नहीं कर सक्ता है।

सम्यक् आगम।

मिथ्या समय न दिष्टंते, सम्यक् मिथ्यात्व देशनं।
रागद्वेष विषय येन, समय मिथ्या स गीयते ॥ ११० ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या समय सम्यक् मिथ्यात्व देशनं न दिष्टंते) मिथ्या आगम सम्यग्दर्शन तथा मिथ्या दर्शनका उपदेश नहीं दिखला सक्ता है (येन रागद्वेष विषय स समय मिथ्या गीयते) जिस आगमका विषय राग द्वेष प्राप्त करना हो वही मिथ्या आगम कहा जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माकी परभावोंसे भिन्न प्रतीति है। मिथ्यादर्शन आत्मप्रतीति रहित है, इन दोनोंका सच्चा स्वरूप जो दिखावे वही सच्चा आगम है। नहीं तो वह मिथ्या आगम है। मिथ्या आगमका यही स्वरूप है जो मिथ्या संसार व भोगोंकी पुष्टि करें जिसमें वीतराग विज्ञानमई धर्मका व आत्मज्ञानका यथार्थ उपदेश न हो। ऐसे मिथ्या आगमका ज्ञान कदापि मोक्षमार्गमें कार्यकारी नहीं है। सच्चे आगमसे ही स्व परका तथा सम्यक् व मिथ्यात्व सच्चा स्वरूप प्रगट होसक्ता है। मुमुक्षुको सत्य आगमका अभ्यास कर्तव्य है।

समयं शुद्ध जिन उक्तं, तीर्थं तीर्थकरं कृतं ।
समयं प्रवेश येनापि, ते समयं साध्य ध्रुवं ॥ १११ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्ध समयं जिन उक्तं) शुद्ध या निर्दोष आगमके वक्ता श्री जिनेन्द्र हैं (तीर्थं तीर्थंकरं कृतं) संसारसे तारनेवाले रत्नत्रयमई धर्मका कथन तीर्थंकरोंने किया है (येनापि समयं प्रवेश) जो कोई उस जिन आगममें प्रवेश करता है (ते ध्रुवं समयं साध्यं) उसीने ही निश्चय आत्माका साधन किया है।

भावार्थ—श्री ऋषभ आदि महावीर पर्यंत २४ तीर्थङ्करोंने इस अवसर्पिणी कालमें तीर्थका प्रचार किया है-बताया है कि व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय धर्म ही भवसागरसे पार करनेवाला है। व्यवहार रत्नत्रय निमित्त कारण है, निश्चय रत्नत्रय उपादान कारण है। आत्माका आत्मारूप श्रद्धान, ज्ञान व आचरण अर्थात् आत्मानुभवन मात्र निश्चय रत्नत्रय है, यथार्थ देव शास्त्र गुरुका व तत्वार्थोंका श्रद्धान व ज्ञान व उसके अनुसार साधु व श्रावक चारित्र पालन व्यवहार रत्नत्रय है, व्यवहारके द्वारा वर्तन करते हुए जब आत्मानुभव होता है तब ही सच्चा कारण बनता है उसीसे ही आत्मा शुद्ध होता जाता है। उपादान कारण उत्तर क्षणमें स्वयं कार्य रूप होजाता है। इसी रत्नत्रयमई धर्मका कथन जिनागममें उन्हीं जिनेन्द्रके कथनके अनुकूल है। उस जिनागममें जो भलेप्रकार प्रवेश करके उसका पारगामी होता है वही निश्चय आत्माका साधन करता है। अर्थात् वही आत्मानुभवको पाकर शुद्ध होजाता है।

ध्रुव समयं न जानाति, अनेक राग बन्धनं ।
दुर्बुद्धी विषया होंति, समय मिथ्या स उच्यते ॥ ११२ ॥

अन्वयार्थ—(ध्रुव समयं न जानाति) जिसमें निश्चय शुद्ध आत्माका ज्ञान न हो (अनेक राग बन्धनं) व जिसमें मिथ्या बुद्धिसे लिखे गए
अनेक राग भावोंमें बांधनेवाली बातें हों (दुर्बुद्धि विषया होंति) उसको मिथ्या आगम कहते हैं।
विषय हों (स मिथ्या समय उच्यते) उसको मिथ्या आगम कहते हैं । वासनाको व रागद्वेषको मिटानेकी अपेक्षा बढ़ा

भावार्थ—मिथ्या आगम वह है जो संसारकी वासनाको व रागद्वेषको मिटानेकी अपेक्षा बढ़ा
देवे व जिसमें सच्चे अनेकान्तरूप पदार्थका कथन न हो। जिसमें आत्माको सर्व पर भावोंसे रहित
जैसाका तैसा न बताया हो, रागद्वेषकी पुष्टि की गई हो, खोटी बुद्धिबलसे अधर्मको धर्म बताया
हो, मनरंजक अनेक विषयोंको कहा हो, जिस शास्त्रमें पशु बलिको, रात्रि भोजनको, मांसाहा-
रको व मांसके दानको धर्म बताया हो, जल स्नान मात्रसे पापकी शुद्धि मानी हो, रागवर्द्धक नृत्य
श्रृङ्गारादिसे धर्म माना हो, वह सब कुशास्त्र हैं।

समयं च शुद्ध साध्यं च, असमय भावनं कृतं ।
समय मिथ्या जिनं उक्तं, संसारे दुःख बीजयं ॥ ११३ ॥

अन्वयार्थ—(समयं च शुद्ध साध्यं च) आगम वही यथार्थ है जो शुद्ध आत्माकी प्राप्तिका साधन
बतावें। परन्तु जो (असमय भावनं कृतं) शुद्धात्मासे विपरीत अशुद्ध आत्माकी व अनात्माकी भावना
करावें वह (मिथ्या समय जिनं उक्तं) मिथ्या आगम है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (संसारे दुःख बीजयं) वह संसा-
रमें दुःखोंके उत्पन्न करनेका बीज या कारण है।

भावार्थ—आगम वही है जिससे ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जिस ज्ञानके बलसे विवेक हो, भेदविज्ञान
हो, आत्मा रागद्वेषादिसे भिन्न ज्ञाता दृष्टा वीतराग आनन्दमय अपने ज्ञानमें झलकने लग जावे।
जो आगम ऐसे शुद्ध आत्माको न दिखावे, किन्तु जिसके पढनेसे रागद्वेषमई आत्माकी भावना हो
व मायाजालमई संसारमें ही उलझना हो। स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथामें
रंजायमानपना हो वह संसार-वर्द्धक मिथ्या आगम है। ऐसे आगमको पढनेसे व मनन करनेसे
राग, द्वेष, मोह बढेगा, संसार बढेगा, भव भ्रमण न हटेगा।

समयं सर्वज्ञ शुद्धं च, साध्यते भव्यलोक यं ।
अज्ञान व्रत क्रिया येन, समय मिथ्या समाचरेत् ॥ ११४ ॥

अन्वयार्थ—(समयं सर्वज्ञ शुद्धं च) आत्मा सर्वज्ञ स्वरूप है तथा राग द्वेषादि व कर्मादि रहित शुद्ध है। (भव्य लोक यं साध्यते) भव्य जीव इसीका साधन करते हैं। (अज्ञान व्रत क्रिया येन) जिसने आत्मज्ञान रहित व्रत पाले, चारित्र पाला उसने (मिथ्या समय समाचरेत्) मिथ्या आत्माका ही सेवन किया था, मिथ्या आगमको ही जाना।

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे परमात्माके समान सर्वज्ञ है तथा वीतराग है व आनन्दमई है। संसार अवस्थामें कर्म मल सहित है। इस कर्म मलको धोनेके लिये भव्य लोग उद्यम करके अपने ही शुद्धात्माका ध्यान लगाते हैं। इसी शुद्ध आत्मानुभव रूप ध्यानसे आत्मा शुद्ध होजाता है जो आत्माके यथार्थ ज्ञान तथा श्रद्धानको न रखते हुए अज्ञान सहित व्रत व चारित्र पालते हैं। उनके अशुद्ध आत्माकी ही भावना रहती है। किसी विषय भोगकी या किसी कषायकी पुष्टिकी भावना रहती है वे अशुद्ध आत्मामें ही चलते हैं, वे अशुद्ध-मिथ्या आगमका ही सेवन कर रहे हैं।

समयं दर्शनं ज्ञानं, चरणं तप सहकारिनो।
समयं प्रवेश अज्ञानं, व्रत तप मिथ्या संजुतं ॥११५॥

अन्वयार्थ—(समयं) सच्चा आगम वह है जो (दर्शनं ज्ञानं चरणं तप सहकारिनो) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र व सम्यक्तपका सहकारी हो (व्रत तप मिथ्या संजुतं) मिथ्या व्रत, तपकी प्रेरणा करनेवाला (अज्ञानं समयं प्रवेश) अज्ञान आगममें प्रवेश है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनादि चार आराधना मोक्षमार्ग है। जिस आगमके मनन करनेसे इनके आचरणमें प्रेरणा हो, आत्मज्ञान ध्यानमें उत्तेजना हो, वही सच्चा सर्वज्ञ प्रणीत आगम है। परन्तु जो इससे विपरीत संसार वर्द्धक व आत्मज्ञान शून्य चारित्र व तपमें प्रेरित करे वह अज्ञानमय मिथ्या आगम है। जो अपना कल्याण करना चाहें उनको उचित है कि मिथ्या आगमसे बचकर सत्य आगमकी शरण ग्रहण करें।

सम्यक्त्व बाधक सात प्रकृति कथन।

शुद्धं च जिन उक्तं च, अप्पा परमप्पयं शुद्धं।
क्षयोपशमं न शुद्धंते, प्रकृति मिथ्या समं ध्रुवं ॥ ११६ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्ध च जिन उक्तं च) जिनेन्द्र भगवानका कथन शुद्ध है (अप्पा परमप्पयं शुद्धं) आत्मा तथा परमात्मा दोनों ही स्वभावसे शुद्ध हैं (क्षयोपशमं न शुद्धंते) क्षयोपशम भाव शुद्ध नहीं है (प्रकृति मिथ्या समं ध्रुवं) क्योंकि वहां अवश्य मिथ्यात्व सम्यक्त प्रकृतिका उदय है।

भावार्थ—शुद्ध सम्यग्दर्शन वह है जहां आत्माको परमात्माके समान शुद्ध जाने ऐसा ही जिनेन्द्र भगवानका उपदेश है इससे कुछ भी कम श्रद्धान जहां हो वह शुद्ध या क्षायिक भाव नहीं है किंतु क्षयोपशम भाव है। मिश्र तीसरा गुणस्थान सम्यक्मिथ्यात्व है वहां सत्य असत्य दोनोंका दही गुडके स्वादके समान मिश्रित स्वाद आता है। इस गुणस्थानको क्षयोपशम भाव कहते हैं क्योंकि मिथ्यात्वका उदयाभावी क्षय तथा उपशम है, सम्यक्मिथ्यात्वका उदय है अथवा क्षयोपशम सम्यक्त शुद्ध सम्यक्त नहीं है वहां सम्यक्त प्रकृतिका उदय है जिससे चल, मल, अगाढ दोष लगते हैं। दर्शनमोहकी किसी भी प्रकृतिके उदयसे शुद्ध सम्यग्दर्शन नहीं होसक्ता है।

अनेय तप तप्तानां, व्रत संयम क्रियासमं।
क्षयोपशमं न साधंते, मिथ्या छाया प्रकृतितः ॥ ११७ ॥

अन्वयार्थ—(अनेय तप तप्तानां व्रत संयम क्रिया समं) जो कोई व्रत, संयम, चारित्रके साथ अनेक प्रकारके तप तपते हैं परंतु शुद्ध सम्यग्दर्शन नहीं रखते, क्षयोपशम भावरूप मिश्र श्रद्धान या मलीन श्रद्धान रखते हैं वे (क्षयोपशमं न साधंते) क्षयोपशम भावके होनेपर मोक्ष नहीं साध सक्ते क्योंकि (मिथ्या छाया प्रकृतितः) वहां मिथ्यात्वकी छाया पड रही है।

भावार्थ—व्रत, चारित्र, तप आदि मोक्षके साधक तब ही होंगे जब शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन हो। यदि मिश्र या मलीन श्रद्धान होगा तो वे मिथ्यात्वकी किसी भी प्रकृतिके उदयसे मोक्षका साधन नहीं कर सक्ते हैं।

आशा स्नेह लोभं च, लाजं भय गारव स्थितं ।
विषयं रागसमं छाया, क्षयोपशमं न शुद्धए ॥ ११८ ॥

अन्वयार्थ—(आशा स्नेह लोभं च लाज भय गारव स्थितं) जिसके भावोंमें संसार सम्बन्धी आशा, स्नेह, लोभ, लज्जा व घमण्ड किसी प्रकारका है (विषयं रागसमं छाया) वह विषयोंके रागके साथ मिथ्यात्वकी छाया है वह (क्षयोपशमं) क्षयोपशम भाव है (न शुद्धये) वह शुद्ध साध्यको सिद्ध नहीं कर सक्ता।

भावार्थ—जो कोई किसी संसारीक सुखकी आशासे व किसीके स्नेहवश या कोई धनादिके लोभवश या किसी बडेके भयसे या अपना अभिमान साधनेको या इंद्रिय विषयके रागसे सच्चे धर्मको भी सेवन करता है वह क्षयोपशम भावमें रहता हुआ सम्यक्मिथ्यात्व या सम्यक्प्रकृतिके उदयसे शुद्ध भावको साधन नहीं करसकता है। विना निर्मल या शुद्ध सम्यक्तके कोई जीव संसारका बेडा पार नहीं करसकता।

विकहा विमुक्त रागं च, उपशम संसार स्थितिं ।
यदि क्षपणं न साध्यंते, प्रकृति मिथ्या स उच्यते ॥११९॥

अन्वयार्थ—(विकहा विमुक्त रागं च) विकथाओंसे छूटा हुआ धर्मानुराग है और (उपशम संसारस्थितिं) संसारकी मर्यादाको भी कम कर दिया है। (यदि क्षपणं न साध्यंते) तौ भी यदि क्षायिक सम्यक्त न होसके तो (प्रकृति मिथ्या स उच्यते) सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्वका उदय कहा जायगा।

भावार्थ—जो कोई स्त्री, भोजन, देश व राजाओंकी कथाओंमें रागी नहीं है, किन्तु धर्मानुरागी है व जिसका संसार बहुतसा कट गया है अर्थात् जो निकट भव्य है वह भी दर्शनमोहनीयकी तीसरी प्रकृति सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्वके उदयसे क्षायिक सम्यक्तको नहीं साधसक्ता। चार अनन्तानुबन्धी कषाय और तीन दर्शनमोहकी प्रकृति जबतक मूलसे क्षय नहीं होती है तबतक क्षायिक सम्यक्त नहीं होसक्ता। विना क्षायिक या शुद्ध सम्यक्तके कोई मोक्ष नहीं जासका।

मिथ्या सम्यक् मिथ्या च, प्रकृति मिथ्या न दिष्टते ।
रागदोषं न चिंतन्ते, कषायं त्यक्तते बुधैः ॥ १२० ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या सम्यक् मिथ्या च प्रकृति मिथ्या न दिष्टते) जहां मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति व सम्यक् प्रकृति ये तीनों प्रकारके मिथ्यात्वका उदय नहीं दिखलाई पड़े (राग दोषं न चिंतते) जो संसारके रागकी व किसीके द्वेषकी कभी चिंता न करे व जहां (बुधैः कषायं त्यक्तते) बुद्धिमानोंने कषायोंका त्याग किया है, वही क्षायिक सम्यक्त है।

भावार्थ—क्षायिक सम्यक्तके घातक सात कर्म प्रकृतियें हैं उनका क्षय होजानेसे ज्ञानीका राग-द्वेष मनमें नहीं ठहरता है। प्रयोजनवश राग या द्वेष करता है। परन्तु शीघ्र ही भूल जाता है। विना अनन्तानुबन्धी कषायके अत्यन्त कृष्ण व भयानक संसार सम्बन्धी रागद्वेष नहीं होता है।

कषायं जिन उक्तं च, चत्वारि अनन्तबंधनं।
त्यक्तते शुद्धदृष्टी च, मुक्तिगमनं च कारणं ॥ १२१ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उक्तं च) श्री जिनेन्द्रने कहा है कि (चत्वारि अनन्तबंधनं कषायं) चार अनन्तानुबन्धी कषायोंको (शुद्धदृष्टी च त्यक्तते) सम्यग्दृष्टी त्याग देता है (मुक्तिगमनं च कारणं) इसलिये कि वह मोक्षकी प्राप्ति कर सके।

भावार्थ—मोक्ष वीतराग ज्ञानानन्दमय जीवकी अवस्था है उसकी प्राप्तिका उपाय भी वीतराग विज्ञानमई आत्मीक भाव है। इस कारणसे सम्यग्दृष्टी जीवके चार अनन्तानुबन्धी कषायोंका उदय नहीं होता है। क्योंकि ये अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ सम्यग्दर्शनको और स्वरूपाचरण चारित्रको रोकनेवाले हैं। तथा अनन्त जो मिथ्यात्व भाव उसको पुष्ट करनेवाले हैं या उसको साथ देनेवाले हैं।

लोभं क्रोधं च मानं च, माया मिथ्या न दिष्टते।
कषायं चतु अनन्तानं, त्यक्तते शुद्ध दृष्टि तं ॥ १२२ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्ध दृष्टितं) सम्यग्दृष्टीके (मिथ्या, लोभं क्रोधं च मानं च माया च तु अनन्तानं कषायं न दिष्टते त्यक्तते) सम्यग्दृष्टीके भीतर मिथ्यात्वभाव तथा चार अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभका उदय नहीं दिखलाई पडता है। वह इनको त्यागता है तब ही सम्यग्दृष्टी होता है।

भावार्थ—अनादिकालसे संसारी जीवके सम्यक्तनामा गुणको पांच कर्म प्रकृतियोंने ढक रखा है-मिथ्यात्वकर्म और चार अनन्तानुबन्धी कषाय। जब इनका उपशम होता है तब सबसे पहले उपशम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है तब एक मिथ्यात्वी जीव सम्यक्ती कहलाता है।

अनन्तानुबंधी लोभ।

लोभं अशुद्ध परिणामं, चिन्तनं अनन्त नास्तितं।
उपभोगं लोभ त्यक्तंति, शुद्धदृष्टिं समाचरतु ॥ १२३ ।

अन्वयार्थ—(लोभं अशुद्ध परिणामं) लोभ मलीनभाव ह (अनंत नास्तितं चिंतनं) जहां अनंत प्रकारके नास्तिक भावोंका विचार आया करता है (उपभोगं लोभ त्यक्तंति) संसारके भोगोंका लोभ छोड करके (शुद्धदृष्टिं समाचरतु) शुद्ध सम्यक्त भावको ग्रहण करो।

भावार्थ—अनन्तानुबन्धी लोभ ऐसा मलीनभाव है कि उसके असरसे यह जीव अज्ञानी रहता हुआ मोक्षके वा आत्माके स्वाभाविक आनन्दका विश्वास नहीं करता है न उसको परलोकका ही विश्वास होता है। नास्तिकभावका ऐसा प्रकाश रहता है कि उसे आत्माका व परमात्माका जरा भी श्रद्धान नहीं होता है। वह केवल इस शरीरके बने रहनेका, इंद्रियोंकी लम्पटताका रागी रहता है। विष[illegible] गाढ तृष्णा रखता हुआ वह धन कमानेका महान लोभी होजाता है। न्याय अन्याय [illegible]चार छोडकर धन एकत्र करता है। उसको हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांच पापोंसे कुछ भी ग्लानि नहीं होती है। भोगोंके लिये बड़े२ पाप कर डालता है। संसारका लोभ ही अनन्तानुबन्धी लोभ है। इसलिये उपदेश करते हैं कि यह संसार असार है, दुःखोंका घर है, शरीर नाशवंत है व अपवित्र है, भोग अतृप्तिकारक हैं, ऐसा जानकर इस अनन्तानुबन्धी लोभको छोडके, संसारके भोगोंकी श्रद्धा छोडके आत्मीक आनन्दके भोगकी श्रद्धा करो। आत्माके अविनाशी स्वभाव पर विश्वास लाओ। और शुद्ध सम्यग्दर्शनका आचरण करो। अपने भावोंमें निर्मल आत्मीक श्रद्धानको पक्का जमाए रहो, यही इस भव व पर भवमें सुख देनेवाला है।

लोभं पुन्यार्थं जेन, परिणामं तिष्टते सदा ।
अनंतानलोभ सद्भावं, त्यक्तते शुद्ध दृष्टितं ॥ १२४ ॥

अन्वयार्थ—(जेन पुन्यार्थं लोभं परिणामं सदा तिष्टते) जिसके भीतर पुण्यकी प्राप्तिके लिये लोभ भाव सदा रहता है उसके (अनंतानलोभ सद्भावं) अनन्तानुबन्धी लोभका प्रकाश है। इसलिये (शुद्ध दृष्टितं त्यक्तते) सम्यग्दृष्टी पुण्यका लोभ भी छोड देता है।

भावार्थ—पुण्यकर्म संसारके साताकारी भोग सामग्रीका निमित्त मिलाता है। जिसको भोगोंके भोगनेका लोभ होगा उसीके पुण्यके उपजानेका लोभ होगा। अनन्तानुबन्धी लोभ कषायके द्वारा मलीन भाव अनेक प्रकार धर्मका साधन करता है, साधु व श्रावकका आचरण बिलकुल ठीक पालता है, परन्तु अंतरंग वासना यही होती है कि इंद्रियोंके भोगोंका सुख मिले ऐसा पुण्य बन्ध होजावे। सम्यग्दृष्टी तब ही होता है जब भोगोंको रोग जानता है। इन्द्रोंके व चक्रवर्ती सम्राटोंके भोग भी जिसे बन्धन दीखते हैं। आत्माको पराधीन करनेवाले मालूम पडते हैं। जब आत्मीक आनन्दके रसका स्वाद आता है और भोगोंके स्वादकी विरसता परिणामोंमें झलक जाती है तब ही सम्यग्दृष्टिका प्रकाश होता है। इसलिये सम्यग्दृष्टीका सर्व धम साधन आत्माको स्वाधीन-मुक्त करनेके हेतुसे ही होता है। वह पुण्यकी कदापि वांछा नहीं करता है। पुण्यकी वांछा रहना भी अनन्तानुबन्धी कषायके उदयका कार्य है।

लोभं श्रुत तपं कृत्वा, व्रतं कत्वा अनेकधा ।
ज्ञानहीनो अनन्तानं, त्यक्तते शुद्ध दृष्टितं ॥ १२५ ॥

अन्वयार्थ—(अनन्तानं लोभं) अनन्तानुबन्धी लोभ सहित (श्रुत तपं कृत्वा व्रतं कृत्वा अनेकधा) शास्त्र अनेक प्रकार पढ़े, अनेक तरहके तप तपे व अनेक तरहके व्रत पाले तौभी (ज्ञानहीनो) आत्मज्ञान रहित है अतएव (शुद्ध दृष्टि तं त्यक्तते) सम्यग्दृष्टी उसे त्याग देता है।

भावार्थ—जिसके अनन्तानुबन्धी लोभका उदय है वह अंतरंगमें विषयवासनाके अभिप्रायसे शास्त्र पाठ पढता है, तप तपता है व व्रतोंका आचरण करता है उसको आत्मज्ञान नहीं हो पाता।

अतएव उसका सारा धर्म साधन संसारका ही कारण है, मोक्षका साधक नहीं है। ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टी ऐसे लोभसे बचा रहता है। सम्यक्तीको तो सिवाय निजात्म लाभके और कोई भावना नहीं होती है।

लोभं मूल असुहस्य, श्रुतं भेद अनेकधा।
विश्वासं लोभ अनंतानं, त्यक्तंते शुद्ध साधव: ॥ १२६ ॥

अन्वयार्थ—(लोभं) लोभ कषाय (अनेकधा भेद असुहस्य मूल श्रुतं) अनेक तरहके भेदरूप अशुभ कार्योंका मूल शास्त्रमें कहा गया है इसलिये (शुद्ध साधव:) शुद्ध साधन करनेवाले सम्यग्दृष्टी जीव (अनन्तानं लोभ विश्वासं त्यक्तंते) अनन्तानुबन्धी लोभका विश्वास छोड देते हैं।

भावार्थ—जितने भी पाप कार्य जगतमें प्रसिद्ध हैं उन सबका मूल कारण अनन्तानुबन्धी लोभ है। इसी प्रकारकी लोभ सहित श्रद्धाके वश प्राणी जूआ खेलते, मांस खाते, मदिरा पीते, शिकार खेलते, चोरी करते, वेश्यागमन करते, परस्त्री सेवन करते, झूठ बोलते, विश्वासघात करते, हर-तरह परको सताकर अपना स्वार्थ साधन करते हैं। नर्क निगोद जाने लायक बहुत आरम्भ व बहुत परिग्रहके सब भाव इसी कषायवश होते हैं। इसलिये शुद्धात्माके साधन करनेवालोंके इस प्रकारकी अनन्तानुबन्धी कषायका त्याग ही होता है।

लोभं अनन्त असत्यस्य, अचेतं असुह अनर्थ यं।
अनंतान लोभ भावेन, त्यक्तते शुद्ध साधव: ॥ १२७ ॥

अन्वयार्थ—(अनन्तान लोभ भावेन) अनन्तानुबन्धी लोभके भावसे (अनन्त असत्यस्य लोभं) अनन्त प्रकारके असत्य पदार्थोंका लोभ होता है (अचेतं असुह अनर्थ यं) जिन पदार्थोंका लोभ होता है वे पदार्थ अज्ञान कारक, अशुभ तथा अनर्थक हैं, अतएव (शुद्ध साधव: त्यक्तते) शुद्ध स्वभावके साधन करनेवाले ऐसे लोभको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जगतमें अनन्त पर्याय या अवस्था विशेष होती हैं वे सब क्षणभंगुर हैं। उनमें फँस जाना अज्ञान है, बुरा है, व वृथा है। जैसे देवगतिके व मानव गतिके सुखोंमें लुभा जाना।

राज्य, धन, कुटुम्ब, जगत मात्रकी अति तृष्णा रखनी। ऐसी तृष्णाके वश यह प्राणी वृथा ही तीव्र पाप बांधकर दुर्गतिमें चला जाता है। इस तृष्णाका मूल कारण अनंतानुबन्धी लोभ है। इसलिये सम्यग्दृष्टी ऐसे अज्ञान मूलक लोभसे बचे रहते हैं। वे जगतके क्षणभंगुर पदार्थोंके लोभी नहीं होते हैं, उनको अपने सच्चे हितकारी मित्र सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होगई है।

लोभं श्रुतं अनेकार्थं, चक्र इन्द्र नराधिपं।
अनेय भाव उत्पाद्यंते, त्यक्तते शुद्ध दृष्टि तं ॥ १२८ ॥

अन्वयार्थ—(अनेकार्थं श्रुतं चक्र इन्द्र नराधिपं लोभं) अनेक प्रकारके शास्त्रोंके जाननेका लोभ, चक्रवर्ती पदका लोभ, इन्द्र पदका लोभ, महाराज पदका लोभ (अनेय भाव उत्पाद्यंते) इत्यादि अनेक भावोंको अनंतानुबंधी लोभ पैदा कर देता है अतएव (त्यक्तते शुद्ध दृष्टि तं) सम्यग्दृष्टी ऐसे अनंतानुबंधी लोभको त्याग देता है।

भावार्थ—लोभ अनेक प्रकारका होता है। किसीको यही राग होता है कि मैं अनेक शास्त्रोंको जानकर ऐसा विद्वान बन जाऊं कि मेरी बात हरकोई मानलें, मैं खूब पूजा प्रतिष्ठा कमाऊं व ज्ञानके बलसे अपना लौकिक स्वार्थ सिद्ध करूं। किसीको चक्री पदका, किसीको इन्द्र पदका, किसीको नारायण, प्रतिनारायण, बलिभद्र पदका, किसीको राजा महाराजा सेठ साहूकारका पद पानेका लोभ होता है। यह सब संसारवर्द्धक भाव है। अतएव सम्यग्दृष्टीके ऐसे लोभका त्याग ही होता है क्योंकि वह तो बारह भावनाओंके बलसे सदा ही संसारसे पीठ दिये हुए रहता है और मोक्षके सामने चला जाता है।

लोभं कृतं जिन उक्तं च, शुद्धधर्मं स्वयं ध्रुवं।
आत्मा परमात्म तुल्यं च, तं लोभं मुक्तिगामिनो ॥ १२९ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उक्तं च शुद्ध धर्मं स्वयं ध्रुवं आत्मा परमात्म तुल्यं लोभं कृतं) जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए शुद्ध रत्नत्रयमई निश्चय आत्मीक धर्मका राग कि यह अपना आत्मा परमात्मा तुल्य है इसे परमात्मा रूपमें कर देना चाहिये। ऐसा रागमई लोभ जो किया जाता है (तं लोभं मुक्तिगामिनो) वह लोभ मोक्षगामी जीवोंके होता है।

भावार्थ—मोक्षगामी महात्माओंके भीतरमें संसार सम्बन्धी राग या लोभ तो कोई रहता नहीं। यदि नीची पदवीमें कुछ राग है तो वह मात्र धर्मानुराग है कि मुझे शुद्ध आत्माके स्वभावका लाभ हो, मैं स्वयं परमात्माके बराबर हूँ, परन्तु कर्मबन्धके कारणसे संसार अवस्था होरही है उसे मुझे दूर करना है और निजानन्दमई निजपद प्राप्त करना है, ऐसा लोभ किसी अपेक्षा ग्रहण योग्य हैं। परन्तु संसारका लोभ तो सर्वथा त्याग योग्य है। जहांतक धर्मानुराग है वहांतक भी लोभ कषायका उदय है परन्तु वह अनन्तानुबन्धी नहीं है। अनन्तानुबन्धी लोभ तो सम्यग्दृष्टीके होता ही नहीं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध।

क्रोधं क्रूर भावेन, आरति रौद्र समं जुतं।
असत्य सहितो हिंसा, त्यक्ते शुद्ध दृष्टि तं ॥ १३० ॥

अन्वयार्थ—(क्रोधं) अनन्तानुबन्धी क्रोधका स्वरूप यह है कि (क्रूर भावेन आरति रौद्र समं जुतं) द्वेषपूर्ण भावके साथ आर्त रौद्रध्यानमें लगे रहना (असत्य सहितो हिंसा) असत्य बकना व साथ ही हिंसा कर बैठना (शुद्ध दृष्टि तं त्यक्ते) शुद्ध सम्यग्दृष्टी ऐसे क्रोधको त्याग देता है।

भावार्थ—अब अनन्तानुबन्वी क्रोधको इसलिये कहा है कि संसारके भोगोंकी तीव्र अभिलाषा होते हुए जब उनकी प्राप्तिमें कोई बाधक होता है तब अनन्तानुन्धी क्रोध पैदा होजाता है तब अति दुष्ट भावके साथ आर्त रौद्रध्यान करता है। इष्टके वियोग होनेपर उसका कारण कर्मके उदयको न विचार कर किसीपर उस वियोगका दोषारोपण मानकर उसके साथ द्वेष रखकर उसको गालियां बकता है व कभी कभी मार भी बैठता है। इसी तरह अनिष्टके संयोग होनेपर यदि चेतन पदार्थ स्त्री आदि हुए तो उनको बडे द्वेषभावसे देखता है, उनके नाशकी चिन्ता करता है, नाशका उपाय भी करता है। यदि अनिष्ट अचेतन पदार्थ मकानादिका संयोग हुआ तो जिनके निमित्तसे हुआ उनको जानकर उनसे द्वेषभाव रखता है, उनका बिगाड करता है। यदि कोई रोग हुआ तो औषधिके लिये दुःखित होता है, यदि कुछ विलम्ब होता है तो अतिशय क्रोधी बन जाता है।

भोगोंकी तीव्र इच्छा रखते हुए भोगोंके लिये भोगमें बाधक पिता, भाई आदिकी हिंसा कर डालता है। हिंसा करने करानेमें, असत्य बोलकर ठगने ठगानेमें, चोरी करने करानेमें, परिग्रह बढने व बढवानेमें तीव्र रागी होनेके कारणसे जो कोई उसके इस स्वार्थमें बाधक या हानिकारक उसे मालूम पडते हैं उनको कटुक वचन कहता है। तथा उनकी हिंसा भी कर देता है। यह सब अनन्तानुबन्धी क्रोधका प्रकार है। जो जगतमें धन, स्त्री, भूमि, राज्यवश अन्यायसे दूसरोंका घात कर डालते हैं। सम्यग्दृष्टीके ऐसा क्रोध नहीं होता है।

क्रोध अनंतान दिष्टंते, असुह सुह सम
शरीरं दुक्ख उत्पायंते, थावरं क्रोध न त्यक्तयं ॥ १३१ ॥

अन्वयार्थ—(असुह सुह समाजुतं) अशुभ तथा शुभ कार्योंको करते हुए जहां (अनंतान क्रोध दिष्टंते) अनन्तानुबन्धी क्रोध दिखलाई पडे (शरीरं दुक्ख उत्पायंते) वहां शरीरमें भी दुःख पैदा होता है (क्रोध न त्यक्तयं थावरं) क्रोध न छोडनेसे अन्तमें स्थावर कायमें चला जाता है।

भावार्थ—जिसके परिणामोंमें अनंतानुबंधी क्रोध हो चाहे वह बाहरसे हिंसादि पाप करे या चाहे वह पूजा पाठ जप तप करे, उसको भावोंके अनुसार ही फल मिलेगा। किसीका नाश करनेके हेतुसे कभी मंत्र यंत्र पूजा पाठादि शुभ काम किये जाते हैं। द्वेषभावके भीतर होते हुए क्रोधकी अग्नि शरीरको दुःखित रखती है, रुधिर सूख जाता है तथा क्रोध भावकी वासना न त्यागनेसे वह प्राणी स्थावर कायमें जाकर जन्म धारण कर लेता है।

अप तेज वायुं च, पृथवी वनस्पतीस्तथा।
विकलत्रय उत्पायंति, क्रोधं त्यक्तंति साधवः ॥ १३२ ॥

अन्वयार्थ—अनन्तानुबन्धी क्रोध भाव जीवको (अप तेज वायुं च) जल कायमें, अग्नि कायमें, वायु कायमें (तथा पृथ्वी वनस्पती) तथा पृथ्वी कायमें और वनस्पति कायमें तथा (विकलत्रय उत्पायंति) विकलत्रयमें पैदा करा देता है। ऐसा जानकर (साधवः क्रोधं त्यक्तंति) मोक्षके साधनेवाले मुमुक्षु जीव इस क्रोधका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—अनन्तानुबन्धी क्रोध परिणामोंको कलुषित रखता है। लेश्या कृष्णादि खोटी होती है। द्वेषभाव किसीपर होजावे तो उसे दीर्घ काल तक व कभी कभी जन्म जन्मान्तर तक नहीं त्यागता है ऐसे क्रोधका फल यह होता है कि तिर्यंचायु बांधकर एकेन्द्रियादि पर्यायमें जाकर साधारण वनस्पति या निगोदमें जाकर दीर्घ काल जन्म मरण करता है या पृथवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय तथा प्रत्येक वनस्पति कायमें चला जाता है। कभी द्वेन्द्रिय लट आदि, तेन्द्रिय चिटी आदि, चौन्द्रिय मक्खी आदि जन्मता है। क्रोधभाव अति भयानक दुर्गतिमें पटक देता है। ऐसा जानकर ज्ञानीजन क्रोधका त्याग कर देते हैं।

उपसर्गं थावरं दृष्टं, विकलत्रयं च उत्पाद्यति।
अशुद्ध भाव न कर्तव्यं, त्यक्तते शुद्ध साधवः ॥ १३२ ॥

अन्वयार्थ—(थावरं उपसर्गं दृष्टं) स्थावर कायिक प्राणियोंमें घोर उपसर्ग देखा जाता है (विकलत्रयं च उत्पाद्यति) विकलत्रयमें भी उपसर्ग पैदा होता है (अशुद्ध भाव न कर्तव्यं) अशुद्ध द्वेषपूर्ण भाव न करना योग्य है (शुद्ध साधवः त्यक्तते) शुद्ध भावके धारी मुमुक्षु जीव ऐसे क्रोधभावका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—अनन्तानुबन्धी क्रोधवश यह जीव जब पृथ्वी आदि स्थावरोंमें जन्मता है तब वहां अचेतन कृत, पशुकृत व मानवकृत घोर कष्टोंको विना प्रतीकारके असहाय होता हुआ सहता है। पृथ्वीके जीव पत्थरोंसे, जलके विशेष दबावसे, आगके लगनेसे, पवनके वेगसे, वनस्पति द्वारा खींचे जानेसे मर जाते हैं। जलकायके प्राणी पत्थरोंकी रगडसे, आगसे तप्त होनेसे, पवनके झोकेंसे, वनस्पति द्वारा खींचे जानेसे, परस्पर पानीकी तरगोंसे मरते हैं। वायुकायके जीव पत्थरोंकी टक्करोंसे, पानीके पडनेसे, परस्पर वायुकी रगडसे, आगकी गर्मीसे, वनस्पति द्वारा श्वासमें लेनेसे मरते हैं। अग्निकायके जीव पृथ्वीके दबावसे, जलके पडनेसे, वायुके तीव्र वेगसे, वनस्पतिकी रगडसे, परस्पर अग्निकी ज्वालाओंसे प्राण देते हैं। वनस्पतिकायके जीव पृथ्वीके पडनेसे, तीव्र जलके वेगसे, तीव्र पवनसे, आग लगनेसे, परस्पर वनस्पतिके घातसे मरते हैं। इसतरह यह अचेतन कृत व परस्पर कृत उपसर्ग सहते हैं। इन पांच स्थावरोंका घात अन्य पशुओं द्वारा या मनुष्यों द्वारा हुआ करता है, यह सब घात प्रत्यक्ष प्रगट है।

पशु जमीन खोदते, पानीमें नहाते व कल्लोल करते, हवामें दौडते, वनस्पतिका छेदन भेदन करते खाते हैं। मानव समाज पृथ्वी खोदती, हल चलाती, पानीको गर्म करती, पानी खींचती, हवा पंखोंसे लेती, आग जलाकर बुझाती, वनस्पति काटती, छेदती, रांधती है। इस तरह ये स्थावर जीव असहाय दीन दुःखी होते हुए घोर दुःख सहते हैं। उनके अनन्तानुबन्धी क्रोधका उदय आजाता है, परन्तु कुछ कर नहीं सक्ते, लाचार हो, घोर पीडा सहते हैं। स्थावर कायके ऊपर दयाभाव किसी विरले प्राणीके ही होता है। द्वेन्द्रियादि विकलत्रय कीट, चींटी पतंगादि बडे २ उपसर्ग सहते हैं। मकानोंमें दबकर, पैरोंसे कुचले जाकर, आग व दीपकमें जलकर, वर्षासे, हवाके झोकसे मरकर, अन्नादि भोज्य पदार्थ न पाकर, पक्षियोंसे चुगे जानेपर, परस्पर घात होनेकर, सबल द्वारा खाये जानेपर, कढाओंमें जलनेपर, घोर घोर बाधा सहते हैं। पानीके प्रवाहमें बह जाते हैं। गाडीके नीचे दबकर मर जाते हैं। आधा अंग कट जाता है, पग टूट जाता है। अति शीत, अति गर्मी पडती है तडफ तडफकर प्राण देते हैं। उनके बिल या घोसले बिगड जाते हैं। फावडेसे झुंडके झुंड मार डाले जाते हैं। जो ध्यानपूर्वक देखा जावे तो विदित होगा कि ये बिचारे कीटादि पशु व मानवद्वारा व अचेतन द्वारा घोर उपसर्ग सहते हैं तब अनन्तानुबन्धी क्रोध आजाता है, कहीं अवसर होता है तो वे अपनी रक्षार्थ द्वेषवश अन्य प्राणियोंको काटते भी हैं तौभी लाचार हो कुछ नहीं कर सक्ते हैं। मधु मक्खियोंको छत्तेमें रहते हुए भी आगकी गर्मीसे मरना पडता है, भयानक रीतिसे छत्तेके रसको निकालनेसे घोर कष्ट भोगना पडता है। यह स्थावर व विकलत्रयकी पर्यायमें जन्म होना अशुद्ध क्रोधभावोंका फल है। ऐसा जानकर ज्ञानीजनोंको ऐसा भाव न करना चाहिये, शुद्ध शांत-भाव ही रखना चाहिये। किसीपर क्रोध करना घोर पापबंधका कारण है। उत्तम क्षमा धारकर सहनशील होना योग्य है।

कोहं अनेय उत्पायंते, भावं असुहं न क्रीयते।
यदि चंचल भाव विचलंति, त्यक्तते शुद्ध साधवः ॥१३४॥

अन्वयार्थ—(कोहं अनेय असुहं भावं उत्पायंते) क्रोध कषाय नानाप्रकारके अशुभ व खोटे भावोंको पैदा कर देता है। (न क्रीयते) जिन भावोंको करना योग्य नहीं है (यदि चंचल भाव विचलंति) यदि

क्रोधके वश कभी भावोंमें चंचलता हो, शुभ भावोंसे पतन हो तो (शुद्ध साधवः त्यक्तते) शुद्ध भावके साधनेवाले उस चंचल भावको त्याग देते हैं।

भावार्थ—अनन्तानुबन्धी क्रोधके उदयसे इस प्राणीके भीतर बहुत ही विपरीत खोटे भाव पैदा होजाते हैं। जिससे निःसंकोच दूसरोंका घात कर डालता है, अपनी स्त्री, बहन, भौजाई, पुत्र, पुत्रीके प्राण लेलेता है। क्रोध वश आप अपना अपघात कर डालता है। दूसरोंको आपत्तिमें डालनेके लिये नाना प्रकार षड्यंत्र रचता है। हिंसानन्दी रौद्रध्यानसे तीव्र पाप बांधता है। क्रोध भावोंको करना उचित नहीं है। इन भावोंसे तीव्र दुर्गति होती है। साधुजन या मोक्षके साधक सम्यग्दृष्टी जीव इस क्रोधसे बचनेकी पूरी सम्हाल रखते हैं। यदि किसी कारणवश क्रोधके उदय होते हुए भावोंमें चंचलता हो उठती है तो वे तुर्त उसे सम्हाल लेते हैं। क्षमाकी खड्गसे क्रोधका संहार कर देते हैं। क्रोधरूपी आग दीर्घकालके संचय किये हुए पुण्यको जला देती है। क्षमाभाव ही उपकारक है, स्वपर हितकारक है—क्रोध स्वपर घातक है।

कोहाग्निः प्रज्वलते जीवं, उपशमं जल सेवते।
क्षयोपशमं च सद्भावं, योगिनो कर्मक्षयकरो ॥ १३५ ॥

अन्वयार्थ—(कोहाग्निः जीवं प्रज्वलते) जब क्रोधकी आग जीवको जलाने लगे तब वह (उपशमं जल सेवते) शांत जलका सेवन करे (क्षयोपशमं च सद्भावं) क्षयोपशम भावके होते हुए भी (योगिनो कर्मक्षयकरो) योगीके कर्मोंका क्षय होने लगता है।

भावार्थ—जब क्रोधकी आग परिणामोंमें भभक उठे तब उसको शांत भाव रूप जलसे बुझाना चाहिये। ज्ञानकी दृष्टिसे विचारते हुए जिसपर क्रोध हुआ है उसपरसे द्वेष निकल जाता है। जब कोई हमारा काम बिगाडता है तब ही उसपर क्रोध होता है। काम तब ही कोई बिगाडेगा जब हमने उसका कुछ बिगाड किया हो। यदि ऐसा मामला हो तब हमें अपने ही कामका बदला समझकर शांत होजाना चाहिये। यदि कोई मूर्खतासे काम बिगडता है तो अज्ञानीपर सज्जनको क्षमा ही करना उचित है। इत्यादि विचार करके शांत जल छिडककर क्रोधको जीतना चाहिये। सम्यग्दृष्टीके शांत भावकी भूमिका बन जाती है। इससे उसके कर्मकी निर्जरा होने लगती है। मोहनीय

कर्मका क्षयोपशम भाव सातवें गुणस्थान तक अथवा दशवें गुणस्थान तक रहता है, उस समयका शांत भाव कर्मोंकी निर्जरा करता है। ज्ञानावरणादि तीन कर्मोंका क्षयोपशम बारहवें गुणस्थान तक रहता है वही वीतरागता रूप शांत भाव ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इन तीन घातीय कर्मोंका क्षय कर देता है और केवलज्ञान पैदा होजाता है। प्रयोजन यह है कि शांत भाव हमारा हितकर है, क्रोध भाव हमारा शत्रु है।

जिनउक्तं कोह शमनं, क्रीयते बुधैर्जनैः।
उन्मूलितं कर्म त्रिविधं च, जिनशासने मुक्तिगामिनो ॥ १३६ ॥

अन्वयार्थ—(जिनउक्तं कोह शमनं) जिनेन्द्र भगवानके उपदेशके अनुसार क्रोधका शमन (बुधैर्जनैः क्रीयते) बुद्धिमान मानवोंको करना चाहिये (च त्रिविधं कर्म उन्मूलितं) और तीन प्रकार कर्मोंको उखाड फेंक देना चाहिये (जिनशासने मुक्तिगामिनो) इस तरह जिन शासनके कथनानुसार वह जीव मोक्षगामी होता है।

भावार्थ—जिन शासनमें कहा है कि जितना २ आत्मध्यान किया जायगा उतना २ वीतरागभाव या विरक्त भाव बढता जायगा। इसलिये क्रोधको जीतने या नाश करनेके लिये आत्म-भावना करनी योग्य है। बुद्धिमान इस आत्मानुभवका अभ्यास सदा करते हैं, इसीके प्रतापसे उनके भाव कर्म रागादि, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब क्षय होजाते हैं, और यह आत्मा मोक्षका भागी होजाता है। पूज्यपादस्वामीने इष्टोपदेशमें कहा है—

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमं। तथा तथा न रोचंते विषयाः सुलभा अपि ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जैसे जैसे आत्मतत्त्व अपने अनुभवमें आता जायगा वैसे वैसे सहज प्राप्त विषय भी नहीं सुहाएँगे।

आत्मानुभव करते हुए जो सुख शांतिका स्वाद आता है वही कर्मोंकी निर्जरा करता है। वहीं पूज्यपादजी कहते हैं—

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेंधनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

आत्मीक आनन्दकी अग्नि निरन्तर कर्मोंके ईंधनको प्रचुरतासे जलाने लगती है उस समय

ध्यानमग्न योगी बाहरी दुःखोंके पडनेपर भी बेखबर रहता है। वास्तवमें आत्मध्यान ही क्रोध शमनका उपाय है।

जेतानि राग दोषानि, तेतानि असुह भावना।
मिथ्या शल्यं निकंदंति, उन्मूलितं कोह जोगिनः ॥१३७॥

अन्वयार्थ—(जेतानि राग दोषानि) जितने राग द्वेष भाव हैं (तेतानि असुह भावना) उतनी ही अशुभ भावनाएं हैं (जोगिनः) आत्मध्यानी योगीगण (मिथ्याशल्यं निकंदंति) मिथ्याभावकी शल्यको बिलकुल दूर कर देते हैं (उन्मूलितं कोह) इसी लिये उन्होंने क्रोधको जडसे उखाड डाला है!

भावार्थ—जिन योगियोंकी एक मात्र रुचि आत्माकी शुद्ध परिणतिकी तरफ होगई है वे वीतरागभावमें लीन रहते हैं। रागद्वेष न करते हुए अशुभ भावनाओंसे दूर रहते हैं। उनके भीतर संसारकी रुचि जो मिथ्या है बिलकुल नहीं होती है। ऐसे शांत स्वभावी महात्मा क्रोधको क्षय कर डालते हैं।

अनन्तानुबन्धी मान।

मानं असत्य न दिष्टंते, अशाश्वतं मानवंधनं।
मानं अनृत सहितेन, उन्मूलितं मान योगिनः ॥ १३८ ॥

अन्वयार्थ—योगियोंके भीतर (असत्य मानं न दिष्टन्ते) असत्य व नाशवंत पदार्थोंका मान नहीं देखा जाता है (मानवंधनं अशाश्वतं) मान करना क्षणभंगुर है (मानं अनृत सहितेन) मान जहां है वहां मिथ्या भावना है (योगिनः मान उन्मूलितं) योगियोंने मानको जडसे उखाड डाला है।

भावार्थ—मानके सम्बन्धमें कहते हैं कि यह मान करना बिलकुल असत्य है, तथा क्षणभंगुर है। जिस धन, राज्य, अधिकार, रूप, बल, शास्त्र विद्या, जाति, कुल आदि नाशवंत व मिथ्या पदार्थोंको लेकर मान किया जाता है वे सब पदार्थ न तो थिर हैं और न यथार्थ मूल द्रव्य हैं। यह तो अवस्थाएं हैं जो बदलती रहती हैं। मिथ्यादृष्टी ही ऐसी मिथ्या भावना कर सक्ता है कि यह शरीर

धनादि मेरा है व मैं इनके कारण महान हूँ। सम्यग्दृष्टीके सिवाय आत्माके शुद्ध स्वभावके और किसीमें अपने मनकी भावना नहीं होती है। यह संसारके मिथ्या व क्षणिक पदार्थोंकी अपेक्षा अभिमान नहीं करता है। योगियोंने इस मानको जड मूलसे क्षय कर डाला है व इसके क्षयमें प्रयत्नशील हैं। मान करना बिलकुल मूर्खता है, क्योंकि उन परपदार्थोंका सम्बन्ध हमारे साथ सदा रहनेवाला नहीं है, या तो वे हमारे जीते जी नष्ट होजांयगे या हमको मरते हुए छोडना पडेगा।

मानबंधं च रागं च, क्रीयते असुहं सुहं।
जेतानि मान सद्भावं, त्यक्तंति शुद्ध दृष्टितं ॥ १३९ ॥

अन्वयार्थ—(मानबंधं च असुहं सुहं च रागं क्रीयते) मान कषायके बंधनमें पडा हुआ प्राणी कभी अशुभमें मानका भाव व कभी शुभमें मानका भाव करता है (जेतानि मान सद्भावं) जितने भी मान कषायके परिणाम हैं उनको (शुद्ध दृष्टितं त्यक्तंति) सम्यग्दृष्टी छोड देता है।

भावार्थ—मानी प्राणी कभी तो अशुभ कार्योंमें मान करता है कभी शुभ कार्योंमें मान करता है। किसीको हानि पहुँचाके, असत्य बोल करके, काम सिद्ध करके, किसीको ठग करके, किसीकी हिंसा करके, किसी परस्त्रीको वश करके, जूएमें जीतवा करके, धन एकत्र करके, राज्य लाभ करके, कुटुम्बकी वृद्धिपर इत्यादि अशुभ पाप-वर्द्धक कार्योंमें अपनापन करके, साधु व श्रावकका चारित्र पाल करके, अभिमान कर लेता है कि मैं बडा त्यागी हूं, बडा दाता हूं, बडा भक्त हूं, ऐसा शुभ कार्योंमें मान होता है। ये दोनों ही मान अशुद्ध हैं या मिथ्या हैं। सम्यग्दृष्टी इस सर्व प्रकारके मानको त्याग देता है, इसकी अहंमान्यता केवल अपने ही शुद्ध आत्मीक भावमें ही रहती है।

मानं च जिन उक्तं च, मानं परमान चिन्तनं।
अप्पा परमप्पयं तुल्यं, मानं पमान उच्यते ॥ १४० ॥

अन्वयार्थ—(जिन उक्तं च मानं च मानं परमान चिन्तनं) श्री जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ मान यह है जो मान परिमाण चिंतवन करे (अप्पा परमप्पयं तुल्यं मानं पमान उच्यते) आत्मा परमात्माके बराबर है ऐसा मानना ही परिमाण कहा जाता है।

भावार्थ—मान शब्दके अर्थ माप-परिमाण भी है। जिनेन्द्र भगवानका यह कथन है कि ऐसी माप करो, विवेक ज्ञानसे ऐसा समझो कि निश्चयसे आत्माका स्वभाव परमात्माके बराबर है। हरएक आत्मा अपने सर्व गुणोंकी अपेक्षा व असंख्यात प्रदेशोंकी अपेक्षा परस्पर समान है। एक रत्तीका भी एक दूसरेसे अन्तर नहीं है। ऐसी माप ध्यानमें रखना यही मान या परिमाण हितकारी है, कर्तव्य है, इसीको सच्चा मान कहते हैं। इस मानके द्वारा पर पदार्थोंमें मान भाव या अहंकार भावको बिलकुल दूर रखना चाहिये। अथवा मानके अर्थ प्रमाणके भी हैं। जो सम्यग्ज्ञान है आत्माका सच्चा आत्मीक ज्ञान है वही प्रमाण है व वही मान है, यह आत्मज्ञानरूपी मान मोक्षमार्ग है।

मानं लोक अलोकंति, त्रिलोकं भुवनत्रये।
केवलदर्शन ज्ञानं च, मानं सर्वज्ञ पूज्यते ॥ १४१ ॥

अन्वयार्थ—(मानं लोक अलोकंति त्रिलोकं भुवनत्रये) मान अर्थात् सम्यग्ज्ञान तीन लोकको तथा अलोकको देखने जाननेवाला है (केवलदर्शन ज्ञानं च) यही केवलदर्शन व केवलज्ञान स्वरूप है (मानं सर्वज्ञ पुज्यते) ऐसे मानके धारी सर्वज्ञ भगवान हैं जो पूज्यनीक अर्हंत हैं।

भावार्थ—मानके अर्थ सम्यग्ज्ञानके भी हैं, वह सम्यग्ज्ञान जब पूर्ण होता है तब लोकालोकको देखता व जानता है, जिसके ऐसा मान होता है उसको सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत कहते हैं। वे केवलदर्शन व केवलज्ञानके धारी हैं। उनको सदा पूजना योग्य है। जगतमें अभिमानीकी प्रतिष्ठा नहीं होती है। वह निरादरकी दृष्टिसे देखा जाता है। अतएव अभिमान तो धनादि व शरीर कुटुंबादिका करना योग्य नहीं है। परन्तु जिसके सच्चा मान अर्थात् ज्ञान हो, जो निर्विकारताके साथ लोकालोकको देखता जानता हो वह मानी सर्वज्ञ वीतराग तो पूजने योग्य है। ऐसा मान प्राप्त करना योग्य है, मिथ्या मान त्यागना योग्य है।

अनन्तानुबन्धी माया।

माया अनृत अचेतस्य, असत्य माया समायुतं।
सत्यं शुद्ध न जानाति, त्यक्तते शुद्धदृष्टितं ॥ १४२ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत अचेतस्य माया) मिथ्यारूप व अज्ञानरूप पदार्थोंके सम्बन्धमें मायाचार करना (असत्य माया समायुतं) मिथ्या मायाके भावोंके साथ वर्तन करना है (सत्यं शुद्ध न जानाति) ऐसा मायाचारका कर्ता शुद्ध सत्य तत्वको नहीं जानता है (त्यक्तते शुद्धदृष्टितं) सम्यग्दृष्टी इस मायाचारको त्याग देता है।

भावार्थ—यहांपर अनंतानुबन्धी मायाका स्वरूप कहते हैं। जिसके यह मिथ्यात्व सहित मिथ्या मायाके भाव होते हैं वह जगतके क्षणभंगुर पदार्थोंमें–धन धान्य स्त्री पुत्रादिमें मोह करके उनको अपना हितकारी अज्ञानसे मानके उनके लिये नानाप्रकार प्रपंच रचता है। दूसरोंको ठग करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। वह रात दिन झूठी संसारकी मायाके लिये रागी रहता हुआ परिणामोंको ऐसा कठोर व विकारी रखता है कि उसको शुद्ध आत्मतत्वका श्रद्धान व ज्ञान नहीं होता है। उसके भीतर सच्चा ज्ञान व वैराग्य नहीं पैदा होता है। जो आत्माके हितका सच्चा प्रेमी होगा वह दूसरोंको अन्यायसे ठगकरके घोर पापका बंध नहीं करेगा। मिथ्यादृष्टीकी ऐसी ही भावना रहती है। सम्यग्दृष्टीकी ऐसी भावना नहीं होती है।

माया कुज्ञान समं प्रोक्तं, मिथ्याराग समं जुतं।
असुहं सुहं विजानाति, माया दुर्गतिभाजनं ॥ १४३ ॥

अन्वयार्थ—(माया कुज्ञानं समं प्रोक्तं) माया कुज्ञानके होते हुए ही कही गई है। (मिथ्याराग समं जुतं) मायामें मिथ्या रागभाव गर्भित है। मायाचारी (असुहं सुहं विजानाति) अशुभको शुभ जानता है (माया दुर्गति भाजनं) यह माया कुगति पहुंचानेवाली है।

भावार्थ—अनन्तानुबन्धी माया जिसके होगी वह सम्यग्ज्ञानी न होगा, वह कुज्ञानी होगा। उसको आत्मोन्नतिका प्रेम न होकर जगतके क्षणभंगुर पदार्थोंका प्रेम होगा। मायाचारी इस मिथ्या

रागके कारण जो कार्य अपना बुरा करनेवाले हैं उनको हितकारी जान लेता है। जगतका नेह आत्माका बाधक है, उसे ही करने योग्य जानता है। बडे२ अनर्थ मायाचारी कर डालता है। ऐसी मायासे तीव्र पापका बंध होता है और यह जीव नर्क निगोदका पात्र होजाता है।

मोया अशुद्ध भावस्य, परपंचं रमते सदा।
परद्रव्यं पुद्गलार्थं च, त्यक्‍ंति शुद्धदृष्टितं ॥ १४४ ॥

अन्वयार्थ—(माया) मायाचार (अशुद्ध भावाय परपंचं सदा रमते) अशुद्ध भावोंके जालमें सदा तत्पर रहता है (परद्रव्यं पुद्गलार्थं च) उस मायाचारीका प्रयोजन परद्रव्य स्त्री पुत्रादिका स्वार्थ साधना या अपने शरीरका स्वार्थ साधना होता है (शुद्धदृष्टितं त्यक्‍ंति) सम्यग्दृष्टी इस मायाका त्याग कर देता है।

भावार्थ—मायाके उदयसे यह प्राणी कभी भी शुद्ध आत्मीक भावका स्वाद नहीं पाता है। संसाराशक्त अशुद्ध भावोंमें-परको ठगनेमें सदा आसक्त रहता है। मायाचारीके मनके भीतर आत्महितका उद्देश्य नहीं होता। वह तो शरीरादि परद्रव्य व स्त्री पुत्रादिके मोहमें फंसकर मायाचारके द्वारा धनादिका संग्रह करना चाहता है। जो माया अपने स्वरूपसे परे रक्खे उस मायाका सम्यग्दृष्टी त्याग कर देते हैं।

माया कूट कर्मस्य, कूटदृष्टि कूट भावना।
कूट कर्मानि कर्तव्यं, त्यक्‍ंति शुद्धदृष्टितं ॥१४५॥

अन्वयार्थ—(माया) मायाचारीके (कूट कर्मस्य) मायाचार पूर्वक काम करनेके लिये (कूटदृष्टि) मायाचार पूर्ण नजर रहती है व (कूट भावना) मायाचारकी ही भावना रहती है (कूट कर्मानि कर्तव्यं) मायाचारीका कर्तव्य ही मायाचार सहित कामोंके करनेका होजाता है, इसलिये (शुद्धदृष्टितं त्यक्‍ंति) सम्यग्दृष्टी इस मायाको त्याग देते हैं।

भावार्थ—माया कषायकी तीव्रतासे इस प्राणीके भीतर हरएक काम छलसे करनेका ही विचार रहता है। वह मायाचारपूर्ण दृष्टिसे उसी तरह देखा करता है जैसे-बिल्ली चूहेके शिकारको देखा करती है व बगला मछलीको देखा करता है। अवसर पाकर मायाचारी हरएकको ठग लेता है।

अपने गुरु व मित्रको भी नहीं छोडता है। मायाचारीकी आदत ही कपट करनेकी पड़ जाती है उसका मन, वचन, काय एक रूप नहीं होता है। सोचता कुछ है, कहता कुछ है, करता कुछ है। इसलिये ज्ञानीजनोंके भीतर ऐसी माया नहीं पाई जाती है।

माया दुर्गति उत्पन्नं, माया थावरं पुन: ।
माया तिर्यंच जोनी च, माया त्यजंति जोगिनः ॥१४६॥

अन्वयार्थ—(माया दुर्गति उत्पन्नं) मायाचारके द्वारा मन वचन कायकी प्रवृत्तिसे तीव्र पाप तथा आयु बांधकर यह जीव नर्क निगोदकी दुर्गतिमें पैदा होजाता है (पुनः माया थावरं) तथा यह मायाचार ही स्थावर योनिमें पटक देता है (माया तियंच जोनी च) मायाचारसे ही पशुगतिमें चला जाता है, इसलिये (जोगिनः माया त्यजंति) मुनीश्वर इस मायाको छोड देते हैं।

भावार्थ—मायाचार करके जो दूसरेका धनादि हरण करते हैं उसका कटुक फल राज्यदंडादि तो यहां भोगना पडता ही है परंतु जो अपने भीतर मायाचारपूर्ण परिणाम रहता है उससे यह जीव नर्क व तिर्यंच आयु बांधकर पीछे मरकर नर्कगतिमें या पशुगतिमें चला जाता है। " माया तैर्यग्योनस्य " ऐसा तत्वार्थसूत्रमें कथन है कि मायाचारीके तिर्यंच आयुका बंध होता है। मायाचारी मरकर एकेन्द्रिय स्थावर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पतिकायमें पैदा होजाता है। अथवा पंचेंद्रिय पशुओंमें व द्वेन्द्रिय विकलत्रयमें पैदा होता है। मायाचार दुर्गतिका कारण है, ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टी कभी मायाचार नहीं करते हैं। इसे दूरसे ही त्यागते हैं।

माया असैनी संजुक्तं, माया अचेत वेदना ।
माया कुदेव उत्पन्नं, माया त्यजन्ति जोगिनः ॥१४७॥

अन्वयार्थ—(माया) मायाचारी (असैनी संजुक्त) असैनी पैदा होजाता है (माया अचेत वेदना) मायाचारसे अज्ञान व कष्ट होता है (माया कुदेव उत्पन्नं) मायाचारी कुदेवोंमें भी पैदा होजाता है (जोगिनः माया त्यजंति) अतएव योगीगण ऐसी मायाका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—मायाचारी बहुत कुटिलता मनमें रखता है इससे मरकर मन रहित असंज्ञी पैदा होजाता है। असंज्ञीके तर्क वितर्क करनेकी शक्ति ही नहीं होती है। मायाचारसे ऐसा घोर ज्ञाना-

वरणीय कर्मका बंध होजाता है कि यह बहुत ही अज्ञानी व मूर्ख दशामें जन्मता है तथा उसको महान् २ कष्ट भोगने पडते हैं। कदाचित् देवगति बांधी हो तो स्वर्गवासी देवोंमें न पैदा होकर तीन प्रकार कुदेवोंमें पैदा होता है, भवनवासी, व्यंतर या ज्योतिषी होजाता है। इस मायाचारके कटुक फल जानकर योगीगण उसका त्याग कर देते हैं।

मांया शुद्ध जिन प्रोक्तं, त्रिलोक त्रिभुवनमयं।
ति अथ षट् कमलं च, पंच दीप्ति परमेष्ठिनः ॥ १४८ ॥

अन्वयार्थ—(माया शुद्ध जिन प्रोक्तं) जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि शुद्ध माया या लक्ष्मी (त्रिलोकं त्रिभुवनमयं) तीन लोकके पदार्थ हैं जिनसे तीन भवन रचा हुआ है या (ति अर्थं) तीन पदार्थ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं (षट् कमलं च) या छः अक्षरी मंत्ररूपी कमल है या (पंच दीप्ति परमेष्ठिनः) पांच प्रकाशमान परमेष्ठी हैं या पांच परमेष्ठीमें पाए जानेवाले पांच ज्ञान हैं।

भावार्थ—मायाचार कपटको छोडकर शुद्ध मायाको ग्रहण करना चाहिये। माया लक्ष्मीको भी कहते हैं। शुद्ध आत्मीक लक्ष्मी क्या क्या है सो कहते हैं। प्रथम तो जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, छः द्रव्य हैं जिनसे ये तीन भुवन बने हैं। लोकालोक इन्हीं छः द्रव्योंका समूह है। द्रव्योंके सच्चे स्वरूपको जानकर अपने जीवको सर्व परद्रव्योंसे भिन्न अनुभव करना। ऐसा भेदज्ञान व स्वानुभूति प्राप्त करना एक तो यह लक्ष्मी है। दूसरी लक्ष्मी रत्नत्रय है। जिसके ग्रहणसे मोक्षका लाभ होता है। तीसरी लक्ष्मी षट्कमलका ध्यान है। षट्कमलका अर्थ जो हमारी समझमें आया सो लिखा जाता है। छः अक्षरी मंत्रको कमलमें विराजमान करके ध्यान करना, आत्म लक्ष्मीका प्रकाशक है। वह मंत्र है "ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः" चौथी लक्ष्मी पांच सम्यग्ज्ञानमई पांच दीप्ति हैं या पांच परमेष्ठी हैं। इन लक्ष्मियोंको ग्रहण करके मायाचार कषायका त्याग करना चाहिये।

माया ज्ञान समं जुक्तं, माया दर्शति दर्शनं।
अप्पा परमप्पयं तुल्यं, माया मुक्तिपथं बुधैः ॥ १४९ ॥

अन्वयार्थ—(माया) लक्ष्मी रूप माया वह है जो (ज्ञान समं जुक्तं) ज्ञानको समता रूप व यथार्थ जाना जाय (माया दर्शति दर्शनं) लक्ष्मीरूपी माया सम्यग्दर्शनको देखनेवाली है (अप्पा परमप्पयं तुल्यं माया) आत्मा परमात्माके समान ऐसी आत्मज्ञानमई माया या लक्ष्मी (मुक्तिपथं) मोक्षमार्ग है (बुधैः) ऐसा ज्ञानियोंने कहा है।

भावार्थ—इस श्लोकमें भी मायाको लक्ष्मीके अर्थमें लेकर कथन किया है। यथार्थ समतारूप राग द्वेष रहित सम्यग्ज्ञान एक लक्ष्मी है। यह यथार्थ ज्ञान ही आत्माको देख सक्ता है। अर्थात् सम्यग्दर्शनका अनुभव करनेवाला यथार्थ ज्ञान ही है। मोक्षमार्ग आत्माका निश्चयसे यह ज्ञान है कि यह हमारा आत्मा परमात्माके बराबर है। आत्माको परमात्माके समान अनुभव करना ही मोक्षमार्ग है।

अविरत सम्यग्दृष्टी।

त्रिमिथ्या चतु कषायं च, अशुद्धं त्यक्तंति जोगिनः।
अविरतं च जिन प्रोक्तं, श्रावगं शुद्धदृष्टितं ॥१५०॥

अन्वयार्थ—(जोगिनः) योगीगण या मोक्षके साधक (अशुद्धं) आत्माको अशुद्ध करनेवाले (त्रि मिथ्या चतु कषायं च) तीन प्रकारके मिथ्यादर्शन तथा चार कषायोंको (त्यक्तंति) छोड़ चुके हैं। इसलिये (जिनः प्रोक्तं) जिनेन्द्रने कहा है कि वे (शुद्धदृष्टितं अविरतं श्रावगं) अविरत सम्यग्दृष्टी श्रावक हैं।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि चौथा गुणस्थान अविरत सम्यग्दृष्टी श्रावकका है। जिसके व्रत न हो किंतु सम्यग्दर्शन यथार्थ हो यह शुद्ध सम्यग्दर्शन जब उदय होता है तब वहां तीन दर्शन मोह व चार अनन्तानुबन्धी कषायका उपशम या क्षय होजाता है। जिसके इस निश्चय सम्यग्दर्शनका लाभ है वही मोक्षका साधक या स्वात्मानुभव करनेवाला योगी है।

सप्त प्रकृति विच्छेदो, शुद्धदृष्टि समाचरेत्।
शुद्धं अशुद्धं परीक्षन्तो, अविरत सम्यग्दृष्टितं ॥ १५१ ॥

अन्वयार्थ—(सप्त प्रकृति विच्छेदो) ऊपर कही हुई सातों कर्मकी प्रकृतियोंके उदय न होनेसे अर्थात् उपशम या क्षयसे (शुद्धदृष्टि समाचरेत) सम्यक्दर्शनका प्रकाश होजाता है तब (शुद्धं अशुद्धं परीक्षन्तो) उसे शुद्ध व अशुद्ध तत्वकी परीक्षा आजाती है (अविरत सम्यग्दृष्टितं) वही अविरत सम्यग्दृष्टी है।

भावार्थ—सात कर्म प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यग्दर्शन होता है व इनहीके क्षयसे क्षायिक सम्यग्ज्ञान होता है तब शुद्ध आत्मीक श्रद्धा या रुचि या प्रतीति या आत्मानुभूति या स्वरूपाचरणरूप स्वप्रवृति प्रकाशित होजाती है। इस अपूर्व दृष्टिके प्रकाशसे वह हरएक द्रव्य गुण पर्यायको यथार्थ समझता है। शुद्धको शुद्ध अशुद्धको अशुद्ध समझता है। व्यवहारको व्यवहार निश्चयको निश्चय जानता है। उसे कर्म सहित आत्माकी व कर्म रहित आत्माकी परीक्षा उसी तरह आजाती है जैसे एक जौंहरीको निर्दोष व सदोष रत्नकी परीक्षा आजाती है। व्रतोंका नियम न होनेपर भी यह सम्यक्ती सच्चा मोक्षमार्गी है इसी लिये इसे अविरत सम्यग्दृष्टी कहते हैं। यद्यपि वह पांच अणुव्रतोंका प्रतिज्ञाबद्ध धारी नहीं होता है। तथापि उसके भावोंमें चार भावनाएं दृढ बनी रहती हैं। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आस्तिक्य, शांत भाव रहना, कषायोंकी तीव्रता न होना प्रशम भाव है। धर्मानुराग व संसारमें वैराग्य रहना संवेग है, प्राणीमात्रपर दया रहना अनुकम्पा है। छः द्रव्योंकी सत्तामें व उनकी परिणतियोंमें व सात तत्वोंमें दृढ विश्वास होना आस्तिक्य है। वह अहिंसाका नियम न लेते हुए भी अहिंसाका यथाशक्ति पालक होता है, न्यायमार्गी, दयालु व सदाचारी होता है।

अविरत शुद्धदृष्टी च, शुद्ध तत्व प्रकाशनं।
शुद्धात्मा शुद्ध भावस्य, अशुद्धं सर्व त्यक्तयं ॥१५२॥

अन्वयार्थ—(अविरत शुद्धदृष्टी च शुद्ध तत्व प्रकाशनं) अविरत सम्यक्दृष्टीके भीतर शुद्ध आत्म तत्वका प्रकाश या अनुभव या दर्शन होजाता है। (शुद्धात्मा शुद्ध भावस्य) उसके अन्तरंगमें शुद्धात्मा झलक जाता है। वह शुद्ध भावोंको अशुद्ध भावोंसे भिन्न जानकर (अशुद्धं सर्व त्यक्तयं) सर्व ही अशुद्ध भावोंका त्यागी होजाता है।

अन्वयार्थ—ऐसा चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरात्मा कहलाता है। जिसने भीतर

आत्माके तत्वको सर्व रागादि भावोंसे, ज्ञानावरणादि कर्मोंसे व शरीरादि नोकर्मोंसे भिन्न अनुभव कर लिया है, जिसको परमात्माकी पहचान होगई है, जो शुद्धोपयोगको ही शुद्ध भाव जानता है, शुभोपयोग अशुभोपयोग दोनोंको अशुद्ध भाव जानता है उसकी श्रद्धामें जैसे हिंसादि पाप बंधकारक हैं वैसे दान, पूजा, भक्ति, जप, तप आदि शुभ भाव भी बंधकारक हैं ऐसा झलक गया है। निर्विकल्प निर्विकार मन, वचन, कायकी गुप्तिरूप स्वसंवेदन स्वरूप एक शुद्ध भाव ही ग्रहण करने योग्य है। ऐसी गाढ श्रद्धा उसे होजाती है। वह अन्य सर्व अशुद्ध भावोंकी श्रद्धाकी अपेक्षा त्यागी होजाता है, वह संसारमें किसी भी शुभ अशुभ प्रवृत्तिको करना नहीं चाहता है। कषायोंके उदयसे लाचार हो गृहस्थ योग्य कार्य करता है। अशुभसे बचनेके लिये शुभोपयोग, धर्म, दान, पूजा आदि करता है। तथापि मोक्षमार्ग मात्र एक शुद्ध आत्म-परिणतिको ही मानता है।

शुद्ध दृष्टि जथा प्रोक्तं, दिष्टते शाश्वतं पदं।
मोक्षमार्गस्य, आत्मानं परमात्मनं ॥ १५२ ॥

अन्वयार्थ—(जथा प्रोक्त शुद्ध दृष्टि) जैसी जिन शासनमें कही गई है ऐसी शुद्ध श्रद्धा या सम्यग्दृष्टि (शाश्वतं पदं दिष्टते) अविनाशी आत्माके निज पदको या निर्वाणको देख लेती है (मोक्षमार्गस्य दिष्टते) वह निर्वाणके मार्गको भी देख लेती है (आत्मानं परमात्मनं) आत्माको परमात्माके समान ही एकरूप देख लेती है।

भावार्थ—यथार्थ निर्मल सम्यग्दर्शनका धारी आत्मा परम विवेकी होजाता है। उसको अविनाशी सिद्धपद अपने ही आपमें झलकता है तथा उस पदकी सिद्धिका मार्ग एक अभेद रत्नत्रय स्वरूप शुद्धात्मानुभव है यह भी भलेप्रकार झलकता है। उसकी शुद्ध दृष्टिमें अपना आत्मा व परमात्मा समान प्रकाशित होजाता है। अद्वैत भक्तिमें वह आत्म-लीन होता है, द्वैत भक्तिमें वह परमात्माके गुणानुवाद गाता है तथापि समझता है कि मैं अपने आत्माके ही गुण गान कर रहा हूं। जहां आत्मा अपने ही स्वरूपमें ऐसा लीन होजावे कि उसको सिवाय अपने आत्माके और कुछ अनुभवमें नहीं आवे। उसका ध्यान सर्वसे हट जावे वही अद्वैत भक्ति है, जो परम कल्याणकारिणी है।

दिष्टते देवदेवं च, दिष्टते ममात्मा ध्रुवं ।
दिष्टते शुद्ध सर्वज्ञं, दिष्टते ज्ञान मयं ध्रुवं ॥ १५४ ॥

अन्वयार्थ—(देवदेवं च दिष्टते) सम्यग्दृष्टीकी श्रद्धा देवोंके देव अरहंत तथा सिद्ध परमात्मामें गाढ होती है (ममात्मा ध्रुवं दिष्टते) उसकी श्रद्धामें झलकता है कि मेरा आत्मा अविनाशी एकाकार निरंजन निर्विकार है (शुद्ध सर्वज्ञं दिष्टते) वह वीतराग सर्वज्ञ भगवानको पहचान जाता है (ज्ञान मयं ध्रुवं दिष्टते) वह ज्ञानाकार नित्य आत्मद्रव्यका प्रेमी होजाता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकी रुचि या श्रद्धा व उसकी ज्ञान परिणति अत्यन्त स्वच्छ व निर्दोष होजाती है। वास्तवमें जिसके भीतर आत्मानुभूतिसे अविनाभावी निश्चय सम्यग्दर्शन जागृत होजाता है वही सच्चे देवको पहचानता है, वही अरहंत व सिद्ध भगवानको समझता है, वही अपने आत्माको भी नित्य ज्ञानानन्दमय परमात्मावत् जानता है। वह जानता है कि जैसे परमात्माका स्वभाव सर्वज्ञ वीतराग है वैसा मेरा स्वभाव भी सर्वज्ञ वीतरागमय है। उसकी निर्मल दृष्टिमें सर्व जगतकी आत्माएं एक रूप शुद्ध दिखती हैं। उसके भीतर अपूर्व साम्यभाव प्रकाश होजाता है। उसके भीतरसे रागद्वेषकी कालिमा दूर होजाती है। गृहस्थमें रहते हुए भी वह पूर्ण विरक्त रहता है, बाहरसे रागी द्वेषी दिखता है परन्तु भीतरसे वह पूर्ण वैरागी व साम्यभावका धारी है। वह जगतके कार्य करता हुआ भी अकर्ता है, भोगता हुआ भी अभोक्ता है।

श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

ब्रुवन्नापि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति। स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जिसके भीतर दृढ प्रतीति आत्म-तत्वकी होगई है वह सम्यग्दृष्टी बोलते हुए भी नहीं बोलता है, चलते हुए भी नहीं चलता है, देखते हुए भी नहीं देखता है। प्रयोजन यह है कि उसका गाढ प्रेम निज स्वसमय प्रवृत्तिमें व निजात्म रमणमें है, इसलिये सर्व अन्य कार्योंको उदासीन भावसे करता है। किसीमें भी आसक्त नहीं होता है।

दिष्टते ति अथ शुद्धं च, षट्ट कमलं पंच दीसयं ।
आरति रौद्र परित्याज्यं, धर्मशुक्लं च दिष्टते ॥१५५॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टीको (शुद्धं च ति अर्थं दिष्टते) शुद्ध तीन पदार्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र दीख पडते हैं (षट् कमलं पंच दीप्तयं) वह शुद्ध छः कमलको व पंच दीप्तिको देखता है। (आरति रौद्र परित्याज्यं) आर्त रौद्रध्यानका उसके त्याग होता है (धर्मशुक्लं च दिष्टते) धर्मध्यान व शुक्लध्यान वहां दिखलाई पडता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव शुद्ध अभेद रत्नत्रयका अनुभव करता है, वह कमलमें स्थापित ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः इन छः अक्षरोंके मंत्र द्वारा व पांच परमेष्ठी द्वारा या पांच ज्ञानद्वारा शुद्धात्माका ही मनन करता है। उसके दुःखित परिणाम रूप आर्तध्यान तथा दुष्ट परिणाम रूप रौद्रध्यान नहीं होता है। उसके धर्मध्यान व शुक्लध्यानकी मुख्यता है। यद्यपि पहले दो ध्यान पांचवें गुणस्थान तक व आर्तध्यान छठे तक कहा गया है परंतु इनकी मुख्यता मिथ्यादृष्टीके ही है सम्यक्तीके सातवें तक धर्मध्यान फिर चौदहवें गुणस्थान तक शुक्लध्यान होता है। षट् कमल पंच दीप्तिका अर्थ जो समझमें आया है सो लिखा है। यदि दूसरा हो तो विद्वज्जन विचार लेवें।

दिष्टते च स्वयं रूपं, परमानन्दनंदितं।
चिदानन्दमयं शुद्धं, अप्पा परमप्प दिष्टते ॥१५६॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टीको (स्वयं रूपं च) अपना स्वभाव ही (परमानन्दनंदितं) परम अतीन्द्रिय आनन्दमें मग्न (चिदानंदमयं शुद्धं दिष्टते) चैतन्य व आनन्दमई, कर्म रहित शुद्ध दिखलाई पडता है उसे (अप्पा परमप्प दिष्टते) उसे आत्मा व परमात्मा एकसा अनुभवमें आता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी शुद्ध निश्चय नयकी प्रधानतासे जब देखता है तब उसे अपना आत्मा चैतन्यमई, आनन्दमई, सदा परमानन्दका भोगी परमात्माके तुल्य दिखलाई पड़ता है। जब वह इसी तरह मनन करते करते स्व स्वरूपमें मग्न होजाता है तब उसे शुद्धात्माके भोगका ही स्वाद आता है।

दिष्टते जिन उक्तं च, प्रोक्त भव्यलोकयं।
शुद्धदृष्टि समं शुद्धं, शुद्ध दृष्टी च उच्यते ॥१५७॥

अन्वयार्थ—(जिन उक्तं च भव्य लोकयं प्रोक्तं दिष्टते) सम्यग्दृष्टीको पदार्थोंका स्वरूप वैसा ही यथार्थ

दिखलाई पडता है—जैसा श्री जिनेन्द्रने कहा है व जैसे गणधरादि देवोंने भव्य लोगोंको द्वादशांग-वाणी द्वारा समझाया है। (शुद्धदृष्टि समं शुद्धं) जिसके शुद्ध सम्यग्दर्शन, समता रूप दोष रहित है वही (शुद्ध दृष्टी च उच्यते) सम्यग्दृष्टी कहा जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी व्यवहार नयसे छः द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थोंका वैसा ही श्रद्धान रखता है जैसा श्री जिनेन्द्रने दिव्य ध्वनिसे कहा था व जैसा गणधरोंने द्वादशांगमें गूंथकर भव्य लोकोंको बतलाया था। निश्चय नयसे उसे शुद्ध आत्माका दृढ श्रद्धान है। वह सर्व आत्माओंको एक समान देखता हुआ परम शुद्ध साम्यभावमें लीन होजाता है।

देवं गुरु श्रुतं दिष्टं, जिन उक्तं जिनागमं ।
दिष्टतं शुद्ध विज्ञानं, शुद्धदृष्टि समं ध्रुवं ॥ १५८ ॥

अन्वयार्थ—(देवं गुरु श्रुतं दिष्टं) सम्यक्ती जीवने सच्चे देव, गुरु तथा श्रुतका श्रद्धान कर लिया है (जिन उक्तं जिनागमं) उसको जिनेन्द्र कथित जिन आगमकी गाढ रुचि होगई है। (शुद्ध विज्ञानं दिष्टतं) उसको शुद्ध भेद विज्ञान दिखलाई पड गया है (शुद्धदृष्टि समं ध्रुवं) वह शुद्ध आत्म-दर्शन जो साम्य-भावरूप व अविनाशी है उसको रखनेवाला है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीको जैसे छः द्रव्यादिका श्रद्धान है वैसे उसे व्यवहारनयके अभिप्रायसे सच्चे सर्वज्ञ वीतराग देवका, परिग्रह त्यागी निर्ग्रंथ गुरुका, पूर्वापर विरोध रहित स्याद्वादनय गर्भित शास्त्रका तथा जिन कथित सर्व जिन आगमका दृढ श्रद्धान है। उसी सम्यक्तीके भीतर यथार्थ भेद विज्ञान होता है जिससे निज आत्माको सर्व अन्य आत्माओंसे व सर्व परद्रव्योंसे भिन्न जानता है। उसीको निश्चयनयसे परम समतारूप अविनाशी आत्म प्रतीतिरूप शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है।

अशुद्ध दृष्टि न दिष्टंते, कुदेवं कुगुरुस्तथा ।
कुशास्त्रं कुज्ञानं येन, न दिष्टंति शुद्धदृष्टितं ॥ १५९ ॥

अन्वयार्थ—(अशुद्ध दृष्टि न दिष्टंते) सम्यग्दृष्टीके भीतर मिथ्या श्रद्धान नहीं दिखलाई पडता है (येन) इसी कारणसे (शुद्धदृष्टितं कुदेवं कुगुरुस्तथा कुशास्त्रं कुज्ञानं न दिष्टंति) शुद्ध, दोष रहित सम्यग्दृष्टी

जीवके रागी द्वेषी देव परिग्रहासक्त गुरु तथा एकान्त दूषित व कषाय पोषक शास्त्रका श्रद्धान नहीं होता है और न उसके पास कुमति, कुश्रुत, कुअवधि दिखलाई पडते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी वही है जिसके मिथ्या दृष्टि न हो। तब यह स्वयं सिद्ध है कि वह कभी भी कुदेव, कुगुरु व कुशास्त्रका माननेवाला न होगा और न उसके तीन मिथ्याज्ञान ही होंगे। वह तो यथार्थ ज्ञानी व यथार्थ श्रद्धानी रहता हुआ मोक्षमार्गपर चलनेवाला है।

मिथ्यादेवं गुरुं धर्मं, मिथ्या माया न दिष्टते।
शल्यं च त्रि तिमिथ्यात्वं, न दिष्टते शुद्धदृष्टितं ॥ १६० ॥

अन्वयार्थ—(शुद्धदृष्टितं) सम्यग्दृष्टीके भीतर (मिथ्यादेवं गुरुं धर्मं) मिथ्या देव, मिथ्या गुरु व मिथ्या धर्मकी श्रद्धा बिलकुल नहीं होती है (मिथ्या माया न दिष्टते) न उसके भावोंमें मिथ्या उपाधि दिखलाई पडती है (त्रि शल्यं च तिमिथ्यात्वं न दिष्टते) न वहां तीन शल्य और तीन मिथ्यात्व झलकते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी भूलकर भी मिथ्या देव, गुरु, धर्मका रुचिमान नहीं होसक्ता है, क्योंकि उसको संसारकी मिथ्या उपाधिका प्रेम नहीं है। वह संसारको असार व त्यागने योग्य समझ चुका है, वह धन कुटुम्बादिके संयोगको आसक्ति बुद्धिसे नहीं चाहता है। यह अन्तरात्मा शुद्ध भावोंसे ही धर्मका साधन करता है। माया शल्य रखकर, मिथ्या श्रद्धाकी शल्य रखकर, आगामी भोग प्राप्तिरूप निदान शल्य रखकर कभी भी धर्म-सेवन नहीं करता है, न उसके तीन दर्शन मोहनीयके उदयसे होनेवाले भाव होते हैं, न वहां मिथ्या दर्शन है न मिथ्यात्व सम्यग् मिला हुआ भाव है, और न सम्यक्तमें कोई दोष लगानेवाला भाव है। ऐसा शुद्ध सम्यग्दृष्टी ही मोक्षमार्गी है।

अदेवं अगुरुं जेन, अधर्मं अशुद्धं पदं।
संसार सरनि शरीरस्य, न दिष्टते शुद्धदृष्टितं ॥१६१॥

अन्वयार्थ—(जेन) क्योंकि (अदेवं अगुरुं अधर्मं अशुद्धं पदं) कुदेव, कुगुरु, कुधर्म अशुद्ध पद हैं। (संसार सरनि शरीरस्य) संसार मार्ग हैं व शरीर प्राप्तिके ही कारण हैं, इसलिये (शुद्धदृष्टितं न दिष्टते) सम्यग्दृष्टि उनकी श्रद्धा नहीं रखता है।

भावार्थ—सर्वज्ञ वीतराग सुदेव हैं; रागी, द्वेषी सब कुदेव हैं। निर्ग्रंथ वीतरागी सुगुरु हैं, परिग्रह धारी रागी, द्वेषी कुगुरु हैं, वीतराग विज्ञान सुधर्म है, राग द्वेष पोषक मार्ग कुधर्म है। ये कुदेव, कुगुरु व कुधर्म संसारके मार्गमें लेजानेवाले हैं, बार बार शरीरकी प्राप्तिके कारण हैं। ये स्वयं अशुद्ध पद हैं। राग द्वेषसे मलीन हैं। जो स्वयं मलीन है वह दूसरोंको शुद्ध करनेमें कारण कैसे होसक्ता है। मैला पानी मैलको कैसे धोसक्ता है। इसलिये जो शुद्ध होनेका इच्छुक सम्यग्दृष्टि है वह संसारके बढानेके कारण ऐसे कुदेव, कुगुरु व कुधर्मकी श्रद्धा नहीं करता है, न इनकी भक्ति करता है।

रागदोषं न दिष्टंते, विकहा व्यसन न दिष्टंते।
आवंभ भाव न दिष्टंते, न दिष्टंते संसारकारणं ॥ १६२ ॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टी शुद्ध आत्मधर्मको ही शुद्ध धर्म मानता है। इसलिये उसकी श्रद्धामें व उसके निर्मल आत्मानुभवमें (रागदोषं न दिष्टंते) राग द्वेष नहीं दिखलाई पडते हैं। (विकहा व्यसन न दिष्टंते) विकथा व व्यसन नहीं दिखलाई पडते हैं। (आवंभ भाव न दिष्टंते) कुशील भाव नहीं दिखलाई पडते हैं। (संसार कारणं न दिष्टंते) इत्यादि और भी संसारके भ्रमण करानेवाले कारण नहीं दिखलाई पडते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीको दृढ श्रद्धान है कि जितने भी संसारके कारणीभूत भाव हैं वे त्यागनेयोग्य हैं। इस लिये वह राग द्वेषको, स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथाको, जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, वेश्या सेवन, शिकार खेलना, चोरी करना, व परस्त्री सेवना इन सात व्यसनोंको, आत्मलीन ब्रह्मचर्यके सिवाय सर्व ही परासक्ति रूप अब्रह्म भावको व कुशीलको कभी भी धर्म व ग्रहण करने योग्य नहीं मानता है। इन सबसे उसके भीतर वैराग्य रहता है। जब वह ध्यानमग्न होता है तब उसके शुद्ध भावमें इन सब अशुद्ध भावोंका झलकाव नहीं होता है।

कर्म त्रिविधि न दिष्टंते, दोष णंत न पश्यते।
न पश्यते मन पसरस्य, इन्द्रिय सुखं न पश्यते ॥ १६३ ॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टीके आत्मानुभव रूप धर्ममें (कर्म त्रिविधि न दिष्टंते) तीन प्रकार कर्म भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म नहीं दिखलाई पड़ते हैं। (दोष णंत न पश्यते) अनन्त प्रकारके अशुद्ध भाव हैं वे नहीं दिखलाई पड़ते हैं (मन पसरस्य न पश्यते) मनका फलाव या अनेक मन द्वारा होनेवाले संकल्पविकल्प नहीं दिखलाई पड़ते हैं (इन्द्रिय सुखं न पश्यते) इन्द्रिय सुख नहीं दिखलाई पड़ता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीको दृढ श्रद्धान होता है कि रागद्वेषादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म, काम, भय, ग्लानि आदि अनेक दोष, मनके विचार, इंद्रियोंके द्वारा होनेवाले सुख ये सब आत्माके शुद्ध धर्म नहीं हैं। ये सब मोक्षके कारण नहीं हैं। ये सब संसारके बढाने-वाले बन्धके कारण हैं। ऐसा जानकर इन सबको त्यागने योग्य समझता है और जब ध्यानमें मग्न होता है तब उसके अनुभवमें इन सबका पता नहीं चलता है। उसकी निर्विकल्प समाधिमें एक शुद्ध आत्मा ही परमात्माके तुल्य झलकता है। वास्तवमें आत्माका स्वाभाविक धर्म इन सबसे परे है। वहां मन, वचन, कायके कोई विकल्प नहीं होते हैं। समाधिशतकमें श्री पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

स्वबुद्धया यावद्गृह्णीयात् काय वाक् चेतसां त्रयं। संसारस्तावदेते वां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः ॥ ६२ ॥

भावार्थ—जबतक यह जीव मन, वचन, काय तीनोंको व उनकी सर्व चेष्टाओंको आत्माकी चेष्टाएं हैं व ये आत्मा हैं ऐसा मानेगा तबतक संसार बढेगा। जब इनसे भिन्न आत्मा है ऐसा अभ्यास करेगा तब निर्वाणका लाभ कर सकेगा। वास्तवमें आत्मा व मोक्षमार्ग मात्र स्वानुभव-गम्य है। मन मात्र गुणोंको विचारमें लासक्ता है। वह एक एक गुणका व पर्यायका विचार करेगा। सर्वांश पूर्ण आत्मद्रव्यका ग्रहण मनसे यथार्थ नहीं होसक्ता। जब मन थिर होगा व आप आपमें लयता प्राप्त होगी तब ही आत्माका यथार्थ स्वाद आवेगा।

जेतानि कर्म संजुक्तं, प्रकृति भाव न दिष्टते।
न दिष्टते घाति कर्मस्य, पुण्यं पापं न दिष्टते ॥१६४॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टीके आत्मानुभवरूप धर्ममें (जेतानि कर्म संजुक्तं प्रकृति भाव न दिष्टते) जितनी कर्म प्रकृतियोंके भाव हैं सो कोई भी नहीं दिखलाई पड़ते हैं (घाति कर्मस्य न दिष्टते) न चार घातिया कर्म दिखलाई पड़ते हैं (पुण्य पापं न दिष्टते) न पुण्य पाप कभी दिखलाई पड़ते हैं।

भावार्थ—आत्माका शुद्ध स्वभाव ही सम्यग्दृष्टीके अनुभवमें आता है, वह जानता है कि आत्मा आत्मारूप है उसमें कोई भी परभाव व परद्रव्य या पर पर्यायका सम्बन्ध नहीं है। इसीलिये आठों कर्मप्रकृतियोंके सम्बन्धसे जो कुछ भी जीवमें असर पड सक्ते हैं वे कोई भी जीवमें नहीं हैं। न वहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय चार घातीय कर्म हैं और न वहां सातावेदनीय, शुभ नाम, शुभ गोत्र, शुभ आयु ऐसा चार पुण्यरूप अघातीय कर्म है। न वहां असातावेदनीय, अशुभ नाम, अशुभ गोत्र, अशुभ आयु ऐसे चार अघातीय रूप पाप कर्म हैं। ऐसा ही शुद्ध आत्मा सम्यग्दृष्टीके अनुभवमें आता है।

न दृष्टते त्रि कुज्ञानं, कषाय विषया न पश्यते।
न पश्यते इंद्रीज्ञानं, न पश्यते वंध चौविहं ॥१६५॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टीके आत्मानुभव रूपी धर्ममें (त्रि कुज्ञानं न दृष्टते) तीन कुज्ञान नहीं दिखलाई पडते हैं (कषाय विषया न पश्यते) चार कषाय व पांच इंद्रियोंकी इच्छाएं व विषय नहीं दिखलाई पडते हैं (इंद्रीज्ञानं न पश्यते) इंद्रियजनित ज्ञान भी नहीं दिखलाई पडता है (न पश्यते वंध चौविहं) न चार प्रकार कर्मका बंध दिखलाई पडता है।

भावार्थ—शुद्ध निश्चय नयसे आत्मामें कुमति, कुश्रुति, कुअवधि तीन कुज्ञान नहीं हैं, न क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय हैं, न स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द हैं, न इनकी इच्छाएं हैं, न वहां पांच इंद्रियोंसे होनेवाला ज्ञान है, न वहां प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागरूप चार प्रकार कर्मका बंध है। जब कर्मोंका आत्मासे बंध होता है तब चार बातें होती हैं। कर्मोंमें स्वभाव पडना प्रकृतिबंध है जैसे ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार कर्मोंमें आत्माके साथ ठहरनेकी मर्यादा पडना स्थितिबंध है। कर्मोंमें उदय होते हुए तीव्र या मंद फल दान शक्तिका पडना अनुभाग बंध है। कर्मोंकी वर्गणाओंकी संख्या कि किस प्रकृतिके कितने कर्म बंधे सो प्रदेशबंध है। शुद्ध आत्मामें ऊपर लिखित कोई कर्म जनित अवस्थायें नहीं हैं। ऐसा ही अनुभव सम्यग्दृष्टीको होता है। आत्मामें अतिन्द्रिय-ज्ञान है। इन्द्रियों द्वारा ज्ञान पराधीन होता है सो आत्माका स्वभाव नहीं है। इन्द्रियजनित ज्ञान

क्रमवर्ती है। एक इंद्रियसे जो ज्ञान होता है वह दूसरी इन्द्रियसे नहीं होता है। जब कि आत्माका स्वाभाविक ज्ञान एक समयमें सर्व पदार्थोंके स्वरूपको जान सकता है।

ठिदि अनुभागं न पश्यंते, प्रकृति प्रदेश न पश्यते।
चौविहि बन्ध न पश्यंते, संसार सरनि न दृष्टते ॥ १६६ ॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टीके आत्मानुभवमें (ठिदि अनुभागं न पश्यंते) स्थिति अनुभाग बंध नहीं दिखलाई पडते हैं। (प्रकृति प्रदेश न पश्यते) न वहां प्रकृति प्रदेश बंध दीखते हैं। (चौविहि बन्ध न पश्यंते) चार तरहका कर्म बन्ध नहीं दिखलाई पडता है। इस लिये (संसार सरनि न दृष्टते) संसारका मार्ग नहीं दिखलाई पडता है।

भावार्थ—आत्माके शुद्ध स्वभावमें चार तरहका कर्म बन्ध नहीं है। आत्माके कर्मका बन्ध कहना व्यवहारनयसे है। कर्म पौद्गलिक जड है। आत्मा चैतन्य अमूर्तिक है। जब कर्मोंका बंध आत्मामें नहीं है तब संसारकी चार गतियोंमें भ्रमण भी आत्मामें नहीं है। क्योंकि सर्व ही भ्रमणका कारण कर्मोंका उदय है। इसलिये आत्मा अपने स्वभावमें नित्य निश्चल रहनेवाला है। उसके स्वभावमें बंध व मोक्षकी कल्पना ही नहीं है। ऐसे ही आत्माके स्वभावका अनुभव सम्यग्दृष्टीको होता है। वास्तवमें निश्चयनयसे आत्माका स्वभाव परम निर्मल है। जैसा समयसारमें स्वामी कुंदकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं—

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गन्धो णवि रसो णवि य फासो। णवि रूवं ण सरीरं णवि संठाणं ण संघदणं ॥ ५५ ॥
जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो। णो पच्चया ण कम्मं णो कम्मं चा वि से णत्थि ॥ ५६ ॥
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव कड्ढया केई। णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणा वा ॥ ५७ ॥
जीवस्स णत्थि केई जोगट्ठाणा न बंधठाणा वा। णे वय उदयट्ठाणा णो मग्गण ठाणया केई ॥ ५८ ॥
णो ठिदि बन्धट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेस ठाणा वा। णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धि ठाणा वा ॥ ५९ ॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स। जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥ ६० ॥

भावार्थ—शुद्ध निश्चयसे इस जीव द्रव्यमें न तो वर्ण है न गन्ध है न कोई रस है और न स्पर्श है। न रूप है न शरीर है और न संस्थान (शरीरके आकार) हैं। न कोई संहनन (हड्डी विशेष)

हैं ॥ ५५ ॥ न इस जीवके राग है न द्वेष है और न यहां मोह पाया जाता है, न कर्मास्रवके कारण मिथ्यात्व भाव, अविरति, कषाय तथा योग हैं, न ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म हैं न शरीरादि नोकर्म हैं ॥ ५६ ॥ न इस जीवके कोई वर्ग (एक कर्म परमाणुमें फल दान शक्ति समूह) है, न वर्गणा (वर्गोंका समूह) है और न कोई स्पर्द्धक (कर्मवर्गणाका समूह) है, न रागादि अध्यवसान या अभिप्राय है और न कोई कर्म रस रूप अनुभागके स्थान हैं ॥ ५७ ॥ न इस जीवके कोई मन वचन काय द्वारा आत्मप्रदेश हलन रूप योग स्थान हैं, और न कर्मबन्धके स्थान हैं। न कर्मोंके उदय स्थान हैं, और न गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त, संज्ञी, आहारक ऐसे चौदह भेद रूप मार्गणा स्थान हैं, जहां संसारी जीवोंको ढूँढा जाता है ॥५८॥ न इस जीवके कर्मोंकी कालकी मर्यादा रूप स्थिति बन्ध स्थान हैं। न कोई अशुभोपयोग रूप संक्लेश स्थान हैं न शुभोपयोग रूप विशुद्धि स्थान हैं और न संयम भावकी प्राप्ति रूप संयम लब्धि स्थान हैं ॥५९॥ न इस जीवके एकेन्द्रिय द्वेन्द्रियादि भेदरूप जीव समास है और न जीवोंके भावोंकी क्रमसे उन्नतिरूप होनेवाले दरजे मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक्त, देशाविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मलोभ, उपशांत मोह, क्षीण मोह, सयोगकेवली, अयोग केवली ऐसे चौदह गुणस्थान हैं, क्योंकि ये सब पुद्गलद्रव्यकी अवस्थाएं हैं।

अज्ञानं व्रतक्रियं जेन, श्रुतं अज्ञान तप कृतं।
अनेय कष्ट न दिष्टंते, ज्ञानहीनो न दिष्टते ॥ १६७ ॥

अन्वयार्थ—(जेन अज्ञानं व्रतक्रियं श्रुतं अज्ञान तपकृतं अनेय कष्ट न दिष्टंते) जो आत्मज्ञान रहित अज्ञान सहित व्रत आचरण करता है, शास्त्रका अभ्यास करता है व अज्ञान तप करता है उसको जो इस लोकमें मानसिक व शारीरिक कष्ट होता है तथा परलोकमें जो कुछ कर्मके उदयसे आकुलता रूप क्लेश होता है यह सब इस लोक व परलोक सम्बन्धी क्लेश सम्यग्दृष्टीके परिणामोंमें नहीं दिखलाई पडता है (ज्ञानहीनो न दिष्टते) सम्यक्ती कभी आत्मज्ञानसे शून्य नहीं दिखलाई पडता है।

भावार्थ—सम्यक्तीका जितना कुछ व्रताचरण, शास्त्र मनन तथा तप साधन है सब निराकुल आनन्दमय होता है व उसका फल भी निराकुलताका लाभ रूप साताका उदय होता है, उसको

मिथ्यादृष्टीके समान शारीरिक व मानसिक कष्ट नहीं होते हैं मिथ्यादृष्टी जब उपवास आत्मानंदके लाभ विना किसी विषयकी आशासे कष्ट सहकर करता है तब सम्यक्ती आत्मानंदका लाभ लेता हुआ वीतराग भावके लिये बडी रुचिसे करता है। सम्यक्तीके सदा सम्यग्ज्ञान रहता है चाहे जिस अवस्थामें रहे। वह सोते हुए भी आत्मज्ञानकी श्रद्धासे शून्य नहीं होता है।

अविरतं शुद्धदृष्टी च, उपादेय गुन संजुतं।
मतिज्ञानं च संपूर्ण, उपदेश भव्यलोकयं ॥ १६८ ॥

अन्वयार्थ—(अविरतं शुद्धदृष्टी च) अविरत सम्यग्दृष्टी भी (उपादेय गुन संजुतं) ग्रहण करने योग्य गुणोंका धारी होता है (संपूर्ण च मतिज्ञानं) उनको यथार्थ मतिज्ञान होता है (उपदेशं भव्यलोकयं) उसका उपदेश भी भव्य जीवोंको यथार्थ होता है।

भावार्थ—चौथा गुणस्थानवर्ती भी सम्यग्दृष्टी पांच व्रतोंके नियमोंको न रखता हुआ भी जितने गुण मोक्षमार्गमें सहकारी है उनका श्रद्धावान होता है व यथाशक्ति उनकी प्राप्तिका उद्यम करता है। पांच इंद्रियोंसे जो कुछ वह जानता है उसमें हेय व उपादेय बुद्धि यथार्थ करता है। वह इंद्रियोंके विषयोंमें लुब्धायमान व आसक्त नहीं होता है। वह भव्यजीवोंको यथार्थ उपदेश देता है।

उपदेशं जिन उक्तं च, शुद्ध तत्व समं ध्रुवं।
मिथ्यामयं न दिष्टंते, उपदेश शाश्वतं पदं ॥ १६९ ॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टी (जिन उक्तं च उपदेशं) जिनेन्द्र भगवानने जैसा कहा है वैसा यथार्थ उपदेश देता है (शुद्ध तत्व समं ध्रुवं) वह अविनाशी, समतारूप, शुद्ध आत्मीक तत्वका उपदेश करता है (मिथ्यामयं न दिष्टंते) उसकी वाणीमें मिथ्यात्वमई उपदेश नहीं दिखलाई पडता है (उपदेशं शाश्वतं पदं) वह अविनाशी मोक्षपदका उपदेश करता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी व्यवहारनयसे जीवादि सात तत्वोंका उपदेश जिनागमके अनुसार करता है। तथा शुद्ध ध्रुव आत्म तत्वका भी उपदेश यथार्थ करता है। वह कभी भी मिथ्या तत्वका उपदेश नहीं देता है। जैसे वह मोक्षपदका उद्देश्य रखता है वैसा वह दूसरोंको बताता है।

उपदेशं धर्म शुद्धं च, तत्वं द्रव्य पदार्थकं ।
उपदेशं काय पंचार्थं, उपदेशं व्रत संयमं ॥ १७० ॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टी (शुद्धं धर्म च उपदेशं) शुद्ध आत्मीक धर्मका ही उपदेश करता है (तत्वं द्रव्य पदार्थकं काय पंचार्थं उपदेशं) वह सात तत्व छः द्रव्य नौपदार्थ व पांच अस्तिकायका यथार्थ उपदेश करता है (व्रत संयमं उपदेशं) वह महाव्रत अणुव्रतका, मुनि व गृहस्थके संयमका ही ठीक ठीक उपदेश करता है ।

भावार्थ—जैसे सम्यग्दृष्टीको सात तत्व, नौ पदार्थ, छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, मुनि व श्रावकके व्रतोंका ज्ञान व श्रद्धान होता है वैसे ही वह उनका स्वरूप दुसरोंको बताता है। इन सबका जानना मोक्षमार्गमें सहायकारी है। इसी तरह वह निश्चयनयसे शुद्ध आत्म-तत्वको जानता है व अनुभवता है व वैसा ही उपदेश दूसरोंको देता है—सम्यक्ती उपदेश देकर स्थितिकरण व प्रभावना अंगका पालन करता है ।

उपदेशं तपं शुद्धं, प्रतिमा एकदशानि च ।
देव गुरु धर्म शुद्धं च, दर्शनं ज्ञान संयुतं ॥ १७१ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्धं तपं एकदशानि च प्रतिमा) जो आत्मज्ञान सहित शुद्ध तपका, ग्यारह प्रतिमाओंका (दर्शनं ज्ञान संयुतं) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित (शुद्धं च देव गुरु धर्म च) वीतराग देव गुरु धर्मका (उपदेशं) उपदेश करता है, वह सम्यग्दृष्टी है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीका वह उपदेश भी यथार्थ ही होता है। वह उपवास, ऊनोदर, वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान इन बारह प्रकार तपोंको आत्मानुभवकी सिद्धिके लिये करनेके लिये उपदेश करता है। इसी हेतुसे श्रावककी ग्यारह श्रेणियोंका चारित्र बताता है। वे ११ श्रेणियां हैं-दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्त त्याग, रात्रि भोजन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग, उद्दिष्ट त्याग। देव गुरु धर्मका सच्चा स्वरुप बताता है। जिनमें सम्यग्दर्शन

सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी पूर्णता हो ऐसे सर्वज्ञ वीतराग भगवानको ही देव, निर्ग्रंथ वीतरागी रत्नत्रयके साधकको गुरु व रत्नत्रय मय परिणतिको धर्म समझता है।

उपदेशं ज्ञानमयं शुद्धं, सम्यक्तं शाश्वतं पदं ।
उपदेशं सयल विज्ञानं, ज्ञान सहकारि देशनं ॥१७२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानमयं शुद्धं सम्यक्तं शाश्वतं पदं उपदेशं) वह सम्यग्दृष्टी उपदेश करता है कि आत्मज्ञानमई भावका अनुभव निश्चय सम्यक्त है व यही आत्माका अविनाशी एक गुण है (उपदेश सयल विज्ञानं) तथा वह सम्पूर्ण केवलज्ञान पानेका उपदेश करता है (ज्ञान सहकारि देशनं) व ज्ञानकी जिन जिन उपायोंसे वृद्धि हो उनका उपदेश करता है।

भावार्थ—सम्यक्तीका सर्व उपदेश यथार्थ होता है। वह बताता है कि निश्चय सम्यक्त आत्माका एक गुण है, जहां शुद्धात्माका अनुभव किया जाता है वहीं उसका प्रकाश होता है। उस गुणका न कभी जन्म है न कभी नाश है, अनादिकालसे ऊपर कही हुई अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व इन पांच प्रकृतियोंसे आच्छादित रहता है। इनके हटनेसे ही प्रकाशित होजाता है। केवलज्ञान जब तक प्रगट नहीं तबतक एक सम्यक्तीको जो जो उपाय केवलज्ञानके प्रकाशके लिये करने योग्य हैं उन सर्वको बताता है। जैसे श्रावक व साधुका सर्व चारित्र जिससे बाहरसे आकुलता घटती जाय, अन्तरंगमें समता बढती जावे व आत्मध्यानकी निर्मलता बढते बढते धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान पैदा होजावे।

तीन प्रकार आत्मा।

आत्मा त्रिविधि प्रोक्तं च, पर अंतर बहिरप्पयं ।
आत्मानं शुद्धात्मानं, परमात्मा परमं पदं ॥ १७३ ॥

अन्वयार्थ—(आत्मा त्रिविध पोक्तं च) आत्माके तीन प्रकार भेद कहे गए हैं। (पर अन्तर बहिरप्पयं) परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा (आत्मानं शुद्धात्मानं परमात्मा परमं पदं) जो शरीरादिको आत्मा

जानता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टी है। जो शुद्ध आत्माको ही आत्मा जानता है, वह अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टी है। जो उत्कृष्ट पदमें रहनेवाला है वह परमात्मा है।

भावार्थ—आत्माके तीन भेद भी शास्त्रोंमें कथन किये गए हैं, इन तीनों पर्यायोंकी शक्ति आत्मद्रव्यमें है जो शुद्ध आत्माको श्रद्धामें न लाकर अशुद्धको शुद्ध माने, आत्मासे बाहर जो कुछ है उसको आत्मा मान मन वचन कायकी किसी भी क्रियाको आत्मा जानले, जो विषयसुखको सुख जाने वह बहिरात्मा है। जो आत्माको स्वभावसे शुद्ध परमात्माके समान जाने वह अंतरात्मा है। तथा जो चार घातीय रहित अरहंत हैं व आठों कर्म रहित सिद्ध हैं वे परमात्मा हैं।

परमात्मपदकी भावना रखते हुए हमें अंतरात्मा होकर व बहिरात्मापना त्यागकर मोक्षका साधन करना चाहिये। समाधिशतकमें श्री पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

बहिरात्मा शरीरादौ, जातात्मभ्रांतिरान्तरः। चित्तदोषात्मविभ्रांतिः, परमात्मातिनिर्मलः॥ ५॥

भावार्थ—जिनको शरीर आदिमें अर्थात् मन वचन कायकी किसी भी अवस्थामें आत्मापनेकी भ्रांति है वह बहिरात्मा है। जिसके भावोंसे भ्रांति निकल गई है, जो रागादि दोषोंको भी शुद्ध आत्माके स्वभावसे भिन्न जानता है वह अन्तरात्मा है तथा जो अति निर्मल आत्मा है वह परमात्मा है।

मिथ्या त्री कुज्ञानं च, शल्यं त्रिति न दिष्टते।
कषायं विषय दुष्टं च, राग दोषं न चिंतए ॥१७४॥

अन्वयार्थ—सम्यक्तीके भावोंमें (मिथ्या त्री कुज्ञानं) तीन प्रकार मिथ्यात्व व तीन प्रकार कुज्ञान व (त्रिति शल्यं न दिष्टते) तीन प्रकार शल्य नहीं दिखलाई पडते हैं (कषायं विषय दुष्टं च रागदोषं न चिन्तये) वह दुष्ट विषय कषायोंकी व राग द्वेषकी भावना नहीं करता है।

भावार्थ—मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व, सम्यक्‌प्रकृति इन तीन प्रकार दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे श्रद्धानमें जो मलीनता होती है वह सम्यग्दृष्टीमें नहीं होती है, न वहां कुमति, कुश्रुत व कुअवधि ज्ञान होते हैं। और न वहां माया, मिथ्या निदान ये तीन शल्य होती हैं। वह संसारमें फंसानेवाली व दुष्टके समान जितना अधिक प्यार करो उतना अधिक आत्माका बुरा करनेवाली है

पांचों इन्द्रियोंकी इच्छाओंका दास नहीं होता है न वह क्रोध, मान, माया, लोभकी तीव्रता रखकर रागद्वेष भावोंकी भावना करता है। उसके भावना एक निज वीतराग भावकी रहती है।

प्रथमं उपदेश सम्यक्तं, शुद्ध धर्म सदा बुधैः ।
दर्शनज्ञान मयं शुद्धं, सम्यक्तं शाश्वतं ध्रुवं ॥ १७५ ॥

अन्वयार्थ—(बुधैः सदा प्रथमं सम्यक्तं उपदेश) बुद्धिमानोंको सदा ही प्रथम सम्यग्दर्शनका उपदेश करना चाहिये (शुद्ध धर्म) यह सम्यग्दर्शन आत्माका शुद्ध स्वभाव है (दर्शनज्ञान मयं शाश्वतं ध्रुवं सम्यक्तं) दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी निश्चल आत्माका गुण सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—हरएक जीवको जो अपना हित चाहता है प्रथम ही श्री गुरु, सम्यग्दर्शनका उपदेश करते हैं क्योंकि धर्मका जड श्रद्धा है, विना रुचिके कोई काम भी उत्तम रीतिसे प्रतिपादन नहीं होता है, रुचि सहित भोजन भी पचता है, रुचि सहित पढना भी हितकर है, इसी तरह धर्मके साधनमें प्रथम रुचिकी जरूरत है। निश्चय सम्यग्दर्शन आत्माके शुद्ध अविनाशी निश्चल स्वभावका श्रद्धान करना है। यह आत्माका एक गुण है। जब यह प्रकाशमान होता है, तब ही मोक्षमार्गका प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शनके होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान व चारित्र सम्यक्चारित्र होजाता है। तीनों ही रत्न सम्यक्तके साथ प्रगट होजाते हैं। स्वात्मानुभवरूप सम्यग्ज्ञान व स्वरूपाचरण चारित्र सम्यक्तके होते हुए होजाते हैं। रत्नकरंड श्रावकाचारमें स्वामी समन्तभद्रजी भी कहते हैं—

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते । दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥ ३१ ॥

भावार्थ—ज्ञान और चारित्रसे सम्यग्दर्शनकी मुख्यतया उपासना की जाती है। कारण कि वह मोक्षमार्गमें खेवटियोंके समान है। उसके होनेपर ही ज्ञान और चारित्रमें सम्यक्पना आता है।



पच्चीस दोष रहित सम्यक्त ।

सम्यक्दर्शनं शुद्धं मिथ्यामोह विवर्जितं ।
मुढत्रयादि मलं मुक्तं, सम्यक्तं सम्यग्दर्शनं ॥ १७६ ॥

अन्वयार्थ—(शुद्धं सम्यग्दर्शनं मिथ्या मोह विवर्जितं) निर्दोष सम्यग्दर्शन वही है जहां मिथ्या पदार्थोंका मोह नहीं हो । (मुढत्रयादि मलं मुक्तं सम्यक्तं सम्यग्दर्शनं) तीन मूढता आदि पचीस मल रहित जो रुचि है सो सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—जगतके सब पदार्थ पर्याय रूप हैं, क्षणभंगुर हैं । धन, धान्य, स्त्री, पुत्रादि मकान, वस्त्र पात्रादि देखते देखते नष्ट हो जाते हैं । इन पदार्थोंकी तरफ आसक्त बुद्धि मिथ्यात्व है । यह मिथ्या मोह जिसका छूट गया है, जिसको निश्चल आत्माके शुद्ध स्वभावकी गाढ रुचि है उसीके सम्यग्दर्शन है । इसमें निर्दोषता पचीस दोषोंके अभावसे आती है । वे २५ दोष हैं–तीन मूढता–लोकमूढता, देवमूढता, गुरूमूढता, छः अनायतन–कुदेव, कुगुरू, कुशास्त्र, व इनके भक्तोंकी सेवा । आठ मद–जाति, कुल, धन, विद्या, रूप, अधिकार, तप, बल इनका घमण्ड करना, माताके पक्षको जाति, पिताके पक्षको कुल कहते हैं । आठ शंकादि दोष–आठ अंगोंको न पालकर उलटाके भाव रखना ।

१ निशंकित अंग—जिनमतमें शंका न रखना तथा इह लोक, परलोक, वेदना, अरक्षा, अगुप्ति मरण व अकस्मात् इन सात भयोंको छोडकर धर्म पालना ।

२–निःकांक्षित अंग—इन्द्रियोंके सुखोंमें सुखपनेकी श्रद्धा न रखना ।

३–निर्विचिकित्सा अंग—रोगी, दुःखी, आदिको व मलीन पदार्थोंको देखकर ग्लानिभाव न रखना ।

४–अमूढदृष्टि अंग—मूढतासे देखादेखी कोई अधर्म क्रियाको धर्म न समझ लेना ।

५–उपगूहन अंग—धर्मात्माओंके दोषोंकी निन्दा न करना । अपने गुणोंको बढाना ।

६–स्थितिकरण अंग—धर्ममें अपनेको व दूसरोंको थिर करना ।

७–वात्सल्य अंग—धर्मात्माओंसे गौवत्सके समान प्रीति रखना ।

८–प्रभावना अंग—धर्मका जगतमें प्रकाश करना, धर्मोन्नति करना ।

तीन मूढता।

मूढ त्रयं कथं तेन, संसारे भ्रमणं सदा।
कुज्ञानं रागसम्बन्धं, मूढं दुर्गतिबन्धनं ॥ १७७ ॥

अन्वयार्थ—(मूढ त्रयं कथं तेन) मूढता तीन जो कही गई हैं उनमें फँसनेसे (संसारे सदा भ्रमणं) संसारमें सदा भ्रमण होता है (कुज्ञानं रागसम्बन्धं मूढं) मिथ्याज्ञानमें रागका सम्बन्ध जोडना मूढता है (दुर्गतिबन्धनं) इसके सेवनसे कुगतिका बन्ध होता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानका लाभ जिनसे न हो, किन्तु मिथ्याज्ञानकी वृद्धि हो व मिथ्यात्वकी पुष्टि हो व संसारके पदार्थोंमें राग अति बढ जावे, ऐसी भक्तिको मूढता कहते हैं। इस मूढतामें फँसकर प्राणी अयोग्य क्रियाएं किया करता है, तीव्र कषायसे तीव्र पापोंको बांधता है और दुर्गतिमें चला जाता है।

लोक मूढता।

प्रथमं लोक मूढस्य, पाक्षिक धर्म संजुतं।
असत्यं ऋतं जानाति, जिनद्रोही दुर्गतिभाजनं ॥ १७८ ॥

अन्वयार्थ—(प्रथमं लोक मूढस्य पाक्षिक धर्म संजुतं) पहले लोक मूढताकी पक्ष लिये हुए अधर्मको जो धर्म मानता है वह (असत्यं ऋतं जानाति) असत्यको सत्य मान लेता है वह (जिनद्रोही) जिनमतसे विपरीत चलकर (दुर्गतिभाजनं) कुगतिमें चला जाता है।

भावार्थ—लोकमूढताका स्वरूप रत्नकरंडमें कहा है—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्। गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥

भावार्थ—धर्म समझकर गंगा, नर्मदा आदि नदियोंमें तथा समुद्रमें स्नान करना, बालू और पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना और अग्निमें जलना लोकमूढता कही जाती है। नदी आदिमें स्नान हिंसाकारक है। अपघात पापमूल है। जिन क्रियाओंसे अधर्म होता है, हिंसा होती है,

पापबंध होता है उन लोगोंकी मानी हुई मिथ्या क्रियाओंको सची मान करके उनका राग करना, देखादेखी करने लग जाना सो सब लोकमूढता है। कलम दावात पूजना, मकानका दरवाजा व दूकानकी दिहली पूजना, तलवार पूजना, होई व होली पूजना आदि सब लोकमूढता है। इसमें फंसकर तीव्र कषायसे यह प्राणी घोर पाप बांध लेता है। विधवाका सती होना तो सरासर अपघात है, घोर पाप है इससे वह विधवा व उसके प्रेरक सब दुर्गति चले जाते हैं।

कुदेवं कुगुरुं जेन, कुधर्मं रागबंधनं।
कुज्ञानं शल्य संयुक्तं, मान्यते लोकमूढयं ॥ १७९ ॥

अन्वयार्थ—(लोकमूढयं) लोकमूढतामें फंसा हुआ जीव (कुदेवं कुगुरुं जेन कुधर्मं रागबन्धनं) कुदेवोंसे, कुगुरुओंसे, व कुधर्मसे राग बांध लेता है (कुज्ञानं शल्य संयुक्तं मान्यते) मिथ्यात्व, माया व निदान शल्योंमें फंसा हुआ मिथ्या ज्ञानको सचा मान लेता है।

भावार्थ—लोकमूढताके कारणसे ही यह जीव देवमूढता व गुरुमूढतामें फंस जाता है। लोगोंके बहकानेसे देखादेखी जैसे वह नदीमें स्नानको धर्म मानता है वैसे रागी द्वेषी देवोंकी स्थापनाको देव व परिग्रहधारी संसारासक्त महंतोंको गुरु मानके भक्ति करने लग जाता है। उसके भीतर संसारका रागरूप मिथ्याभाव, मायाचार तथा इस मूढतासे मुझे भोगादि मिलें इस निदानमें फँस जाता है। जो बात मिथ्या है, संसार-वर्द्धक है, रागद्वेष मूलक है उसे सत्य मान लेता है। ज्ञानीको लोकमूढतासे बचना चाहिये।

लोकमूढरतो जेन, पक्षधर्म प्रकाशये।
शुद्ध धर्मं न जानाति, मिथ्या मूढ व्रतं तपः ॥ १८० ॥

अन्वयार्थ—(जेन लोकमूढरतः) जो कोई लोक मूढतामें रुचिवान रहता है वह (पक्षधर्म प्रकाशये) अपने पक्षके लौकिक माने हुए अधर्मको धर्म कहता है (शुद्ध धर्मं न जानाति) शुद्ध वीतरागमई आत्म-हित रूप धर्मको नहीं पहचानता है। (मिथ्या मूढ व्रतं तपः) उसका सर्व व्रत पालन व तप करना मिथ्या है व मूढतासे भरा हुआ है।

भावार्थ—लोक मूढता बड़ी बुरी वस्तु है। इसका पक्ष अज्ञानसे जीवोंको इतना भारी होजाता है कि अनेक कष्ट सहकर, धन खरच कर नदियोंके स्नानकी यात्रा करते हैं। और उस नदी स्नानसे बड़ा धर्म होगा, पाप धुल जायगा ऐसा वे लोकमूढतामें रत जीव प्रकाश भी कहते हैं। जिससे जगतमें लोगोंको इस अधर्मकी गाढ रुचि होजाती है, उनको वीतराग धर्म अच्छा नहीं लगता है। वे लोक मूढतामें फंसकर अज्ञान व्रत व तप करते रहते हैं। एकादशीका व्रत करके खूब मीठा मेवा आदि खाते हैं। दिनमें भूखे रहकर रात्रिको चन्द्रमा देखकर खाते हैं। लकडीकी धूनी जलाकर तप करते हैं, ये सब यथार्थ व्रत व तप नहीं हैं, क्योंकि जब इंद्रियोंको वशमें रखकर मनको धर्मध्यानमें लगाया जाय तब ही एकादशीका व्रत होसक्ता है। रात्रिको न कुछ खाकर दिनमें एकभुक्त करना व्रत होसक्ता है क्योंकि हिंसाका बचाव होता है। रात्रि खाना अधिक त्रस हिंसाका कारण है, उसे धर्म मानना मूढता है।

देव मूढता।

देव मूढं च उत्पाद्य, अदेवं देव उच्यते।
अशाश्वतं अनृतं येन, कुज्ञानं रमते सदा ॥ १८१ ॥

अन्वयार्थ—(देव मूढं च उत्पाद्य) देव मूढताको पैदा करके (अदेवं देव उच्यते) कुदेवको देव कहा जाता है (अशाश्वतं अनृतं येन) ये कुदेव स्वयं नाशवन्त व मिथ्या हैं (कुज्ञानं रमते सदा) मिथ्याज्ञानी सदा कुदेवोंमें रमता है।

भावार्थ—देवमूढताको लोकमूढताके कारणसे अज्ञानी जीव अपने मनमें पैदा कर लेता है। तथा जो स्वयं रागी द्वेषी जन्म मरणके फंदेमें फंसे हुए हैं व मिथ्यात्व सहित हैं उनको देव मानके पूजता है। मिथ्याज्ञानके कारण सांसारिक प्रयोजनके लोभसे उनमें देवपना कल्पना कर लेता है।

श्री रत्नकरंड श्रावकाचारमें कहा है—

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः। देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

भावार्थ—आशावान् होता हुआ किसी वस्तु पानेकी इच्छासे राग द्वेष रूपी मलसे मलीन

देवताओंकी उपासना करना देव मूढ़ता कही जाती है। कुदेवोंकी भक्तिमें फंस करके प्राणी सर्वज्ञ वीतराग देवकी भक्तिमें श्रद्धा नहीं लासक्ता है। जो स्वयं संसारी है उसको पूजना व मानना संसार-वृद्धिका ही कारण है तथा वह पुण्य बंधका भी कारण नहीं है। पुण्य तो मंद-कषायसे बंधता है, सो वीतराग सर्वज्ञ देवकी भक्ति करने हीसे पुण्यका लाभ होसक्ता है।

देव मूढं च मूढत्वं, रागदोषं च संजुतं।
मान्यते जेन केनापि, दुर्गति भाजन ते नरा ॥ १८२ ॥

अन्वयार्थ—(देव मूढं च मूढत्वं) देव मूढता बिलकुल मूढता है (जेन केनापि रागदोषं च संजुतं मान्यते ते नरा दुर्गतिभाजनं) जो कोई भी रागद्वेष सहित देवको मानता है वह मानव कुगतिको जाता है।

भावार्थ—कषायकी तीव्रतासे नरक निगोद पशु गतिका बंध होजाता है। जो कोई भी रागी द्वेषी कुदेवोंकी मान्यता करता है वह तीव्र लोभके विना नहीं करता है। इसलिये वह वृथा ही तीव्र पाप बांधकर दुर्गति चला जाता है। लाभ कुछ नहीं होता।

देवमूढं च मुढं च, ज्ञानं कुज्ञान पश्यति।
मान्यते लोकमूढस्य, मिथ्यामय निगोयं पतं ॥ १८३ ॥

अन्वयार्थ—(देवमूढं च मूढं च) देव मूढताकी मूर्खताके कारण (ज्ञानं कुज्ञान पश्यति) यथार्थ ज्ञानको मिथ्या ज्ञान देखता है (लोकमूढस्य) लोकमूढताके वश हो (मिथ्यामय मान्यते) मिथ्या देवोंकी भक्तिको मानता है (निगोयं पतं) इसका फल निगोदमें पतन है।

भावार्थ—देव मूढताके मोहमें फँसकर प्राणीका ज्ञान एक ऐसा विपरीत होजाता है कि वह सच्चे देवका स्वरूप ठीक २ बतानेपर भी उसपर विश्वास नहीं लाता है, उसे रागीद्वेषी देव ही अच्छे लगते हैं, लोगोंकी देखादेखी मिथ्या देवोंको पूजकर अज्ञानी निगोदमें चला जाता है।

पाखण्डी मूढता।

पाखण्डी मुढं पि जानाति, पाखण्ड विभ्रम जे रताः।
परपंचं पुद्गलार्थं च, जिनद्रोही दुर्गतिभाजनं ॥ १८४ ॥

अन्वयार्थ—(जे पाखंड विभ्रम रताः) जो कोई मिथ्या साधुओंके भ्रममें फंस जाते हैं वे (पाखंडी मूढंपि जानाति) गुरुमूढताको अनुभव करते हैं (परपंचं पुद्गलार्थं) शरीरादि धनादिके लिये प्रपंच रचते हैं। वह (जिनद्रोही दुर्गति भाजनं) जिनेन्द्रके मतसे विपरीत हैं और खोटी कुगतिका बंध करते हैं।

श्री रत्नकरंडमें पाखण्डमूढताको इसतरह कहा है—

सग्रन्थारंभहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्। पाखंडिनो पुरस्कारो ज्ञेयं पाखंडिमोहनम् ॥ २४ ॥

भावार्थ—परिग्रह आरंभ और हिंसामें लीन, संसारके चक्रमें भ्रमण करनेवाले पाखंडी साधु तपस्वियोंका आदर सन्मान भक्ति करना सो गुरुमूढता है। निर्ग्रंथ आत्मध्यानी साधुको ही गुरु मानना योग्य है। उनके सिवाय अनेक भेषधारी साधु जगतमें किसी न किसी लोभवश तपस्या करते हैं। सच्चे साधुके सिवाय अन्यको किसी लोभवश पूजना मानना पाखंडि मूढता है।

पाखंडी मूढ विश्वासं, लोकमूढं च दिष्टते।
विश्वासं जेन कर्तव्यं, दुर्गति भाजन ते नराः ॥ १८५ ॥

अन्वयार्थ—(पाखंडी मूढ विश्वासं) जो गुरुमूढताका विश्वास करता है (लोकमूढं च दिष्टते) उसके लोकमूढता भी दिखलाई पडती है (जेन विश्वासं कर्तव्यं) जो कोई उनका विश्वास करते हैं (दुर्गति-भाजन ते नराः) वे मानव कुगतिको जाते हैं।

भावार्थ—बहुधा लोकमूढताको धर्म बताने वाले रागी द्वेषी संसारासक्त साधु होते हैं। इनका विश्वास कर लेनेसे प्राणी मूढताईमें फंसकर कुगति चला जाता है।

पाखंडी वचन विश्वासं, प्रोक्तं अधर्म कृतं।
अदेवं देव उक्तं च, विश्वासं नरयं पतं ॥ १८६ ॥

अन्वयार्थ—(पाखंडी वचन विश्वासं अधर्मं कृतं प्रोक्तं) मिथ्या गुरुओंके वचनोंपर विश्वास कर लेनेसे अधर्मको धर्म कहा हुआ मानना पडेगा (अदेवं देव उक्तं च) तथा कुदेवको देव मानना पडेगा (विश्वासं नरयं पतं) ऐसे रागी द्वेषी देवोंपर विश्वास लानेसे नरकमें जाना होगा।

भावार्थ—परिग्रहासक्त आत्मध्यान रहित कुगुरुओंको नहीं मानना चाहिये। क्योंकि यही

कुदेवोंकी भक्तिमें लगा देते हैं। वे उपदेश कर देते हैं कि अमुक कुदेवको पूजोगे तो तुमको पुत्रका व धनका लाभ होगा। बस ऐसे ही भविष्यके लोभके कारण प्राणी कुदेव भक्तिमें फंस जाते हैं। जिससे तीव्र कर्म बांधकर नरकमें चले जाते हैं।

पाखंडी मूढ प्रोक्तं च, विकहा राग संजुतं।
दुर्बुद्धी जिन द्रोही च, विश्वासं संसारभाजनं ॥१८७॥

अन्वयार्थ—(पाखंडी मूढ़ विकहा राग संजुतं प्रोक्तं च) कुगुरुओंका मूर्खता भरा हुआ वचन विकथाके रागको लिये हुए होता है (दुर्बुद्धी जिन द्रोही च) वे मिथ्याबुद्धिको देखते हैं तथा जिनेन्द्रके मतसे विपरीत हैं (विश्वासं संसारभाजनं) ऐसे गुरुओंका विश्वास करनेवाला संसारमें भ्रमण किया करता है।

भावार्थ—जो स्वयं आत्मज्ञान शून्य हैं वे संसारासक्त हैं, वे अपने उपदेशमें स्त्री कथा, भोजन कथा, राष्ट्र कथा व राजा कथा इन चार विकथाओंमें फंसानेवाले वचन कहते हैं। उनकी बुद्धि खोटी है, वे जिनेन्द्रके यथार्थ मतसे विपरीत कहते हैं इसलिये वे हमारे लिये विश्वासके पात्र नहीं। उनका विश्वास संसारमें रुलानेवाला है।

पाखण्डी मूढ संगानि, अनुमोदं वचन विभ्रमं।
कुज्ञानं भावसंजुक्तं, दुर्गतिगमनं न संशयः ॥ १८८ ॥

अन्वयार्थ—(पाखण्डी मूढ संगानि) जो मिथ्या साधुओंकी संगति करते हैं (वचन विभ्रमं अनुमोदं) उनके वचनोंके-मायाजालमें रंजायमान होते हैं (कुज्ञानं भाव संजुत्तं) उनका भाव कुज्ञान सहित हो जाता है (दुर्गतिगमनं न संशयः) वे अवश्य कुगतिको जांयगे इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।

भावार्थ—कुगुरुओंकी संगतिसे उनके मिथ्यात्व पोषक वचनोंमें जो अनुमोदना करते हैं उनके कुज्ञानकी वृद्धि होजाती है, वे सम्यक्तकी प्राप्तिसे दूर भागते हुए मिथ्यात्वमें फँसे हुए अवश्य खोटे कर्म बांधकर कुगतिमें जाते हैं।

छः अनायतन ।

अनायतन षट्कश्चैव, कुदेव देव धारिनं ।
कुशास्त्रं कुशास्त्र धारी च, कुलिंगी कुलिंग धारिनं ॥ १८९ ॥

अन्वयार्थ—(अनायतन षट्कश्चैव) छः अनायतन भी हैं (कुदेव देव धारिनं) कुदेव और उनके माननेवाले (कुशास्त्रं कुशास्त्र धारिनं) कुशास्त्र और उनके माननेवाले (कुलिंगी कुलिंग धारिनं) कुगुरु और उनके माननेवाले इनकी संगति न करनी चाहिये ।

भावार्थ—कुसंगतिका बडा बुरा फल होता है। अपनी गाढ श्रद्धामें अन्तर न आवे इसलिये जो सच्चे धर्मके आयतन या स्थान नहीं हैं उनकी संगति करना उचित नहीं। उनसे बचकर रहनेसे अपना सम्यक्त निर्मल रहेगा, इसलिये कुदवोंकी संगतिमें बैठना, कुगुरुओंकी संगति रखनी तथा मिथ्या धर्म व राग पोषक शास्त्रोंको पढना सुनना तथा कुदेवोंके कुगुरुओंके व कुशास्त्रोंके माननेवालोंकी ऐसी संगति जिससे श्रद्धान चलायमान होजावे, एक श्रद्धावानको न रखनी चाहिये। लौकिक प्रेमका व्यवहार करनेमें कोई हर्ज नहीं। परन्तु उनकी श्रद्धामें व भक्तिमें आप भी मिल जाना मिथ्या धर्मकी अनुमोदना करना होगा व परिणामोंको शुद्ध नहीं रख सकेगा। जहां वीतराग विज्ञानमई धर्म मिले वहीं संगति कर्तव्य है।

कुदेवं च जिनं उक्तं, रागदोष अशुद्ध भावना ।
मिथ्या माया संजुक्तं, कुज्ञानं कुदेव जानही ॥ १९० ॥

अन्वयार्थ—(जिनं उक्तं च) जिनेन्द्रने ऐसा कहा है कि (कुदेवं) कुदेव ये हैं जिनमें (रागदोष अशुद्ध भावना) रागद्वेष तथा अशुद्ध संसार लीन भाव हैं (मिथ्या माया संजुक्तं) वे मिथ्यात्व व माया सहित हैं या मिथ्या ऐश्वर्यमें मगन हैं (कुज्ञानं) मिथ्याज्ञानके धारी हैं, उनको (कुदेव जानही) कुदेव जानना चाहिये।

भावार्थ—जिनमें वीतरागता नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, आत्मज्ञान नहीं, जो मिथ्यात्वमें लीन हैं, मायाचार भी करते हैं, भोग सम्पदामें रात दिन मगन है, रागद्वेषमें फंसे हैं, देवियोंके रागमें मग्न है, दूसरे देवोंसे इर्षा करते हैं, अशुद्ध भावना जिनके हर समय पाई जाती है, जिनमें कुमति

कुश्रुत कुअवधि है वे सर्व कुदेव हैं। यहां मिथ्यात्व सहित भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व नौ-ग्रैवेयिक तकके देव सब आगए। इनको यहां कुदेव कहा है। तब वे देव जो सम्यक्ती हैं वे सुदेव होजाते हैं तथापि जहां सर्वज्ञ वीतरागको देव कहा है वहां सम्यक्ती देव भी अज्ञान व कषायको रखते हुए पूज्यनीय देव नहीं होसक्ते। जगतके लोग बहुधा दुर्गा, काली, भवानी, भैरों आदिको पूजते हैं उनकी अपेक्षा यहां कथन है जिनमें मिथ्यात्वकी ही मुख्यता है। सौधर्म इन्द्र जो सम्यक्ती देव है उसको कोई भी लौकिकजन नहीं पूजते हैं। देवोंकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टी देव सुदेव हैं। वे चौथे गुणस्थानमें होते हुए साधर्मी भाईके समान प्रतिष्ठाके योग्य हैं, वीतराग भगवानके समान पूजाके योग्य नहीं।

इन्दियमयं कुदेवं, विषयं विष सहिय जानि नियमेन।
कषायं वर्द्धनं नित्यं, ध्यानरौद्र सम जोगिनः ॥ १९१ ॥

अन्वयार्थ—(इन्दियमयं कुदेवं) पांचों इन्द्रियों रूपी कुदेव (विषमं) भयानक हैं। समभाव रहित हैं। (विषं सहिय नियमेन जानि) उनको नियमसे विष सहित जानना योग्य है। (नित्यं कषायं वर्द्धनं) उनसे नित्य कषायकी बढवारी होती है (ध्यानरौद्र सम जोगिनः) उनसे मन वचन काय योग रौद्रध्यानी रहते हैं।

भावार्थ—यहांपर विषय कुदेवोंका ही है। ऐसा तात्पर्य मालूम पडता है कि जिन कुदेवोंको देव मानकर पूजा जाता है वे स्वयं इन्द्रियोंके विजयी नहीं हैं। ये पांच इंद्रियां भी कुदेव हैं अर्थात् इनकी सेवा भी व इनके भीतर मगनता भी हमारा बुरा करनेवाली है। फिर जो इन इन्द्रियोंके आधीन हों उन कुदेवोंकी भक्तिसे हमारा आत्मकल्याण कैसे होगा। इन इन्द्रियोंकी चाहनाएं विषयसे भी अधिक भयानक हैं। सर्पका विष तो एक जन्ममें प्राण हरता है, परन्तु इन्द्रियोंकी चाह भव भवमें प्राण लेती है। इनके सेवनसे लोभ कषाय बढता जाता है व इनके विराधकोंसे क्रोध कषाय बढ जाती है। इन्हींके कारण हिंसा, मृषा, चोरी व परिग्रहकी वृद्धिमें मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति अति वेगसे होजाती है।

मिथ्यादेवं अदेवं च, ज्ञानं कुज्ञान पश्यते सर्वं।
सुहं असुहं वि न बुज्झंति, न हु जानदि लोयविवहारं ॥१९२॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यादेवं अदेवं च) मिथ्या, व कल्पित माने हुए देव अदेव हैं (सर्वं ज्ञानं कुज्ञान पश्यते) वे सब ज्ञानको कुज्ञान देखनेवाले हैं अर्थात् उनके यथार्थ ज्ञान नहीं है अथवा जो उनको मानते हैं उनके यथार्थ ज्ञान नहीं है। वे पूजक (सुहं असुहं पि न बुज्झंते) अपना भला या बुरा नहीं पहचानते हैं (लोय विवहारं न हु जानदि) न वे लोक व्यवहारको जानते हैं।

भावार्थ—जिनमें देवपना बिलकुल नहीं है ऐसे माने हुए कल्पित देव अनेक हैं। जिनमें कोई यथार्थ ज्ञान भी नहीं है उनको अज्ञानी लोग देव मानके पूजते हैं। वे भक्तजन नहीं पहचानते हैं कि इनकी भक्तिमे हम संसारको बढा रहे हैं। अनंत संसारके कारण रूप मिथ्यात्वकी जड मजबूत कर रहे हैं। वे नहीं जानते हैं कि सच्चा व्यवहार धर्म क्या है। सच्चा व्यवहार वही है जो निश्चयका किसी अपेक्षा साधक हो।

उत्पति नत्थि अदेवं च, कृतकारित मूढ लोयस्य।
जे देवं पि कहंता, ते सव्वे मूढ दुर्बुद्धीः ॥ १५२ ॥

अन्वयार्थ—(अदेवं च उत्पति नत्थि) अदेवोंकी तो देवगतिमें उत्पत्ति ही नहीं है। (मूढ लोयस्य कृतकारित) मूर्ख अज्ञानी लोगोंने उनकी रचना की है व कराई है (जे देवं पि कहंता) जो कोई उनको देव कहते हैं (ते सव्वे मूढ दुर्बुद्धीः) वे सब मूढ हैं, बुद्धि रहित हैं।

भावार्थ—रागी द्वेषी देव अर्थात् कुदेव तो उनको कहेंगे जो देवगतिमें हैं। उनके सिवाय अन्य गतिके व उनसे अन्य जो हैं जिनमें देवपनेका अंश भी नहीं है–देव मानना अदेव है। जैसे गाय, घोडा, गरुड, हाथीको देव मानके पूजना व पीपलेको देव मानके पूजना। जगतके लोगोंने बहुतसे पदार्थोंकी पूजा चलादी है व चलवादी है। उनको जो देव मानते हैं वे बुद्धि रहित हैं। व संसारके विषय-भोगोंमें आसक्त हैं।

श्री अमितगति महाराजने श्रावकाचारमें अदेवका कुछ स्वरूप कहा है—

मूशलं देहली चुल्ली पिप्पलश्चंपको जलं। देवा यैरभिधीयंते वर्ज्यन्ते तैः परेऽत्रके ॥ ९६ ॥

भावार्थ—मूसल, देहली, चूल्हा, पीपल, चम्पा, जल आदिको जो देव कहते हैं जिनमें देवपना किसी तरह भी नहीं हैं उनके देव माननेमें और क्या बाकी रह गया ?

कुदेव धारी पुरिसा, हिंडंति संसार दुक्ख संतत्ता ।
थावर वियलेन्द्रिया, नरयं गच्छेह दुःखसंतत्ता ॥ १९४ ॥

अन्वयार्थ—(कुदेव धारी पुरिसा) जो पुरुष कुदेवोंके भक्त हैं वे (दुक्ख संतत्ता संसार हिंडंति) दुःखोंसे पीडित होकर इस संसारमें भ्रमण करते हैं (थावर वियलेन्द्रिया) वे वारवार एकेन्द्रिय स्थावर व द्वेन्द्रियादि विकलत्रय होते हैं (दुःख संतत्ता नरयं गच्छेइ) वे दुःखोंसे पीडित होते हुए नर्कको जाते हैं।

भावार्थ—कुदेवोंकी भक्ति करनेसे तीव्र कषायोंका झलकाव होता है जिससे अशुभ आयुका बन्ध होजाता है। इस कारण यह प्राणी कुगतिमें दुःखोंको उठाता है। नरक निगोद पृथ्वीकायादि स्थावरोंमें दीर्घकाल जन्म मरण करता है।

अदेवं जो वंदे, पूजै आराहि भत्ति भारेन ।
सो दुग्गेपि सहंता, निगोयवासं मुणेयव्वो ॥ १९५ ॥

अन्वयार्थ—(जो अदेवं वंदे पूजै भत्ति भारेन आराहि) जो कुदेवोंको तथा अदेवोंको वंदना करता है, पूजता है व भक्तिमें भरके आराधना करता है (सो दुग्गेपि सहंता) सो कुगतिके दुःखोंको सहन करते हुए (निगोयवासं) निगोदमें अनन्तकाल वास करता है (मुणेयव्वो) ऐसा मानना योग्य है।

भावार्थ—सर्वज्ञ वीतराग सच्चे देवोंको छोडकर जो रागी द्वेषी देवोंको या कल्पित देवोंको भक्ति सहित आराधेगा, पूजेगा तथा वंदना करेगा वह मिथ्यात्वकी पुष्टि करनेके कारण तीव्र कर्म बांधकर दुर्गतिके नरकादिके दुःख सहेगा और निगोदमें जाकर एकेंद्रिय साधारण वनस्पतिमें जन्म लेकर अनन्त कालमें भी निगोदसे न निकल सकेगा।

कुदेवं अदेवयत्वं, जो चिंतेह कुमय मयमंता ।
चिंता सायरे बूडं, संसारे सरनि ना लहे थाहं ॥ १९६ ॥

अन्वयार्थ—(जो कुमय मयमता कुदेवं अदेवयत्वं चिंतेह) जो कुमतिको धारण करनेवाले कुदेव या अदेवका मनमें चिंतवन भी करते हैं वे (चिंतासायरे बूडं) चिंताके सागरमें डूबे रहते हैं (संसारे सरनि ना लहे थाहं) उनको संसारके मार्गकी थाह नहीं मिल सक्ती है।

भावार्थ—जो कोई यह चिंता किया करता है कि मैं अमुक कुदेवको या अदेवको पूजूंगा तो यह लाभ होजायगा, उसकी बुद्धि धर्ममार्गसे हटी रहती है। वे पुण्य पाप कर्मको नहीं समझते हैं वे उनहीको अपना भला या बुरा करनेवाला मान लेते हैं। वे कभी भी संसारके मार्गसे हटकर मोक्षमार्गमें नहीं जासक्ते हैं। इनका संसार बहुत बडा होजाता है। उनके भीतर मिथ्यात्व कर्म दृढ बंधन कर लेता है व उनके मिथ्यात्वके बंधकी सन्तान चला करती है।

कुलिंगी जे जीवाः, ते अज्ञान भासियं लोये।
मिथ्यात्वराग सहियं, शल्यं संजुत्त दुर्बुद्धी ॥ १९७ ॥

अन्वयार्थ—(जे जीवाः कुलिंगी) जो जीव मिथ्या भेषधारी साधु हैं (ते लोये अज्ञान भासियं) वे लोकमें अज्ञानी कहे गए हैं। (मिथ्यात्वराग सहियं) उनको मिथ्यादर्शनका राग है (शल्यं संजुत्त दुर्बुद्धी) वे तीन शल्य सहित व मिथ्या बुद्धि सहित हैं।

भावार्थ—अब कुगुरुका स्वरूप कहते हैं। कुगुरुओंका भेष परिग्रह सहित होता है। अंतरंगमें उनके मिथ्याज्ञान भरा है, उनको संसाराशक्ति रूप अगृहीत मिथ्यात्वका या कुदेवादिकी पूजन सम्बन्धी गृहीत मिथ्यात्वका राग होता है। वे माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यसे मलीन होते हैं, उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती है। वे विषय कषायोंकी पुष्टिका ही उपदेश देंगे या एकांतवादको ही बताएंगे। उनको अनेकांत मय धर्मका ज्ञान ही नहीं होता है।

इन्द्री सुह सन्तुष्टा, कुलिंगी असुहभाव पयडव्वा।
विकहा वसन सहावं, कुलिंगी एरिसो होई ॥ १९८ ॥

अन्वयार्थ—(इन्द्री सुह सन्तुष्टा) जो पांच इंद्रियोंके सुखोंमें सन्तुष्ट हैं ऐसे (कुलिंगी) कुगुरु (असुहभाव पयडव्वा) अशुभ भावोंमें प्रवर्तनेवाले हैं (विकहा वसन सहावं) उनका मन चार विकथाओंमें व सात व्यसनोंमें फसा रहता है (कुलिंगी एरिसो होई) कुगुरु ऐसे होते हैं।

भावार्थ—जो अपनेको धर्मके गुरु महन्त बावा गुसाई आदि कहते हैं परन्तु दिनरात पांचों इंद्रियोंके सुखोंके भोगनेमें संतोष मानते हैं। अशुभ व खोटे भावोंमें सने रहते हैं। उनको स्त्री कथा,

भोजन कथा, देश कथा व राज कथा ही अच्छी लगती है। वे जुआ, मांस, मदिरा, शिकार, चोरी, वेश्या, पर स्त्री इन सात व्यसनोंके भीतर ऐसे फंस जाते हैं कि ये उनकी बुरी आदतें बन जाती हैं, ऐसे कुगुरूओंका मानना अहितकारी है।

दुर्बुद्धी जिन द्रोही च, पयडै अज्ञान लोक रंजेई।
सहिओ अशुद्ध ध्यानं, कुलिंगी कुगुरु जाने हि ॥ १९९ ॥

अन्वयार्थ—(दुर्बुद्धी जिनद्रोही च) जो मिथ्या बुद्धि सहित होते हैं व जिनधर्मसे पराङ्मुख हैं (पयडै अज्ञान लोक रंजेई) वे प्रगटपने अपने उपदेशसे अज्ञानी लोकोंको प्रसन्न रखते हैं (अशुद्ध ध्यानं सहिओ) उनके अशुद्ध ध्यान अर्थात् रौद्र और आर्तध्यान होते हैं (कुलिंगी कुगुरु जानेहि) ऐसे भेषी साधुओंको कुगुरु जानना चाहिये।

भावार्थ—जो भेषधारी साधु मिथ्यात्व सहित बुद्धि रखते हैं वे अनेकांत जिनमतसे विपरीत भाव रखते हैं। वे अपनी मनोरंजक कथाओंसे अज्ञानी लोगोंको अपनी तरफ कर लेते हैं। उनके हिंसानन्दी, मृषानंदी, चौर्यानंदी व परिग्रहानंदी रौद्रध्यान तथा इष्ट वियोगज, अनिष्ट संयोगज, पीडा, चिन्तवन व निदान बंध ऐसे चार आर्तध्यान होते हैं उनको सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं होता है। वे पत्थरकी नावके समान हैं। आप भी डूबते हैं व दूसरोंको भी डुबाते हैं।

अप्पा परु नवि पिच्छइ, मिच्छा दिट्ठि असुह भावस्य।
दर्शन शुद्धि न जाने, पर पंचं पर पुद्गलासत्तो ॥ २०० ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छादिट्ठि असुह भावस्य) वे मिथ्यादृष्टी कुगुरु अशुभ भावोंमें वर्तते हुए (अप्पापरु न वि पिच्छइ) आत्मा तथा परमात्माको नहीं पहचानते हैं (दर्शन शुद्धि न जाने) न वे सम्यग्दर्शनकी शुद्धताको जानते हैं (प पंचं पर पुद्गलासत्तो) वे संसारके जालमें उलझे रहते हैं व अपनेसे भिन्न पुद्गलमें या शरीरादिमें आसक्त होते हैं।

भावार्थ—कुगुरु संसारके प्रपंचमें व शरीरादिकी शोभामें व विषय-भोगमें उलझे रहते हैं। उनका ध्यान रात दिन शरीर व उसके सुखकी तरफ रहता है। वे मिथ्यादृष्टी जीव अशुभ भावोंके कारण आत्मा तथा परमात्माको नहीं पहचानते हैं। उनको सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं होता है।

जो तस्स भत्ति भारे, मानै मिच्छात दोस ससहाओ ।
सो मिच्छदिट्ठि सहिओ, अनमोयं निगोय वासम्मि ॥ २०१ ॥

अन्वयार्थ—(जो भत्ति भारे तस्स मानै मिच्छात दोस ससहाओ) जो कोई ऐसे कुगुरुको भक्तिके भारसे नम्रीभूत हो मिथ्यात्वके दोष पूर्ण स्वभावसे मानता है (सो मिच्छदिट्ठि सहिओ अनमोयं) सो मिथ्यादृष्टि धारीकी अनुमोदना करता है (निगोय वासम्मि) उसका फल निगोदमें जाकर बसना है।

भावार्थ—मिथ्यात्व एक घोर अन्धेरा है। उसकी अनुमोदना व सराहना करना भी घोर पाप है, दूसरोंको अन्धेरेमें भेजनेका कारण है। इसलिये जो कोई अज्ञानी मिथ्यात्व भावमें भरकर भक्तिपूर्वक ऐसे कुगुरुओंकी मान्यता करता है वह साधारण वनस्पति कायरूप निगोदमें जन्म पाकर अत्यन्त अज्ञानी होजाता है। फिर मानव-जन्म पाना अतिशय दुर्लभ है।

कुलिंग संग जुत्तो, स्थानं जंति आसरे भाति ।
सो मिथ्या मय अज्ञानी, थावर वियलिंदि नरय वासंमि ॥ २०२ ॥

अन्वयार्थ—(कुलिंग संग जुत्तो) जो कोई कुगुरुओंकी संगति करता है (स्थानं जंति) उनके स्थानोंपर जाता है (आसरे भाति) उनका आश्रय लेता है (सो मिथ्या मय अज्ञानी) सो मिथ्यादृष्टी अज्ञानी है तथा (थावर वियलिंदि नरय वासंमि) स्थावर काय, विकलेन्द्रिय व नरक पर्यायमें वास पाता है।

भावार्थ—जो कोई कुगुरुओंकी संगतिमें रहता है, उनका आश्रय लेता है, उनके पास जाकर उनके लोभके वश भक्ति करता है सो मिथ्यात्व व अज्ञानकी सराहना करनेसे स्वयं अज्ञानी तथा मिथ्यादृष्टि होता है और तीव्र लोभसे नरकायु बांधकर नरकमें जन्मता है या तीव्र अज्ञानसे एकेन्द्रिय पर्याय बांधकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति कायमें जन्मता है या द्वेंद्रिय आदि पर्याय बांधकर लट, चींटी, मक्खी आदिके शरीरको धारण करता है।

कुलिंग वयन श्रवनं, आलापं लोक रंजनं तपी ।
ते मूढा अज्ञानी, दुग्गै गह भावनो हुंती ॥ २०३ ॥

अन्वयार्थ—(कुलिंग वयन श्रवनं) कुगुरुओंके वचनोंको जो सुनते हैं, (आलापं) उनके साथ वार्ता-

लाप करते हैं व (लोरंजनं तंपी) लौकिक बातें करते हुए रंजायमान भी होते हैं (ते मूढा अज्ञानी) वे मूर्ख अज्ञानी हैं। (दुगै गइ भावनो हुंती) व दुर्गति गमनके भावधारी होते हैं।

भावार्थ—जो विषय कषायोंमें लीन हैं व अपनको महंत व गुरू मानते हैं उनके उपदेशोंको न सुनना चाहिये न उनसे चर्चा करनी चाहिये न उनके साथ सांसारिक मोह व राग द्वेष पूर्ण बातें करके मनको सन्न करना चाहिये। जो इसका ध्यान न रखकर कुगुरुओंके साथ हेलमेल आदि रखते हैं व अपने हितको न जाकर मूढ व अज्ञानी होते हुए ऐसे भावोंमें सन जाते हैं जिनसे कुगतिमें जाने लायक पाप बांध लेते हैं। कुदेवोंकी संगतिकी तरह कुगुरुओंकी संगति भी त्यागने योग्य है।

कुशास्त्रं जे सार्धति, विकहा वसनं पुन्य पापं च।
परिनामम्मि अशुद्धं, स्तुति निबंध कुशास्त्र जानेहि ॥ २०४ ॥

अन्वयार्थ—(जे कुशास्त्रं सार्धति) जो कोई मिथ्या शास्त्रोंकी संगति करते हैं (विकहा वसनं) उनमें विकथा व व्यसनोंकी पुष्टि पाते हैं (पुन्य पापं च) साथमें पुण्य पापको भी सुनते हैं (परिनामम्मि अशुद्धं) जिनके सुननसे परिणाम अशुद्ध होजाते हैं, (स्तुति निबंध) ऐसे स्तोत्र व ऐसी रचनाओंको (कुशास्त्र जानेहि) कुशास्त्र जानना चाहिये।

भावार्थ—खोटे भावोंसे बनाए हुए स्तोत्र व ग्रन्थ, निबंध, कथा आदि सब कुशास्त्र हैं। जिनके पढने सुननेसे परिणाम वीतरागी होनेकी अपेक्षा राग द्वेष पूर्ण होजावे–जिनमें स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथाकी पुष्टि हो व जिनमें जूआ, मांस, मदिरा, शिकार, चोरी, वेश्या, परस्त्री गमनकी तरफ प्रेरणा हो व जिनमें पुण्य पाप भी अन्यथा प्रकारसे दिखलाया हो, जिनमें पाप होता हो उनको पुण्य बताया हो, पशु यज्ञ व पशुबलि पापकारी हैं, रात्रिभोजन पापकारी है, नदी स्नान पापकारी है, सती होकर आगमें जलना पापकारी है, उनको पुण्यदायक बताया हो, ऐसे कुशास्त्रोंकी संगति भी ज्ञानीको न करनी चाहिये।

जे वि कुशास्त्रं पठनं, इंद्री सुह जानि असुह लेस्याओ।
संसार सरनि हिंडै, जह जल सरनि ताल कीटाओ ॥ २०५ ॥

अन्वयार्थ—(जे वि कुशास्त्रं पठनं) जो खोटे शास्त्रोंको पढते हैं (इंद्री सुह मानि) जिनमें इंद्रियोंके भोगोंसे उत्पन्न सुखोंकी वार्ताएँ हैं (असुमलेस्याओ) तथा कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभ लेश्याओंको उत्पन्न करनेवाले हैं (संसार सरनि हिंडे) वे संसारके मार्गमें भ्रमण करेंगे (जह जल सरनि ताल कीटाओ) जैसे समुद्रके भीतर तालका वृक्ष या फल या कीट या जंतु भ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—जिन शास्त्रोंमें इंद्रिय सुखोंमें राग बढानेवाली कथाएं हों व जिनमें खोटे भावोंको बढानेकी उत्तेजना हो वे सब कुशास्त्र हैं। उनको जो राग सहित पढते हैं उनके भावोंमें अशुभ राग पैदा होजाता है जिससे वे कर्म बांधकर संसारसागरमें दीर्घ काल उसी तरह भ्रमण करेंगे जिस-तरह समुद्रमें गिरा हुआ तालका वृक्ष या फल या कोई कीट भ्रमण करता है, उसको कहीं किनारा ही नहीं मिलता है।

क्रोध, मान, माया या लोभ कषायोंसे रंगी हुई मन, वचन, कायके योगोंकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। वे छः हैं। तीन अशुभ। जैसे कृष्ण, नील, कापोत, इनमें अशुभतम, अशुभतर व अशुभ परिणाम होते हैं। तीन शुभ। जैसे नील, पद्म, शुक्ल, इनमें शुभ, शुभतर, शुभतम ऐसे परिणाम होते हैं। अशुभ पाप बंधक व शुभ पुण्य बंधक हैं।

अनायतन षट्कश्चैव, जो मानै मिच्छादिट्ठि सभाओ।
सो मिच्छा मये हि भरियं, संसारे दुहकारणं तंपी ॥ २०६ ॥

अन्वयार्थ—(अनायतन षट्कश्चैव) ये जो छः अनायतन हैं (जो मिच्छादिट्ठि सभाओ मानै) उनको जो मिथ्यादृष्टि स्वभावधारी मानेगा सो (मिच्छा मये हि भरियं) मिथ्यात्वके मदसे भरा हुआ (संसारे दुहकारणं तंपी) संसारमें दुःखों हीका कारण होगा।

भावार्थ—कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र तथा कुदेवोंके भक्त, कुगुरुओंके भक्त व कुशास्त्रोंके भक्त। ये छः धर्मके स्थान नहीं हैं। इसलिये अनायतन हैं। जो कोई मिथ्यादृष्टी इनकी संगति करेगा, वह मिथ्यात्वके घमण्डसे भरा हुआ घोर पाप कर्मको बांधकर संसारमें ही भ्रमण करेगा और अनेक तरहके कष्ट उठाएगा।

शंकादि आठ दोष।

संसयिक अठ दोसा, संका कंखाइ चिन्तनं चित्ते।
नृविदिगिच्छा अमूढं, दिट्ठी उवगोहनं दोसं ॥ २०७ ॥
ठिदिकरनं वच्छल्लं, पहावना संसया ती।
सहकारे कुज्ञानं, संसय दोसे हि नरय वासम्मि ॥ २०८ ॥

अन्वयार्थ—(संसयिक अट्ठ दोसा) शंकादि आठ दोष भी सम्यक्तीमें नहीं होने चाहिये (संका कंखाइ चित्ते चिन्तनं) शंका तथा संसार-सुखकी अभिलाषा चित्तमें रखना (नृविदिगिच्छा) निर्विचिकित्सा अर्थात् ग्लानि न करना इसका अभाव अर्थात् ग्लानि करना (अमूढ दिट्ठी) मूढताईसे किसी भी धर्म क्रियाको न मानना, इसका अभाव-मूढ दिट्ठी-मूढतासे किसी भी कुधर्मको धर्म मान लेना (उपगोहनं दोसं) उपगूहन अंगमें दोष लगाना (ठिदिकरनं) स्थितीकरण न होना (वाच्छल्लं) वात्सल्यका न होना (पहावना) प्रभावनाका अभाव (संसया हुंती सहकारे कुज्ञानं) ये शंका आदि दोष कुज्ञानकी सहायतासे होते हैं (संसय दोसे हि नरय वासंमि) इन शंकादि दोषोंसे जीव पापकर्म बांधकर नर्कमें वास करेंगे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीमें २५ दोष न होने चाहिये। तीन मूढता व छः अनायतनका स्वरूप ऊपर कह चुके हैं। अब आठ शंकादि दोषोंको कहते हैं। सम्यग्दर्शनके आठ अंग होते हैं, उनको न पालना सो आठ दोष हैं। जैसे शरीर मस्तक, दो भुजाएं, दो टांग, एक पीठ, एक पेट, एक कटिभाग इन आठ अंगोंसे बना है। यदि वे न हों व इनमेंका एक कोई अङ्ग न हो तो वह शरीर हीन कहलायगा अथवा वह अंगहीन कहलाएगा। इसी तरह जहां आठ अंग होंगे वहीं सम्यग्दर्शन कहलायगा। अंगहीन सम्यग्दर्शन मिथ्यात्व रूपके समान ही है। मोक्षका साधक आठ अंग सहित सम्यक्त ही होता है। अंगहीन सम्यक्त संसारका नाश नहीं कर सक्ता है। श्री रत्नकरण्डमें कहा है—

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्। नहि मंत्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनां ॥ २१ ॥

भावार्थ—जैसे अक्षरसे कमती मंत्र सर्पके विषको नहीं दूर कर सक्ता है वैसे अंगहीन सम्यग्दर्शन संसारकी परिपाटीके कारण कर्म मलको नहीं काट सक्ता है। उन आठ अंगोंका संक्षेपसे स्वरूप यह है—

१-निःशंकित अंग—जिनमतके तत्वोंमें शंका न रखना, क्योंकि प्रयोजनभूत सात तत्वोंका निश्चय हुए विना सम्यक्त ही नहीं होसक्ता। यदि कभी कोई बात समझमें न आवे तो उसको ठीक मानते हुए भी विशेष ज्ञानीसे समझनेका उद्यम करना। दूसरा अर्थ इस अंगका यह है कि निर्भय होकर धर्म पालना व जीवन विताना, कायर होकर जन्म नहीं विताना। सात तरहके भय न करना। १ इहलोक भय-मैं यदि अमुक धर्म पालूंगा तो लोग हंसेंगे ऐसा भय। २ परलोक भय-मरकरके कहीं दुर्गतिमें चला जाऊंगा तो क्या होगा ऐसा भय। ३ वेदना भय-कहीं रोग आजायगा तो क्या करूंगा ऐसा भय। ४ अरक्षा भय-मेरा कोई रक्षक नहीं है कैसे बचूंगा ऐसा भय। ५ अगुप्ति भय-मेरा धन कोई चुरा लेगा तो क्या करूंगा ऐसा भय। ६ मरण भय-मैं कहीं मर न जाऊं ऐसा भय। ७ अकस्मात् भय-कहीं दीवाल गिर पडेगी या कहीं गाडीसे गिर जाऊंगा तो क्या होगा ऐसा भय। सम्यक्ती रोगादिसे बचनेको रक्षाका उचित उपाय करता है परंतु कायर नहीं होता। वीर सिपाहीके समान जगतमें धैर्य व साहसके साथ व दयाके साथ जीवन विताता है।

२-निःकांक्षित अंग—पुण्यके आधीन, अतृप्ति कारक, तृष्णाकारक, नाशवंत, वियोगमें दुःख उत्पादक, इंद्रियोंके सुखोंमें श्रद्धान न होना, रुचि न होना। अतिंद्रिय आत्मिक सुखको ही सुख मानना।

३-निर्विचिकित्सित अंग—साधुओंके व श्रावक श्राविकाओंके रोगी व दुःखी शरीरको रत्नत्रयसे पवित्र जानकर ग्लानि न करना, किंतु गुणोंमें प्रीति करना तथा दीन, दुःखी, रोगी किसी भी मानव या पशुको देखकर ग्लानि न करना, कर्मोदयको विचारना-दया भाव लाकर घृणा छोडकर सेवा करना।

४-अमूढ दृष्टि अंग—मिथ्यात्वके मार्गमें मूढतासे रुचि न करना, वचनसे सराहना न करनी, शरीरसे उनमें वर्तन न करना, सम्यक्दर्शनको बढानेवाली मन, वचन, कायकी प्रवृत्तियां करना।

५-उपगूहन अंग—किसी अज्ञानी व प्रमादी जीवसे धर्मको पालते हुए भी कोई दोष होजावे तो उसकी निंदा न करके उसको दूर करनेकी चेष्टा करना। धर्मकी जगतमें निंदा न हो इस हेतु धर्मात्माके दोषोंकी निंदा न करना। इस अंगको उपबृंहण भी कहते हैं। अपने भीतर गुणोंकी बढवारी करना।

६-स्थितिकरण अंग—अपना मन व दूसरोंका मन यदि सम्यग्दर्शन आदि धार्मिक भावोंसे

दूर भागता हो तो उसको जिस तरह बने समझाकर धर्ममें स्थिरीभूत करना, तन, मन, धन व विद्या द्वारा सेवा करके भी धर्मधारियोंको धर्म साधनमें दृढ करना।

७-वात्सल्य अंग—साधर्मी भाई बहनोंके साथ गोवत्सके समान सच्ची धर्म प्रीति करना व उनकी सेवा करनी।

८-प्रभावना अंग—मिथ्या ज्ञानके अन्धकारको जगतके भीतरसे जिस तरह बने हटाकर सम्यक्ज्ञानका प्रभाव प्रगट करना, जिनधर्मको फैलाना, जिससे प्राणी जिनधर्मको उत्तम समझ कर धारण करसके।

जे संसयरा जीवा, मनवयनकाय संसये जुत्तो।
ते असुह मिच्छ भावं, संसारे भवन वीयम्मि॥२०९॥

अन्वयार्थ—(जे संसयरा जीव) जो जीव शंकाशील रहते हैं (मन वयन काय संसये जुत्तो) जिनका मन भी संशयवान है, वचन भी शंकासे भरे हुए हैं व कायकी क्रिया भी संशय सहित है (ते असुह मिच्छ भावं) वे प्राणी अशुभ मिथ्यात्व भाव सहित हैं तथा (संसारे भवन वीयम्मि) वे संसाररूपी भवनके बीज या मूल हैं।

भावार्थ—संशय बडा भारी दोष है। संशयवानको कभी भी सच्ची श्रद्धा नहीं होसक्ती है। वह धर्मकी श्रद्धा न लाता हुआ कभी उसका पालन न करेगा। और वृथा ही मरकर मिथ्यात्वके बीजसे संसाररूपी वृक्षको बढाएगा या वह संसाररूपी महान भवनकी न्यूको जमाता ही जायगा। इसलिये जो स्वाहित करना चाहें उनको उचित है कि वे स्थूल परीक्षा तो ज्ञानके बलसे धर्मकी करलें। अर्थात् देव शास्त्र गुरुको परख लें। फिर गुरु व शास्त्रके उपदेशको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके उसपर यथाशक्ति चलनेका उद्यम करें। क्योंकि विना आचरण किए हुए अपनी उन्नति नहीं हो सक्ती है। जब उन्नति होती जावे तो धर्मकी विशेष श्रद्धा बढती जायगी। धर्मको श्रद्धापूर्वक आचरण करते हुए विशेष समझनेका उद्यम रखना योग्य है।

संसय दोसं मिच्छा, संसैयारोपि दुःखसंतत्ताः।
ते दंसनं च भट्ठा, संसेयि न कहंमि सिज्झंतो॥ २१०॥

अन्वयार्थ—(संसय दोसं मिच्छा) संशय दोष मिथ्यात्वका ही भेद है इसलिये (संसैयारोपि दुःखसंतत्ताः) संशय धरनेवाले दुःखोंसे सन्तापित रहते हैं (ते दंसनं न भट्टा) वे सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट रहते हैं (संसेये न कइंपि सिज्झंतो) संशय रखनेवाला किसी भी तरह सिद्धि नहीं प्राप्त कर सक्ता है।

भावार्थ—संशय एक प्रकारका पांच तरहके मिथ्यात्वका भेद है। संशय धारी शुद्ध आत्म-धर्मको न पाकर सांसारिक आकुलताओंसे यहां भी नहीं छूटते हैं व परभवमें भी दुःख उठाते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट जीव बहुत शास्त्रोंको पढनेपर भी व बहुत व्रत, तप, संयम पालनेपर भी आत्म-शुद्धि नहीं कर सक्ते हैं।

आठ मद।

मयं अष्ट स उक्तं, जाइ कुली स्वर रूप सहियानं।
अभिमानं अज्ञानं, अतपं बल सिलपि सन्तुडं ॥ २११ ॥

अन्वयार्थ—(मयं अष्ट सं उक्तं) ये आठ मद कहे गए हैं (जाइ कुली स्वर रूप सहियानं) जाति मद, कुल मद, धन मद, रूप मद और (अभिमानं अज्ञानं) अधिकार रूपी अज्ञान मद (अतपं बल सिलपि संतुडं) तप मद, बल मद, शिल्प या विद्या मदमें सन्तोष।

भावार्थ—सम्यक्तके २५ दोषोंसे आठ मद भी हैं। घमण्ड या अहंकारको मद कहते हैं। सम्यक्ती स्वभावसे वैरागी होता है। इसलिये वह नाशवंत अवस्थाओंमें न तो रंजायमान होता है और न उनके रहते हुए कुछ अपना बड़प्पन मानता है। वह अभिमान नहीं करता है। जनतामें आठ तरहके बल हैं। मिथ्यादृष्टी इन मदोंमें चूर होकर दूसरोंको तुच्छ दृष्टिसे देखता है वे मद इसप्रकार हैं—

१-जाति मद—माताकी पक्षको जाति कहते हैं। अपने मामा, नानाकी तरफ ध्यान करके उनके धनवान, विद्वान आदि होते हुए, घमण्ड करना कि-मेरे मामा व नानाका कौन सामना कर सक्ता है।

२-कुल मद—पिताके पक्षको कुल कहते हैं। पिता, परपिता आदिके बड़प्पन धनादिका

चिंतवन कर घमण्ड करना कि हमारे समान कौन महान होसक्ता है। प्रायः मूर्ख लोग अपने बाप दादोंके अभिमानमें चुर होकर विवाहादिमें हदसे अधिक खर्च करके कर्जदार बन जाते हैं।

३-धन मद—धन अधिक रहते हुए धन रहितोंको तुच्छ समझना उनको किसी भी सम्मतिमें पूछना नहीं।

४-रूप मद—शरीर सुन्दर होते हुए अभिमान करके अपनेसे कम रूपवानोंको तुच्छ समझना।

५-अधिकार मद—अपना अधिकार व अपनी आज्ञा अधिक हो तो उनका घमण्ड करना कि मैं चाहे जिसको नीचा दिखा सक्ता हूं।

६-तप मद—उपवास, रस त्याग व ध्यानका अभ्यास अधिक करनेकी शक्ति होनेपर अभिमान करना दूसरोंको छोटा समझना।

७-बल मद—शरीरमें बल अधिक होनेपर निर्बलोंको सताना, अपनी ताकतका बहुत ही घमण्ड करना।

८-शिल्प या विद्या मद—अधिक विज्ञान व शिल्पकलाके जानकार होनेपर घमण्ड करना कि मेरे सामने कौन मुकाबला कर सक्ता है। वे आठ मद सम्यक्तीके नहीं होते हैं। ये दोष हैं।

मद्यं पि असुह भावं, रागादि दोषं विषयालाप पयडत्थो।
सो मदयास उक्तं, सा किरिया नरय वासंमि ॥ २१२ ॥

अन्वयार्थ—(मद्यं पि असुह भावं) मद करना भी अशुभोपयोग है (रागादि दोषं विषयालाप पयडत्थो) इस मदके कारण रागद्वेष आदि दोष होते हैं, पांच इंद्रियोंके विषयोंकी वातोंका प्रकाश हुआ करता है (सो मदयास उक्तं) मद धारी मदिरापान करनेवालेके समान कहा गया है (सा किरिया नरय वासंमि) मद करके जो कुछ भी आचरण है सो नरक वासमें भेजनेवाला है।

भावार्थ—आठों तरहका मद करना एक तरहके मद्यको पीकर उन्मत्त होजाना है। जैसे नशा पीकर प्राणी उन्मत्त व बावला होजाता है, अपना हित व आहितका विचार नहीं करता है। उसी तरह मद करनेवाला अंधा होजाता है। जिन वातोंसे अपना अभिमान प्राप्त हो उनमें तो राग करता है, जिनसे अभिमानके पोषनेमें हानि पड उनसे द्वेष करता है। पांच इन्द्रियोंके भोगोंमें लिप्त रहते

हुए अभिमानकी बातें करता है मैंने अमुक विषय भोगे दूसरा कौन मेरे समान है। मदधारीकी सर्व क्रिया मानको लिये हुए होती है। मद करनेका भाव तीव्र मानके उदयसे होता है, इसीलिये इनको अशुभ भाव कहते हैं। कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभ लेश्याके भाव मदधारीके होते हैं इससे वह नरकायु बांधकर नरक चला जाता है।

मल पचीस वियान, त्यक्तंति भाव सुद्ध परिनामं।
सो सुद्ध दिट्ठि भविओ, दंसनमल विवज्जिओ सुद्धो ॥२१३॥

अन्वयार्थ—(मल पचीस वियान) इस तरह पचीस दोषोंको जानकर (त्यक्तंति भाव सुद्ध परिनामं) जो छोड देते हैं उनके भावोंमें शुद्ध परिणाम रहते हैं (दंसन मल विवज्जिओ सुद्धो) जो इस सम्यग्दर्शनके मलोंसे रहित शुद्ध हैं (सो सुद्ध दिट्ठि भविओ) सोही सम्यग्दृष्टी कहा गया है।

भावार्थ—ऊपर लिखे प्रमाण तीन मूढता, छः अनायतन, आठ शंकादि मल व आठ मद, इस तरह २५ मल हैं जो श्रद्धाको मैला करनेवाले हैं। ज्ञानीको ज्ञान बलसे विचार कर इनका त्याग करना चाहिये तब ही निर्मल परिणाम होंगे व तब ही वह जीव शुद्ध सम्यग्दृष्टी कहलाएगा। निर्मल जल जैसे मलको धो सक्ता है उसी तरह निर्मल सम्यक्त भाव कर्ममलको दूर कर सक्ता है।

सम्यक्त फल।

सम्मत्तरयन सुद्धो, जाने पिच्छेइ दंसनं सुद्धं।
सो सुद्ध दिट्ठि जीओ, अचिरेन लहदि निव्वानं ॥ २१४ ॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्तरयन सुद्धो) जो निर्दोष सम्यग्दर्शनरूपी रत्नका धारी है (सुद्धं दंसनं जाने पिच्छेइ) सो आत्म प्रतीति रूप सम्यग्दर्शनको जानता है व देखता है (सो सुद्ध दिट्ठि जीओ) वह सम्यग्दृष्टी जीव (अचिरेन लहइ निव्वानं) शीघ्र ही मोक्षको पाता है।

भावार्थ—ऊपर कहे हुए पचीस दोषोंसे रहित जो कोई व्यवहार सम्यग्दर्शनको पालता है। देव, शास्त्र, गुरुकी प्रतीति रखता है; जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात

तत्वोंको जानकर उनका दृढ श्रद्धान रखता है, तथा निश्चयसे सम्यग्दर्शनरूप आत्मानुभवको पहचानता है वह सम्यग्दृष्टी सच्चा मोक्षमार्गी होजाता है। उसकी सच्ची लगन आत्माकी स्वाधीनतापर जम जाती है। वह कुछ ही भवोंमें निर्वाणपुरीका नाथ होजाता है।

दंसन दिठि संजुत्तं, जाणइ पिच्छेइ सुद्ध सम्मत्तं।
सो भव्वजीव सुद्धं, अचिरेन निव्वुए जंति ॥ २१५ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन दिठि संजुत्तं) सम्यग्दर्शन सहित जो कोई (सुद्ध सम्मत्तं जाणइ पिच्छेइ) शुद्ध आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शनको जानता है व देखता है (सो सुद्धं भव्यजीव अचिरेन निव्वुए जंति) सो भव्यजीव शुद्ध होता हुआ शीघ्र ही निर्वाणको चला जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव ही यथार्थ शुद्धात्माका ध्यान कर सक्ता है। और आत्म-ध्यानके बलसे कर्मोंका क्षय कर बहुत शीघ्र मुक्त होजाता है।

अप्पापरु पिच्छंतो, परचवै वि अप्प सुद्ध सभाओ
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ २१६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परु पिच्छंतो) जो आत्मा और अनात्माको जानकर (अप्प सुद्ध सभाओ परचवै वि) अपने शुद्ध स्वभावका ही अनुभव करता है (अप्पा सुद्धप्पानं परमप्पा निव्वानं लहै) वह आत्मा शुद्ध आत्मा या परमात्मा होकर निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—प्रथम तो अपने आत्माको सर्व आत्माओंसे, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल इन सबसे तथा कर्मोंके उदयके निमित्तसे होनेवाले अपने विभाव भावोंसे जो कोई पृथक् जानता है फिर ग्रहण करने योग्य व ध्यान करने योग्य अपने शुद्धात्माको ही अपने भावमें स्थापित कर अन्य सबसे मनका सम्बन्ध छोड देता है वही सम्यग्दृष्टी जीव आत्मध्यानके द्वारा कर्मोंसे रहित होकर परमात्मा होजाता है और निर्वाणका स्वामी होजाता है।

सम्यक्तके आठ लक्षण ।

मूलगुनं ए अठ्ठा, संव्वेओ निव्वेओ सम्म संजुत्तं ।
निन्दा गरुहा नाए, उवसम संजुत्त भत्ति भारेन ॥ २१७ ।
वाच्छिल्लं अनुकम्पा, अठ्ठ गुना संजुत्त सम्मत्तं ।
सद्दहै सुद्ध भावं, सम्मत्तं निम्मल सुद्धं ॥ २१८ ॥

अन्वयार्थ—(ए अट्ठा मूलगुनं) ये आठ सम्यक्तके मूल लक्षण हैं (संव्वेओ निव्वेओ) संवेग, निर्वेद (सम्म संजुत्तं) जो सम्यक्तके साथमें हो (नाए निन्दा गरुहा) दुःखभाव रहित निन्दा तथा गर्हा (उवसम संजुत्त भत्ति भारेन) उपशम भाव, भक्ति, (वाच्छिल्लं अनुकम्पा) वात्सल्य और अनुकम्पा (अट्ठ गुना संजुत्त सम्मत्तं) इन आठ गुण सहित सम्यग्दर्शनको (सुद्ध भावं सद्दहै) जो निश्चयसे शुद्ध आत्मीक भाव है श्रद्धान करता है (निम्मलं सुद्धं सम्मत्तं) उसीके दोष रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवके भीतर आठ गुण ऐसे होते हैं कि जिनसे यह पहचाना जासक्ता है कि इन गुणोंका धारी सम्यग्दृष्टी है। वे आठ लक्षण ये हैं—

(१) संवेग—आत्माको संसार पतनसे बचानेके लिये धर्ममें प्रीति ।

(२) निर्वेद—संसार, शरीर व भोगोंसे वैराग्य भाव होना ।

ये दोनों गुण मिथ्यात्वीके भी होते हैं। वैसे न होकर सम्यक्तीके जैसे होने चाहिये वैसे होना—

(३) निन्दा—अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा दूसरोंसे करना ।

(४) गर्हा—अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा अपने मनमें करना ।

इन दोनों गुणोंको भी प्रसन्नतासे करे, मनमें दुःख मानकर न करे। केवल मार्दव गुण प्रगट करे। अभिमान मिटा दे।

(५) उपशम—क्रोधादि कषायोंकी मंदता रखकर शांत भाव रखना ।

(६) भक्ति—देव, धर्म, शास्त्र, गुरुमें परम प्रेम सहित भक्ति करना ।

(७) वात्सल्य—धर्मात्माओंसे गौ वत्सके समान प्रेम रखना ।

(८) अनुकम्पा—दूसरोंके कष्ट देखकर कांप जाना, दया प्रगट करना व यथाशक्ति दुःखोंको दूर करना। इन आठ गुणोंको रखता हुआ जो शुद्ध आत्मीक श्रद्धा रखता है वही शुद्ध सम्यग्दृष्टी है।

संवेग।

संवेओ सुद्धार्थं, जानै पिच्छेइ दंसनं सहसा।
चरनं पि दुविह भेयं, सहकारेन तवं पि संवेओ ॥ २१९ ॥
संवेउ सुयं वेगी, क्षय उपसमं पि सुद्ध संवेओ।
सम्मत्त सुयं चरनं, संवेओ सुद्ध अप्पाणं ॥ २२० ॥

अन्वयार्थ—(संवेओ) संवेग अर्थात् पूरा वेग अर्थात् जोर सो संवेग है। धर्ममें पूरा उत्साह सो संवेग है। संवेग भाव धारी (सहसा दंसनं दुविह भेयं चरनंपि सहकारेन तवं पि जानै पिच्छेइ संवेओ) बहुत बलके साथ-उत्तम प्रकारसे सम्यग्दर्शनके विषयभूत सात तत्वोंको, देव धर्म गुरुको, आत्मा व अनात्माको जानता है, उनमें श्रद्धान रखता है तथा दो तरहके मुनि व श्रावकके आचरणको पहचानता है। तथा साथमें बारह प्रकारके तपको भी जानता है सो संवेग व्यवहारनयसे है (सुयं वेगी संवेउ) निश्चयसे आत्माके वेगको रखनेवाला-आत्मबली संवेग भावको रखनेवाला है (क्षय उपसमं पि सुद्ध संवेओ) क्षायिक सम्यक्त व उपशम सम्यक्त ही शुद्ध संवेग भाव है (सम्मत्त सुयं चरनं) सम्यग्दर्शनके भावमें स्वयं आचरण करना संवेग है (सुद्ध अप्पाणं संवेओ) तथा शुद्ध आत्मारूप होना ही संवेग है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे धर्मके सर्व प्रकारके भेदोंमें-अत्यन्त प्रीति भाव संवेग है। निश्चयनयसे निज आत्माके शुद्ध स्वरूपमें रमण भाव ही संवेग है। वहां निश्चय सम्यक्त, निश्चय ज्ञान व निश्चय चारित्र तीनोंकी एकता है। जहां आत्मबलको निजात्माके रसास्वादमें लगा दिया जावे सो संवेग भाव है। यह सम्यक्तीका मुख्य लक्षण है।

निर्वेद।

निव्वेओ निस्सल्लो, लोया आसेहि सुद्ध अवयासो।
दंसन णाण पहानो, चरनं सुद्धं पि हवे निव्वओ ॥ २२१ ॥

अन्वयार्थ—(निव्वेओ) निर्वेद या वैराग्य भाव (निस्पह्नो) शल्य रहित है (लोया भावेहि सुद्ध भवयासो) लोककी आशाओंसे शुद्ध निर्मल है (दंसन णाण पहानो) जहां सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान प्रधान है (सुद्धं पि चरनं निव्वेओ हवे) शुद्ध चारित्र भी निर्वेद है।

भावार्थ—निर्वेद संसार शरीर भोगोंसे उदासीन भावको कहते हैं। संसारकी चारों ही गतियोंमें क्लेश है। शरीर क्षणिक व अपवित्र है. भोग रोगवत् आतापकारी है। ऐसा जहा सच्चा वैराग्य हो वहां निर्वेद गुण है। जहां जगतके पदार्थोंकी आशा-तृष्णा बिलकुल न हो, इन्द्र चक्रवर्ती आदिके भोग भी त्याज्य ही भासते हों, आकाशके समान निर्मलता हो, जहां सम्यग्दर्शन व सम्यक्ज्ञान हो, आत्माका दृढतासे श्रद्धान व ज्ञान हो, जहां स्वरूपाचरण रूप शुद्ध चारित्र हो वहां निर्वेद भाव होता है।

निव्वेओ निरु निःस्वं, जानइ पिच्छेइ सुद्ध मप्पा नं।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा निवेय निव्वानं ॥ २२२ ॥

अन्वयार्थ—(निव्वेओ) निर्वेद गुण (निरु) निश्चयसे (निःस्वं) ममता रहित है, धनादि रहित है, परपदार्थसे रहित है (सुद्ध मप्पा नं जानइ पिच्छेइ) शुद्ध आत्माको जानने देखनेवाला है (अप्पा सुद्धप्पानं परमप्पा निव्वानं निवेय) आत्मा, शुद्धात्मा, परमात्मा निर्वाण सब निर्वेद स्वरूप है।

भावार्थ—निश्चयसे निर्वेद गुण पर पदार्थोंके संकल्प व ममत्वसे रहित एक ऐसा निर्विकल्प आत्माका परिणाम है जहां भीतरसे अपने ही शुद्ध आत्माका दर्शन व ज्ञान होता है। उसे आत्मारूप कहो चाहे शुद्धात्मा रूप कहो, चाहे परमात्मा रूप कहो चाहे निर्वाण रूप कहो, सब एक ही बात है। जहां आत्मा आपसे आपमें तल्लीन है, सर्व पर पदार्थोंसे व सर्व कर्मजनित भावोंसे शून्य है वहीं निर्वेद गुणका अनुभव है।

निव्वेओ निदंदो, निःलोहो निव्वियार निकलेसो।
सुद्ध सहावेसु रदो, समत्त गुनं जानि निव्वेओ ॥ २२३ ॥

अन्वयार्थ—निर्वेद गुण निश्चयसे (निव्वेओ) बेद या काम भाव रहित है (निदंदो) निर्द्वन्द है,

एक अद्वैत आत्मभाव है, (निःलोहो) लोभ रहित है, (निव्वियार) विकार रहित है, (निक्लेसो) क्लेश रहित है, (सुद्ध सहावेसु रदो) शुद्ध आत्माके स्वभावमें रमण रूप है ऐसे (समत्तगुनं निव्वेओ मानि) सम्यग्दर्शनके गुण निर्वेदको जानो।

भावार्थ—आत्माका अपने ही शुद्ध स्वरूपमें रमण रूप एक अद्वैत भाव जहां ध्याताको सिवाय आत्मरसके स्वादके अन्य स्वाद नहीं आरहा है, निर्वेद भाव है, जहां न काम भावका विकार है न कोई उपाधि है न कोई क्रोधादि दोष हैं न जहां कोई आकुलता, दुःख या चिन्ता है। यही सच्चा सम्यक्त गुणका लक्षण निर्वेद है।

निन्दा गर्हा।

कुज्ञानं निंदंतो, सल्यं निंदंति कसाय मिच्छत्तं।
निंदंति असुहभावं, अनृत असत्य सयल निंदंतो ॥ २२४ ॥

अन्वयार्थ—निन्दा गर्हा गुणका धारी वही सम्यग्दृष्टी है जो (कुज्ञानं निंदंतो) कुज्ञानकी निन्दा करता है (सल्यं कषाय मिच्छत्तं निंदंति) जो शल्य, कषाय व मिथ्यात्वकी निन्दा करता है (असुह भावं निंदंति) जो अशुभ भावोंकी निन्दा करता है (अनृत असत्य सयल निंदंतो) सो सर्व असत्य व बनावटी व कल्पित पदार्थ या भावोंकी निन्दा करता है।

भावार्थ—निन्दा गर्हा गुणका भाव यह नहीं है कि पर मानवकी निन्दा कीजावे। जहां दोषोंकी निन्दा हो वहीं निन्दा गर्हा है। सम्यक्ती नहीं चाहता है कि मेरे भीतर ये औगुण हों इसलिये इनकी मनसे निन्दा करता है तथा यदि कोई दोष अपने भीतर होजावे तो दूसरोंके सामने भी अपनी निन्दा करता है। वे दोष हैं मिथ्याज्ञान-माया, मिथ्या, निदान शल्य, कषाय, अशुभ भाव, असत्य भाषण आदि।

निंदंति असुह वयनं, इंदी विषयम्मि सयल निंदंती।
निंदंति राय दोसं, परिनामं असुह निंदंति ॥ २२५ ॥

अन्वयार्थ—(असुह वयनं निंदंति) सम्यग्दृष्टी अशुभ वचनोंकी निन्दा करता है (इंदी विषयम्मि सयल

निंदंती) सर्व ही इंद्रिय विषयोंकी प्रवृत्तिकी निन्दा करता है (राय दोसं निंदंति) अपने राग द्वेष भावोंकी निन्दा करता है (असुह परिणामं निंदंति) अपने अशुभ भावोंकी निन्दा करता रहता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी अपने भावोंकी व अपने वचन व कायकी क्रियाकी बहुत सम्हाल रखता है तौभी कषायके उदयसे जो अशुभ वचन निकल जावे व इंद्रियोंके भोगमें प्रवृत्ति होजावे व राग द्वेष भाव होजावे या और कोई अशुभ भाव होजावे तो उनकी सदा निन्दा गर्हा करता रहता है यह सम्यक्तीका गुण है।

निन्दंति गरुह नाए, सरीरं असुहं च सरनि संसारे।
दुवुहि असत्यं सहियं, अज्ञानं व्रत तप क्रियं च ॥ २२६ ॥

अन्वयार्थ—(सरीरं असुहं च सरनि संसारे) इस संसारमें भ्रमण करानेवाला इस अशुभ शरीरका सम्बन्ध है (असत्यं सहियं दुवुहि) तथा असत्य सहित कुबुद्धि है (अज्ञानं व्रत तप क्रियं च) तथा आत्मज्ञान रहित व्रत, तप व क्रियाएँ हैं (निन्दंति गरुह नाए) ऐसा सम्यग्दृष्टी निंदा गर्हा करता रहता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी यह भावना भाता है कि मेरे आत्माके साथ शरीरका सम्बन्ध ठीक नहीं है। मेरी कभी मिथ्या संसारासक्त बुद्धि न हो, कभी मैं अज्ञान व्रत तप क्रिया न करूं।

यस्सन ज्ञान सहावं, व्रत तप क्रियं च सहन उवसग्गं।
ज्ञान सहावेन विना, सयलं पि अनेय निंदंति ॥ २२७ ॥

अन्वयार्थ—(यस्सन ज्ञान सहावं) जिसके भीतर ज्ञान स्वभावी आत्माका प्रकाश नहीं है (व्रत तप क्रियं च सहन उवसग्गं) उसका व्रत करना, तप पालना, क्रिया करना, उपसर्ग सहना निष्फल है (ज्ञान सहावेन विना) आत्मज्ञान स्वभावके प्रकाश विना (अनेय सयलंपि निन्दंति) अन्य अनेक प्रकार सर्व ही चारित्र निन्दाके योग्य है।

भावार्थ—आत्मध्यान व आत्मानुभवकी वृद्धिके लिये बाहरी व्रत, तप, क्रिया व श्रावक व मुनिका चारित्र निमित्त साधक है। यदि कोई आत्मज्ञान रहित होकरके व्रतादि करे तो वह मोक्षमार्ग नहीं, संसार मार्ग है इसलिये निन्दनीय है।

उपशम भाव।

उवसम ऊर्ध सहावं, उवसम संयुत्त सुद्ध सम्मत्तं।
षय उवसमं पि सुद्धं, उवसम गुन लहंति निव्वानं ॥२२८॥

अन्वयार्थ—(उवसम ऊर्ध सहावं) उपशम या शांत भाव भी उत्कृष्ट स्वभाव है (उवसम संयुत्त सुद्ध सम्मत्तं) उपशम भाव सहित ही शुद्ध क्षायिक या उपशम सम्यक्त होता है (षय उवसमं पि सुद्धं) क्षयोपशम सम्यक्त भी उपशम भावसे ही शुद्ध कहलाता है (उवसम गुन निव्वानं लहंति) जिस सम्यक्तीके शांत गुण होता है वही निर्वाण प्राप्त करता है।

भावार्थ—कषायकी मंदता या शांत भाव बडा ही उत्तम गुण है जो हरएक उपशम, क्षायिक या क्षयोपशम सम्यक्तीके होता ही है। इसीसे सम्यक्तकी महिमा है। इसी गुणसे मुक्ति होती है। चार अनन्तानुबन्धी कषाय व दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यक्त व क्षयसे क्षायिक सम्यक्त या एक सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे छःके उपशम या क्षयोपशम सम्यक्त होता है।

उवसम सहिओ जीवो, संसार सरीर भोग विरदोय।
मिच्छा मय कुज्ञानं, रागं दोषंपि विषय उवसंतो ॥ २२९ ॥

अन्वयार्थ—(उवसम सहिओ जीवो) जो जीव उपशम या शांत भाव सहित होता है वही (संसार सरीर भोग विरदोय) संसार शरीर तथा भोगोंसे विरक्त होता है (मिच्छा मय कुज्ञानं रागं दोषं च विषय उवसंतो) उसका मिथ्यात्व भाव, अज्ञान भाव, रागद्वेष तथा विषय वांछा सब शांत होजाते हैं।

भावार्थ—शांत परिणामी सम्यक्ती अवश्य असार संसार, अशुचि नाशवंत शरीर व तृष्णा-वर्द्धक भोगोंसे उदास होता है। उसके भीतरसे नियमसे मिथ्यात्व, अज्ञान व अनन्तानुबंधी सम्बन्धी राग द्वेष व विषयोंकी इच्छाका भाव ये सब अस्त होजाते हैं।

कषायं उवसंतो, रागादि दोष सयल परिचत्तो।
संसार सरनि विरदो, उवसंतो विविह असुहाए ॥ २३० ॥

अन्वयार्थ—(कषायं उवसंतो) उपशम गुणधारी सम्यक्तीके सर्व कषायें शांत व मन्द रहती हैं (सयल रागादि दोष परिचत्तो) यह सर्व रागादि दोषोंकी तीव्रतासे रहित होता है (संसार सरनि विरदो) और संसार भ्रमणसे विरक्त होता है (विविह असुहाए उवसंतो) यह नानाप्रकार अशुभ भावोंको शांत कर चुका है।

भावार्थ—संसार भ्रमणको त्यागने योग्य समझनेवाला सम्यक्ती होता है, यह रागद्वेषादि कषायोंको व सर्व अशुभ भावोंको त्यागने योग्य समझकर उनसे बचता है। मोक्षमार्गपर लव लगाए हुए वह शांत-चित्त रहता है।

उवसंत षीन मोहो, मिथ्या दंसनेहि उवसमो चरनो।
चौगई गमना गमनं, उवसंतो लहै निव्वानं ॥ २३१ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या दंसनेहि उवसमो चरनो) मिथ्यादर्शनके क्षय होनेसे जो चारित्र पाला जाता है उसके द्वारा (उवसंत षीन मोहो) मोह उपशांत होजाता है या क्षीण होजाता है तब (चौगई गमना गमनं उवसंतो लहै निव्वानं) उसका चारों गतियोंमें भ्रमण बन्द होजाता है और वह निर्वाणको प्राप्त करता है।

भावार्थ—पहले उपशम सम्यक्त होता है फिर क्षयोपशम फिर क्षायिक होता है। तब मिथ्यात्वका क्षय होजाता है। ऐसा सम्यक्ती मुनिव्रत धार कर ध्यान बलसे कभी उपशम श्रेणी चढ़ता है तब ग्यारहवें गुणस्थानपर जाकर उपशांत मोही कहा जाता है फिर पलट कर आठवेंसे वह क्षपक श्रेणीपर चढते हुए दसवेंसे बारहमें आकर क्षीण मोह कहाता है। फिर वही केवली होकर अरहंत होजाता है, आयु पर्यंत शरीरमें रहता है, फिर अवश्य निर्वाणका लाभ होता है और तब चार गतिका भ्रमण विलकुल बन्द होजाता है।

भक्ति गुण।

भत्ती दंसन ज्ञानं चरनं चारित्र दुविहि भत्तीए।
तव भत्ती सहकारं, सम्मत्तं सुद्ध भत्तीओ ॥ २३२ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञानं भत्ती) सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानकी और प्रेम पूर्वक आराधन दर्शन ज्ञान

भक्ति है (दुविहि चारित्र चरनं भत्तीए) निश्चय तथा व्यवहार दो प्रकार चारित्र पालना चारित्र भक्ति है (तव भत्ती हकारं) साथमें तप करनेकी तरफ उत्साह रूप भक्ति चाहिए (सम्मत्त सुद्ध भत्तीओ) इस तरह सम्यग्दृष्टीके शुद्ध भक्ति गुण होता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी बडी श्रद्धा व बडी भक्तिसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व सम्यक् तप इन चार आराधनाओंकी भक्ति रखता है यही सम्यक्तीका शुद्ध भक्ति गुण है।

भत्ती अनंत ज्ञानं, मल रहिओ सुद्ध दंसनं भत्ती।
भत्ती सुद्ध सहावं, सुद्धं सम्मत्त भत्ति सो दिट्ठि ॥ २३३ ॥

अन्वयार्थ—(भत्ती अनंत ज्ञानं) आत्माके अनंत ज्ञानकी तरफ भक्ति रखना (मल रहिओ सुद्ध दंसनं भत्ती) मेरा सम्यक्त भाव पचीस मल रहित शुद्ध रहे ऐसी भक्ति रखना (भत्ती सुद्ध सहावं) शुद्ध आत्माके स्वाभाविक गुणोंकी भक्ति रखना (सो सुद्धं सम्मत्त भत्ति दिट्ठि) सो शुद्ध सम्यक्त भक्ति है ऐसा जानना चाहिये।

भावार्थ—भक्ति, श्रद्धापूर्वक सेवा या आराधनाको कहते हैं। सम्यक्तीके शुद्ध भक्ति गुण यह होता है कि वह आत्माके अनंत ज्ञानकी प्राप्तिकी भावना भाता है तथा पचीस दोष रहित निर्मल सम्यक्तके पालनेकी रुचि रखता है तथा मेरा शुद्ध आत्माका स्वभाव प्रगट हो ऐसी शुद्ध भक्तिका प्रकाश रखता है।

ज्ञान मया भत्तीनं, अप्पा परमप्प सुद्ध भत्तीए।
मिच्छात दोषरहियं, भत्ती पुन्यं लहंति निव्वानं ॥ २३४ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान मया भत्तीनं) आत्मज्ञानमई आराधना उसे कहते हैं जहां (अप्पा परमप्प सुद्ध भत्तीए) ऐसी शुद्ध आराधना हो कि मेरा आत्मा ही निश्चयसे परमात्मा रूप है (मिच्छात दोषरहियं) उसमें कोई पर पदार्थमें परमाणु मात्र राग रूप मिथ्यात्वका दोष न हो (पुन्यं भत्ती निव्वानं लहंति) ऐसी पवित्र भक्ति निर्वाणको ले जाती है।

भावार्थ—निर्वाणकी कारण रूप शुद्ध ज्ञानमई भक्ति वह है जहां सम्यक्त पूर्वक अपने आत्माको

परमात्मारूप अनुभव किया जावे। आत्मामें तन्मयता ही प्राप्त की जावे। आत्मानुभव निश्चयसे मोक्षमार्ग है।

वात्सल्य गुण।

वाच्छल्लं विज्ञानं, विज्ञान सरूव सम्मत्तं।
अप्पा परविज्ञानं, परचवे वि अप्प सुद्ध सद्भावं ॥ २३५ ॥

अन्वयार्थ—(याच्छल्लं विज्ञानं) भेदविज्ञानमें प्रेम सो ही वात्सल्य गुण है (विज्ञान सरूप सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन भेदज्ञान सरूप है (अप्पा परविज्ञानं) आत्माको परसे भिन्न जानना भेदविज्ञान है (अप्प सुद्ध सद्भावं परचवे वि) तब ही आत्माके शुद्ध स्वरूपका परिचय या अनुभव होता है।

भावार्थ—निश्चय प्रेम भाव भेदविज्ञानसे रखता वात्सल्य गुण है। आत्माको सर्व रागादि भावोंसे व कर्मोंसे व शरीरादिसे भिन्न देखना भेदविज्ञान है। यही सम्यग्दर्शन या सच्चा श्रद्धान है। इसीके द्वारा स्वानुभव होता है जो असली मोक्षमार्ग है।

अप्पा सुद्धप्पानं, विज्ञानं करंति भावमय गहनं।
लब्धं परमप्पानं, विज्ञानं लहंति निव्वानं ॥ २३६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा सुद्धप्पानं विज्ञानं भावमय गहनं करंति) आत्मा ही निश्चयसे शुद्धात्मा है ऐसा विशेष ज्ञान जहा भावपूर्वक किया जाता है (परमप्पानं लब्धं) तब परमात्माकी प्राप्ति होती है (विज्ञानं निव्वानं लहंति) वास्तवमें भेदविज्ञान निर्वाणको प्राप्त कराता है।

भावार्थ—भेदविज्ञानमें प्रेम ही वात्सल्य गुण है। जैसे तिलोंमें तैल और भूसीका अलग २ ज्ञान ही तैलकी प्राप्ति कराता है। वैसे इस कर्मसे मिश्रित आत्मामें कर्मोंसे भिन्न आत्मा शुद्ध परमात्माके समान है ऐसा ज्ञान ही परमात्माका स्वभाव प्रकाश कराता है।

अनुकम्पा गुण।

अनुकंपा जीवानं, थावरं वियलेइ सयल मप्पानं।
अनुकंप भाव सुद्धं, असत्त्य सहितो पि विवरीदो ॥ २३७ ॥

अन्वयार्थ—(अनुकम्पा जीवानं थावर वियलेइ सयल मप्पानं) समस्त जीवोंपर दया भाव अनुकम्पा है। स्थावर एकेन्द्रिय, दो इंद्रीसे चौइंद्री तक विकलत्रय जंतु तथा पंचेंद्रिय जीव सर्व ही प्राणियोंपर करुणा भाव (असत्य सहितो पि विवरीदो) यद्यपि असत्य राग सहित है तौभी असत्यसे विपरीत है (अनुकम्प भाव सुद्धं) निश्चय अनुकम्पा शुद्ध आत्मीक भाव है।

भावार्थ—दयाभाव एक प्रकारका शुभ राग है, सो कषाय सहित भाव है सो सत्य वीतराग आत्मिक भावसे विरुद्ध है इसलिये असत्य है तौभी वह अप्रशस्त नहीं है, अहितकारी नहीं है इस लिये विरुद्ध नहीं है। सराग सम्यक्तीके ऐसा दया भाव होता है कि वह सर्व प्राणी मात्रपर करुणा करके उनका दुःख मेटना चाहता है। किसी भी स्थावर व त्रस प्राणीको व्यर्थ दुःखित नहीं करता है, किन्तु उनका यथाशक्ति उपकार करता है। वीतराग सम्यक्तीके यह अनुकम्पा गुण स्वात्म दया रूप शुद्ध वीतराग भाव है जिससे आत्माकी हिंसा रागादिसे न हो।

अनुकंप भाव सुद्धं, अप्प सरूवेन चेयनाभावं।
अनृत असत्यसहियं, तिक्कंति अनुकंप भावेन ॥ २३८ ॥

अन्वयार्थ—(अनुकम्प भाव सुद्धं) निश्चय अनुकम्पा आत्माका शुद्ध वीतराग भाव है (अप्प सरूवेन चेयना भावं) वह आत्माका निज स्वाभाविक चैतन्य भाव है (अनुकम्प भावेन अनृत असत्य सहियं तिक्कंति) इस निश्चय अनुकम्पाके भावसे मिथ्या व क्षणिक राग सहित भावका त्याग होजाता है।

भावार्थ—सरागीके जो परजीवोंकी रक्षाका भाव है वह एक क्षणिक व शुद्ध भावकी अपेक्षा असत्य भाव है। जब यह सम्यक्ती वीतराग भावमें तन्मय होता है तब वहां शुद्ध चैतन्य आत्मीक स्वभावका अनुभव होता है, वहां सराग अनुकम्पा नहीं होती है। वही निश्चय आत्म-दया निर्वाणका हेतु है।

दर्संति सुद्ध तत्वं, अप्पं च अप्प गुने हि दर्संति।
अप्पा परमप्पानं, अनुकंपा लहति निव्वानं ॥ २३९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध तत्वं दर्संति) निश्चय अनुकम्पा शुद्ध आत्म तत्वको देखती है (अप्पं च अप्प गुने हि

दर्संति) वह आत्माको आत्मीक गुण रूप ही अनुभव कराती है (अप्पा परमप्पानं) कि यह आत्मा परमात्मा रूप है (अनुकम्पा निव्वानं कहति) ऐसी अनुकम्पा निर्वाणमें लेजाती है।

भावार्थ—वीतराग सम्यक्तीके जो सर्व राग द्वेष छोडकर अपने ही स्वरूपमें स्थित होकर आत्मानुभव करना है यही आत्म दया अनुकम्पा है यह अवश्य मोक्षपद दायक है।

आठ मूलगुण।

मूलगुनं ए अट्ठा, जानै विच्छेइ सुद्ध सम्मत्तं।
मिच्छात राग रहियं, अप्पा परमप्पयं सुद्धं ॥ २४० ॥

अन्वयार्थ—(ए अट्ठा मूलगुनं) ये आठ मूलगुण होते हैं, (सुद्धं सम्मत्तं जानै विच्छेइ) शुद्ध सम्यक्ती उनको जानता है व निश्चयमें रखता है (मिच्छात राग रहियं) वह मिथ्यात्वके रागका त्यागी है (अप्पा परमप्पयं सुद्धं) अपने आत्माको परमात्माके समान शुद्ध अनुभव करता है।

भावार्थ—आत्मज्ञानी मिथ्यात्व रहित निर्दोष सम्यक्त पालनेवाला भाव सहित परमोपकारी जानकर इन आठ मूलगुणोंको पालता है। वह मदिरा मांस मधुका सेवन नहीं करता है तथा पांच उदम्बर फलोंसे बचता है क्योंकि उनमें त्रस जीव होते हैं। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें भी कहा है—

मद्यं मांसं क्षौद्रं, पंचोदुम्बरफलानि यत्नेन। हिंसाव्युपरतिकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जो हिंसासे विरक्त होना चाहें उनको प्रथम ही मदिरा, मांस, मधु व पांच उदम्बर फल उद्यम करके छोड देने चाहिये।

तिक्तंति मूल अट्ठा, पंचुम्बर मद्य मांस मधु पेयं।
तिक्तंति भव्य जीवा, क्रियामल विवर्जिओ सुद्धं ॥ २४१ ॥

अन्वयार्थ—(मूल अट्ठा तिक्तंति) इन आठ मूल बातोंको छोड दे (पंचुम्बर मद्य मांस मधु पेयं) पांच उदम्बर फल, मदिरा, मांस व मधुका पान (क्रियामल विवर्जिओ सुद्धं भव्यजीवा तिक्तंति), जो क्रियाके दोषसे रहित शुद्ध आचरणके पालनेवाले भव्यजीव हैं वे इन आठोंको त्याग देते हैं।

भावार्थ—ये आठ बातें हिंसाको पुष्ट करनेवाली व आचारको मलीन, पापी व दोषी बनानेवाली है। अतएव शुद्ध क्रियाके पालक भव्यजीव इन आठोंका अवश्य त्याग कर देते हैं।

वडपीपल पिल्लुनियं, पाकर उदंबरं जाने।
त्रसजीवा उप्पत्ती, तिक्कंति सु सावया सव्वे ॥ २४२ ॥

अन्वयार्थ—(वडपीपल पिल्लुनियं पाकर उदंबरं जाने) पांच उदम्बर फल, वडका फल, पीपलका पील, गूलर फल, पिलखन फल और अंजीरको जानो (त्रस जीवा उप्पत्ती) इनमें त्रस द्वेन्द्रियादि पैदा होते हैं (सव्वे सु सावया तिक्कंति) सर्व ही सच्चे श्रावक इनका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—इन पांच फलोंमें प्रत्यक्ष त्रस जन्तु देखनेमें आते हैं अथवा कभी देखनेमें न आवें तौभी उनमें त्रसकी उत्पत्तिकी योनि है। अतएव त्रस हिंसासे बचनेके लिये श्रावकगण इन फलोंको गीला व सूखा कभी नहीं खाते। क्योंकि सूखेमें त्रस कलेवर सूखा हुआ मांस ही साथमें होगा।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें सूखे खानेकी भी मनाई है—

यानि तु पुनर्भवेयुः कालोच्छिन्नत्रसानि शुष्काणि। भजतस्तान्यपि हिंसा विशिष्टरागादिरूपा स्यात् ॥ ७१ ॥

भावार्थ—यदि इन फलोंमें किसी काल त्रस जीव न दिखलाई पडे व ये फल सूख जावे तौभी इनको खानेसे विशेष राग रूपी हिंसा अवश्य होगी। इसलिये सूखे भी न खाने चाहिये।

मद्यं च असुह भावं, असुहं आलाप विकह सद्भावं।
मोह मय मद्य सहिओ, मद्यं मानं च असुह मयमंता ॥ २४३ ॥

अन्वयार्थ—(मद्यं च असुह भावं) मदिरा अशुभ भावोंको उत्पन्न करती है (असुहं आलाप विकह सद्भावं) मदिरासे अशुभ बकबक करता है व विकथाएँ करने लगता है (मोह मय मद्य सहिओ) मदिरापानसे मोहमई नशा चढ जाता है (मद्यं मानं च असुह मयमंता) मदिरा पीना व मान भावमें होजाना अशुभ मद्यपना ही है।

भावार्थ—यद्यपि मदिरापानमें त्रस जन्तुओंका घोर घात होता है, इसलिये मदिरा त्रस हिंसा कारण है तथापि इसमें और भी दोष हैं। मदिरा पीनेसे भाव बिगड जाते हैं। यद्वा तद्वा बकने लगता है। स्त्री, भोजन, लोक व राजाओंकी मनोरंजन कथाएँ कहने लगता है। गहलता भाव पैदा होजाता है जिससे माताको स्त्री देखने लगता है। मैं बडा ऐसा एक अभिमान भी पैदा हो

जाता है। जैसे मदिराका पीना अशुभ है वैसे मान भावमें रमना अशुभ है। मानीको भी मोहका नशा चढ जाता है। मानी भी मदिरा पानीके समान है या मदिरापानी मानीके समान है।

तिक्कंति मद्यपानं, ममता भावेन मिच्छ सहियानं।
पुन्यं भोग निमित्तं, करंति ममता मदप्पाहू ॥ २४४ ॥

अन्वयार्थ—(मद्यपानं तिक्कंति) श्रावकोंको मदिरापान छोडना चाहिये (ममता भावेन मिच्छ सहियानं) साथमें ममता भावमई मिथ्यात्वका भी त्याग करना चाहिये (ममता मदप्पाहू भोग निमित्तं पुन्यं करंति) जो ममतारूपी मदिराके पीनेवाले हैं वे भोगोंके मिलनेके हेतुसे पुण्य कर्म करते हैं।

भावार्थ—श्रावकोंको मदिरा पीना तो छोडना ही चाहिये। साथमें संसार व इन्द्रिय-विषय रागरूपी ममत्वको भी छोड देना चाहिये। यह भी मिथ्यात्व है। जिनको भोगोंकी तृष्णाका मद्य होता है वे पूजा, पाठ, जप, तप, व्रतादि भी भोगोंकी प्राप्तिके लिये करते हैं, वीतराग भावके लिये नहीं।

मांसं च असुह भावं, भावं पंचम्मि थावरं सहियं।
असुद्ध परिनाम मांसं, मांसदोस विरहिओ जीवो ॥ २४५ ॥

अन्वयार्थ—(मांस दोस विरहिओ जीवो) जो जीव मांसके दोषसे बचना चाहता है उसको (मांसं च असुह भावं) मांसके त्यागके साथ अशुभ हिंसक भावको भी त्यागना चाहिये (पंचम्मि थावरं सहियं भावं) तथा पांच प्रकार स्थावरोंकी निरर्गल हिंसाके भावको भी त्यागना चाहिये। (असुद्ध परिनाम मांसं) वास्तवमें आत्माके अशुद्ध हिंसक परिणाम भी मांस है।

भावार्थ—श्रावकोंको मांसका तो त्याग उचित ही है परन्तु उनको हिंसक पर पीडाकारक भावको भी त्यागना चाहिये। जैसे मांसाहारमें पशु पीडाका दोष है वैसे ही हिंसक अशुद्ध भावोंमें पर पीडाका दोष है व आत्मामें द्वेषभाव है। अतएव श्रावक गृहस्थोंको उचित है कि वे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति पांच प्रकार एकेन्द्रियोंपर भी दया भाव रक्खें तथा इनकी हिंसा न करें। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

स्तोकैकेन्द्रियघाताद् गृहिणां सम्पन्नयोग्यविषयाणाम् । शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयम् ॥ ७७ ॥

भावार्थ—अपने २ योग्य गृहस्थकी सामग्री रखनेवाले गृहस्थोंको थोड़ा प्रयोजनभूत एकेंद्रिय स्थावरोंका घात करना चाहिये, शेष स्थावरोंकी हिंसासे विरक्त रहना चाहिये।

पुग्गला एइन्दीया, भरितं, आहारपान एइन्दी ।
मांस दोस बेइंदी, रष्यंतो सुद्ध भावेन ॥ २४६ ॥

अन्वयार्थ—(मांस दोस बेइंदी) यद्यपि द्वेन्द्रियादि प्राणियोंके कलेवरके भक्षणमें मांसका दोष आता है तथापि (ए इन्दीया पुग्गला आहारपान भरितं) एकेंद्रिय पुद्गलोंसे ही सर्व आहारपान बनता है अतएव (सुद्ध भावेन एइन्दी रष्यंतो) शुद्ध दयाभावसे एकेंद्रियोंकी भी रक्षा करनी चाहिये।

भावार्थ—यद्यपि एकेन्द्रिय स्थावरोंके कलेवरको मांस नहीं कहते किंतु द्वेन्द्रियादिके कलेवरको मांस कहते हैं तथापि गृहस्थीका सर्व ही आहारपान एकेंद्रिय सहित पुद्गलोंसे बनता है। गीली मिट्टी, सचित्त पानी, अग्नि, वायु, साग भाजी, फल आदि सर्व ही स्थावर एकेन्द्रिय हैं, इनका उपयोग भोजन पानमें करना ही पड़ता है। दयावान श्रावकोंको उचित है कि इनकी वृथा हिंसा न करें। इनपर भी दयाभाव रखके मतलबसे अधिक पृथ्वी न खोदे न रहैं न अधिक पानी फेंके न वृथा आग जलावे न हवा लेवे न फल सागादि अधिक वरते।

मधुरं मधुर सहावं, स्वादं विचलंति मद्य उप्पत्ती ।
तिक्कंति सुद्ध भावं, मूलं अवगुनं पि तिक्कंति ॥ २४७ ॥

अन्वयार्थ—(मधुरं मधुर सहावं) मीठे फलादिका मीठा स्वभाव होता है (स्वादं विचलंति मद्य उप्पत्ती) जब उनका स्वाद बिगड़ जावे तब उनके रसमें मद्यपना पैदा होजाता है (सुद्ध भावं तिक्कंति) अतएव निर्दोष भावके धारी उसका भी त्याग कर देते हैं (मूलं अवगुनं पि तिक्कंति), आठ मूल गुणोंके अतीचार भी छोड़ देते हैं।

भावार्थ—इस गाथामें यह संकेत किया है कि आठ मूल गुणोंको जो अतीचार रहित पालना चाहें उनको उनके अतीचार भी बचाने चाहिये। जैसे रस चलित फलादिमें मदिराका दोष आता है।

मदिराके अतीचार—अफीम, गांजा, भांगादि सब नशे त्यागना, रस चलित फलादि न लेना, मदिरा संसर्गित औषधि न लेना।

मांसके अतीचार—मर्यादाका आहार करना। दो घडी भीतरका छना जल पीना; कढी, दाल, चावल छः घण्टेके भीतर तक, रोटी, पूरी, रंधा हुआ साग दिनभर तक; मिठाई, सुहाल, लाडू आदि २४ चौवीस घण्टे तक; पानी विना घी अन्नसे बनी मिठाई आटेके समान। शीतमें ७ दिन, गर्मीमें ५ दिन, वर्षातमें ३ दिन तक, बूरा घरका बना शीतमें एक मास, गर्मीमें १५ दिन, वर्षामें ७ दिन तकका वर्तना चाहिये। दूध ४८ मिनिटके भीतर छानकर गर्म करके औटा हुआ २४ चौवीस घण्टे तक; उसीका बना दही २४ घण्टे तक; उसीकी बनी लोणी ४८ मिनिटके भीतर, औटाकर जो घी निकले वह जहांतक रस चलित न हो वहांतक घी व तेल वर्ते। रात्रिको आहारसे यथाशक्ति बचें।

मधुके अतीचार—सर्व पुष्प जातिको न खावे जैसे गोभी कचनारादिको।

पांच उदम्बर फलके अतीचार—कोई बन्द फलको तोडे विना न खावे, देखकर खावे। सड़े गले फलादिको न खावे। कीट सहित फलादिको न खावे।

इस तरह दयावानोंको अतीचार बचाने चाहिये।

रत्नत्रय स्वरूप।

रयनंत्तयं पि जोई, दंसन ज्ञानेन चरन सुद्धानं।
चिंतंति भव्य जीवा, अप्पा समयं च सुद्ध दिट्ठीओ ॥२४८॥

अन्वयार्थ—(रयनंत्तयं पि जोई) श्रावकोंको रत्नत्रय धर्मपर भी ध्यान देना चाहिये (दंसन ज्ञानेन चरण सुद्धानं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी शुद्धता रत्नत्रय धर्म है (सुद्ध दिट्ठीओ भव्य जीवा) सम्यग्दृष्टी भव्य जीव (अप्पा समयं च चिंतंति) अपने आत्माको समय या शुद्ध आत्म पदार्थ चिंतवन करते हैं।

भावार्थ—श्रावकोंको व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय पर भी विचारना चाहिये। सात तत्वोंका श्रद्धान व ज्ञान तथा श्रावकके बारह व्रत पालना व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र है, जब कि निश्चयसे श्रद्धा व ज्ञान सहित निज शुद्धात्मामें रमणता ही रत्नत्रय धर्म है। सम्यग्दृष्टी सदा अपने आत्माकी शुद्ध रूपसे भावना किया करते हैं।

दंसन भेयं चवकं, चष्य अचष्य अवहि संजुत्तं।
केवलदंसन सुद्धं, दंसन धरनं च सुद्ध सम्मत्तं ॥ १४९ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन धरनं च सुद्ध सम्मत्तं) निज आत्माका अभेद व सामान्य रूपसे निर्विकल्प देखना आत्मदर्शन है व यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है। (दंसन भेयं चवकं) इस दर्शनके चार भेद हैं (चष्य अचष्य अवहि संजुत्तं सुद्धं केवल दंसन) चक्षु, अचक्षु, अवधि तथा शुद्ध केवलदर्शन।

भावार्थ—हरएक दर्शनमें आत्माका प्रत्यक्ष होना है। आत्मा जब किसी पदार्थके जाननेको सन्मुख होता है और पदार्थका आकार नहीं झलकता तबतक दर्शन है। वहां आत्माकी ही तरफ सामान्यपने लक्ष्य है। आंखके द्वारा जो दर्शन हो वह चक्षुदर्शन है। आंखके सिवाय चार इंद्रिय व मनसे हो वह अचक्षु दर्शन है। अवधिज्ञानके पूर्व हो वह अवधि दर्शन है। केवलज्ञानीके दर्शनावरण रहित शुद्ध अनंत दर्शन है।

दंसेइ मोक्ख मग्गं, मल रहियं रागमिच्छ परिचत्तं।
दंसेइ अप्परूवं, अप्पा परमप्पयं सुद्धं ॥ २५० ॥

अन्वयार्थ—(मोक्ख मग्गं दंसेइ मल रहियं रागमिच्छ परिचत्तं) जो कोई निर्दोष व मिथ्यात्व भाव रहित मोक्षमार्गका श्रद्धान करता है (अप्प रूपं अप्पा परमप्पयं सुद्धं दंसेही) तथा जो अपने रूपको ऐसा श्रद्धान करे कि यह मेरा परमात्माके समान शुद्ध है वह सम्यग्दर्शनका धारी है।

भावार्थ—इसके पूर्व गाथामें दर्शनका अर्थ सामान्य देखना लेकरके कथन किया है। यहां दर्शनका अर्थ श्रद्धान लेकर कथन किया है। मिथ्यात्व भाव रहित निर्दोष रत्नत्रय धर्म ही मोक्षमार्ग है तथा मेरा आत्मा निश्चयसे परमात्मा तुल्य है, यह श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।

सम्यकदर्सन सुद्धं, अदंसन सयल दोस परिचत्तो ।
दंसेइ तिहुवनग्गं, विंदस्थं दंसनं सुद्धं ॥ २५१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सम्यकदर्सनं) सम्यक्दर्शन शुद्ध है (अदंसन सयल दोष परिचत्तो) उसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी सर्व दोष नहीं है (सुद्धं दंसनं तिहुवनग्गं विंदस्थं दंसेइ) शुद्ध सम्यकदर्शन तीन भुवनके अग्र विराजित ॐ मंत्रके बिंदु स्थानसे लक्षित सिद्ध परमात्माका स्वरूप देखता है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शनके जितने दोष चल मल अगाढ आदि हैं, उनसे रहित जो सिद्धात्माके समान अपने आत्माकी श्रद्धा सो सम्यक्दर्शन है । यह सम्यक्त ॐ शब्दके बिंदु स्थानसे जिस शुद्धात्माका बोध होता है उसको अपने आत्मामें अनुभव करता है । सब अरहंत समान होनेपर किसीको कम किसीको अधिक मानना चल दोष है । शंका, कांक्षा विचिकित्सा (ग्लानि), मिथ्यात्वकी मनसे प्रशंसा व वचनसे स्तुति ये पांच मल दोष हैं । अपने चैत्यालयसे अधिक प्रीति, दूसरे चैत्यालयसे कम प्रीति अगाढ दोषका दृष्टांत है ।

अनंतदर्सन दर्स, केवलदर्सन तिलोय संजुत्तं ।
लोयालोयं दर्स, अनंतदर्सन दर्सनं सुद्धं ॥ २५२ ॥

अन्वयार्थ—(अनंतदर्सन दर्स) सम्यग्दृष्टी अनन्त दर्शनका विश्वास रखता है (केवलदर्सन तिलोय संजुत्तं लोयालोयं दर्स) यही केवलदर्शन है जो तीन लोक सहित लोकालोकको देखनेवाला है (अनंतदर्सन दर्सनं सुद्धं) अनन्त दर्शन ही शुद्ध दर्शन है, इसमें दर्शनावरणका उदय नहीं है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन धारीको यह दृढ विश्वास है कि आत्माका स्वभाव केवल या अनंतदर्शन है जो सर्वको एक काल देखनेवाला है ।

अमलं दंसन दिट्ठी, मलं न पिच्छेइ सयलदोस परिचत्तं ।
पिच्छे परमप्पानं, तिविहं कम्मं न पिच्छेइ ॥ २५३ ॥

अन्वयार्थ—(अमलं दंसन दिट्ठी) निर्मल सम्यग्दर्शन (मलं न पिच्छेइ) किसी दोषकी तरफ दृष्टि नहीं रखता है (सयल दोस परिचत्तं परमप्पानं पिच्छे) वह सकल दोषोंसे रहित परमात्माको श्रद्धापूर्वक देखता है (तिविहं कम्मं न पिच्छेइ) तीन प्रकार कर्मोंपर दृष्टि नहीं रखता है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी शुद्ध निश्चय नयसे अपने ही आत्माको निर्दोष परमात्माके समान रागादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म व शरीरादि नोकर्मसे भिन्न जानता है, श्रद्धता है तथा उसका मग्न हो अनुभव करता है।

दंसन दिट्ठि सदिट्ठं, कम्ममल दोस मिच्छ संगलियं।
गलियं कुज्ञानं रागं, जं तिमिरं दिनकरं तेजं ॥ २५४ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन दिट्ठि सदिट्ठं) सम्यग्दर्शन उसे जानना चाहिये जहां (कम्ममल दोस मिच्छ संगलियं) मिथ्यात्व कर्ममल दोषका अभाव होगया हो (कुज्ञान रागं गलियं) व जहां मिथ्याज्ञान व संसारका राग न रहा हो (जं तिमिरं दिनकरं तेजं) जैसे सूर्यके तेजके प्रकाशके सामने अंधकार नहीं रहता है।

भावार्थ—जैसे सूर्यके उदय होते ही रात्रिका सब अंधकार नष्ट होजाता है वैसे सम्यग्दर्शन आत्माका गुण है, उसके प्रगट होते ही मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान व मिथ्या चारित्र या राग भाव विला जाता है। पहले संसारके क्षणिक सुखोंपर व उनके कारणोंपर दृष्टि थी, सम्यक्त होते ही यह दृष्टि जाती रही, मोक्षके अतीन्द्रिय सुखपर व उसके कारणोंपर दृष्टि होगई। इसीका नाम अंधकार गया और प्रकाश प्रगटा।

दंसनदिट्ठि स दिट्ठं, विहडै कम्मान मिच्छ सुह असुहं।
विहडै मान कषायं, जं सीहं दिट्ठि गयदं जूहेन ॥२५५॥

अन्वयार्थ—(दंसन दिट्ठि स दिट्ठं) सम्यग्दर्शनका प्रकाश उसे कहते हैं (विहडै कम्मान मिच्छ सुह असुहं) जहां मिथ्यात्व सहित शुभ व अशुभ कार्य बन्द होजाते हैं (विहडै मान कषायं) जहां शरीर धनादिका मद भाव भी नहीं रहता है (जं सीहं दिट्ठि गयदं जूहेन) जैसे सिंहको देखकर हाथीके समूह भाग जाते हैं।

भावार्थ—जैसे सिंहके सामने हाथी समूह नहीं ठहरते हैं वैसे सम्यग्दर्शनके सामने मिथ्या भाव सहित शुभ व अशुभ कार्य व मद भाव नहीं ठहरते हैं। संसारीक वासना सहित पुण्य कर्म मिथ्यात्व सहित है। आत्माके शुद्ध भावोंकी प्राप्तिके लिये किया हुआ पुण्य कार्य सम्यक्त सहित है। सम्यक्तीकी मान्यता निजात्म तत्त्वमें होजाती है तब सर्व ही परभावोंमें आत्मापने माननेका मान भाव सर्वथा दूर होजाता है।

दंसनसुद्धि निमित्तं, दंसन दिट्ठि धरेहि भावेन ।
दंसेइ तिहू लग्गं, दर्सन धरनं च मुक्ति गमनं च ॥२५६॥

अन्वयार्थ—(दंसन सुद्धि निमित्तं) सम्यग्दर्शनकी शुद्धताके निमित्त (दंसन दिट्ठि धरेहि भावेन) सम्यग्दर्शनका दृढतासे पालन भाव सहित करना चाहिये (तिहू लग्गं दंसेइ) तीन भुवनके अग्र विराजित सिद्ध स्वरूपका मनन करना चाहिये (दर्सन धरनं च मुक्ति गमनं च) जो सम्यग्दर्शनका धारी है वह अवश्य मोक्षगामी है ।

भावार्थ—एक दफे सम्यग्दर्शनका लाभ होजानेपर वह कभी मलीन न हो, वह कभी छूटे नहीं इसलिये शुद्धात्माका मनन व अनुभवका अभ्यास करते रहना चाहिये । यह सम्यग्दर्शन बड़ा उपकारी है, इसीके प्रतापसे मोक्ष होती है ।

ज्ञानमयं अप्पानं, ज्ञानं तिलोय सयल संजुतं ।
अज्ञान तिमिरहरनं, ज्ञानं उदय स सयल विलयंती ॥ २५७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानमयं अप्पानं) सम्यग्ज्ञानकी भावनामें ज्ञानमई आत्माको जानना चाहिये (ज्ञानं तिलोय सयल संजुतं) आत्मामें ज्ञान सर्व त्रिलोकके पदार्थोंको जाननेवाला है (अज्ञान तिमिरहरनं) वह ज्ञान अज्ञानके अन्धकारको दूर कर देता है (ज्ञान उदय स सयल विलयंती) ज्ञानके प्रकाश होते ही वह सब अन्धेरा नाश होजाता है ।

भावार्थ—आत्मा सर्व ज्ञेयोंको जाननेमें समर्थ केवलज्ञानमई है ऐसा संशय रहित जानना सम्यक्ज्ञान है । इस सम्यक्ज्ञानके प्रकाश होते ही मिथ्या ज्ञानका अन्धेरा विला जाता है ।

ज्ञानं तिलोय सारं, ज्ञानं दंसेइ दंसनं मग्गं ।
जानदि लोय पमानं, ज्ञान सहावेन सुद्धमप्पानं ॥ २५८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं तिलोय सारं) सम्यग्ज्ञान तीन लोकमें सार है (ज्ञानं दंसेइ दंसनं मग्गं) ज्ञान ही सम्यग्दर्शनके मार्गको देखता है (जानदि लोय पमानं) ज्ञान ही लोकाकाश प्रमाण आत्माको या सर्व लोकके पदार्थोंको जानता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध मप्पानं) ज्ञान स्वभावमें रमण करनेसे शुद्ध आत्माका अनुभव होता है ।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान ही विस्तारसे सम्यग्दर्शनके विषयभूत छः द्रव्य व सात तत्वोंको जानता है। यही ज्ञान सार है, इसीसे केवलज्ञान होता है जो सर्वको जानता है। यही ज्ञान लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी शुद्ध आत्माको ज्ञान स्वभावमें देखता जानता है व अनुभव करता है।

ज्ञानं ज्ञान सहावं, जानदि पिच्छेइ सुद्धमप्पानं ।
अप्पा सुद्ध प्पानं, परमप्पा ज्ञान संजुत्तं ॥ २५९ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं ज्ञान सहावं सुद्ध मप्पानं जानदि पिच्छेइ) सम्यग्ज्ञान ही ज्ञान स्वभावी शुद्ध आत्माको जानता देखता है (अप्पा सुद्धप्पानं परमप्पा ज्ञान संजुत्तं) कि यही आत्मा शुद्ध स्वरूपमें है, परमात्माके समान है व ज्ञान सहित है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान ही अपने इस आत्माको द्रव्य दृष्टिसे परमात्माके समान ज्ञानमई जानकर अनुभव करता है।

ज्ञानबलेन य जीओ, अप्पा सुद्धप्प हवे परमप्पा ।
ज्ञान सहावं जानदि, मुक्ति पंथ सुद्ध स सरूवं ॥ २६० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान बलेन य जीओ सुद्धप्प अप्पा परमप्पा हवे) सम्यग्ज्ञानके बलसे ही यह जीव जो निश्चयसे शुद्ध स्वरूपी आत्मा है सो परमात्मा होजाता है (मुक्ति पंथ सुद्ध स सरूवं ज्ञान सहावं जानदि) ज्ञानके बलसे मोक्षमार्गको जानता है कि वह शुद्ध ज्ञान स्वभावी अपना ही स्वभाव है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानके ही द्वारा जीव आत्मानुभवरूप निश्चय मोक्षमार्गको समझता है व इसीके अभ्याससे कि मैं शुद्ध आत्मा हूं यह आत्मा परमात्मा होजाता है।

ज्ञानं जिनेहि भनियं, रूपातीतं च व्यक्त लोयस्य ।
ज्ञानं तिलोय सारं, नायव्वो गुरुपसाएन ॥ २६१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं जिनेहि भनियं) ज्ञानका स्वभाव ही श्री जिनेन्द्रने कहा है (रूपातीतं च व्यक्त लोयस्य) वह अमूर्तीक है तथापि उनमें सब लोक प्रगट है। (ज्ञानं तिलोय सारं) यह ज्ञान तीन लोकमें सार है (गुरूपसाएन नायव्वो) उस ज्ञानका स्वरूप श्री गुरुके प्रसादसे जानने योग्य है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान पूर्ण रूपसे केवलज्ञान है जो आवरण रहित व शुद्ध है व लोकालोक ज्ञायक है, उस ज्ञानकी प्रगटताका कारण आत्मज्ञान है। यही सार है क्योंकि इसीसे अपने परमात्म स्वरूप आत्माका अनुभव होता है। यह आत्मज्ञान श्री गुरु आत्मज्ञानीकी संगतिसे शीघ्र व ठीक २ मिलता है।

ज्ञानं दंसन च समं, सम भावना हवदि चारित्तं ।
चरनंपि सुद्ध चरनं, दुविहि चरनं मुनेयव्वा ॥२६२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं दंसन च समं) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक काल होते हैं (सम भावना चारित्तं हवदि) समभावका होना चारित्र है। (चरनंपि सुद्ध चरनं) वह चारित्र भी शुद्धात्मामें रमणरूप है (दुविहि चरनं मुनेयव्वा) उस चारित्रको दो प्रकार जानना चाहिये एक सम्यक्तचरण दूसरा संयमचरण।

भावार्थ—जिस समय सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है उसी समय जो कुछ ज्ञान था वह सम्यग्ज्ञान होजाता है। दीपक और प्रकाशका जैसा एक समय है वैसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके प्रकाशका एक समय है। राग द्वेष छोडकर समताभावमें रहना ही सम्यक्चारित्र है। यह शुद्धात्मामें रमण रूप है। सम्यक् स्वरूपमें चलना सम्यक्त आचरण है। मन व इंद्रिय निरोध रूप संयममें चलना संयम आचरण है। श्री प्रवचनसारमें चारित्रका स्वरूप बताया है—

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो। मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हि समो ॥ ७ ॥

भावार्थ—चारित्र ही निश्चयसे धर्म है। धर्म समभावको ही कहा गया है। मोह व रागद्वेष रहित जो आत्माका परिणाम सो ही समभाव है।

सम्मत्त चरन पढमं, संयम चरनं विहोइ दुतियं च ।
सम्मत्त चरन सुद्धं, पच्छादो संजमं चरनं ॥ २६३ ॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्त चरन पढमं) पहला सम्यक्ताचरण है (दुतियं च संयम चरनं विहोइ) दूसरा संयमाचरण है (सम्मत्त चरन सुद्धं) सम्यग्दर्शनाचार शुद्धात्मामें रमण रूप है (पच्छादो संजमं चरनं) स्वरूपाचरण चारित्रके पीछे इंद्रिय व मनके निरोधसे संयमाचरण होता है।

भावार्थ—सम्यक्तके प्रगट होनेके साथ ही अनन्तानुबन्धी कषायके चले जानेसे स्वरूपाचरण या स्वरूप रमणकी शक्ति पैदा होजाती है, फिर पीछे जब श्रावककी या मुनिकी प्रतिज्ञा रूप व्रताचरण होता है तब संयमाचरण होता है। ऐसा भेद होनेपर भी जहां समभाव है वहां सम्यक्ताचरण भी है, संयमाचरण भी है।

सम्मत्तचरन चरनं, दंसन ज्ञानेन सुद्ध भावेन।
कम्ममल पयडि मुक्कं, अचिरेन लहंति निव्वानं ॥२६४॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञानेन सुद्ध भावेन सम्मत्तचरन चरनं) सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान सहित शुद्ध भावोंके साथ जब सम्यक्ताचरणका अभ्यास किया जाता है तब (कम्ममल पयडि मुक्कं) कर्म प्रकृतियोंका मल छूटता जाता है (अचिरेन लहंति निव्वानं) और यह जीव शीघ्र ही निर्वाणका लाभ करता है।

चार दान।

उत्तं दान चउक्कं, ज्ञानं आहार भेषजं भनियं।
अभयं भयं न दिट्ठं, दानं चत्तारि पत्त दत्तानं ॥२६५॥

अन्वयार्थ—(दान चउक्कं उत्तं) जिनशासनमें चार दान कहे गए हैं (ज्ञानं आहार भेषजं भनियं) ज्ञान दान, आहारदान तथा औषधि दान (अभयं भयं न दिट्ठं) चौथा अभयदान जहां किसीको भय न बताया जावे (दानं चत्तारि पत्त दत्तानं) इन चार दानोंको पात्रोंको देना योग्य है।

भावार्थ—धर्मकी भक्तिकी अपेक्षा श्रावकोंको पात्र दान करना चाहिये। जिनमें रत्नत्रय धर्म है उनको ही पात्र कहते हैं। उन्हें श्रद्धा व भक्ति व विनय सहित चार दान देने चाहिये। भोजनका दान, औषधिका दान, शास्त्रका दान तथा आश्रय दान या अभयदान। जिनवाणीमें ये चार ही सुदान कहे गए हैं। इनके सिवाय धर्मापेक्षा और कोई दान नहीं हैं।

पत्तं त्रिविह पयारं, जिन रुई उत्किट्ठ सावम्मि।
अविरतिया विन्नेयं, दानं पत्तस्स भावना सुद्धं ॥ २६६ ॥

अन्वयार्थ—(पत्तं तिविह पयारं) पात्र तीन प्रकारके होते हैं। (जिन रूई उत्किट्ठ सावग्मि अविरति या वित्रेयं) पहले जिनेन्द्रके समान रूपधारी निर्ग्रंथ मुनि उत्तम पात्र व उत्कृष्ट पात्र हैं, मध्यम पात्र सर्व श्रावक हैं। पहली प्रतिमासे ग्यारहवीं प्रतिमातक जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टी जानने योग्य हैं (भावना सुद्धं पत्तस्स दानं) शुद्ध भावोंके साथ पात्रोंको दान करना योग्य है।

जिन रूवी जिन लिंगं, कम्मं षिपति तिविहि जोएन।
तारनतरन समत्थं, जिन उवइट्ठं पि यतनेन ॥२६७॥

अन्वयार्थ—(जिन रूवी जिन लिंगं) उत्तम पात्र जिन समान रूपधारी निर्ग्रंथ जिन लिंग रूप हैं (तिविहि जोएन कम्मं षिपति) जो मन, वचन, कायकी गुप्तिमई योगसे कर्मोंकी निर्जरा करते हैं (तारन तरन समत्थं) वे आप भी संसारसागरसे तरते हैं व दूसरोंको भी तारते हैं (जिन उवइट्ठं पि यतनेन) वे जिनेन्द्रके उपदेशके अनुसार मोक्षमार्गका यत्न करते हैं।

भावार्थ—उत्तम दानके पात्र दिगम्बर जैन मुनि हैं, जिनके भाव भी वीतराग विज्ञानमई हैं, जो आत्मध्यानसे कर्मोंकी निर्जरा करते हैं, जिनका सर्व चारित्र जिनेन्द्र शासनके अनुसार है, उसीका वे साधन करते हैं, वे जहाजके समान तारणतरण परमोपकारी हैं।

रयनत्तय संजुत्तं, झानं झायंति सुद्धमप्पानं।
आरति रौद्र न दिट्ठं, धम्मं सुक्कं च झानसंजुत्तं ॥ २६८ ॥

अन्वयार्थ—(रयनत्तय संजुत्तं सुद्धमप्पानं झानं झायंति) वे उत्तम पात्र मुनि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्र सहित शुद्ध आत्माका ध्यान ध्याते हैं (आरति रौद्र न दिट्ठं) उनके भावोंमें आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान भी नहीं दिखलाई पडता है (धम्मं सुक्कं च झान संजुत्तं) उनके धर्म व शुक्लध्यानकी ही भावना है।

भावार्थ—उत्तम पात्र व्यवहार रत्नत्रयके आश्रयसे निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्म-ध्यानका अभ्यास करते हैं व संसारके कारणीभूत आर्त व रौद्रध्यानसे बचते हैं, धर्म-ध्यानमें रमते हैं व शुक्ल-ध्यानकी प्राप्तिकी भावना करते हैं।

षय उवसम संजुत्तं, अवधि दिट्ठंति ज्ञान सद्भावं ।
मनपज्जय चिंतन्तो, रिजुविपुलं मइ ज्ञान संपन्नं ॥ २६९ ॥

अन्वयार्थ—(षय उवसम संजुतं) उन साधुओंके क्षयोपशम चारित्र होता है (अवधि ज्ञान सद्भावं दिट्ठंति) वे अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम करके अवधिज्ञानी होजाते हैं (रिजु विपुलं मइ ज्ञान संपन्नं मन पज्जय चिंतन्तो) तथा मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे ऋजुमति व विपुलमति मनःपर्ययज्ञान सहित होकर दूसरेके मनके सूक्ष्म पदार्थको जान लेते हैं ।

भावार्थ—यहां दानके प्रकरणमें मुख्यतासे छठे व सातवें गुणस्थानवर्ती साधुओंका ही उल्लेख है। उनके अवधि व मनःपर्यय ज्ञान होजाना संभव है। उनके संज्वलन देशघातीय कषायोंका उदय है, शेषका उदय नहीं है, इसलिये क्षयोपशम चारित्र है।

कम्ममल विप्पमुक्कं, मुक्कं मिच्छत्तदोस अज्ञानं ।
सम्यकुदर्सन सुद्धं, केवल भावेन भावं च ॥ २७० ॥

अन्वयार्थ—(कम्ममल विप्पमुक्कं) वे उत्तम पात्र साधु कर्ममलको छुडाते हैं (मिच्छत्त दोष अज्ञानं मुक्कं) उनके मिथ्यात्व तथा अज्ञानका शेष नहीं होता है (सम्यग्दर्सन सुद्धं) वे दोष रहित शुद्ध सम्यक्तको पालते हैं (केवल भावेन भावं च) मात्र शुद्ध आत्मीक भावसे आत्मीक भावकी भावना करते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान सहित ही जो व्यवहार चारित्रके द्वारा शुद्ध आत्मीक परिणतिमें रमण रूप निश्चय चारित्रका साधन करते हैं वे ही उत्तम पात्र कर्ममलको छुडाते हैं।

उत्किस्ट सावयानं, पडिमा एकादसं च वय पंचं ।
पालंति सुद्ध भावं, सुद्ध सम्मत्त भावना सुद्धं ॥ २७१ ॥

अन्वयार्थ—(उत्किस्ट सावयानं) उत्कृष्ट श्रावकको आदि लेकर (पडिमा एकादसं च वय पंच सुद्ध भावं पालंति) ग्यारह प्रतिमाधारी शुद्ध भावसे पांच अणुव्रतोंको पालते हैं वे मध्यम पात्र हैं (सुद्ध सम्मत्त भावना सुद्धं) जिनके निर्दोष सम्यग्दर्शन होता है उसीके बलसे वे शुद्धात्माकी भावना भाते हैं।

भावार्थ—पहली दर्शन प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा तकके धारी श्रावक

मध्यम पात्र हैं। ये पांच अहिंसादि व्रतोंको एकदेश अधिक अधिक पालते हैं तथा ये सब सम्यग्दृष्टी होते हैं। इनके शुद्ध आत्मीक भावनाकी मुख्यता है।

अविरति या विन्नेयं, सुद्धं दिट्ठी च सुद्ध भावेन।
मिच्छत्तं अज्ञानं, परिहारो पुन्नपावं च ॥ २७२ ॥

अन्वयार्थ—(अविरति या विन्नेयं) व्रत रहित अविरत सम्यग्दृष्टी जघन्य पात्र जानने योग्य हैं। (सुद्ध भावेन च सुद्धं दिट्ठी) जिनके शुद्धात्माकी भावना सहित शुद्ध सम्यग्दृष्टी होती है। (मिच्छत्तं अज्ञानं पुन्न पावं च परिहारो) उनके मिथ्यात्व व अज्ञान नहीं होता है तथा वे पुण्य व पाप दोनोंके त्यागी होते हैं।

भावार्थ—अविरत सम्यग्दृष्टी सम्यक्तको भले प्रकार पालते हैं, शुद्धात्माका ध्यान करते हैं। उनके भावोंमें संसारका राग नहीं है। वे सर्व ही शुभ व अशुभ कर्मोंसे उदास हैं। उनको इन्द्रादि पदकी चाह नहीं है। वे केवल मोक्षपदकी ही भावना रखते हैं। इसीसे वे पुन्यकर्मके भी अंतरंगसे त्यागी हैं।

पत्तं तिविहि स उत्तं, दानं चत्वारि दिंति भावेन।
विज्ञान ज्ञानसुद्धं, दानं पत्रं मुनेयव्वो ॥ २७३ ॥

अन्वयार्थ—(स तिविहि पत्तं उत्तं) इस तरह तीन प्रकारके पात्र कहे गए हैं (भावेन चत्वारि दानं दिंति) जो भाव पूर्वक इनको चार प्रकार दान देते हैं (विज्ञान ज्ञान सुद्धं) तथा जिनको भेदविज्ञान है व शुद्ध आत्माका ज्ञान है ऐसे दातारोंका (दानं पत्तं मुनेयव्वो) पात्र दान जानना चाहिये।

भावार्थ—जो स्वयं आत्मज्ञानी हैं, सम्यग्दृष्टी हैं वे यदि भक्तिपूर्वक तीन प्रकार पात्रोंको व इनमेंसे किसीको दान करते हैं तो उस दानको पात्र दान जानना योग्य है।

पत्तं च सुद्धभावं, दत्तं सुद्धं सहाव संजुत्तं।
दत्तं पत्तं च समं, दानं सुद्धं मुनेयव्वा ॥ २७४ ॥

अन्वयार्थ—(पत्तं च सुद्धभावं) जहां शुद्ध सम्यक्त भावके धारी पात्र हों (दत्तं सुद्धं सहाव संजुत्तं) व दातार भी शुद्ध स्वभावके ज्ञाता हों (दत्तं पत्तं च समं) जहां दाता व पात्र दोनों समान सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी हों (सुद्धं दानं मुनेयव्वा) उसे ही शुद्ध पात्रदान जानना योग्य है।

भावार्थ—प्रशंसनीय शुद्ध पात्र दान वही है जहां सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी दातार आत्माकी भावना करता हुआ, कोई पुण्यकी आशा न करता हुआ, सम्यग्दृष्टी पात्रोंको दान देता है। जैसे—श्री ऋषभदेव भगवान पात्र व राजा श्रेयांस सरीखे सम्यग्दृष्टी दातार। ऐसा ही शुद्ध दान है।

ज्ञानदान समर्थं, अज्ञान तिक्त सव्वहा सव्वे।
आलाप वचन असुहं तिक्तंति य सुद्ध भावेन ॥ २७५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानदान समर्थं) ज्ञान दान करनेको वही समर्थ है जो (सव्वहा सव्वे अज्ञान तिक्त) सर्व या सर्व अज्ञानका स्वयं त्यागी हो (सुद्ध भावेन य असुहं आलाप वचन तिक्तंति) जो शुद्ध भावोंके साथ रहता हुआ अशुभ बकवादरूपी वचन नहीं बोलता है।

भावार्थ—ज्ञानी ही ज्ञान दान कर सक्ता है। ज्ञानीमें मिथ्याज्ञान व मिथ्या वचन विलास न होना चाहिये। उसके भावोंमें शुद्ध आत्मज्ञान होना चाहिये।

मतिज्ञानी मति दत्तं, सुतज्ञानं च भावना सुद्धं।
दत्तं पत्तविसेसं, दानं अमलबुद्धि सम्पन्नं ॥२७६॥

अन्वयार्थ—(मतिज्ञानी मति दत्तं) विशेष बुद्धिमान सुबुद्धि देता है (सुतज्ञानं च भावना सुद्धं) श्रुतज्ञानी शुद्ध भावनाका दान करता है (पत्त विसेसं दत्तं) योग्य पात्रको दिया हुआ (दानं अमलबुद्धि सम्पन्नं) दान निर्मल ज्ञान दान है।

भावार्थ—ज्ञान दानका वर्णन करते हैं कि जिसकी बुद्धि प्रवीण हो उसे योग्य पात्रको सुबुद्धि दान या मतिज्ञान बताना चाहिये तथा जो शास्त्रज्ञानका अधिकारी हो उसे शास्त्रज्ञान देकर शुद्धात्माकी भावनाका उपाय बताना चाहिये। जैसा पात्र हो उसको वैसा दान करना चाहिये।

ज्ञानं ज्ञान सरूवं, अनुमोयं दत्तं पत्त विसेसं।
अज्ञानी अलहन्तो, न दत्तं ज्ञान दानं अपत्तं ॥ २७७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सरूवं ज्ञानं) ज्ञान स्वभावका प्रकाश जिससे हो वह ज्ञान दान है। (दत्तं पत्त विसेसं अनुमोयं) जिस दानको देते हुए दाता व पात्र विशेष दोनोंको आनन्द हो (अज्ञानी अलहंतो)

मूढ ज्ञानी ज्ञान लेना नहीं चाहता है (अपत्तं ज्ञानदानं न दत्तं) ऐसे अपात्रको ज्ञानदान नहीं देना योग्य है।

भावार्थ—जो शिष्य शिक्षा प्राप्त करना चाहे वही गुरुसे प्रेमपूर्वक शिक्षा लेसक्ता है। जिसको ज्ञान प्राप्तिकी रुचि नहीं है उसको ज्ञान बताना निरर्थक होगा क्योंकि उसको ग्रहण करनेकी रुचि नहीं है। जिसको ज्ञानकी रुचि हो वही ज्ञानदानके योग्य है। अपात्रको ज्ञानदान देना ज्ञानदान नहीं है।

दानं ज्ञान स उत्तं, ज्ञानं पत्तस्य दान संजुत्तं।
दत्तं पत्तं च सुद्धं, अमलं दानं च दत्त पत्तं च ॥ २७८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दानं स उत्तं) वही ज्ञानदान कहा गया है (पत्तस्य ज्ञानं दान संजुत्तं) जहां पात्रको ज्ञानका लाभ होजावे (दत्तं पत्तं सुद्धं) जहां दाता और पात्र दोनों ज्ञानके प्रेमी शुद्ध भावके हों (अमलं दानं च दत्त पत्तं च) वही निर्मल ज्ञान दोनों दातारके द्वारा पात्रको दिया गया।

भावार्थ—शुद्ध ज्ञानदान वही है जहां आत्मज्ञानके प्रेमी पात्रको आत्मज्ञानी दातार द्वारा शुद्ध आत्मज्ञानका लाभ कराया जावे।

अज्ञान मयं अपत्तं, वचनं आलाप रंजनं जाने।
नवि दत्तं नवि पत्तं, दत्तं पत्तं समाधिरहिएन ॥ २७९ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान मयं अपत्तं) जो मिथ्या ज्ञानमें आरूढ है वह अपात्र है (आलाप वचनं रंजनं जाने) वह बकवादमई विकथाओंमें रंजायमान होना जानता है (समाधिरहिएन दत्तं पत्तं नवि दत्तं नवि पत्तं) जो आत्माकी समाधिसे रहित दाता व पात्र हैं वे न दाता हैं न पात्र हैं।

भावार्थ—ज्ञानदान दाता भी सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी आत्मानुभवी होना चाहिये। तथा पात्र भी ऐसा ही आत्मज्ञानी होना चाहिये तब तो वह सुपात्रको किया हुआ ज्ञानदान है। जहां दाता व पात्र दोनों मिथ्यादृष्टी हों व एक सम्यग्दृष्टी हो व एक मिथ्यादृष्टी हो तौभी वह पात्र दान नहीं है। जो मूढ जगके प्रपंचमें फँसे हैं तथा जो स्त्री भोजनादि विकथाओंमें ही प्रसन्न होते हैं वे आत्मज्ञान लेनेके अधिकारी नहीं हैं। अतएव अपात्र हैं।

जे सुद्ध दिट्ठि सुद्धं, जानदि पिच्छेइ सुद्ध सम्मत्तं ।
दत्तं पत्तं तं चिय, अनुमोयं सुग्गए जंति ॥ २८० ॥

अन्वयार्थ—(जे सुद्धं सुद्ध दिट्ठि) जो कोई शुद्ध सम्यग्दृष्टी है (सुद्ध सम्मत्तं जानदि पिच्छेइ) शुद्ध सम्यग्दर्शनको जानते हैं व अनुभव करते हैं (तं चिय दत्तं पत्तं) वेही दाता तथा पात्र हैं (अनुमोए सुगए जंति) जो ऐसे दातार व पात्रकी अनुमोदना करते हैं वे सुगतिमें जाते हैं।

भावार्थ—प्रशंसनीय पात्रदान वही है जहां दाता व पात्र दोनों शुद्ध सम्यक्ती व आत्मज्ञानी हैं। ऐसे दानके करने, कराने व अनुमोदना करनेवाले सुगति ही प्राप्त करते हैं।

भेषज दान स उत्तं, संसारे सरनि व्याधि मुक्तस्य ।
भेषज जिन उवएसं, जिनवयनं पि साधनं तं पि ॥ २८१ ॥

अन्वयार्थ—(स भेषज दान उक्तं) वही औषधिदान कहा गया है। (संसारे सरनि व्याधि मुक्तस्य जिन उवएसं भेषज) जहां संसारमें भ्रमणरूपी रागकी मुक्तिके लिये जिनेन्द्रके उपदेशरूपी औषधिको ग्रहण किया जाय (जिनवयनं पि साधनं तं पि) जिनेन्द्रके वचनोंको धारण भी किया जाय और उनके अनुसार साधन भी किया जाय।

भावार्थ—साधारण रूपमें रोगियोंको औषधिदान देना औषधिदान है। यहां गम्भीर दृष्टिसे विचार करके कहा गया है कि इस संसारी प्राणीको संसारके भ्रमणका भयंकर रोग लगा है। उस रोगकी औषधि जिनवाणीका पढना, सुनना, मनन करना, धारना तथा उसके अनुसार आचरण करना है। जो संसार रोगसे छूटना चाहें उनको स्वयं भी ऐसा करना चाहिये। तथा दूसरे भाई बहिनोंको भी यही औषधि बतानी चाहिये।



छः द्रव्य नव तत्व कथन।

भेषज दान स उत्तं, दव्वं षट् काय पंचत्थं।
नव पयत्थ पयत्थं, तत्तं सप्तं च सुद्ध ज्ञानत्थं ॥ २८२ ॥
एरिस गुनेहि सुद्धं, जानदि रूव भेय विज्ञानं।
सद्दहंति जिन उत्तं भेषज दान पयासेई ॥ २८३ ॥

अन्वयार्थ—(स भेषज दान उत्तं) वही औषधिदान कहा गया है (पयत्थं च सुद्ध ज्ञानत्थं षट् दव्वं पंचत्थं काय नव पयत्थं सप्तं च तत्तं) जहां पदार्थके ज्ञानके लिये व शुद्ध आत्माके ध्यानके लिये छः द्रव्योंको, पांच अस्तिकायोंको, नव पदार्थोंको तथा सात तत्वोंको जाना जाय (एरिस गुनेहि सुद्ध रूप भेयविज्ञानं जानदि) इन गुणोंसे युक्त शुद्ध आत्माके स्वभावको बतानेवाले भेदविज्ञानको जो जानता है (जिन उत्तं सद्दहंति) तथा जिन कथित मार्गपर श्रद्धान रखता है (भेषज दान पयासेई) वही औषधिदानको प्रकाश करने योग्य है।

भावार्थ—अपने अज्ञानरूपी रोगको मिटानेके लिये व राग द्वेष रूपी रोगको दूर करनेके लिये आत्मध्यान रूपी औषधि पीनेके लिये यह जरूरी है कि छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्व व नौ पदार्थोंको जाना जावे व उनपर श्रद्धान लाया जावे तथा भेद विज्ञान द्वारा आत्माको भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मसे भिन्न जानके शुद्धात्मानुभव किया जावे। जो ऐसा है वह अपनेको औषधिदान देता है तथा वही दूसरोंको भी औषधिदान करनेका अधिकारी है। सम्यक्त प्राप्तिके लिये छः द्रव्यादिका ज्ञान श्रद्धान कारण है।

छः द्रव्य—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

जीव—जिसमें चेतना गुण हो वह जीव है। जीव स्वभावसे अमूर्तिक शुद्ध सिद्धके समान है, कर्म संयोगके कारण संसारमें त्रस स्थावर रूपमें पाया जाता है।

पुद्गल—स्पर्श रस गंध वर्ण गुण जिनमें हो वह मूर्तीक पुद्गल द्रव्य है। सबसे छोटा पुद्गल अविभागी परमाणु है, उनसे बने हुए अनेक प्रकारके सूक्ष्म व स्थूल स्कंध होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु भी स्कंध हैं। कार्मणवर्गणा व तैजसवर्गणा जिनसे संसारी जीवोंका कार्मण शरीर तथा तैजस

शरीर बनता है सूक्ष्म स्कंध हैं। आहारक वर्गणाके स्कंधोंसे औदारिक, वैक्रियिक आहारक शरीर बनते हैं। भाषा वर्गणाके स्कंधोंसे भाषा बनती है तथा मनोवर्गणाके स्कंधोंसे द्रव्य मन कमलाकार बनता है।

धर्मास्तिकाय—एक अमूर्तीक लोक-व्यापी द्रव्य है जो जीव तथा पुद्गलके गमनमें उदासीन निमित्त है।

अधर्मास्तिकाय—एक अमूर्तीक लोक-व्यापी द्रव्य है जो जीव तथा पुद्गलके ठहरनेमें सहकारी है।

आकाश—अनन्त है, सर्व द्रव्योंको स्थान देता है। जहांतक और पांच द्रव्य पाए जाते हैं वहांतक लोकाकाश है, शेष अलोकाकाश है।

काल—द्रव्योंकी अवस्था पलटनेमें सहायक है। ये कालाणु लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशों-पर अलग २ रत्नोंके समान फैले हैं इनहीकी सहायतासे पर्यायें पलटती हैं। ये कभी मिलते नहीं, इस कारण इनको काय रहित कहते हैं।

पांच अस्तिकाय—काल द्रव्यको छोडकर शेष पांचको अस्तिकाय कहते हैं। क्योंकि वे एक प्रदेशसे अधिक जगह घेरते हैं। जितने आकाशको अविभागी पुद्गल परमाणु रोके उसको प्रदेश कहते हैं। यद्यपि पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी हैं तौभी उसमें मिलनेकी शक्ति है इससे कायवान हैं। कालाणु नहीं मिलते इससे काय रहित हैं।

सात तत्व—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष।

जीव अजीव तत्वोंमें छहों द्रव्य गर्भित हैं—

आस्रव तत्व—मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय व योगोंसे कर्मवर्गणाएं आती हैं। जिन भावोंसे आती हैं वे भाव आस्रव हैं, उनका आना द्रव्य आस्रव है।

बंध तत्व—आए हुए कर्मोंका आत्माके साथ ठहर जाना बंध है। जिन भावोंसे बंधते हैं वह भावबंध है, उनका बंधना द्रव्यबंध है।

संवर तत्व—कर्मोंके आनेके रुकनेको संवरतत्व कहते हैं। जिन भावोंसे कर्म रुकते हैं वह भाव संवर है। कर्मोंका रुकना सो द्रव्य संवर है।

मोक्षतत्व—सर्व कर्मोंका छूटना मोक्षतत्व है। जिन भावोंसे कर्म छूटते हैं वह भावमोक्ष है। कर्मोंका छूटना द्रव्यमोक्ष है।

नौ पदार्थ—सात तत्वोंमें पुण्य पाप मिलानेसे नौ पदार्थ होते हैं। शुभ कर्मोंको पुण्य, अशुभ कर्मोंको पाप कहते हैं। वे आस्रव व बंधमें गर्भित हैं।

पत्त कुपत्तं जानदि, भेषज उवएस सुद्धमप्पानं।
जे भव्यजीव साहं, ते जर मरन विनासेई ॥ २८४ ॥

अन्वयार्थ—(पत्त कुपत्तं जानदि) जो पात्र कुपात्रको पहचानता है और (भेषज उवएस सुद्धमप्पानं) शुद्ध आत्माका अनुभव करानेके लिये उपदेशरूपी औषधि देता है (जे भव्यजीव साहं) उसका ग्रहण कर जो भव्य जीव साधन करता है (ते जरमरन विनासेई) वह जरा व मरणका नाश कर देता है।

भावार्थ—जो अरुचिवान है वह कुपात्र या अपात्र है। जो ज्ञानका प्यासा रुचिवान है वही पात्र है। जो अज्ञान मेटकर ज्ञानी होना चाहता है, उसको ज्ञानोपदेश रूपी औषधी देनी चाहिये। रुचिवान भव्य उसे ग्रहण करके निज शुद्ध आत्माका अनुभव करेगा जिससे संसारका जन्म मरण रोग मिट जायगा।

आहारदान सुद्धं, ज्ञानं आहार दिंति पत्तस्य।
तिक्तं जीव आहारं, ज्ञान आहार कुनय भय हननं ॥२८५॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं आहारदान पत्तस्य ज्ञानं आहार दिंति) शुद्ध आहारदान यह है कि पात्रको ज्ञानका आहार दिया जावे (जीव आहारं तिक्तं) स्थावर जीवोंके घातसे बना आहार त्याग कराया जावे (ज्ञान आहार कुनय भय हननं) ज्ञानका भोजन खिलाना मिथ्यानयसे प्राप्त अज्ञानको व संसारके भयको दूर करनेवाला है।

भावार्थ—साधारणतया पात्रोंको शुद्ध भोजन देना सो आहारदान है। परन्तु वह केवल शरीरकी रक्षा करनेवाला व क्षुधाकी बाधाको कुछ कालके लिये मेटनेवाला है। परन्तु यदि इस आहारकी तरफसे लक्ष्य हटाकर पात्रको आत्मज्ञानका आहार दिया जावे तो उसको सच्ची तृप्ति हो। उसका संसार भय मिटे व मिथ्या ज्ञान हटे। यही शुद्ध आहारदान है।

आहार दान सुद्धं, पत्तं जो देई भाव सुद्धं च।
सो भव दुक्ख विनासै, पत्तं आहार ज्ञान स सहावं ॥२८६॥

अन्वयार्थ—(जो भाव सुद्धं च पत्तं सुद्धं आहारदान देई) जो कोई शुद्ध भाव करके पात्रोंको शुद्ध आहारदान अर्थात् आत्मज्ञान देता है (सो स सहावं ज्ञान आहार पत्तं भव दुक्ख विनासै) सो स्वाभाविक आत्मज्ञानक आहार पात्रको देकर उसका सांसारिक दुःख नाश कर देता है।

भावार्थ—जिस ज्ञानदानसे पात्रको उस आत्मानुभवका लाभ होजावे, जिससे वह कर्मकी निर्जरा करके संसारके दुःखोंसे छूट जावे, वह ज्ञानदान ही शुद्ध आहारदान है। यह आत्माकी क्षुधाको मेटनेवाला है, उसको परमानन्द प्राप्त करानेवाला है।

अभयं च दान जुत्तं, पत्तं जो देइ भाव सुद्धं च।
सो संचियं विनासै, अभयदानं च भयरहियं ॥ २८७ ॥

अन्वयार्थ—(अभयं च दान जुत्तं जो भाव सुद्धं च पत्तं देइ) इस योग्य अभयदानको जो कोई भावोंकी शुद्धिसे पात्रोंको देता है (सो संचियं विनासै) सो अपने संचित कर्मोंको नाश करता है (अभय दानं च भय रहियं) अभयदान निर्भय करनेवाला है।

भावार्थ—साधारणतया पात्रोंको योग्य आश्रय देना अभयदान है जिससे शरीरको कोई भय न रहे। यहां गंभीर वर्णन है कि अभयदान वह दान है जिससे पात्रको ऐसा निज आत्माका दृढ श्रद्धान होजावे कि उसका सर्व भय मिट जावे। और वह आत्मश्रद्धा पाकर आत्मानुभव कर सके। यही सच्चा अभयदान सर्व शंकाओंको मेटनेवाला है। ऐसा दान जो कोई करता है उसके भावोंमें रत्नत्रयका तीव्र अनुराग होता है, वीतरागता पर झुकाव होता है। उसके परिणामोंमें जितने अंश वीतरागता होती है उतने अंश पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होती है।

अभयं दानं उत्तं, अभयं दानं च भाव संजुत्तं।
चिंतंति अभयदानं, दानं फल मुक्ति गमनं च ॥ २८८ ॥

अन्वयार्थ—(अभयं दानं उत्तं) अभयदान ऐसा कहा गया है (भाव संजुत्तं च अभय दानं) जहां शुद्ध

भाव सहित आत्माको निर्भय किया जाय (अभयदानं चिंतंति) सम्यग्दृष्टी इस शुद्ध अभयदानका विचार करते रहते हैं (दानं फल मुक्ति गमनं च) ऐसे दानका फल मुक्तिमें जाना है।

भावार्थ—अपने आत्माके स्वभावका जहां विचार है तथा अनुभव है वहां आत्माकी रागादि भावोंसे रक्षा है, सच्चा अभयदान है। यह दान मोक्षका कारण है। ज्ञानी जीव जैसे अपने आत्माको ऐसा अभयदान देते हैं वैसे वह दूसरे पात्रोंको भी बताते हैं वे भी आत्मीक निःशंकभाव पाकर मोक्षके पात्र होते हैं।

ए चारि दान उत्तं, जानिवि जो देइ पत्त कुपत्तं।
जो देइ जस्य अर्थं, दानं उवएस जिनवरिं देहि ॥ २८९ ॥

अन्वयार्थ—(ए चारि दान उत्तं) इसतरह ये चार दान कहे गए हैं (जो पत्त कुपत्तं जानिवि देइ) जो पात्र अपात्रका विचार कर देता है (जो देइ जस्य अर्थं) ऐसे दातारका कल्याण होता है (दानं उवएस जिनवरिं देहि) यह दानका उपदेश श्री जिनेन्द्रोंने दिया है।

भावार्थ—श्रावकको उचित है कि वे निरंतर चार प्रकारका दान श्रद्धा व भक्तिपूर्वक पात्रोंको करें तथा करुणाभाव पूर्वक दुःखितोंको करें। दान करना गृहस्थका मुख्य धर्म है। सब दानोंका सार आत्मज्ञानका दान है। जो इस दानको देता है वह महान दातार है ऐसा यहां तात्पर्य है। वही सच्चा औषधि, अभय व आहारदान है। मोक्षमार्गमें किसीको चला देना बडा भारी उपकार है व बडा दान है।

जल गालन।

जल गालन उवएसं, प्रथमं सम्मत्त सुद्ध भावस्स।
चित्तं सुद्ध गलंतं, पच्छिदो जलं च गालम्मि ॥२९०॥

अन्वयार्थ—(जंल गालन उवएसं) श्रावकोंको पानी छानकर पीनेका उपदेश है (प्रथमं सुद्ध भावस्स सम्मत्त) प्रथम यह आवश्यक है कि उनके भावोंमें शुद्ध सम्यग्दर्शन हो (चित्तं सुद्ध गलंतं) व अपने चित्तको दोषोंको हटाकर साफ करें, चित्तको छाने (पच्छिदो जलं च गालम्मि) फिर पानीको छानकर पीवें।

भावार्थ—यहांपर यह भाव है कि कोई अपनेको जैनी मानकर मात्र पानी छानकर पिया करे किन्तु न उसका मिथ्यात्व गया हो, न उसका चित्त शुद्ध हो तो वह जल गालन प्रतिज्ञाका सच्चा पालनेवाला नहीं है। सच्चा जल गालन यह है कि वह बाहरी कुदेवादिका पूजन व आरंभ शरीरादिमें आत्मबुद्धि, इन दोनों प्रकारके मिथ्या श्रद्धानको छोडकर सच्चा श्रद्धावान बने तथा वह अपने मनमेंसे खोटे भावोंको, हिंसक भावोंको, क्रोधादि कषायोंकी तीव्रताको हटाकर मन शुद्ध करें। ऐसा करता हुआ यदि वह छना पानी पीता है तो वह यथार्थ जल गालन व्रत पालता है। पानीको दोहरे छन्नेसे छानना चाहिये। छाननेके पीछे जीवानीको यत्नके साथ जहांसे पानी भरा है वहीं पहुंचाना चाहिये जिससे त्रस जंतु न मरें। ऐसा छाना पानी दो घडी (४८ मिनट) पिया जासक्ता है, पीछे फिर छानने योग्य होजाता है। फिर छानकर जीवानी एकत्र करता रहे, जब पानी फिर भरने जावे तब डोलमें डालकर पहुंचादे। पानीको लवंगादिसे प्राशुक कर लिया जावे, जिससे वर्ण व स्वाद बदल जावे तो वह पानी छः घंटे तक चलता है। यदि गर्म किया जावे तो १२ घंटे तक, यदि उबाल लिया जावे तो २४ चौवीस घंटे तक चलता है। इस मर्यादाके भीतर इस जलको वर्त लेवें फिर छानके काम लायक नहीं।

मनसुद्धं चित गलनं, भावसुद्धं च चेयना भावं।
चेयन सहित सुभावं, जलगालन तंपि जानेहि ॥ २९१ ॥

अन्वयार्थ—(मनसुद्धं चित गलनं) मनको शुद्ध रखना चित्तका छानना है (भावसुद्धं च चेयना भावं) शुद्ध भावमें होकर चेतनाका अनुभव करना (चेयन सहित सुभावं) चेतना सहित स्वभावमें लय होजाना (तंपि जलगालन जानेहि) इसको भी जल गालन जानो।

भावार्थ—यहां निश्चय प्रधान कथन है। इस आत्माका स्वभाव निर्मल जलके समान शुद्ध है। उसमेंसे रागादि मल निकालकर उसको निर्मल करना व उसीके शुद्ध चैतन्यभावमें रमना सच्चा जलगालन है। व्यवहारमें मनके भीतरसे कुभावोंको हटाना मनका छानना है या मनकी शुद्धि है।

रात्रिभोजन त्याग-अनस्तमित व्रत।

अनस्तमित उवएसं, पढमं सम्मत्त चरन संजुत्तं।
जस्य न अस्तं दिट्ठं, तस्य न मिथ्यादि भावमप्पानं ॥ २९२ ॥

अन्वयार्थ—(अनस्तमित उवएसं) रात्रिभोजन त्यागका उपदेश करते हैं (पढमं सम्मत्त चरन संजुत्तं) प्रथम तो श्रावकको सम्यग्दर्शन व अपने योग्य आचरण सहित होना चाहिये (जस्य दिट्ठं न अस्तं) जिसके सम्यग्दर्शनका अस्त न हो (तस्य न मिथ्यादि भावमप्पानं) उसकी ही आत्मामें मिथ्या रागादि भाव न होंगे।

भावार्थ—साधारण रूपमें रात्रिको भोजन न करना यह गृहस्थ श्रावकका अनस्तमित व्रत है। यहां यह भाव है कि यदि कोई जैनी रात्रिको तो न खावे परंतु कुदेवादिकी श्रद्धाका व अंतरंग मिथ्यात्वका त्यागी न हो तथा जिसका व्यवहार आचार ठीक न हो, असत्यवादी हो व मिथ्या व्यवहार, चोरी, विश्वासघात, वेश्या रमणादि करता हो तो उसकी शोभा नहीं है। इससे रात्रि-भोजन त्यागीको मिथ्यात्वका त्यागी होकर सम्यग्दृष्टी होना योग्य है।

अप्पानं अप्पानं, सुद्धप्पा भाव अमल परमप्पा।
एवं जिने हि भनियं, अनस्तमितं तं पि जानेहि ॥ २९३ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पानं अप्पानं) जो आत्माको आत्मा जाने (सुद्धप्पा भाव अमल परमप्पा) कि यह निश्चयसे शुद्ध स्वरूप है, जिसका भाव मल रहित परमात्मामें श्रद्धा, ज्ञान व अनुभव सहित है (तं पि अनस्तमितं जानेहि) उसको भी रात्रि भोजनका त्यागी जानो (एवं जिनेहि भनियं) ऐसा जिनेंद्रोंने कहा है।

भावार्थ—व्यवहारमें जो रात्रिको भोजन नहीं करता है, निश्चयसे जिसकी आत्मामें अन्धकार न हो, जो आत्मज्ञानी आत्मानन्दका स्वाद आत्माकी निर्मल ज्योतिमें लेता हो, वह भी रात्रि भोजनका त्यागी है।

एवं आहार जुत्तं, ज्ञानं आहार नेय संजुत्तं।
अनस्तमितं वेघडियं, निश्चय ववहार संजदो सुद्धो ॥२९४॥

अन्वयार्थ—(एवं आहार जुत्तं) इस प्रकार जो योग्य आहार लेवे कि (वेषडियं अनस्तमितं) व्यवहारमें दो घडी या ४८ मिनट दिन रहते भोजन करले व (ज्ञानं आहार नेय संजुत्तं) निश्चयसे अनेक प्रकार सम्यग्ज्ञानका आहार लेता हो सो (निश्चय ववहार संजदो सुद्धो) निश्चय व्यवहार दोनों रूपसे रात्रि भोजनका त्यागी शुद्ध संयमी है।

भावार्थ—गृहस्थको दो घडी दिन रहनेपर व दो घडी दिन निकल आनेपर भोजनपान करना यह यथार्थ रात्रि भोजन त्याग व्रत है। व्यवहार व्रतको पालते हुए उसे निश्चय व्रत भी पालना चाहिये। उसे मिथ्याज्ञानको हटानेके लिये जिनवाणी द्वारा सम्यग्ज्ञानका मनन करना चाहिये तथा आत्माका मनन व अनुभव करना चाहिये, रागादि भाव त्यागना चाहिये, यह निश्चय रात्रिभोजन त्याग व्रत है।

अठ दह किरियानं, अविरइ सम्मा इट्ठि संकलियं।
उवएसं उज्झायं, अविरइ पालंति सुद्ध भावेन ॥ २९५ ॥

अन्वयार्थ—(अठ दह किरियानं) ऊपर लिखित अठारह क्रियाओंसे (अविरइ सम्मा इट्ठि संकलियं) अविरत सम्यग्दृष्टी संयुक्त होता है (उज्झायं उवएसं) ऐसा उपाध्याय परमेष्टीका उपदेश है (अविरइ सुद्ध भावेन पालंति) अविरत सम्यग्दृष्टी शुद्ध भावोंसे अठारह नियमोंको पालता है।

भावार्थ—श्रावककी त्रेपन क्रियाएं प्रसिद्ध हैं उनमें अठारह क्रियाओंका अभ्यास चौथे गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टीको करना योग्य है।

श्रावककी त्रेपन क्रियाएँ इस भांति कही गई हैं—

गुनवयतवसमपडिमा, दाणं जलगालणं च अणत्थमियं। दंसणणाणचरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥

भावार्थ—आठ ८ मूलगुण + बारह १२ व्रत + बारह १२ तप + १ समताभाव + ग्यारह ११ प्रतिमाएँ + चार ४ दान + १ जल गालन + १ रात्रिभोजन त्याग + ३ तीन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र = ५३। इनमेंसे नीचे लिखी अठारह क्रियाओंको अविरति सम्यग्दृष्टी पालता है, जिनका वर्णन मुख्य २ ऊपर किया जाचुका है।

आठ मूलगुण ८ + तीन रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र ३ + चार दान ४ + जल गालन + रात्रिभोजन त्याग + समताभावके लिये जिन आगम पाठ = १८।

उपाध्याय उपदेश कथन ।

उज्झायं उयएसं, जिन उत्तं पि जिनवरिंदेहि ।
जे साहंति जिनुत्तं, अचिरेन निव्वुए जंति ॥ २९६ ॥

अन्वयार्थ—(उज्झायं उवएसं) उपाध्याय परमेष्ठी वही उपदेश करते हैं (जिनवरिंदेहि जिन उत्तं पि) जो तीर्थंकरोंका कहा हुआ है व गणधरों द्वारा व्याख्यान किया गया है (जे जिनुत्तं साहंति) जो श्री जिनेन्द्रके कथनके अनुसार साधन करते हैं (अचिरेन निव्वुए जंति) वे शीघ्र निर्वाण पाते हैं ।

भावार्थ—श्री ऋषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थंकरोंने जो तत्वोपदेश किया है वैसा ही गणधरों द्वारा व्याख्यान किया गया है। वैसा ही परम्परासे आचार्योंके द्वारा चला आरहा है। वैसा ही उपदेश श्री उपाध्याय परमेष्ठी करते हैं। जो शुद्ध सरलभावसे उस कथनपर श्रद्धा लाकर आचरण करने लग जाता है वह अवश्य निर्वाणको पाता है।

उज्झायं उवएसं, ज्ञान सहावेन जिनवर मयेन ।
जिन उक्तं सुत जुत्तं, उज्झायं उवएसनं तंपि ॥ २९७ ॥

अन्वयार्थ—(उज्झायं उवएसं) उपाध्याय परमेष्ठी ऐसा उपदेश करते हैं (ज्ञान सहावेन जिनवर मयेन) जैसा ज्ञान स्वभावके द्वारा जिनन्द्रोंनें-तीर्थंकरोंने व अन्य तत्वदर्श अरहंतोंने जाना है (जिन उक्तं सुत जुत्तं) जो जिनेन्द्रका उपदेश है वही शास्त्रोंमें आचार्योंने लिखा है (तंपि उज्झायं उवएसनं) उसीका ही उपाध्याय उपदेश करते हैं।

भावार्थ—उपाध्यायका उपदेश परम्परा अरहंतोंके कथनके अनुसार ही होता है।

उज्झय पयडि जुत्तं, आचारं पयडि भाव संजुत्तं ।
मतिज्ञान सुद्ध सुद्धं, सुतज्ञानं च चिंतनं तं पि ॥ २९८ ॥

अन्वयार्थ—(उज्झाय पयडि जुत्तं) उपाध्याय परमेष्ठी प्रतिमा या श्रेणी संयुक्त होते हैं (पयडि भाव संजुत्तं आचरनं) व श्रेणीके भावके अनुसार आचरण पालते हैं (मतिज्ञान सुद्ध) उनका मतिज्ञान शुद्ध

होता है (सुद्धं सुत ज्ञानं च तं पि चिंतनं) तथा उनका श्रुतज्ञान भी शुद्ध होता है, उसीका ही वे चिन्तवन करते हैं।

भावार्थ—उपाध्याय पदधारी प्रमत्त तथा अप्रमत्त छठे सातवें गुणस्थानवर्ती साधु होते हैं। वे उन गुणस्थानोंके अनुसार द्रव्य व भाव चारित्रका पालन करते हैं। उनके मतिज्ञान व श्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध होता है। वे आगमका विशेष विचार किया करते हैं।

मइ सुइ ज्ञान उवन्नं, ज्ञान सहावेन भावना जुत्तं।
जं चिय ज्ञान सहावं, तं चिय सुद्धं पि भावना हुंति ॥ २९९ ॥

अन्वयार्थ—(मइ सुइ ज्ञान उवन्नं) उपाध्यायको विशेष मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान होता है (ज्ञान सहावेन भावना जुत्तं) वे अपने आगम ज्ञानके स्वभावसे तत्वकी भावना करते रहते हैं। (जं चिय ज्ञान सहावं तं चिय सुद्धं पि भावना हुंति) जितना अधिक उनका ज्ञान स्वभाव प्रगट होता है उतनी ही शुद्ध उनकी आत्मज्ञानकी भावना होती है।

भावार्थ—उपाध्याय परमेष्ठीके दो ज्ञान तो नियमसे होते ही हैं। मतिज्ञान व श्रुतज्ञान--उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण होती है व वे बहुत शास्त्रोंके ज्ञाता होते हैं। वे निरन्तर आगमका मनन करते रहते हैं। अधिक ज्ञान होनेसे उनकी आत्म-भावना भी बहुत शुद्ध होती है।

सुत ज्ञानं उवएसं, अनुमात्र विरति भावेन।
सुद्ध सहाव संजुत्तं, अनुव्रतं विरति संग्रहनं ॥ ३०० ॥

अन्वयार्थ—(सुत ज्ञानं उवएसं) श्रुतज्ञानमें ऐसा उपदेश है (सुद्ध सहाव संजुत्त अनुमात्र विरति भावेन) कि जो शुद्ध भावको धारता है उसको अणु रूपसे व्रतोंका भाव भी रखना योग्य है (अनुव्रतं विरति संग्रहनं) इसलिये अणुव्रती श्रावक पंचम गुणस्थानवर्ती व्रतोंको धारण करता है।

भावार्थ—शास्त्र बताता है कि सम्यग्दृष्टीको शुद्ध आत्मीक भावनामें ही संतोष मानकर न बैठ रहना चाहिये किन्तु वीतरागताकी वृद्धिके लिये अणुव्रतरूप श्रावकोंके व्रतोंको धारण करना चाहिये जिससे परिणाम अधिक विरक्त हों। अधिक विरक्ततासे आत्मानुभव अधिक निर्मल होता है।

ग्यारह प्रतिमा।

दंसन वय सामाई, पोसह सचित्त राय भत्तीए।
बंभारंभ परिग्रह अनुमन उदिस्ट देस विरदोय ॥ ३०१ ॥

अन्वयार्थ—(देस विरदोय) देशविरत पांचमें गुणस्थानवर्ती श्रावककी ग्यारह श्रेणियां या प्रतिमाएं या प्रतिज्ञाएं होती हैं (दंसन वय सामाई) १ दर्शन प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा, (पोसह सचित्त राय भत्तीए) ४ प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५ सचित्त त्याग प्रतिमा, ६ रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा, (बंभारंभ परिग्रह) ७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८ आरंभ त्याग प्रतिमा, ९ परिग्रह त्याग प्रतिमा, (अनुमन उद्दिस्ट) १० अनुमति त्याग प्रतिमा, ११ उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।

भावार्थ—इन प्रतिमाओंमें चारित्र बढता जाता है। पहली प्रतिमाका दूसरीमें छूटता नहीं है। पहली प्रतिमाओंका चारित्र पालते हुए आगेकी प्रतिमाओंका चारित्र पालन किया जाता है। ऐसा ही रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है—

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु। स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ १३६ ॥

भावार्थ—गणधरादि देवोंने श्रावकके जो पद बताए हैं इनमें हरएक प्रतिमाका चारित्र पूर्व चारित्रके साथ क्रमसे बढता हुआ रहता है। ये श्रेणियां धीरे२ सुगमतासे चारित्र बढानेकी व कषाय घटानेकी बडी ही उपयोगी रीतियां हैं। इनको क्रमसे उत्तीर्ण करता हुआ मुनिपदको सुगमतासे पाल सक्ता है।

पडिमा एकं दसयं, पडिमा संसार दुक्ख षय करनं।
पडिमा सुद्धप्पानं, दंसन दंसेइ सुद्धमप्पानं ॥ ३०२ ॥

अन्वयार्थ—(पडिमा एकं दसयं) ग्यारह प्रतिमाएं हैं (पडिमा संसार दुक्ख षय करनं) ये प्रतिमाएं संसारके दुःखोंका क्षय करनेवाली हैं। (पडिमा सुद्धप्पानं) ये प्रतिमाएं शुद्धात्माको झलकानेवाली हैं। (दंसन दंसेइ सुद्धमप्पानं) प्रतिमा पालते हुए जो सम्यग्दर्शन होता है वह शुद्धात्माका अनुभव करता है।

भावार्थ—केवल बाहरी चारित्र बढानेका नाम प्रतिमाएं नहीं होता है किंतु जैसे २ बाहरी

चारित्र बढे वैसे २ ध्यान, सामायिक, आत्ममनन, आत्मानुभवकी वृद्धि करनेकी जरूरत है। इसी अभ्यासमें कर्मका क्षय होकर संसार दुःख कम होंगे तथा शुद्धात्माका लाभ होगा। बाहरी चारित्र व्यवहारसे चारित्र कहा जाता है, निश्चयसे तो आत्मरमणरूप ही चारित्र है।

पडिमा नाम स उत्तं, ती अर्थ सुद्ध परम तत्तं च।
ममात्मा सुक्रिय सुभावं, अप्पा परमप्प सुद्ध सं पडिमा ॥३०३॥

अन्वयार्थ—(पडिमा नाम स उत्तं) प्रतिमा उसे कहा गया है जहां (ती अर्थ सुद्ध परम तत्तं च) रत्नत्रय धर्मको तथा शुद्ध उत्कृष्ट आत्मतत्वको मनन किया जावे (ममात्मा सुक्रिय सुभावं सुद्ध अप्पा परमप्प सं पडिमा) यह अनुभव किया जावे कि मेरे आत्माका अपना ही स्वभाव शुद्ध स्वरूपी परमात्मा है। ऐसा स्वरूपाचरण चारित्र हो तब प्रतिमा कही जाती है।

भावार्थ—प्रतिमाके नियमोंके पालनेका हेतु एक निमित्त साधक है। वास्तवमें प्रतिमा उसीके कहलाएगी जो निश्चय रत्नत्रयके स्वरूपको परमात्माके समान निश्चयमें लाकर शुद्धात्माका अनुभव करता है। बिना अन्तरंगमें वीतरागताकी वृद्धि हुए प्रतिमारोहण नाम नहीं पाता है।

पडिमा नाम स उत्तं, दण्ड कपाटेन तिअर्थ संजुतं।
बिंदु स्थान सवेदं, अप्पा परमप्प सुद्ध सं पडिमा ॥ ३०४ ॥

अन्वयार्थ—(पडिमा नाम स उत्तं) प्रतिमा नाम उसीको कहा गया है जो जाने कि (तिअर्थ संजुत्तं दण्ड कपाटेन) रत्नत्रयके स्वामी अरहन्तको दण्ड-कपाट करना पडता है (बिंदु स्थान सवेदं) जो ॐके बिंदु स्थानसे लक्षित सिद्ध परमात्माका अनुभव करता है (अप्पा परमप्प सुद्ध सं पडिमा) जहां आत्मा परमात्मारूप अनुभव किया जावे वही शुद्ध प्रतिमा है।

भावार्थ—प्रतिमाको पालनेवाला वही है जो अरहंत व सिद्धके स्वरूपको पहचानता हो, उनकी स्तुति करता है। अरहंतके किसी किसीके केवलि समुद्घात होता है। जब आयुकर्म कम व शेष कर्मकी स्थिति अधिक रहती है तब आत्मा फैलता है। पहले दंडरूप लम्बा जाता है, दूसरे समयमें किवाडेरूप होजाता है, तीसरे समयमें प्रतररूप होजाता है, चौथे समयमें लोकपूर्ण होजाता है।

चार समयमें फैलता है व चार समयमें ही सकुडकर शरीराकार होजाता है। अरहंत शरीर सहित परमात्मा हैं, सिद्ध शरीर रहित परमात्मा हैं।

पहली दर्शन प्रतिमा।

पडिमा नाम विसेसं, दंसन पडिमा च दंसेए सुद्धं।
दंसेइ मोक्ख मग्गं, दंसन पडिमा इमो भनियं ॥३०५॥

अन्वयार्थ—(पडिमा नाम विसेसं दंसन पडिमा च सुद्धं दंसेई) प्रतिमाओंके भेदोंमें पहली दर्शन प्रतिमा है जो शुद्ध आत्मापर दृढ विश्वास रखनेवाली है (मोक्खमग्गं दंसेइ) जिसका पक्का विश्वास मोक्षमार्ग-पर है (दंसन पडिमा इमो भनियं) उसीको दर्शन प्रतिमा कहते हैं।

भावार्थ—जहां पचीस दोषोंको टालकर सम्यग्दर्शनको शुद्ध पाला जावे व मोक्षमार्ग रत्नत्रय धर्म ही है, वह आत्माकी एक शुद्ध परिणति है ऐसा पक्का श्रद्धान हो और आत्माके मननका व चिंतवनका अभ्यास हो वहीं दर्शन प्रतिमा है।

दंसन सहाव सुद्धं, पिच्छे जानेइ सुद्ध सम्मत्तं।
दंसेइ ज्ञानरूवं, लोयालोयं च दंसए पडिमा ॥ ३०६ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध दंसन सहाव सुद्ध सम्मत्तं पिच्छे जानेइ) शुद्ध दर्शन प्रतिमाका यह स्वभाव है कि वह शुद्ध सम्यग्दर्शनको जानै और श्रद्धै तथा आचरण करै (ज्ञानरूवं दंसेइ) आत्माको ज्ञानस्वरूपी श्रद्धै (लोयालोयं च दंसए पडिमा) तथा इस प्रतिमावाला लोक अलोकका स्वरूप शास्त्रद्वारा जानै कि यह छः द्रव्यमई है।

भावार्थ—दर्शन प्रतिमाको जिनवाणीपर दृढ श्रद्धान होता है। वह छः द्रव्योंका ठीक २ स्वरूप जानता है कि यह लोक उन्हींका समुदाय है वे नित्य अनित्य स्वरूप हैं तथा इनके भीतर शुद्ध आत्माके स्वरूपको ज्ञानानन्दमई पहचानता व अनुभव करता है।

दंसन पडिमा दंसइ, केवल दंसेइ ज्ञान संजुत्तं।
लोयालोय पयासं, अवलोयं दंसनं पडिमा ॥ ३०७ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन पडिमा दंसइ) दर्शन प्रतिमा पक्का श्रद्धान रखती है (केवल ज्ञान संयुक्तं लोयालोय पयासं अवलोयं दंसेइ) यह शुद्ध निरावरण ज्ञान संयुक्त आत्माको लोक अलोकका प्रकाशक है ऐसा श्रद्धान रखती है। (दंसनं पडिमा) सो ही दर्शन प्रतिमा है।

भावार्थ—दर्शन प्रतिमामें अपने आत्माके शुद्ध ज्ञानमई स्वभावका पक्का श्रद्धान होता है।

दंसन अनंत ज्ञानं, अनंत वीरिय अनंत सुखाई।
दंसेइ तिहु वनग्गं, दंसन पडिमा इमो भनियं ॥ ३०८ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन अनंत ज्ञानं अनंत वीरिय अनंत सुखाई तिहु वनग्गं दंसेइ) अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य व अनंत सुखमई सिद्धात्माको तीनलोकके अग्रभागमें विराजे हैं ऐसा श्रद्धान करे (इमो दंसन पडिमा भनियं) उसे दर्शन प्रतिमा कहा गया है।

भावार्थ—परमात्मा अरहंत व सिद्धको जो यथार्थ पहचानता है व अपने आत्माको निश्चयसे परमात्माके समान जानता है ऐसा श्रद्धालु दर्शन प्रतिमावाला है।

दर्शन प्रतिमामें चारित्र यह होना चाहिये कि वह पांच परमेष्ठीकी भक्ति करे, स्तुति करे, शास्त्र पढे, सामायिक करे तथा सम्यक्तके पचीस दोषोंको बचावे, सम्यक्तका निर्मल आचरण करे, आठ मूलगुण पाले तथा सात व्यसनोंसे वचे; जूआ, मांस, मद्य, शिकार, चोरी, वेश्या व परस्त्री गमन अथवा मांस, मद्य, मधु त्याग और पांच अहिंसादि अणुव्रतोंको स्थूलपने पाले। यह चारित्रके मार्गपर आरूढ है। तब ही इसको देशविरत गुणस्थानमें प्रथम प्रतिमा कहा गया है।

श्री रत्नकरंड श्रावकाचारमें कहा है—

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः। पंचगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्वपथ गृह्यः ॥ १३७ ॥

दर्शन प्रतिमाधारी वह है जिसका सम्यग्दर्शन निर्दोष हो, जो संसार, शरीर व भोगोंसे वैरागी हो, जो पांच परमेष्ठीके चरणकमलका भ्रमर हो तथा मोक्षतत्वके मार्गपर चल रहा हो, जो व्रत प्रतिमामें पांच अणुव्रतोंको निरतिचार पालता हो। उनके निरतिचार पालनका यथाशक्ति अभ्यास दर्शन प्रतिमावाला करता है।

व्रत प्रतिमा ।

वय पडिमा उवएसं, व्रतं जानेहि अप्प सद्भावं ।
अप्पा अप्पेसु रओ, वय पडिमा संजदो सुद्धो ॥ ३०९ ॥

अन्वयार्थ—(वय पडिमा उवएसं) अब व्रत प्रतिमाका उपदेश करते हैं (अप्प सद्भावं व्रतं जानेहि) जो आत्माके भावोंमें व्रतोंको जानता है (अप्पा अप्पेसु रओ) जिसका आत्मा आत्मामें लवलीन है (सुद्धो संजदो वय पडिमा) शुद्ध संयमको पालनेवाला व्रत प्रतिमा धारी है ।

भावार्थ—व्रत प्रतिमावाला बारह व्रतोंको आत्मीक भावोंकी शुद्धि पूर्वक पालता है । परिणामोंको कषाय रहित व इच्छा रहित करनेके लिये बारह व्रत निमित्त कारण हैं ऐसा विश्वास रखता है । केवल बाहरी व्रतोंको भावोंकी शुद्धि विना व्रत नहीं जानता है । वह आत्मानुभवका अभ्यासी होता है । मन इंद्रियको रोकनेवाला व छः कायोंके जीवोंकी यथाशक्ति हिंसा बचानेवाला संयमी ही व्रती होता है ।

वयं च व्रत संजुत्तं, भाव विसुद्ध मुक्त वावारे ।
अप्प सरूवेसु रदो, अप्पानं ज्ञान सुरदोय ॥ ३१० ॥

अन्वयार्थ—(वयं व्रत संजुत्तं) व्रत प्रतिमावाला व्रत सहित होता है (भाव विसुद्ध मुक्त वावारे) निर्मल भावोंसे अयोग्य व्यापारको नहीं करता है (अप्प सरूवेसु रदो) वह आत्माके स्वरूपमें लीन होता है (अप्पानं ज्ञान सुरदोय) तथा आत्माका ध्यान भलेप्रकार प्रेमसे करता है ।

भावार्थ—व्रत प्रतिमावाला बारह व्रतोंको पालता है । वह हिंसाकारी व्यापारोंसे अलग रहता है, मुख्यतासे आत्माका ध्यान करता है ।

परपंचं नहु दिट्ठदि, पर पुग्गलं च भाव तिक्कंति ।
अज्ञान मिच्छ भावं तिक्कं सयल दोस सद्भावं ॥ ३११ ॥

अन्वयार्थ—(परपंचं नहु दिट्ठदि) जिस व्रतीके व्यवहारमें प्रपंच, मायाचार व ठगाई नहीं दिखलाई

पडती है (पर पुग्गलं च भाव तिक्तंति) पुद्गल या शरीरके मोह सम्बन्धी सर्व भावोंको शरीरको पर जानकर त्याग दिया है (अज्ञान मिच्छ भावं सयल दोष सद्भावं तिक्तं) जिसने मिथ्या ज्ञान व मिथ्या भावोंको त्यागा है और सर्व दोषोंके अस्तित्वसे चित्तको हटा लिया है।

भावार्थ—व्रतीका आचरण सत्य व अहिंसापर अवलम्बित होता हुआ मायाचारसे रहित होता है। उसको शरीरके साथ झूठा मोह नहीं होता है। वह धनादि परिग्रहके लिये अत्याचार नहीं करता है। परिणामोंमें करुणाभाव व मृदुताका संचार रहता है।

अप्पानं व्रत पिच्छदि, अप्पा परमप्प सुद्ध भावेन।
ज्ञानमई स सरूवं, अत्थि ध्रुवं चेयना पडिमा ॥ ३१२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्प सुद्ध भावेन अप्पानं व्रत पिच्छदि) व्रती आत्माको परमात्माके समान शुद्ध भावोंसे जानकर आत्मीक व्रतपर दृष्टि रखता है। उसके भावोंमें (ज्ञानमई स सरूवं चेया पडिमा ध्रुवं अत्थि) ज्ञानमई आत्मीक स्वभावरूप चेतनाकी प्रतिमा ध्रुवरूपसे रहती है।

भावार्थ—व्रती दृढतासे आत्माको परमात्माके समान जानके तैसा ही अनुभव करता है। उसके भावोंमें यह भाव दृढतासे ध्रुव रूपसे अंकित होगया है कि मेरा शुद्ध चैतन्य भाव है। इसी भावमें यह बडे ऐक्य भावके साथ ध्यानमें तल्लीन होता है। मानो चेतनाका स्वरूप उसके अंदर यथार्थ रूपसे छाजाता है। श्री रत्नकरंड श्रावकाचारमें व्रत प्रतिमाका स्वरूप कहा है—

निरतिक्रमणमणुव्रतपंचकमपि शीलसप्तकं चापि। धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥ १३८ ॥

भावार्थ—जो माया, मिथ्या, निदान इन शल्योंसे रहित होकर पांच अणुव्रतोंको अतीचार रहित पालता है तथा सात शीलोंको भी पालता है वह व्रत पतिमाधारी कहा गया है।

बारह व्रत कथन—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इन पिछले सातको सात शील कहते हैं।

पांच अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग; मुनि इन पांच व्रतोंको पूर्ण रूपसे पालते हैं। श्रावक व्रती एक देश शक्तिके अनुसार पालता है क्योंकि वह अभी गृहस्थ है, आरंभ व परिग्रहका त्यागी नहीं है। श्री तत्त्वार्थसूत्रके अनुसार कुछ कथन लिखा जाता है—

मुनियोंका धर्म है कि इन व्रतोंके पालनेके लिये हरएक व्रतकी पांच पांच भावनाएं भावें। श्रावकोंको भी उनपर यथाशक्ति ध्यान देना चाहिये।

अहिंसा व्रतकी ५ भावनाएं—

" वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच। "

१ वचनगुप्ति—वचनोंकी सम्हाल कि कहीं हिंसात्मक वचन न निकले।

२ मनगुप्ति—मनमें हिंसात्मक भावोंको न लानेकी सम्हाल।

३ ईर्या समिति—४ हाथ आगे जमीन देखकर चलनेका व्यवहार।

४ आदान निक्षेपण समिति—किसी वस्तुको उठाना या धरना तो देखकर उठाना व धरना।

५ आलोकित पान भोजन—देखकर भोजन पान करना।

सत्यव्रतकी पांच भावनाएं—

" क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच। "

१ क्रोधका त्याग—क्रोधको वश रक्खे विना असत्य वचन नहीं बच सक्ता।

२ लोभका त्याग—लोभके वशीभूत हो असत्य वचन बोला जाता है।

३ भयका त्याग—भयके कारण भी असत्य कथन होजाता है।

४ हास्यका त्याग—हंसी मसखरीमें भी झूठ कहा जाता है।

५ अनुवीचि भाषण—शास्त्रोंके अनुकूल वचन बोलनेकी सम्हाल।

अचौर्यव्रतकी पांच भावनाएं—

" शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच। "

१ शून्यागार—किसीका माल न हो ऐसे स्थानपर ठहरना।

२ विमोचितावास—ऊजड छोडे हुए मकानमें ठहरना।

३ परोपरोधाकरण—जहां कोई मना करे वहां न ठहरना अथवा आप जहां हो दूसरेको आनेसे नहीं रोकना।

४ भैक्ष्यशुद्धि—भोजन शुद्ध अंतराय टालकर लेना।

५—सधर्माविसंवाद—साधर्मियोंसे झगडा न करना, इससे धर्मका लोप होता है।

ब्रह्मचर्यकी पांच भावनाएं—

" स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच। "

१ स्त्री राग कथा श्रवण त्याग—स्त्रियोंमें राग बढानेवाली कथा सुनना कहना त्याग।

२ तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग—उनके मनोहर अंग देखनेका त्याग।

३ पूर्वरतानुस्मरण त्याग—पूर्व किये हुए भोगोंके स्मरणका त्याग।

४ वृष्येष्ट रस त्याग—पौष्टिक कामोद्दीपक रस खानेका त्याग।

५ स्व शरीर संस्कार त्याग—अपने शरीरके श्रृंगार करनेका त्याग।

परिग्रह त्याग व्रतकी पांच भावनाएं—

" मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच। "

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व श्रोत्र पांचों इंद्रियोंके अच्छे बुरे पदार्थोंके मिलनेपर राग द्वेष न करके समताभाव रखना।

पांच अणुव्रतका स्वरूप—

संकल्पी हिंसाका त्याग—आरंभी हिंसाका त्याग नहीं, यथाशक्ति कम करना। जो हिंसा पशुबलि, शिकार, मांसाहार आदिके लिये होती है वह संकल्पी है। आरंभी हिंसा तीन प्रकार है। उद्यमी-जो असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या इन छः प्रकारके आजीविकाके साधनोंमें करनी पडती है। गृहारंभी-जो रोटी पानी, मकान, बाग, कूपादिके लिये करनी पडती है। विरोधी-जो दुष्टोंके व शत्रुओंके आक्रमण पर रक्षार्थ करनी पडती है। इसतरहका व्यवहार रखना कि संकल्पीसे बचे व आरंभीका यत्न रक्खे, वृथा न करे, अहिंसा अणुव्रत है। राज्यदंडादिके योग्य असत्य न कहना सत्य अणुव्रत है। गिरी पडी भूली विसरी किसीकी वस्तु न लेना अचौर्य अणुव्रत है। विवाहिता स्त्रीमें संतोष रखकर परस्त्रीका त्याग ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। घर, जमीन, रुपया, पैसा, गाय, भैंसादि परिग्रहका इच्छानुसार जीवन पर्यंत प्रमाण कर लेना परिग्रहप्रमाण व्रत है।

तीन गुणव्रत—१ दिग्व्रत-जन्मभरके लिये दश दिशाओंमें जानेका प्रमाण लौकिक कार्योंके

लिये। २ देशव्रत-इसीमें घटाकर नित्य प्रमाण करना। ३ अनर्थ दंड त्याग व्रत-पांच प्रकारके व्यर्थ पाप न करना। पापोपदेश-पाप करनेका उपदेश देना, हिंसादान-हिंसाकारी शस्त्रादि मांगे देना, दुश्रुति-खोटी कथाएं कहना सुनना, अपध्यान-दूसरोंका बुरा विचारना, प्रमादचर्या-प्रमादसे अधिक पानी फेंकना वृक्ष तोडना आदि।

चार शिक्षाव्रत—१ सामायिक-प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल तीन, दो व एक काल एकांतमें बैठकर शांतिसे ध्यान करना, २-प्रोषधोपवास—अष्टमी चौदसको उपवास या एकासन करना, ३-भोगोपभोग परिमाण—भोग उपभोगकी वस्तुओंका नित्य प्रमाण करना, ४-अतिथि संविभाग-पात्रोंको दान देकर आहार करना।

श्रावक व्रती यह भी भावना भाता है कि मेरा मरण समाधि सहित शांतिसे हो। यह उसका सल्लेखना व्रत है।

व्रत प्रतिमाधारी पांच अणुव्रतोंके अतीचारोंको नियमसे बचाता है। शेषके अतीचारोंके बचानेका यथाशक्ति उद्यम करता है। आगेकी प्रतिमाओंमें बचानेका नियम है।

अहिंसा अणुव्रतके पांच अतीचार—

"बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।"

१-बन्ध—कषायमें किसी मानव या पशुको बंधनमें डाल देना, पिंजरेमें रोक रखना।

२-वध—कषाय सहित लाठी चाबुकादिसे मारना।

३-छेद—अंग उपंग कषायसे छेद डालना।

४-अति भारारोपण—कषायसे अधिक बोझा लाद देना।

५-अन्नपान निरोध—कषायसे अन्नपान रोकना, कम देना।

सत्य अणुव्रतके पांच अतीचार—

"मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः।"

१-मिथ्योपदेश—झूठ कहनेका उपदेश देना।

२-रहोभ्याख्यान—स्त्री पुरुषकी एकांत चेष्टाका वर्णन करना।

३-कूट लेख क्रिया—झूठा लेख लिखना व झूठी गवाही देना।

५—सधर्माविसंवाद—साधर्मियोंसे झगडा न करना, इससे धर्मका लोप होता है।

[illegible]

[illegible] [illegible] जानकर कह देना।

[illegible]

" [illegible] "

[illegible]

[illegible]

[illegible]—[illegible] राज्य [illegible] मर्यादाको टाल कर लेन देन करना।

[illegible]—[illegible] नाप कर देना लेना।

[illegible]—[illegible] चलाना व खरीमें खोटी मिलाकर खरी कहकर बेचना।

[illegible]

" [illegible]मिनिवेशाः।"

[illegible] पुत्र पुत्रीके सिवाय दूसरोंकी सगाई मिलाना।

[illegible]—[illegible] विवाही स्त्रीके पास जाना आना।

[illegible]—[illegible] अविवाहित वेश्यादिके पास जाना आना।

[illegible] अन्य अंगोंसे कामक्रीडा करना।

[illegible] तीव्र लालसा रखनी।

[illegible]

" [illegible]कुप्यप्रमाणातिक्रमाः।"

[illegible] । प्रत्येक जोडेमें एकको बढाकर दूसरेको घटाना।

[illegible], २ हिरण्य सुवर्ण—चांदी सोना, ३ धनधान्य—गाय भैंस व [illegible], ५ कुप्यभांड—कपडे बर्तन।

[illegible]

२-अधो व्यतिक्रम—नीचेकी मर्यादाको उल्लंघ जाना।
३-तिर्यग्व्यतिक्रम—आठ दिशाओंकी मर्यादाको उल्लंघ जाना।
४-क्षेत्रवृद्धि—एक तरफ कम करके दूसरी तरफ मर्यादा बढा लेना।
५-स्मृत्यन्तराधान—मर्यादाको भूल जाना।

देशव्रतके अतिचार—

"आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दपानुरूपातपुद्गलक्षेपाः।"

१-आनयन—मर्यादासे बाहरसे मंगाना।
२-प्रेष्य प्रयोग—मर्यादाके बाहर भेजना।
३-शब्दानुपात—मर्यादाके बाहरसे बात कर लेना।
४-रूपानुपात—मर्यादाके बाहर रूप दिखाकर काम बता देना।
५-पुद्गलक्षेप—पुद्गल-पत्र कङ्कर फेंककर मतलब बता देना।

अनर्थदण्ड व्रतके अतीचार—

"कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि।"

१-कंदर्प—भांड वचन, असभ्य वचन बकना।
२-कौत्कुच्य—भांड वचनोंके साथ कायकी कुचेष्टा भी करनी।
३-मौखर्य—बहुत बकवाद करना।
४-असमीक्ष्याधिकरण—विना विचारे काम करना।
५-उपभोग परिभोगानर्थक्य—भोग उपभोगकी वस्तुओंको वृथा अधिक संग्रह करना।

सामायिकके अतीचार—

"योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि।"

१-योगदुःप्रणिधान—मन, वचन व कायका दुष्ट प्रवर्तन।
२-अनादर—आदर व प्रेमसे सामायिक न करना।
३-स्मृत्यनुपस्थान—सामायिक क्रिया व पाठ जपको भूल जाना।

प्रोषधोपवासके अतीचार—

"अप्रवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ।"

१-अप्रवेक्षित अप्रमार्जित उत्सर्ग—विना देखे विना झाडे मलमूत्र व वस्तु रखना।

२ ,, ,, आदान—विना देखे विना झाडे वस्तु उठाना।

३ ,, ,, संस्तरोपक्रमण—विना देखे विना झाडे चटाई बिछाना।

४-अनादर—उपवास आदरसे न करना।

५-स्मृत्यनुपस्थान—धर्म क्रियाओंको भूल जाना।

भोगोपभोग परिमाण व्रतके अतीचार—

"सचित्तसम्बन्धसन्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः।"

१-सचित्त—छोडे हुए सचित्तको भूलसे लेलेना।

२-सचित्त सम्बन्ध—छोडे हुए सचित्तसे सम्बन्धित वस्तु लेना।

३-सचित्त सन्मिश्र—सचित्तमें अचित्त मिलाकर लेना।

४-अभिषव—कामोद्दीपक पदार्थ लेना।

५-दुःपक्वाहार—कम व अधिक पका पदार्थ लेना।

अतिथि संविभाग व्रतके अतीचार—

"सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः।"

१-सचित्त निक्षेप—सचित्त पर रखी वस्तु मुनिको देना।

२-सचित्त अपिधान—सचित्तसे ढकी वस्तु देना।

३-परव्यपदेश—आप दान न देकर दूसरेको दानके लिये कह देना।

४-मात्सर्य—ईर्षाभावसे दान देना।

५-कालातिक्रम—काल उल्लंघ करके देरीसे देना।

सल्लेखनाके अतीचार—

"जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि।"

१-जीवित आशंसा—अधिक जीनेकी इच्छा रखना।

२-मरणाशंसा—जल्दी मरना चाहना।

३-मित्रानुराग—मित्रोंसे सांसारिक राग बताना।

४-सुखानुबंध—सांसारिक सुखोंको याद करना।

५-निदान—आगामी भोग चाहना।

व्रत प्रतिमावाला इन व्रतोंको बडे भावसे पालना है।

सामायिक प्रतिमा।

सामाइयं च उत्तं, अप्पा परमप्प सम्म संजुत्तं।
समयति अर्थं सुद्धं साम्यं सामाइयं जानं ॥ ३१३ ॥

अन्वयार्थ—(सामाइयं च उत्तं) सामायिक प्रतिमाको कहते हैं (अप्पा परमप्प सम्म संजुत्तं) जो सम्यग्दर्शन सहित हो व आत्माको परमात्मारूप जाने (सुद्धं अर्थं समयति) शुद्ध आत्माको समतारूप करे (साम्यं सामाइयं जानं) साम्यभावको सामायिक जानो।

भावार्थ—समय नाम आत्माका है। जहां आत्मा सम्बन्धी भाव हो अथवा जहां रागद्वेष छोडकर समताभाव हो, शुद्धात्मारूप आपको जानकर अनुभव किया जावे वही सामायिक है।

ती अर्थं सुद्ध सुद्धं, सम सामाइयं च संसुद्धं।
परिनै सुद्ध ति अर्थं, परिनामं सुद्ध समय सुद्धं च ॥ ३१४ ॥

अन्वयार्थ—(ती अर्थं सुद्ध सुद्धं) जहां रत्नत्रय धर्मका निश्चय नयसे शुद्ध विचार हो (सम सामइयं संसुद्धं च) जहां समताभाव हो वही शुद्ध सामायिक है। (सुद्ध ति अर्थं परिनै) जहां शुद्ध रत्नत्रय रूप परिणमन हो (परिनामं सुद्ध समय सुद्धं च) जहां परिणाम शुद्ध हो व आत्मा शुद्ध हो वही सामायिक है।

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रय शुद्ध आत्मानुभव रूप ही एक शुद्ध परिणमन है। वहीं समता भाव है, वही आत्माकी शुद्धता है, वही सच्ची सामायिक है।

समरूवंसम दिट्ठं, सम सामाइयं च जिन उत्तं।
मन चवलं सुद्ध थिरं, अप्प सरूवं च सुद्ध सम सुद्धं ॥३१५॥

अन्वयार्थ—(समरूवंसम दिट्ठं) जहां समतामई रूप हो, समतामई दृष्टि हो, (सम सामाइयं च जिन उत्तं) जहां समभाव हो उसीको सामायिक श्री जिनेंद्रने कहा है (मन चवलं सुद्ध थिरं) जहां चंचल मन स्थिर हो व शुद्धोपयोगमें लीन हो (अप्प सरूवं च सुद्ध सम सुद्धं) जहां आत्माका स्वरूप शुद्ध समता रूप अनुभवमें आवे वही सामायिक है।

भावार्थ—सामायिक करनेवालेका स्वरूप व आसन व दृष्टि सब सौम्य होनी चाहिये। भाव भी शांत हो, मन भी स्थिर हो। आत्माके शुद्ध स्वभावसे रमणता हो वही सामायिक है।

इस प्रतिमाका स्वरूप रत्नकरंडमें ऐसा कहा है—

चतुरावर्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः। सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसंध्यमभिवन्दी ॥ १३९ ॥

भावार्थ—जो चारों दिशाओंमें तीन तीन आवर्त करता है, चार चार प्रणाम करता है, कायोत्सर्गमें स्थित होता है, अंतरंग बहिरंग परिग्रहकी चिंतासे परे रहता है, खड्गासन और पद्मासन इन दो आसनोंमेंसे कोई एक आसन लगाता है, मन वचन कायके व्यापारोंको शुद्ध रखता है, त्रिकाल वन्दना करता है, वह सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक है।

इस तीसरी श्रेणीमें श्रावक सवेरे दोपहर व सांझ तीनों समय दो दो घडी या ४८ मिनट हर समयमें सामायिक करे, कभी अंतर्मुहूर्त भी कर सक्ता है। इसकी सामान्य विधि यह है-पूर्व या उत्तरको खडा होकर पहले नौ णमोकार मंत्र पढकर भूमिमें दंडवत् करे, सामायिक करते समय तक अपने शरीरपर जो हो उसके सिवाय सर्व परिग्रहका त्याग करदे, फिर खडे होकर नौ या तीन दफे णमोकार मंत्र पढकर तीन आवर्त, एक शिरोनति करे। जोडे हुए हाथोंको बांएसे दाहने घुमानेको आवर्त व मस्तक झुकाकर दोनों जोडे हुए हाथ लगानेको शिरोनति कहते हैं। फिर हाथ लटकाके खडे हुए दाहनी दिशापर पलटकर पूर्वके समान नौ या तीन दफे मंत्र पढकर तीन आवर्त एक शिरोनति करे, ऐसा ही पीछे करे, ऐसा ही बांए करे। इससे चारों तरफ सर्व पूज्यनीयोंको नमस्कार होजाता है। फिर आसनमें बैठकर या खडे होकर सामायिक पाठ पढे, जाप दे, १२ भावना विचारे, आत्मध्यान करे, अंतमें खडे हो नौ मंत्र पढकर दंडवत् करे। इस विधिसे बड़े भावसे तीनों काल सामायिक करना ही चाहिये।

प्रोषधोपवास प्रतिमा।

पोसह पडिमा उत्तं, पूर्वं सहकार कारनं सुद्धं।
जिन उत्त सुद्ध दिट्ठं, अप्प सहावेन भावना सुद्धं ॥ ३१६ ॥

अन्वयार्थ—(पोसह पडिमा उत्तं) प्रोषध प्रतिमाको कहते हैं (पूर्वं सहकार कारनं सुद्धं) शास्त्रोंकी सहायतासे शुद्ध भावोंका कारण मिलावे (जिन उत्त सुद्ध दिट्ठं) जिनेन्द्रने जैसा कहा है शुद्ध दृष्टि रक्खे, आरंभ न करे (अप्प सहावेन भावना सुद्धं) आत्माके स्वभावको ध्यानमें लेकर उपवासके दिन शुद्ध भावना रक्खे।

भावार्थ—उपवास जबतकका लिया हो तबतक सर्व कामकाज छोड़कर आत्मध्यान करे या जिनागमको पढ़े।

पूर्वं जिनेहि भनियं सहकारेन पोसहं सुद्धं।
जं करेइ चिंतवनं, झानं झायंति धम्म सुक्कानं ॥ ३१७ ॥

अन्वयार्थ—(पूर्वं जिनेहि भनियं) ग्यारह अंग १४ पूर्व जिनेन्द्रने कहे हैं (सहकारेन पोसहं सुद्धं) उन शास्त्रोंके रहस्यकी सहायतासे शुद्ध प्रोषध व्रत होगा (जं करेइ चिंतवनं) जो कुछ चिन्तवन करे वह आगमका भाव हो (झानं झायंति धम्म सुक्कानं) धर्मध्यानको ध्यावे व शुक्लध्यानकी भावना करे

भावार्थ—श्रावकोंको धर्मध्यान होसक्ता है परंतु शुक्लध्यान नहीं तथापि यह भावना करे कि कब वह समय आवे जब शुक्लध्यान प्राप्त होसके। ध्यानमें जब मन न लगे तो आगमका विचार करे।

पोसह पडिमा एसो, पूर्वं सहकार सुद्ध चरनानि।
चेयन भाव संयुत्तं, पोसह पडिमा इमो भनियं ॥ ३१८ ॥

अन्वयार्थ—(पोसह पडिमा एसो) प्रोषध प्रतिमा यह है कि (पूर्वं सहकार सुद्ध चरनानि) शास्त्रोंकी मददसे शुद्ध आचार रक्खे (चेयन भाव संयुत्तं) उपवासके दिन चेतन स्वरूपमें ही भावना रक्खे (पोसह पडिमा इमो भनियं) इसे प्रोषध प्रतिमा कहते हैं।

भावार्थ—आगमका मनन व आत्ममनन करते हुए ही उपवासके समयको विताना चाहिये। इसका स्वरूप रत्नकरंडमें इसप्रकार है—

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य । प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥ १४० ॥

भावार्थ—जो महीने महीने चारों ही पर्वोंमें अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशीके दिनोंमें अपनी शक्तिको न छिपाकर शुभ ध्यानमें तत्पर होता हुआ प्रोषधके नियमको पूरा करे वह प्रोषधोपवास प्रतिमाका धारी है। प्रोषधके दिन धर्मध्यानमें ही वितावें। शक्ति अनुसार तीन तरहसे उपवास किया जासक्ता है—१६ पहर, १२ पहर या आठ पहर। इस आठ पहरमें आरंभका त्याग है। भोजन पानका १२ पहर त्याग होगा।

दूसरी रीति यह है १६ पहर उपवास करे तब पहले व पिछले दिन एकासन, बीचमें उपवास करे। यही पहली विधिमें भी है। मध्यममें जल सिवाय तीन प्रकार आहार छोडे, जघन्यमें १६ पहर धर्मध्यान करता हुआ बीचमें एक भुक्त भी करले। जिस तरह आर्तध्यान न हो, परिणाम ध्यान स्वाध्यायमें लगे उस तरह प्रोषध करे।

सचित्त त्याग प्रतिमा।

सचित्त चित्त सुद्धं, चेयन भावेन सुद्ध सम्मत्तं।
सचित्त चेयनत्वं, धम्मज्ञानं सचित्त भावेन ॥ ३१९ ॥

अन्वयार्थ—(सचित चित्त सुद्धं) सचित्त त्याग प्रतिमाधारी चित्तको भी शुद्ध रखे—राग रहित रक्खे (चेयन भावेन सुद्ध सम्मत्तं) चेतनाकी भावना करता हुआ सम्यग्दर्शन शुद्ध पाले (सचित्त चेयनत्वं) अपना चित्त चेतन परिणतिमें जोडे (सचित्त भावेन धम्मज्ञानं) चेतनाके परिणाम सहित धर्मध्यान करे।

भावार्थ—सचित्त पदार्थोंको यह प्रतिमाधारी नहीं खाता है, यह तो व्यवहार कथन है। यहां गंभीर कथन यह है कि जो अपना चित्त शुद्ध करके चेतनाकी भावनामें रोक करके धर्मध्यान करे वही इस प्रतिमाको ठीक२ पालनेवाला है।

चेयन सुद्ध सहावं, अप्पा परमप्प चेयना रूवं।
गय संकप्पवियप्पं, चेयन पडिमा ध्रुवं लोए ॥३२०॥

अन्वयार्थ—(चेयन सुद्ध सहावं) आत्माका स्वभाव शुद्ध है (अप्पा परमप्प चेयना रूवं) आत्मा परमात्माके समान चेतना रूप है। (गय संकप्पवियप्पं) जहां संकल्प विकल्प छोडकर आत्मामें ही रमा जावे वही (लोए ध्रुवं चेयन पडिमा) लोकमें निश्चयसे चेतन प्रतिमा या सचित्त प्रतिमा है।

भावार्थ—सचित्त प्रतिमाका भाव यही लिया गया है कि चेतना सहित शुद्ध भावमें रमना इसीसे इसे चेतन प्रतिमा भी कहा है।

मिथ्या मय कुज्ञानं, रागादि दोष विषय मुत्तूनं ।
हरितं सचित्त सव्वं, तिक्कंति सुद्ध भावसंयुत्तं ॥ ३२१ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या मय कुज्ञानं रागादि दोष विषय मुत्तूनं) अंतरंगमें तो इस प्रतिमाधारीने मिथ्या श्रद्धा मिथ्या ज्ञान राग द्वेष विषयोंकी वांछा छोड दी है (हरितं सचित्त सव्वं सुद्ध भाव संयुत्तं तिक्कंति) बाहरमें वीतराग निर्वांछक भाव सहित सर्व ही हरितको व सर्व ही जलादि सचित्तको त्याग कर दिया है।

भावार्थ—सचित्त प्रतिमाधारी वही है जो एकेन्द्रिय जीव सहित हरित वनस्पतिको नहीं खाता है व कच्चे अप्राशुक पानीको नहीं पीता है। सचित्तके खानेका त्यागी है। सूखी बनाई हुई, छिन्न भिन्न की गई, व लवणादिसे मिली हुई वनस्पतिको व प्राशुक या गर्म जलको ही लेता है। यहां भाव यह है कि जो केवल बाहरसे ऐसा विवेक रखे परंतु अंतरंगमें जिह्वा इंद्रियका राग न जीते व मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या ज्ञान रखे अर्थात् आत्मा सम्बन्धी अनुभवका प्रेम न हो तो वह यथार्थ प्रतिमा नहीं है। अंतरंग व बहिरंग शुद्ध भावधारीको ही सचित्त प्रतिमावान कहते हैं।

रत्नकरंडमें कहा है—

मूलफलशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि । नामानि योत्ति सोयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥ १४१ ॥

भावार्थ—जो कच्चे अप्राशुक मूल, फल, शाक, शाखा, करीर (कोंपल), कन्द, फूल, बीज नहीं खाता है यह दयाकी मूर्ति सचित्त त्याग प्रतिमाधारी है।

रात्रि भोजन त्याग या अनुरागभक्ति प्रतिमा।

अनुरागं अप्पानं, रागादि मिच्छ भाव परिहरनं।
अप्पा परमप्पानं, अनुरागं पडिम संसुद्धं ॥ ३२२ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि मिच्छ भाव परिहरन) जहां रागादि मिथ्या भावोंका त्याग हो (अप्पानं अनुरागं) अपने आत्मापर प्रेम हो (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव किया जावे (संसुद्ध अनुरागं पडिम) वही परम शुद्ध अनुराग भक्ति प्रतिमा है।

भावार्थ—यद्यपि ग्यारह प्रतिमाओंके नाम जो स्वामीने ऊपरकी गाथामें गिनाए हैं उनमें रात्रिभोजन त्याग ही प्रतिमाका नाम लिखा है परंतु इस गाथामें इसका नाम अनुराग भक्ति लेकर कथन किया है कि जिसका राग संसारके मिथ्या प्रपंचजालसे छूटकर अपने आत्माके निश्चय स्वरूप पर हो वही छठी प्रतिमाका धारी है।

अनुरागं भत्तीए सुद्ध सरूवेन भत्तिभारेन।
अनुराग भत्ति एसा, उवइट्ठं जिनवरिंदेहिं ॥ ३२३ ॥

अन्वयार्थ—(भत्ति भारेन सुद्ध सरूवेन अनुरागं भत्तीए) जो भक्तिके भारसे भरा हुआ शुद्ध स्वरूपमें अनुराग सहित प्रेम करता है वही (एसा अनुराग भत्ति) वही अनुराग भक्ति प्रतिमाधारी है (जिनवरिंदेहिं उवइट्ठं) ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है।

भावार्थ—परम भक्ति व परम प्रेम जिसका निज आत्माके चिंतवनमें हो, जिससे वह रात्रिका समय आत्मभक्तिमें ही वितावे, खानपानादिके प्रपंचमें न वितावे वही अनुराग भक्ति प्रतिमाधारी है। स्वामीको यह इष्ट है कि रात्रि भोजन पहले ही छोड देना चाहिये, इसीसे यहां इस रूपमें ऊंचा कथन है। स्वामी समंतभद्राचार्यका मत है कि यहां पूर्ण रात्रि भोजनका त्याग है, इसके पहले यथाशक्ति त्याग है अथवा यहां करानेका भी त्याग है, पहले करनेहीका त्याग था। कहा है—

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्। स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥ १४२ ॥

भावार्थ—जो जीवोंपर दया भाव लाता हुआ रात्रिमें अन्न, पान, मोदकादि खाद्य तथा चाटने योग्य पदार्थ नहीं खाता है वह रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमाका धारी है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा ।

बंभं बंभ सरूवं, अप्पा परमप्प तुल्य संसुद्धं ।
तिक्कं अवंभरूवं, दहविहि अवंभ भाव तिक्कं च ॥३२४॥

अन्वयार्थ—(बंभं बंभ सरूवं) ब्रह्मचर्य प्रतिमा ब्रह्म स्वरूप है जहां (अप्पा परमप्प तुल्य संसुद्धं) अपने आत्माको परमात्माके समान शुद्ध ध्याया जावे (अवंभरूवं तिक्कं) पुद्गलादिसे राग भाव छोडा जावे (दहविहि अवंभ भाव तिक्कं च) तथा दश प्रकार अब्रह्म या कुशीलका भाव छोडा जावे ।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य प्रतिमाका स्वरूप यह है कि सर्व पुद्गलादिसे ममता त्याग अपने ब्रह्म स्वभावमें रत हुआ जावे तथा बाहरमें दश प्रकार कुशील भाव छोडा जावे--काम विकार दूर किया जावे ।

मूलाचार शीलगुणाधिकारमें दश प्रकार अब्रह्मका स्वरूप यह है—

इत्थी संसग्गी पणिदरस भोयण गंधमल्ल संठप्पं । सयणासणभूसणयं छट्ठं पुण गीय वाइयं चेव ॥ १३ ॥
अत्थस्स पओगो कुसील संसग्गि राय सेवाय । रत्तीविय संयरणं दस सीलविराहणा भणिया ॥ १४ ॥

भावार्थ—१ स्त्रियोंके साथ राग भाव, २ पंचेंद्रियोंको उद्दीपितकारी रसोंका गृद्धि सहित भोजन, ३ सुगंध माला तेल अतरसे शरीरको शृंगारित करना, ४ मुलायम कामभाव जागृत करनेवाले शय्या व आसनोंपर सोना बैठना, ५ शरीरको शोभित करनेवाले आभुषण पहनना, ६ गीत वादित्रमें रंजायमान होना, ७ सुवर्णादि द्रव्यका संचय रखना, ८ कुशील पुरुषोंकी व कुशीली स्त्रियोंकी संगति रखना, ९ राजाओंके दरबारकी सेवा, १० रात्रिको सैर करना । ये दश कारण शीलको भ्रष्ट करनेवाले कहे गए हैं। इन निमित्तोंसे ब्रह्मचारीको बचना चाहिये। सादे वैराग्ययुक्त वस्त्र रखने चाहिये, गहना नहीं पहनना चाहिये, वैरागयुक्त आसनोंपर सोना बैठना चाहिये, सुसंगति रखनी चाहिये, अपनी गांठमें मोहरें आदि नहीं रखने चाहिये, कदाचित् परिणाम कुशीलपर चले जावें व द्रव्य खरच करदे, भोजन सादा व सात्विक करे, गाने बजानेका शौक न रक्खे, इत्यादि ।

रत्नकरंडमें कहा है—

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं । पश्यन्नंगमनंगाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥ १४३ ॥

भावार्थ—जो मलके बीजभूत, मलको उत्पन्न करनेवाले, मलको बहानेवाले, दुर्गंधयुक्त व ग्लानियुक्त अंगको देखकर कामसेवनसे विरक्त होता है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी है।

हाव भाव स उक्तं, विभ्रम कटाष्य निरीषनं सव्वं ।
उपयम मयन स उत्तं, मोहन वसीकरन भावतिक्तं च ॥ ३२५ ॥

अन्वयार्थ—(विभ्रम कटाष्य निरीषनं सव्वं हाव भाव स उत्तं) जो शृंगार बताना व टेढी दृष्टीसे देखना, कुशीलोद्पादक चेष्टा करना, उसको हाव भाव कहा गया है (उपयम मयन स उत्तं) ब्रह्म भावको त्याग करानेवाला कामभाव वह कहा गया है जो (मोहन वसीकरन भाव तिक्तं च) मोहन व वशीकरनके भाव करे, स्त्रियोंके मनको जीतनेका भाव करे, इन सब भावोंको त्यागना चाहिये ।

भावार्थ—ब्रह्मचारीको न स्वयं हाव भाव करना चाहिये। न स्त्रियोंके हाव भावको देखना चाहिये और न मोहन वशीकरणके कभी भाव करने चाहिये। कामभावका विकार मनसे दूर करना चाहिये।

विकहा वसन स उत्तं, उपभोगं च भाव अनंतानं ।
तिक्तंति सुद्ध भावं, वंभं प्रतिमा मुनेयव्वा ॥ ३२६ ॥

अन्वयार्थ—(विकहा वयन स उत्तं) जो ब्रह्मचर्य घातक विकथाओंको कहनेकी आदत कही गई है (उपभोगं च अनंतानं भव) उसके भीतर लगनेमे अनंत प्रकारके कुशील भावोंका उपभोग होता है (सुद्धं भावं तिक्तंति) जो शुद्ध भावसे ऐसी कुकथाओंको छोड देते हैं (वंभ प्रतिमा मुनेयव्वा) उन्हींके ब्रह्मचर्य प्रतिमा जाननी योग्य है।

भावार्थ—सातमी प्रतिमाधारी श्रावक ऐसी स्त्री भोजन व रागवर्द्धक कथाओंको नहीं करता है न सुनता है न नाटक खेल तमाशे देखता है जिनसे कुशील न सेवते हुए भी अनेक प्रकार कुशीलकी अनुमोदनाके भाव होजावें, विकार पैदा होजावे। धर्मकथामें ही अनुरक्त रहता है।

वंभं चरित्त सुद्धं, चेयन वंतो य ज्ञान सम्पन्नो ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा परम जोएन ॥ ३२७ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं बंभ चरित) शुद्ध व निश्चय ब्रह्मचर्य प्रतिमा यह है कि (चेयन वंतो य ज्ञान सम्पन्नो) चेतना स्वरूप आत्माके ज्ञानसे पूर्ण होकर (अप्पा सुद्ध ध्यानं परमप्पा परम जोएन) आत्माको शुद्ध स्वरूप परमात्मामय परम योगाभ्यासके बलसे ध्याया जावे।

भावार्थ—अपने ब्रह्म स्वरूप आत्मामें लय होना शुद्ध ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। कुशीलका त्याग व्यवहार ब्रह्मचर्य है।

आरंभ त्याग प्रतिमा।

आरम्भं सुद्ध सहावं, सुद्धं सम्मत्त ज्ञान संयुत्तं।
आरंभं अप्पानं, सुद्धं ज्ञानं च सुद्ध भावेन ॥ ३२८ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं आरंभं) आरंभ त्याग प्रतिमावाला सांसारिक आरंभ छोडकर शुद्ध स्वभावके रमणका आरंभ करता है (सुद्धं सम्मत्त ज्ञान संयुत्तं) वह शुद्ध सम्यग्दर्शन तथा शुद्ध ज्ञान सहित होता है (सुद्ध भावेन अप्पानं आरंभं च सुद्धं ज्ञानं) वह शुद्ध भावोंसे आत्माके मननका आरंभ करता है तथा शुद्ध ध्यानका आरंभ करता है।

भावार्थ—खेती व्यापारादि सर्व आरंभको छोडकर जो धर्मध्यानका आरंभ; तत्वविचार मुख्यतासे करता है वह आरंभ त्याग प्रतिमाधारी है।

सुद्धं सुद्ध सरूवं, अप्पा परमप्प अप्पयं सुद्धं।
आरंभं धम्म ज्ञानं, आरंभ प्रतिमा सुनेयव्वा ॥ ३२९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सुद्ध सरूवं) परम शुद्ध जिसका स्वरूप है (अप्पा परमप्प अप्पयं सुद्धं) ऐसा आत्मा सो ही परमात्माका अपना शुद्ध स्वरूप है ऐसा समझकर (धम्म ज्ञानं आरंभं) धर्मध्यानका उद्योग जहां किया जाता है (आरम्भ प्रतिमा सुनेयव्वा) उसे आरम्भ त्याग प्रतिमा जानना चाहिये।

भावार्थ—शुद्ध आत्मस्वरूपके अनुभवके परम उद्योगवानको आठवीं प्रतिमावाला कहते हैं।

आरंभं तिक्कंति, मिच्छा कुज्ञान सल्य तिक्कंति।
दुविधि तिक्कमनपसरो, सर्वं असुहस्य तिक्कंति ॥ ३३० ॥

अन्वयार्थ—(आरंभं तिक्कंति) आरंभ त्याग प्रतिमाधारी सर्व आरंभको–रोटी पानी गृह बाहरके सर्व आरंभको छोड देता है (मिच्छा कुज्ञानं सल्य तिक्कंति) मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान व माया मिथ्या निदान शल्य ये इन सबोंको जो त्याग देता है (दुविधि तिक्कमनपसरो) मनका फैलावा जो कृतकारितसे दो प्रकारसे होता है उसको छोड देता है (सर्वं असुहस्य तिक्कंति) सर्व ही अशुभ कार्योंको छोड देता है।

भावार्थ—आरंभ त्याग प्रतिमाधारी सर्व प्रकारके लौकिक आरंभको व मिथ्या श्रद्धान ज्ञानको व शल्योंको व अशुभ भावोंको छोड देता है। मनमें यह इस बातकी चिंता नहीं करता है कि मुझे आरंभ करना है व कराना है। उसे कृतकारितका त्याग है, अनुमतिका त्याग नहीं है। आरंभी हिंसा जिनसे हो ऐसे सर्व आरम्भका त्याग है। रत्नकरण्डमें कहा है—

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति। प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥

भावार्थ—जो प्राणीघातके कारण सेवा, कृषि, व्यापार आदि आरम्भसे विरक्त होता है सो यह आरम्भ त्याग प्रतिमाका धारी है।

असत्य सहित आरम्भं, अनृत अचेत आरम्भ तिक्कंति।
तिक्कंति राय दोसं, संसारे सरनि भाव तिक्कंति ॥ ३३१ ॥

अन्वयार्थ—(असत्य सहित आरम्भं) न वह जगतका झूठा सर्व आरम्भ (अनृत अचेत आरम्भ तिक्कंति) व मिथ्या जड पदार्थोंका सर्व आरम्भ त्याग देता है (राय दोसं तिक्कंति) रागद्वेषको छोड देता है (संसारे सरनि भाव तिक्कंति) संसारमें भ्रमण करानेवाले भावोंको त्याग देता है।

भावार्थ—यह श्रावक जगतके सर्व लौकिक आरम्भोंको बिलकुल त्याग देता है, न करता है न कराता है, घरका बाहरका सर्व ही उठाना, धरना, माल लाना, बेचना, कूटना, पीसना, लेन, देन, विक्रय, खरीद आदि, विवाह शादीमें जाना, गमीमें जाना, सवारीपर चढना आदि सर्व त्याग देता है। वह भूमि देखकर दयापूर्वक चलता है। आरम्भी हिंसा न हो यही उसका मुख्य व्रत है। केवल धर्म कार्योंको ही करता है।

आरम्भं देव गुरं, धम्म ज्ञानं च अमल सुद्धं च।
आरम्भं ज्ञानमइओ, आरम्भ प्रतिमा हवे निश्चं ॥ ३३२ ॥

अन्वयार्थ—(आरम्भं देव गुरुं) इस श्रावकके आरम्भ देव व गुरुकी भक्ति है (अमलं च सुद्धं च धम्म झानं) रागद्वेष छोडकर शुद्ध धर्मध्यानका आरम्भ है (ज्ञानमइओ आरम्भं) तथा ज्ञानके साधनका, शास्त्रके मननका आरम्भ है (आरम्भ प्रतिमा निश्चं हवे) सो ही वास्तवमें आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी है।

भावार्थ—यह श्रावक देवपूजा करता है, गुरु सेवा करता है, शास्त्रका पठन पाठन करता है, सामायिक व धर्मध्यान करता है। और भी धर्मोन्नतिके काम करता है।

परिग्रह त्याग प्रतिमा।

पर पुग्गलं न ग्रहनं, मिच्छा परभाव दोस विवरीदो।
ग्रहनं दंसन ज्ञानं, चरनं पि दुविह संजदो ग्रहनं ॥ ३३३ ॥

अन्वयार्थ—(पर पुग्गलं न ग्रहनं) जो सर्व परिग्रहकी ममता त्यागकर पर पुद्गलको नहीं ग्रहण करता है, रुपया पैसा आदी नहीं रखता है (मिच्छा परभाव दोप विवरीदो) जो मिथ्या रागादि परभावोंके दोषोंसे विपरीत रहता है (दंसन ज्ञानं ग्रहनं) अपने सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान स्वभावको ग्रहण किये रहता है (दुविह चरनं पि ग्रहनं) तथा व्यवहार व निश्चय दोनों प्रकारके चारित्रको भी ग्रहण करता है (संजदो) ऐसा संयमी श्रावक होता है।

भावार्थ—नौमी परिग्रह त्याग प्रतिमावाला सर्व जायदादको बांट देता है तथा दानमें लगा देता है। घर त्यागकर धर्मशाला व नसियामें रहता है, एक दो वर्तन व कुछ आवश्यक वस्त्र रख लेता है, निमंत्रणसे भोजन कर लेता है, और अपना सर्व समय रत्नत्रयके साधनमें-धर्मभावनामें विताता है। रत्नकरंडमें कहा है—

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः। स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥ १४९ ॥

भावार्थ—जो बाहरी क्षेत्र मकान आदि दश प्रकारके परिग्रहोंकी ममताको छोडकरके ममता रहित भावमें रत होता हुआ अपने स्वरूपमें स्थिर रहता है तथा सन्तोषवृत्ति धारण करता है वह संचित परिग्रहसे विरक्त श्रावक है।

पुग्गल प्रमान करनं, सेसं संसार सरनि विवरीदो।
अप्पसहावे निलओ, सुद्धप्पा सुद्ध विमल भावेन ॥ ३३४ ॥

अन्वयार्थ—(पुग्गल प्रमान करनं) जो शरीरकी रक्षार्थ कुछ वस्त्रादिका प्रमाण रख लेता है (सेसं संसार सरनि विवरीदो) शेष सर्व संसारके मार्गसे उदास होकर छोड देता है (सुद्धप्पा अप्प सहावे सुद्ध विमल भावेन निलओ) अपने शुद्ध आत्माके स्वभावमें शुद्ध वीतरागभावके साथ लीन रहता है।

भावार्थ—कुछ वस्त्र व वर्तन रखकर शेष परिग्रहको त्यागकर जो विरक्त होजाता है। और परम श्रद्धासे शुद्ध आत्माके ध्यानमें लीन रहता है सो परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी है।

अनुमति त्याग प्रतिमा।

अन्यान मतीं न दत्तं, मिच्छा दुर्वुद्धि सयल विवरोदो।
मति ज्ञानं उवएसं, केवल भावं मुनेयव्वा ॥ ३३५ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छा दुर्वुद्धि सयल विवरीदो) जो श्रावक मिथ्यात्व भाव, कुबुद्धि आदि सकल सांसारिक भावोंसे विरक्त है (अन्यान मती न दत्तं) दूसरोंको लौकिक कार्योंकी सम्मति नहीं देता है (ज्ञानं मति उवएसं) जो ज्ञान बढानेका ही उपदेश देता है (केवल भावं मुनेयव्वा) वह केवल शुद्ध भावकी ही भावना करता है। उसे अनुमति त्याग प्रतिमाधारी जानना चाहिये।

भावार्थ—नौमी प्रतिमा तक कोई लौकिक कार्योंमें सलाह पूछता था तो गुण दोष लाभ हानि बता देता था। अब यह इस प्रपंचको भी छोडता है। किसीको लौकिक कार्योंकी सम्मति नहीं देता है। केवल धर्मोपदेश देता है। तथा स्वयं आत्मीक भावनामें रत रहता है। रत्नकरण्ड०में कहा है—

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा। नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मंतव्यः ॥ १४६ ॥

भावार्थ—जो आरम्भमें, परिग्रहमें, व इस लोक सम्बन्धी कार्योंमें अनुमति नहीं देता है वह समबुद्धिधारी निश्चयसे अनुमति त्याग प्रतिमाका धारी मानना योग्य है।



उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा ।

उद्दिष्टं सुद्ध दिट्ठं, डंडकपाटेन भावना सुद्धं ।
त्यक्तं वंच सहावं, अप्पा ज्ञानं च चिंतनं सुद्धं ॥ ३३६ ॥

अन्वयार्थ—(उद्दिट्ठं सुद्धं दिट्ठं) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी शुद्ध दृष्टि रखता है (डंडकपाटेन सुद्धं भावना) मन, वचन, कायकी गुप्तिसे शुद्ध भावना रखता है (वंच सहावं त्यक्तं) जिसने मायाचारका स्वभाव त्याग दिया है (सुद्ध अप्पा ज्ञानं च चिंतनं) जिसके शुद्ध आत्मध्यानका ही अभ्यास है ।

भावार्थ—उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी अपने लिये किए हुए आहारको ग्रहण नहीं करता है। जो आहार गृहस्थोंने अपने कुटुम्बके लिये बनाया हो उसीमेंसे भिक्षा द्वारा मिलनेपर लेता है। यह मायाचार छोडके शुद्ध भोजनकी खोज करता है व तीन गुप्तिको पालके शुद्ध आत्माकी भावना रखता है। और धर्मध्यानमें लगा रहता है। रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है—

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकंठे व्रतानि परिगृह्य । भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखंडधरः ॥ १४७ ॥

भावार्थ—जो घरसे मुनिके पास वनमें जाकर गुरुके निकट व्रत धारण करके तप करता हुआ भिक्षासे भोजन करता है व खंड वस्त्रका धारी है वह उत्कृष्ट श्रावक होता है। ग्यारहवीं प्रतिमाधारी मोरपिच्छिका जीवदयार्थ, कमंडल शौचार्थ रखता है। एक लंगोट व एक खंड वस्त्र जिससे पूरा अंग न ढके, रखता है। कोई अनेक घरसे एकत्र कर अंत घरमें भोजन करता है। वह भोजन वस्त्र भी रखता है। कोई एक घरमें ही थालीमें जीमता है। ऐसेको क्षुल्लक कहते हैं। जो केवल लंगोट रखता है, केशोंका लोंच करता है, मुनिवत् काष्ठका कमंडल रखता है, भिक्षासे श्रावकके घर बैठकर हाथमें भोजन रखे जाने पर भोजन करता है यह ऐलक है। यह मुनिकी क्रियाओंका अभ्यासी होता है।

प्रतिमा दह एकत्वं, सुद्धं भावं च सुद्ध ज्ञानं च ।
अप्पा परमप्पानं, अमलं धुव दंसनं सुद्धं ॥ ३३७ ॥

अन्वयार्थ—(दह एकत्वं प्रतिमा) ये ग्यारह प्रतिमाएं हैं (सुद्ध भावं च सुद्ध ज्ञानं च) इनमें सबके शुद्ध

भाव तथा शुद्ध ध्यान रहना है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मास्वरूप भाते हैं (अमलं धुव सुद्धं दंसनं) उनके निर्मल निश्चय शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है।

भावार्थ—ये श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएं हैं। सर्व ही श्रावक शुद्ध भावोंके पहचाननेवाले व धर्मध्यानमें रत होते हैं-शुद्ध सम्यग्दृष्टी होते हैं। आत्माके अनुभव के परम अभ्यासी होते हैं।

पांच अणुव्रत निरूपण।

हिंसा त्यक्त अहिंसा, अनृत तिक्तं च ऋत सहावं।
स्तेयं अदत्त त्यक्तं, दत्तं जाने हि सुद्ध सम्मत्तं ॥ ३३८ ॥
तुरिय अबंभं त्यक्तं, बंभ चरनस्य चेयनं सुद्धं।
पर पुग्गल परिमानं, ज्ञान सहावं च अप्प सद्भावं ॥ ३३९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सम्मत्तं) शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारी श्रावक (हिंसा त्यक्त अहिंसा) हिंसा पापको छोडकर अहिंसा अणुव्रत पालता है (अनृत तिक्तं च ऋत सहावं) असत्य त्यागकर सत्य बोलनेका स्वभाव रखता है (स्तेयं अदत्त त्यक्तं) स्तेय अर्थात विना दी हुई वस्तु ग्रहणका त्याग करके (दत्तं जाने हि) दी हुई वस्तुको लेता है यह अचौर्यव्रत जानो (तुरिय अबंभं त्यक्तं) चौथे व्रतमें कुशीलको त्यागके (बंभ चरनस्य चेयनं सुद्धं) शुद्ध चेतनामई ब्रह्मचर्य व्रतको पालता है (परपुग्गल परिमानं) परिग्रहका प्रमाण कर लेता है (ज्ञान सहावं च अप्प सद्भावं) तथा निश्चयसे अपने ज्ञान स्वरूपको ही अपना जानता है।

भावार्थ—संकल्पी हिंसाको त्याग करके अहिंसा अणुव्रत, स्थूल असत्यको त्यागे सत्य अणुव्रत, चोरीको त्यागके अचौर्यव्रत, परस्त्रीको त्यागके ब्रह्मचर्य अणुव्रत तथा परिग्रहका प्रमाण इन पांच अणुव्रतोंको श्रावक व्यवहार नयसे पालता है, निश्चय नयसे वह अपने आत्माके स्वभावमें रत रहता है।

एयं अनुव्वयाइं, जानै अमलं च ज्ञानमय सुद्धं।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ३४० ॥

अन्वयार्थ—(एयं अनुव्वयाइं) इन पांच अणुव्रतोंको (अमलं सुद्धं च ज्ञानमय जानै) जो दोष रहित शुद्ध ज्ञान पूर्वक समझता है (अप्पा सुद्धप्पानं) आत्माको शुद्ध स्वरूप जानता है (परमप्प कहै निव्वानं) तथा परमात्माका ध्यान करके निर्वाणको प्राप्त करता है।

भावार्थ—अणुव्रती श्रावक पांच अणुव्रतोंका यथार्थ स्वरूप जानकर पालता है तथा निश्चयसे अपने आत्माको परमात्मा रूप ध्याता है व निर्वाणके लिये उद्योग करता रहता है।

अहिंसा अणुव्रत।

असत्य सहितो हिंसा, अज्ञानं सहित मिच्छपरिनामो।
रागादि दोष सहियं हिंसा परो च दुःख संजुत्ता ॥ ३४१ ॥

अन्वयार्थ—(असत्य सहितो हिंसा) जहां असत्यभाव सहित हिंसा है अर्थात् वृथा संकल्पी हिंसा है (अज्ञानं सहित मिच्छपरिनामो) व अज्ञान सहित मिथ्या परिणाम है (रागादि दोष सहियं) व हिंसा सम्बन्धी राग दोष भाव है (हिंसा परो च दुःख संजुत्ता) जो हिंसामें लीन है वह दुःखोंका पात्र है।

भावार्थ—मिथ्या ज्ञानसे मिथ्या राग दोष होता है। अज्ञानी जीव मिथ्या श्रद्धानके वशीभूत होकर वृथा मानवोंको व पशुओंको सताते हैं। देवी देवताओंके मठोंपर पशुबलि करते हैं, शिकार खेलते हैं, मांसाहारके लिये पशुघात करते हैं, हिंसासे प्राणियोंको बडा कष्ट होता है। हिंसकभाव घोर पापबंध कारक है, जिसका फल दुःख है।

मद मान विषयरूवं, ज्ञान विना कष्टं च तवयरनं।
व्रत संयम किरियानं, हिंसाय सकल दोष तिक्तं च ॥ ३४२ ॥

अन्वयार्थ—(मद मान विषयरूवं) मद मान या विषयोंकी वांछासे (तवयरनं ज्ञान विना कष्टं च) तप करना ज्ञान विना केवल मात्र कष्ट सहना है (हिंसाय सकल दोष तिक्तं च) हिंसा सम्बन्धी सर्व दोष छोडकर (व्रत संयम किरियानं) व्रत, संयम या क्रिया पालना चाहिये।

भावार्थ—जहां मान बडाईके लिये व विषयभोग पानेके लिये तपादि पालन किया जाता है

वहां आत्मज्ञानके विना सर्व साधन मात्र कष्ट सहना है। वहां भावोंमें कषाय होनेसे हिंसा ही है। जहां भाव हिंसा छोडकर वीतराग भावसे व्रत, नियम, क्रिया पाली जावे वहीं अहिंसा अणुव्रत है।

अहिंसा सुद्ध स उत्तं, अयं अप्पा परमप्प जाति सम तुल्यं।
ह्रींकारं थिर भूतं, ज्ञान सहावेन अहिंसओ सुद्धं ॥ ३४३ ॥

अन्वयार्थ—(स सुद्ध अहिंसा उत्तं) वही शुद्ध या निश्चय अहिंसा कही गई है जहां (अयं अप्पा परमप्प जाति सम तुल्यं) यह भावना की जावे कि यह आत्मा परमात्माकी जाति होनेसे उन्हींके समान शुद्ध है (ह्रींकारं थिर भूतं) जहां ह्रीं मंत्रके द्वारा ध्यानमें थिर हुआ जावे (ज्ञान सहावेन सुद्धं अहिंसओ) वही ज्ञान स्वभावसे निश्चय अहिंसा है।

भावार्थ—राग द्वेष मोहका अभाव सो अहिंसा है। इस अहिंसाका लाभ तब ही होता है जब निश्चय नयसे आत्माको परमात्माके समान जानके उसका ध्यान ह्रीं मंत्रके द्वारा करे। वीतरागभाव ही निश्चय भाव अहिंसा है।

आगम पुरान सुद्धं, अषर सुर विंजनं पय सरूवं।
चिंतंति सुद्ध भावं, अप्प सहावं अहिंसओ भनियं ॥ ३४४ ॥

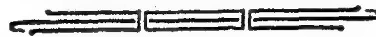
अन्वयार्थ—(अषर सुर विंजनं पय सरूवं) अक्षर स्वर व्यंजनोंसे बने हुए पदोंसे निर्मित (सुद्धं आगम पुरान चिंतंति) शुद्ध आगम पुराणको जो चिंतवन करना है तथा (अप्प सहावं सुद्ध भावं) आत्माके स्वाभाविक शुद्ध भावको मनन करना है (अहिंसओ भनियं) वह भी अहिंसा कहा गया है।

भावार्थ—शुद्ध जिनागमको शुद्धताके साथ पढना व अर्थका विचारना तथा आत्माके शुद्ध स्वभावका मनन करना राग द्वेष मोहको हटानेवाला है, जिनसे आत्माकी हिंसा होती है। इसलिये शास्त्र स्वाध्याय व सामायिक भी अहिंसाका साधक है।

थावर वियलिंदीया, असैनि सैनि सयल उवयत्ती।
रष्यक ज्ञान सरूवं, अहिंसओ लहै निव्वानं ॥ ३४५ ॥

अन्वयार्थ—(थावर वियलिंदीया) पांच प्रकार स्थावर द्वेन्द्रिय तेन्द्रिय व चौंद्रिय तीन विकलेन्द्रिय (असैनि सैनि सयल उपपत्ती) मन रहित पंचेंद्रिय मन सहित सैनी पंचेंद्रिय इन सब जीवोंकी उत्पत्तिको (ज्ञान सरूवं रष्यक) जो ज्ञान स्वभावसे जानकर रक्षा करता है (अहिंसओ कहै निव्वानं) वह अहिंसाव्रत धारी निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—अहिंसाव्रतके पालनेवालेको जीव जातिको पहचानना चाहिये। तीन लोकमें जो स्थावर व त्रस जीव हैं उनपर दयाभाव लाकर निर्मल ज्ञान भावसे मैत्री भाव रखते हुए उनकी रक्षा करना अहिंसा है। इसको जो पूर्ण पालता है वह निर्वाणका पात्र है।



सत्य अणुव्रत।

अनृत अचेत भावं, अलियं जानेहि असुद्ध ससहावं।
जिन उत्तं न वि दिट्ठं, अनृत तिक्कंति सव्वहा सव्वे ॥ ३४६ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत अचेत भावं) असत्य बोलना अज्ञानभाव है (अलियं असुद्ध ससहाव जानेहि) असत्य भाव आत्माका अशुद्ध भाव है ऐसा जानो (जिन उत्तं न वि दिट्ठं) असत्यवादी श्री जिनेन्द्र कथनपर दृष्टि नहीं रखता है। अणुव्रती (सव्वहा सव्वे अनृत तिक्कंति) सर्वथा सर्व असत्यको त्याग देता है।

भावार्थ—असत्य बोलना तब ही होता है जब भावोंमें दूसरेका अहित भाव हो व अपना स्वार्थ साधन हो। यह हिंसक भाव आत्माके स्वभावका घातक अशुद्ध भाव है व ज्ञानमई स्वभावसे विपरीत है। असत्यवादीको शास्त्रके वचनोंकी भी परवाह नहीं रहती है। जिनवाणीके विरुद्ध भी कह देता है। सत्य अणुव्रतीको परको दुःखदाई असत्य त्यागना चाहिये। व शास्त्रोक्त वचन कहना चाहिये।

ज्ञानेन विना भावं, अनेय विभ्रम अनेय सुत जाने।
उछव कष्ट अनेयं, अनृत तिक्कंति सरनि संसारे ॥ ३४७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन विना भावं) आत्मज्ञानके विना जो भाव है सो (अनेय विभ्रम अनेय सुत जाने)

अनेक मिथ्या बातोंको व अनेक मिथ्या शास्त्रोंको बना लेता है अथवा उनको जान लेता है (उछव कष्ट अनेयं) तथा उनमें आनन्द मानता है जिसका फल अनेक कष्ट पाता है (संसारे सरनि अनृत तिक्तंति) या संसारमें भ्रमण करानेवाले ऐसे असत्यको अणुव्रती छोड देता है।

भावार्थ—जगतके प्राणी मिथ्या बातोंसे पूर्ण अनेक मिथ्या शास्त्रोंको बनाकर स्वार्थ साधन करते हैं, हिंसामई धर्म चला देते हैं। उसको स्वयं पालकर व दूसरोंसे पलवाकर आनन्द मानते हैं। यह मिथ्या पाखण्ड बहुत पापबंध करनेवाला व संसारमें भ्रमण करानेवाला है। ज्ञानी श्रावक ऐसे असत्यको कभी नहीं मानते न ऐसे असत्यका प्रचार करते हैं।

ऋतं उवएस उत्तं ज्ञान मय सुद्ध दर्सनं सुद्धं।
मिथ्यातराग रहियं, ऋतं जानेहि सयल दोस चवनं ॥ ३४८ ॥

अन्वयार्थ—(ऋतं उवएस उत्तं) सत्यका उपदेश ऐसा कहा गया है (ज्ञान मय सुद्ध दर्सनं सुद्धं) जहां ज्ञानमई शुद्ध भाव हो व शुद्ध सम्यग्दर्शन हो (मिथ्यात राग रहियं) जहां मिथ्यात्वका राग बिलकुल न हो (सयल दोस चवनं ऋतं जानेहि) सर्व दोषोंसे रहित सत्यव्रतको जानो।

भावार्थ—सत्यव्रतीका श्रद्धान व ज्ञान शुद्ध निर्दोष होता है वह कभी मिथ्यात्व वर्द्धक बातोंका राग नहीं करता है न वैसा उपदेश देता है न अनुमोदना करता है जहांपर पीडा सम्बन्धी व आत्माके अहित सम्बन्धी भाव न हो वही सत्यव्रत है। सत्यव्रती सदा स्वपर हितकारी व शास्त्रोक्त वचन बोलता है।

ऋतं अमेय मेयं, सारं संसार सरनि मुक्कस्य।
ऋतं तिलोय मइओ, नंत चतुष्टय मुक्ति संयुत्तं ॥ ३४९ ॥

अन्वयार्थ—(ऋतं अमेय मेयं) सत्यके अनेक भेद हैं (संसार सरनि मुक्कस्य तिलोय मइओ सारं ऋतं) संसारके मार्गसे छुडानेके लिए तीन लोकमें सार यह सत्यव्रत है (नंत चतुष्टय मुक्ति संयुत्तं) इसी सत्यव्रतके पालनेसे अनन्त चतुष्टय सहित मोक्षका फल होता है।

भावार्थ—सत्यके अनेक भेद हैं तौभी चार प्रकारका सत्य है। यह चार प्रकार असत्यके त्यागसे होता है। चार प्रकार असत्य हैं—

(१) जो वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे हो उसको कहना नहीं है।

(२) जो वस्तु परद्रव्य क्षेत्र काल भावसे न हो उसको कहना नहीं है।

(३) वस्तु हो तो कुछ कहना कुछ।

(४) गर्हित अर्थात् कठोर हास्यरूप सूत्र विरुद्ध वचन, छेदन, भेदन, मारनकारक सावद्य वचन तथा भयकारी शोककारी कलहकारी अप्रिय वचन, इन चार प्रकार असत्यको छोडकर सत्य वचन कहना योग्य है। सत्य व्रत तीन लोकमें सार है। जो अपनी व्रत प्रतिज्ञाके नियमपर दृढ रहते हैं, उपसर्ग पडनेपर भी पालते हैं वे देवों द्वारा व जगत द्वारा पूजे जाते हैं, वे शीघ्र कर्म काटकर मुक्त होजाते हैं। सत्यपर दृढ रहना महान व्रत है।

अचौर्य अणुव्रत।

स्तेयं पद रहियं, जिन उक्तं च लोपनं जाने।
अनेय व्रत धारी, स्तेयं सहाव रहिएन ॥ २५० ॥

अन्वयार्थ—(पद रहियं जिन उक्तं च लोपनं स्तेयं जाने) आगमके पदोंको औरका और अर्थ करके जिन आगमके कथनको छिपाना चोरी जानो तथा (सहाव रहिएन अनेय व्रतधारी स्तेयं) आत्मस्वभावमें रमण न करके आत्मज्ञान रहित अनेक व्रतोंको पालना भी चोरी है।

भावार्थ—शास्त्रके अर्थको लोपना बडी भारी चोरी है वैसे ही अपनेको व्रती मान करके भी मिथ्यात्वी होना व्रतके स्वभावको लोप करना है इसलिये चोरी है, अपने आत्माको ठगना है। व्रतोंके धारण करनेका फल आत्माका मनन है। जहां अपनेको व्रती माना जावे व आत्माका मनन न हो तो वह अपने आत्माको वंचित करना है व लोगोंको भी ठगना है, वे धोखेमें आकर व्रती मान लेंगे जब कि वह सच्चा व्रती नहीं है। इन भावोंकी चोरीको छोडना अणुव्रतीको ही बहुत आवश्यक है।

स्तेयं अज्ञानं, ज्ञानमय अप्प सहाव गोपंति।
अज्ञानं मिच्छत्तं, तिक्तं स्तेय विषय सुहरहियं ॥ २५१ ॥

अन्वयार्थ—(स्तेयं अज्ञानं) अज्ञानभाव रखना भी चोरी है (ज्ञानमय अप्प सहाव गोपंति) क्योंकि वह ज्ञानमई आत्माके स्वभावको छिपा रहा है, उसकी निधिको लोप कर रहा है (अज्ञानं मिच्छत्त स्तेय तिक्तं) इसलिये अज्ञान व मिथ्यात्वरूप चोरीको छोडना चाहिये (विषय सुहरहियं) विषयोंके सुखकी लम्पटताको मिटाना चाहिये।

भावार्थ—आत्माके सम्यग्ज्ञानका लोपना भी चोरी है। अचौर्य अणुव्रतीको आत्मज्ञानी होना चाहिये, मिथ्यात्वभाव व अज्ञानभाव नहीं होना चाहिये। उसको विषयोंका अंधा नहीं होना चाहिये, चोरीका कारण धनकी अधिक तृष्णा है। जो लोग जिह्वालम्पटी, स्त्रीभोग लम्पटी, वस्त्राभूषण लम्पटी होते हैं वे चोरी व अन्यायसे धन एकत्र करते हैं। इसलिये विषयोंकी लम्पटताका त्याग चोरीका त्याग है।

स्तेय तिक्तं ति सुद्धं, वर सम्मत्त ज्ञान दंसन समग्गं।
सहकारे तव युत्तं, चौ विहि आराहना मयं सुद्धं ॥ ३५२ ॥

अन्वयार्थ—(स्तेयं तिक्तति सुद्धं) जो चोरीके भावको–आत्माके गुणोंके लोप करनेवाले भावको छोडते हैं वे शुद्ध व्रती (वर सम्मत्त ज्ञान दंसन समग्गं) निर्मल उत्तम सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान सहित होकर (सहकारे तव युत्तं) इन दर्शन ज्ञानकी सहायतासे तप करते हैं (चौ विहि आराहना मयं सुद्धं) वे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप चार प्रकारकी आराधनाको शुद्धतासे पालते हैं।

भावार्थ—आत्माका आराधन तथा चार आराधनाका आराधन सची आराधना है। जो इस आराधनाको छोडकर पुद्गलके तरफ लवलीन होते हैं, राग द्वेषमय होते हैं, विषयवासनामें जाते हैं वे अपराधी होते हैं। अपगता राधा आराधना यस्मात्, उन्होंने आराधना छोडी घरमें गए अतएव चोर भए, अपराधी भए, वे बंधमें भी पडते हैं इसलिये निश्चयसे वही अचौर्य व्रती है, जो चार प्रकारकी आराधनामें व आत्माकी आराधनामें उपयुक्त है

ज्ञान सहावे निश्चं, लोकालोकेन लोकितं सुद्धं।
जिनउत्तं सद्दहनं, मिथ्या मय खण्डनं सुद्धं ॥ ३५३ ॥

अन्वयार्थ—(लोकालोकेन लोकितं सुद्धं ज्ञान सहावे निश्चं) लोक तथा अलोकको देखनेवाले शुद्ध ज्ञान स्वभावका यथार्थ निश्चय तथा (जिन उत्तं सद्दहनं) जिनेन्द्र कथित तत्वोंका श्रद्धान और (मिथ्यामय खण्डनं सुद्धं) मिथ्यात्वका खण्डन शुद्ध सम्यक्त ग्रहण अचौर्य व्रत है।

भावार्थ—आत्माका जिससे लोप न हो, आत्माकी सम्पत्तिकी रक्षा हो वही अचौर्य व्रत है। अतएव मिथ्या श्रद्धानको हटाकर सम्यग्दर्शन रखना। जिनवाणीपर श्रद्धा लाना व आत्माके लोकालोक ज्ञाता स्वभावका निश्चय होना अचौर्य व्रत है।

अप्प सरूवं दिट्ठं, अप्पा परमप्प ज्ञान स सरूवं ।
रागादि विषय विरयं, संसुद्धं चेयना रूवं ॥ ३५४ ॥

अन्वयार्थ—निश्चय अचौर्यव्रत यह है कि (अप्प सरूवं दिट्ठं) आत्माके स्वभावको देखना कि (अप्पा परमप्प ज्ञान स सरूवं) यह आत्मा परमात्माके समान ज्ञानस्वरूपी है तथा (रागादि विषय विरयं) रागादि विषय विकारोंको त्यागकर (संसुद्धं चेयना रूवं) परम शुद्ध चेतनाके स्वभावमें लय होता है।

भावार्थ—निज आत्माको जैसाका तैसा परमात्म स्वभावरूप श्रद्धानमें लाकर वीतरागभाव सहित ज्ञान चेतना रूप होना निश्चय अचौर्य व्रत है।

ब्रह्मचर्य अणुव्रत ।

अबंभतिक्कं च उत्तं, दहविह परिनाम विकह सहावसंयुत्तो ।
मनकारं चवल सहावं, अबंभ जानेहि नरय वासम्मि ॥३५५॥

अन्वयार्थ—(अबंभतिक्कं च उत्तं) अब्रह्मके त्यागको कहते हैं (दह विह परिनाम विकह सहावसंयुत्तो मनकारं चवल सहावं अबंभ जानेहि) दस प्रकार परिणामोंके साथ व विकथा स्वभावके साथ मन सम्बन्धी चंचलताके स्वभावको अब्रह्म जानो (नरय वासम्मि) यह नरकवासका कारण है।

भावार्थ—जहां मनमें आकुलता-व्याकुलता चञ्चलता अथिरता हो, वही अब्रह्म भाव है। यह चपलता इस प्रकार कुशील प्रेरक भावोंमें लगनेसे होती है। वे दस भाव १२४ गाथामें ब्रह्मचर्य

प्रतिमामें कहे गए हैं। स्त्री, भोजन, देश व राजाओंकी विकथाओंमें काम भावकी जागृति होती है। जब मन विकथामें रंजायमान होता है तब चपलता रहती है। भावोंमें कामका विकार होना ही अब्रह्म भाव है। यह भाव तीव्र पापबन्धकारक व नरकका द्वार है।

मिथ्यात्व राग जुत्तं, विषय वसन संजुत्त तं नेयं।
परिनामं विचलंता, तिक्तं च मन वयन कायेन ॥ ३५६ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात्व राग जुत्तं) मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या राग सहित (विषय वसन संजुत्त तं नेयं परिनामं विचलंता) इंद्रियोंके विषय व सात व्यसनोंकी प्रेरणासे भाव चल विचल व चपल होजाते हैं (मन वचन कायेन तिक्तं च) इसलिये इन सब चपलताके कारणोंको मन, वचन, कायसे छोड देना चाहिये।

भावार्थ—मनको काम विकारमें फँसानेवाले जो ३ भाव हैं, ब्रह्मचर्य पालनेवालोंको उन सबको मन, वचन, कायसे त्यागना चाहिये। वे हैं-मिथ्या श्रद्धान जिससे मानवको इंद्रिय सुखमें ही आस्था होती है, सच्चे अतीन्द्रिय सुखको नहीं पहचानता है। (२) इंद्रियोंके विषयोंका तीव्र राग, (३) जूआदि सात व्यसनोंकी आदत। यदि इनको छोड दिया जावे तो परिणाम गृहस्थके मर्यादित स्वस्त्री संतोषमें रह सक्ते हैं।

बंभबंभ सरूवं, पर दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानि।
अप्पा परमप्पानं, ज्ञान सहावेन बंभचरनं तं ॥ ३५७ ॥

अन्वयार्थ—(बंभबंभ सरूवं) ब्रह्मचर्य व्रतमें निश्चय ब्रह्मचर्यका स्वरूप यह है कि (पर दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानि) निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व निश्चय शुद्ध चारित्रको पाला जावे (अप्पा परमप्पानं ज्ञान सहावेन) आत्माको परमात्मारूप निश्चय करके ज्ञान स्वभावमें लीन रहा जावे (बंभचरनं) यह निश्चय ब्रह्मचर्य व्रत है।

भावार्थ—अपने आत्माका स्वभाव परब्रह्म परमात्म-स्वरूप है। उसीमें कल्लोल करना, उससे बाहर न जाना निश्चय ब्रह्मचर्य व्रत है।

बंभं अबंभ तिक्तं, मिथ्या मय सयल दोस विरयं च।
बंभं सुद्ध सरूवं, अप्प सहावेन जिन दिट्ठं ॥ ३५८ ॥

अन्वयार्थ—(अबंभ तिक्तं बंभं) अब्रह्म भावका त्याग ब्रह्मचर्य है। (मिथ्या मय सयल दोस विरयं च) मिथ्यात्व भाव मद भाव आदि सर्व रागादि दोषोंका त्याग ब्रह्मभाव है तथा (सुद्ध सरूवं बंभं) आत्माका शुद्ध स्वभाव ब्रह्म है (अप्प सहावेन जिन दिट्ठं) अपने आत्माका निज स्वभावमें रहना ब्रह्मचर्य है ऐसा जिनेन्द्रने देखा है।

भावार्थ—आत्माका शुद्ध स्वभाव ब्रह्म स्वभाव है, इसमें लय होके रमना ब्रह्मचर्य व्रत है। रागादि दोषोंका त्याग करना इसीलिये जरूरी है।

बंभं चरन समत्थं, दुविहं चारित्त चरन अनुमोय।
अप्प सहाव सरूवं, बंभं चरन अनुव्वयं हुंती ॥ २५९ ॥

अन्वयार्थ—(बंभं चरन समत्थं) वही ब्रह्मचर्यके पालनेको समर्थ है (अनुमोयं दुविहं चारित्त चरन) जो आनन्दपूर्वक निश्चय व्यवहार चारित्रको आचरण करता है (अप्प सहाव सरूवं) आत्माके स्वभावमें रमता है (बंभं चरन अनुव्वयं हुंती) वही ब्रह्मचर्य अणुव्रती होता है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य अणुव्रती व्यवहारमें स्वस्त्रीमें संतोषपूर्वक वर्तता है। अन्य प्रकार कुशीलके भावोंसे विरक्त रहता है निश्चयसे वह अपने आत्माके स्वभावका मनन करता है।

परिग्रह प्रमाण अणुव्रत।

पर पुग्गल परमानं, पुग्गलभावेन सयल तिक्तं च।
भावै एक अद्वैतं, पुग्गल परमान सव्वहा सव्वे ॥ २६० ॥

अन्वयार्थ—(पर पुग्गल परमानं) परिग्रह प्रमाण व्रत यह है कि (पुग्गल भावेन सयल तिक्तं च) पुद्गल स्वरूप सर्व वस्तुओंको जानकर-आत्मासे भिन्न मानकर उनसे ममता छोड़े (एक अद्वैतं भावै) एक अद्वैत अनुपम निज आत्माको ही अपना मानकर भावै, आवश्यक्तानुसार (पुग्गल परमान सव्वहा सव्वे) सर्व प्रकारसे सर्व मकान जमीनादि पदार्थोंको प्रमाण करले, शेषका त्याग करदे।

भावार्थ—इस व्रतका स्वरूप यह है कि सम्यग्दृष्टी अपनी आत्मीक सम्पदाको ही अपना

परिग्रह जानता है और सर्वको पर जानकर उनसे ममता त्यागता है। गृहस्थमें रहनेके कारण दश प्रकारके परिग्रहका प्रमाण कर लेता है, शेषका त्याग कर देता है।

१ क्षेत्र या खेत-जमीन, २ मकान, ३ चांदी, ४ सोना जवाहरात, ५ धन-गाय भैंस घोडे आदि, ६ धान्य-अनाज अपने कुटुम्बके खाने योग्य कितना संग्रह करूंगा, ७ दासी, ८ दास, ९ कपडे, १० वर्तन।

मद मिथ्यात विमुक्कं, मुक्कं संसारसरनि सद्भावं।
मुक्कं कषाय विषयं, मुक्कं अज्ञान सयल दोस परिचारं ॥ ३६१ ॥

अन्वयार्थ—(मद मिथ्यात विमुक्कं) पांचमा अणुव्रती परिग्रहका मद व उनका अहंकार ममकाररूप मिथ्यात्व भाव छोड देता है (मुक्कं संसार सरनि सद्भावं) संसार भ्रमण करानेवाले ममत्व-भावको त्याग देता है (मुक्कं कषाय विषयं) तीव्र कषाय व विषय-वासनाको त्याग देता है (मुक्कं अज्ञान सयल दोप परिचारं) व मिथ्या ज्ञान सम्बन्धी सर्व दोषके प्रचारको छोड देता है।

भावार्थ—अणुव्रती श्रावक सम्यग्दृष्टी ज्ञानी होता है, श्रद्धामें परमाणु मात्र भी परपदार्थको अपना नहीं जानता है वह पूर्ण वैरागी है। इसलिये उपस्थित परिग्रहमें भी न मद है न ममत्व है न आपापना है। संसारमें भ्रमणका कारण मोह है सो उसके नहीं है। विषय वांछा भी कषायके उदयसे है, वह इसे भी नहीं चाहता है। परिणामोंमें अति मंद कषाय है।

अप्प सहावे निलयं, चरनं सम्मत्त ज्ञान दंसनं सुद्धं।
ज्ञानेन ज्ञान समयं, पुग्गल परमान सव्वहा सव्वे ॥ ३६२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावे निलयं) यह श्रावक आत्माके स्वभावमें लीन रहता है (चरनं सम्मत्त ज्ञान दंसनं सुद्धं) इसके भावोंमें शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रहता है (ज्ञानेन ज्ञान समयं) ज्ञानके द्वारा ज्ञानमई आत्माको अनुभवता है (पुग्गल परमान सव्वहा सव्वे) तथा सर्वथा प्रकार सर्व आवश्यक परिग्रहका प्रमाण कर लेता है।

भावार्थ—यह ज्ञानी श्रावक यद्यपि आवश्यक परिग्रहका प्रमाण कर लेता है तथापि ऐसा वैरागी है कि रत्नत्रय स्वरूप निज आत्माके स्वभावमें रमण करनेका अभ्यासी होता है।

परदव्वं न वि दिट्ठं, पर पुग्गल परमान चिंतंती ।
मिथ्या सल्य निकंदं, षय उवसम संजदो सुद्धो ॥ ३६३ ॥

अन्वयार्थ—(परदव्वं न वि दिट्ठं) पर द्रव्यकी तरफ ममता जरा भी नहीं रखता है (पर पुग्गल परमान चिंतंती) मात्र परिग्रहको जो प्रमाण किया है उसीकी चिंता रखता है (मिथ्या सल्य निकंदं) मिथ्यात्वकी शल्य निकाल डाली है (षय उवसम संजदो सुद्धो) यह चारित्रकी अपेक्षा संयमासंयमी क्षयोपशम भावधारी निर्मल संयमी है।

भावार्थ—इस व्रतीकी दृष्टि आत्माहीकी तरफ रहती है। जितना परिग्रहका प्रमाण किया है उसीके भीतर इच्छा व चिंता रखता है। उसके सिवाय इच्छा व चिंता नहीं करता है। इसमें मिथ्यात्वभाव नहीं है। जो परिग्रह है उसको भी पर जानता है। यह देशव्रती पंचम गुणस्थानी संयमासंयम क्षयोपशम भावका धारी है।

अप्पे अप्प सरूवं, अप्पा परमप्प जानि सद्भावं ।
पर पुग्गल परमानं, ज्ञानमयनंत चतुष्ट संजुत्तं ॥ ३६४ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पे अप्प सरूवं) यह व्रती आत्मामें आत्माका स्वभाव पहचानता है (अप्पा परमप्प जानि सद्भावं) आत्माको ही स्वरूपसे परमात्मा रूप जानता है (पर पुग्गल परमानं) परिग्रहका प्रमाण रखता हुआ भी पुद्गलको पर ही मानता है (ज्ञानमय नंत चतुष्ट संजुत्तं) ज्ञानमई अनंत चतुष्टय धारी आत्मा है इस भावको भी रखता है।

भावार्थ—यह पंचम अणुव्रतधारी मुख्यतासे अपनी आत्माको परमात्मारूप जानके उसीमें अनंत ज्ञानादि सम्पदाको अपनी मानता है। भावसे सर्व परसे विरक्त रहता है।

एवं अनुव्वयाइं, परमसरूवेन अद सहाव संजुत्तं ।
अप्पा अप्पम्मि रओ, अनुव्वयं धरंति सुद्ध स सहावं ॥ ३६५ ॥

अन्वयार्थ—(एवं अनुव्वयाइं) इस प्रकार ये पांच अणुव्रत हैं सो (परमसरूवेन अद सहाव संजुत्तं) निश्चयसे आत्माके स्वभावरूप ही हैं (अप्पा अप्पम्मि रओ) जहां आत्मा आत्मामें ही रत है वहां (स सहावं अनुव्वयं धरंति) स्वाभाविक निश्चय अणुव्रतोंका धारण है।

भावार्थ—निश्चयसे अणुव्रतोंका धारण आत्मानुभवरूप है। जो निज आत्माके स्वभावमें रत है वही रागद्वेष छोडनेसे अहिंसाव्रती है, वही असत्य पुद्गलसे विरक्त रहनेसे व सत्य स्वरूपमें रमनेसे सत्य व्रती है, वही अपने धनमें सन्तोष माननेसे तथा पर परमाणु मात्रसे रागभाव न करनेसे अचौर्य व्रती है, वही ब्रह्मस्वरूपमें लीन होनेसे ब्रह्मचर्य व्रती है, वही पर परिग्रहसे ममता रहित होनेसे परिग्रहका त्यागी है।

भावेन धम्म संजुत्तो, भावे निज रूव अप्प संपन्नं।
भावेन भाव सुद्धो, अनुव्वया एरिसो सुद्धो ॥ ३६६॥

अन्वयार्थ—(भावे धम्म संजुत्तो) भावमें ही धर्म रहता है (भावे निज रूव अप्प संपन्नं) भावमें ही अपने आत्माका स्वभाव झलकता है (भावेन भाव सुद्धो) भावसे ही भावोंकी शुद्धि होती है (अनुव्वया एरिसो सुद्धो) इस कारण निश्चय शुद्ध अणुव्रत आत्माके शुद्ध स्वभावमें ही है।

भावार्थ—धर्म आत्माका स्वभाव है। सर्व ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व चारित्र व्रत तप आदि आत्मामें ही है। अणुव्रत भी आत्मामें ही है। जब आत्माका भाव शुद्ध है, अहिंसक है, सत्यरूप है, अस्तेयरूप है, ब्रह्ममय है, परिग्रह रहित है तब ही वह भाव व्रतरूप है। प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय है इससे भावोंमें एक देश शुद्धता होनेसे अणुव्रत है। जो कोई बाहरी अणुव्रत पाले परंतु अंतरंगमें भावरूपी व्रतोंको न पहचाने—शुद्ध आत्मरमणको न जाने तो वह सच्चा अणुव्रती श्रावक नहीं है।

दशलक्षण धर्म।

दह विहि धम्मं झायदि, वर उत्तमषमा ज्ञान संजुत्तं।
मद्दव अज्जव सुद्धं, सत्तं सउच संयम तप दत्तं ॥ ३६७ ॥
आकिंचन बंभचर्यं, दहविहि धम्मं च सुद्ध चरनानि।
झायति सुद्धं ज्ञानं, ज्ञान सहावेन धम्म संयुत्तं ॥ ३६८ ॥

अन्वयार्थ—(दह विहि धम्मं झायदि) सम्यग्दृष्टी दश प्रकार धर्मको ध्याता है (वर उत्तम खमा ज्ञान संयुत्तं) ज्ञान सहित श्रेष्ठ उत्तम क्षमाको (सुद्धं मद्दव अज्जव) उत्तम मार्दवको, उत्तम आर्जवको—(सत्तं सउच्च संयम तप दत्तं) उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम दान या त्यागको (आकिंचन बंभ वयं) उत्तम आकिंचन्यको, उत्तम ब्रह्मचर्यको (दहविहि धम्मं व सुद्ध चरनानि) इस प्रकार दशविधि धर्मको शुद्ध आचरण करता हुआ (ज्ञान सहावेन धम्म संयुत्तं सुद्धं झानं झायदि) ज्ञान स्वभावसे धर्म सहित शुद्ध धर्मध्यानको ध्याता है।

भावार्थ—ज्ञानी व्रती दशलाक्षणी धर्मको ध्याता है। यद्यपि इसका पूर्ण पालन साधु करते हैं तथापि गृहस्थी एक देश पालन करता है। भावना पूर्ण धर्मोंकी माता है। इन धर्मोंमें उत्तम विशेषण इसीलिये है कि इनका श्रेष्ठ रूपसे पालन साधुजन करते हैं। कष्ट व उपसर्ग पडनेपर भी क्रोध न करना उत्तम क्षमा है, अपमानित होनेपर भी मान न करना उत्तम मार्दव है, अनेक कष्टोंके होनेपर भी मायाचार न करना उत्तम आर्जव है। प्राण जाते हुए भी शास्त्र विरुद्ध वचन न कहना उत्तम सत्य है। घोर कष्ट पडनेपर भी लोभसे मलीन भाव न लाना उत्तम शौच है। पूर्ण प्रकार इंद्रिय व मनको दमन करना व छः कायके जीवोंकी दया पालना उत्तम संयम है, भलेप्रकार आत्मज्ञान पूर्वक तप करना उत्तम तप है, ज्ञानका व प्राणी दयाका दान भलेप्रकार देना उत्तम त्याग है। परिग्रहका पूर्ण त्याग उत्तम आकिंचन्य है। पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन उत्तम ब्रह्मचर्य है। इनको ध्यानमें रखकर व्रतीजन आत्मध्यान करते हैं।

उत्तम ऊर्ध सहावं, षम षमनिक सम्म लहु सद्भावं।
मद्दव मग उवएसं, अज्जव उवसमइ सरनि संसारे ॥ ३६९ ॥
सत्तं सास्वय रूवं, सौचं विमल निम्मलं भावं।
संयम मन संयमनं, तउ पुन अप्प सहाव निद्दिट्ठं ॥ ३७० ॥
त्यागं ज्ञान सहावं, आकिंचन धम्म धुरा वर धरनं।
बंभं बंभ सरूवं, ज्ञानमयं दह विहं धम्मं ॥ ३७१ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तम ऊर्द्ध सहावं) श्रेष्ठ स्वभावके लिये उत्तम विशेषण है (खम खमनिक सम्म रुहु सद्-भावं) ऐसी क्षमा क्षपणक जो निर्ग्रंथ साधु उनका प्राप्त स्वभाव है (मद्दव मग उवएसं) मार्दव धर्मसे वे साधु विनयपूर्वक पवित्र उपदेश करते हैं (अज्जव उवसमइ सरनि संसारे) आर्जव धर्मसे सरल भावसे वे संसार मार्गको शांत करते हैं–कम करते हैं (सत्तं सास्वय रूवं) सत्य धर्म आत्माका नित्य स्वभाव है (सौचं विमल निम्मलं भावं) शौच धर्म निर्मल संतोषरूप भाव है (संयम मन संयमनं) मनका भलेप्रकार निरोध सो संयम है (तउ पुन अप्प सहाव निदिट्ठं) तथा आत्माके स्वभावमें तपना तप कहा गया है (त्यागं ज्ञान सहावं) अपने ज्ञान स्वभावमें ठहरना यही परका त्याग है (आकिंचन धम्मवर धुरा धरनं) आकिंचन्य धर्म धर्मकी श्रेष्ठ धुरा जो ममता रहित भाव उसको धरना है (बंभं बंभ सरूवं) ब्रह्मचर्य तो ब्रह्म जो आत्मा उसका स्वभाव ही है (ज्ञानमयं दह विहं धम्मं) ये दश प्रकार धर्म ज्ञानमय आत्माके स्वभाव हैं।

भावार्थ—यहां आत्माके रमणमें ही दशों धर्म बता दिये हैं। कषाय रहित आत्माका भाव उत्तम क्षमा है, मान रहित परिणाम मार्दव है, शांत भाव आत्माके सन्मुख भाव आर्जव है, नित्य आत्म स्वभाव सत्य है, लोभ रहित शुद्ध भाव शौच है, मनका निरोध संयम है, आत्मध्यान तप है, परका त्याग आत्माका स्वभाव है, निर्ममत्व भाव आकिंचन्य है, ब्रह्ममें लीनता ब्रह्मचर्य है।

दह विहि धम्मुव एसं, धरयति धम्मं च जान परमत्थं।
परिनाम सुद्ध करनं, धरयति धम्मं सुनेयव्वं ॥ ३७२ ॥

अन्वयार्थ—(दह विहि धम्मुवएसं) इस तरह दश प्रकार धर्मका उपदेश है (परमत्थं जान च धम्मं धरयति) ज्ञानी उनके निश्चय स्वरूपको जानकर इन धर्मोंको धारता है (परिनाम सुद्धकरनं) परिणामोंका शुद्ध करना ही (धम्मं धरयति सुनेयव्वं) धर्मको धरना जानना चाहिये।

भावार्थ—जो धारण किया जावे वह धर्म है। इस तरह इन दश धर्मोंको निश्चयसे जानकर धारना चाहिये।

वय तव भावन युत्तं, भाउन भावंति दोष परिचत्तं।
अनुवय वयं च धरनं, षयकरनं सव्व दुक्खानं ॥ ३७३ ॥

अन्वयार्थ—(वय तव भावन जुत्तं) व्रत व तपकी भावना सहित (दोस परिचत्तं भावन भावंति) जो दोष रहित भावना भाते हैं (अनुवय वयं च धरनं) पांच अणुव्रत व सात शीलव्रतको धारते हैं (दुक्खानं षयकरनं) उनके सर्व दुःख क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—जो श्रावक पांच अणुव्रत तीन गुण व्रत चार शिक्षाव्रत ऐसे बार व्रतोंको पालते हुए साधुओंके पांच महाव्रत पालनेकी भावना करते हैं, साधुपदमें पहुंचनेकी उत्कंठा रखते हैं-बारह प्रकार तपका अभ्यास यथायोग्य उपवास ऊनोदर आदि करते हुए भलेप्रकार तपस्वी होनेका उत्साह रखते हैं और जो निरंतर आत्माकी भावना किया करते हैं वे कर्मोंका क्षय करते हैं। उनको नरक व पशुके दुःख कभी नहीं होते हैं। इस भवसे तो वे स्वर्गमें जाते हैं, परम्परा मोक्षके भागी होते हैं।

ज्ञान सहावं सुद्धं, मतिश्रुत ज्ञान संजदो सुद्धो।
अवहि उवन्नं भाओ, महावय भाव संकरनं ॥ ३७४ ॥

अन्वयार्थ—(मतिश्रुत ज्ञान संजदो सुद्धो) मतिश्रुत ज्ञानका धारी निर्दोष संयमको पालनेवाला (सुद्धं ज्ञान सहावं) शुद्ध ज्ञान स्वभावको ध्यानेवाला (महावय भाव संकरनं) महाव्रतके भावोंमें पलट जाता है। अर्थात् महाव्रती होजाता है (अवहि उवन्नं भाओ) जहां भावोंमें अवधिज्ञानकी प्राप्ति होजाती है।

भावार्थ—श्रावकके बारह व्रतोंको पालते हुए व आत्माकी शुद्ध भावना करते हुए यह जीव धीरे २ बाहरी व भीतरी चारित्रमें बढता जाता है, ग्यारहवीं प्रतिमा तक पहुंच जाता है। फिर वहां सर्व वस्त्रादि परिग्रह त्यागकर जब व्यवहारमें पांच महाव्रतोंको धारण करता है व सामायिक चारित्रको धारनेकी प्रतिज्ञा करता है और आत्मध्यानमें बैठ जाता है तब यह पांचवें देशविरत गुणस्थानसे एकदम सातवें अप्रमत्त गुणस्थानमें पहुंच जाता है। और यथार्थ भाव लिंगी आत्मध्यानी साधु होजाता है। यदि भावोंकी वृद्धि होती है तो साधुके अवधिज्ञान भी प्राप्त होजाता है। यद्यपि श्रावकोंके अवधिज्ञानका निषेध नहीं है, परन्तु क्वचित् होता है। साधुओंके ध्यानकी निर्मलतासे शीघ्र होजाना सम्भव है।

अप्पं अप्प सहावं, अप्पा परमप्प ज्ञान संजुत्तो।
चिन्तन्तो परम पयं, अहिंसा वयं महावयं हुंति ॥ ३७५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पं अप्प सहावं) जहां आत्मा अपने स्वभावमें है, (अप्पा परमप्पा ज्ञान संजुतो) अथवा आत्मा परमात्माका ध्यान कर रहा है (चिंतंतो परम पयं) या परमपद जो मोक्ष है उसका मनन करता है (अहिंसावयं महावयं हुंति) उसीके अहिंसाव्रत महाव्रत होता है।

भावार्थ—जिस समय आत्मा अपने आपको परमात्माके समान शुद्ध ज्ञाता दृष्टा अविनाशी अनुभव करता है उसका लक्ष्यबिंदु मोक्ष है तब वह पूर्ण अहिंसा महाव्रतको पाल रहा है, क्योंकि न तो वहां राग द्वेष मोह हैं जिनसे भावोंकी हिंसा हो और न वहां कोई मन वचन काय द्वारा बाहरी आरंभ है जिससे द्रव्यहिंसा हो। साधुजन ऐसे महाव्रतके धारी होते हैं।

एकं जिनं सरूवं, जिन रूवं जिनवरेहि निद्दिट्ठं।
जिनयतिकं मति सुद्धं, सुद्धं सम्मत्त सुद्ध स सरूवं ॥ ३७६ ॥

अन्वयार्थ—(एकं जिनं सरूवं) एक ही जिनेन्द्रका स्वरूप (जिन रूवं) जिन रूप दिगम्बर और शुद्ध भावमई है ऐसा (जिनवरेहि निद्दिट्ठं) जिनेन्द्रोंने कहा है (जिनयतिकं) ऐसा ही रूप जैनके यतिका होता है (मति सुद्धं) जिनकी बुद्धि शुद्ध होती है (सुद्धं सम्मत्त) उनमें निश्चय सम्यग्दर्शन होता है (सुद्ध स सरूवं) उनका निज अंतरंग रूप शुद्ध होता है।

भावार्थ—यहां द्रव्यलिंग व भावलिंग धारी जैन साधुका कथन किया है। उनका द्रव्य भेष-बाहरी स्वरूप श्री तीर्थंकर भगवानके समान सर्व परिग्रहसे रहित नग्न दिगम्बर होता है तथा उनका अंतरंग भाव भी राग द्वेष मोहसे रहित शुद्ध सम्यग्दर्शनमई आत्मानुभव रूप होता है।

जिनयं घाय चवकं, जिनयं संसार सरनि मोहंधं।
कम्ममल पयडि जिनयं, अप्पा परमप्प सुद्ध स सरूवं ॥ ३७७ ॥

अन्वयार्थ—जिन उसको कहते हैं जिसने (घाय चवकं जिनयं) चार घातीय कर्मोंको जीत लिया है (संसार सरनि मोहंधं जिनयं) व जिसने संसारके मार्गमें भ्रमण करानेवाले अंध मोहको जीत लिया है (कम्ममल पयडि जिनयं) व कर्ममल प्रकृतियोंको जीत लिया है (अप्पा परमप्पा सुद्ध स सरूवं) तथा जिसका आत्मा परमात्मा रूप शुद्ध अपने ही स्वभावमें होता है।

भावार्थ—जिस जिनेन्द्रके समान जैन साधुका स्वरूप होता है वह वास्तवमें जिनेन्द्र है, क्योंकि उन्होंने ज्ञानावरणको क्षय करके अनंत ज्ञान, दर्शनावरणको क्षय करके अनंत दर्शन, मोहको क्षय करके क्षायिक सम्यक्त और क्षायिक चारित्र, अंतरायको क्षय करके अनंत बल प्राप्त कर लिया है। अब मोहका बल कुछ भी उन्हें जीत नहीं सक्ता है। उन्होंने मोहके सर्व बलका संहार कर दिया है। शेष अघातीय कर्म भी जली हुई रस्सीके समान होगए हैं, शीघ्र ही छूट जांयगे। उनको भी वे जीत चुके हैं। तथा जो अपने शुद्ध परिणतिमें तल्लीन हो आत्मानन्दका स्वाद लेरहे हैं।

जिनयं कुज्ञान भावं, मय मिथ्यात सल्य तिविहं वा।
जिनयं कषाय भावं, जिनरूवी सुद्ध साधओ निश्चं ॥ ३७८ ॥

अन्वयार्थ—जिनेन्द्रके समान (जिन रूवी) जिन लिंगके धारी साधु (कुज्ञान भावं जिनयं) कुज्ञान भावको जीतनेवाले हैं (वा मय मिथ्यात सल्य तिविहं कषाय भावं जिनयं) तथा आठ मद, मिथ्यात्व, माया, मिथ्या निदान तीन प्रकार शल्य तथा क्रोधादि कषायोंको जीतनेवाले हैं तथा (सुद्ध निश्चं साधओ) शुद्ध निश्चय आतम-स्वभावके साधन करनेवाले हैं।

भावार्थ—जिनके समान चलकर जिन समान होनेकी भावना करनेवाले जैन साधु सर्व प्रकार कुमति, कुश्रुत, कुअवधिसे रहित होते हैं। उनमें न किसी प्रकारका मद होता है, न पर्याय बुद्धिका अहंकार रूप मिथ्यात्व होता है, न भीतर शल्यके समान चुभनेवाले माया, मिथ्या, निदान भाव होते हैं, न क्रोधादि कषायोंका झलकाव होता है। वे अपने आत्मीक शुद्ध स्वभावके साधन करनेवाले होते हैं। निश्चय रत्नत्रयमई मोक्षमार्गको जो साधै सो साधु होता है।

ज्ञान सहाव स उत्तं, ज्ञानं ज्ञानेन ज्ञान सं सुद्धं।
ज्ञानं अमल सरूवं, जं रयनं दिनयरं तेजं ॥ ३७९ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहाव स उत्तं) उसे ही ज्ञान स्वभाव कहते हैं जहां (ज्ञानं ज्ञानेन ज्ञान सं सुद्धं) ज्ञान आत्मज्ञानके द्वारा शुद्ध ज्ञानरूप परिणमन करें (ज्ञानं अमल सरूवं) ज्ञानका स्वभाव सर्व मलसे रहित है (जं रयनं दिनयरं तेजं) जैसे सूर्यका तेज रात्रिके अन्धकारसे रहित है।

भावार्थ—जिस ज्ञान स्वभावमें साधुजन रमण करते हैं वह ज्ञान स्वभाव शुद्ध आत्मीक ज्ञानका ज्ञानरूप परिणमन है। अर्थात् ज्ञान चेतना रूप है। जहां ज्ञानानन्दका अनुभव आता है उस स्वानुभव रूप ज्ञानमें संकल्प विकल्प व राग द्वेषादिका कोई भी मल नहीं है, वह विलकुल शुद्ध है जैसे-सूर्यका तेज रात्रिके अन्धियारेके विना शुद्ध होता है। संकल्प विकल्पका होना ज्ञान सूर्यके लिये रात्रिको जगाना है।

रूवं अरूव सुद्धं, रूवातीतं च विगत रूवेन।
विज्ञान ज्ञान रूवं, जिनरूवी साधओ सुद्धं ॥ २८० ॥

अन्वयार्थ—(जिनरूवी) जिनके समान अंतरंग बहिरंग परिग्रह रहित लिंगके धारी साधु (सुद्धं रूवं साधओ) शुद्ध आत्म स्वभावको साधन करनेवाले होते हैं-वह स्वभाव (अरूव सुद्धं) वर्णादि रहित शुद्ध अमूर्तीक है (रूवातीतं) रूपातीत है (च विगत रूवेन) तथा जिसमें सर्व पौद्गलिक विकार रागादि भाव नहीं हैं (विज्ञान ज्ञान रूवं) वह भेद ज्ञान द्वारा अनुभव करने योग्य ज्ञान स्वभाव है।

भावार्थ—यहां साधुके भावलिंगका कथन किया है कि वे साधु अमूर्तीक शुद्ध सिद्ध सम वीतराग ज्ञानानंदमई आत्माको भेद विज्ञानके द्वारा उस सर्व परसे भिन्न जानके अनुभव करते हैं। यहां जिनका स्वरूप भावकी अपेक्षासे है।

मूलगुनं संसुद्धं, उत्तर गुन सुद्ध धरंति साहूनं।
साहू साधु ति अर्थं, पंचार्थं पंच ज्ञान संसुद्धं ॥ २८१ ॥

अन्वयार्थ—(साहू) साधु महाराज (साहूनं संसुद्धं मूलगुनं सुद्ध उत्तर गुन धरंति) साधुओंके शुद्ध अट्ठाईस मूलगुण व शुद्ध उत्तरगुण धारण करते हैं। (तिअर्थं पंचार्थं पंच ज्ञान संसुद्धं साधु) वे तीन पदार्थ रत्नत्रय धर्म पांच पदार्थ पंच परमेष्ठी पद व शुद्ध मतिज्ञान आदि पांच ज्ञानोंको साधन करते हैं।

भावार्थ—साधुओंके प्रसिद्ध अट्ठाईस मूलगुण नीचे प्रकार हैं-पांच महाव्रत अहिंसादि + पांच समिति ईर्या समिति आदि + पांच इंद्रियोंका दमन + छः आवश्यक नित्यकर्म-समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग + केशलोंच + स्नानका त्याग, दंतधोवनका त्याग + एकवार

भोजन + खडे हुए भोजन + भूमि शयन + वस्त्र त्याग। उन्होंके सूक्ष्म भेद ८४ लाख उत्तर गुण होते हैं। साधु मूलगुणोंको निर्दोष पालते हुए उत्तर गुणोंकी प्राप्तिका साधन करते हैं, रत्नत्रय धर्मको व्यवहार व निश्चयनय द्वारा यथार्थ जानकर पालते हैं। वे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु इन पांचों पदोंमें यथासम्भव उन्नति करते जाते हैं। तथा ये ही मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञानको यथासम्भव वृद्धि करते व प्राप्त करते हैं। साधु वे ही हैं जो धर्मका साधन करके निज अविनाशी पदपर पहुंच जावें। उत्तर गुणोंका वर्णन मूलाचारमें इसप्रकार है—

पाणिवह मुसावादं अदत्त मेहुण परिग्गहं चेव। कोहमदमायलोहा भय अरदिरदी दुगुंछा य ॥ १०२४ ॥

मणवयणकायमंगुल मिच्छादंसण पमादो य। पिसुणत्तणमण्णाणं अणिग्गहो इंदियाणं च ॥ १०२५ ॥

भावार्थ—१ हिंसा, २ झूठ, ३ चोरी, ४ अब्रह्म, ५ परिग्रह, ६ क्रोध, ७ मान, ८ माया, ९ लोभ, १० भय, ११ अरति, १२ रति, १३ जुगुप्सा, १४ मन, १५ वचन, १६ और काय सम्बंधी पाप क्रिया, १७ मिथ्यादर्शन, १८ प्रमाद, १९ पैशून्य, २० अज्ञान, २१ इंद्रियोंके अनिग्रह (न रुकना)।

नोट—यहां अंगुलका भाव मलीनता झलकना है। ये २१ भेद मूल हैं।

अदिक्कमणं वदिक्कमणं अदिचारो तहेव अणाचारो। एदेहिं चदुहिं पुणो सावज्जो होइ गुणियव्वो ॥ १०२६ ॥

भावार्थ—अतिक्रम (विषयाभिलाषा), प्रतिक्रम (विशेष इच्छा कि संयम उल्लंघैं) ३ अतीचार, अनाचार, इन चारसे गुणा करनेसे २१ के ८४ भेद हुए।

पुढविदगागणिमारुयपत्तेयाणंतकाइया चेव। वियतियचदुपंचिंदिय अण्णोण्णवधाव दस गुणिदा ॥ १०२७ ॥

भावार्थ—१ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु कायिक, ५ प्रत्येक वनस्पति, ६ साधारण वनस्पति, ७ द्वेन्द्रिय, ८ तेन्द्रिय, ९ चौन्द्रिय, १० पंचेन्द्रिय। इनके आपसमें घात सम्भव है। इससे १० को १० से गुणा करनेसे १०० हुए। ऊपर ८४ को १०० से गुणा करनेसे ८४०० भेद हुए—

इत्थीसंसग्गी पणिदरसभोयण गंधमल्लसंठप्पं। सयणासणभूसयणं छट्ठं पुण गीयवाइयं चेव ॥ १०२८ ॥

अत्थहस संपओगो कुसील संसग्गि रायसेवा य। रत्ती वि य संयणं दस सीलविराहणा भणिया ॥ १०२९ ॥

भावार्थ—१ स्त्रियोंके साथ स्नेह, २ पुष्ट आहारका ग्रहण, ३ सुगन्ध माला आदिका ग्रहण, ४ कोमल शय्या आसन, ५ आभूषण धारण, ६ गीत वादित्र, ७ धनका संग्रह, ८ कुशीलोंकी संगति,

९ राज सेवा या रागसे वर्तन, १० रात्रिको चलना। ये दस शीलकी विरोधनाएँ हैं। ऊपरके ८४०००को इन १० से गुण करनेसे ८४००० उत्तर गुण हुए।

आकंपिय अणुमणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च। छण्णं सद्दाकुलियं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी ॥ १०३० ॥

भावार्थ—१-अकंपित, २-अनुमानित, ३-दृष्टि, ४-बादर, ५-सूक्ष्म, ६-प्रच्छन्न, ७-शब्दाकुलित, ८-बहुजन, ९ असक्त, १०-तत्सेवी। ये दश आलोचनाके दोष हैं। इनको ८४००० से गुणनेसे ८४०००० हुए।

आलोयण पडिक्कमणं, उभय विवेगो तथा उस्सग्गो। तविउ छेदो मूलं पि यं परिहारो चेव सद्दहणा ॥ १०३१ ॥

भावार्थ—१-आलोचना, २-प्रतिक्रमण, ३-उभय, ४-विवेक, ५-व्युत्सर्ग, ६-तप, ७-छेद, ८-मूल, ९-परिहार, १०-श्रद्धान। इन दस प्रकारके प्रायश्चित्तसे ८४०००० दोषको टालनेसे (८४०००००) ८४ लाख उत्तर गुण कहलाते हैं। इन उत्तर गुणोंके धारी साधु होते हैं।

पंच ज्ञान स सहावं, दह धम्मं सम्मत्त सुद्ध सं सुद्धं।
तेरह विहस्य चरनं, सम्मत्तं संजमेन सुद्ध संजुत्तं ॥ ३८२ ॥

अन्वयार्थ—(पंच ज्ञान स सहावं) पांच ज्ञानमई निज स्वभावको (दह धम्मं) उत्तम क्षमादि दया धर्मको (सम्मत्त सुद्धं) शुद्ध सम्यग्दर्शनको (सं सुद्धं तेरह विहस्य चरनं) शुद्ध तेरा प्रकार चारित्रको (सुद्ध सम्मत्तं संजमेन संजुत्तं) व शुद्ध सम्यक्त पूर्वक संयमकी साधन करते हैं।

भावार्थ—साधु वे ही हैं जो साधन करें। वे निश्चयसे आत्माके स्वभावका ध्यान करते हैं। उसीसे उनमें मतिज्ञानादि पांच ज्ञान झलक जाते हैं। उनमें तेरह प्रकारका चारित्र भी यथार्थरूपसे पाया जाता है। अर्थात् ये पांच महाव्रत, पांच समिति व तीन गुप्तिको पालते हैं। वे शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध संयमका यथार्थ आराधन करते हैं। वे उत्तमक्षमादि दश धर्मका साधन करते हैं।

गुन रूव भेयविज्ञानं, ज्ञान सहावेन संजुत्त धुव निश्चं।
मूलगुनं सं सुद्धं, उत्तरगुन धरइ निम्मलं विमलं ॥ ३८३ ॥

अन्वयार्थ—(गुन रूव भेयविज्ञानं) गुण स्वरूप उपयोगी भेदविज्ञान है जिसके द्वारा (ज्ञान सहावेन

संजुत धुव निश्चे सं सुद्ध मूलगुनं) ज्ञान स्वभावमई अविनाशी आत्माका अनुभव होता है उसे धारना सो ही निश्चय शुद्ध मूलगुण है (उत्तर गुन धाइ निम्मलं विमलं) इसी आत्मध्यानको रागादि दोष रहित अति निर्मल धारण करना--उसीको बढाते जाना उत्तरगुण है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे मूलगुण साधुओंके अठाईस हैं या तेरह हैं या दश उत्तम क्षमादि हैं या रत्नत्रय हैं। निश्चयनयसे मूलगुण आत्माको भेदविज्ञानके द्वारा सर्व पर द्रव्योंसे, पर गुणोंसे, पर पर्यायोंसे व पर निमित्तसे होनेवाले भावोंसे भिन्न अनुभव करना है या आत्मानुभव है। यही असली मूलगुण है, उसके विना व्यवहार मूलगुणोंका कोई महत्व नहीं है। उसी आत्मानुभवको बढाते बढाते केवलज्ञानीके होनेवाले प्रत्यक्ष आत्मानुभव तक लेजाना उत्तर गुण है।

उत्तर ऊर्ध सहावं, ऊर्ध सहाव विमल निम्मलं सहसा।
सुद्ध सहावं विच्छदि, उत्तर गुन धरंति सुद्ध स सहावं ॥ ३८४ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर ऊर्ध सहावं) उत्तर गुण श्रेष्ठ आत्म-स्वभावको प्राप्त करना है (सहसा ऊर्ध सहाव विमल निम्मलं) वह अकस्मात् चार घातिया कर्मोंसे रहित रागादिसे रहित श्रेष्ठ प्रत्यक्ष केवलज्ञान स्वभावका प्रकाश है तब आत्मा (सुद्ध सहावं विच्छदि) अपने शुद्ध स्वभावको प्रत्यक्ष अनुभव करता है यही (सुद्ध स सहावं उत्तर गुण धरंति) शुद्ध स्वाभाविक उत्तर गुणोंका धारण है।

भावार्थ—यहां यह भाव झलकाया है कि श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मा व अनात्माका भेदविज्ञान करके द्रव्य दृष्टिसे आत्माको परमात्माके बराबर अनुभव करना। आत्माकी शुद्ध परिणतिमें लीन होना मूलगुण है। यही मोक्षरूपी फलको उत्पन्न करनेवाले आत्म-धर्मरूपी वृक्षका मूल है। यही मूल आत्म-धर्मरूपी वृक्षको बढाते बढाते–श्रेष्ठ या उत्तर गुणरूप प्रत्यक्ष आत्माके अनुभवमें उन्नत कर जाता है, जो केवलज्ञानियोंके प्रगट होता है, जहां अत्यन्त निर्मलता होजाती है। परोक्ष भाव श्रुतज्ञान केवलज्ञानका साधक है। जैसे चन्द्रमाका प्रकाश दोइजके दिन कम होता है वही बढते बढते पूर्णमासीके दिन पूर्ण होजाता है वैसे भेदविज्ञान द्वारा आत्माका अनुभव चौथे अविरत सम्यग्दर्शन धारीके दोइजके चन्द्रमाके समान प्रारम्भ होता है वही गुणस्थान गुणस्थान प्रति बढते बढते तेरहवें गुणस्थानमें ज्ञानावरणादिके क्षयसे पूर्ण चन्द्रमाके समान पूर्ण प्रकाशमान होजाता है।

केवली अरहंत भगवान तथा सिद्ध महाराज प्रत्यक्ष विना किसी श्रुतज्ञानके आलम्बनके आत्माका आनन्द लेते हैं। यही उत्तर गुणका प्रकाश है।

मूल उत्तर संसुद्धं, सुद्धं सम्मत्त सुद्ध तवयरनं।
तिक्तं चेल सहावं, सुद्धं सम्मत्त धरन संसुद्धं ॥ ३८५ ॥

अन्वयार्थ—(मूल उत्तर संसुद्धं) जिसके मूलगुण व उत्तर गुण शुद्ध हैं (सुद्धं सम्मत्त सुद्ध तवयरनं) जहां शुद्ध क्षायिक सम्यक्त है शुद्ध आत्म-रमणरूप व आत्म तपन रूप तपश्चरण है (तिक्तं चेल सहावं) जहां वस्त्र परिधानके समान सर्व पर भावोंका त्यागमई स्वभाव है (सुद्धं सम्मत्त धरन संसुद्धं) जहां शुद्ध सम्यग्दर्शनका निश्चयसे धारना है। वही यथार्थ साधुपना है।

भावार्थ—अरहंत पदको भी स्नातक नामके निर्ग्रंथ साधुपदमें गर्भित किया है। स्नातक साधुके मूलगुण उत्तर गुणोंकी परिपूर्णता होती है। आत्मीक शुद्ध स्वभावको ढकनेवाले कर्मरूपी वस्त्रोंका जहां बिलकुल त्याग होजाता है, वहां ही परमावगाढ सम्यग्दर्शन है, वहीं पूर्ण तप है, वहीं पूर्ण चारित्र है, तथा वहीं पूर्ण ज्ञान है। बाहरी वस्त्रोंका त्याग तो मूलगुणोंको धारते हुए या प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें सम्भव आत्मानुभव करते हुए साधुके होजाता है। परन्तु आत्माको ढकनेवाले कर्मरूपी वस्त्रोंका त्याग तेरहवें गुणस्थानमें होता है, जहां ज्ञानावरणादिके क्षयसे केवलज्ञान प्रकाशित होजाता है।

चेलं पंच सहावं, तिक्तं परिनाम चेलजं रसियं।
अंडज बुंडज उत्तं, वंकज चरमज रोम विरयंति ॥ ३८६ ॥

अन्वयार्थ—(चेलं पंच सहावं) वस्त्र पांच तरहका होता है (तिक्तं परिनाम चेलजं रसियं) उनसे जो साधु रहित हैं तथा आवरणसे उत्पन्न जो विभाव परिणामोंमें रसिकपना उससे भी रहित हैं (अण्डज बुंडज वंकज चरमज रोम उत्तं) वे पांच प्रकार वस्त्र कहे गए हैं एक अंडज अर्थात् रेशमके वस्त्र, दूसरे बुंडज अर्थात् कपासके वस्त्र तीसरे वंकज अर्थात् छालके वस्त्र, चरमज अर्थात् चमडेके वस्त्र, रोमके वस्त्र (विरयंति) उनको जो साधु नहीं धारते हैं।

भावार्थ—श्री मूलाचारमें श्री वट्टकेरस्वामी मूलगुण अधिकारमें कहते हैं—

वत्थाजिण वक्केण य अहवा पत्ताइणा असंवरणं । णिब्भूसण णिग्गंथं अचेलक्कं जगदि पुज्जं ॥ ३७ ॥

भावार्थ—कपास, रेशम, रोम तीनके बने हुए वस्त्र, मृगछाला आदि चर्म, वृक्षादिकी छालसे उत्पन्न सन आदिके टाट अथवा पत्ता, त्रण आदि इनसे शरीर आच्छादन नहीं करना; कडे, हार आदि आभूषणोंसे भूषित न होना, संयमके नाशक द्रव्योंकर रहित होना, ऐसा जगत पूज्य अचेलक व्रत है। यहां वत्था शब्दमें कपास, रेशम, रोमके वस्त्र गर्भित हैं। जिण नाम चर्मका है। वक्केण नाम छालका है। इन पांचों प्रकारोंके वस्त्रोंको मुनि नहीं धारते हैं तथा अभ्यंतर आत्माके स्वभावको रोकनेवाले व मलीन करनेवाले भावोंसे भी रहित हैं। ऐसे दिगम्बर जैन साधु होते हैं।

अभ्यंतर अंडज वस्त्र।

अंडज चेल स उत्तं, हृदयं असुद्ध भावजं रसियं।
परिनाम असत्य सहियं, तिक्कंति चेल अंडजं भनियं ॥२८७॥

अन्वयार्थ—(अंडज चेल स उत्तं) उसको ही अंडज वस्त्र कहा गया है जो (हृदयं असुद्ध भावजं रसियं) हृदयरूपी कोषमें भरे हुए अशुद्ध भावोंसे उत्पन्न रसिकपना है (परिनाम असत्य सहियं) वह मिथ्या परिणाम सहित है। इसलिये (अंडज चेल तिक्कंति) साधु ऐसे अंडज वस्त्रोंको त्याग देते हैं। (भनियं) ऐसा कहा गया है।

भावार्थ—मन भी एक कोश है। जैसे अंडेके भीतरसे पक्षी निकलता है या रेशमके कोषमें जो अंडके समान होता है रेशम निकलता है वैसे जिसका हृदयरूपी कोष रागादि अशुद्ध भावोंसे भरा है ऐसे हृदयसे जो विषयानुराग रूपी रंजायमानपना प्रगट होता है वही एक प्रकारका रेशम है। ऐसे रेशमको जिन्होंने त्याग दिया है वे अंडज वस्त्र रहित साधु हैं। यह परिणाम असत्य है क्योंकि संसारके क्षणिक व असत्य पदार्थोंमें रागरूप है।

अंडज अनर्थ रूवं, आलापं परपंच विभ्रमं सहियं ।
रंजन लोक सहावं, तिक्तंति सुद्ध साधवाऽसुद्धं ॥ ३८८ ॥

अन्वयार्थ— (अंडज अनर्थ रूवं) रेशमके वस्त्रके समान रागभाव अनर्थक है (आलापं परपंच विभ्रमं सहियं) इससे वृथा वकवाद होती है व संसारके मोहमें फंसना होता है (रंजन लोक सहावं) लौकिक विभावोंमें रंजायमानपना होता है ऐसा जानकर (सुद्ध साधवा) शुद्ध भावोंके प्रेमी साधुजन (असुद्धं तिक्तंति) इस अशुद्ध भावको छोड देते हैं ।

भावार्थ—जैसे रेशम चिकना होता है व देखनेमें शोभनीक लगता है व मनको प्रसन्न करता है वैसे ही मनके भीतरसे उत्पन्न अहंकार भयकाररूपी संकल्प विकल्प या स्त्री भोजनादिमें रागभाव देखनेमें अच्छे मालूम होते हैं परन्तु वृथा ही पापको बंध करते हैं । जैसे कोई यह विचारे कि मैं धनका संग्रह करूंगा, विवाह करूंगा, स्त्रीभोग करूंगा उससे मन बहलाऊंगा तो इन भावोंसे वह विषयानुरागी पाप बांध लेगा । या यह विचारा करे कि उसका धन नाश हो, कुटुम्ब नाश हो, या किसीकी हानि होगई उसको जानकर प्रसन्न भाव दर्शाया हो तो ऐसे मनके निरर्थक भावोंसे वृथा ही पापका बंध होगा । जब ऐसे रागद्वेषमें रंजायमानपना होता है तो मित्रोंसे मिलकर ऐसी ही वार्तालाप करता है । इन वातोंसे और भी संसारके मोहमें फंस जाता है । लौकिक वातोंमें ही राग बढ जाता है, मोक्षमार्गसे प्रीति हट जाती है । ऐसे रेशमके समान रागद्वेष भावको या मनके संकल्प विकल्पोंको शुद्धोपयोगके प्रेमी साधुजन बिलकुल त्याग देते हैं क्योंकि वे अशुद्ध भाव संसारके कारण हैं ।

अभिंतर असुह सहावं, सल्यं सहकार विभ्रमं उत्तं ।
अनेयभेय अनर्थं, अज्ञानं भावं सयल तिक्तंति ॥ ३८९ ॥

अन्वयार्थ—(अभिंतर असुह सहावं) मनके भीतर जो अशुद्ध भाव हैं वे (सल्यं सहकार विभ्रमं उत्तं) माया, मिथ्या, निदान शल्य सहित संसारीक भाव कहे गए हैं । (अनेय भेय अनर्थं) ये अनेक भेदरूप निरर्थक हैं (अज्ञानं) व अज्ञान रूप हैं (सयल भावं तिक्तंति) साधु ऐसे सर्व भावोंको त्याग देते हैं ।

भावार्थ—रागद्वेष वर्द्धक जितने भी अशुद्ध परिणाम हैं वे पांच इंद्रियोंके विषयोंमें लीनताके कारण व क्रोधादि कषायोंके वशीभूत होनेके कारण अनेक भेद रूप होते हैं। उनके भीतर तीन शल्य गर्भित रहती हैं। या तो वे मायाचार पूर्ण होते हैं या मिथ्या भाव सहित होते हैं। या आगामी भोगोंकी वांछा रूप निदान भाव सहित होते हैं। वे सर्व विभाव वृथा ही कर्मोंको बांधते हैं तथा वे मिथ्या ज्ञानके कारणसे होते हैं क्योंकि सम्यग्ज्ञानीके भीतर वीतराग भावमें रसिकपना होता है। संसारीक प्रपंच जालोंमें रंजायमानपना नहीं होता है। इन सर्व भावोंको साधुजन त्याग देते हैं।

वास्तवमें अपध्यान ही एक अंडज वस्त्र है जिसे व्रतीको त्याग देना चाहिये। रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें अपध्यानका स्वरूप यह है—

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः। आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ ७८ ॥

भावार्थ—जिन मतमें किसीका वध, किसीका बंधन, किसीका अंगच्छेद व परस्त्री आदिका रागद्वेषके वशीभूत हो मनमें चिंतवन करना अपध्यान है, ऐसा निर्मल पुरुषोंने कहा है।

अभ्यंतर बुंडज वस्त्र।

बुण्डज भाव स उत्तं, वचनं असुहाइनंद सहकारं।
गुनदोसं न वि पिच्छदि, बुण्डज सभाव सयल तिक्तंती ॥३९०॥

अन्वयार्थ—(बुण्डज भाव स उत्तं) बुंडजके समान भाव उसे कहा गया है जहां (असुहाइनंद सहकारं वचनं) अशुभ आदि भावोंमें आनन्द मानने रूप वचन प्रगट हो (गुनदोसं न वि पिच्छदि) जहां गुण व दोषका विचार न हो ऐसे (बुण्डज सभाव सयल तिक्तंतो) बुंडज स्वभावके समान सर्व भावोंको साधु छोड देते हैं।

भावार्थ—कपासके वस्त्रोंको बुंडज कहते हैं, कपाससे बने वस्त्र गाढे व महीन दोनों प्रकारके होते हैं उसी तरह मिथ्यात्व भावोंके द्वारा प्रगट होनेवाले नानाप्रकारके अशुभ व अज्ञानमय

भावोंमें आनन्द मानके उन मिथ्यात्व सहित भावोंमें रंजायमान होनेके लिए जो मानसिक व वचनकी प्रवृत्ति है। तथा जहां ऐसा बुद्धिमें अहंकार है कि गुण व दोषका भेद नहीं मालूम होता है वहीं कपासके वस्त्रके समान अशुद्ध भाव है। इनको साधुजन परिग्रह जानकर छोड देते हैं। सच्चे वस्त्र त्यागी दिगम्बर होजाते हैं।

वुंडज पाप सरूवं, हिंसा अनृत असत्य आनन्दं।
दह विहि अबंभ नंदं, वयनं तिक्कंति वुंडजं भावं ॥ ३९१ ॥

अन्वयार्थ—(वुण्डज पाप सरूवं) वुंडज भाव पापमय होते हैं (हिंसा अनृत असत्य आनन्दं) हिंसा, झूठ व अज्ञानमें आनन्द माननेवाले हैं (दह विहि अबंभ नन्दं) इस प्रकार अब्रह्ममें मगन होनेवाले हैं (वुण्डजं भावं वयनं तिक्कंति) वुंडज भावोंको व ऐसे वचनोंको साधुजन त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां भीतरसे अभिप्राय पापमय हो वे सब भाव वुंडजभाव हैं। जहां पशुबलि आदि हिंसाकर्म करके आनन्द मनाया जाता हो। असत्य-मिथ्यात्वरूप व अज्ञानरूप क्रिया करके आनन्द मनाया जाता हो। जैसे दिवसमें उपवास करके रात्रिको भोजन करनेमें, किसीके मरणका शोक मनानेमें व रुदन करनेमें तथा जहां दस प्रकार कुशील भावोंको करके प्रसन्नता अनुभव की जाती हो-ब्रह्मचर्य व्रतके वर्णनमें इस दस प्रकार अब्रह्मका स्वरूप कहा जाचुका है, तथा हिंसा, अनृत, अज्ञान व अब्रह्म पोषक वचनोंको कहा जाता हो। इस सब वुंडज भावोंको लिए हुए प्रवृत्तिको साधुजन कभी नहीं करते हैं।

वंकज भाव स्वरूप।

वंकज सहाव उत्तं, ज्ञानं विज्ञान वंकजं रूवं।
दर्सन असुद्ध दर्सं, वंकज भावेन सयल तिक्कंति ॥ ३९२ ॥

अन्वयार्थ—(वंकज सहाव उत्तं) वंकज स्वभाववाले भावोंको कहते हैं (ज्ञानं विज्ञान वंकजं रूवं) जहां ज्ञान विज्ञान वंकज स्वरूप हो। अर्थात् मायाचार या टेढेपनको लिए भावोंमें वक्ररूप हो (दर्सन

असुद्ध दर्स) जहां अशुद्ध श्रद्धान दिखलाई पडता हो (वंकज भावेन सयल तिक्कंति) ऐसे वक्रतापूर्ण सर्व भावोंको मुनि त्याग देते हैं।

भावार्थ—वल्कल व छालके वस्त्रोंको पहनना वंकजको धारना है। यहां भावोंकी अपेक्षा यह कथन है कि ऊपरसे ज्ञान विज्ञानकी-शास्त्रोंके मर्मकी गूढ चर्चाएं करना। परन्तु भीतरसे मायाचार रखना, या मिथ्यात्वभाव रखना। मायाचार व मिथ्या शल्य सहित जो शास्त्रकी व भेदविज्ञानकी चर्चा है वह सब वंकज या टेढे भाव हैं। इन सबको दिगम्बर जैन साधु त्याग देते हैं। सरल शुद्ध श्रद्धा सहित भावसे शास्त्र ज्ञानका व भेदविज्ञानका मनन व कथन करना साधुओंका धर्म है।

वंकज असुद्ध भावं, ज्ञानावरनादि घाय उववन्नं।
ज्ञान सहावन दिट्ठं, वंकज तिक्कंति साधवाऽसुद्धं ॥ ३९३ ॥

अन्वयार्थ—(वंकज असुद्ध भावं) वंकज रूप असुद्ध भावोंसे (ज्ञानावरनादि घाय उववन्नं) ज्ञानावरणादि घातीय कर्मोंका बंध होता है (ज्ञान सहाव न दिट्ठं) ज्ञान स्वरूप आत्माका वहां दर्शन नहीं होता है (साधवा असुद्धं वंकज तिक्कंति) साधुजन ऐसे अशुद्ध वंकज भावोंको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां परिणामोंमें वक्रता है, कुटिलता है, आर्जवपना नहीं है वहां अशुद्ध भावोंके होनेसे चाहे बाहरी क्रिया शुभ भी दीखती हो, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, व अंतराय इन चार घातीय कर्मोंका तीव्र बंध होता है। साधुजन आर्जव धर्मके पालनेवाले होते हैं। व ऐसे भावोंके त्यागी सच्चे दिगम्बर होते हैं।

कप्प वियप्पं जानदि, सुद्धं स सहाव वंकजं रूवं।
वंकज अमलसहावं, वंकज तिक्कंति ज्ञानसहकारं ॥ ३९४ ॥

अन्वयार्थ—(कप्प वियप्पं जानदि) जो संकल्प विकल्पोंका अनुभव कर रहा है (सुद्धं स सहाव वंकज रूवं) जहां शुद्ध आत्मीक स्वभाव स्वरूपमें लीन न होकर डांवाडोलपना है (वंकय अमल सहावं) निर्मल भाव भी टेढा होरहा है (वंकज तिक्कंति ज्ञान सहकारं) ऐसे वंकज भावोंको साधुजन आत्मज्ञानकी सहायतासे छोड देते हैं।

भावार्थ—आत्माका शुद्ध स्वभाव जानते हुए भी जहांपर राग द्वेषोंकी कल्लोलें उठ रही हों या जहां नानाप्रकारकी नयोंसे तर्क वितर्क द्वारा आत्माका शुद्ध व अशुद्ध भेद या अभेद विचार होरहा हो वहां निर्मल नयातीत शुद्ध स्वरूप संवेदन रूप भाव नहीं पैदा होसक्ता है, क्योंकि वहां भावोंमें चंचलता है, डांवाडोलपना है, एकाग्रता नहीं है। इसलिये साधुजन निर्मल आत्मज्ञानमें अनुभवरूप होकर व स्वरूपाचरण चारित्रमें लीन होकर सर्व ही तरहके संकल्प विकल्पोंको वक्रभाव जानकर छोड देते हैं और स्वरूप मगन होजाते हैं।

समयसार कलशमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ। यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ १९ ॥

भावार्थ—एक नयसे अर्थात् व्यवहार नयसे यह जीव कर्मोंसे बंधा है, दूसरे निश्चय नयसे यह जीव कर्मोंसे बंधा नहीं है। आत्माके सम्बन्धमें इन दोनों नयोंका पक्षपात है या विकल्प है। जो आत्मतत्वके अनुभवी हैं वे इन सर्व पक्षपातोंको या विकल्पोंको त्यागकर निर्विकल्प होजाते हैं उन्हींके अनुभवमें आत्मा आत्मारूप ज्ञानस्वरूपी निश्चल झलक जाता है।

चरमज सहाव।

चरमज सहाव उत्तं, जं चरनं चरंति नेय कालंमि।
चरनं विभ्रम रूवं, संसारे सरनि तिक्तंती ॥ ३९५ ॥

अन्वयार्थ—(चरमज सहाव उत्तं) चर्मज स्वभाव यह कहा गया है (जं चरनं नेय कालंमि चरंति) जो अनेक प्रकारका आचरण किया जावे परन्तु वह (चरनं विभ्रम रूवं) आचरण भ्रम रूप हो सो (संसारे सरनि) संसारका मार्ग है (तिक्तंती) ऐसे आचरणको त्यागना सो ही चरमज वस्त्र त्याग है।

भावार्थ—व्यवहारमें चर्मके वस्त्र मृगछाला आदिका त्याग सो चर्मज वस्त्र त्याग है। निश्चयसे अनेक प्रकारका जो व्यवहार मुनि या श्रावकका चारित्र मिथ्यात्वसे मिला हुआ है, संसारकी आसक्ति रूप है, विषयोंकी वांछा सहित है। सो सर्व संसार भ्रमणका मार्ग होनेसे चर्मज वस्त्र

स्वभाव है। इस प्रकारके आचरणको त्यागना तथा आत्मस्वरूपमें ही लवलीन होना सो चरमज वस्त्र त्याग है।

चरनं विप्रिय भावं, आरति रौद्रं च चरन सद्भावं।
अनेय चरनं चरियं, चरनं तिक्तंति ज्ञान सहकारं ॥ ३९६ ॥

अन्वयार्थ—(विप्रिय भावं चरनं) विपरीत प्रकारका मिथ्या आचरण (आरति रौद्रं च चरन सद्भावं) आर्तध्यान व रौद्रध्यान सहित चारित्रका होना (अनेय चरनं चरियं) ऐसा अनेक प्रकारका चारित्र पाला जावे तौ भी चरमज स्वभाव (चरनं तिक्तंति ज्ञान सहकारं) ऐसे आचरणको ज्ञानकी सहायतासे साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान रहित शास्त्र मार्गसे उलटा काय क्लेश रूप अनेक प्रकारका आचरण सब विपरीत चारित्र है। ऐसा नाना प्रकारका आचरण आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान सहित है क्योंकि तत्त्व प्रतीति रहित, मिथ्यादर्शन सहित है ऐसे विपरीत चारित्रको साधुजन सम्यग्ज्ञानकी मददसे त्याग देते हैं।

चरनं सुभाव तिक्तं, चौगय संसार सरनि नेयकालंमि।
विषय वसन संचरनं, चर्मज चेल तिक्तंति ससहावं ॥ ३९७ ॥

अन्वयार्थ—(सुभाव तिक्तं चरनं) आत्म स्वभावमें रमनरूप भावको छोड़कर आचरण पालना, (नैय कालंमि चौगय संसार सरनि) अनंतकाल चार गतिमय संसारमें भ्रमण करानेवाला है (विषय वसन संचरनं) पांच इंद्रियोंके विषयोंमें तथा जूआ आदि सात व्यसनोंमें आचरण करना (चर्मज चेल तिक्तंति स सहावं) ऐसे चर्मज वस्त्रको साधुजन अपने स्वभावमें लीन होकर त्याग देते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन रहित जितना भी आचरण है वह चर्मज स्वभाववाला है। इस जीवने अनादिकालसे लेकर अबतक आत्मानुभवको न पाकर नानाप्रकार मिथ्या चारित्र पाला है। पांच इंद्रियोंमें रंजायमानपना छोड़ा नहीं, द्यूत आदि सात व्यसनोंका राग त्यागा नहीं। ऐसा मिथ्या चारित्र भवभवमें अनंतकाल तक संसारमें भ्रमण करानेवाला है। ऐसे चर्मज आचरणको छोड़कर साधुजन अपने स्वाभाविक आत्म चारित्रमें लीन होते हैं।

रोमज स्वभाव ।

रोमज सहाव उत्तं, रुचियं नो कम्म दव्व कम्मानं ।
भावं रुचित असुद्धं, रोमज तिक्तंति ज्ञान सहकारं ॥ १९८ ॥

अन्वयार्थ—(रोमज सहाव उत्तं) रोमज स्वभाव इस प्रकार कहा गया है जो (नोकम्म दव्व कम्मानं रुचियं) शरीरादि नोकर्म व ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्ममें रुचिका होना या (असुद्धं भावं रुचित) अशुद्धोपयोगमें रुचि करना (रोमज ज्ञान सहकारं तिक्तंति) ऐसे रोमज वस्त्रोंको साधुजन आत्मज्ञानकी सहायतासे त्याग देते हैं।

भावार्थ—साधुजन ऊनके वस्त्र नहीं पहनते हैं यह व्यवहार त्याग है। निश्चयसे रोमज भाव यह है जो अपने आत्म स्वभावको छोडकर शरीरादि नोकर्ममें, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्ममें व रागद्वेषादि भावकर्ममें रुचि करना। ऐसी मिथ्या रुचिको साधुजन अपने ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर त्याग देते हैं यही रोमज वस्त्र त्याग है।

रुचियं कुज्ञान मइओ, रुचियं मिथ्यात विषय सद्भावं ।
रुचियं पुग्गल रूवं, रोमज तिक्तंति चेयनाभावं ॥ १९९ ॥

अन्वयार्थ—(कुज्ञान मइओ रुचियं) मिथ्या ज्ञान स्वरूपकी रुचि करना (रुचियं मिथ्यात विषय सद्भावं) मिथ्यात्व व पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी रुचि करना तथा (रुचियं पुग्गल रूवं) पुद्गलके स्वभावकी रुचि करना (रोमज तिक्तंति चेयना भावं) ऐसे रोमज स्वभावको अपने चेतनाके शुद्ध भावमें रमन करके साधुजन छोड देते हैं।

भावार्थ—मिथ्या रुचि सो ही रोमज स्वभाव है। मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, व विषय कषायोंमें लीन रूप मिथ्या चारित्र तथा सर्व पौद्गलिक स्वभाव रागद्वेषादि विभाव भाव व संकल्प-विकल्प रूप भाव, मन, वचन, कायकी क्रिया, उनमें रुचि करना रोमज स्वभाव है। आत्मज्ञानी साधु अपनी ज्ञान चेतनामें तल्लीन होकर ऐसे रोमज स्वभावको त्याग कर देते हैं। वे ही सच्चे दि० साधु हैं।

अचेल कथन ।

ए पंच चेल उत्तं, तिक्कं मन वयन काय सद्भावं ।
विज्ञान ज्ञान सुद्धं, चेलं तिक्कंति निव्वुए जंति ॥ ४०० ॥

अन्वयार्थ—(ए पंच चेल उत्तं) इस तरह ऊपर लिखित पांच प्रकार वस्त्र कहे गए हैं (तिक्कं) उनको छोड़कर व (मन वयन काय सद्भावं चेलं तिक्कंति) जो मन वचन काय सम्बन्धी सर्व वस्त्रको त्याग देते हैं वे साधु (विज्ञान ज्ञान सुद्धं) शुद्ध विज्ञानमई आत्मज्ञानमें लीन होकर (निव्वुए जंति) निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु बाहरमें तो रेशमके, रुईके, छालके, चर्मके व ऊनके ऐसे पांच प्रकारके वस्त्रोंको त्यागते हैं। तथा अंतरंगमें इन पांच प्रकार वस्त्र स्वरूप सम्पूर्ण मन वचन कायकी क्रियामई अनेक संकल्प विकल्पोंको व रागद्वेषोंको त्याग देते हैं और भेदविज्ञानके बलमें अपने आत्माके अनुभवमें लीन होते हैं। इसी तरह बाहरी व भीतरी दिगम्बरत्वके द्वारा ही साधु मोक्षके स्वामी परमात्मा होजाते हैं।

चेलं वाहिज उत्तं, चेलं पंचंमि तिक्क मोहंधं ।
चेल सहाव न ग्रहनं, वालं तिक्कंति चेल उत्पन्नं ॥ ४०१ ॥

अन्वयार्थ—(चेलं वाहिज उत्तं) आत्मासे जो बाहर या भिन्न हो उसको चेल कहते हैं (पंचंमि मोहंधं चेलं तिक्क) पांचों ही मोह व अज्ञानमई वस्त्रको छोड़ना चाहिये (चेल सहाव न ग्रहनं) पांच प्रकार वस्त्रके सदृश विभावोंको नहीं ग्रहण करना चाहिये तथा (चेल उत्पन्नं वालं तिक्कंति) पांच प्रकार चेलसे बने हुए वस्त्रोंको त्यागना चाहिये ।

भावार्थ—जिनरूपी साधु अचेलक होते हैं। वे अंतरंग तथा बहिरंग दोनों ही प्रकारके वस्त्रोंके त्यागी होते हैं। बहिरंग वस्त्र ऊपर कहे प्रमाण रेशम, कपास, छाल, चर्म व ऊनके, स्वभावके समान अंतरंग मिथ्यात्व, राग द्वेषादि सर्व संकल्प विकल्प हैं। दोनोंके त्यागी वास्तवमें अचेलक हैं। जो परभावको न ग्रहण करते हुए निज आत्मीक भावमें तल्लीन हैं वे ही वास्तवमें नग्न, दिगम्बर या अचेलक हैं।

दिगम्बर शब्द व्याख्या।

दिगंबर वयन उत्तं, दिग दिसा अंबरेन सद्भावं।
अंबर चेल विमुक्कं, दिगंबरेन ज्ञान सहकारं ॥ ४०२ ॥

अन्वयार्थ—(दिगंबर वयन उत्तं) साधुको दिगम्बर वचन इसलिये कहा गया है कि वे (दिग दिसा अंबरेन सद्भावं) दिक् अर्थात् दिशा, अंबर अर्थात् वस्त्र अर्थात् दिशारूपी वस्त्रको धारण करते हैं (चेल अंबर विमुक्कं) पांच प्रकार रेशमादिके बने वस्त्रोंसे रहित हैं (दिगंबरेन ज्ञान सहकारं) वे आत्मज्ञानकी सहायतासे दिगम्बरपनेको धारण करनेवाले हैं।

भावार्थ—अब यहां दिगंबर शब्दकी व्याख्या करते हैं-दिशारूपी वस्त्र ही जिनके हों, रेशम कपास आदिके वस्त्रोंको जो न धारण करते हों तथा जो भीतरसे पूर्ण आत्मज्ञानी, वैरागी तथा रागादि भावोंके त्यागी हों वे ही सच्चे दिगंबर साधु हैं।

पूर्व दिशा अंबर कथन।

पूर्वं पूर्वं उक्तं, पूर्वं सहकार परमभत्तीए।
पूर्वं ज्ञान सहावं, पूर्वं उत्तं च निम्मलं विमलं ॥ ४०३ ॥

अन्वयार्थ—(पूर्वं पूर्वं उत्तं) पूर्व दिशाको पहले या मुख्य कहा जाता है (परम भत्तीए पूर्वं सहकार पूर्वं ज्ञान सहावं निम्मलं विमलं च पूर्वं उत्तं) परम भक्ति सहित चौदह पूर्वरूप शास्त्रकी सहायतासे मुख्य ज्ञान स्वभावी कर्ममल रहित रागादि रहित सर्व द्रव्योंमें श्रेष्ठ आत्माको पूर्व कहा गया है।

भावार्थ—पूर्वादि दश दिशा रहित दिगंबर कहाते हैं। दसों दिशाओंमें पूर्वको इसलिये मुख्य कहा गया है कि पूर्व दिशासे सूर्यका उदय होता है। इसी तरह यहां ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व रूप जिनवाणीका मनन जो परम भक्तिसे करते हैं उसके भीतर ज्ञान स्वभावी परम निर्मल शुद्ध आत्माका अनुभव प्रकाशमान होजाता है। अर्थात् पूर्वोंके ज्ञान द्वारा पूर्व अर्थात् श्रेष्ठ या मुख्य

या अग्र अपने ही शुद्ध आत्माका ज्ञान उदय होता है। ऐसे आत्मज्ञानके जो धारी हैं जो आत्मज्ञानी पूर्व दिशाके समान निर्मल हैं, उस साधुको ही पूर्व दिशा रूपी वस्त्रका धारी पूर्व दिगम्बर कहते हैं।

पूर्वं परम सरूवं, अप्पा सुद्धप्प हवे परमप्पा।
ज्ञानेन ज्ञान अमलं, ज्ञान सहावेन पूर्व उवएसं ॥ ४०४ ॥

अन्वयार्थ—(पूर्वं परम सरूवं) पूर्व जो आत्माका ज्ञान सो ही उत्कृष्ट आतम स्वभाव है (सुद्धप्प अप्पा परमप्पा हवे) जिससे शुद्ध स्वरूपी आत्मा परमात्मा होजाता है (ज्ञानेन ज्ञान अमलं) आत्मज्ञानके अनुभवसे निर्मल केवलज्ञान प्रगट होता है। इसीलिये (ज्ञान सहावेन पूर्व उवएसं) ज्ञान स्वभावको ही पूर्व कहा गया है।

भावार्थ—जिनवाणीके अभ्याससे जो आत्मज्ञान प्रगट होता है उसीका अनुभव करनेसे कर्म कलंक मिटता है और यह आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा होजाता है। अंतरंगमें जो साधु आत्मानुभव रूप पूर्व दिशाको रखते हैं और बाहरमें पूर्व दिशारूपी अम्बरको रखते हैं ऐसे दिगम्बर साधु ही केवलज्ञानको जगाते हैं। इसीलिये पूर्वको आत्माका ज्ञान स्वभाव कहते हैं। इसीको पहननेवाले सच्चे दिगम्बर यति होते हैं।

नंत चतुष्टय पूर्वं, नंतानंतं च ज्ञान सहकारं।
रागादि दोस तिक्तं, अंबर पूर्वं च ज्ञान उक्तं च ॥४०५॥

अन्वयार्थ—(पूर्वं नंत चतुष्टय) आत्माके मुख्य गुण अनंत चतुष्टय हैं (नंतानंतं च ज्ञान सहकारं) उनमेंसे अनंतानंत ज्ञानको सिद्ध करनेवाला (रागादि दोस तिक्तं) राग द्वेषादि दोषोंसे रहित (अंबर पूर्वं च ज्ञान उक्तं च) पूर्व दिशा रूप निर्मल आत्मज्ञान कहा गया है।

भावार्थ—अरहंत पदमें जो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख व अनंत वीर्य गुण प्रगट होते हैं उनमेंसे केवलज्ञानरूपी सूर्यको उदयमें लानेवाला वीतराग विज्ञानमय आत्मज्ञानरूपी पूर्व दिशा है जो अति निर्मल है। इसी पूर्व दिशारूपी वस्त्रको धारनेवाले दिगम्बर जैन साधु होते हैं।

आग्नेय दिशा अम्बर कथन ।

अग्नि च अग्रभावं, अग्रं अवयास सुद्ध अवयासं ।
अग्रं अमल सहावं, अग्नि दिसा च अंवरं अमलं ॥ ४०६ ॥

अन्वयार्थ—(अग्नि च अग्रभावं) यहां अग्निसे प्रयोजन प्रधानभावसे है (अग्रं अवयास सुद्ध अवयासं) प्रधान आकाश शुद्ध आत्माका क्षेत्र है (अग्रं अमल सहावं) या आत्माका निर्मल स्वभाव प्रधान है (अग्नि दिसा च अंवरं अमलं) इस प्रधान आत्माके निर्मल स्वभावको आग्नेय दिशा कहते हैं। इसके धारी आग्नेय दिशारूप अम्बरके धारी दिगम्बर साधु होते हैं।

भावार्थ—यहां आग्नेय दिशाका भाव अंतरंगमें अग्र शब्दकी मुख्यतासे प्रधान आत्माका क्षेत्र या आत्माका निर्मल स्वभाव लिया गया है। जो साधु बाहरमें नग्न दिगम्बर होते हुए अंतरंगमें वीतराग विज्ञानमय निर्मल आत्माके स्वभावका अनुभव करते हैं अर्थात् जो अनुभव करते हैं कि असंख्यात प्रदेशी आत्माके स्वरूपमें सर्वत्र निर्मल वीतराग भाव अवकाश पारहा है ऐसे बाहरमें आग्नेय दिशाका वस्त्र व अंतरंगमें निर्मल आत्म स्वभावके अनुभवका वस्त्र पहननेवाले जो दिगम्बर जैन साधु हैं वे ही यथार्थमें दिगम्बर साधु मोक्षके साधक हैं।

अग्नि च अग्र तेजं, जोति स सहाव रूव सं सुद्धं ।
अग्रं तिलोय मइओ, लोका अवलोक लोकनं अग्नि ॥ ४०७ ॥

अन्वयार्थ—(अग्नि च अग्र तेजं) आग्नेय दिशामें अग्नि शब्दसे अर्थ मुख्य ज्ञान तेजसे है (जोति स सहाव रूव सं सुद्धं) जो परम ज्योतिस्वरूप आत्माका शुद्ध स्वभाव है (अग्रं तिलोय मइओ) तीन लोकमई पदार्थोंका ज्ञान प्रधान है (लोका अवलोक लोकनं अग्नि) वह अग्नि लोक व अलोकको देखनेवाली ज्ञानस्वरूपी है।

भावार्थ—अग्नि शब्दका अर्थ ज्ञानरूपी तेज है। आत्माका स्वभाव ज्ञान तेजसे परिपूर्ण है, परम निर्मल है, तीन लोक व अलोकका ज्ञान ऐसा केवलज्ञान प्रधान है। जो साधु बाहरमें आग्नेय दिशारूपी वस्त्रको धारते हैं व अंतरंगमें आत्माके ज्ञान तेजका अनुभव करते हुए आग्नेय दिशारूपी वस्त्रके धारी हैं वे ही सच्चे दिगम्बर जैन साधु हैं। आत्माको परमात्माके समान परम ज्योतिस्वरूप केवलज्ञान स्वभावी अनुभव करना ही आग्नेय दिशारूपी अंतरंग वस्त्रको धारना है।

दक्षिण दिशा अंबर कथन ।

दष्यन दिसि अंबरयं, वर दंसन ज्ञान चरन सहकारं ।
दंसेइ मोक्खमग्गं, नन्तानन्त दिस्टि संदर्स ॥ ४०८ ॥

अन्वयार्थ—(दष्यन दिसि अंबरयं) साधु अंतरङ्गमें दाक्षिण दिशाका वस्त्र धारते हैं। वह वस्त्र (बर दंसन ज्ञान चरन सहकारं) श्रेष्ठ अर्थात् अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान व वीतराग चारित्रका साधक वह ज्ञान दर्शन है (मोक्खमग्गं दंसेइ) जो रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्गको अनुभव करनेवाला है व जो (नन्तानन्त दिस्टि संदर्स) अनन्तानन्त दर्शनको देखनेवाला है।

भावार्थ—यहां दक्षिण दिशारूपी अंतरंग वस्त्रका कथन है। आत्माका दर्शन व आत्माका अनुभव ही दाक्षिण दिशा है, जिसके द्वारा मोक्षमार्गमें चलते हुए अरहंत पदका लाभ होजाता है। जहां वीतराग चारित्र है व क्षायिक सम्यक्त है, अनन्त दर्शन है, व अनन्त ज्ञान है। दिगम्बर जैन साधु वे ही हैं जो बाहरमें दक्षिण दिशारूपी वस्त्रको धारते हैं व अन्तरंगमें आत्मानुभवकी निर्मलता रखते हैं।

दंसेइ तिहुवनग्रं, दंसन दंसेइ नन्त सहकारं ।
षिपि ऊन तिविहिकम्मं, ज्ञान सहावेन सुदर्सनं अमलं ॥४०९॥

अन्वयार्थ—(तिहुवनग्रं दंसेइ) जो तीन लोकमें प्रधान आत्माको देखनेवाला है ऐसा जो (दंसन) सम्यग्दर्शन या आत्मदर्शन (नन्त सहकारं दंसेइ) वह अनन्तदर्शनका सहकारी है उसका जो अनुभव करते हैं वे (षिपि ऊन तिविहिकम्मं) तीन प्रकार कर्मोंको क्षय करके (ज्ञान सहावेन सुदर्सनं अमलं) ज्ञान स्वभावी परम निर्मल आत्माके स्वभावको भलेप्रकार देखनेवाले सिद्ध होजाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ही मुख्य आत्मदर्शन है। इसीके प्रभावसे आत्माका ऐसा यथार्थ अनुभव होता है जिससे ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागद्वेषादि भावकर्म व शरीरादि नोकर्मोंका नाश होजाता है। और यह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है। जहां अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख और स्वाभाविक गुण प्रकाशमान होजाते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शनके धारी ही साधु दक्षिण दिशारूपी वस्त्रके पहननेवाले हैं।

दष्यन दिसि अंबरयं, दिष्टं ज्ञान पञ्चम सभावं।
षिपनक रूव सुदिट्ठं, अंबर दिसियं च ज्ञानसहकारं ॥ ४१० ॥

अन्वयार्थ—(दष्यन दिसि अंबरयं) दक्षिण दिशाका वस्त्र वह है (दिस्टं ज्ञान पंचम सभावं) जिससे आत्माका स्वाभाविक पंचम केवलज्ञानका दर्शन होजावे (षिपनक रूव सुदिट्ठं) नग्न क्षपणक या साधुका स्वरूप वहीं भलेप्रकार देखा जाता है जिसके (ज्ञान सहकारं अंबर दिसियं) केवलज्ञानका सहकारी अंबर दिखलाई पडता है।

भावार्थ—दक्षिण दिशारूपी वस्त्रको जो बाहरमें धारण करे व अंतरंगमें सम्यग्दर्शन पूर्वक आत्मानुभव रूपी दक्षिण दिशाको धारण करे वही सच्चा दिगम्बर क्षपणक या साधु है। वही साधु आत्मज्ञानके अभ्याससे केवलज्ञानको प्रकाश कर सक्ता है। ऐसे ही जिनरूपी सच्चे यति होते हैं।

नैरित्य दिशा अम्बर कथन।

नैरित्यं उवएसं, ऋतं जानेहि सुद्ध स सहावं।
अनृत असरन तिक्तं, ऋतं लोयालोयं च धुव निश्चं ॥ ४११ ॥

अन्वयार्थ—(नैरित्यं उवएसं) नैरित्य दिशा अम्बरका उपदेश किया जाता है (सुद्ध स सहावं ऋतं जानेहि) आत्माका शुद्ध स्वभाव सत्य है ऐसा जानो (अनृत असरन तिक्तं) जहां सर्व मिथ्या कल्पनाओंका व अशरण अवस्थाओंका त्याग है (ऋतं लोयालोयं च धुव निश्चं) सत्य लोकालोक अविनाशी है यह निश्चय है।

भावार्थ—ऋतं नाम सत्यका है। संसारकी चतुर्गति रूप सर्व अवस्थाएं व रागादि सर्व भाव—मनकी सर्व कल्पनाएं नाशवंत हैं, क्षणिक हैं, अतएव मिथ्या हैं, इनको कोई रक्षित नहीं रख सक्ता है। सर्व ही प्राणी आयु कर्मके आधीन हैं। सर्व ही पुद्गलकी रचनायें बनती हैं बिगड जाती हैं। इन सब अनित्य व अशरण अवस्थाओंसे मुंह मोडकर एक अपने आत्माके द्रव्य स्वभावको जो परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा अविनाशी है सत्य मानना चाहिये। अथवा जिन छः द्रव्योंसे लोकालोक भरपूर है उनको नित्य व अपने २ स्वभावोंमें रहनेवाला निश्चय करना चाहिये।

ऋतं अनंतं भावं, चेयन संजुत्तु ऋत सहकारं ।
नैरित्यं ऋत दिट्ठं, नैरित्यं ऋत ज्ञान अंबरयं ॥ ४१२ ॥

अन्वयार्थ—(ऋतं चेयन संजुत्तु अनंत भावं) आत्मा सम्बन्धी अनंत ज्ञानादि भाव सत्य है (ऋत सहकारं) इस सत्य स्वभावके प्रकाशको साधन करनेवाला जो (ऋत) सम्यग्ज्ञान व आत्मानुभव रूप सत्य है उसे (नैरित्यं दिट्ठं) नैरित्य देखना चाहिये अतएव (ऋत ज्ञान अंबरयं नैरित्यं) सत्य ज्ञान या आत्मानुभवका वस्त्र सो नैरित्य है ।

भावार्थ—सत्य एक अपना निज स्वभाव है जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अनन्त स्वाभाविक गुणोंका समुदाय है, इस स्वभावको प्रकाश करनेमें साधक अभेद रत्नत्रय स्वरूप स्वसंवेदन ज्ञानमय आत्माका अनुभव है । यही अनुभव नैरित्य दिशाका वस्त्र है । जो साधु बाहरमें नैरित्य दिशाका वस्त्र पहनते हैं व अंतरंगमें निज आत्माके अनुभव स्वरूप वस्त्रको पहनते हैं वे ही सच्चे दिगम्बर जैन साधु हैं ।

पश्चिम दिशा अम्बर कथन ।

पश्चिम पिच्छदि सुद्धं, संसार सरनि असुद्ध न हि पिच्छं ।
पिच्छदि अप्प सहावं, अप्पा सुद्धप्प ज्ञान परमप्पा ॥ ४१३ ॥

अन्वयार्थ—(पश्चिम सुद्धं पिच्छदि) पश्चिम दिशा शुद्ध आत्माको अनुभव करनेवाली है (संसार सरनि असुद्ध न हि पिच्छं) संसारके मार्गमें भ्रमण करानेवालोंके स्वभावको देखती है (अप्प सहावं पिच्छदि) आत्माके अशुद्ध आत्माको नहीं देखती है (अप्पा सुद्धप्प ज्ञान परमप्पा) कि यह आत्मा शुद्ध स्वरूप है ज्ञानमई है व परमात्मारूप है ।

भावार्थ—यहां पश्चिम दिशाको कहते हैं कि शुद्ध आत्माको शुद्ध स्वरूप ज्ञानानन्दमय परमात्माके समान अनुभव करना तथा रागादि सहित अशुद्ध आत्माका अनुभव न करना पश्चिम दिशा है । अशुद्ध आत्माका अनुभव कर्म बंधकारक है व संसारमें भ्रमण करानेवाला है ।

पिच्छदि अनन्त रूवं, विज्ञानं ज्ञान पिच्छि सभावं ।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, पच्छिम पिच्छेइ अंवरं अमलं ॥ ४१४ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं) भेदविज्ञानसे उत्पन्न आत्मानुभव (अनन्त रूवं ज्ञान पिच्छि सभावं पिच्छदि) अनन्त ज्ञानदर्शन स्वभावमई आत्माको अनुभव करनेवाला है (मिथ्या सल्य विमुक्कं) जिसमें मिथ्या, माया, निदान तीन शल्य नहीं है (पच्छिम अम्बरं अमलं पिच्छेइ) ऐसी पश्चिम दिशारूप आत्मानुभूति निर्मल आकाश तुल्य आत्माको अनुभव करनेवाली है।

भावार्थ—पश्चिम दिशा उसे कहते हैं जो अपने सामने अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्यमई आत्मारूपी सूर्यको देखनेवाली है, जिसमें कोई मिथ्या भाव नहीं है न कोई मायाचार है और न कोई निदान भाव है। यह वह आत्मानुभूति है जो भेदविज्ञानसे पैदा होती है। निर्मल आत्माका दर्शन होना ही पश्चिम दिशा है।

पिच्छेइ अप्पु अप्पं, वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छेई ।
पिच्छेइ मोक्ख मग्गं, ज्ञान सहावेन अम्बरं पिच्छं ॥ ४१५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पं अप्पु पिच्छेइ) जो आत्माको आप ही देखती है या अनुभव करती है (वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छेई) व जो श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकताको देखनेवाली है। (मोक्खमग्गं पिच्छेइ) ये मोक्षमार्गको अनुभव करनेवाली है। (ज्ञान सहावेन अम्बरं पिच्छं) जो अपने ज्ञान मई स्वभावसे आकाश तुल्य आत्माको देखनेवाली है वही पश्चिम दिशा है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु पश्चिम दिशाके वस्त्रको तो बाहरमें पहनते हैं। अन्तरंगमें जो निज आत्माके अनुभवमें लीनता स्वरूप आत्मानुभूतिमई पश्चिम दिशाका वस्त्र धारण करते हैं। जिनके भीतर आत्माके सर्वांग प्रदेशोंमें निज शुद्ध आत्मानुभवमई मोक्षका मार्ग जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई है, भलेप्रकार झलका करता है। ऐसे ही सच्चे साधु द्रव्यलिंग व भावलिंग दोनोंके धारी दिगम्बर जैन यति हैं।

वायव्य दिशा अंबर कथन।

वाइवं दिसि उत्तं, विगतं रूवेन अंबरं अमलं।
विगतं संसार सुभावं, अविगत रूवेन सुद्ध सहकारं ॥ ४१६ ॥

अन्वयार्थ—(वाइवं दिसि उत्तं) अब वायव्य दिशा वस्त्रको कहते हैं (विगतं रूवेन अम्बरं अमलं) जो रूपातीत आकाशके समान निर्मल आत्माका अनुभव है (विगतं संसार सुभावं) जिसमें संसारके किसी स्वभावका विकल्प नहीं है सो ही (अविगत रूवेन सुद्ध सहकारं) स्वभावमें लीन शुद्ध आत्माकी प्रगटताका साधन है। यही वायव्य दिशा वस्त्र है।

भावार्थ—शुद्ध आत्माके प्रकाशका उपाय आत्माके वीतराग विज्ञानमय स्वरूपका अनुभव है। यह अनुभव जिस साधुमें है वही अंतरंग वायव्य दिशा वस्त्रका धारी है।

अविगत परमानंदं, विगतं संसार सरनि सहकारं।
अविगत रूवे रूवं, अविगत परम केवलं ज्ञानं ॥ ४१७ ॥

अन्वयार्थ—(अविगत परमानंदं) जिसमें परमानंद स्वभाव भरपूर है, (विगतं संसार सरनि सहकारं) जो संसारके मार्गसे दूर होगया है (अविगत रूवे रूवं) जो निश्चल स्वभावमें एकरूप है (अविगत परम केवलं ज्ञानं) जो केवलज्ञानसे तन्मय है ऐसे परमात्म स्वभावका प्रकाश आत्मानुभवरूप वायव्य दिशा वस्त्रसे होता है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु बाहरमें तो वायव्य दिशा वस्त्रको रखनेवाले हैं व अन्तरंगमें आत्मानुभव रूप वस्त्रको रखनेवाले हैं। केवल बाहरसे दिगम्बर हो और अन्तरंगमें स्वात्मानुभव रूप अम्बर न हो तो वे सच्चे दिगम्बर नहीं हैं।

उत्तर दिशा वस्त्र कथन।

उत्तर दिसि उवएसं, वर दंसन ज्ञान चरन तव सुद्धं।
उत्तर गुनानि धरनं, अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं ॥ ४१८ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर दिसि उवएसं) अब उत्तर दिशा वस्त्रको कहते हैं (वर दंसन ज्ञान चरन तव सुद्धं) उत्तम शुद्ध सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र व सम्यक् तप इन चार आराधनाओंका करना (उत्तर गुनानि धरनं) आत्माके गुणोंको अन्तरंगमें धारण करना (अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं) व आत्माको परमात्माके समान निर्मल और वीतराग अनुभव करना उत्तर दिशा वस्त्र है।

भावार्थ—उत्तर दिशा वस्त्र वही है जो उत्तम प्रकारसे निश्चय नयके द्वारा सम्यग्दर्शन आदि चार आराधनाओंको अन्तरंगमें धारण कर आपको शुद्ध परमात्माके समान अनुभव करते रहना।

उत्तर गुन संजुत्तं, मय मिच्छात भाव परिचत्तं।
उत्तर ऊर्ध सहावं, षय उवसम सेनि उत्तरं सुद्धं ॥ ४१९ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर गुन संजुत्तं) श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित रहना (मय मिच्छात भाव परिचत्तं) मद व मिथ्यात्वके भावोंसे रहित होना (उत्तर ऊर्ध सहावं) उत्तम श्रेष्ठ आत्मस्वभावको धारण करना (षय उवसम सेनि उत्तरं सुद्धं) क्षपक-श्रेणीपर हो या उपशम श्रेणीपर हो उत्तम शुद्ध आत्मानुभव करना यही उत्तर दिशा वस्त्र ग्रहण है।

भावार्थ—आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानसे आठ नौ, दस व उपशांत मोह ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम श्रेणी कहलाती है। आठवें अपूर्वकरणसे आठ, नौ, दश, बारह गुणस्थान तक क्षपक श्रेणी है। कोई भी श्रेणीपर होवे ऐसा श्रेणी-आरूढ साधु ध्यानमग्न होता है। उस समयका ही आत्मानुभवरूप शुक्लध्यान साधुका उत्तम वीतरागभाव है, वहां कोई मिथ्यात्व व मद नहीं है, वहां तो केवल श्रेष्ठ आत्मीक परिणति ही है, यही उत्तर दिशा वस्त्र ग्रहण है।

उत्तर दिसि ऊर्ध सहावं, अवगाहन गुन धरन्ति साहूनं।
उत्तर ज्ञान सहावं, अम्बर सुद्धं च ज्ञान सहकारं ॥ ४२० ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर दिसि ऊर्ध सहावं) उत्तर दिशाका वस्त्र यह है कि ऊपर गमन स्वभावधारी श्री सिद्ध भगवान हैं जो (अवगाहन गुन धान्ति) अवगाहना गुण धारण करते हैं। ऐसे प्रसिद्ध स्वभावको (सोहंनं) साधन करनेवाले साधुओंके भीतर जो (उत्तर ज्ञान सहावं अम्बर सुद्ध च) उत्तम ज्ञान स्वभावी शुद्ध वस्त्र हैं वही (ज्ञान सहकारं) केवलज्ञानको प्रगट करनेमें साधक हैं।

भावार्थ—आत्मा जब सिद्ध होजाता है तब उर्द्धगमन स्वभावसे ऊपरको जाता है। जहां एक सिद्धका आत्मा तिष्ठता है वहां अनेक भी सिद्ध भगवान अवकाश पाते हैं क्योंकि अमूर्तीक होनेसे कोई बाधा नहीं होती है। ऐसे सिद्ध स्वभावके प्रकाश करनेके लिये परम वीतराग निर्विकल्प आत्माका अनुभव ही उत्तर दिशाका वस्त्र है। इसे साधु अंतरंगमें धारते हैं, तथा बाहरमें उत्तर दिशाको अपना वस्त्र बनाते हैं, ये ही सच्चे दिगम्बर जैन साधु हैं।

ईशान दिशा अम्बर कथन।

ईशान दिसि उवएसं, ईसंति लोय मत्त सुपएसं।
ईसं इष्ट संजोयं, अनिष्टरूवं च सयल तिक्तं च ॥ ४२१ ॥

अन्वयार्थ—(ईसान दिसि उवएसं) अब ईशान दिशा वस्त्रका उपदेश करते हैं (लोय मंत सुपएसं ईसंति) जहां लोक मात्र अपने आत्माके प्रदेशोंकी ही इच्छा की जावे (इष्ट संजोयं ईसं) आत्मोन्नति कारक उपयोगी संयोगोंकी इच्छा की जावे (अनिष्टरूवं सयल तिक्तं च) और सम्पूर्ण आत्माकी उन्नतिमें बाधक अनिष्ट कारणोंको त्याग किया जावे वही ईशान दिशा वस्त्र है।

भावार्थ—आत्माके प्रदेश लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश है यही आत्माका अपना क्षेत्र है। इस हीको अपना मान करके और सब परक्षेत्रोंको त्यागना। सबसे मोह हटाना, आत्माको लाभकारी निर्विकल्प समाधिका संयोग मिलाना। आत्माको अहितकारी रागद्वेष, मोहादि भावोंका त्याग करना। निजको ग्रहण कर परका त्याग करना ही ईशान दिशा अम्बर है जिसे जैन साधु अन्तरङ्गमें धारण करते हैं।

इर्या पंथ निवेदं, ईर्य्या इत्यादि समिदि संजुत्तं ।
इष्टं च इष्टरूवं, ज्ञान सहावेन ईस तियलोयं ॥ ४२२ ॥

अन्वयार्थ—(इर्या पंथ निवेदं) जहां विकल्प व रागद्वेष रहित सरल मोक्षमार्गकी भावना की जावे (ईर्य्या इत्यादि समिदि संजुत्तं) ईर्या भाषा आदि पांच समितिको पाला जावे (इष्टरूवं च इष्टं) आत्माके शुद्ध स्वरूपकी चाहना की जावे (ज्ञान सहावेन तियलोयं ईस) ज्ञान स्वभावकी अपेक्षा अपनेको तीन लोकका स्वामी अनुभव किया जावे वही ईशान दिशा है ।

भावार्थ—ईशान दिशा वस्त्रधारी मुनि पांच समितियोंको पालते हैं । चार हाथ प्राशुक भूमि आगे देखकर दिनमें चलना इर्या समिति है । शुद्ध भाषा बोलना भाषा समिति है । शुद्ध भोजन भिक्षासे लेना एषना समिति है । देखकर रखना उठाना आदान निक्षेपन समिति है । देखकर निर्जंतु भूमिमें मल मूत्र करना प्रतिष्ठापना समिति है । तथा वे साधु संसारके पदार्थको रञ्च मात्र इच्छा न रखते हुए मात्र सरल आनन्द निर्विकल्प समाधिरूप मोक्षमार्गको प्यार करते हैं, जिस मार्गमें कर्मरूपी बीज नहीं उगता है । या अपने ही शुद्ध स्वभावसे प्रेम करते हैं तथा अपनेको ज्ञान स्वभावकी अपेक्षा त्रिलोकका ज्ञाता अनुभव करते हैं । ऐसे ही साधु ईशान दिशा वस्त्रधारी होते हैं ।

इस्टं सुद्ध सहावं, असुद्धपरिनाम सयल तिक्तं च ।
ईसं तिलोय ईसं, ईसं अंबर विसुद्ध सहकारं ॥ ४२३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं इस्टं) जिनको शुद्ध आत्मीक स्वभाव प्यारा है (असुद्धपरिनाम सयल तिक्तं च) व जिन्होंने सर्व अशुद्ध परिणामोंको त्याग दिया है (ईसं तिलोय ईसं) जो तीन लोकके प्रभुत्व स्वरूप परमात्माको चाहते हैं वे साधु (ईसं अंबर विसुद्ध सहकारं) ईशान दिशाके वस्त्रके धारी हैं जो आत्मशुद्धिका साधन है ।

भावार्थ—सच्चे दिगम्बर जैन साधु वे ही हैं जो बाहरमें नग्न रहकर ईशान दिशारूपी वस्त्रके धारण करनेवाले हैं तथा अंतरंगमें सर्व रागादि भावोंसे रहित शुद्ध आत्माके स्वभावके अनुभव स्वरूप ईशान दिशारूपी वस्त्रके धारनेवाले हैं ।

ऊर्द्ध दिशा अम्बर कथन ।

ऊर्ध दिसा सा उत्तं, ऊर्ध स सहाव निम्मलं सुद्धं ।
ऊर्ध ऊर्ध सरूवं, ऊर्ध ज्ञानं पि केवलं सुद्धं ॥ ४२४ ॥

अन्वयार्थ—(सा ऊर्ध दिसा उत्तं) वही साधुओंके ऊर्ध दिशाका वस्त्र कहा गया है जो (ऊर्ध स सहाव निम्मलं सुद्धं) श्रेष्ठ आत्मीक स्वभावको मल रहित शुद्ध अनुभव किया जावे (ऊर्ध ऊर्ध सरूवं) वह श्रेष्ठ स्वभाव सिद्ध परमात्माके समान है। (ऊर्ध ज्ञानं पि केववं सुद्धं) वही श्रेष्ठ ध्यान स्वाधीन शुद्ध ध्यान है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु ऊपरकी तरफ भी ऊर्द्ध दिशा वस्त्रको रखते हैं। अन्तरंगमें अपने आत्माके श्रेष्ठ कर्म रहित वीतराग स्वरूपका ध्यान करते हैं। आपको सिद्ध परमात्मवत् ध्याते हैं। यही आत्म-ध्यान शुद्ध है व निर्विकल्प है।

सुद्धं च भाव सुद्धं, असुद्ध परिनाम सयल तिक्तं च ।
सुद्धं जिन उवएसं, ऊर्ध अम्बर विज्ञान सहकारं ॥ ४२५ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध अम्बर) ऊर्ध दिशाका अन्तरंग श्रेष्ट वस्त्र (सुद्धं च भावं सुद्धं) शुद्ध है। जहां भावोंमें शुद्धोपयोग है (असुद्ध परिनाम सयल तिक्तं च) सर्व ही रागादि अशुद्ध भावोंको जिसने त्याग दिया है (सुद्धं जिन उवएसं) जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ ऐसा ही भाव लिंगरूप शुद्ध उपयोग (विज्ञान सहकारं) केवलज्ञानका साधक है।

भावार्थ—ऊर्द्ध दिशा सम्बन्धी वस्त्र अन्तरंगमें एक मात्र शुद्धोपयोग है, इन्हीं भावोंके द्वारा शुक्लध्यान प्रगट होता है, जो केवलज्ञानका कारण है, बाहरी वस्त्र नग्न दिगम्बरत्व है।

अधो दिशा अम्बर कथन ।

अर्ध दिसि उवएसं, ज्ञानं ज्ञानं च दिष्टि सद्भावं ।
अर्ध ऊर्ध सहावं, अप्पा परमप्प विगतरूवेन ॥ ४२६ ॥

अन्वयार्थ—(अर्ध दिसि उवएसं) अब अधो दिशा अम्बरका कथन करते हैं (ज्ञानं ज्ञानं च दिष्टि सद्भावं) सम्यग्दर्शन सहित आत्मज्ञान व आत्माका ध्यान अधो दिशा वस्त्र है (अर्ध ऊर्ध सहावं) परमात्मासे व्यवहारनयसे अधो रहनेवाला यह आत्मा निश्चयसे परमात्माके समान श्रेष्ठ स्वभावधारी है। अर्थात् (अप्पा परमप्प विगत रूवेन) आत्मा परमात्माके बराबर अमूर्तीक है। ऐसा ध्यान ही अधो दिशा वस्त्र है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु बाहरमें अधो दिशामई वस्त्र रखते हैं। अन्तरंगमें वे अपने ही आत्माको शुद्ध परमात्माके समान वीतराग विज्ञानमई अनुभव करते हैं।

ॐ वंकारं ह्रियंकारं, श्रियंकारं ति अर्थ सुद्धं च ।
पंच स्थान सयुत्तं, सम्मत्तं सुद्ध समय सर्वज्ञं ॥ ४२७ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वंकारं ह्रियंकारं श्रियंकारं) ॐ, ह्रीं, श्रीं इन तीन पदोंका ध्यान करते हुए (सुद्धं च ति अर्थ) शुद्ध रत्नत्रयका विचार करते हुए तथा (पंच स्थान सयुत्तं) पांच परमेष्ठीका स्वरूप चिंतवते हुए (सुद्ध समय सर्वज्ञं सम्मत्तं) शुद्ध आत्माको सर्वज्ञ समान ध्याना यही सम्यग्दर्शनका आचरण है।

भावार्थ—अपने भौंहोंके मध्यमें व नासिकाकी नोकपर व अन्य भी कहीं ॐ, ह्रीं या श्रीं इन तीन मंत्र पदोंमेंसे किसीको विराजमान करके पांच परमेष्ठीका स्वरूप विचारते हुए निश्चय रत्नत्रयको विचारना। अर्थात् ज्ञानस्वरूप शुद्ध आत्मामें लीन होना योग्य है। यही अधो दिशा वस्त्र धारण है।

दिसि अम्बर सं सुद्धं, दिगम्बर ज्ञान ज्ञान सहकारं ।
अम्बर दिग् दिष्टं च, ज्ञान सहावेन अम्बरं भनियं ॥ ४२८ ॥

अन्वयार्थ—(दिसि अम्बर सं सुद्धं) दिशाओंका वस्त्र परम शुद्ध है यह बाहरी व अन्तरंग (दिगम्बर

ज्ञान ज्ञान सहकारं) दिगम्बरका स्वरूप शुद्ध आत्मज्ञान व ध्यानका सहकारी है (अम्बर दिग् दिट्ठं च) बाहरी अम्बर दिशाओंको देखना चाहिये (ज्ञान महावेन अम्बरं भनियं) भीतर ज्ञान स्वभावमें रमण करना अन्तरंग अम्बर कहा गया है।

भावार्थ—यहां ग्रन्थकर्ताने दिगम्बर जैन साधुका बडा ही सुन्दर विवेचन किया है। और यह झलकाया है कि मात्र बाहरी नग्न रहनेसे कल्याण न होगा। किन्तु बाहरी परिग्रहके साथ साथ अन्तरंग परिग्रहका भी त्याग जिसके होगा वही दिगम्बर जैन साधु है। ज्ञान स्वभावमें रमणकर आत्मानुभव करना अन्तरंग भावलिंगरूप दिशाका वस्त्र है। वहां सर्व मिथ्यात्व, रागद्वेषादि विभाव भावोंका त्याग हो जाता है। निश्चय रत्नत्रयमई परम सामायिक भावोंको धारना ही अन्तरंग दिशाका वस्त्र है।

निर्ग्रंथ स्वरूप कथन।

निःचेल सुद्ध सुद्धं, अम्बर सुद्धं च निम्मलं विमलं।
अमल अमल सहावं, ज्ञान सहावेन सुद्ध वयधरनं ॥ ४२९ ॥

अन्वयार्थ—(निःचेल सुद्ध सुद्धं) वस्त्र रहित साधु अन्तरंग व बहिरंग शुद्ध परिग्रह रहित होते हैं (अम्बर सुद्धं च निम्मलं विमलं) अन्तरंगमें शुद्ध कर्मकलंक रहित व रागादि रहित (अमल अमल सहावं) परम निर्मल आत्माका स्वभाव है जहां (ज्ञान सहावेन सुद्ध वयधरनं) ज्ञान स्वभावमें स्थिर होना ही शुद्ध व्रतका धरना है।

भावार्थ—निर्ग्रंथ या अचेलक दिगम्बर जैन मुनि बाहरमें वस्त्र रहित होते हैं परंतु अन्तरंगमें शुद्ध आत्मीक भावके अनुभव करनेवाले होते हैं। बाहरी व्रत पांच महाव्रत आदि हैं परंतु अन्तरंग व्रत शुद्ध स्वभावमें रमण करना है।

ग्रन्थं सहाव उत्तं, जं ग्रहनं असुद्ध भाव परिनामं।
ग्रन्थं विमुक्त तिविहं, कम्मानं मुक्त सरनि संसारे ॥ ४३० ॥

अन्वयार्थ—(ग्रन्थं सहाव उत्तं) अब निर्ग्रंथका स्वभाव कहते हैं (जं असुद्ध भाव परिनामं ग्रहनं) अशुद्ध भावोंके परिणमनको उपादेय मानना व उसमें तिष्ठना ग्रंथ है (ग्रन्थं विमुक्त) इस ग्रंथसे छूटना निर्ग्रंथ है (तिविहं कम्मानं संसारे सरनि मुक्त) तीन प्रकार कर्मोंसे छूटना जो संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं, यथार्थ निर्ग्रंथ होना है।

भावार्थ—पर पदार्थका व पर भावोंका ग्रहण ग्रंथ है। निर्ग्रंथ वही है जो सर्व पर भावोंका व कषायादिका त्यागी है; जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म सहित संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं, इनसे रहित शुद्ध आत्माका जो ध्याता है वही निर्ग्रंथ है।

वाहिज भितर ग्रंथाः, मुक्का संसार सरनि वावारे।
मुक्का राग कषायं, मुक्का पुग्गल सहाव सम्बन्धं ॥ ४३१ ॥

अन्वयार्थ—(बाहिज भितर ग्रंथाः संसार सरनि वावारे मुक्का) निर्ग्रंथ साधु बाहरी व भीतरी परिग्रहोंको तथा संसार मार्गको भ्रमानेवाले आरम्भोंको छोड चुके हैं (मुक्का राग कषायं) राग भावको व क्रोधादि कषायोंको दमन कर चुके हैं (मुक्का पुगल सहाव सम्बन्धं) तथा सर्व पुद्गल सम्बन्धको छोड चुके हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु वही हैं जिसके क्षेत्र मकानादि बाहरी दश प्रकारकी परिग्रह व मिथ्यात्व आदि चौदह प्रकार अन्तरंग परिग्रह नहीं है। जिसने खेती, व्यापारादि व गृह सम्बन्धी सर्व व्यापारोंको भलेप्रकार त्याग दिया है, सर्व संसारके प्रपंचोंसे राग हटा लिया है, क्रोधादि कषायोंको दमन किया है। सिवाय एक आत्मीक सामायिक भावके सर्व कर्म नोकर्मादि पौद्गलिक सम्बन्धसे अपना नाता तोड दिया है।

सिंघासन ग्रह छित्तं, जानहि सभाव असुह परिनामं।
पुग्गल सहाव रूवं, ज्ञान सहावेन तिक्तं संसारे ॥ ४३२ ॥

अन्वयार्थ—(सिंघासन ग्रह छित्तं सभाव असुह परिनामं जानहि) सिंघासन, घर क्षेत्रादिका स्वभाव अशुभ परिणामोंको बांधा करना है ऐसा साधु जानते हैं इसलिये (ज्ञान सहावेन) अपने आत्माके ज्ञान स्वभावके द्वारा साधु महाराजने (पुग्गल सहाव रूवं संसारे तिक्तं) पुद्गल स्वभावमई सर्व सांसारिक भावोंको त्याग दिया है।

भावार्थ—सिंघासन, मकान, खेत आदि बाहरी परिग्रह अन्तरंग भावोंको बिगाडनेमें निमित्त कारण है, ममता पैदा करनेवाले हैं इसलिये इनको त्यागते हुए साधुओंने सर्व ही विभावोंको त्याग दिया है। रागद्वेषादिसे मुंह मोड लिया है। एक अपने शुद्ध ज्ञायक भावको अपना मानके उसीमें प्रेम स्थिर कर लिया है। अर्थात् वे उसीमें आसक्त हैं। परिग्रह सम्बन्धी भाव हिंसा है।

पुरुषार्थ०में कहा है—

हिंसापर्यायत्वात्सिद्धा हिंसातरङ्गसंगेषु। बहिरंगेषु तु नियतं प्रयातु मूर्छैव हिंसात्वम् ॥ ११९ ॥

भावार्थ—अन्तरंग परिग्रह चौदह प्रकार मिथ्यात्व, वेद, रागद्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ ये तो भाव हिंसा है ही क्योंकि आत्माके शुद्ध वीतराग भावके घातक हैं। बाहरी दश प्रकारके परिग्रह, क्षेत्र, मकान, धन, धान्य, चांदी, सोना, दासी, दास, कपडे, वर्तन अंतरंग मूर्छा पैदा करनेका निमित्त है इसलिये इनसे भी भाव हिंसा होती है। तथा ये द्रव्यहिंसाके भी कारण हैं। ऐसा जान निर्ग्रन्थ साधु दोनों प्रकारकी परिग्रहका त्याग देते हैं।

सिंघासन परिग्रह कथन।

सिंहासनं स उत्तं, चौ गइ संसार आसनं सहसा।
बंधं चौविहि उत्तं, ज्ञानसहावेन आसनं मुक्कं ॥ ४३२ ॥

अन्वयार्थ—(स सिंहासनं उत्तं) वास्तवमें वही सिंहासन कहा गया है (चौ गइ संसार आसनं सहसा) जो यह आत्मा अपने सिद्ध स्वभावमई आसनको छोडकर यकायक चार गति रूपी संसारके आसनोंको प्राप्त करता रहता है तथा (चौविहि बंधं उत्तं) चार प्रकार कर्म बंधको भी सिंहासन कहा गया है। निर्ग्रंथोंने (ज्ञानसहावेन आसनं मुक्कं) अपने आत्मज्ञानके स्वभावमें थिर होकर इन सर्व आसनोंका मोह त्याग कर दिया है।

भावार्थ—राजागण दीक्षा लेते हुए राज्य सिंहासनको छोड देते हैं। यह तो बाहरी सिंहासन त्याग है। अंतरंग सिंहासन यह है जो यह जीव शुद्ध आत्मीक भावमई आसनको छोडकर चार

गतिमें भ्रमानेवाले भावरूपी आसनोंको करता है तथा उन भावोंसे प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग इन चार प्रकार कर्मबंधको करता है, जिन कर्मोंके उदयसे चारों गतियोंमें भ्रमण किया करता है। इन सर्व विभाव भावरूपी आसनोंको भी आत्मानुभव रूपी निज आसनमें थिर होकर निर्ग्रंथ साधु छोड देते हैं यही यथार्थ सिंहासन परिग्रह त्याग है।

आसन सहाव सहियं, आस्रवै कम्मं च पुन्यं पावं च।
आस्रवै द्रव्य कम्मं, ज्ञानबलेन आसनं मुक्कं ॥ ४३४ ॥

अन्वयार्थ—(आसन सहाव सहियं) जो ऊपर लिखित चार गतिमें भ्रमानेवाले भावरूपी आसनोंके भीतर बैठता रहता है वह मोही प्राणी (पुन्यं च पावं च कम्मं आस्रवै) पुण्य पाप कर्मोंका आस्रव करता है (आस्रवै द्रव्य कम्मं) वही सर्व आठ प्रकार द्रव्य कर्मोंका आस्रव करता है ऐसा जानकर निर्ग्रंथ साधुओंने (ज्ञानबलेन आसनं मुक्कं) आत्मज्ञानके बलसे सर्व प्रकारके निज आसनके प्रतिपक्षी आसनोंका त्याग कर दिया है।

भावार्थ—जिन २ रागद्वेषादि भावोंमें ठहरनेसे पुन्यका व पापका अथवा आठों ही प्रकारके कर्मोंका बंध होता है उन सर्व भावोंका निर्ग्रंथ साधुओंने ममत्व त्याग दिया है। मिथ्यात्वसे लेकर सयोग केवली नामके तेरहवें गुणस्थान तक मोह व योगका सम्बन्ध है। इसलिये कर्मोंका आस्रव होता है। इसी लिये निर्ग्रंथ साधुओंने मोह व योगसे अथवा इनके विस्ताररूप गुणस्थानोंसे मोह त्याग दिया है। केवल मात्र एक निज आत्माके शुद्ध पदसे प्रेम कर लिया है, जहां कोई प्रकारका बंध नहीं है। इस सिंहासन पर बैठकर परके आसनोंको त्याग देना ही सिंहासन परिग्रह त्याग है।

ग्रह परिग्रह कथन।

ग्रहनं संसार सुभावं, दुविहि कुज्ञान ग्रहन उत्पन्नं।
पुग्गलसहाव ग्रहनं, तिक्कंति मन वयन काय संसुद्धं ॥ ४३५ ॥

अन्वयार्थ—(दुविहि कुज्ञान ग्रहन उत्पन्नं) दो प्रकार मिथ्याज्ञानके ग्रहणसे उत्पन्न (संसार सुभावं ग्रहनं)

संसारके स्वभावको ग्रहण करना तथा (पुग्गल सहाव ग्रहनं) पौद्गलिक भावोंको ग्रहण करना ग्रह परिग्रह है। निर्ग्रंथ साधु (मनवयन काय संसुद्धं तिक्कंति) मन वचन कायको शुद्ध करके इस ग्रह परिग्रहका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें तो ग्रह परिग्रहको छोडते हैं, अंतरंगमें उन सर्व सांसारिक रागद्वेष मोह पापोंको छोडते हैं जो भाव मिथ्या मतिज्ञान व मिथ्या श्रुतज्ञानके द्वारा पैदा होते हैं। तथा वे एक निजात्मीक भावके सिवाय सर्व पुद्गल कर्म जनित रागादि भावोंको व संकल्प-विकल्पोंको मन, वचन, कायकी शुद्धताके साथ छोड देते हैं। परको आपका मानना ग्रह परिग्रह है। जिसने पर माननेको त्यागकर निज स्वभावमें रमण किया उसीने ग्रह परिग्रहका त्याग किया।

उत्पाद्यं विधिग्रहनं, संबंधं सरनिबंध मित्तानं।
ग्रहनं कम्म सहावं, ज्ञान सहावेन तिक्त ग्रहभेयं ॥ ४३६ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पाद्यं विधिग्रहनं) उत्पन्न किये हुए कर्मोंको ग्रहण करना ग्रह परिग्रह है (संबंध सरनिबंध मित्तानं) इसी मोहसे बंध करनेवाले सम्बन्धीकी प्राप्तिका मार्ग बढता है (कम्म सहावं ग्रहनं) अर्थात् कर्मजनित भावोंको ग्रहण करना ग्रह परिग्रह है। (ज्ञान सहावेन तिक्त ग्रहभेयं) इसीलिये निर्ग्रंथ साधु ग्रह नामके परिग्रहको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जो कर्म इस समयसे पूर्व समयोंमें जीवने अपने भावोंके निमित्तसे संचित किये हैं वे सर्व उत्पाद्य कर्म हैं। उनको अपना मानना ग्रह परिग्रह है। ये बंध आठ कर्म बंधकी परिपाटीको बढानेवाले हैं। उन्हींके उदयसे चार गतिमें भ्रमण होगा, उनमें रागद्वेष होगा, रागद्वेषसे फिर बंध होगा। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इन सर्व प्रकारके पौद्गलिक कर्मोंसे ममत्व करना ग्रह परिग्रह है। निर्ग्रंथ साधुजन इस सर्वसे मोह त्यागकर एक अपने आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करते हैं। यही ग्रह परिग्रह त्याग है।

क्षिति परिग्रह कथन।

छेत्तं सहाव उत्तं, छेत्तं अनादि कम्म सद्भावं।
चौगइ गमन सहावं, असयनं सयन क्षेत्त परिनामं ॥ ४३७ ॥

अन्वयार्थ—(छेत्तं सहाव उत्तं) क्षेत्र परिग्रहका स्वभाव कहा जाता है। (छेत्तं अनादि कम्म सदभावं) अनादिकालसे कर्मोंकी सत्ताका चले आना क्षेत्र है (चौगइ गमन सहावं) इसीके कारण चारों गतियोंमें जीवका भ्रमण रहता है (असयनं सयन क्षेत्त परिनामं) जागृत व निद्रित दो ही इस क्षेत्रकी अवस्था हैं।

भावार्थ—जहां धान्य पैदा होते हैं उस भूमिको खेत कहते हैं। साधु बाहरी खेत परिग्रहके त्यागी हैं। अन्तरंगमें खेत अनादिकालसे चले आए हुए कर्मोंका सम्बन्ध है। इसी खेतके कारण कर्मोंके फलसे चारों गतिमें यह जीव भ्रमण करता है। कर्मोंकी सत्तामें जब सम्यक्त अवस्था होती है तब तो यह प्राणी अपने स्वरूपमें जागता है और जब मिथ्यात्व अवस्था होती है तब अपने स्वरूपमें शयन करता है। इस कर्मरूपी खेतके मोहसे भी निर्ग्रंथ विरक्त हैं।

छेत्तं उवनं उत्तं, छेत्तं संसार सरनि सद्भावं।
छेत्तं भवनसहावं, ज्ञान सहावेन छेत्तं तिक्तंति ॥ ४३८ ॥

अन्वयार्थ—(छेत्तं उवनं उत्तं) क्षेत्र उपवनको कहा गया है (छेत्तं संसार सरनि सदभावं) अंतरंग क्षेत्र संसार मार्गकी सत्ताको कहा गया है (छेत्तं भवन सहावं) जहां खेत है वहां उत्पत्ति होती रहती है यही खेतका स्वभाव है (ज्ञान सहावेन छेत्तं तिक्तंति) निर्ग्रंथ साधु ज्ञान स्वभावमें रमण करके बहिरंग व अन्तरङ्ग क्षेत्रको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां बीज बोए जावें व फल उपजे उसे ही क्षेत्र कहते हैं, बाहरमें उपवन या खेत क्षेत्र हैं। अन्तरङ्गमें संसारके फलोंको उत्पन्न करनेवाला कर्मरूपी खेत है। खेतका स्वभाव ही सदा फलोंको उत्पन्न करना है। ऐसा जानकर साधुजन बाहरी व अन्तरंग दोनों प्रकारके क्षेत्र परिग्रहको त्याग देते हैं व अपने ज्ञान स्वभावमें एकाग्र होजाते हैं। वे कर्मके प्रपंच-जालसे विरक्त हो कर्म रहित पदकी भावना करते हैं।

सुवर्ण परिग्रह कथन ।

सुवरण भाव स उत्तं, सुरेयं अनृत अभाव अथिरानं ।
चपल सहाव सुवर्णं, तिक्तंति ज्ञान सुद्ध सहकारं ॥ ४३९ ॥

अन्वयार्थ—(सुवरण भाव स उत्तं) सुवर्ण स्वभाव उसे कहा गया है जो (अनृत अभाव अथिरानं सुरेयं) मिथ्या, कल्पित व अथिर भावोंमें रंजायमान हुआ जावे (चपल सहाव सुवर्णं) भावोंमें चंचलता होना ही सुवर्ण है (सुद्ध ज्ञान सहकारं तिक्तंति) तत्वज्ञानी शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे इस सुवर्ण परिग्रहको त्याग देते हैं ।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें सुवर्णके त्यागी हैं, अंतरंगमें सुवर्ण सदृश भावोंके त्यागी हैं । संसार शरीर भोगोंमें व इनके लिये नानाप्रकार संकल्प विकल्पोंमें रंजायमान होना सुवर्ण है । ये संसारकी अवस्थाएं अथिर हैं, मिथ्या हैं, व कल्पित हैं । प्राणियोंने मोहवश किन्हींको अच्छा व किन्हींको बुरा मान लिया है । आत्मामें समतारूप न होकर इंद्रिय विषयोंकी ही इच्छासे चंचल रहना एक तरह सुवर्ण भाव है । जो अच्छा दीखे वह सुवर्ण है । इन सर्व सुवर्ण सदृश संसारसे मोह बढानेवाले भावोंसे साधुजन विरक्त रहते हैं । यही सुवर्ण परिग्रह त्याग है ।

धनधान्य परिग्रह कथन ।

धन धान्य अभ्र पटलं, विनास रूवेन चेयना रहियं ।
अनृत असत्य सहियं, धनधान्य तिक्त सुद्ध सहकारं ॥४४०॥

अन्वयार्थ—(धन धान्य अभ्र पटलं) धन धान्य परिग्रह बादलोंके समान (विनास रूवेन) नाशवंत है (चेयना रहियं) ज्ञान चेतनासे रहित (अनृत असत्य सहियं) जो कुछ मिथ्या व क्षणिक संसारकी अवस्थाएं हैं वे सर्व (धनधान्य) धन धान्य हैं इनको (सुद्ध सहकारं तिक्त) शुद्ध भावोंकी सहायतासे साधुओंने त्याग दिया है ।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें धन धान्य परिग्रहके त्यागी हैं, अंतरंगमें अपनी ज्ञान चेतना रूप

स्वानुभूतिके सिवाय जितनी रागद्वेष संकल्प विकल्प रूप अथिर व मिथ्या विभाव परिणतियें हैं वे धन धान्य हैं उनके त्यागी हैं। शुद्ध ज्ञानके अनुभवकी सहायतासे निर्ग्रंथ साधुओंने इन सर्व धन धान्योंका त्याग कर दिया है।

कुप्य परिग्रह कथन।

कुप्पं कुधर्म जुत्तं, अंधं अध्रुवं च अध्रुव स सहावं।
अज्ञान मिच्छ सहियं, ज्ञानबलेन कुप्प तिक्तं च ॥ ४४१ ॥

अन्वयार्थ—(कुप्पं कुधर्म जुत्तं) वस्त्र परिग्रह व वस्त्र स्वभाव रूप कुधर्म सहित परिणाम (अंधं अध्रुवं च) अज्ञानरूप अन्ध है व नाशवंत है (अध्रुव ससहावं) उसका स्वभाव ही अनित्य है (अज्ञान मिच्छ सहियं) जो कुछ भी मन वचन कायकी क्रिया मिथ्या ज्ञान व मिथ्या दर्शन सहित है सो (कुप्प) कुप्य परिग्रह है उसे (ज्ञानबलेन तिक्तं च) निर्ग्रंथ साधु आत्मज्ञानके बलसे छोड देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहर तो वस्त्रका त्याग करते हैं अंतरंगमें शुद्ध भावके आच्छादनेवाले सर्व ही मिथ्या दर्शन मिथ्या ज्ञान संयुक्त भावोंको, रागद्वेषोंको, संकल्प विकल्पोंको त्याग देते हैं। कर्मजनित सर्व ही भाव नाशवंत हैं। उनमें रंजायमान होना अन्धपना है व मूर्खता है ऐसी मूर्खताका त्याग सो ही कुप्य परिग्रह त्याग है।

भाजन परिग्रह कथन।

भाजन मिथ्या सहावं, संसारे दुःख भाजनं उत्तं।
भाजन विकह स उत्तं, भाजन तिक्तंति ज्ञानसहकारं ॥ ४४२ ॥

अन्वयार्थ—(भाजन मिथ्या सहावं) भाजन वर्तनको कहते हैं, बाहरमें वर्तनोंका रखना परिग्रह है। अन्तरंगमें भाजनके समान मिथ्यात्व भावको रखना परिग्रह है, यह मिथ्या दर्शन (संसारे दुःख भाजनं उत्तं) संसारमें दुःखोंका भाजन कहा गया है (विकह स भाजन उत्तं) स्त्री आदि विकथाओंमें रंजायमान

होना भी भाजन परिग्रह है (ज्ञान सहकारं भाजन निर्क्ति) ज्ञानकी सहायतासे ऐसे भाजनका त्याग साधुजन कर देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु सिवाय पीछी व कमण्डलके और कोई वर्तन नहीं रखते हैं। आरम्भकारक सर्व भाजनोंके त्यागी हैं। अन्तरंगमें सर्व प्रकारके सांसारिक दुःखोंको देनेवाले मिथ्यात्व भावके त्यागी हैं। तथा वे कभी स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथामें रंजायमान होकर वृथा पापको नहीं बांधते हैं। यही भाजन परिग्रहका त्याग है।



दुपद परिग्रह कथन।

दुपदं दुबुद्धि जुत्तं, अज्ञानं ज्ञान सुद्धपद रहियं।
दुपदं अनिष्ट दिष्टं, इष्ट विओय दुपद तिक्तं च ॥ ४४३ ॥

अन्वयार्थ—(दुपदं दुबुद्धि जुत्तं) दुपद परिग्रह दासी दासको कहते हैं, अन्तरंगमें दुपद परिग्रह दुर्बुद्धि सहित भावको कहते हैं (अज्ञानं ज्ञान सुद्धपद रहियं) या उस मिथ्या ज्ञानको कहते हैं जहां शुद्ध ज्ञानमई निज पदका अनुभव नहीं है (अनिष्ट दिष्टं दुपदं) जहां आत्माको अहितकारी भावोंपर दृष्टि है वह दुपद है (इष्ट विओय दुपद) या आत्मध्यान जो आत्माको हितकारी है उससे वियोग है सो दुपद है. (तिक्तं च) ऐसे दुपद परिग्रहके त्यागी निर्ग्रंथ साधु होते हैं।

भावार्थ—निज पद आत्माका अज्ञान ज्ञान व चारित्रमई आत्मानुभव है इससे विरुद्ध भाव सो सब दुपद, अपद, व दुःखकारी परपद है। आत्माका अहित परपदमें रमणसे है व आत्माका हित निज पदमें रमणसे है। यह दुपद परिग्रह धारी निज पदमें न रमण कर परपदमें ही रमण किया करता है। निर्ग्रंथ साधु इस पर पद रमणको त्यागकर निज पदमें रमण करते हुए दुपद परिग्रहके त्यागी होते हैं।

दुपदं दुर्मति जुत्तं, हिंसानंदी च दुर्बुधिं जुत्तं।
दुपदं निगोय भावं, ज्ञानसहावेन दुपद तिक्तं च ॥४४४॥

अन्वयार्थ—(दुपदं दुर्मति जुत्तं) दुपद कुमति ज्ञान सहित भाव है (हिंसानंदी च दुर्बुधि जुत्तं) हिंसानन्दी और मिथ्या शास्त्रज्ञान सहित हैं (दुपदं निगोयभावं) दुपद निगोदमें लेजानेवाला भाव है। (ज्ञानसहावेन दुपद तिक्तं च) इसलिये निर्ग्रंथ साधु ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर दुपद परिग्रहका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—स्वपदसे उलटा दुपद है। जिन भावोंमें रमण करनेसे यह प्राणी मोक्षमार्गसे छूट जावे वह सब भावोंकी श्रेणी दुपद है। कुमतिज्ञान व कुश्रुतज्ञानसे वासित परिणाम संसारवर्द्धक विषय भोगोंकी तृष्णामें फंसा रहता है, आत्मानंदको कभी श्रद्धान नहीं करता है। वह धनादिके हेतु परको पीडा देनेमें संकोच नहीं रखता है। हिंसानंदी रौद्रध्यानमें वर्तन करता है। महा अज्ञानरूप भाव जिससे धर्मके जाननेकी बिलकुल उत्कंठा न हो, जो पापमें धर्म मानता है ऐसे भावोंसे यह जीव निगोद पर्यायमें चला जाता है। वहां बहुत ही आत्मज्ञान व्यक्त रहता है। निर्ग्रंथ साधु जैसे बाहर दासी दास दुपदका त्याग करते हैं वैसे वे अन्तरंगके दुपद परमें आसक्त होनेरूप भावोंको भी त्याग देते हैं।

चतुर्पद परिग्रह कथन।

चतुपद चौ गइ सहियं, चौगइ चौ कशाय संजुत्तं।
धाय चवक्कय सहियं, चौविहि बन्धं च बन्ध सहकारं ॥४४५॥
ठिदि अनुभाग स उत्तं, प्रकृति प्रदेश बन्ध सुह असुहं।
चौपद बन्ध सहावं, ज्ञान बलेन चौपदं तिक्तं ॥ ४४६ ॥

अन्वयार्थ—(चतुपद चौ गइ सहियं) चतुपद परिग्रह चार गति सम्बन्धी परिग्रह है (चौगइ चौकषाय संजुत्तं) तथा चार गतिमें होनेवाले चारों प्रकारके कषायोंसे मिला हुआ भाव है (धाय चवक्कय सहियं) चार घातीय कर्मोंके उदयरूप भाव हैं (चौविहि बन्धं च बन्ध सहकारं) चार प्रकार बंधरूप भाव है जिनसे कर्मोंका बंध होता है (ठिदि अनुभाग प्रकृति प्रदेश बन्ध सुह असुहं स उत्तं) वह बंध स्थिति अनुभाग, प्रकृति

प्रदेशरूप शुभ तथा अशुभ कहा गया है (चौपद बंध सहावं) इस तरहके चार प्रकारके बंधके स्वभावको (ज्ञान बलेन चौपदं तिक्तं) ऐसे चतुर्पद परिग्रहको आत्म-ज्ञानके बलसे साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें तो गो भैंस आदि चार पगवालोंके परिग्रहको त्यागते हैं। अंतरंगमें उन सर्व भावोंको चार पदरूप जानकर त्याग देते हैं जैसे (१) चार गतिकी नानाप्रकारकी अवस्थाओंमें रागद्वेष भावको। वे न तो देवगति व मानवगतिमें मोह करते हैं, न नर्क व पशुगतिसे द्वेष करते हैं। (२) चार गतिमें लेजानेवाले अर्थात् चार गतिका बंध करानेवाले कषाय भावको। (३) चार प्रकार कर्म बंधको जो पुण्य पाप रूपसे प्रकृति, प्रदेश, स्थिति अनुभाग रूप होता है तथा (४) चार घातीय कर्मोंके उदयरूप भावको अर्थात् अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अशांतभाव तथा आत्मबलकी निर्बलताको। इत्यादि सर्व विभावोंको त्याग देते हैं। यही चतुर्पद परिग्रह त्याग है।

जानस परिग्रह कथन।

जानसक्रमय सहावं, कुश्रुति कुअवधि दिस्टि संचरनं।
व्रत संजम तव उत्तं, ज्ञानविज्ञान जानसं तिक्तं ॥ ४४७ ॥

अन्वयार्थ—(जानस क्रमय सहावं) बाहर जानस रथादि सवारी है अंतरंग जानस कुमतिमय स्वभाव है तथा (कुश्रुत कुअवधि दिस्टि संचरनं) कुश्रुत व कुअवधि ज्ञानमें लीन होना है (व्रत संजम तव उत्तं) इस कुज्ञान सहित जो व्रत, संयम, तपमें आरूढ होना कहा गया है वही जानस है ऐसे (जानसं) वाहनको (ज्ञान विज्ञान तिक्तं) सम्यग्ज्ञानके बलसे निर्ग्रंथ साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु किसी रथ, गाडी, ऊंट, घोडा, हाथी, पालकी आदि सवारीपर नहीं चढते हैं। वे बाहरके सर्व वाहनोंके त्यागी होते हैं। वे अंतरंग वाहनोंके भी त्यागी होते हैं। मिथ्यात्व सहित मतिश्रुत अवधिज्ञान विपर्यय मार्गमें प्रेरित करता है। इस विपरीत बुद्धि सहित श्रावक व मुनिके व्रत पालना संयम रखना व तप करना यह सब मिथ्या है, संसारवर्द्धक है। इस मिथ्या भावरूपी सवारीको भी निर्ग्रंथ साधु आत्मज्ञानके अनुभवके बलसे छोड देते हैं। वे यथार्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रके पालक होते हैं।

वाहिज ग्रंथ सुभावं, संसारे सरनि दुःख वीजंमि ।
तिक्तंति सुद्ध सुद्धं, ज्ञानवलेन कम्म विलयंती ॥ ४४८ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सुद्धं) परम शुद्ध भाव धारी निर्ग्रंथ साधु (संसारे सरनि दुःख वीजंमि वाहिज ग्रन्थ सुभावं तिक्तंति) संसार मार्गमें भ्रमण करानेवाले व दुःखोंके बीजरूप वाहरी परिग्रहके ऊपर लिखित स्वभावोंको त्याग देते हैं (ज्ञानवलेन कम्म विलयंती) वे आत्मज्ञानके बलसे सर्व परिग्रहको त्याग कर्मोंका नाश करते हैं।

भावार्थ—ऊपर लिखित बाहरी परिग्रहको जो बाहरसे त्यागते हैं व अन्तरंगमें उन बाहरी परिग्रह सम्बन्धी भावोंको त्यागते हैं जो भाव संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं व चारों गतिके दुःखोंको पैदा करनेवाले हैं। आत्मज्ञानके ध्यानमें लीन होकर वे निर्ग्रंथ साधु अपने पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करते हैं।

अभ्यंतर परिग्रह कथन।

आभिंतर ग्रंथ स उत्तं, मनवयकायेन ग्रंथ संवरनं ।
ग्रंथ सहावं पिच्छदि, ज्ञानवलेन सयल तिक्तं च ॥ ४४९ ॥

अन्वयार्थ—(आभिंतर ग्रंथ स उत्तं) भीतरी परिग्रह उसको कहा गया है जो (मनवयकायेन ग्रंथ संवरनं) मन वचन कायसे अपनेको रागादि भावोंसे वेष्ठित कर लेना ऐसा परिग्रह धारी (ग्रंथ सहावं पिच्छदि) रागादि भावोंका ही अनुभव करता है। निर्ग्रंथ साधु (ज्ञानवलेन सयल तिक्तं च) आत्मज्ञानके बलसे इस सर्व ही भीतरी परिग्रहका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव वीतराग विज्ञानमय है। इस स्वभावको आच्छादन करनेवाले अज्ञान व कषाय हैं। जो प्राणी अज्ञान व कषायके वशीभूत हो मन, वचन, कायकी क्रिया करता है वह अपने शुद्ध भावोंका अनुभव न करके अशुद्ध रागादि भावोंका ही अनुभव करता है। इस भीतरी परिग्रहको निर्ग्रंथ साधु आत्मानुभवके बलसे त्याग देते हैं।

मिथ्यात्व परिग्रह कथन ।

मिच्छात वे वि कहियं, मिच्छातं समय मिच्छ संजुत्तं ।
कुज्ञान सल्य सहियं, मिथ्या तिक्तंति ज्ञान सहकारं ॥ ४५० ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छात वे वि कहियं) मिथ्यात्व परिग्रह दो प्रकारका कहा गया है (मिच्छातं समय मिच्छ संजुत्तं) एक तो मिथ्यात्व भाव दूसरे सम्यक्त मिथ्यात्व भाव निर्ग्रंथ साधु (ज्ञान सहकारं) आत्मज्ञानकी सहायतासे (कुज्ञान सल्य सहियं मिथ्या तिक्तंति) मिथ्या ज्ञान व शल्य सहित सर्व मिथ्यात्वको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जिस भावमें तत्वका बिलकुल श्रद्धान न हो वह मिथ्यात्व भाव है। जिस भावमें सच्चे व झूठे तत्वोंका मिला हुआ श्रद्धान हो वह सम्यक्त मिथ्यात्व भाव है। निर्ग्रंथ साधु इन दोनों ही प्रकारके भावोंको अपने आत्मज्ञानकी सहायतासे बिलकुल त्याग देते हैं वे मिथ्याज्ञानको त्यागकर सम्यक्ज्ञानका आराधन करते हैं उनमें माया मिथ्या निदान तीन प्रकार शल्य नहीं होती है।

मिच्छा मिच्छ सहावं, जिनवयनं च लोपनं उत्तं ।
अनृत असत्त्य सहियं, असरनं दुःखभाजनं मिथ्या ॥ ४५१ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छा मिच्छ सहावं) मिथ्यात्व परिग्रह मिथ्यात्व स्वभाव रूप है। (जिनवयनं च लोपनं उत्तं) जिन वचनका लोप करना भी मिथ्यात्व कहा गया है (अनृत असत्त्य सहियं) जो भाव असत्य व मिथ्यात्व सहित है (मिथ्या असरनं दुःखभाजनं) वह मिथ्यात्व है। यह भाव जीवको संसारमें रक्षा करनेवाला नहीं है, दुःखोंको देनेवाला है।

भावार्थ—वस्तु अनेकांत स्वरूप है, किसी अपेक्षा नित्य है किसी अपेक्षा अनित्य है। इस बातको न समझकर उसे एक रूप ही मानना मिथ्यात्व है। जिनेन्द्रकी वाणी अनेकांत स्वरूप है। स्याद्वाद-नय गर्भित है। उसे यथार्थ न समझकर जिन आज्ञाके विरुद्ध मनमानी वर्ताव करनेका भाव करना। सत्य देव, शास्त्र गुरुको न मानकर कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरुकी भक्ति करना, हिंसादि पापोंमें धर्म मानना, यह सब मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व भावहीं जगतके स्वप्नवत् चारित्रमें रंजायमान होकर विषय-

भोगकी तृष्णामें फँसा रहता है। तीव्र कषायसे तीव्र पाप बांधकर प्राणी दुर्गतिमें जाकर दुःख उठाता है। वहां कोई भी दुःखोंसे बचानेवाला नहीं मिलता है। कर्मोंके उदयसे कोई भी जगतमें रक्षक नहीं है।

मिच्छा असत्य उत्तं, अप्पा परमप्प भाव नहु पिच्छे।
प्रपंच विभ्रम सहियं, ज्ञान सहावेन मिच्छ तिक्कंति ॥ ४५२ ॥

अन्वयार्थ—(असत्य मिच्छा उत्तं) जो सत्य नहीं है उसको सत्य जानना मिथ्यात्व कहा गया है। मिथ्यात्व सहित अज्ञानी प्राणी (अप्पा परमप्प भाव नहु पिच्छे) आत्मा और परमात्माके स्वभावोंको श्रद्धानमें नहीं लाता है (प्रपंच विभ्रम सहियं) जगतके प्रपंचमें और भ्रम बुद्धिमें अटका रहता है (ज्ञान सहावेन मिच्छ तिक्कन्ति) निर्ग्रंथ साधु अपने आत्मज्ञानके स्वभावसे इस मिथ्यात्वको त्याग देते हैं।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव शुद्ध ज्ञाता दृष्टा परमात्माके समान है। परमानन्द आत्मा हीमें है। इस सत्यको न समझकर मिथ्यात्वी अज्ञानी प्राणी सांसारिक सुखोंको जो क्षणभंगुर हैं व जो कल्पित तथा असत्य हैं उनको ही यथार्थ सुख मान लेता है। इन्द्रिय सुखोंकी तृष्णावश जगतकी मायामें उलझा रहता है। ऐसा मिथ्यात्व भावरूपी परिग्रह निर्ग्रंथ साधुओंके नहीं होना है क्योंकि वे सम्यग्ज्ञानी होते हुए आत्माके यथार्थ ज्ञाता होते हैं व आत्मानन्दके ही रसिक होते हैं। उनको संसार शरीर भोगोंसे पूर्ण वैराग्य रहता है।

मिच्छा समय स उत्तं, समयं संजुत्तु मिच्छ उवएसं।
विस्वासन्ते मूढा, निगोयवासं च मिच्छ तिक्कन्ते ॥ ४५३ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छा समग स उत्तं) सम्यक्त मिथ्यात्व या मिश्र श्रद्धान उसे कहा गया है जहां (समयं संजुत्तु मिच्छ उवएसं) सम्यक्तके साथ २ मिथ्यात्वका उपदेश ग्रहण किया जावे (मूढा विस्वासंते) अज्ञानी ऐसा विश्वास करते हैं। (मिच्छ निगोयवासं च) ऐसा मिथ्यात्व भी निगोदमें लेजानेवाला है। निर्ग्रंथ साधु (तिक्कंते) इसे त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां सच्चा झूठा मिला हुआ श्रद्धान हो उसे दही गुडके मिले हुए स्वादके समान सम्यक्त मिथ्यात्व भाव कहते हैं। यह भी एक प्रकारका मिथ्यात्व ही है। इसके होते हुए भी निर्मल

तत्वका श्रद्धान नहीं होता है। मिथ्यात्वभाव अज्ञानरूप है। एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिकी निगोद पर्यायमें दीर्घकाल वास करानेवाला है। निर्ग्रंथ साधु ऐसी मिथ्यात्व परिग्रहके सर्वथा त्यागी होते हैं।

राग परिग्रह कथन।

रागादि भाव कहियं, राग संबन्धं सरनि संसारे।
रागं आरति पुन्यं, ज्ञानसहावेन राग विलयंतो ॥ ४५४ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि भाव कहियं) रागादि परिग्रहको कहा जाता है (संसारे सरनि राग संबंधं) संसारके मार्गसे रागका सम्बन्ध करना राग परिग्रह है तथा (आरति पुन्यं रागं) आर्तध्यान करते हुए पुन्य कमानेका राग रखना राग परिग्रह है (ज्ञान सहावेन राग विलयंती) निर्ग्रंथ साधु अपने ज्ञान स्वभावमें संतोष मानकर सर्व सांसारिक राग भावका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—राग भाव भी अन्तरङ्ग परिग्रह है। आदि कहनेसे रति परिग्रह भी रागमें गर्भित है। संसार चार गतिरूप है, इंद्रिय विषयोंमें उलझा हुआ है। इन्हीं इंद्रिय विषयोंकी चाहमें जलना राग है तथा इसी भावसे अनेक शुभ कार्य-व्रत, उपवास, तप आदि करना—आगामी इंद्रिय सुख मिले ऐसा निदानभाव रखना सो सब राग परिग्रह है। आत्मज्ञानी साधु इस सर्व रागसे विरक्त रहते हैं।

द्वेष परिग्रह कथन।

दोषं रौद्र सहावं, हिंसाबंदी अनृत असत्य नंदीओ।
अबम्भ नन्दनन्दं, दोषं तिक्तंति ज्ञान सहकारं ॥ ४५५ ॥

अन्वयार्थ—(दोषं रौद्र सहावं) दुष्ट स्वभाव रखना द्वेष परिग्रह है (हिंसानन्दी) हिंसा करने, करानेमें व अनुमोदनामें आनन्द मानना (अनृत असत्य नंदीओ) मिथ्या व अज्ञानमई सांसारिक पदार्थोंमें लीन होकर उनके विरोधियोंसे द्वेष करना (अबंभ नंदनंदं) कुशील भावोंमें आनंद मानके इसके रोकने-

वालोंमें द्वेष भाव रखना (दोषं ज्ञान सहकारं तिक्तंति) ऐसे द्वेष परिग्रहको साधुजन आत्मज्ञानकी सहायतासे त्याग देते हैं।

भावार्थ—विषयोंमें आसक्ति ही द्वेषभाव उत्पत्तिमें कारण है। धनादिकी व विषय भोगोंकी चाहके वशमें पडकर यह अज्ञानी प्राणी मानवोंको मृषा व चोरीसे ठगनेमें वर्तता है। मांसके लोभसे पशुओंकी हिंसामें प्रवर्तता है। कुशीलके लोभसे पर स्त्रियोंकी चाह करके उनके स्वामियोंसे द्वेष करता है। जो जो बाधक उसके स्वार्थ साधनमें होते हैं उनसे द्वेष करके परिणामोंको हिंसक व दुष्ट रखना द्वेष परिग्रह है। ज्ञानी साधु इससे बिलकुल दूर रहते हैं।

हास्य परिग्रह कथन।

हासि विकहा सुभावं, रागादि मिथ्या कषाय संजुत्तं।
हिंसानन्द सुभावं, हास्यं तिक्तंति ज्ञान उवएसं ॥ ४५६ ॥

अन्वयार्थ—(हासि विकहा सुभावं) विकथाओंके भीतर रति करके हास्य किया जाता है। यह हास्यभाव (रागादि मिथ्या कषाय संजुत्तं) रागद्वेष मिथ्यात्व व कषाय भावोंसे भरा होता है (हिंसानन्द सुभावं) हास्यमें मनके भीतर परकी हिंसामें आनन्द भाव रहता है (ज्ञान उवएसं हास्यं तिक्तंति) सम्यग्ज्ञानके उपदेशको माननेवाले साधु हास्य परिग्रहको त्याग देते हैं।

भावार्थ—स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राजा कथा, परकी निंदा, अपनी प्रशंसा आदि अनेक प्रकारकी खोटी कथाओंके द्वारा हास्य परिणाम प्रगट किये जाते हैं। हँसी ठट्ठा करनेमें मिथ्यात्व भाव आजाता है। राग भाव-लोभ कषाय व माया कषाय, परिणामोंमें रहता है। परकी हिंसा व बिगाड हुआ हो उसमें आनन्द मानता हुआ परकी हँसी उडाता है, ऐसे हास्य परिग्रहको आत्मज्ञानकी सहायतासे साधुजन त्याग देते हैं। रागद्वेषकी तीव्रता व संसारासक्तिके बिना हास्य करनेके भाव नहीं होते हैं। इन हास्य भावोंमें उलझना साम्यभावसे गिर जाना है। ज्ञानीजन इससे सर्वथा विरक्त रहते हैं।

हास्यं अबंभ रूवं, रति संसार सरनि ठिदिकरनं ।
आरति दुर्बुहि रूवं, ज्ञानबलेन तिक्त सव्वानं ॥ ४५७ ॥

अन्वयार्थ—(हास्यं अबंभ रूवं) कुशील स्वभाव हास्य परिग्रहमें रहता है (रति संसार सरनि ठिदिकरनं) हास्यमें संसार मार्गके प्रेमका स्थितीकरण किया जाता है (आरति दुर्बुहि रूवं) हास्य आर्तध्यान है तथा कुबुद्धि रूप है (ज्ञानबलेन सव्वानं तिक्त) आत्मज्ञानके बलसे साधु इन सर्व हास्यके भावोंको छोड देते हैं।

भावार्थ—हंसी दिल्लगी जब की जाती है तब भीतर कुशीलका भाव रहता है तथा कुशील भावको ही यह हास्य दूसरोंके मनमें जागृत करता है। हास्य करनेसे आपको और दूसरोंको संसार मार्गके प्रेममें प्रेरित किया जाता है। खोटी बुद्धि भी हास्यमें रहती है। किसीको चिढानेका व बनानेका भाव रहता है। भोगाभिलाष रूप निदान नामका आर्तध्यान हास्यमें गर्भित रहता है। कभी किसीके इष्ट वियोग पर उसकी हंसी की जाती है या अनिष्ट संयोगमें हंसी की जाती है या किसीको चोट लग गई है तब हंसी की जाती है। चारों ही प्रकारके आर्तध्यान हास्यमें आजाते हैं। अतएव साधुजन आत्मानुभवके अभ्यासमें तन्मय रहते हुए हास्य परिग्रहको बडे भावसे जीतते हैं।



वेद परिग्रह कथन।

अस्त्री अस्त्रित भावं, पुंसह पूर्व सहकार मिच्छातं ।
नपुंसय गुनहीनं, ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च ॥ ४५८ ॥

अन्वयार्थ—(अस्त्री अस्त्रित भावं) स्त्रीवेद स्त्री सम्बन्धी भावको कहते हैं (पुंसह पूर्व सहकार मिच्छातं) पुरुष वेद, स्त्री वेदको सहकारी मिथ्याभाव है (नपुंसय गुनहीनं) नपुंसक वेद स्त्री या पुरुष दोनोंके गुणोंसे रहित मिश्रित भाव है (ज्ञान सहावेन तिक्तं च) साधुजन आत्म-ज्ञानके स्वभावसे इन सर्वको त्याग देते हैं।

भावार्थ—पुरुषके साथ मैथुन करनेके भावको स्त्रीवेद कहते हैं, स्त्रीके साथ मैथुन करनेके

भावको पुरुष वेद कहते हैं। स्त्री व पुरुष उभयसे मैथुन करनेके भावको नपुंसक वेद कहते हैं। सर्वार्थसिद्धिमें पूज्यपाद स्वामी कहते हैं "स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायति अस्यां गर्भ इति स्त्री। पुंवेदोदयात् सूते जनयत्यपत्यं इति पुमान्। नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम्" स्त्री-वेदके उदयसे जिसके गर्भ धारण करानेकी भावना हो वह स्त्री है। पुंवेदके उदयसे संतान उत्पन्न करनेकी भावना हो वह पुरुष है। नपुंसक वेदके उदयसे दोनोंकी शक्ति न हो सो नपुंसक है। तीनों शब्द रूढिवाचक हैं। प्रयोजन यहां कामवासनाका है। कामभाव तीनों वेदोंमें पाया जाता है ब्रह्मभावमें रमण करनेवाले साधु तीनों ही प्रकारके कामभावको जीतते हैं।



लोभ कषाय निरूपन।

कषायं उवएसं, चौगइ संसार सरनि संजुत्तं।
जहं जहं कम्म सहावं, तहं तहं कषाय रसिय मिच्छातं ॥ ४५९ ॥

अन्वयार्थ—(कषायं उवएसं) अब लोभादि कषायोंकी परिग्रहका उपदेश करते हैं (चौगई संसार सरनि संजुत्तं) ये कषाय चारों गतिके मार्गमें भ्रमण करानेवाले हैं, कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग कषायोंसे पडता है (जहं जहं कम्म सहावं) जहां जहां कर्मोंके उदयका स्वभाव देखा जाता है (तहं तहं कषाय रसिय मिच्छातं) वहां वहां कषायोंमें रसिकपना है और मिथ्यात्व है।

भावार्थ—आत्माके स्वभावको जो मलीन करे उसे कषाय कहते हैं। आठों ही कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग कषायोंकी तीव्रता व मंदताके कारणसे कम व अधिक पडता है। स्थिति व अनुभाग ही चारों गतियोंमेंसे भिन्न २ गतिमें जीवको कैद रखकर सुख या दुःखका फल भुगवानेमें कारण हैं। जहां २ कर्मोंका उदय हो और यह अज्ञानी प्राणी उनमें रंजायमान या क्लेशित हो तौ वहां अवश्य मिथ्यात्व सहित कषायोंके द्वारा ही रंजितपना है। यदि राग भाग होता है तौ सुख दुःखमें व उनके कारणोंमें लीन होजाता है। यदि द्वेषभाव होता है तो दुःखोंसे छुटनेकी आकुलता करता है। सर्व परिग्रहका मूल कषाय परिग्रह है। इसीसे इच्छा तथा द्वेष होते हैं। धन्य हैं वे निर्ग्रंथ

साधु जो इन कषायोंको जीतते हुए वीतराग भावमें लीन रहते हुए निज आत्माके आनन्द रूपी रसका पान करते हैं।

लोभं अनृतरूवं, अनृत असत्य सहित जो मिथ्या।
तं लोभं नहु पिच्छदि जं लोभं दुःख कारणं सहियं ॥ ४६० ॥

अन्वयार्थ—(लोभं अनृत रूवं) लोभका स्वभाव ही मिथ्या है। (अनृत असत्य सहित जो मिथ्या) यह लोभ क्षणभंगुर कल्पित पदार्थोंके सम्बन्धमें होता है इसीसे मिथ्या है। (जं लोभं दुःखकारणं सहियं तं लोभं नहु पिच्छदि) यह लोभ संसारके दुःखोंका कारण है। इस लोभका साधुजन दर्शन भी नहीं करते हैं।

भावार्थ—विषय भोगोंकी तृष्णा ही लोभ है संसारके सुखोंकी इच्छा ही लोभ है। संसारके इंद्रियजनित सुख सब अनित्य व असत्य पदार्थोंके सम्बन्धसे होते हैं। स्त्री, पुत्र, मित्र, धनधान्य, गृह, खेत आदि वस्तुओंकी चाह करके उन सबको अपनाना चाहता है परंतु वे अपने बनते नहीं वे छूट जाते हैं या आप उनको छोड देता है। इसका लोभ करना वृथा ही इसको पापबंधका कारण होजाता है। ज्ञानी साधु सर्व क्षणिक जगतकी मायामे मुंह मोड चुके हैं। वे आत्मविभूतिके व आत्मानन्दके रसिक होगए हैं अतएव उन ज्ञानी साधुओंने सुगमतासे ही लोभ परिग्रहको जीत लिया है।

लोभं पुन्य सहावं, असत्य सहित रैयजं मिथ्या।
ज्ञान विना वय धरनं, तं लोभं तिक्त सहकारं ॥ ४६१ ॥

अन्वयार्थ—(लोभं पुन्य सहावं) पुन्यकी प्राप्तिका लोभ (असत्यसहित रैयजं मिथ्या) मिथ्या क्षणिक पदार्थोंमें र...मानपना है इसलिये मिथ्या है (ज्ञान विना वय धरनं) जैसे आत्मज्ञानके विना महाव्रतोंको व अणुव्रतोंको पालना (तं लोभं ज्ञान सहकारं तिक्त) ऐसे लोभको ज्ञानकी सहायतासे निर्ग्रंथ साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—पाप कार्योंके करनेका लोभ तो बुरा है ही किन्तु पुण्यबंध कारक शुभ कार्योंको

करके मैं पुन्य कमाऊं जिससे भविष्यमें मनोज्ञ इन्द्रिय विषयोंको प्राप्त करूं ऐसा लोभ भी मिथ्या है क्योंकि वह नाशवंत संसारके अतृप्तिकारक भोगोंकी वासनामें उलझा हुआ है। जो कोई आत्मोन्नति तथा आत्मानुभव व आत्मानन्दकी प्राप्तिकी भावना न करके मात्र पुण्य बंधके हेतुसे व्रतोंको आचरण करता है वह लोभ व तृष्णाके परिग्रहसे विरक्त नहीं है। ऐसे पुण्यके लोभको भी निर्ग्रंथ साधु त्याग देते हैं।

क्रोध परिग्रह कथन।

कोहं कोहाग्नि उत्तं, कोहं थावर त्रस अभाव संजुत्तं।
कोहं कम्म उवन्नं, तिविहं कम्मान वर्धनं कोहं॥ ४६२॥

अन्वयार्थ—(कोहं कोहाग्नि उत्तं) क्रोध परिग्रहको क्रोधकी आग कहा गया है क्योंकि (कोहं थावर त्रस अभाव संजुत्तं) क्रोधकी आग स्थावर व त्रस प्राणियोंको घात करनेवाली होती है। (कोहं कम्म उवन्नं) क्रोधसे कर्मोंका बंध होता है (कोहं तिविहं कम्मान वर्धनं) क्रोध तीनों प्रकारके कर्मोंको बढाता है।

भावार्थ—क्रोधकी परिग्रह जिसके भीतर रहती है वहां द्वेषकी आग जला करती है। जिससे उसके परिणाम हिंसात्मक होते हैं। दयाका भाव चित्तमेंसे चला जाता है। हिंसात्मक भावसे वह क्रोधी प्राणी मानवोंको, पशुओंको, वृक्षादिकोंको कष्ट पहुंचाता है, उनके प्राण लेलेता है। युद्धादिमें क्रोधकी आग जब भडकती है तब शस्त्रोंका प्रहार चलता है। मानवोंकी व पशुओंकी व साथमें अनेक प्रकार स्थावरोंकी घोर हिंसा करनी पडती है। क्रोध कषाय सहित हिंसात्मक भावोंसे घोर कर्मका बंध होता है। ज्ञानावरणादि कर्मोंका संचय होता है उनमें वृद्धि होती है। रागादि भावोंकी भी वृद्धि होती है तथा कर्मोंके उदयसे संसारमें अधिक कालतक नोकर्म जो शरीर उसको धारनेकी वृद्धि होती है। संसारवर्द्धक यह क्रोध त्यागने योग्य है।

कोहं उवनं भावं, कोहं उत्पन्न मिच्छ सहकारं।
कोहाग्नि अनृत रूवं, कोहं तिक्तंति ज्ञान सहकारं॥ ४६३॥

अन्वयार्थ—(कोहं उवनं भावं) क्रोधके उदयसे मलीन भाव रहता है। (कोहं उत्पन्न मिच्छ सहकारं) यह क्रोध मिथ्या संसारके पदार्थोंके निमित्तसे उत्पन्न होता है इस लिये (कोहाग्नि अनृतरूवं) यह क्रोधकी आग मिथ्या स्वभाववाली है। (कोहं ज्ञान सहकारं तिक्तंति) ऐसा जानकर इस क्रोध परिग्रहको निर्ग्रंथ साधुजन ज्ञानकी सहायतासे त्याग देते हैं।

भावार्थ—जो कोई संसारके धनादि परिग्रहमें, राज्यपाटादिमें अनुरक्त होगा वही उनकी प्राप्तिमें बाधक व उनके वियोगकारक प्राणियोंपर क्रोध करेगा, उनको बिगाड करनेका भाव करेगा। जिस शरीरके सुखके लिये वह क्रोध करेगा, वह शरीर जब अनित्य है तब शरीरके संबंधमें प्राप्त हुये पदार्थ भी अनित्य हैं। अनित्यको बनाये रखनेकी कल्पना ही मिथ्या है, मोहजनक है, महान संसार बढ़ानेवाली है। साधुजन निर्ग्रंथ पदके धारी, पूर्ण विरक्त, सम्यक्‌दृष्टी होते हैं। वे अपने प्राण लेनेवालेपर भी क्रोध नहीं करते हैं क्योंकि उनको किसी भी नाशवंत पदार्थपर रागभाव नहीं है। अतएव ऐसे यतिगण क्रोधकी परिग्रहका त्याग सम्यग्ज्ञानके बलसे करते रहते हैं। क्रोधके कारणोंके मिलनेपर भी अपने शांत स्वभावको कभी क्रोधको आगसे नहीं जलाते हैं।

मान परिग्रह कथन।

मानं असत्य रूपं, व्रततपक्रियं च गर्हियं सभावं।
मानं च ज्ञानहीनं, मानं रागादि असुह तिक्तं च ॥ ४६४ ॥

अन्वयार्थ—(मानं असत्य रूपं) यह मान असत्य स्वभावरूप है। (व्रत तप क्रियं च गर्हियं स्वभावं) मैं व्रती हूं, मैं तपस्वी हूं, मैं क्रियावान हूं, इस अहंकारके भावको लिये हुये है। (मानं च ज्ञानहीनं) यह मान अज्ञानभाव है, ज्ञान रहित है। (रागादि असुह मानं तिक्तं च) संसारके पदार्थोंमें राग होनेके कारणसे यह अशुभ मानभाव पैदा होता है। निर्ग्रंथ साधु इसका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानी एक मात्र आत्माको व आत्माके गुणोंको ही अपना मानता है। वह आत्मीक स्वभावके सिवाय किसी भी परभावको अपना नहीं मानता है। क्योंकि सर्व परभाव व परका सम्बन्ध कर्मोदय जनित नाशवंत है। शरीर, धन, पुत्र, मित्र, राज्यपाट आदि सब नाश-

वंत हैं। व्यवहार व्रत, तप, क्रियाकांड सब नाशवंत हैं। ग्रही व्रत व साधुके व्रत सब नाशवंत हैं। अशुद्ध उपयोग सब नाशवंत है। मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थान सब नाशवंत हैं। गति इंद्रिय आदि चौदह मार्गणाएं सब भेदरूप होनेके कारण व्यवहार रूप हैं-छूटनेवाली हैं। इन सर्व जगतकी प्रपंचमय अवस्थाओंके लिये अहंकार करना मान है। मैं धनी हूं, मैं रूपवान हूं, मैं बलवान हूं, मैं राजा हूं, मैं विद्वान हूं, मैं बडा श्रावक हूं, मैं बडा साधु हूं, मैं बडा तपस्वी हूं, मैं शुद्ध भोजन करनेवाला हूं, मैं बडा ज्ञानी हूं, इत्यादि भाव रखना मान कषाय है-बिलकुल असत्य है क्योंकि यह सब बातें छूटजानेवाली हैं। आत्मज्ञानी कभी भी इस अज्ञान भावमें नहीं फंसता है। यह मान संसारके रागके कारण होता है। मान प्रतिष्ठा पूजा पानेका लोभ मानको बढा देता है। ऐसे मानकी परिग्रहको साधुजन वैराग्य भावके द्वारा विचार कर बिलकुल छोड देते हैं।

मानं पुग्गलरूवं, गलंति पूरयंति भाव सदभावं।
मानं अनृतरूवं, ज्ञानसहावेन मान तिक्तं च ॥ ४६५ ॥

अन्वयार्थ—(मानं पुग्गलरूवं) यह मान पुद्गलके समान है। (गलंति पूरयंति भाव सदभावं) जैसे पुद्गल पिंडमें परमाणु छूटते हैं व नये आकर मिलते हैं। पुद्गल पूरन गलन स्वभाव है अथवा जैसे पुद्गलकी अवस्था एकसी नहीं रहती है, अवस्था बदल जाती है, स्पर्श, रस गंध, वर्णमें तबदीली होजाती है, वैसे मानकषाय गलन पूरन स्वभाव है। जब कोई वस्तु नाश होजाती है तब मान चला जाता है, जब कोई वस्तु मिल जाती है तब मान बढ जाता है। जब कोई अपमान करता है तब मान गल जाता है, जब कोई प्रतिष्ठा करता है तब मान बढ जाता है। पुद्गलस्वरूपी बाहर दीखनेवाली शरीरादि व परिग्रहकी रचनामें ही रागी होकर यह अज्ञानी प्राणी अहंकार करता है। (मानं अनृत रूवं) जब ये सब पदार्थ नाशवंत हैं तब इसका अहंकार करना भी मिथ्या है और नाश स्वरूप है। मानीकी धन हानि पुत्र हानि होती है तब वह बहुत ही क्लेशित होता है। (ज्ञान सहावेन मान तिक्तं च) ऐसे मिथ्या स्वभावरूप मानकी परिग्रहको निर्ग्रंथ साधुजन मार्दवगुणसे अलंकृत आत्मज्ञानके द्वारा दूर कर देते हैं।

भावार्थ—मान बडा ही मलीन भाव है। आत्माका वैरी है, पर पदार्थोंको अपनानेके कारणसे

ही मानभाव होता है। ज्ञानी सिवाय अपनी आत्मविभूतिके और किसी वस्तुको अपना नहीं जानता है। इस लिए वह कदापि भी मान नहीं करता है। बहुत विद्वान व बहुत तपस्वी होनेपर भी वह अहंकार नहीं करता है। कोमलतामई मार्दवगुणसे सदा शुद्ध भावोंमें जमा करता है। निर्ग्रंथ साधु ऐसी कलुषित मान परिग्रहसे विरक्त रहते हैं।

माया परिग्रह कथन।

माया अनृतरूपं, विषयं अहिलास माय उत्पन्नं।
माया बंधति सत्यं, माया मिथ्यात रूव सहकारं ॥ ४६६ ॥

अन्वयार्थ—(माया अनृतरूपं) माया कषाय मिथ्या स्वभावमई है। क्योंकि (विषयं अहिलास माय उत्पन्नं) पांचों इंन्द्रियोंको विषयोंकी अभिलाषासे माया बंधी होती है। (माया बंधति सत्यं) यह माया माया शल्यको बढा देती है। (माया मिथ्यात रूव सहकारं) यह माया मिथ्यात्व भावकी सहायतासे उपजती है।

भावार्थ—मायाचार या कपट करना भी मिथ्या है। यह प्राणी विषयोंका लोभी होकर उनकी प्राप्तिके लिये मायाचार करता रहता है। जिसको संसारके क्षणिक पदार्थोंका मोह होगा, जो मिथ्यात्वके विषसे दूषित होगा वही मायाचार करेगा। उसीके भीतर व्रत, तप आदि आचरण करते हुए भी मायाका कांटा बना रहेगा। यथार्थ तपादि न करते हुए वह यह दिखाएगा कि मैं यथार्थ तपादि कर रहा हूं। मिथ्यादृष्टिके ही माया कषाय रहती है। वही मायाके भावसे तिर्यंच आयु बांध लेता है। मायाके कारण धर्मकार्य किया हुआ भी संसारका बढानेवाला होता है।

माया परिनाम बन्धं, परिनामं असत्य अनृतं दिट्ठं।
मायासंसार मइओ, माया त्यजंति ज्ञान सहकारं ॥ ४६७ ॥

अन्वयार्थ—(माया परिनाम बंधं) मायाचारका भाव कर्मबंधका कारण है (परिनामं असत्य अनृतं दिट्ठं) मायाचारका भाव असत्य व क्षणिक पदार्थोंके सम्बन्धमें देखा जाता है (माया संसार मइओ) संसारमें

भ्रमण करानेवाली माया है। (ज्ञान सहकारं माया त्यजंति) ज्ञानी साधु ज्ञानकी सहायतासे मायाका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—मायाचार नाशवंत जगतके पदार्थोंके लोभके कारण किया जाता है। सो बिलकुल वृथा ही है, क्योंकि लाभ तो उतना ही होगा जितना पुण्यकर्मका उदय होगा। यह अज्ञानी मायाचार करके पाप बांधकर संसारमें भ्रमण करता है। ज्ञानी साधु इस मायाकी परिग्रहको पर जानकर त्याग देते हैं।

आभिंतरं ग्रंथ स उत्तं, संसारे सरनि तिक्त मोहंधं।
ग्रंथं चौ गइ समयं, ज्ञान सहावेन ग्रंथ तिक्कंति ॥ ४६८ ॥

भावभावार्थ—(आभिंतरं ग्रंथ स उत्तं) वही अभ्यंतर परिग्रह कही गई है जो (संसारे सरनि) संसारमें भ्रमण करानेवाली है तथा (मोहंधं) तथा मोहके अंधकारसे व्याप्त है (तिक्त) सो त्यागने योग्य है। (ग्रन्थं चौ गइ समयं) इस परिग्रहका धारना चारों गतियोंका अंगीकार करना है (ज्ञान सहावेन ग्रंथ तिक्कंति) निर्ग्रंथ साधु ज्ञान स्वभावमें ठहरकर इस परिग्रहका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—मिथ्यात्व राग, द्वेष, मोहादिक अंतरंग परिग्रह संसारके मोहसे व्याप्त होनेके कारणसे नरकादि चारों गतियोंमें जाने लायक पापबंध करानेवाली है। आत्मध्यानी निर्ग्रंथ साधु आत्मज्ञानमें ठहरकर इस परिग्रहका सर्वथा त्याग कर देते हैं।

बाहिज भितर ग्रंथाः, मुक्का जे दुट्ठ कम्म संजुत्ताः।
तिक्कंति भव्य जनयाः, ज्ञान सहावेन ग्रंथ विम्मुक्का ॥ ४६९ ॥

अन्वयार्थ—(जे दुट्ठ कम्म संजुत्ताः) जो दुष्ट आठ कर्मोंको बांधनेवाली हैं ऐसी (बाहिज भितर ग्रंथाः) बाहरी भीतरी परिग्रह (मुक्का) त्यागने योग्य हैं (ग्रंथ विमुक्का भव्य जनयाः) ग्रंथ रहित भव्य मुनिगण (ज्ञान सहावेन तिक्कंति) ज्ञान स्वभावमें ठहरकर इस परिग्रहको छोड देते हैं।

भावार्थ—ऊपर बाहरी व भीतरी परिग्रहका कथन किया गया है। इन्हीं परिग्रहोंके कारण संसारमें भ्रमण करानेवाले आठ कर्मोंका बंध होता है। निर्ग्रंथ मुनि इन सर्वका त्याग कर शुद्ध आत्मीक ज्ञान स्वभावमें रमण करते हैं।

इस ग्रंथमें सिंहासन, गृह, क्षेत्र, सुवर्ण, धनधान्य, कुप्य, भाजन, द्विपद, चतुस्पद, यान इस-तरह दश बाहरी परिग्रहको बताया गया है। दूसरे ग्रंथोंमें क्षेत्र, गृह, धन, धान्य, दासी, दास, चांदी, सोना, कुप्य, भाजन इसतरह दश बाहरी परिग्रहको बताया गया है। सो सब यहां कही गई दशामें गर्भित है। इस ग्रंथमें भीतरी परिग्रह मिथ्यात्व, राग, द्वेष, हास्य, वेद, लोभ, क्रोध, मान, मायाको बताया है। अन्य ग्रंथमें मिथ्यात्व, राग, द्वेष, वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे चौदह प्रकार अंतरंग परिग्रह बताई हैं। सो राग भावमें रति गर्भित है द्वेष भावमें अरति, शोक, भय जुगुप्सा गर्भित हैं। इसतरह नौमें चौदह गर्भित हैं। ये ग्रंथकर्ताने बडी ही विद्वत्तासे बाहरी परिग्रहको भी अन्तरंग भावोंमें घटाकर सिद्ध किया है। ये ही सर्व विभाव हैं व ये ही आठों कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग डालते हैं। जो निर्ग्रंथ साधु इन सर्वका त्याग करते हैं वे ही सच्चे दिगम्बर जैन साधु हैं।

ग्रन्थ मुक्त साधु विशेष निरूपण।

ग्रहनं जिनवरवयनं, ग्रहनं अप्प भाव संजुत्ता।
ग्रहनं ति अर्थभावं, जोयंतो जोयिनो ते ही ॥ ४७० ॥

अन्वयार्थ—(जिनवरवयनं ग्रहनं) जो जिनेन्द्रके वचनोंको ग्रहण करनेवाले हैं (अप्पभाव संजुत्ता ग्रहनं) जो आत्मीक भावोंको लिये हुए सर्व भावोंको ग्रहण करनेवाले हैं (ति अर्थ भावं ग्रहनं) जो रत्नत्रय मई तीन भावोंको ग्रहण करनेवाले हैं (तेही जोयिनो जोयंतो) तेही निर्ग्रंथ योगी आत्माको देखनेवाले हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु जब बाहरी व भीतरी परिग्रहके त्यागी होते हैं तब वे ग्रहण भी कुछ करते हैं या नहीं, इसका खुलासा करते हुए ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि वे निर्ग्रंथ साधु जिनेन्द्रकी आज्ञाके अनुसार तत्वोंके श्रद्धावान होते हैं, अपने आत्माके शुद्ध स्वभावका अनुभव करनेवाले होते हैं। तथा व्यवहार व निश्चय उभय रूपसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रयमई भावको ग्रहण करते हैं। येही योगी मुक्तिके लिये आत्माका अनुभव किया करते हैं।

ग्रहनं दंसनं ज्ञानं, चरनं चारित्र ग्रहण दुभेयं ।
ग्रहनं ज्ञान सहावं, अप्पा सुद्धप्प ज्ञान सद्भावं ॥ ४७१ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञान चरनं ग्रहनं) निर्ग्रंथ साधु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको धारण करते हैं (चारित्र दुभेयं ग्रहण) दो प्रकारके चारित्रको पालते हैं (ज्ञान सहाव ग्रहनं) ज्ञान स्वभावी आत्माको अनुभव ही करते हैं (अप्पा सुद्धप्प ज्ञान सद्भावं) आत्माको ज्ञान स्वभावी, शुद्धात्मा रूप जानते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु वे ही हैं जो व्यवहारनयसे भेदरूप रत्नत्रय धर्मको व निश्चयनयसे अभेदरूप एकाकार रत्नत्रय धर्मको पालते हैं। जो अपने आत्म-द्रव्यको परमात्माके समान गुणोंसे परिपूर्ण ज्ञाता दृष्टा आनन्दमई जानकर निश्चल हो स्वआत्माका ध्यान करते हैं।

संमत्तं संग्रहनं, ज्ञानं पंचंमि भाव उवलंभं ।
अप्पा परमप्पानं, ज्ञान सहावेन मुक्त संवरनं ॥ ४७२ ॥

अन्वयार्थ—(संमत्तं संग्रहनं) जो साधु सम्यग्दर्शनको भलेप्रकार पालते हैं (पंचंमि ज्ञानं भाव उवलंभं) पांचवें केवलज्ञानके उत्पन्न करनेवाले भावोंको प्राप्त किये हुए हैं (अप्पा ज्ञान सहावेन मुक्त संवरनं परमप्पानं) अपने आत्माको भेदविज्ञानके स्वभावसे सर्व आवरणसे रहित परमात्मा रूप अनुभव करते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु दृढ सम्यग्दर्शनके धारी हैं। केवलज्ञानके साधक भावश्रुतज्ञानमई आत्मानुभवको करनेवाले हैं। जिनको भेदविज्ञानके द्वारा अपना ही आत्मा सर्व कर्मोंके आवरणसे रहित परमात्माके समान शुद्ध दीखता है।

व्रत तव संजम ग्रहनं ति अर्थं तीर्थंकारेन संसुद्धं ।
सुद्धं सुद्ध सहावं, सुद्धं ज्ञानं मि ज्ञान परमप्पा ॥ ४७३ ॥

अन्वयार्थ—(व्रत तव संजम ग्रहनं) वे निर्ग्रंथ साधु महाव्रत, तप तथा संजमके धारनेवाले होते हैं (तीर्थंकारेन संसुद्धं ति अर्थं) संसार समुद्रसे पार करनेको जहाजके समान शुद्ध रत्नत्रय धर्मको पालते हैं (सुद्धं सुद्ध सहावं) आठ कर्मसे शुद्ध व रागादिसे शुद्ध आत्म स्वभावको पहचानते हैं (सुद्धं ज्ञानं मि ज्ञान परमप्पा) निर्मल धर्म-ध्यानमें एक परमात्माको ही ध्याते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु परम महाव्रत, बारह प्रकारका तप, सामायिक नामके संजम व इंद्रिय तथा प्राण संजमको पालते हैं। संसार तारक रत्नत्रय धर्मको धारकर धर्म-ध्यानमें शुद्ध आत्माको एकाग्र मन हो ध्याते हैं।

पिच्छदि अप्प सरूवं, पिच्छदि नन्त दंसनं अमलं।
ज्ञानं च ज्ञान अमलं, अप्पा परमप्प केवलं भावं ॥ ४७४ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सरूवं पिच्छदि) निर्ग्रंथ साधु आत्माके स्वरूपको देखते जानते हैं (नंत दंसनं अमलं पिच्छदि) अनन्त निर्मल दर्शन स्वभावी आत्माको श्रद्धानमें रखते हैं (ज्ञानं च ज्ञान अमलं) ज्ञानके बलसे निर्मल आत्मज्ञानको धारते हैं (अप्पा परमप्प केवलं भावं) आत्माको परमात्माके समान केवलज्ञानादि स्वभावमय जानते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु अपने आत्माको परमात्माके समान शुद्ध केवलज्ञान, केवलदर्शन अनंतवीर्य व अनंत सुखमई अनुभव करते हैं। वे साधु सर्व पर भावोंके त्यागी होते हैं किन्तु निज शुद्ध भावोंके ग्रहण करनेवाले हैं। उनमें स्याद्वाद सिद्धांत कूट कूट कर भरा है। वे अपने आत्माके अस्तित्वको स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्वभावके द्वारा अस्तिरूप व पर द्रव्य, पर क्षेत्र, पर काल व पर भावके द्वारा नास्तिरूप जानते हैं। ऐसे ही साधु यथार्थ मोक्षमार्ग पर चलनेवाले होते हैं।

श्री पद्मनंदि पंचविंशतिकामें यतिभावनाष्टकमें कहा है—

अन्तस्तत्वमुपाधिवर्जितमहं व्यापारवाच्यं परं। ज्योतिर्यैः कलितं श्रुतं च यतिभिस्ते संतु नः शान्तये।
येषां तत्सदनं तदेव शयनं तत्सम्पदस्तत् सुखं। तद्वृत्तिस्तदपि प्रियं तदखिलं श्रेष्ठार्थसंसाधनम् ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही सच्चे साधु हैं जिन्होंने अपने आत्माके तत्वको रागादिकी उपाधिसे रहित, परम ज्योति स्वरूप, अहं शब्दसे अनुभवने योग्य भलेप्रकार जानकर अनुभव कर लिया है तथा जिनके रहनेका स्थान वही आत्मतत्व है, जिनकी शय्या वही आत्मतत्व है, जिनकी श्रेष्ठ सम्पदा वही आत्मतत्व है, वहीं उनको आनन्दका स्वाद आता है, वहीं उनकी वृत्ति रहती है, वही तत्व उनको प्यारा है तथा वही आत्मतत्व उनको श्रेष्ठ मोक्ष पुरुषार्थको साधन करनेवाला है। ऐसे निर्ग्रंथ साधु हमें शांति प्रदान करें।

पांच महाव्रत कथन ।

महावयं व्रतग्रहनं, ज्ञानमय ज्ञान सुद्धसभावं ।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, महावय सुद्ध धरंति साहूनं ॥ ४७५ ॥

अन्वयार्थ—(महावयं व्रतग्रहनं) पांच महाव्रतोंकी प्रतिज्ञाको धारनेवाले साधु होते हैं (ज्ञानमय ज्ञान सुद्धसभावं) वे ज्ञानमई शुद्ध आत्मस्वभावको मनन करनेवाले होते हैं (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) ज्ञानके द्वारा अपने ज्ञानको शुद्ध करते हैं (साहूनं सुद्ध महावय धरंति) साधु महाराज शुद्ध महाव्रतोंको पालते हैं ।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पांच महाव्रतोंको निर्दोष पालते हुए निश्चय महाव्रतका भले प्रकार अभ्यास करते हैं । भेदविज्ञानके द्वारा ज्ञानमई शुद्ध आत्माका अनुभव करना ही शुद्ध महाव्रत है । इसके विना बाहरी महाव्रत मोक्ष मार्गमें उपयोगी नहीं है ।

अहिंसा महाव्रत ।

अप्पं अप्प सहावं, अप्प परमप्पा ज्ञान संजुतं ।
चिंतंतो परम पयं, अहिंसओ महावयं हुंती ॥ ४७६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पं अप्पसहावं) अपने आपको आत्मा स्वरूप जानकर (अप्पा परमप्प ज्ञान संजुतं) अपने आपको परमात्माके ध्यानमें लीन करके (परम पयं चिंतंतो) परम पदका अनुभव करना ही (अहिंसओ महावयं हुंती) अहिंसा महाव्रत होता है ।

भावार्थ—यहां निश्चय अहिंसा महाव्रतका कथन है । राग द्वेषादि संकल्प विकल्प आत्माकी हिंसा करनेवाले हैं । जहां इन अशुद्ध भावोंको त्याग कर अपने आत्माको आत्मारूप या परमात्मा रूप वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानमें ठहरकर अनुवभ किया जावे वही निश्चय अहिंसा महाव्रत है । यहीं आत्माकी पूर्णपने रक्षा हो रही है । हिंसाका अभाव सो ही अहिंसा है । तत्त्वार्थसारमें हिंसाको बताया है—

द्रव्यभाव स्वभावानां प्राणानां व्यपरोपणं । प्रमत्तयोगतो यत्स्यात् सा हिंसा संप्रकीर्तिता ॥ ७४ । ४ ॥

भावार्थ—प्रमाद या कषाय सहित मन, वचन कायोंके द्वारा जो इंद्रिय, बल, आयु, स्वासोछ्वास, इन चार द्रव्य प्राणोंको व आत्माके स्वाभाविक ज्ञान शांति आदि भाव प्राणोंको कष्ट देना सो हिंसा कही गई है। महाव्रती साधु पूर्ण अहिंसा पालते हैं। स्थावर व त्रस सर्व प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। अन्तरंगमें क्रोधादि भावोंसे आत्माके स्वभावकी रक्षा करते हैं।

सत्य महाव्रत।

अनृत मयं न दिष्टदि, ऋतं जानंति अप्प सद्भावं।
सून्यं ज्ञान संजुत्तं, ऋतं ससहाव महावयं हुंती ॥ ४७७ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत मयं न दिष्टदि) निर्ग्रंथ साधु मिथ्यामई स्वभावको नहीं श्रद्धा करते हैं (अप्प सद्भावं ऋतं जानंति) आत्माके स्वभावको यथार्थ जानते हैं (सून्य ज्ञानं संजुत्तं) रागादिसे शून्य वीतराग मय निर्विकल्प ध्यान करते हैं। ऐसे साधु (ऋतं स सहाव महावयं हुंती) आत्माके स्वाभाविक सत्य महाव्रतको पालते हैं।

भावार्थ—आत्माका यथार्थ सत्य स्वभाव परमात्मारूप है, सर्व रागादि विकारोंसे रहित है, परमानन्दमई है। इसीको सत्यरूपसे जानना और ऐसा ही श्रद्धान करना व इसी श्रद्धान व ज्ञान सहित भावके साथ निर्विकल्प समाधिमें जमकर आत्मध्यान करना यही स्वाभाविक निश्चय सत्य महाव्रत है। वस्तुको अनेकांत रूपसे जानना सत्य है। एकांत रूपसे जानना असत्य है। सांसारिक क्षणिक सुखको सुख जानना मिथ्या है। आत्मिक सुखको सुख जानना सत्य है। शरीर व स्त्री पुत्रादिको अपना जानना मिथ्या है। निज गुणोंको अपना जानना सत्य है। साधु महाराज सब मिथ्याभावोंसे रहित हो एक सत्य निज स्वरूपका ही अवलम्बन करते हैं।

अनृतका त्याग सत्य व्रत है। तत्वार्थसारमें कहा है—

प्रमत्तयोगतो यत्स्यादसदर्थाभिभाषणम्। समस्तमपि विज्ञेयमनृतं तत्समासतः ॥ ७६–४ ॥

भावार्थ—प्रमाद सहित मन, वचन, कायके द्वारा जो अप्रशस्त व अहितकारी वचनोंको कहना

सो सर्व असत्य है। इस असत्यका त्याग व्यवहार सत्य महाव्रत है। आत्मामें आत्मारूप होकर ठहरना सत्य महाव्रत है।

अस्तेय महाव्रत।

स्तेयं न हु दिठदि, जिन उत्तं उत्त सव्वहा सव्वं।
जिनरूवं जिन वयनं, ज्ञान सहावेन ज्ञान उवएसं ॥ ४७८ ॥

अन्वयार्थ—(स्तेयं न हु दिट्ठदि) साधु महाराजमें किंचित् भी चोरी नहीं पाई जाती है (जिन उत्त सव्वं सव्वहा उत्त) वे जिनेन्द्र कथित सर्व तत्व स्वरूपको सर्वथा सत्य कहते हैं (जिन रूवं) उनका भेष जिनेन्द्रके समान दिगम्बर है (जिन वयनं) जिनेन्द्रके समान ही उनके सत्य वचन हैं (ज्ञान सहावेन ज्ञान उवएसं) वे ज्ञानस्वभावी आत्मामें लीन होते हुए अवसर पाकर सत्य ज्ञानका ही उपदेश देते हैं।

भावार्थ—विना दी हुई वस्तुका त्याग अचौर्य महाव्रत है। जिनेन्द्र कथित उपदेशको औरका और कहना व विचारना चोरी है। ऐसा न करके यथार्थ उपदेशको यथार्थ कहना अचौर्य महाव्रत है। जिनेन्द्रकी आज्ञासे विरुद्ध साधुका द्रव्य स्वरूप रखना व भावोंमें विपरीत भाव रखना चोरी है। इस चोरीका त्याग करे। जिनेन्द्रकी आज्ञानुसार नग्न दिगम्बर भेष रखना व परिणामोंमें भी विषय-भोगोंको त्यागकर निर्विकल्प समाधिमें लीन रहना अचौर्य महाव्रत है। जिनेन्द्रके कथनको यथार्थ ही कहना, कुछ भी नहीं छिपाना अचौर्य महाव्रत है। अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रमना व अवसर पाकर ज्ञान स्वरूपको पुष्ट करनेवाला उपदेश देना अचौर्य महाव्रत है।

तत्वार्थसारमें कहा है:—

प्रमत्तयोगतो यत्स्यादत्तार्थपरिग्रहः। प्रत्येयं तत्खलु स्तेयं सर्वसंक्लेशयोगतः ॥ ७६—४ ॥

भावार्थ—प्रमाद सहित योगसे विना दिये हुए पदार्थका ग्रहण करना चोरी है। इस चोरीको त्याग करके साधुजन व्यवहार अचौर्य महाव्रत पालते हैं। अन्तरंगमें शुद्धता रखके, शास्त्रोक्त चलते शास्त्रोक्त कहते व शास्त्रोक्त विचार करते हैं। व शास्त्रानुसार शुद्ध आत्म-ध्यानमें विना किसी कपटके लीन रहते हैं सो अचौर्य महाव्रत है।

ब्रह्मचर्य महाव्रत ।

बंभं बंभ सरूवं, अबंभ भाव सयल दोस परिचित्तो ।
अप्पा परमानन्दं, बंभवयं महावयं हुंती ॥ ४७९ ॥

अन्वयार्थ—(बंभं बंभ सरूवं) ब्रह्मचर्यव्रत ब्रह्म स्वभावमें लीन होना है (अबंभ भाव सयल दोस परिचत्तो) अब्रह्म या कुशील सम्बन्धी सर्व दोषोंका छोड देना है (अप्पा परमानन्दं) आत्माको परमानन्दमई अनुभव करना है यही (बंभवयं महावयं हुंती) ब्रह्मचर्य महाव्रत है ।

भावार्थ—सर्व कुशील भावोंका त्यागना व्यवहार ब्रह्मचर्य व्रत है। अन्तरंगमें निश्चय ब्रह्मस्वरूपमें लीन होना निश्चय ब्रह्मचर्य व्रत है। जहां रागादि सर्व विकल्प मिट गए हों और आत्मा-परमानन्दमई अनुभव किया जाता हो वही ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

अब्रह्मका त्याग ब्रह्मचर्य है। तत्वार्थसारमें कहा है—

मैथुनं मदनोद्रेकादब्रह्म परिकीर्तितम् ॥ ७७-४ ॥

भावार्थ—कामके उद्वेगसे मैथुन करना अब्रह्म कहा गया है। मन, वचन, कायसे अब्रह्मका त्याग ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

परिग्रह त्याग महाव्रत ।

पर पुद्गल परमानं, पुग्गल स सहाव सयलदोस परिचत्तो ।
अप्पा परमप्प रूवं, पुग्गल सहकार दोस परमानं ॥ ४८० ॥

अन्वयार्थ—(पर पुद्गल परमानं) आत्माके सिवाय शरीरादि पुद्गलको पर मानना (पुग्गल स सहाव सयलदोस परिचत्तो) पुद्गलके स्वभावके निमित्तसे होनेवाले सर्व रागादि दोषोंको छोडना (पुग्गल सहकार दोस परमानं) पुद्गलकी संगतिसे होनेवाले सर्व दोषोंको अपनेसे भिन्न मानना (अप्पा परमप्प रूवं) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करना परिग्रह त्याग महाव्रत है।

भावार्थ—निज द्रव्य गुण पर्यायको अपना स्वरूप मानके सर्व पर द्रव्य, पर गुण, पर पर्यायकी

परिग्रहको पर स्वरूप मानके छोड देना। केवल मात्र अपने परमात्म स्वभावमें निस्पृह हो लीन होना परिग्रह त्याग महाव्रत है। परमाणु मात्र भी अपना न जानना, कर्मके उदयसे जो २ बाहरी व भीतरी अवस्थाएं होती हैं उनको परमानके ममत्व त्याग देना परिग्रह त्याग महाव्रत है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

ममेदमिति संकल्परूपा मूर्च्छा परिग्रहा॥ ७७-४ ॥

अपने आत्माके सिवाय सर्वपरमें यह मेरा है ऐसा संकल्प न करना मूर्च्छा है सो ही परिग्रह है। महाव्रती इस मूर्च्छाके त्यागी होते हैं। उनका निज स्वामित्व निज आत्म-विभूतिमें रहता है।

पंचमहावय सुद्धं, अप्पा अप्पेन अप्प ससरूवं।
ज्ञानं अवहि संजुत्तं, मनपर्यय केवलं भावं ॥ ४८१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं पंचमहावय) निश्चयनयसे पांच महाव्रतका स्वरूप यह है जो (अप्पा अप्पेन अप्प ससरूवं) आत्मा अपने ही द्वारा अपने निज स्वभावका अनुभव करे (ज्ञानं अवहि संजुत्तं मनपर्यय केवलं भावं) आत्माके ज्ञानमें ही अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञान गर्भित हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय चारित्रको पालते हैं। अहिंसादि पांचों व्रतोंको जीव रक्षा करते हुए, सत्य बोलते हुए, विना दी वस्तु न लेते हुए, ब्रह्मचर्य पालते हुए व परिग्रह रहित होते हुए पालते हैं। यह व्यवहार चारित्र है। निश्चयसे मन, वचन, कायके सर्व विकल्पोंको त्यागकर आप अपने स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा आपमें ही लीन होकर आत्मानुभव करते हैं, वही निश्चय चारित्र है। यहां रागादि विकल्प न होनेसे अहिंसाव्रत है, सत्य पदार्थ आत्मामें लय होनेसे सत्यव्रत है, परभावका ग्रहण नहीं है इससे अचौर्यव्रत है, आत्म स्वरूपमें लयता है उससे ब्रह्मचर्य व्रत है, पर पदार्थकी मान्यताका त्याग है इससे परिग्रह त्याग महाव्रत है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है। उसमें पांचों ही ज्ञान गर्भित हैं। ध्यानके द्वारा जैसे जैसे ज्ञानावरणका परदा हटता जाता है अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान तथा केवलज्ञान प्रकाशमान होजाता है।

दिग्व्रत महाव्रत ।

दिग्व्रत सुद्धं सुद्धं, दिगम्बर परिनाम सुद्ध ससहावं ।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, दिग्व्रत महावयं हुंती ॥ ४८२ ॥

अन्वयार्थ—(दिग्व्रत सुद्धं सुद्धं) साधुओंका परम शुद्ध दिग्व्रत यह है कि (दिगम्बर परिनाम सुद्ध ससहावं) बाहरीमें दिशाको वस्त्र रखते हुए अंतरंगमें पर भाव रहित शुद्ध निज स्वरूपमें लीन होजाना (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञानका शुद्ध ज्ञान स्वरूप ही वर्तना यही (दिग्व्रत महावयं हुंती) दिग्व्रत महाव्रत है ।

भावार्थ—यहां श्रावकोंके तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतकी तरफ लक्ष्य देकर ग्रंथकर्ताने उनको युक्तिसे साधुओंके स्वरूपमें घटाया है । बाहरी दिशाओंको ही पहननेका वस्त्र रखना व अंतरंगमें रागादि परभावोंका त्याग करके अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें लीन होना दिग्व्रत महाव्रत है ऐसा घटाया है । बाहरी व भीतरी एकाकार आत्मामई होजाना ही दिग्व्रत है।

रत्नकरंड श्रावकाचारमें इसका स्वरूप कहा है—

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि । इति संकल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥ ६८ ॥

भावार्थ—श्रावक मरण पर्यंतके लिये किंचित् भी पाप मर्यादाके बाहर न लगे इसलिये दशों दिशाओंकी मर्यादा कर लेता है कि इससे बाहर न जाऊंगा, यह श्रावकोंका दिग्व्रत है । लौकिक कार्योंके लिये की हुई मर्यादाके बाहर नहीं जाता है न लेनदेन व्यवहार रखता है ।

देशव्रत महाव्रत ।

देसो सुद्ध सहाओ, ऊरेसनं पि दंसनं ज्ञानं ।
देसो उद्देस सुद्धं, देसव्रतं महावयं हुंती ॥ ४८३ ॥

अन्वयार्थ—(देसो सुद्ध सहाओ) निश्चयसे आत्माका देश या वास करनेका स्थान अपना शुद्ध स्वभाव है (दंसनं ज्ञानं ऊरेसनं पि) जहां दर्शन और ज्ञानमें तिष्ठनेका ही उद्देश्य या प्रयोजन है (देसो उद्देस सुद्धं) जहां शुद्ध ही स्थान है व शुद्ध ही अभिप्राय है वही (देसव्रत महावयं हुंती) देशव्रत ही महाव्रत होता है ।

भावार्थ—यहां दूसरे श्रावकके गुणव्रत देशव्रतको लक्ष्यमें लेकर कहा है कि जो साधु सर्व-संकल्प विकल्प त्याग करके अपने ही स्वक्षेत्रमें या अपने ही स्वभावमें तिष्ठनेकी प्रतिज्ञा करके अपने ही ज्ञान दर्शनके मार्गका उद्देश्य रखते हैं वे ही देशव्रत महाव्रतके धारी हैं। रत्नकरंडमें कहा है—

देशावकाशिकं स्यात् कालपरिच्छेदनेन देशस्य । प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९२ ॥

भावार्थ—दिग्व्रतमें जो जन्म पर्यंतके लिये दशों दिशाओंकी मर्यादा की थी उसमेंसे घटाकर प्रतिदिनके लिये मर्यादा करना सो अणुव्रत धारी श्रावकोंका देशव्रत है।



अनर्थ दंडव्रत महाव्रत।

अज्ञान अर्थ न दिट्ठीदि, ज्ञान सहावेन भव्य उवसंतो।
कीला अप्प सहावं, अप्पा परमप्पओ हवई ॥ ४८४ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान अर्थ न दिट्ठदि) मिथ्याज्ञान सहित पदार्थ ही अनर्थ है जहां उसका श्रद्धान न हो। (ज्ञान सहावेन भव्य उवसन्तो) किन्तु सम्यग्ज्ञानमय आतम-स्वभावके द्वारा सत्य स्वरूपमें शांति प्राप्त की जावे (कीला अप्प सहावं) अर्थात् अपने आत्माके स्वभावमें आपको कील दिया जावे (अप्पा परमप्पओ हवई) जिससे आत्मा परमात्मा होसके यही अनर्थ दंडव्रत महाव्रत है।

भावार्थ—सत्य अर्थ या परमार्थ अपना ही शुद्ध आत्मा है। इसके सिवाय रागी, द्वेषी, मोही, आत्मा पुद्गलादि पदार्थ सब अनर्थ हैं। इस अनर्थका त्याग करके जो साधु वीतरागताके साथ अपने स्वभावमें भलेप्रकार तन्मय होजाते हैं, निर्विकल्प आत्मसमाधिमें या धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानमें आरूढ होजाते हैं वे ही अनर्थदंड त्याग महाव्रतको पालते हुए अपने आत्माको परमात्माके स्वरूपमें परिणमा देते हैं। श्रावकोंके लिये इस व्रतका स्वरूप रत्नकरंडमें कहा है—

अभ्यंतरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः। विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥ ७४ ॥

भावार्थ—दिशाओंकी की हुई मर्यादाके भीतर २ प्रयोजन रहित पापके कारणोंसे विरक्त होनेको महाव्रती साधुओंने अनर्थदंड कहा है।

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पंच। प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥

भावार्थ—गणधरादिने पांच प्रकारका अनर्थदंड कहा है—

(१) पापोपदेश–दूसरेको पाप करनेका, हिंसामई आरंभ करनेका उपदेश देना। (२) हिंसादान–फरशा, तलवार, शस्त्र, सांकल, अग्नि आदि हिंसाकारक पदार्थ दूसरेको मांगे देना। (३) अपध्यान–दूसरोंका वध, बंधन, नाश आदि राग द्वेषके वशमें हो विचारना। (४) दुःश्रुति-आरंभ परिग्रह व मिथ्यात्व, रागद्वेष बढ़ानेवाली व चित्तको क्लेशित करनेवाली कथाओंको सुनना, (५) प्रमादचर्या–विना प्रयोजन आलस्यसे मिट्टी खोदना, पानी फेंकना, अग्नि जलाना, पवन लेना, वनस्पति छेदना, सैर करना आदि। श्रावक इन पांचों ही प्रकारके अनर्थदण्डसे बचा रहता है।

मिच्छा भावे विरदो, विरदो संसार सरनि बावारे।
अज्ञान अर्थ विरदो, सुरदो सुद्ध चेयना भाओ ॥ ४८५ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छा भावे विरदो) जो मिथ्यात्व भावसे विरक्त है (विरदो संसार सरनि बावारे) संसारमें भ्रमण करानेवाले व्यापारोंसे विरक्त है (अज्ञान अर्थ विरदो) अज्ञानमई पदार्थसे विरक्त है (सुद्ध चेयना भाओ सुरदो) शुद्ध चेतना भावमें भलेप्रकार रत है सो ही अनर्थदंड त्याग महाव्रतका धारी है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं इनसे विरक्त होकर जो मोक्षमार्गके आलंबनोंके द्वारा अपने शुद्ध चेतनाके स्वादमें मग्न होकर आत्मीक अतीन्द्रिय आनन्दका लाभ लेते हैं वे ही अनर्थदंड त्यागी साधु हैं।

चार शिक्षाव्रत महाव्रत।

शिष्यावय चत्वारि, सिष्या दिष्या च ज्ञानसंजुत्तो।
सुरदो चेयन भाओ, सिष्यावय उवएसनं तं पा ॥ ४८६ ॥
भोगा उपभोग पडिमा, अतिथि सुयंभाग सलेहनावंतो।
विज्ञानं जानंतो, सुद्ध सरूवं च ज्ञानसंजुत्तो ॥ ४८७ ॥

अन्वयार्थ—(शिष्यावय चत्वारि) चार शिक्षाव्रतके धारी साधु (सिष्या दिष्या च ज्ञानसंजुत्तो) शिक्षा, नियम तथा ज्ञानके धारी होते हैं (चेयन भाओ सुद्दो) चैतन्यभावमें भलेप्रकार लीन होते हैं (सिष्यावय उवएसनं तं पी) उनहीके लिये शिक्षाव्रतोंका उपदेश है। (भोगा उपभोग पडिमा) प्रथम शिक्षाव्रत भोग प्रतिमा, दूसरा शिक्षाव्रत उपभोग प्रतिमा (अतिथि सुयंभाग सल्लेहनावंतो) तीसरा शिक्षाव्रत अतिथि स्वयं विभाग, चौथा शिक्षाव्रत सल्लेखना है इनके धारी साधु (विज्ञानं जानंतो) भेद विज्ञानको जानते हुए (सुद्ध सरूवं च ज्ञानसंजुत्तो) शुद्ध आत्मस्वरूपके अनुभवके कर्ता होते हैं।

भावार्थ—यहां युक्तिसे श्रावकके व्रतोंको मुनिके चारित्रमें घटाया है। यहां चार शिक्षाव्रत जो कहे हैं उनसे तत्वार्थसूत्रमें कहे हुए शिक्षाव्रतोंसे कुछ अंतर है। तत्वार्थसूत्रमें सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण तथा अतिथि संविभाग ऐसे चार शिक्षाव्रत हैं। यहां प्रयोजन यह है कि साधुओंको ऐसी योग्य शिक्षा मिलती है, वे ऐसे नियमोंमें दृढ होते हैं कि वे सर्व पर भावोंको त्याग करके एक अपने चैतन्य भावमें लीन होते हैं, पूर्ण निर्मल भेदविज्ञानके द्वारा शुद्ध स्वरूपके यथार्थ ज्ञाता रहते हैं। यहां निश्चय नयसे घटानेके लिये इसतरह चार शिक्षाव्रत कहे हैं।

भोगप्रतिमा शिक्षाव्रत।

भोगो संसार मइओ, अनृत असत्य सहित जो मिथ्या।
रागादि दोष विषयं, तिक्तं च अभाव सिष्ययं भनियं ॥४८८॥

अन्वयार्थ—(संसार मइओ भोगो) संसार सम्बन्धी भोग (अनृत असत्य सहित जो मिथ्या) अनित्य व मिथ्या पदार्थोंके सम्बन्धमें होते हैं इसीसे मिथ्या हैं (रागादि दोष विषयं) जिनका विषय रागद्वेषादि है (तिक्तं अभाव सिष्ययं भनियं) इन भोगोंके रागका त्याग करना, भोगोंका अभावरूप शिक्षाव्रत कहा गया है।

भावार्थ—संसारके विषयभोग धन, धान्य, स्त्री, पुत्रादि, मकानादि सर्व क्षणभंगुर हैं। इनको थिर मानके उनके भोगोंकी अभिलाषा करना मिथ्यात्वभाव है। इन भोगोंके निमित्तसे रागद्वेष बढते हैं। जहां इनकी इच्छाओंका त्याग है वहीं भोग त्याग शिक्षाव्रत है।

राागादि य उववन्नं, पुन्यं पावं च दुक्खस सहावं ।
अज्ञानं संतुट्ठं, भोगं सहकार सयल तिक्तं च ॥ ४८९ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि य उववन्नं) रागद्वेषादि भावोंको उत्पन्न करनेवाले (पुन्यं) पुण्य कर्म (दुक्खस सहावं पावं च) तथा दुःखोंको पैदा करनेवाले पाप कर्म (अज्ञानं संतुट्ठं) जहां मिथ्याज्ञानमें संतोष माना जाता है (भोगं सहकार) ऐसे भोगोंके साधक (सयल तिक्तं च) सर्व भावोंको साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां सम्यग्ज्ञान नहीं है वहां मोक्षकी व आत्माके शुद्ध स्वभावकी श्रद्धा नहीं है, उससे विपरीत संसारकी श्रद्धा व परमें आत्म-बुद्धिकी मिथ्या श्रद्धा है। ऐसे मिथ्या भावोंका धारी जो कोई शुभ कार्य भी करता है उनमें विषयभोगोंसे राग होता है व नरकादिके कारण भावोंसे द्वेष होता है। उनसे पुण्य कर्म बांधकर भोगोंको पाता है। कदाचित् पाप कर्म करता है तो दुःखकारक पाप कर्म बांध लेता है। ऐसे मिथ्यात्वी जीव मिथ्याज्ञान पूर्वक क्रियाओंके करनेमें सन्तोष मान लेते हैं। सम्यग्ज्ञानी साधु संसारके भोगोंके कारण सर्व भावोंको बिलकुल त्याग देते हैं, जहां पाप पुण्य दोनोंकी अभिलाषा नहीं होती है, केवल शुद्ध आत्मीक आनन्दका भोग होता है। वही भोग प्रतिमा शिक्षाव्रतको पालता है। यहां आत्माका भोग है, परका भोग नहीं है। यही भाव साधुओंका शिक्षाव्रत है।

भोगं जिनेहि उत्तं, सुद्धं भोगं च सयलदोस परिचत्तो ।
मतिज्ञानं संतुट्ठं, भोगं सुद्धं संसार सरनि विरदोय ।। ४९० ॥

अन्वयार्थ—(जिनेहि उत्तं भोगं) जिनेन्द्र भगवंतोंने जो भोग कहा है वह (सयलदोस परिचत्तो सुद्धं भोगं च) सर्व दोषोंसे रहित शुद्ध आत्मभोग है (मतिज्ञानं संतुट्ठं) जहां आत्माके अनुभवमें संतोष हो वही (सुद्धं भोगं) शुद्ध आत्मभोग है (संसार सरनि विरदोय) ऐसा भोगी संसार मार्गके कारण भोगोंसे विरक्त होता है।

भावार्थ—साधुजन चतुर्गतिमें भ्रमणके कारण सर्व भोगोंको मन वचन कायसे त्याग देते हैं। केवल आत्मानन्दका भोग करते हैं। जो स्वाधीन है, निर्दोष है, कषाय रहित है, यही भोगप्रतिमा शिक्षाव्रत है।

आयम पुण्ण सुद्धं, अष्यर सुर विंजनस्य पद अर्थं ।
अप्प सरूव सुदिट्ठं, अप्पा परमप्प सुद्ध संतुट्ठं ॥ ४९१ ॥

अन्वयार्थ—(आयम पुण्ण सुद्धं) जिसने आगम व पुराणको शुद्ध भावोंसे जाना हो (अष्यर सुर विंजनस्य पद अर्थं) उनके स्वर व्यंजन अक्षरोंको व शब्दोंको व वाक्योंको अर्थ सहित ठीक २ समझता हो (अप्प सरूव सुदिट्ठं) तथा उन आगमोंके द्वारा आत्माके स्वरूपका ठीक२ निश्चय किया हो (अप्पा परमप्प सुद्ध संतुट्ठं) और आत्माको परमात्मा रूप निश्चय करके शुद्ध भावमें तृप्ति प्राप्त की हो उसीने ही आत्मभोग किया है व भोगप्रतिमा महाव्रत धारा है।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि ज्ञानका भोग बडा भारी भोग है, परम तृप्तिको देनेवाला है। व्यवहार नयसे ज्ञानका भोग यह है कि जिनवाणीके चारों अनुयोगोंके शास्त्रोंको शुद्ध पढकर उनका अर्थ शुद्ध व भाव शुद्ध समझा जाय, फिर उनके भीतरसे सारभूत आत्मतत्वको भिन्न जानकर यह निश्चय किया जाय कि मेरा आत्मा परमात्माके तुल्य ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि शुद्ध गुणोंका धारी है। निश्चय नयसे ज्ञानका भोग यह है कि सर्व संकल्प विकल्पोंको त्यागकर एकाग्रचित्त हो निज आत्माका ध्यान लगाया जावे, रत्नत्रयकी एकता प्राप्त की जावे, आत्मानुभव जागृत किया जावे और आत्मानन्द रूपी अमृत रसका पान किया जावे व उसीके पानमें संतोष माना जावे।

उपभोग प्रतिमा शिक्षाव्रत ।

उवभोग दुट्ठ भनियं, संसारे सरनि साधनं नित्यं ।
मिथ्यातराग सहियं, कुज्ञान विषयचिंतनं तं पी ॥ ४९२ ॥

अन्वयार्थ—(दुट्ठ उवभोग भनियं) दुष्ट या हानिकारक उपभोग यह कहा गया है जो (संसारे सरनि साधनं नित्यं) संसारमें भ्रमण करानेवाले साधनोंको नित्य किया जावे (मिथ्यातराग सहियं) मिथ्यादर्शन व रागमें लिप्त रहा जावे (कुज्ञान विषयचिंतनं तं पी) या मिथ्याज्ञान द्वारा अनेक विषयोंका चिन्तवन किया जावे।

भावार्थ—साधुजन ऐसे उपभोगोंका कभी सेवन नहीं करते हैं जो हानिकारक हैं, जो संसारमें रुलानेवाले पाप कर्मोंको बांधनेवाले हैं। जिन मिथ्यात्व व रागके वशीभूत हो प्राणी स्त्री, धन, मकान, राज्य, वस्त्राभूषण आदि उपभोगोंका वारबार भोगकर तृष्णाकी दाहमें फँसे रहते हैं या मिथ्या मतिज्ञानके द्वारा खोटी बुद्धि उपजाकर अनेक हिंसाकारी शस्त्रादि बनाते रहते हैं या मिथ्या शास्त्र ज्ञानके द्वारा रागवर्द्धक काम अलङ्कार छन्द आदि रचते रहते हैं व मनोज्ञ उपभोगोंके लिये चिंता किया करते हैं। उन सर्व मिथ्यात्व व राग भावोंका उपभोग साधुओंने त्याग दिया है।

जस्य य मनस्य पसरो, तस्य य परिनाम असुह सव्वे ही।
तिक्कंति सयल दोसं, ज्ञान सहावेन तिक्त उवभोगं ॥ ४९३ ॥

अन्वयार्थ—(जस्य य मनस्य पसरो) जिसका मन वशमें न होकर सर्व तरफ घूमता रहता है (तस्य य सव्वे ही असुह परिनाम) उसके सर्व ही परिणाम अशुद्ध हैं (ज्ञान सहावेन सयल दोसं तिक्कंति) साधुजन निज आत्माके ज्ञान स्वभावमें स्थिर होकर मनके सर्व दोषोंको दूर कर देते हैं (तिक्त उवभोगं) यही उपभोगका त्याग है।

भावार्थ—मन बडा चञ्चल है, यह मन पांचों इंद्रियोंके भोगने योग्य मनोज्ञ पदार्थोंमें सदा ही भ्रमण किया करता है। मनके सर्व ही संकल्प विकल्प अशुद्ध परिणमन हैं, कर्म बंधके कारक हैं। ऐसे मनके द्वारा होनेवाले उपभोगको भी साधुजन निज आत्माके ज्ञान स्वभावके उपभोगमें तृप्त होकर त्याग देते हैं तब सर्व दोषसे रहित हो, पर उपभोगके त्यागी होजाते हैं।

बृहत् सामायिकपाठमें श्री अमितगति महाराज कहते हैं—

व्यावृत्येन्द्रियगोचरोरुगहने लोलं चरिष्णुं चिरं। दुर्वारं हृदयोदरे स्थिरतरं कृत्वा मनोमर्कटं।
ध्यानं ध्यायति मुक्तये भवततेर्निर्मुक्तभोगस्पृहो। नोपायेन विना कृता हि विधयः सिद्धिं लभंते ध्रुवं ॥ ९४ ॥

भावार्थ—यह मनरूपी बन्दर पांचों इंद्रियोंके महान भयानक वनमें चिरकालसे रमण कर रहा था। जिसको रोकना कठिन था उस मनको अपने हृदयके भीतर स्थिर करके उद्योगी साधुजन सर्व भोगोंकी इच्छाओंको त्याग करके मुक्तिके लिये ध्यानका अभ्यास करते हैं। क्योंकि उपायके विना सिद्ध नहीं होसक्ती है यह निश्चय है।

जिन उत्तं उवभोगं, संसार सरनि तिक्त उवभोगं ।
अप्पर पदं च जानदि, अवयासं अप्प सुद्ध परमप्पा ॥४९४॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं उवभोगं) जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ उपभोग यह है कि (संसार सरनि उवभोगं तिक्त) संसारमें भ्रमण करानेवाले पांचों इंद्रियोंके व मनके उपभोगोंको त्याग करके (अप्पर पदं च जानदि) जिनवाणीके अक्षरोंको व वाक्योंको भलेप्रकार जाना जावे, तथा (अवयासं अप्प सुद्ध परमप्पा) अपने भीतर आत्माको शुद्ध परमात्माके समान अनुभव किया जावे ।

भावार्थ—यथार्थ उपभोग साधुओंका यह है कि वे मनको व इंद्रियोंको संसारके पदार्थोंसे व विषयभोगोंसे रोक लेते हैं। और निश्चिन्त होकर अपना सर्व ध्यान जिनवाणीके पठन पाठन व मननमें लगा देते हैं। यह व्यवहार उपभोग है। निश्चयनयसे वे साधु अपने आत्माको परमात्माके समान शुद्ध निर्विकार जान करके उसी निज आत्माके स्वभावमें लीन होकर उसीके अनुभवका बारबार भोग करते हुए परम तृप्तिलाभ करते हैं। वास्तवमें आत्माके उपभोगके सामान जगतमें कोई उपभोग हो नहीं सक्ता है। यही मोक्षका साधन है।

अवयास सुद्धं सुद्धं, दंसनज्ञानेन सुद्ध चरनानि ।
चिंतंति भावं सुद्धं, उवभोगं च चेयनाभावं ॥ ४९५ ॥

अन्वयार्थ—(अवयास सुद्धं सुद्धं) जिसका भीतरी भाव परम शुद्ध है (दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानि) जहां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व शुद्ध सम्यक्चारित्र विराजमान है (सुद्धं भावं चिंतंति) जो साधु शुद्ध आत्मीक भावका मनन करते हैं (उवभोगं च चेयनाभावं) वही शुद्ध ज्ञान चेतना भावका उपभोग है।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु सर्व पर भावोंका उपभोग त्यागकर अपने भीतरी अवकाश या स्थानको आकाशके समान निर्मल करते हैं, सर्व संकल्प विकल्पोंसे हटाते हैं व निश्चय रत्नत्रयोंसे भरपूर करते हैं। इस तरह शुद्ध आत्माका अनुभव करते हुए व अपनी ज्ञान चेतनाका स्वाद लेते हैं, कर्म चेतना व कर्मफल चेतनाका स्वाद नहीं लेते हैं, यही शुद्ध उपभोग शिक्षाव्रत है। श्रावकके भोगोपभोग शिक्षाव्रतको दो भागोंमें बांटकर ग्रंथकर्ताने साधुके चारित्रमें घटाया है। व्यवहारसे भोगोपभोग शिक्षाव्रतका स्वरूप रत्नकरंडमें इस भांति है—

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् । अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ ८२ ॥

भावार्थ—रागादि भावोंको घटानेके अर्थ परिग्रह प्रमाण व्रतमें की हुई मर्यादाके भीतर प्रतिदिन प्रयोजनभूत इंद्रियोंके विषयोंका परिमाण करके शेषका त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत है।

शिक्षाव्रतोंमें सामायिक व प्रोषधोपवास भी गर्भित है उनका स्वरूप रत्नकरंड श्रावकाचारमें इस भांति है—

आसमयमुक्तिमुक्तं पंचाघानामशेषभावेन । सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥ ९७ ॥

भावार्थ—मन वचन काय व कृत कारित अनुमोदनासे सर्व जगह किसी नियत समयके लिये पांचों हिंसादि पापोंको बिलकुल त्याग करके आत्मस्वरूपमें समताभावसे लीन होना उसको शास्त्रज्ञ सामायिक कहते हैं। सवेरे, सांझ व दोपहरको एक मुहूर्त या अंतर्मुहूर्तके लिये एकांतमें बैठकर ध्यान करना सामायिक शिक्षाव्रत है।

प्रोषधोपवासका स्वरूप यह है—

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु । चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदिच्छाभिः ॥ १०६ ॥

भावार्थ—चौदश व अष्टमीके दिन आत्म-शुद्धिकी भावना पूर्वक चार प्रकारके आहारका त्याग करना प्रोषधोपवास है।

अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत।

अतिथिं सुयं विभागं, मिथ्या मय रागदोस विरयंतो।
अज्ञानं न हु पिच्छै, सुद्ध सहावं च पिच्छए अप्पा ॥ ४९६ ॥

अन्वयार्थ—(सुयं अतिथिं विभागं) अपने आत्मारूपी अतिथि अर्थात् साधुको आत्मानुभवका प्रदान करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है (मिथ्या मय रागदोस विरयंतो) मिथ्यात्व, मद, राग, द्वेषोंको छोडता हुआ (अज्ञानं न हु पिच्छै) मिथ्याज्ञानको नहीं देखता हुआ (अप्पा सुद्ध सहावं च पिच्छए) आत्मा शुद्ध स्वभावका ही अनुभव करता है यही अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे तो पात्रोंको दान देना अतिथि सुयं विभाग या अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है। इसको वैय्यावृत्य भी कहते हैं रत्नकरण्डमें कहा है—

दानं वैय्यावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये। अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥ १११ ॥

भावार्थ—गुणवान, धर्म स्वरूप, गृह रहित तपस्वीको अन्न पानके द्रव्यसे बदलेकी अपेक्षा विना दान देना वैय्यावृत्य है। निश्चयनयसे अपने आत्मारूपी पात्रको सर्व मिथ्यात्व मिथ्याज्ञान व रागद्वेषादि मिथ्या चारित्रसे रहित होकर शुद्ध स्वाभाविक आत्मानुभूतिका दान देना। अर्थात् आपको आपसे ही आत्मानन्दका प्रदान करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

सुयं विभागं सुद्धं, अन्यो पुग्गल वियान अप्पानं।
विवगत सरूव सुद्धं, अप्पा परमप्पयं जानं ॥ ४९७ ॥

अन्वयार्थ—(सुयं सुद्धं विभागं) अपने शुद्ध स्वरूपको परसे विभाग करना अतिथि सुयं विभाग है अर्थात् (अन्यो पुग्गल अप्पानं वियान) पुद्गल अन्य है आत्मा अन्य है ऐसा जानना (विवगत सुद्धं सरूव) अपने शुद्ध स्वरूपको जान करके (अप्प परमप्पयं जानं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

भावार्थ—भेदविज्ञानके द्वारा अपने आत्माको सर्व अन्य आत्माओंसे, सर्व प्रकार पुद्गलोंसे, कर्म नोकर्मसे, धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्योंसे व सर्व पुद्गल कर्मके उदय जनित रागादि भावोंसे भिन्न जानकर परमात्मा स्वरूप अपने आपका अनुभव करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

सल्लेखना शिक्षाव्रत।

सल्लेहना सरीरो, इन्द्री मन पसार दोस सलिहेई।
सलिहर रायं दोसं, मिथ्या अज्ञान सल्य सलिहेई ॥ ४९८ ॥
सलिहई सयल विभावं, अप्पा अप्पेन चेयना सुद्धं।
अप्पा परमप्पानं, निश्चय ठिये दंसनं सुद्धं ॥ ४९९ ॥

अन्वयार्थ—(सरीरो सल्लेहना) शरीरसे भलेप्रकार ममत्व त्यागना (इंद्रि मन पसार दोस सलिहेई) पांचों इंद्रियोंकी इच्छाओंको व मनके संकल्प विकल्पादि दोषोंको दूर करना (गयं दोसं सलिहेइ) रागद्वेष मिटाना (मिथ्या अज्ञान सल्य सलिहेई) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व माया मिथ्या निदान शल्योंको दूर करना (सयल विभावं सलिहेइ) तथा सर्व औपाधिक भावोंको नाश करना (अप्पा अप्पेन चेयना सुद्धं) अपने आत्माको अपने आपके द्वारा शुद्ध चेतनारूप अर्थात् (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करना (सुद्धं दंसनं निश्चय ठिये) अर्थात् शुद्ध सम्यग्दर्शनमें निश्चयसे लीन होना सल्लेखना शिक्षाव्रत है।

भावार्थ—श्रावकका अंतिम व्रत सल्लेखना या समाधिमरण है। ये चार शिक्षाव्रतोंके सिवाय तत्वार्थसूत्र या रत्नकरंडमें कहा है। रत्नकरंडमें इसका स्वरूप यह है:—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निष्प्रतीकारे। धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥ १२२ ॥

भावार्थ—उपसर्ग पडनेपर, दुर्भिक्षमें, बुढापा होनेपर, व असाध्य रोगके होनेपर धर्मकी रक्षाके अर्थ शरीरको छोडना अर्थात् शरीरसे ममत्व छोड आत्मामें लीन होना सल्लेखना है ऐसा गणधरादिने कहा है। पुरुषार्थ सि०में कहा है—

नीयंतेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्। सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसा प्रसिद्धयर्थम् ॥ १७९ ॥

भावार्थ—जहां हिंसाके कारण कषायोंको कृश किया जावे उसे सल्लेखना कहते हैं। यह अहिंसाको सिद्ध करनेवाली है। यहां निश्चयने कहा है कि सर्व प्रकार शरीरसे, पांच इंद्रिय व मनके विकल्पोंसे, रागद्वेषादि भावोंसे, तीन शल्योंसे, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्रसे, सर्व ही विभाव परिणामोंसे ममत्व हटाकर अपने शुद्ध रत्नत्रय स्वरूप आत्मामें ही लवलीन होना सल्लेखना शिक्षाव्रत है।

बारह वय उवएसं, धरन्ति भावे विसुद्ध सद्भावं।
आसन्नभव्वपुरिसा, ज्ञानबलेन निव्वुए जंती ॥ ५०० ॥

अन्वयार्थ—(बारह वय उवएसं) ऊपर कहे प्रमाण बारह व्रतोंका उपदेश निश्चयनयसे किया गया है। जो कोई (आसन्नभव्वपुरिसा) निकट भव्य पुरुष (भावे विसुद्ध सद्भावं धरन्ति) अपने भावोंमें शुद्ध आत्मीक भावको धारण करते हैं वे (ज्ञानबलेन निव्वुए जंती) अपने आत्मज्ञानके बलसे निर्वाणको पाते हैं।

भावार्थ—इस ग्रंथमें साधुकी अपेक्षासे निश्चय नयकी प्रधानतासे नीचे प्रमाण बारह व्रतोंका कथन किया गया है। पांच व्रत-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग। तीन गुणव्रत-दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदंड व्रत। चार शिक्षाव्रत-भोग प्रतिमा, उपभोग प्रतिमा, अतिथि सुसंविभाग और सल्लेखना। जो कोई भव्य जीव निकट संसारी इन बारह व्रतोंका मनन करके अपने आपको सर्व विभावोंसे शून्य करके शुद्ध आत्माके भावको धारण करके शुद्ध आत्माका अनुभव करेंगे वे आत्मज्ञानके अनुभवके प्रतापसे कर्मोंको नाश कर अवश्य निर्वाणको प्राप्त करेंगे। वास्तवमें बहुत ही उत्तम कथन किया गया है। सम्यग्दर्शनके प्रेमियोंको यह कथन वारवार मनन करने योग्य है। यह आध्यात्मिक अद्भुत विवेचन मोहके खंड खंड करनेको वज्रके समान है।

बारह तप निरूपण।

तव बारह उवएसं, अप्प सहावं च दंसनं सुद्धं।
चरनं चरित्त वंतं, साहंति जे भव्य पुरिसस्याः ॥ ५०१ ॥

अन्वयार्थ—(बारह तव उवएसं) अब बारह प्रकार तपका उपदेश करते हैं इनके द्वारा (जे भव्य पुरिसस्याः) जो भव्य पुरुष हैं वे (अप्प सहावं च दंसनं सुद्धं चरित्त वंतं) आत्माके स्वभावको शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध चारित्रका आचरण करते हुए (साहंति) साधन करते हैं।

भावार्थ—बारह प्रकार तप निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्रमें सहायक हैं। आत्मानुभवरूपी मोक्षमार्गमें उपयोगी हैं। ऐसा जानकर भव्य पुरुष इन तपोंके अभ्याससे आत्माके स्वभावको झलका लेते हैं।



निश्चय बाहरी तप कथन।

वाहिज तव संसुद्धं, सुद्धं सम्मत्त सुद्ध ससहावं।
सुद्धं दंसन ज्ञानं, सुद्धं चरनं पि सहाव तव यरनं ॥ ५०२ ॥

अन्वयार्थ—(संसुद्धं वाहिज तव) परम शुद्ध निश्चय बाहरी तप यह है कि (सुद्धं सम्पत्त सुद्ध ससहावं) शुद्ध सम्यग्दर्शनका व शुद्ध अपने स्वभावका (सुद्धं दंसन ज्ञानं) शुद्ध दर्शन व ज्ञानका (सुद्धं चरनं पि) शुद्ध चारित्रका (सहाव तव यरनं) तथा स्वाभाविक तपका आचरण किया जावे।

भावार्थ—व्यवहारनयसे बाहरी तप जब शरीरकी मुख्यतासे है तब यहां निश्चय सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान, शुद्ध सम्यक्चारित्र, शुद्ध तपका आचरण करते हुए अपने आत्माके ज्ञान दर्शनमय स्वभावका साधन किया जावे वही बाहरी तप है।

अनशन तप निरूपण।

अनसयन सयन सुद्धं, मनवयकायेन सुद्ध तव यरनं।
सेन्यं अप्प सहावं, परिनामं सुद्ध साधनं जुत्तं ॥ ५०३ ॥

अन्वयार्थ—(अनसयन) जहां आत्म कार्यमें निद्रा न लीजावे (सुद्धं सयन) शुद्ध कार्यमें लीन रहा जावे (मनवयकायेन सुद्ध तव यरनं) मन, वच, कायके द्वारा शुद्ध तप किया जावे (अप्प सहावं सेन्यं) आत्माकी स्वभावानुभूति रूपी सेनाको लेकर (सुद्ध परिनामं साधनं जुत्तं) शुद्धोपयोगका साधन भले-प्रकार किया जावे वह अनशन तप है।

भावार्थ—व्यवहार नयसे अनशन तप उपवास करना है। जैसा तत्त्वार्थसारमें कहा है—

मोक्षार्थं त्यज्यते यस्मिन्नाहारोऽपि चतुर्विधः। उपवासः स तद्भेदाः सन्ति षष्ठाष्टमादयः ॥ १०७ ॥

भावार्थ—जहां मोक्षके प्रयोजनसे खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इन चार प्रकारके आहारोंका त्याग किया जावे वह उपवास है। उसके भेद बेला, तेला आदि हैं। यह निश्चय नयसे कथन है कि जहां अपने आत्मकार्यमें सावधान होकर आत्मस्वरूपमें निर्विकल्प समाधि द्वारा शयन किया जावे। मन वचन कायोंको रोककर आत्माहीमें आपको तपाया जावे। आत्माकी साधारण परिणतिरूपी सेनाके द्वारा शुद्ध स्वभावके घातक कर्मोंका संहार करके निज स्वभावकी पूर्णताका साधन किया जावे सो अनशन या उपवास तप है। जहां सर्व इंद्रियोंसे व मनसे उपयोगको हटाकर आपसे

आपमें ही तन्मय होकर बसाया जावे सो उपवास है। इससे यह दिखलाया है कि केवल भोजन त्याग तो बाहरी तप है, व भोजन त्यागके साथ साथ जहां निज स्वभावमें लीन होकर आत्माका साधन हो वही सच्चा अनशन है।

अनसन अप्प सहावं, रागादि दोस सयल परिहानं।
मिथ्या कुज्ञान कसायं, तिक्कंति अनसन सुद्ध ससहावं ॥५०४॥

अन्वयार्थ—(अनसन अप्प सहावं) अनशन या भोजनका त्याग तप वही है जहां आत्माके स्वभावमें रमा जावे (रागादि दोस सयल परिहानं) सर्व राग द्वेषादि भावोंको त्याग किया जावे (मिथ्या कुज्ञान कसायं तिक्कंति) जहां मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व कषायोंका त्याग किया जावे (अनसन सुद्ध ससहावं) शुद्ध आत्मीक स्वभावमें तिष्ठा जावे वही अनशन तप है।

भावार्थ—जैसे बाहरी भोजनका त्याग करना उपवासमें प्रमाद व निद्राको व इंद्रियोंके विकारको जीतनेके लिये आवश्यक है वैसे मोक्षके साधनके लिये भीतरसे राग द्वेषादि विभावोंका, मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानका व कषायोंका भी त्याग करना जरूरी है। तथा शून्य न होकर अपने आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय होकर आत्मानंदका पान करना आवश्यक है। शरीरसे मोह हटानेके लिये शरीरको भोजनपान न देकर आत्माको पुष्ट करनेके लिये आनन्दामृतका पान कराना अनशन तप है।

अनसन अरूव रूवं, रूवातीतं च भाव चिंतन्तो।
ज्ञानमई स सहावं, ज्ञान सहावं च अनसनं सुद्धं ॥ ५०५ ॥

अन्वयार्थ—(अनसन अरूव रूवं) यह अनशन तप अरूपी आत्माका स्वभाव है (रूवातीतं च भाव चिंतन्तो) जहां रूपातीत सिद्ध भगवानका स्वभाव विचार किया जावे (ज्ञानमई स सहावं) या ज्ञानमई अपने आत्माके स्वभावको ध्याया जावे। अर्थात् (ज्ञान सहावं) ज्ञान चेतनाके स्वभावमें लीन रहा जावे यही (सुद्धं अनसनं) शुद्ध अनशन तप है।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव ही अनशन है। यह न तो पौद्गलिक भोजन करता है और न उसके

स्वभावमें रागादिकका भोग है। वह बहिरङ्ग व अन्तरङ्ग भोगोंसे रहित है। निज आत्माके ज्ञानानन्दमय स्वभावके लाभ करनेके लिये रूपातीत धर्म ध्यान किया जावे या ज्ञानमई निज स्वभाव की भावना भाई जावे, यही शुद्ध अनशन तप है।

विरइय संसार सुभावं, विरइय मिच्छातदोस परिनामं।
रइयं सुद्ध सहावं, ज्ञान सहावेन अनसनं सुद्धं ॥ ५०६ ॥

अन्वयार्थ—(संसार सुभावं विरइय) संसारके क्षणभंगुर स्वभावसे विरक्त होकर व (मिच्छात दोस परिनामं विरइयं) मिथ्यात्वके सदोष भावको त्यागकर (ज्ञान सहावेन सुद्ध सहावं रइयं) ज्ञानमई स्वभावके द्वारा अपने शुद्ध स्वभावमें रच जाना सो (सुद्धं अनसनं) शुद्ध अनशन तप है।

भावार्थ—संसार दुःखमय है। रागद्वेष मोहसे पूर्ण है, भव भवमें अनेक शारीरिक व मानसिक कष्टोंको दाता है। ऐसा जानकर मिथ्यात्व व रागद्वेषादि भावोंसे हटकर अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रुचिपूर्वक अनुभव करना निश्चय अनशन तप है।

ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, कुज्ञानं त्यजंति सव्वहा सव्वे।
इन्द्री विषय विमुक्कं, ज्ञान सहावेन अनसनं अमलं ॥ ५०७ ॥

अन्वयार्थ—जो साधु (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) आत्मज्ञानके अनुभवसे अपने ज्ञानको शुद्ध करते हैं (सव्वहा सव्वे कुज्ञानं त्यजंति) व सर्वथा सर्व मिथ्या ज्ञानका त्याग कर देते हैं (इन्द्री विषय विमुक्कं) और पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त रहते हैं (ज्ञान सहावेन अमलं अनसनं) वे ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर निर्मल अनशन तपका पालन करते हैं।

भावार्थ—सर्व राग द्वेष मोहादि विकल्पोंको तथा पांच इन्द्रियोंकी विषयवासनाको त्यागकर जो साधु भेदज्ञानके द्वारा अपने आत्माको सर्व द्रव्यकर्म, नोकर्म व भावकर्मसे भिन्न जानकर आप ही अपने स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा आपका अनुभव करते हैं वे ही यथार्थ अनशन तपके पालन करनेवाले हैं।

आमोदर्य तप निरूपण।

अप्पसहावं निलयं, अमलं अप्प निम्मलं च परमप्पा।
सम्यक्दंसन दर्सं, आमोदर्जं सुद्ध मप्पानं ॥ ५०८ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पसहावं निलयं) आत्माके स्वभावमें लीन होना (अमलं अप्प निम्मलं च परमप्पा) मल रहित आत्माको कर्म रहित परमात्माके समान जानना तथा (सम्यक्दंसन दर्सं) निश्चय सम्यग्दर्शनको अनुभव करना सो (अप्पानं सुद्ध आमोदर्जं) अपना अन्तरंग शुद्ध आमोदर्य तप है।

भावार्थ—व्यवहार नयसे आमोदर्य तप भूखसे कम खाना जिससे ध्यान स्वाध्यायमें विघ्न न पड़े जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

सर्वं तदवमोदर्यमाहारं यत्र हापयेत् । एकद्वित्र्यादिभिर्ग्रासैराग्रासं समयान्मुनिः ॥ ९–७ ॥

भावार्थ—जहां आहारको घटाया जावे, एक ग्रास दो ग्रास आदि कम करते हुए एक ग्रास मात्रका ही आहार किया जावे वह सर्व अवमोदर्य तप है।

यहां निश्चय नयसे कथन है कि अपने आत्माको शुद्ध निश्चय नयसे परमात्माके समान जानके अपने ही आत्माके स्वभावमें प्रमादभाव छोड़कर लय हुआ जावे। निश्चय सम्यग्दर्शन रूप आचरण किया जावे। आत्माका अनुभव किया जावे सो निश्चय आमोदर्य तप है। आमोद शब्दके अर्थ आनन्द मनानेके हैं। इस अपेक्षासे हम ऐसा भाव भी लेसक्ते हैं कि अपने आत्मामें मगन होकर अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेना ही आमोदर्य तप है।

सम्यक ज्ञानं जानदि, सम्यकु चरनं चरंति भावेन।
सम्यक् परिनै सुद्धं, आमोदर्जं सुद्ध मप्पानं ॥ ५०९ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यकु ज्ञानं जानदि) जो साधु निश्चय सम्यग्ज्ञानको जानता है व (भावेन सम्यकु चरनं चरंति) भाव सहित निश्चय सम्यक्चारित्रका आचरण करता है (शुद्धं सम्यकु परिनै) तथा शुद्ध सम्यग्दर्शनमें परिणमन करता है वह ही (अप्पानं सुद्धं आमोदर्जं) आत्मा सम्बन्धी भीतरी शुद्ध आमोदर्ज तप पालन करता है।

भावार्थ—मैं निश्चयसे शुद्ध आत्मा हूं यह प्रतीति निश्चय सम्यग्दर्शन है। मैं अवश्य शुद्ध आत्मा हूं ऐसा संशय रहित जानना सम्यग्ज्ञान है। तथा शुद्ध आत्माके स्वभावमें तन्मय होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। इस तरह आत्मानुभवरूप अभेद रत्नत्रयमें तिष्ठना शुद्ध अध्यात्मीक आमोदर्य तप है।

अनन्त दर्सन दरसै, जानदि पिच्छेइ ज्ञान स सहावं।
तप यरनं संजुत्तं, आमोदर्ज ज्ञान सहकारं ॥ ५१० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहकारं आमोदर्ज तप यरनं संजुत्तं) जो साधु आत्मज्ञान सहित आमोदर्ज तपका साधन करते हैं और (ज्ञान स सहावं जानदि पिच्छेइ) ज्ञानमई आत्म-स्वभावको जानते देखते हैं वे (अनन्त दर्सन दरसै) अनन्त दर्शनको प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—आत्माके अनुभवमें आनन्द मानने रूप जो आमोदर्ज नामका तप है उसको जो आचरण करते हुए अपने ज्ञानस्वभावी आत्माको ही देखते जानते हैं वे धर्मध्यान व शुक्लध्यानके प्रतापसे चार घातीय कर्मोंको नाश कर अरहंत होजाते हैं और अनंत दर्शनको प्राप्त कर लेते हैं।

वस्तु संख्या प्रमाण तप।

वस्तुसंख्या परमाणं, वासं संसार तिक्त मोहंधं।
मिच्छात विरय विरयं, रागादि दोस विरय विरयंती ॥५११॥

अन्वयार्थ—(वस्तुसंख्या परमाणं) वस्तु संख्या प्रमाण तप उसको कहते हैं जहां (वासं संसार तिक्त मोहंधं) मोहमई अज्ञानरूप संसारका वास त्याग दिया जावे (मिच्छात विरय विरयं) मिथ्यात्व व इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त रहा जावे (रागादि दोस विरय विरयन्ती) जिन २ पदार्थोंसे रागादि दोष उत्पन्न होते हों उनको छोड दिया जावे।

भावार्थ—वस्तु संख्या प्रमाण तपको वृत्ति परिसंख्यान तप भी कहते हैं जिसका प्रयोजन यह है कि जब साधु वृत्ति अर्थात् भिक्षाके लिये जाते हैं तब कुछ वस्तुकी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि

यह वस्तु मिलेगी तो आज आहार करेंगे अन्यथा न करेंगे। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

एकवस्तुदशागारपानमुद्गादिगोचरः । संकल्पः क्रियते यत्र वृत्तिसंख्या हि तत्तपः ॥ १२।७ ॥

भावार्थ—एक वस्तुका, घरका, पीनेकी वस्तुका, मूंग आदिका इच्छानुसार जहां संकल्प किया जावे फिर भिक्षाको जाया जाय वह वृत्ति संख्या नामका तप है।

यहां निश्चय नयकी प्रधानतासे कथन है कि-मोह सहित संसारका वास, मिथ्यात्वभाव, इंद्रियोंके विषयोंकी चाह, राग द्वेष वर्द्धक संपूर्ण पर पदार्थोंका जहां त्याग किया जावे वही वस्तु-संख्याप्रमाण तप है।

विरइय परिनाम असुद्धं, वासं विरयं मि ज्ञान सहकारं।
जं चिय असुह परिनामं, विरइय परमाद ज्ञान सहकारं ॥५१२॥

अन्वयार्थ—(विरइय परिनाम असुद्धं) जहां अशुद्ध परिणामोंको त्यागा जावे (ज्ञान सहकारं वासं विरयं मि) व आत्मज्ञानकी सहायतासे परवस्तुमें वास या परवस्तुके मोहको या वस्त्रादिको त्याग दिया जावे (जं चिय असुह परिनामं) और जो कुछ भी अशुभ भाव हैं उनसे विरक्त रहा जावे (ज्ञान सहकारं परमाद विरइय) आत्मज्ञानकी सहायतासे प्रमादको त्यागा जावे वही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—जहां राग द्वेष मोह आदि सर्व अशुद्ध भावोंको त्यागकर आत्मज्ञानमें तिष्ठा जावे वही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

तवयरनं ज्ञानसहावं, उग्र तवयरन ऊर्ध सद्भावं।
दिति सुदर्सनं सुद्धं, घोर नव संसार सरनि मुक्कस्य ॥५१३॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानसहावं तवयरनं) आत्मज्ञानमें लीन रूप स्वाभाविक तपका करना (ऊर्ध सद्भावं उग्र तवयरन) श्रेष्ठ निज आत्मामें तिष्ठने रूप घोर तप करना (सुद्धं सुदर्सनं दिति) जिससे शुद्ध आत्म-प्रतीतिकी दृढता होती जावे तथा (घोर नव संसार सरनि मुक्कस्य) नवीन भयानक संसारके मार्गसे मुक्ति होसके सो वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—इस भयानक संसारमें आगामी भ्रमना न पडे इसलिये कर्मोंकी निर्जरा व नवीन

कर्मोंके संवर करनेकी जरूरत है। उसका उपाय यही है कि जो सर्व पर भावोंसे उदास होकर निज आत्मामें रमण रूप ऐसा घोर तप आचरण किया जावे कि परीषह उपसर्गके पडनेपर भी उससे चलायमान न हुआ जावे। शुद्ध आत्मश्रद्धाको ऐसा दृढ बनाया जावे कि वह परमावगाढ सम्यक्तमें पलट जावे। यही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

वासं तिक्त सुमेओ, ज्ञान बलेन तिक्त संसारं।
दंसन ज्ञान ससमयं, ज्ञानबलेन सुद्ध तव यरनं ॥५१४॥

अन्वयार्थ—(सुमेओ वासं तिक्त) जहां स्वयं अपने शुद्ध भावोंसे वस्त्रादि पर वस्तुका त्याग किया जावे (ज्ञान बलेन तिक्त संसारं) आत्मज्ञानके बलमे संसारका मोह छोड दिया जावे (दंसन ज्ञान ससमयं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको पाला जावे (ज्ञानबलेन सुद्ध तव यरनं) आत्मज्ञानके बलसे शुद्ध तपश्चरण किया जावे सोही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—आत्मज्ञानमें लीन होकर अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमें तन्मय होकर जो शुद्ध निर्दोष आत्मामें तपनरूप तप किया जावे, अपने ही निर्मल भावोंसे परसे मोह छुडाया जावे सो वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

अप्प सरूवं पिच्छदि, जानदि ज्ञानेन दव्वए जीवं।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, वासं तिक्तंति इत्थु संसारे ॥ ५१५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सरूवं पिच्छदि) जहां आत्माके स्वभावको देखा जावे (ज्ञानेन दव्वए जीवं जानदि) ज्ञानके बलसे द्रव्यके स्वरूपकी अपेक्षा जीवको जाना जावे (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) आत्मज्ञानके ध्यानसे ज्ञानको कर्म रहित शुद्ध किया जावे (इत्थु संसारे वासं तिक्तंति) इस तरह संसारके वासको मिटाया जावे, कर्मोंकी निर्जरा की जावे सो वस्तु संख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—द्रव्यार्थिक नयसे आत्मा परमात्माके समान शुद्ध ज्ञानानन्द मई परम वीतराग है, ऐसा जानकर उसी आत्माके स्वभावसे तन्मय होकर ध्यान लगाया जावे इसीसे संसारवर्द्धक कर्मोंकी निर्जरा होती है, नवीन कर्मोंका संवर होता है। ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ज्ञान बढता

है व शुद्ध होता है। इसी अभ्याससे जब ज्ञानावरणका क्षय होता है तब केवलज्ञान प्रकाशित होजाता है। ऐसा तप तपना वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

रस परित्याग तप।

रसियं मिथ्यात मइयं, रसियं संसार सरनि वासंमि।
कुज्ञानं रसियानं ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च ॥ ५१६ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात मइयं रसियं) मिथ्यात्व मई रुचिको (संसार सरनि वासंमि) संसार भ्रमणके वासकी रुचिको (कुज्ञानं रसियानं) मिथ्याज्ञानकी रुचिको (ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च) आत्म-ज्ञानके स्वभावमें ठहरकर इस सर्व रुचिको छोडना रस परित्याग तप है।

भावार्थ—व्यवहारसे शक्कर, घृत आदि रसोंका त्यागना रस परित्याग तप है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

रसत्यागो भवेत्तैलक्षीरेक्षुदधिसर्पिषाम्। एकद्वित्रीणि चत्वारि त्यजतस्तानि पंचधा ॥ ११-७ ॥

भावार्थ—जहां तेल, दूध, मिष्ठ, दही, घृत इन पांच रसोंमेंसे एक दो तीन चार या पांचोंका ही त्याग किया जाये वह रस परित्याग तप है। यहां निमकको नहीं गिनाया है, निमकको भी गिननेसे छः रस होजाते हैं। यहां निश्चयकी प्रधानतासे कथन है कि आत्माके स्वभावका रासिक होकर सर्व संसारवर्द्धक रसोंको या रुचियोंको त्याग दिया जावे, मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानकी रुचिको हटाया जावे। केवल शुद्ध आत्म-प्रतीति व स्वसंवेदन ज्ञानको बढाया जावे। आत्माके आनन्दमें ही तृप्ति मानी जावे और किसी भी मानासिक संकल्प विकल्पमें रुचि न रक्खी जावे। सर्व शृँगारि वीर बीभत्सादि रसोंको त्यागकर परम शांत रसका प्रेमी बना जावे यही पंच परित्याग तप है।

रसियंति मूढभावं, मलपचीस रसित सभावं।
रसियं संसारवने, ज्ञानसहावेन सयल तिक्तं च ॥ ५१७ ॥

अन्वयार्थ—(मूढभावं रसयंति) मूढ भावोंमें रसिकता (मलपचीस रसित सब्भावं) सम्यक्तके २५ मल दोषोंमें रसिकता (संसारवने रसियं) संसारके वनमें रुचि (ज्ञानसहावेन सयल तिक्तं च) ज्ञान स्वभावके द्वारा तपस्वी साधु सर्व रुचिभावोंको त्याग देते हैं।

भावार्थ—अंतरंगसे सिवाय आत्मानुभूति व आत्मानंदके किसी अन्य रससे रागका त्यागना रसपरित्याग तप है। इस तपके धारी तपस्वी मोक्ष महलके रसिक होकर संसारके दुःखमय भयानकपनसे रुचि हटा लेते हैं। इसीलिये जिस मिथ्यात्व भावके कारण व जिन पचीस सम्यक्तके मल दोषोंके कारण तीव्र कर्मका बंध होता है जिससे भवमें भ्रमण होता है उन सबको आत्मरसिक साधु सर्वथा त्याग देते हैं।

विकहा वसन सहावं, आरतिरौद्रस्य रसिय सब्भावं।
परे पंच वि भ्रम सहियं, ज्ञानसहावेन सयल तिक्तं च ॥ ५१८ ॥

अन्वयार्थ—(विकहा वसन सहावं) चार विकथाके कहने सुननेका स्वभाव व सातों व्यसनोंकी रुचि (आरतिरौद्रस्य सब्भावं रसिय) आर्तध्यान तथा रौद्रध्यानके स्वभावोंमें रसिकता (भ्रम सहियं परे पंच वि) भ्रम सहित सर्व प्रपंच पर मायाचारकी रुचि (ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च) आत्मज्ञानके स्वभावमें ठहरकर इन सर्व रुचि भावोंको तपस्वी त्याग देते हैं।

भावार्थ—रस परित्याग तपके पालन कर्ता साधु स्त्री भोजनादि चारों विकथाओंकी रुचि, जूआ खेलन आदि सात व्यसनोंकी रुचि, इष्ट वियोगादि आर्तध्यानमें रंजकता, हिंसानंद आदि चार रौद्रध्यानोंमें मग्नता तथा सर्व प्रकार मायाचार या मिथ्यात्व भावोंकी रुचिको निज आत्माके आनंदमय स्वभावके रसमें भ्रमरवत् तन्मय होकर छोड़ देते हैं।

सुद्धं रसिय सुज्ञानं, दंसनवरज्ञान सुद्धतवयरनं।
अप्पा परमप्पानं, ज्ञानसहावेन सुद्ध तवयरनं ॥ ५१९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सुज्ञानं रसिय) शुद्ध सम्यग्ज्ञानमें रसिक होकर (दंसन वर ज्ञान सुद्ध तव यरनं) जो उत्तम सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सहित निर्मल तपका आचरण करते हैं (अप्पा परमप्पानं) आत्माको

परमात्मारूप अनुभव करते हैं (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यानं) वे ही आत्मज्ञानके स्वभावके द्वारा शुद्ध रस परित्याग तपको पालते हैं।

भावार्थ—संसारकी सर्व रुचि टालकर जो सम्यग्दृष्टी तपस्वी शुद्ध आत्मीक रसके रसिक होकर अभेद रत्नत्रय स्वरूप स्वानुभवमें तल्लीन होते हैं, वे ही निश्चय नयसे रस परित्याग तपको पालते हैं।

विविक्त शय्यासन तप।

विविक्त आसन सेज्जा, पुग्गलजीवान विविक्तं सुद्धं।
पुग्गलसरनि विमुक्कं, अप्पा अप्पेन दंसनं सुद्धं ॥ ५२० ॥

अन्वयार्थ—(विविक्त आसन सेज्जा) सर्व प्रकारके परद्रव्य सम्बन्धी आसन व शय्याको त्याग देना (पुग्गलजीव न विविक्तं सुद्धं) तथा पुद्गल और जीवको भिन्न२ जानकर शुद्ध जीवको भिन्न समझना (पुग्गलसरनि विमुक्कं) पुद्गल सम्बन्धी सर्व मार्गको त्याग देना। अर्थात् पौद्गलिक द्रव्य तथा भावोंसे विरक्त होजाना (अप्पा अप्पेन सुद्धं दंसनं) आत्माको आत्माके द्वारा शुद्ध देखना या अनुभव करना विविक्त शय्यासन तप है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे एकांतमें निर्जन्तु भूमिमें शयन व आसन करना विविक्त शैयासन तप है। जैसा तत्त्वार्थसारमें कहा है—

जंतुपीडाविमुक्तायां वसतौ शयनासनम्। सेवमानस्य विज्ञेयं विविक्तशयनासनम् ॥ १४-७ ॥

भावार्थ—जहां जन्तुओंको कष्ट न पहुंचे ऐसी वस्तीमें शयन व आसन करना विविक्त शैयासन तप है। यहां निश्चयसे कथन है कि सर्व प्रकारके आसन व शैयाओंसे मन रोककर पुद्गल-द्रव्योंसे शरीर, धन, मकान, क्षेत्रादिसे तथा कर्मजनित रागादि दोषोंसे रहित निज आत्माको परमात्माके समान शुद्ध जानकर सर्व प्रकारके परभावसे रहित होकर निज आत्मीक भावमें आपसे आप ही तन्मय होजाना। शुद्धात्माका अनुभव करना, ध्याता, ध्येयके द्वैतभावको दूर करके एक अद्वैतभावमें रम जाना विविक्त शय्यासन तप है।

विविक्तं घाय चवकं, विविक्त कम्मान तिविहि जोएन ।
मिथ्याराग विविक्तं, सुद्ध असुद्ध विविक्तं परिनया हुंती ॥ ५२१ ॥

अन्वयार्थ—(विविक्तं घाय चवकं) जिसने चार घातीय कर्मोंसे अमल हटा लिया है (तिविहि जोएन विविक्त कम्मान) मन, वचन, काय द्वारा सर्व कर्मोंसे वैराग्य प्राप्त कर लिया है (मिथ्या राग विविक्तं) संसारके झूठे रागको त्याग दिया है (सुद्ध असुद्ध विविक्त परिनया हुंती) तथा शुभोपयोग शुभोपयोगसे रहित शुद्धोपयोगमें जो परिणमन करते हैं वे ही विविक्त शय्यासन तपके धारी हैं ।

भावार्थ—द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, भाव कर्म रागद्वेषादि, नोकर्म शरीरादि इनसे उदासीन होकर व सर्व इंद्रिय विषय कषायसे हटकर व सर्व शुभ अशुभ भावोंको छोडकर जो शुद्धोपयोगमें रमण करते हैं वे ही विविक्त शय्यासन तपके साधु हैं। जिन्होंने सर्व पर आसनों पर व शय्याओं- पर वास करना त्याग दिया है मात्र निज आत्मीक शय्या व आसन पर ही तिष्ठते हैं ।

विविक्त सेज्ज आसनं, विविक्त मनचवल इन्दिया विषयं ।
ज्ञान बलेन विविक्तं, अप्पा परमप्प ज्ञान स सरूवं ॥ ५२२ ॥

अन्वयार्थ—(विविक्त मनचवल इंदिया विषयं) जिसने चञ्चल मन व इंद्रियोंके विषयोंकी चाहको रोक लिया है (ज्ञान बलेन) आत्मज्ञानके बलसे (विविक्तं) सर्व रागादिसे रहित (अप्पा परमप्प ज्ञान-स सरूवं) अपने ही आत्माको परमात्माके समान ज्ञान स्वरूपी अनुभव किया है वही (विविक्त सेज्ज आसनं) विविक्त शय्यासन तपका धारी है ।

अन्वयार्थ—जबतक यह ज्ञानोपयोग पांच इंद्रियोंकी तरफ व मनकी तरफ उपयुक्त होता है तबतक आत्माका दर्शन नहीं होता है । जब उपयोग इन छहोंसे हटकर निज आत्माके शुद्ध स्वभा- वमें उपयुक्त होता है तब ही अपने भीतर परमात्म तत्वमय आत्माका अनुभव होजाता है। यही विविक्त शय्यासन तप है । समाधिशतकमें कहा है—

सर्वेन्द्रियाणि संयम्यस्तिमितेनान्तरात्मना । यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मनः ॥ ३०-१ ॥

भावार्थ—जब सर्व इंद्रियोंको संयममें लाकर स्थिर होकर भीतर देखा जायगा, तब ही पर- मात्माका स्वरूप झलक जायगा ।

कायक्लेश तप।

कायकलेसं उत्तं, कललं कृत कम्म त्यजंति संसारे।
सुद्धं सरूवं पिच्छदि, ज्ञानसहावेन काय अकलेसं॥ ५२३ ॥

अन्वयार्थ—(कायकलेसं उत्तं) अब कायक्लेश तपको कहते हैं (कललं कृत कम्म त्यजंति संसारे) जहां इस संसारमें शरीरके द्वारा किये हुए कर्मोंका ममत्व छोड दिया जावे (सुद्ध सरूवं काय अकलेसं ज्ञानसहावेन पिच्छदि) व कायके सर्व क्लेशसे रहित शुद्ध आत्माके स्वरूपको ज्ञान स्वभावमें ठहरकर अनुभव किया जावे वही कायक्लेश तप है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे कायक्लेश तप वह है कि कठिन २ स्थानोंपर जाकर कायकी ममता हटानेको कायको क्लेश बाहरसे दीखे ऐसा कठिन तप किया जावे। तत्वार्थसारमें कहा है—

अनेकप्रतिमास्थानं मौनं शीतसहिष्णुता। आतपस्थानमित्यादिकायक्लेशो मतं तपः॥ १३–७॥

भावार्थ—मौन रखकर अनेक कठिन २ आसनोंमें रहकर, धूपमें भी आसन जमाकर निर्मल स्वभावके साथ कायक्लेशको सहना सो कायक्लेश तप कहा गया है।

यहां निश्चय प्रधान कथन है कि शरीरके द्वारा जो आठ कर्मोंका बन्ध किया गया है उन सर्वसे ममत्व हटाकर अपनेको कर्म रहित व शरीर सम्बन्धी सर्व दुःखोंसे रहित मानकर अपने ही शुद्ध आत्माका अनुभव करना, भीतर आनन्द मानना सो कायक्लेश तप है।

कायकलेस असुद्धं, सरीर संस्कार इंद्रिया विषयं।
अप्प सहावं अमलं, ज्ञान सहावेन काय अकलेसं॥ ५२४ ॥

अन्वयार्थ—(सरीर संस्कार इंद्रिया विषयं) शरीरका श्रृँगार करना व इंद्रियोंके विषयोंमें अनुरक्त रहना आदि (असुद्धं काय कलेस) मलीन कायक्लेश है इसको त्यागकर (ज्ञान सहावेन) आत्मज्ञानके स्वभावमें रमकर (काय अकलेसं अमलं अप्प सहावं) काय सम्बन्धी सर्व कष्टोंसे व विकारोंसे रहित व कर्म रहित निर्मल आत्म-स्वभावको अनुभवना कायक्लेश तप है।

भावार्थ—शरीरको पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें रमाना व शरीरको शोभनीक रखना भी काय-

क्लेश है। यद्यपि इसमें बाहरसे क्लेश नहीं दिखता है, परन्तु रागभावसे कर्मोंका बंध होजाता है जिससे भविष्यमें शरीर धार करके आत्माको शरीर द्वारा क्लेश होगा। इस सर्वको त्यागकर जो शरीर रहित ज्ञान स्वभावी परम वीतराग अपने आत्मामें रमन करते हैं, जहां रंच मात्र भी क्लेश नहीं है किंतु परमानंद है यही काय क्लेश तप साधते हैं।

अप्प सहावं सुद्धं, पर दव्वं विरय सव्वहा सव्वे।
अप्प सहावं रूवं, ज्ञान सहावेन हुंति तव यरनं ॥ ५२५ ॥

अन्वयार्थ—(सव्वहा सव्वे पर दव्वं विरय) सर्वथा सर्व पर द्रव्योंसे विरक्त होकर (सुद्धं अप्प सहावं) शुद्ध आत्माके स्वभावको जानकर (अप्प सहावं रुवं) आत्माके स्वभावमें एकरूप होजाना (ज्ञान सहावेन तव यरनं हुंति) ज्ञान स्वभावसे तपश्चरन है।

भावार्थ—ऊपर लिखित छः बाह्य तप ही तप कहलाते हैं। जब सर्व पर द्रव्योंसे विरक्त होकर निज शुद्ध आत्मामें रमण किया जावे। क्योंकि तपसे संवर और निर्जरा होती है यह सिद्धांत है। जबतक आत्मानुभव न होगा, आप आपमें तन्मय न होगा, शुद्ध उपयोगका झलकाव न होगा तबतक नवीन कर्मोंका संवर न पुरातन कर्मोंकी निर्जरा न होगी। इसलिये बाहरी तप विना आत्मानुभवके तप नहीं कहे जासक्ते। उपवास आदि केवल निमित्त हैं। उपादान तो निज आत्मीक तप है। तारणस्वामीने इस ही तपका महात्म्य वर्णन किया है।

आभ्यंतर तप कथन।

वाहिज तव उवएसं, आभिंतर तव सुद्ध ससहावं।
अप्प सरूवं पिच्छदि, अप्पा परमप्प तिविहि जोएन ॥ ५२६ ॥

अन्वयार्थ—(बाहिज तव उवएसं) बाहरी छः तपोंका उपदेश किया गया (आभिंतर तव सुद्ध ससहावं) अब भीतरी छः तपोंको कहते हैं जो शुद्ध अपना स्वभाव है। जहां (तिहिवि जोएन) मन, वचन, काय तीनों योगोंको थिर करके (अप्पा परमप्प अप्प सरूपं पिच्छदि) आत्मा परमात्माके समान है ऐसा निश्चय करके अपने आत्माको उसी स्वभावमें अनुभव किया जाय वह आभ्यंतर तप है।

अन्वयार्थ—आभ्यंतर तपसे प्रयोजन यह है कि अपने आत्माके भीतर ही तप किया जावे। मन, वचन, काय तीनोंमे उपयोग हटाके निज शुद्ध आत्मामें उपयोगको रमाया जावे।

प्रायच्छित्त विनयेन, वैयाव्रत सुद्ध ध्यायमुपएसं।
उत्सर्गं उवएसं, झानं झायंति सुद्ध मप्पानं॥ ५२७॥

अन्वयार्थ—(प्रायच्छित्त विनयेन) प्रायाश्चित्त, विनय (वैयाव्रत सुद्ध ध्यायमुपएसं) वैयावृत्य, स्वाध्याय (उत्सर्गं उवएसं) व्युत्सर्ग (झानं सुद्धमप्पानं झानंति) इन पांच तपके द्वारा शुद्ध आत्माका ध्यान साधुगण ध्याते हैं।

भावार्थ—छः आभ्यंतर तप है। प्रायाश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान। इनमें मुख्य तप ध्यान है जिससे आत्माका ध्यान करके कर्मोंकी निर्जरा की जाती है। पांच तप ध्यानके सहकारी हैं।

प्रायाश्चित्त तप।

प्रस्तुतं नहि पिच्छदि, अप्रस्तुतं परम सुद्ध मप्पानं।
मिथ्या मयं न दिष्टदि, सुद्ध सहावेन सरूव पिच्छंतो॥ ५२८॥

अन्वयार्थ—(प्रस्तुतं नहि पिच्छदि) जो प्रस्तुत अर्थात प्राप्त शरीरादि पदार्थ व कर्मादि उनको नहीं देखता है किन्तु (अप्रस्तुतं परम सुद्ध मप्पानं) जो वर्तमानमें प्राप्त नहीं हैं ऐसे परम शुद्ध आत्माकी ओर ध्यान लगाता है (मिथ्या मयं न दिष्टदि) मिथ्यात्व व मदको नहीं देखता है (सुद्ध सहावेन सरूव पिच्छंतो) शुद्ध आत्म-स्वभावके द्वारा जो अपने स्वरूपको देखता है वह प्रायाश्चित्त तप पालता है।

भावार्थ—शरीरादि पदार्थ हमारे दृष्टिगोचर हैं। रागादि अनुभवमें आरहे हैं ये सब प्रस्तुत हैं, उपस्थित हैं, किन्तु अपना शुद्ध आत्मा हमारे सामने उपस्थित नहीं है, वह तो मात्र अनुभवगम्य है, इसलिये अप्रस्तुत है। अतएव जो कोई विवेकी मिथ्यादर्शन व मद आदि भावोंको त्यागकर अनुभवगम्य अपने ही शुद्ध आत्माको शुद्ध स्वरूपके द्वारा अनुभव करता है सो प्रायश्चित्त तपका पालनेवाला है।

राागादि दोस रहियं, धम्म झानं झायंति तं मुनिना।
कुज्ञान सल्य रहियं, रूवत्थं सरूव झानत्थं ॥ ५२९ ॥

अन्वयार्थ—(मुनिना) मुनि महाराज (रागादि दोष रहियं) रागादि दोषोंसे रहित (तं धम्म झानं झायंति) उस धर्मध्यानको ध्याते हैं जिसमें (कुज्ञान सल्य रहियं) न तो मिथ्याज्ञान है न कोई शल्य है (सरूव झानत्थं) जो अपने स्वरूपके ध्यानमें स्थिरतारूप है (रूवत्थं) उसे ही रूपस्थध्यान कहते हैं।

भावार्थ—यहां ग्रंथकर्ता निश्चयनयकी प्रधानतासे प्रायाश्चित्त तपका स्वरूप कह रहे हैं। व्यवहारनयसे इसका भाव यह है कि यदि प्रमादादि कारणसे कोई दोष होगया हो तो उसको गुरुको निवेदन कर दंड लेकर दोषको शुद्ध करना। जैसा तत्वार्थसारमें कहा हैः—

आलोचनं प्रतिक्रांतिस्तथा तदुभयं तपः व्युत्सर्गश्च विवेकश्च तथोपस्थापना मता ॥ २१-७ ॥
परिहारस्तथाच्छेदः प्रायश्चितभिदा नव ॥ २१-७ ॥

भावार्थ—दोषकी शुद्धि नौ प्रकार दंड लेकर होती है। जैसा अपराध होता है वैसा दंड दिया जाता है, (१) आलोचना—गुरुके सामने अपने दोषको कह देना, (२) प्रतिक्रमण-मेरे दोष मिथ्या हों ऐसा पश्चात्ताप करना, (३) तदुभय—आलोचना प्रतिक्रमण दोनों करना, (४) तप—उपवास, अल्प भोजन रस त्यागादि करना, (५) व्युत्सर्ग—२७ श्वासमें ९ दफे णमोकार मंत्र पढना एक कायोत्सर्ग है। एक या अनेक कायोत्सर्ग करना। (६) विवेक—कोई अन्न या पान आदिको कुछ कालके लिये त्याग करना, (७) उपस्थापना—दीक्षा छेदकरके फिरसे दीक्षा देना, (८) परिहार—कुछ मासोंके लिये संघसे अलग रखना, (९) छेद—दीक्षाका समय कम कर देना—दरजा घटा देना, दीर्घकालके दीक्षितको अल्पकालका दीक्षित कर देना। इस गाथाका भाव यह है कि वास्तवमें कर्म रूपी दोषोंकी शुद्धि आत्मध्यानसे होती है। मिथ्याज्ञान व शल्य रहित होकर जो अपने स्वरूपमें थिर होना वही निश्चय प्रायाश्चित्त है।

इंद्री विषय विमुक्कं, अप्प सरूवं च चेयना सुद्धं।
मन चवलं रुंधंता, सम्यग्दर्सन दर्सनं सुद्धं ॥ ५३० ॥

अन्वयार्थ—(इंद्री विषय विमुक्कं) पांचों इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त होकर व (मन चवलं रूंधंता) चंचल मनको रोककर (अप्प सरूवं च सुद्धं चेतना) आत्माका स्वभाव शुद्ध चेतनामय जानकर (सुद्ध सम्यग्दर्सन दर्सनं) शुद्ध आत्मानुभव रूप सम्यग्दर्शन देखना ही निश्चय प्रायश्चित्त है।

भावार्थ—पांच इन्द्रिय व मनके विषयोंमें जाते हुए उपयोगको रोककर ज्ञान चेतनामय शुद्ध आत्माके अनुभवमें उसे जोड देना-निश्चय सम्यग्दर्शनमय होजाना-निजानन्दका स्वाद लेना सो ही निश्चय प्रायश्चित्त है जो सर्व कर्म मैलको छुडानेवाला है।

असुद्ध परिनय विरयं, सुद्ध परिनय सरूव पिच्छंति।
अप्पा अप्पमि रओ, ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं ॥ ५३१ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध परिनय विरयं) अशुद्ध परिणामोंसे विरक्त होकर जो (सुद्ध परिनय सरूव पिच्छंति) शुद्ध परिणामोंसे अपने स्वरूपको देखते हैं (अप्पा अप्पंमि रओ) अर्थात् जहां आत्मा आत्मामें ही तन्मय होजाता है यही (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं) ज्ञान स्वभावसे शुद्ध तपश्चरण करना है।

भावार्थ—पिछले पापोंसे शुद्धि करना ही प्रायश्चित्त तप है। अशुद्ध भावोंसे कर्म बंधे थे, इसलिये उनको त्यागकर कर्मकी निर्जराके कारण शुद्ध भावोंमें जब आत्मा परिणमन करता हुआ आपसे आपमें एकाग्र होजाता है तब प्रचुर कर्मोंकी निर्जरा होती है। यही शुद्ध तप है जहां भीतर आत्मानन्दका स्वाद आवे। और कर्मका कलङ्क मिटता चला जावे।

विनय तप।

विज्ञानं स सहावं, अप्पा परपिच्छि विरय बहिरप्पा।
विज्ञान ज्ञान झायदि, अप्पा परमप्प सुद्ध विज्ञानं ॥ ५३२ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं स सहावं) भेद विज्ञानसे अपने स्वाभाविक (अप्प परपिच्छि) आत्माको और परको पहचानकर (बहिरप्पा विरय) आत्मासे जो कुछ बाहर है या भिन्न है उससे विरक्त होकर (विज्ञान ज्ञान झायदि) भेद विज्ञानके द्वारा अपने ज्ञानका जो ध्यान करता है (अप्पा परमप्पा) कि आत्मा

ही परमात्मा है यही (सुद्ध विज्ञानं) शुद्ध विज्ञान है। जो आत्माको शुद्ध करनेवाला है व यही अंतरंग विनय तप है। यहां आत्माकी ओर ही परम भक्तिरूप है।

भावार्थ—विनय तपका स्वरूप तत्वार्थसारमें कहा है—

दर्शनज्ञानविनयौ चारित्रविनयोपि च। तत्रोपचारविनयो विनयः स्याच्चतुर्विधः ॥ ३०-७ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्रकी बडी ही भक्ति करना तथा व्यवहारमें वन्दनादि पूज्य पुरुषोंको करना उपचार विनय है। इस तरह विनय तप चार प्रकारका है। यहां निश्चयनयकी मुख्यतासे कथन करते हुए, रत्नत्रय स्वरूप निज आत्मामें मग्न हो जाना ही विनय तप कहा है।

विनयेन सुद्ध भावं, मय मिच्छातदोस निरयंमि।
आद सहावं विनयं, सल्यं कुज्ञान दोस विरयंती ॥ ५३३ ॥

अन्वयार्थ—(मय मिच्छात दोस विरयंमि) मद व मिथ्यात्वके दोषोंको त्यागकर (सल्यं कुज्ञानं दोस विरयंती) तीन शल्य व मिथ्या ज्ञानके दोषोंसे दूर रहकर (विनयेन सुद्ध भावं आद सहावं विनयं) बडी भक्तिसे शुद्ध भावमई आत्माके स्वभावमें मग्न होजाना विनय तप है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान, माया मिथ्या निदान शल्य तथा आठ मद आदि अशुद्ध भावोंको छोडकर जो कोई श्रद्धा व परम भक्तिसे अपने ही अशुद्ध आत्माके स्वभावमें एकाग्र होकर ध्यान करता है वही विनय तपका साधनेवाला है।

विनयपदानं अंगं, असुह संसार सरनि विरदो यो।
परिनाम सुद्धभावं, ज्ञान सहावेन जोइ तवयरनं ॥ ५३४ ॥

अन्वयार्थ—(असुह संसार सरनि विरदो यो) जो कोई अशुद्ध संसारके मार्गसे विरक्त होकर (अंगं पदानं विनय) द्वादशांग वाणीके पदोंकी विनय करता है (परिनाम सुद्ध भावं) और शुद्ध भावोंमें परिणमन करता है वही (ज्ञान सहावेन जोइ तवयरनं) ज्ञान स्वभावके द्वारा तपश्चरणको अनुभव करता है।

भावार्थ—संसार शरीर भोगोंसे उदास होकर जिनवाणीका बहुत विनयसे अभ्यास करना

ज्ञान विनय है। इस ज्ञान विनयके द्वारा अपने शुद्ध भावोंको पहचानकर उन्हींमें रमण करना निश्चय आत्माका विनयरूप तप है।



वैय्यावृत्य तप।

वैय्याव्रतं स उत्तं, वय संजम वृत्ति सुद्ध सम्मत्तं।
वैय्याव्रत ज्ञान सहावं, मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि ॥ ५३५ ॥

अन्वयार्थ—(वैय्याव्रतं स उत्तं) वैय्याव्रत तप वह कहा गया है जो (वय संजम वृत्ति सुद्ध सम्मतं) व्रत व संयममें वर्तन करते हुए शुद्ध व आत्म प्रतीतरूप सम्यक्तको पाला जावे (ज्ञान सहावं वैय्याव्रत) ज्ञान स्वभावी आत्माकी सेवा की जावे (मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि) मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानसे पूर्णतया विरक्त रहा जावे।

भावार्थ—व्यवहारनयसे वैय्याव्रत तप साधुओंकी सेवा करना है। उनके कष्टोंको निवारण करना है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

सूर्युपाध्यायसाधूनां शैक्ष्यग्लानतपस्विनाम्। कुलसंघमनोज्ञानां वैय्यावृत्यं गणस्य च ॥ २७–७ ॥

भावार्थ—आचार्य, उपाध्याय, साधु, नवीन शिष्य मुनि, रोगी मुनि, घोर तप करनेवाले मुनि, एक आचार्य हीके शिष्य कुल मुनि, मुनिसंघ, एकगण या संप्रदायके मुनि, तथा प्रसिद्ध मनोज्ञ मुनि, इन दश प्रकारके साधुओंकी सेवा करना वैय्यावृत्य तप है। यहां निश्चय प्रधान कथन है कि मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानके विकारोंसे हटकर निर्दोष महाव्रत व सामायिक संयमको पालते हुए व शुद्ध आत्म प्रतीतिको रखते हुए अपने ज्ञान स्वभावकी ही सेवा करना—आत्मामें ही रमण करना वैय्यावृत्य तप है।

अप्पा परमप्पानं, पिच्छे लोयालोयं मि अन्नयासं।
रुवानं रुव तीतं, ज्ञानं ज्ञायंति सुद्ध मप्पानं ॥ ५३६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्पानं लोयालोयं मि अवयासं पिच्छै) जो अपने आत्माको परमात्मा स्वरूप लोकालोकका ज्ञाता दृष्टा देखता है वह (सुद्ध मप्पानं) शुद्ध आत्माको ध्याता हुआ (रूवानं रूवतीतं झानं झायंति) रूपस्थ व रूपातीत ध्यानको ध्याता है।

भावार्थ—अरहंतके स्वरूपको विचार कर ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है। सिद्धके स्वरूपको विचार कर ध्यान करना रूपातीत ध्यान है। निश्चयनयसे जहां अपने आत्माको सर्वज्ञ वीतराग परमात्माके अनुसार श्रद्धामें लाकर शुद्ध आत्माके स्वरूपमें एकाग्र होजाना है वही रूपस्थ या रूपातीत ध्यान है। यही आत्माका वैयावृत्य है।

लिंगं च जिनवरिंदं, धम्मं सुक्कं च भावना सुद्धं।
झायंति झान सुद्धं, वैय्यावृत्तं च सुद्ध स सरूवं ॥ ५३७ ॥

अन्वयार्थ—(जिनवरिंदं च लिंगं) जहां श्री जिनेन्द्र भगवानके समान बाहरी व भीतरी लिंग है ऐसा द्रव्य व भाव लिंगी दिगम्बर जैन साधु (भावना सुद्धं) भावनाको शुद्ध करके (सुद्धं धम्मं सुक्कं च झानं झायंति) शुद्ध धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ध्याता है वहीं (सुद्ध स सरूवं वैय्यावृत्तं च) शुद्ध आत्म-स्वरूपमें रमण रूप वैय्यावृत्य तप है।

भावार्थ—दिगम्बर मुनि बाहरसे तो सर्व वस्त्रादि परिग्रह रहित बालकके समान नग्न होता है, अन्तरङ्ग रागादि दोषोंसे शून्य नग्न होता है। ऐसा साधु जब छठे व सातवें गुणस्थानमें शुद्ध आत्माको ध्याता है तब तो वह धर्म ध्यान करता है। जब उपशम या क्षपक श्रेणीपर आरूढ होकर शुद्ध आत्माको ध्याता है तब वह शुक्लध्यान करता है। दोनों ही ध्यानोंमें शुद्ध आत्माकी ही सेवा करता हुआ वैय्यावृत्य तप पालता है।

षय उवसम संजुत्तं, षयनिक भावेन सयल दोस परिचत्तं।
ऋजुविपुलं च उवन्नं, ज्ञान सहावेन हुंति तवयरनं ॥ ५३८ ॥

अन्वयार्थ—(षय उवसम संजुत्तं) क्षयोपशम भाव सहित साधु (षयनिक भावेन सयल दोस परिचत्तं) गुणस्थान चढकर क्षायिक भावको प्राप्त होकर सर्व दोषोंसे मुक्त होजाते हैं (ऋजुविपुलं च उवन्नं) इस

तरह ध्यान करनेसे ऋजुमति विपुलमति दो मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न होजाते हैं (ज्ञान सहावेन तवयरनं हुंति) यह आतम-ज्ञान सहित तपश्चरणका फल होता है।

भावार्थ—जिसकी सेवा करो उससे कुछ फल अवश्य होता है। यदि कोई साधु छठे सातवें गुणस्थानमें धर्मध्यान ध्याता है, यद्यपि यहां अभी न उपशम भाव है, न क्षायिक भाव है, किन्तु क्षयोपशम भाव है, इसी भावके प्रतापसे किसी २ साधुको दोनों प्रकारका या एक प्रकारका मनःपर्यय ज्ञान पैदा होता है। फिर यही वह साधु क्षपकश्रेणीके आठवें, नौमे, दसवें गुणस्थानोंपर चढता है तो क्षायिक भावके प्रतापसे वह सर्व मोहनीय कर्मका क्षय कर डालता है। फिर बारहवें गुणस्थानमें चढकर तीन घातीय कर्मोंको नाशकर सर्व प्रकार अज्ञान व रागादि दोषोंसे छूटकर अरहंत परमेष्ठी होजाता है। आत्माकी वैय्यावृत्य करनेसे अनेक ऋद्धियें सिद्ध होजाती हैं व आत्मा परमात्मा होजाता है।

स्वाध्याय तप।

सुद्धं सुद्ध सरूवं, सुद्धं झायंति सुद्ध मप्पानं।
मिच्छा कुज्ञान विरयं, सुद्ध सहावं च सुद्ध ज्ञानत्थं ॥ ५२९ ॥

अन्वयार्थ—स्वाध्याय तपके धारी (सुद्धं सुद्ध सरूवं) कर्म मल रहित व रागादि रहित शुद्ध तत्वस्वरूपको ध्याते हैं (सुद्धं सुद्धं मप्पानं झायंति) व परम शुद्ध आत्माको ध्याते हैं (मिच्छा कुज्ञान विरयं) मिथ्या दर्शन व मिथ्या ज्ञानसे विरक्त होकर (सुद्ध ज्ञानत्थं सुद्ध सहावं च) शुद्ध ध्यानमें तिष्ठते हुए शुद्ध आतमस्वभावको पाते हैं।

भावार्थ—व्यवहारनयसे शास्त्र पठन-पाठन, धारण व मननको स्वाध्याय तप कहते हैं जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

वाचनापृच्छनाम्नायस्तथा धर्मस्य देशना। अनुप्रेक्षा च निर्दिष्टः स्वाध्यायः पंचधा जिनैः ॥ १६–८ ॥

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवानने स्वाध्याय पांच तरहका बताया है। (१) वाचना–शुद्ध शब्द व उसका अर्थ पढना या सुनना। (२) पृच्छना–किसी संशयके दूर करनेके लिये या निश्चयकी दृढताके

लिये विशेष ज्ञानीसे पूंछकर निर्णय करना। (३) अनुपेक्षा-समझे हुए शास्त्रके भावका वारवार विचार करना। (४) आम्नाय-शुद्ध शब्द व अर्थको घोष कर कंठ करलेना। (५) धर्मोपदेश-धर्मकथा दूसरोंको उपदेश करना।

यहां निश्चय प्रधान कथन है कि संसारका मिथ्या राग छोड़कर निश्चिंत होकर धर्मध्यानमें तिष्ठकर शुद्ध आत्माका ध्यान या मनन करना स्वाध्याय है। छः द्रव्योंका निश्चयनयसे व व्यवहारनयसे यथार्थ स्वरूप जानना भी स्वाध्याय है।

सुद्धं जिने हि उत्तं, अशुद्धं संसार सरनि विरदो यो।
सुद्धं परमानंदं, सुद्ध सहावं च निम्मलं सुद्धं ॥ ५४० ॥

अन्वयार्थ—(यो अशुद्धं संसार सरनि विरदो) जो कोई अशुद्ध संसारके मार्गसे विरक्त होकर (जिने हि उत्तं सुद्धं) जिनेन्द्र भगवान कथित शुद्ध तत्वोंका मनन करता है (सुद्ध सहावं च निम्मलं सुद्धं) तथा कर्ममल रहित व रागादि रहित शुद्ध आत्मस्वभावका ध्यान करता है वह (सुद्धं परमानंदं) वीतरागता सहित परमानन्दको प्राप्त करता है।

भावार्थ—जो कोई चार गतिमय दुःखदाई संसारके भ्रमणसे उदासीन होकर जिनेन्द्रके आगमके अनुसार तत्वोंका मनन करता है। फिर भेद विज्ञानके द्वारा अपने आत्माके स्वभावको परमात्माके समान शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनुभव करता है वही निश्चयसे स्वाध्याय करता हुआ परमानन्दका लाभ पाता है।

सुद्धं ध्याय स उत्तं, विभ्रम परपंच तिक्त मोहंधं।
सुद्धं दंसन सुद्धं, अप्पा सुद्धप्प परम सुद्धं च ॥ ५४१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं ध्याय स उत्तं) शुद्ध ध्याय या स्वाध्याय तप उसको कहा गया है जहां (विभ्रम परपंच मोहंधं तिक्त) भ्रमबुद्धि, मायाचार व मोहांधपना छोडकर (सुद्धं दंसन सुद्धं) निश्चय सम्यग्दर्शनको शुद्धतासे पाला जावे अर्थात् (अप्पा सुद्धप्प परम सुद्धं च) आत्माको शुद्ध आत्मारूप समझकर परम शुद्ध भावोंसे आराधन किया जावे।

भावार्थ—संशय, विभ्रम, विमोह रहित शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके जहां अंतरंगसे सर्व प्रकारके मिथ्यात्वको–विपरीत भावको व माया, मद व निदान भावको त्यागकर निज आत्माको शुद्ध निश्चय नयके द्वारा द्रव्यमई शुद्ध सर्व परभाव रहित एकाकार अभेद ध्याया जावे व उसीके ध्यानमें एकाग्रता प्राप्तकर आत्मानंदका स्वाद लिया जावे यही निश्चय स्वाध्याय तप है।

व्युत्सर्ग या कायोत्सर्ग तप।

कायोत्सर्ग स उत्तं, कायोत्सर्ग ऊर्ध सुद्ध ससभावं।
विंदंति विंद रूवं, आद सहावं च निम्मलं ज्ञानं ॥ ५४२ ॥

अन्वयार्थ—(कायोत्सर्ग स उक्त) कायोत्सर्ग या व्युत्सर्ग तप उसे कहा गया है जो (कायोत्सर्ग ऊर्ध सुद्ध ससभावं विंदरूपं विंदंति) शरीरोंसे रहित श्रेष्ठ व शुद्ध अपने स्वभावको सिद्धके समान अनुभव किया जावे अर्थात् (आद सहावं च निम्मलं ज्ञानं) आत्माका स्वाभाविक निर्मल ध्यान किया जावे–आपसे आपमें लयता प्राप्त की जावे।

भावार्थ—व्यवहारनयसे सर्व बाहरी व भीतरी परिग्रहसे ममत्व त्यागना व्युत्सर्ग तप है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

बाह्यान्तरोपधित्यागाद्, व्युत्सर्गो द्विविधो भवेत। क्षेत्रादिरूपधिर्बाह्यः क्रोधादिरपरः पुनः ॥ २९७ ॥

भावार्थ—बाहरी क्षेत्र मकान आदि परिग्रहका त्याग बाह्य व्युत्सर्ग है। अंतरंगमें क्रोधादि भावोंका त्याग अंतरंग व्युत्सर्ग है ऐसे व्युत्सर्ग दो प्रकारका होता है।

यहां निश्चय नयकी मुख्यतासे कथन है कि कायोंसे रहित अपने ही आत्माको सिद्ध परमात्माके समान शुद्ध निर्विकार समझकर स्वाभाविक सहजानंद रूप आत्मध्यान किया जावे। यही कायोत्सर्ग तप है।

सम्यक्दर्सन सुद्धं, उत्सर्ग ऊर्ध चेयना भावं।
गय संकप्प वियप्पं, अप्पा परमप्प तुल्य संकलियं ॥ ५४३ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्दर्शन सुद्धं) निश्चय सम्यग्दर्शनका आचरण ही कायोत्सर्ग तप है जहां (उत्सर्ग ऊर्ध चेयना भावं) परभावोंसे रहित श्रेष्ठ अपने चैतन्य भावको (गय संकल्प वियप्पं) संकल्प विकल्पोंसे रहित ध्याया जावे (अप्पा परमप्प तुरय संकलियं) तथा आत्माको परमात्माके समान अनुभव किया जावे।

भावार्थ—निश्चय सम्यग्दर्शन आत्मप्रतीतिको कहते हैं। जहां इस आत्मप्रतीतिमय होकर निज स्वरूपका आचरण किया जावे अर्थात् सर्व इंद्रिय विषय विकार व कषाय भाव व मन वचन कायकी क्रियाको त्यागकर आत्माको शुद्ध एकाकार परम चैतन्य स्वरूप अनुभव किया जावे, यही निश्चय कायोत्सर्ग तप है।

तिअर्थं समय सुद्धं, जानंति रिजु विपुल ज्ञान सद्‌भावं।
उत्सर्गं ऊर्ध गुनं, ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं ॥ ५४४ ॥

अन्वयार्थ—(तिअर्थं सुद्धं समय) तीन पदार्थ अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई निश्चयसे शुद्ध आत्मा है (जानंति रिजु विपुल ज्ञान सद्‌भावं) उसीके ध्यानसे रिजुमति तथा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानका प्रकाश होसक्ता है (उत्सर्गं ऊर्ध गुनं) तथा परसे रहित श्रेष्ठ आत्मगुण जैसे केवलज्ञानादि झलक जाता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं) अपने ज्ञान स्वभावमें रमण करनेहीसे शुद्ध तपश्चरण होता है।

भावार्थ—जहां अपने शुद्ध आत्मस्वभावमई आत्मध्यान किया जावे वहीं कायोत्सर्ग तप है, वहीं रत्नत्रयकी एकता है, वहीं समयसार है। इसी अभेद सामायिकमें लीन होनेसे तपस्वियोंको मनःपर्यय ज्ञानका लाभ होता है तथा इसीके श्रेष्ठ भावमें पहुंच जानेपर केवलज्ञानकी प्राप्ति होजाती है।

ध्यान तप।

ध्यानं ज्ञान समत्थं, तुहे तह आसवे वि दुवियप्पो।
धाय चवक्कय सुक्कं, परिनामं संसारसरनि सुक्कस्य ॥ ५४५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समत्थं ध्यानं) ध्यान तप वह है जहां ऐसा बलवान आत्मध्यान किया जावे (तह दुवियप्पो आस्रवे वि तुहे) जिससे दोनों प्रकारका आस्रव टूट जावे (घाय चवक्कय मुक्कं) चारों घातीय कर्मोंका नाश होजावे (परिनामं संसारसरनि मुक्कस्य) संसार मार्गमें लेजानेवाले परिणामोंसे मोक्ष हो जावे।

भावार्थ—ध्यान तप ही मोक्षका साक्षात् उपाय है। धर्मध्यानके बलसे श्रेणीपर चढ़ता है। शुक्लध्यानके बलसे श्रेणीमें सर्व आस्रवभावोंको, भावास्रवोंको व द्रव्यास्रवोंको निरोध करता है। कषाय सहित आस्रवको सांपरायिक आस्रव कहते हैं, यही संसारमें भ्रमण करानेवाला है सो आस्रव क्षीण मोह बारहवें गुणस्थान पर पहुंचनेपर बिलकुल नहीं रहता है-और वह साधु मोहका पहले ही नाश कर चुका था। अब यहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय तीन घातीय कर्मोंका भी नाश कर अर्हंत केवली होजाता है। तत्वार्थसारमें कहा है—

आर्तं रौद्रं च धर्म्यं च शुक्लं चेति चतुर्विधम्। ध्यानमुक्तं परं तत्र तपोऽङ्गमुभयं भवेत्॥ ३१-७॥

भावार्थ—आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल चार प्रकारका ध्यान होता है उनमेंसे धर्म व शुक्लध्यान तपमें गर्भित है। इन्हीं दोनों तपोंसे कषायोंका नाश होजाता है जो कर्मोंके आस्रवके मुख्य कारण हैं।

सुकलं झानं झायदि, अप्पानं सुद्ध चेयना रूवं।
सक्ति च विक्तरूवं, अयसय जयवंत सिद्धि संजुत्तं॥ ५४६॥

अन्वयार्थ—(सुकलं झानं झायदि) श्रेणीपर चढा हुआ साधु परम निर्मल एकाग्रतारूप शुक्लध्यानको शुक्ल लेश्याके बलसे ध्याता है जहां (सुद्ध चेयना रूवं अप्पानं) शुद्ध चेतनारूप आत्माको अनुभव करता है (सक्ति च विक्तरूवं) दूसरे एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यानके बलसे शक्तिरूप जो परमात्मपद था सो व्यक्तरूप प्रकाशमान होजाता है (अयसय जयवंत सिद्धि संजुत्तं) तब केवलज्ञानी अर्हंतके अतिशय व अपूर्व आत्माकी सिद्धियें झलक जाती हैं।

भावार्थ—शुक्लध्यान शुद्धोपयोगका अनुभव कराता है। इसीके बलसे आत्मा परमात्मा अर्हंत होजाता है। जहां अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अतिशय प्रगट हो जाते हैं। केवली परम वीतराग होते हुए क्षुधा तृषाकी बाधासे मुक्त होजाते हैं। योगबलसे उनमें ऐसी शक्ति प्रगट होजाती है जिससे उनके शरीरको पुष्टि देनेवाली आहारक वर्गणाएँ स्वयं

खिंचकर शरीरमें प्रवेश कर जाती हैं। उनको भिक्षा मांगकर ग्रास रूप आहारकी जरूरत नहीं होती है। उनकी वाणीका ऐसा आतिशय होता है कि सर्व सभा निवासी पशु, पक्षी, देव, मानव अपनी२ भाषामें समझ जाते हैं। ध्यानकी अपूर्व महिमा है।

झानं अप्प सरूवं, अप्पा परमप्प चेयनं सुद्धं।
झायंति ऊर्ध सुद्धं, झान समत्थं च सुद्ध तव यरनं ॥ ५४७ ॥

अन्वयार्थ—(झानं अप्प सरूवं) ध्यान आत्माका स्वरूप है (अप्पा परमप्प चेयनं सुद्धं ऊर्ध सुद्धं झायंति) जो कोई आत्माको परमात्माके समान शुद्ध चेतनामय परम शुद्धरूप ध्याते हैं वे ही (झान समत्थं च सुद्ध तव यरनं) ध्यानके बलसे शुद्ध तपश्चरण करते हैं।

भावार्थ—आत्माका आत्मारूप होजाना-अद्वैत भावसे आप आपमें थिर होजाना सो ही निर्विकल्प समाधिरूप ध्यानरूपी तप है। इस ध्यानमें आपको बिलकुल शुद्ध परमात्माके समान ध्याया जाता है। यही ध्यानरूपी तप कर्मोंकी निर्जरा करनेको समर्थ है। जबतक निज स्वरूपमें परसे विमुख हो तन्मय न हुआ जावे तबतक असली ध्यान तप नहीं होसक्ता है।

बारह विहि उवएसं, झानं झायंति सुद्ध तव यरनं।
जे साहंति स पुरिसा, तत्तो पुन लहै निव्वानं ॥ ५४८ ॥

अन्वयार्थ—(बारह विहि उवएसं सुद्ध तव यरनं झानं झायंति) बारह प्रकारका कहा हुआ यह शुद्ध तपश्चरण ध्यानके द्वारा ही ध्याया जाता है (जे स पुरिसा साहंति) जो साधु पुरुष इसका साधन करते हैं (तत्तो पुन निव्वानं लहै) वे इसीके प्रतापसे ही निर्वाणको प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—बारह प्रकारका तप व्यवहारनय रूपसे सविकल्प है, साधनरूप है। उसके द्वारा निश्चय बारह प्रकारके तपको साधा जाता है। निश्चय तप मात्र एक शुद्धात्माका ध्यान है। यदि शुद्धात्माका ध्यानरूपी निश्चय तप न प्राप्त किया जावे तो सविकल्प तप या व्यवहार तप मोक्षका साधक नहीं होसक्ता है। क्योंकि आत्मानुभव रूप तपके साधनसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है और यह जीव मोक्षका लाभ कर लेता है। जो भव्य पुरुष अपने आत्माको भेदविज्ञानके द्वारा सर्वसे भिन्न परमात्मारूप परम शुद्ध अनुभव करते हैं, वे ही अर्हंत व सिद्ध होसक्ते हैं।

दश प्रकार सम्यक्दर्शन कथन ।

दह विहि सम्मत्ते नय, ज्ञान उवदेस अत्थवीजंमि ।
संक्षेप सुत्त उत्तं, ववहार अवगाहनेन सद्भावं ॥ ५४९ ॥
प्रवचन केवलि उत्तं, परमं सम्मत्त सुद्ध सद्भावं ।
दह विज्ञान सरूवं, अप्पा अप्पेन सुद्ध सम्मत्तं ॥ ५५० ॥

अन्वयार्थ—(दह विहि सम्मत्ते नय) दश प्रकार सम्यग्दर्शनके द्वारा भी आत्म हित किया जाता है, वे दश भेद हैं (ज्ञान उवदेस अत्थवीजंमि)—१–ज्ञान सम्यक्त, २–उपदेश सम्यक्त, ३–अर्थ सम्यक्त, ४–बीज सम्यक्त, (संक्षेप सुत्त उत्तं) ५–संक्षेप सम्यक्त, ६–सूत्र सम्यक्त या सूत्रोक्त सम्यक्त, (ववहार अवगाहनेन सद्भावं) ७–व्यवहार सम्यक्त, ८–अवगाहन सम्यक्त, (प्रवचन केवलि उत्तं) ९–प्रवचन केवलि सम्यक्त, (परमं सम्मत्त सुद्ध सद्भावं) १०–परम सम्यक्त यह शुद्ध आत्म स्वभाव है (दह विज्ञान सरूवं) दशों ही सम्यक्त आत्मज्ञान स्वरूप हैं (अप्पा अप्पेन सुद्ध सम्मत्तं) आत्माका आत्माके द्वारा अनुभव किया जावे वही शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—यद्यपि सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है तथा एकरूप ही है तथापि उसकी प्राप्तिके लिये साधन भेद हैं । इस दृष्टिसे तथा ज्ञान व चारित्रकी वृद्धिसे सम्यक्तकी विशेष उज्वलता होती है, इस दृष्टिसे यहां ये दश भेद कहे गए हैं । श्री गुणभद्राचार्य कृत आत्मानुशासनमें भी सम्यक्तके दश भेद कहे गये हैं जैसे:—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् । विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढे च ॥ ११ ॥

भावार्थ—१–आज्ञा सम्यक्त, २–मार्ग सम्यक्त, ३ उपदेश सम्यक्त, ४–सूत्र सम्यक्त, ५–बीज सम्यक्त, ६–संक्षेप सम्यक्त, ७–विस्तार सम्यक्त, ८–अर्थ सम्यक्त, ९–अवगाढ सम्यक्त, १०–परमावगाढ सम्यक्त ।

तारणस्वामीने जो १० भेद बताए हैं उनमेंसे पांच मिल जाते हैं । शेष पांच नहीं मिलते हैं । गुणभद्राचार्यने जब आज्ञा, मार्ग, विस्तार, अवगाढ, परमावगाढ ये पांच भेद कहे हैं तब तारण-

स्वामीने ज्ञान, व्यवहार, अवगाहन, प्रवचनकेवलि, परम ऐसे पांच भेद कहे हैं। मालूम होता है कि तारणस्वामीने आज्ञा और मार्गको ज्ञानमें, विस्तारको व्यवहारमें, अवगाढको अवगाहनमें, परमावगाढको प्रवचन केवलिमें गर्भित करके एक परम सम्यक्तका भेद बढ़ा दिया है।

इसमें कोई दोष नहीं है-वक्ताके कहनेकी अपेक्षा है-बात एक ही है। इस दश भेदोंसे भी एक निश्चय सम्यक्तको ही झलकाता है जो वास्तवमें आत्मानुभव रूप है। यह आत्मानुभव केवली भगवानमें परमावगाढ होता है। सिद्ध भगवानमें भेद रहित परम होता है। इनका स्वरूप आगे कहेंगे।

ज्ञान सम्यक्त।

ज्ञानं ज्ञान सरूवं, ज्ञानं तजंति मिच्छ संजुत्तं।
संसार सरनि तिक्तं, ज्ञानेन ज्ञान अप्प सद्भावं ॥ ५५१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं) ज्ञान सम्यग्दर्शन (ज्ञान सरूवं) ज्ञान स्वरूप है (मिच्छ संजुत्तं ज्ञानं तजंति) जहां मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानका त्याग है (संसार सरनि तिक्तं) जो संसारके मार्गसे बाहर है (ज्ञानेन ज्ञान अप्प सद्भावं) जहां ज्ञानके द्वारा ज्ञानमई आत्माका स्वभाव अनुभवमें आरहा है।

भावार्थ—आत्माके स्वरूपका ज्ञान रागादि रहित भीतर झलक जानेसे जो सम्यक्त हो वह ज्ञान द्वारा प्राप्त सम्यक्त है। किसी भी कारणसे चाहे परोपदेशसे या पूर्व जन्मके स्मरणसे, वेदनाको भोगते हुए जिन महिमा आदिको देखते हुए या देवोंकी ऋद्धि देखते हुए जो अपने आत्माका परसे भिन्न बोध होजावे उसे आत्माका ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञानके द्वारा कुछ काल तक मनन करनेसे जब अनंतानुबंधी कषाय तथा मिथ्यात्व कर्मका उपशम होगा तब उपशम सम्यक्त होगा। इस अपेक्षा इसे ज्ञान सम्यक्त कह सक्ते हैं। सम्यग्दर्शनके जगनेपर मिथ्यात्वका अंधेरा नहीं रहता है। संसारके मार्गसे हटकर मोक्षके मार्गमें चलना प्रारंभ होजाता है। स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा निज आत्माका अनुभव होजाता है।

ज्ञानं सुद्ध सहावं, रागादि दोस सयलविरयंमि।
विरयं असुद्ध भावं, अप्पा परमप्प ज्ञान संजुतं ॥ ५५२ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं ज्ञानं) जहां शुद्ध आत्माके स्वभावका ज्ञान हो (रागादि दोस सयल विरयंमि) सर्व रागादि दोषोंसे विरक्त भाव प्राप्त होगया हो (विरयं असुद्ध भावं) अशुद्धोपयोग न रहा हो (अप्पा परमप्प ज्ञान संजुतं) आत्मा परमात्माके ज्ञानमें तन्मय हो वही ज्ञान सम्यक्त है।

भावार्थ—रागादि रहित, द्रव्यकर्म रहित, शरीर रहित, केवल एक अपने आत्मद्रव्यका बोध परमात्मारूप होकर शुद्ध भावमें जहां रमणता हो वही ज्ञान सम्यक्त है।

उपदेश सम्यक्त।

उवएसं संसुद्धं, सुद्धं अप्पान अप्पनो सुद्धं।
सुद्धं जिने हि कहियं, सुद्धं सम्मत्त सुद्ध उवएसं ॥ ५५३ ॥

अन्वयार्थ—(संसुद्धं उवएसं) जहां शुद्ध या निर्दोष तत्वोंका उपदेश प्राप्त हो (सुद्धं अप्पान अप्पनो सुद्धं) शुद्ध आत्माको अपने आत्माके बलसे शुद्ध अनुभवकी रीति बतलाई गई हो (जिने हि कहियं सुद्धं) जिनेन्द्रके कथनके अनुसार शुद्ध बोध प्राप्त हुआ हो। इसतरह उपदेश द्वारा (सुद्धं सम्मत्त) आत्मानुभवरूप निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त हो वह (सुद्ध उवएसं) निश्चय उपदेश सम्यक्त है।

भावार्थ—जहां परसे उपदेश मिलनेपर सम्यक्त होजावे वह उपदेश सम्यक्त है। किसीने यह समझा था कि श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंका उपदेश इस प्रकार है—आत्मा अनात्माका बोध बताकर आत्माको परसे भिन्न जानकर अनुभव करनेका उपाय बताया। इस बातको दूसरेके उपदेशसे समझकर जो आत्माका भेदविज्ञान द्वारा मनन करते हुए अनन्तानुबन्धी व मिथ्यात्वको उपशम करके सम्यक्त हो वह उपदेश सम्यक्त है। वास्तवमें सम्यक्त एक ही प्रकार है। यहां कारणके कुछ अन्तरसे भिन्न २ नाम देकर समझाया है। उपदेशकी मुख्यतासे हो वह उपदेश सम्यक्त है।

सुद्धं जिन उत्त परं, असुद्ध तिक्त च सव्वहा सव्वे।
सुद्धं उद्देस ज्ञानं, चरनं जिन उवएस उत्तं च ॥ ५५४ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त परं सुद्धं) जिनेन्द्र कथित परम शुद्ध तत्त्वको जाने (सव्वहा सव्वे असुद्ध तिक्तं च) सर्वथा सर्व अशुद्ध तत्वकी श्रद्धाको त्याग देवें (सुद्धं उद्देष ज्ञानं) जहां शुद्ध आत्म-स्वरूप प्राप्तिके उद्देश्यका ज्ञान हो (चरनं) तथा उसी आत्म-स्वरूपमें चारित्र हो वही (जिन उवएस उत्तं) जिनेन्द्र कथित उपदेश सम्यक्त कहा गया है।

भावार्थ—परके उपदेश द्वारा यथार्थ अपने आत्माको सर्व रागादि रहित जान लेवें। जो आत्मा नहीं है उसको आत्मा न माने। शुद्ध तत्वोंकी श्रद्धा लावे, अशुद्ध तत्वोंकी श्रद्धा न करे तथा यह ध्येय बनाले कि मुझे परमात्मपदकी प्राप्ति करनी है। इस तरह दृढ़ श्रद्धा सहित मनन करते हुए जब स्वरूपाचरण चारित्रमई आत्मानुभव प्राप्त हो तब ही यथार्थ उपदेश सम्यक्तका लाभ कहा जायगा।

सुद्धं च सुद्ध ज्ञानं, असुद्धं संसार सरनि युक्तस्य ।
सुद्धं परमप्पानं, उवएसं सुद्धं सम्मतं ॥ ५५५ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध ज्ञानं च सुद्धं) जहां शुद्ध आत्माका यथार्थ ध्यान है वही शुद्ध ध्यान है (असुद्धं संसार सरनि युक्तस्य) रौद्रध्यान या मिथ्यात्व या संसार सुखकी कामना सहित ध्यान जहां न होकर अशुद्ध संसार मार्गके भ्रमण करानेवाले परिणामोंसे जहां मुक्ति हो (सुद्धं परमप्पानं) शुद्ध परमात्माका जहां अनुभव हो वही (उवएसं सुद्ध सम्मतं) उपदेश निश्चय सम्यक्त है।

भावार्थ—निश्चय सम्यक्त वास्तवमें आत्मानुभवरूप या आत्मध्यान स्वरूप है। संसार वर्द्धक निदानभाव रहित केवल अपनेको शुद्ध करनेके अभिप्रायसे जहां शुद्ध आत्माका ध्यान किया जावे—आपको परमात्मारूप अनुभव किया जावे वही निश्चय उपदेश सम्यग्दर्शन है।

अर्थ सम्यग्दर्शन ।

अर्थंति अर्थ सुद्धं, सम सम्मत्त दंसनं सुद्धं ।
अर्थं समय ति अर्थं, उवएसं अर्थ सम्मत्तं ॥ ५५६ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं अर्थ अर्थति) जहां शुद्ध पदार्थकी प्राप्तिका प्रयोजन हो (सम) समताभाव हो (सुद्धं सम्मत्त दंसनं) पचीस दोष रहित निर्मल सम्यग्दर्शन हो (ति अर्थ समय अर्थं) तीन पदार्थ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र सहित आत्मारूपी पदार्थपर लक्ष हो वही (अर्थ सम्मत्तं उवएसं) अर्थ सम्यग्दर्शन कहा गया है।

भावार्थ—अर्थ पदार्थको भी कहते हैं, प्रयोजनको भी कहते हैं। इस कारण वही अर्थ सम्यक्त है जहां शुद्ध आत्मीक पदार्थके लाभका उद्देश्य हो। आत्मा स्वभावसे रत्नत्रयमई है। जहां राग-द्वेष छोडकर समताभाव प्राप्त किया जाता है वहीं आत्माका अनुभव जाग्रत होता है, वहीं निश्चय अर्थ सम्यक्त है ऐसा अभिप्राय है।

अर्थं अप्प सरूवं, अनर्थं अज्ञान मिच्छ विरयंमि।
अनेय अनर्थं भावं, तिक्तंति जे ज्ञान सहकारं ॥ ५५७ ॥

अन्वयार्थ—(अर्थं अप्प सरूवं) प्रयोजनभूत आत्माका स्वरूप है (अनर्थं अज्ञान विरयंमि) अहितकारी अज्ञान है उससे विरक्त होकर (जे) जो कोई (ज्ञान सहकारं) ज्ञानकी सहायतासे (अनेय अनर्थं भावं तिक्तंति) नानाप्रकार संकल्प विकल्परूप निरर्थक भावोंको त्याग देते हैं वे ही अर्थ सम्यक्तका आराधन करते हैं।

भावार्थ—आत्माके शुद्ध स्वरूपके अनुभवमें ही कर्मोंकी निर्जरा होती है व मोक्षका लाभ होता है। इसीको ही प्रयोजनभूत अर्थकारी समझना अर्थ सम्यक्त है। संसारमें भ्रमण करानेवाले मिथ्याज्ञान तथा रागद्वेषादि सर्व ही पर पदार्थोंमें सन्मुख होनेवाले भाव हैं। ये सर्व आत्माके मोक्षरूप अर्थको नाश करनेवाले अनर्थकारी भाव हैं। जो साधु इन सब अनर्थ भावोंको त्याग करके निज आत्माके श्रद्धान ज्ञान व चारित्रमें तन्मय होजाते हैं वे ही अर्थ सम्यक्तको पालते हैं।

अर्थं ज्ञानसरूवं, तिलोयं त्रिभुवन ति अर्थ संसुद्धं।
विंदस्थं विंदंतो, सुद्धं सरूवं ति अर्थ सम्मत्तं ॥ ५५८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानसरूवं अर्थं) ज्ञान स्वरूपमें रहना अर्थ है। (तिलोयं त्रिभुवन ति अर्थ संसुद्धं) तीन लोकके भीतर तीन भुवन सम्बन्धी सर्व पदार्थोंको यथार्थ जानकर श्रद्धान करना तथा (विंदस्थं विंदंतो)

ॐ मंत्रमें बिंदुके स्थानमें श्री सिद्ध परात्माको अनुभव करना या (सुद्ध सरूवं ति) शुद्ध स्वरूपमें रमना (अर्थ सम्मत्तं) अर्थ सम्यक्त है।

भावार्थ—आत्माका सत्य कार्य अपने ज्ञान स्वरूपमें तिष्ठना है, इसीका श्रद्धान अर्थ सम्यक्त है, या तीन लोक सम्बन्धी जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इन छः द्रव्योंको यथार्थ जानकर श्रद्धान करना अर्थ सम्यक्त है। या सिद्ध परमात्माको जानकर उनको भावोंमें भजना अर्थ सम्यक्त है या निज शुद्ध स्वरूपका अनुभव करना अर्थ सम्यक्त है।

बीज सम्यक्त।

बीजं च ज्ञान सुद्धं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं।
चरनं दुविहि सहावं, सहकारे तव सुद्ध वीयंमि ॥ ५५९ ॥

अन्वयार्थ—(बीजं च सुद्धं ज्ञान) मोक्षका बीज शुद्ध आत्मज्ञान है (ज्ञान दंसन समग्गं सुद्धप्पा) ज्ञान दर्शनसे पूर्ण शुद्ध आत्मा है ऐसा जानना (दुविहि सहावं चरनं) दो प्रकार व्यवहार तथा निश्चय चारित्र पालना (तव सहकारे सुद्ध वीयंमि) या तप साधना यह शुद्ध आत्मज्ञानमई बीजके लिये सहकारी है।

भावार्थ—आत्मज्ञानमई सम्यक्तको बीज सम्यक्त कहते हैं। अनन्त दर्शन व अनन्त ज्ञानसे पूर्ण शुद्ध आत्माको जानना व श्रद्धान करना। तथा व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय चारित्र पालना व बारह प्रकारका तप करना ये सब आत्मज्ञान या आत्मानुभवको पैदा करनेवाले हैं। आत्मानुभव ही मोक्षका मार्ग है, या बीज है। जहां बीजका पक्का श्रद्धान हो वही बीज सम्यक्त है। या श्रद्धापूर्वक आत्माका आत्मामें लय होना सो ही बीज सम्यक्त है।

देव गुर धम्म सुद्धं, मिथ्या कुज्ञान सयल विरयंमि।
संसार सरनि विरयं, वीयं सम्मत्त सुद्धमप्पानं ॥ ५६० ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं देव गुर धम्म) निर्दोष वीतराग देव, निर्ग्रंथ गुरु व अहिंसा धर्मका श्रद्धान करना (मिथ्या कुज्ञान सयल विरयंमि) मिथ्या देव, गुरु धर्मसे व सर्व मिथ्या तत्वज्ञानसे विरक्त होजाना (संसार

सारंनि विरयं) संसारके भ्रमण करानेवाले कर्मबंधसे विरक्त होजाना (सुद्धप्पानं सम्मत्त बीयं) शुद्ध आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शनका बीज है।

भावार्थ—वास्तवमें निश्चयसे शुद्ध आत्माका अनुभव करना ही बीज सम्यक्त है, इसकी प्राप्तिका साधन सच्चे देव, गुरु, धर्म व तत्वोंका श्रद्धान करना है व तत्वोंका मनन करना व संसारके कारण कर्मबंधसे व कर्मबंधके कारणोंसे उदास रहना व भेद विज्ञानका अभ्यास करना है। ये सर्व निश्चय सम्यक्तके बीज हैं।

संक्षेप सम्यक्त।

संषेप सुद्धमप्पं, सुयं षिपति नंत संसारे।
कम्ममल षिपति भावं, ज्ञान सहावेन सुयं संक्षेपं ॥ ५६१ ॥

अन्वयार्थ—(संषेप सुद्धमप्पं) संक्षेप सम्यक्त शुद्ध स्वरूपमय है (सुयं नन्त संसारे षिपति) जिसके प्रतापसे स्वयं अनन्त संसार छूट जाता है (कम्ममल भावं षिपति) कर्ममलको बांधनेवाला भाव दूर होजाता है (ज्ञान सहावेन सुयं संक्षेपं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठना ही स्वयं संक्षेप है। अर्थात् भलेप्रकार परभावोंका निवारण है।

भावार्थ—यहां निश्चयनय प्रधान संक्षेप सम्यक्तका कथन है कि जहां आत्मा अपने शुद्धोपयोगमें रमण करता है वहां स्वयं ही अनन्त संसार नहीं रहता है। क्षायिक सम्यक्त एक तीन या चौथे भवमें मुक्ति प्रदान कर देता है। तथा जिन शुभ या अशुभ भावोंसे कर्मबंध होता है वे भाव भी छूट जाते हैं। ज्ञानीका सर्व राग द्वेषादि भावोंसे रहित होकर अपने ज्ञान स्वभावमें तन्मय रहना ही वास्तवमें पर भावोंको व द्रव्यकर्मोंको भलेप्रकार हटानेवाला भाव है।

दंसन ज्ञान सहावं, अप्प सहावेन सुद्ध सद्भावं।
सुद्धं सुद्ध सरूवं, सम्मत्तं सुद्ध ममल संषेपं ॥ ५६२ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञान सहावं) दर्शन ज्ञान स्वभावमई (अप्प सहावेन सुद्ध सदभावं) आत्माके स्वरूपके

अनुभव द्वारा शुद्ध उपयोगमें तिष्ठना (सुद्धं सुद्ध सरूवं) परम शुद्ध स्वरूपमें एकाग्र होना (सुद्धं अमल संषेपं सम्मतं) शुद्ध निर्दोष संक्षेप सम्यक्त है

भावार्थ—आत्माका स्वभाव दर्शन ज्ञानमय है, रागादि रूप नहीं है। इस स्वभावको श्रद्धान, ज्ञानमें लाकर उसी स्वरूप आप होजाना-अर्थात् सर्व संकल्प विकल्प छोडकर-सर्व मोह ममता हटाकर-सर्व शुभ व अशुभ भाव टालकर शुद्धोपयोगमें जमजाना ही निर्दोष निश्चय संक्षेप सम्यग्दर्शन है। यह सम्यक्त कर्मईंधनको जलानेके लिये ध्यानरूपी अग्नि उत्पन्न कर देता है, परम उपादेय है।



सूत्र सम्यक्त।

सूत्रं सुद्ध सहावं, संसूत्रं सास्वतेन चेयनाभावं।
विकहा वसन असूत्रं, संसारे सरनि सयल विरयंमि ॥५६३॥

अन्वयार्थ—(सूत्रं सुद्ध सहावं) शुद्ध स्वभावमें लिपटे रहना सूत्र सम्यक्त है (सास्वतेन संसूत्रं चेयनाभावं) सदासे अपने आत्माके साथ भलेप्रकार गंठा हुआ व चला आया हुआ चेतनाभाव है (विकहा वसन असूत्रं) चार विकथा व सात व्यसनोंका जहां कोई सूत्र या धागा या सूत नहीं है। (संसारे सरनि सयल विरयंमि) इसलिये सर्व संसारके मार्गसे विरक्त है।

भावार्थ—सूत्र नाम धागेका है, वेष्टनेका है, नियमसे रहनेका है। सूत्र सम्यक्त यह है कि श्रद्धापूर्वक अपने ही शुद्ध नित्य ज्ञानचेतना रूपी भावोंमें लिपटे रहना-तन्मय रहना, वहां स्त्री, भोजन, देश, राजा कथा सम्बन्धी कोई भाव व जूआ आदि सात व्यसन सम्बन्धी कोई भाव नहीं रखना। इन विभावोंका एक तंतु मात्र भी वहां नहीं रहना। ऐसा शुद्ध सम्यग्दर्शन सर्व संसारके कारण कर्ममैलको टालनेवाला है, सीधा मोक्षमार्ग है

सूत्रं जं जिन कहियं, तं सूत्रं सुद्ध भाव संकलियं।
असूत्रं नहु पिच्छादि, सूत्रं ससरूव सुद्ध मप्पानं ॥५६४॥

अन्वयार्थ—(सूत्रं जं जिन कहियं) जो जिनेन्द्रके द्वारा कहा गया है वही सूत्र सिद्धांत है (तं सूत्रं

सुद्ध भाव संकलियं) वह सूत्र शुद्ध भावोंसे पूर्ण है (असुत्रं नहु पिच्छदि) वहा कोई सिद्धांत विरुद्ध वात नहीं देखी जाती है (सुत्रं ससरूवं सुद्धमप्पानं) इस सिद्धांतका सार अपने ही शुद्ध आत्माके स्वरूपमें रमण करना है, यही सूत्र सम्यक्त है।

भावार्थ—अर्हंत भगवान द्वारा प्रगट दिव्यध्वनिके अनुसार गणधर देवादिने द्वादशांग वाणीके सूत्र रचे हैं। उनमें शुद्ध सत्य तत्वोंका स्वरूप है, उनमें कोई वात ऐसी नहीं है जो असत्य हो। इस सर्व द्वादशांग वाणीका सार अपने ही शुद्ध आत्माको सर्व द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नोकर्म रहित श्रद्धानमें लाकर परम एकाग्रतासे अनुभव करना है। यह स्वात्मानुभव ही वास्तवमें सूत्र सम्यक्त है। यही सिद्धांतका सार है व यही नियमसे सूत्ररूप मोक्षका मार्ग है।

व्यवहार सम्यक्त।

ववहारं सम्मत्तं, देवगुर सुद्ध धम्म संजुत्तं।
दंसन ज्ञान चरित्तं, मलमुक्कं ववहार सम्मत्तं ॥ ५६५ ॥

अन्वयार्थ—(ववहारं सम्मत्तं) व्यवहार सम्यग्दर्शन यह है कि (देव गुर सुद्ध धम्म संजुत्तं) निर्दोष शुद्ध देव, गुरु तथा धर्मका श्रद्धान किया जावे तथा (मलमुक्कं दंसन ज्ञान चरित्तं) दोष रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र मय भावका अनुभव किया जावे सो (ववहार सम्मत्तं) व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—जहां विस्तारसे भेदरूप पदार्थोंको जान करके शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त किया जावे सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। निर्दोष देव श्री अर्हंत वीतराग भगवान हैं, निर्दोष गुरु तेरा प्रकार चारित्र पालनेवाले निर्ग्रंथ गुरु हैं, निर्दोष धर्म वीतराग विज्ञानमय अहिंसा धर्म है। निश्चयनयसे विचार किया जावे तो शुद्ध आत्मा ही देव है, शुद्ध आत्मा ही गुरु है, शुद्ध आत्माका स्वभाव ही धर्म है। आत्मा निश्चयसे रत्नत्रय स्वरूप है। सम्यक्त, ज्ञान, चारित्र तीनों ही आत्माके गुण हैं। इसीसे शुद्ध आत्माका अनुभव ही व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

ज्ञानेन ज्ञान दिट्ठं, कुज्ञानं मिच्छ असुह विरयंमि ।
विरयं सुह असुहं च, ववहारं सुद्धमप्पानं ॥ ५६६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन ज्ञान दिट्ठं) ज्ञानके द्वारा ज्ञानका अनुभव करना (कुज्ञानं मिच्छ असुह विरयंमि) मिथ्याज्ञान, मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या आचरणसे विरक्त होना (सुह असुहं च विरयं) तथा शुभ अशुभ मन वचन कायकी प्रवृत्तिसे विरक्त होना (सुद्धमप्पानं) शुद्ध आत्मा रूप होजाना (ववहारं) व्यवहार सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान व चारित्रको छोडकर व सर्व शुभ व अशुभ भावोंको त्यागकर शुद्धोपयोग रूप परिणमन करना-निजात्माके स्वाभाविक आनन्दका स्वाद लेना व्यवहार सम्यक्त है ।

अवगाढ सम्यक्त ।

अवगाहन संमत्तं, अवगहइ अंग पुव्व वित्थरणं ।
अवगहै सुद्ध भावं, सुद्धं च असुद्ध विवरीदो ॥ ५६७ ॥

अन्वयार्थ—(अवगाहन संमत्तं) अब अवगाढ सम्यग्दर्शनको कहते हैं । जो (अंग पुव्व वित्थरणं अवगहइ) ग्यारह अंग चौदा पूर्वके विस्तारको जाने फिर (सुद्धं भावं अवगहै) शुद्ध आत्मिक भावको जानकर (असुद्ध विवरीदो) अशुद्ध भावोंसे विपरीत (सुद्धं च) शुद्ध भावका ही अनुभव करे सो अवगाढ सम्यक्त है।

भावार्थ—द्वादशांग वाणीको समझकर श्रुतकेवलीके जो शुद्ध अवगाढ सम्यग्दर्शन होता है वह अवगाढ सम्यक्त है । यहां सर्व अशुद्ध भावोंका त्याग है व शुद्ध स्वरूपका ही ग्रहण है ।

अवगहइ सुद्ध ज्ञानं, आरति रौद्रं च सयल विवरीदो ।
अवगहइ अप्प अप्पं, सम्यक्दंसनं च अवगहनं ॥ ५६८ ॥

अन्वयार्थ—(आरति रौद्रं च सयल विवरीदो) सर्व आर्त तथा रौद्रध्यानसे हटकर (सुद्ध ज्ञानं अवगहइ)

जो शुद्ध ध्यानको अवगाहन करता है (अप्प अप्पं अवगहइ) आपसे आपको ग्रहण करता है (अवगहनं च सम्यक्‌दंसनं) वही अवगाढ़ सम्यग्दर्शनको धारता है।

भावार्थ—परिणामोंको संक्लेशित करनेवाले आर्त तथा रौद्रध्यान हैं इन दोनों ध्यानोंको छोड़-कर जो धर्मध्यानमें तिष्ठकर अपने ही आत्माके द्वारा अपने आत्माका अनुभव करता है वही अवगाढ़ सम्यक्तका धारी है।

पदस्तं पिंडस्तं, रूवस्तं रूवतीत ज्ञानस्थं।
अवगहै धम्म सुक्कं, अवगाहन ज्ञान ज्ञान संमत्तं ॥ ५६९ ॥

अन्वयार्थ—(पदस्तं पिंडस्तं) जो कोई पदस्थ ध्यान, पिंडस्थ ध्यान (रूवस्तं रूवतीत ज्ञानस्थं) रूपस्थ ध्यान तथा रूपातीत ध्यानमें ठहरा हुआ (धम्मं सुक्कं अवगहै) धर्म तथा शुक्लध्यानको अवगाहन करता है सो ही (अवगाहन ज्ञान ज्ञान सम्मत्तं) अवगाहन ज्ञानका ध्यान रूप सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—धर्मध्यानके चार भेद श्री ज्ञानार्णव ग्रन्थमें कहे हैं, वहांसे इनका विशेष स्वरूप जानना योग्य है। यहांपर कुछ संक्षेप स्वरूप लिखा जाता है।

पिंडस्थ ध्यान—पिंड अर्थात् शरीर उसमें स्थित आत्माका ध्यान सो पिंडस्थ ध्यान है। इसकी पांच धारणाएं हैं-पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और तत्व रूपवती।

(१) पृथ्वी धारणा—मध्य लोकके समान क्षीर समुद्रका चिंतवन करै उसके मध्यमें जंबूद्वीप समान एक लाख योजन चौडा ताए हुए सुवर्णके समान एक हजार पत्तेका कमल विचारे, उसके मध्यमें सुमेरु पर्वतके समान पीतरंगकी कर्णिकाको विचारे, सुमेरुपर्वतके ऊपर पांडुकवनमें पांडुक शिलापर स्फटिक मणिका सिंहासन सोचे, उसपर अपनेको पद्मासन बैठा हुआ विचार करै कि मैं कर्मोंके नाशके लिये बैठा हूं। ऐसा वारवार विचारना पार्थिवी धारणा है। जब इसका अभ्यास होजावे तब अग्नि धारणाका अभ्यास करै।

(२) अग्नि धारणा—उसी सिंहासनपर बैठा हुआ अपने नाभिस्थानमें भीतर सोलह पत्तेका सफेद कमल विचार करै, उसके १६ पत्तोंपर पीतरंगके अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ, ए ऐ, ओ औ, अं अः ऐसे १६ स्वरोंको विचारें। फिर उस कमलके मध्यमें हैं विचार करे इसीकी सीधमें

हृदय स्थानपर औंधा आठ पत्तोंका एक कमल ज्ञानावरणादि आठ कर्मकी स्थापना रूप विचार करैं। हँ की रेफसे धूआं निकला फिर अग्नि निकली। लौ बढी और आठ कर्मके कमलको जलाने लगी। वही लौ उस कमलके मध्यमेंसे ऊपरको गई। मस्तक पर जाकर उसकी एक एक लाइन दोनों तरफ शरीरके नीचेको गई और फिर वे दोनों एक लाइनसे मिल गई। अर्थात् शरीरके तीन तरफ त्रिकोण मंडल बन गया ऐसा सोचे। फिर इस मंडलके भीतर तीनों कोनोंपर ॐ र्‍ और बाहरके तीनों कोनोंपर स्वस्तिक 卐 अग्निमय विचारे। त्रिकोणकी तीन लाइनोंको रररररर अक्षरोंकी बनी हुई अग्निमय विचारे। इस तरह सोचे कि भीतरी अग्नि आठ कर्मको व बाहरी अग्नि शरीरको जला रही है। दोनोंकी जलकर राख होरही है। जब दोनों जलकर राख होगए तब अग्नि जहांसे उठी थी वहां समा गई। इस अग्नि धारणाका बारबार अभ्यास करनेसे ऐसा झलकता है कि मानो कर्म जल रहे हैं और मैं शुद्ध होरहा हूं।

(३) वायु धारणा—उसी तरह बैठा हुआ सोचे कि मेरे चारों तरफ बडे वेगसे पवन घूम रही है। इसका एक मण्डल बन गया है जिसमें कई जगह स्वाय स्वाय लिखा है। यह मण्डल घूमता हुआ कर्मरूपी रजको उडाता है और आत्माको शुद्ध करता है।

(४) जलधारणा—उसी स्थानपर बैठा हुआ सोचे कि मूसलधार पानी बरस रहा है, आत्मा पर एक अर्द्ध-चन्द्राकार पानीका मंडल बन गया है, इसपर पानीका बीजाक्षर प प प प प प लिखा हुआ है। यह जलवृष्टि आत्माके मैलको छुडानेवाली है।

(५) तत्वरूपवती धारणा—अब यह सोचे कि मेरा आत्मा सिद्ध सम शुद्ध होगया है। यथार्थ तत्वमें होगया है। (१) यही पिंडस्थ ध्यान है।

(२) पदस्थध्यान—मस्तकपर, भौंहोंके मध्यमें, नासिकाके अग्र भागपर आदि किसी भी स्थानपर मंत्रपदोंको विराजमान करना व उनके द्वारा पांचपरमेष्ठी व आत्माका चिंतवन करना। वे मंत्रपद हैं-ॐ, ह्रीं, श्रीं, सोहं, अर्हं आदि।

(३) रूपस्थध्यान—अरहंतके स्वरूपको विचार करके आत्माका ध्यान करना। समवसरणको याद कर लेना कि बारह सभाएं लगी हैं, भगवान अंतरीक्ष सिंहासनपर विराजमान हैं। दिव्यध्वनि

होरही है। भगवान पद्मासन हैं व ध्यानमग्न हैं, उनके आत्माको विचार कर अपने आत्माको उसरूप ध्याना।

(४) रूपातीत ध्यान—एकदमसे सिद्ध भगवानको विचार कर उनके स्वरूपमें अपने आपको जोड़ देना।

इन चार प्रकारके धर्मध्यान द्वारा आत्मध्यान होता है तथा श्रेणीपर चढ़नेसे शुक्लध्यान होता है। इस तरह धर्मध्यान व शुक्लध्यानके प्रतापसे आत्माको अवगाढ़ रूपसे ध्याना अवगाढ़ सम्यक्त परम कल्याणकारी है।

प्रवचन केवलि सम्यक्त।

प्रवचने केवलिनं, जं उत्तं केवलि नन्त दिष्टि संदिट्ठं।
तं वयन सुद्धं वयनं, असुद्ध वयनं पि सयल विवरीदो ॥ ५७० ॥

अन्वयार्थ—(केवलिनं प्रवचने) केवली भगवानकी दिव्यध्वनिमें (जं उत्तं) जो कहा गया है ऐसा प्रवचन केवलि सम्यक्त है (केवलि नन्त दिष्टि संदिट्ठं) जिसको केवली भगवानने अपनी अनन्त दर्शनकी दृष्टिसे अनुभव किया है (तं वयन सुद्ध वयनं) उनका वह वचन शुद्ध सम्यक्तका झलकानेवाला है (असुद्ध वयनं पि सयल विवरीदो) जो सर्व अशुद्ध वचनोंसे रहित है।

भावार्थ—केवली भगवानको जिस सम्यक्तका अनुभव है वह परमावगाढ़रूप प्रवचन केवली सम्यक्त है। यहां आत्माका प्रत्यक्ष अनन्त दर्शन व अनन्त ज्ञानके द्वारा दर्शन है। इसके पहले अमूर्तीक आत्माका परोक्ष श्रुतज्ञानके बलसे दर्शन था। उनकी दिव्यध्वनिसे जैसा उसका प्रकाश होता है वैसा प्रकाश अल्पज्ञानी नहीं कर सक्ते हैं। उनकी ध्वनिमें कोई दोष नहीं है, वह यथार्थ सम्यक्तको प्रगट करनेवाला है।

जं केवलि उवएसं, तं वयनं शुद्ध सार्धं निश्चय।
तं आलाप चवंतं, जं केवल ममल केवलं सुद्धं ॥ ५७१ ॥

अन्वयार्थ—(जं केवलि उवएसं) जो केवली भगवानने उपदेश दिया है (तं वयनं सुद्धं साद्धं निश्चय) वह वचन शुद्ध भावको लिये हुए है व वही निश्चय है, ठीक है (जं केवलं अमल केवलं सुद्धं) जो सम्यग्दर्शन परसे भिन्न निर्मल बिलकुल शुद्ध है (तं आलाप चवंतं) वही उनकी ध्वनिसे प्रकाशित होता है।

भावार्थ—केवली भगवान द्वारा कहा हुआ सम्यग्दर्शनका स्वरूप वही है जैसा उनके अनुभवमें प्रत्यक्ष आत्माका दर्शन है। उनके ज्ञानमें आत्मा आत्मारूप सर्व परद्रव्योंसे भिन्न एकाकार परम शुद्ध अमूर्तीक प्रत्यक्ष दिखलाई पडता है। क्योंकि आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन सिवाय केवलज्ञानके और कोई ज्ञान नहीं कर सक्ता है। मति श्रुत दो ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं, इन्द्रिय तथा मन द्वारा होते हैं। अवधि मनःपर्यय रूपी पदार्थ मात्रको प्रत्यक्ष जानते हैं। एक केवलज्ञान ही ऐसा है जो मूर्तीक अमूर्तीक सबको प्रत्यक्ष जानता है। जैसा निर्मल परमावगाढ सम्यग्दर्शन केवलीको है, वही प्रवचन केवलि सम्यक्त है, जो उनके वचनों द्वारा प्रकाशित होता है।

परम सम्यक्त।

परमं सम्मत्त उत्तं, परमं ज्ञानस्स परम भत्तीए।
परमं परमप्पानं, अप्पा परमप्प कवलं सुद्धं ॥ ५७२ ॥

अन्वयार्थ—(परमं सम्मत्त उत्त) उत्कृष्ट सम्यग्दर्शनको कहा जाता है। (परम भत्तीए परमं ज्ञानस्स) जो श्रेष्ठ भक्तिके साथ श्रेष्ठ ध्यानधारीके होता है। (परमं परमप्पानं) यह श्रेष्ठ सम्यक्त परमात्माके होता है। (अप्पा परमप्प केवलं सुद्ध) यह आत्मा परमात्मारूप केवल शुद्ध होता है।

भावार्थ—परम सम्यग्दर्शन आत्माका निर्मल एक स्वाभाविक गुण है। यह गुण श्री सिद्ध भगवानमें जैसाका तैसा प्रकाशमान है। आठों कर्मोंके वियोग होनेसे शरीर न रहनेसे; मन, वचन, काय न रहनेसे सिद्धात्मा परम शुद्ध आत्मारूप हैं। उनके भीतर सर्व गुण परम शुद्ध झलक रहे हैं। परम ध्यान शुक्लध्यान है। चौथे शुक्लध्यानके प्रतापसे सर्व कर्म जब झड़ जाते हैं तब आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है। उनके भीतर जो सम्यग्दर्शन गुण है वही परम सम्यक्त है।

परमं परमप्पानं, अप्प सरूवं च सुद्ध मप्पानं ।
रागादि दोस विरयं, झानं झायंति परम सम्मत्तं ॥ ५७३ ॥

अन्वयार्थ—(परमं परमप्पानं) श्रेष्ठ परमात्मा श्री सिद्ध भगवानके (अप्प सरूवं च सुद्ध मप्पानं) आत्माका स्वरूप शुद्ध आत्मारूप है वे (रागादि दोष विरयं झानं झायंति) रागादि दोष रहित वीतराग ध्यानमें तल्लीन हैं । (परम सम्मत्तं) उनहींके परम सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवानका आत्मा आत्माके यथार्थ स्वभावमें प्रकाशमान है । वे हलन-चलन रहित निश्चल समुद्रकी तरह परम वीतरागता सहित आप ही आपमें मगन हैं । कोई भी कारण आत्मस्वभावसे अन्यथा होनेका नहीं है । उनके भीतर सर्व गुण अपने स्वभावमें कल्लोल कर रहे हैं, वहीं परम सम्यग्दर्शन भी है ।

सम्मत्तं उवएसं, दहविहि संमत्त अप्प अप्पानं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ५७४ ॥

अन्वयार्थ—(दहविहि सम्मत्तं उवएसं) इस तरह दश प्रकार सम्यग्दर्शन कहा गया है (अप्प अप्पानं संमत्तं) आपसे आपको आप रूप श्रद्धान करना सम्यक्त है (अप्पा सुद्धप्पानं) यह आत्मा शुद्ध आत्माको प्रतीति व ज्ञान सहित अनुभव करता हुआ (परमप्पा लहै निव्वानं) अर्हंत परमात्मा होकर फिर निर्वाणको प्राप्त करता है । अर्थात् सिद्ध परमात्मा होजाता है ।

भावार्थ—भिन्न २ अपेक्षासे सम्यग्दर्शनके दश भेद कहे गए हैं । वास्तवमें सम्यग्दर्शन अपने आत्माकी परसे भिन्न निर्मल गाढ प्रतीतिको कहते हैं । जो भव्यजीव इस प्रतीति सहित निजात्माको ध्याता है वह चार घातीय कर्मोंको काटकर अर्हंत परमात्मा होजाता है फिर वही चारों अघातीय कर्मोंको भी नाशकर सिद्ध परमात्मा होजाता है ।

श्री आत्मानुशासनमें दश प्रकार सम्यक्तका स्वरूप नीचे भांति है—

आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञयैव । त्यक्तग्रन्थप्रपंचं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशांतेः ॥
मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता । या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः ॥ १२ ॥

भावार्थ—केवल वीतराग भगवानकी आज्ञासे ही तत्वोंपर जो रुचि होजाय सो आज्ञा सम्यक्त है ॥ १ ॥ दर्शन मोह कर्मके शांत होनेसे सर्व परिग्रह रहित कल्याणकारी मोक्षमार्गका श्रद्धान हो जाना सो मार्ग सम्यक्त है ॥ २ ॥ जो सम्यक्त तीर्थंकरादि श्रेष्ठ पुरुषोंके चरित्रके उपदेश द्वारा उत्पन्न हुआ हो उसे आगमके ज्ञाता आचार्योंने उपदेश सम्यक्त कहा है ॥ ३ ॥

आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः । सूक्तासौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः ॥
कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद्बीजदृष्टिः पदार्थात् । संक्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान्साधुसंक्षेपदृष्टिः ॥ १३ ॥

भावार्थ—मुनियोंके चारित्रको बतानेवाले आचार सूत्रको सुनकर जो उत्पन्न हो वह सूत्र सम्यग्दर्शन है ॥ ४ ॥ गणित आदिके प्रकाशक करणानुयोगके ज्ञानके लिये जो बीज या मूल नियम कहे गए हैं, उनमेंसे कुछ नियमोंके जाननेसे तथा मोहकी अतिशय शांतिसे जो सम्यक्त हो, वह बीज सम्यक्त है ॥ ५ ॥ पदार्थोंको संक्षेप रूपसे जाननेपर ही जो तत्वोंमें यथार्थ रुचि हो वह संक्षेप सम्यक्त है ॥ ६ ॥

यः श्रुत्वा द्वादशांगीं कृतरुचिरथ तं विद्धि विस्तारदृष्टिं । संजातार्थात् कुतश्चित् प्रवचनवचनान्यंतरेणार्थदृष्टिः ।
दृष्टिः सांगांगबाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता यावगाढा । कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा ॥ १४ ॥

भावार्थ—सर्व द्वादशांगको सुनकर जिसके तत्व रुचि हो, वह विस्तार सम्यक्त है ॥७॥ किसी पदार्थके देखनेसे व अनुभवनेसे तथा किसी शास्त्रके वचन अनुभवनेसे जो सम्यक्त हो वह अर्थ सम्यक्त है। ॥ ८ ॥ बारह अंग व अंगबाह्य सर्व श्रुतज्ञानके ज्ञानसे जो श्रुतकेवली अवस्थामें सम्यक्त हो वह अवगाढ सम्यक्त है ॥ ९ ॥ केवलज्ञानके द्वारा पदार्थोंको जाननेपर जो रुचि हो, सो परमावगाढ सम्यग्दर्शन है ॥१०॥ वास्तवमें सम्यक्त एक आत्माका अवक्तव्य गुण है। जब आत्मानुभूति होती है, तब सम्यक्तका होना अवश्य सिद्ध है। आत्मानुभवके कालमें ही भाव निक्षेपरूप सम्यक्त है। यही निश्चय सम्यक्त है। इसका स्वरूप समयसार कलशमें श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं—

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः । पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः पृथक् ।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम् । तन्मुक्त्वा नवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥ ६ ।

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनयसे एक स्वभावमें निश्चल, पूर्णज्ञान घन, अपने गुणोंमें व्याप्त, ऐसे

निज आत्माको सर्व द्रव्योंसे भिन्न देखना ही सम्यग्दर्शन है। यही नियमसे आत्मा है। व यह आत्माके सर्वांशमें व्यापक है। जितना बडा आत्मा है, उतना सम्यक्दर्शन है। इस लिये नव तत्वोंकी परिपाटीको छोडकर हमें एक आत्मा ही प्राप्त हो।

इससे सिद्ध है कि जहां आत्मामें तन्मयता है, वहां ही सम्यग्दर्शनका राज्य है। आत्माका ज्ञान केवलज्ञानमें तो प्रत्यक्ष होता है। किन्तु श्रुतज्ञानमें आत्माका ज्ञान परोक्ष शास्त्रके अर्थके बोधसे होता है। अतएव अरहन्त व सिद्धभगवानका सम्यक्त विशद है-बहुत साफ है वैसा शास्त्र द्वारा आत्माका अनुभव स्पष्ट नहीं होता है। इसी ही सम्यक्तके दश भेद कहे गए हैं। प्रयोजन यह है कि हमें जिसतरह बने सम्यक्तका लाभ करना चाहिये।

बारह अविरत त्याग।

पंच इंद्री संवरनं, रागं दोसं च विषय संवरनं।
मन नरपति संवरनं, थावर रक्षा च संयमं सुद्धं ॥ ५७५ ॥

अन्वयार्थ—(पंच इंद्री संवरनं) पांचों इंद्रियोंको रोकना, (रागं दोषं च विषय संवरनं) राग द्वेष व विषयवासनाको रोकना, (मन नरपति संवरनं) मनरूपी इंद्रियोंके राजाको रोकना, (थावर रक्षा च संयमं सुद्धं) स्थावर त्रस जीवोंकी रक्षा करना शुद्ध संयम है।

भावार्थ—बारह प्रकार अविरत भावको त्यागकर अर्थात पांच इंद्रिय तथा मनकी स्वच्छंद प्रवृत्तिको और पांच स्थावर और त्रस छः प्रकारके प्राणियोंकी हिंसाको त्यागकर जो राग द्वेषादि विभावोंसे छूटकर निज आत्मामें संवर रूप व संयम रूप रहना सो ही बारह अविरत त्याग है।

जिह्वा स्वाद त्याग।

जिह्वा स्वाद असुद्धं, स्वादं पंचभेय विरयंमि।
विरयं असुद्ध भावं, स्वादं पंचज्ञान ममल विस्तरनं ॥ ५७६ ॥

अन्वयार्थ—(जिह्वा स्वाद असुद्धं) जबानका स्वाद अशुद्ध स्वाद है। (पंचभेय स्वादं विरयंमि) वह पांच भेदरूप स्वाद है। उससे विरक्त होकर (असुद्ध भावं विरयं) व अशुद्ध भावोंको त्यागकर (पंचज्ञानं ममल विस्तरनं स्वादं) पंचम केवलज्ञानका निर्मल विस्तार रूप स्वाद लेना जिह्वा स्वाद त्याग है।

भावार्थ—जिह्वा इंद्रिय बडी ही चंचल है। उसीके कारणसे और इंद्रियोंमें प्रवृत्ति होती है! इसलिए आत्म ज्ञानीको खट्टा, मीठा, चर्परा, तीखा, कषायला ऐसे पांच रसोंके अशुद्ध स्वादका मोह त्यागना चाहिये। क्योंकि यह पर द्रव्य पुद्गलका स्वाद है, आत्मरससे भिन्न है। रागभावके कारण ही पुद्गलके स्वादका स्वाद आता है। तथा इस स्वादसे कभी तृप्ति नहीं होती है। ज्ञानीको उचित है कि वह निज आत्माके निर्मल अनंत ज्ञानका स्वाद ले। जिसमें सर्व जगतके गुण पर्याय प्रतिबिम्बित होते हैं। ऐसा आत्माका अपूर्व सहज ज्ञान है। इसीका स्वाद ही शुद्ध स्वाद है। आत्म रस ही शुद्ध रस है।

कुज्ञान वयन तिक्तं, कुच्छिय आलाप मिच्छ विरयंमि।
वयनं जिन उवएसं, सुद्ध सरूवं च वयन उवएसं ॥ ५७७ ॥

अन्वयार्थ—(कुज्ञान वयन तिक्तं) जिह्वाको खोटे वचनोंके स्वादसे भी बचना चाहिये। इसलिये तारणस्वामी कहते हैं—मिथ्याज्ञानको पुष्ट करनेवाले वचनोंको त्याग करना चाहिये (कुच्छिय आलाप मिच्छ विरयंमि) कुत्सित आलाप, अनर्थकारी वातचीत व मिथ्या कथासे विरक्त रहना चाहिये (जिन उवएसं वयनं) जिनेन्द्रने जो धर्मका उपदेश किया है उसीका पोषक वचन कहना चाहिये (सुद्ध सरूवं च वयन उवएसं) तथा शुद्ध आत्म-स्वरूपको पुष्ट करनेवाले वचनोंका ही उपदेश करना चाहिये।

भावार्थ—जिह्वासे जैसे रसका स्वाद लिया जाता है वैसे वचनोंको भी उच्चारण किया जाता है। इसलिये जिह्वाको इसतरह वशमें रखना चाहिये कि इससे मिथ्याज्ञानका संसार-वर्द्धक उप-

देश न हो न यह वृथा वार्तालाप करे न स्त्री कथा, भोजन कथा आदि विकथाओंकी चर्चा की जावे। मौन रहना ही उचित है, यही तत्त्व ज्ञानीका गौरव है। यदि कभी कुछ कहना पडे तो श्री जिनेन्द्रके उपदेशके अनुसार वचन कहे। तथा शुद्ध आत्माकी तरफ प्रेरणा करनेवाले वचन कहे। यह भी जिह्वा इंद्रियके स्वादका त्याग है। वृथा आलाप करनेकी बुरी आदत जबानको पड जाती है उस स्वादको त्यागना भी संयम है।

असुद्धं न चवंतो, रागादि दोस असत्य विरयंमि।
इन्द्री विरय अतींद्री, अतींद्री ज्ञान स्वाद स सहावं॥ ५७८॥

अन्वयार्थ—(असुद्धं न चवंतो) अशुद्ध वचन न बोलना (रागादि दोस असत्य विरयंमि) रागादि दोषोंसे व मिथ्या आलापसे विरक्त होना (इन्द्री विरय अतींद्री) पांच इन्द्रियोंसे रहित अतीन्द्रिय आत्मापर लक्ष्य देकर (स सहावं अतींद्री ज्ञान स्वाद) अपने स्वाभाविक अतीन्द्रिय ज्ञानका स्वाद लेना जिह्वा स्वाद त्याग संयम है।

भावार्थ—वास्तवमें जिह्वाका संयम यही है जो मौन रहकर इन्द्रियोंके विषयके रसका मोह छोडकर अपने आत्माका अनुभव करते हुए अतीन्द्रिय आत्म-जन्य स्वाभाविक आनन्द रसका स्वाद लिया जावे। तथा यदि कुछ कहना पडे तो वीतरागता वर्द्धक वचनोंको ही कहे। यही तत्वज्ञानीका जिह्वा स्वाद संयम है।

स्पर्शन इन्द्रिय त्याग।

सरसन इन्द्रि असुद्धं, मयमत्त अबंभ भाव विरयंति।
विरयं परिनाम असुद्धं, सुद्धं भावं च अतींद्रियं सुद्धं॥ ५७९॥

अन्वयार्थ—(सरसन इंद्रि असुद्धं) स्पर्शन इन्द्रियकी चाह अशुद्ध भावोंको रखनेवाली है इसलिये ज्ञानी (मयमत्त अबंभ भाव विरयंति) मदमत्त कुशीलके भावसे विरक्त हो जाते हैं (असुद्धं परिनाम विरयं)

अशुद्ध भावोंको त्याग देते हैं (अतींद्रिय सुद्धं सुद्धं भावं च) अपने आत्माके अतीन्द्रिय परम शुद्ध भावमें ही रमण करते हैं। यही स्पर्शन इन्द्रिय विषय त्याग है।

भावार्थ—स्पर्शन इन्द्रियका राग कुशील भोगको पैदा करके काम भावकी तीव्र लालसा पैदा कर देता है। प्राणी इस कुशील भावकी तीव्रतासे उन्मत्त होजाता है। फिर नानाप्रकारके अशुद्ध भावोंमें रातदिन रमा करता है। इसलिये तत्वज्ञानी इस इंद्रियके अनर्थकारी भावका सर्व राग छोड देते हैं। काम भाव रूपी रोगको स्पर्शन इंद्रियके भोगसे अमिट जानते हैं किंतु रोगवर्द्धक जानते हैं। इसी लिये परम संतोष देनेवाले आत्म जनित अतीन्द्रिय रसके स्वादी होकर शुद्ध भावमें ही रमण करते हैं वे सर्व स्त्री मात्रकी इच्छाको छोडकर निज आत्मानुभूति रमणीका ही रमण करते हैं। यही शुद्ध भाव मोक्ष साधक है। स्पर्शन इंद्रियका लोभ संसार वर्द्धक है।



घ्राण इन्द्रिय त्याग।

घ्रानेंद्री गंध सुगंधं, संसारे सरनि घ्रान विरयंमि।
घ्रानं अप्प सहावं, सुद्धं स सरूव घ्रान अति इन्द्री ॥ ५८० ॥

अन्वयार्थ—(घ्रानेंद्री गंध सुगंधं) घ्राण इन्द्रिय दुर्गंध तथा सुगंधको लेकर रागद्वेष पैदा करती है। इसलिये (संसारे सरनि घ्रान विरयंमि) संसारके मार्गमें पटकनेवाली घ्राण इंद्रियकी चाहसे विरक्त होकर तत्वज्ञानी (अप्प सहावं घ्रानं) आत्माके स्वभावकी गन्ध लेते हैं (सुद्धं ससरूव घ्रान अतिइन्द्री) शुद्ध आत्म स्वरूपकी गन्ध अतीन्द्रिय सुखका स्वाद लेना है।

भावार्थ—तत्वज्ञानी घ्राण इंद्रियके विषयको रोगवत् अतृप्तिकारी जानते हैं। अशुद्ध राग-भावको बढानेवाला जानते हैं इस लिए घ्राण इंद्रियके विषयसे विरक्त होकर वे ज्ञानी निज आत्माको पर द्रव्योंसे भिन्न जानकर उसीमें तन्मय होकर अतींद्रिय आनन्दका स्वाद लेते हैं। घ्राण इंद्रियके विषयका त्याग कर देते हैं।

चक्षुइन्द्रिय त्याग।

दिट्ठदि असुद्ध भावं, दिट्ठदि पंचवरन असुह अवियारं।
तिक्कंति भाव असुहं, दिट्ठदि सुद्ध दंसनं अमलं ॥ ५८१ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध भावं दिट्ठदि) चक्षुइन्द्रियका वशीभूत प्राणी अपने आत्माकी ओरसे विमुख हो अशुद्ध पुद्गल पदार्थोंको देखा करता है (पंचवरन असुह अवियार दिट्ठदे) पांच वर्णकी वस्तुओंको देखा करता है उनमें कोई तो विकार करनेवाली अशुभ होती है, कोई विकार नहीं करनेवाली शुभ होती है। परन्तु जो चक्षुइन्द्रियके अविरत भावसे विरक्त होते हैं व (असुहं भाव तिक्कंति) अशुद्ध भावको पैदा करनेवाली दृष्टिको त्याग देते हैं (अमल सुद्ध दंसनं दिट्ठदि) निर्मल शुद्ध सम्यग्दर्शनको ही अन्तरङ्गमें देखते हैं।

भावार्थ—वास्तवमें देखनेवाला ज्ञानोपयोग है। अशुद्ध ज्ञानोपयोगरूप मति ज्ञान चक्षुइन्द्रिय द्वारा वर्तन करता हुआ पर पदार्थोंके शुक्ल, रक्त पीत, नील काले रंगोंको देखनेमें उपयुक्त होता है। कभी तो उनको देखकर यह विकारी होजाता है। जैसे सुन्दर स्त्री, मकान आदि देखकर यह उसके भोगकी इच्छा करने लगता है। कभी मात्र देख लेता है विकार नहीं पैदा करता है। जैसे बाजारमें सैकड़ों वस्तुएं दीखती हैं। कुछेकमें इच्छा होती है, बहुतोंमें नहीं होती है। परन्तु यह ज्ञानोपयोग पर पदार्थकी ओर सन्मुख होकर अशुद्ध ही रहता है। तत्वज्ञानी महात्मा इस चक्षु-इन्द्रियके कार्यको रोक देते हैं और उस ज्ञानोपयोगको अपने भीतर अपनी शुद्ध आत्म-प्रतीतिमें लगा देते हैं। अर्थात् जैसा उन्होंने आत्माको शास्त्रके द्वारा व गुरुके द्वारा जाना था वैसा ही ध्यानमें लेकर उस आत्माका अनुभव करने लग जाते हैं, उपयोगको शुद्ध आत्मामें रमा देते हैं। यही आत्माका दर्शन है। इस तरह चक्षुइन्द्रियके विषयको जीतते हैं।

दिट्ठदि ज्ञान सहावं, दिट्ठदि ज्ञान पंच विज्ञानं।
दिट्ठदि चरन सरूवं, अप्पा परमप्प अतिन्द्रिया दिट्ठी ॥ ५८२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं दिट्ठदि) तत्वज्ञानी चक्षु इन्द्रियके विजयी अपने ज्ञान स्वभावी आत्माका

दर्शन करते हैं (दिट्ठदि ज्ञान पंच विज्ञानं) भेद विज्ञानके द्वारा पांचवें केवलज्ञान स्वरूप आत्माको देखते हैं (चरन सरूवं दिट्ठदि) तथा आत्माको चारित्र स्वरूप परम वीतराग देखते हैं (अप्पा परमप्प अतींद्रियां दिट्ठी) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करना ही अतीन्द्रिय दृष्टि कहलाती है।

भावार्थ—चक्षु इन्द्रियके विषयको निरोध कर अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टी जीव भेदविज्ञानके बलसे अपने ही आत्माको सर्व द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित परमात्मा स्वरूप देखते हुए व उसीको परम वीतराग स्वरूप अनुभव करते हुए अतीन्द्रिय दृष्टिके बलसे परमानन्दकी शोभाका लाभ पाते हैं। चक्षुइन्द्रिय आविरत भावसे विमुख हो निज स्वरूपमें ही तन्मय होजाना चक्षुइन्द्रियका विजयी होजाना है।

श्रोत्र इन्द्रिय त्याग।

स्रोत्रं स्रवन असुद्धं, सब्दं सप्तंमि असुद्ध विरयंमि।
सब्दं ज्ञान सरूवं, जिन उत्तं स्रवन सुद्ध सदहनं॥ ५८३ ॥

अन्वयार्थ—(स्रोत्रं असुद्धं स्रवन) श्रोत्र या कर्णइन्द्रियके द्वारा वर्तन करता हुआ यह प्राणी संसारमें मोह उत्पन्न कारक गाना बजाना, आलाप कथा आदि अशुद्ध शब्दोंको सुना करता है, इससे ज्ञानी जीव (सप्तंमि असुद्ध सब्दं विरयंमि) सात स्वररूप अशुद्ध शब्द मात्रके सुननेसे विरक्त होजाते हैं (जिन उत्तं ज्ञान सरूवं सब्दं स्रवन) जिनेन्द्र भगवान कथित ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले शब्दोंको सुनते हैं (सुद्ध सदहनं) और शुद्ध आत्माका श्रद्धान दृढ करते हैं।

भावार्थ—जगतके प्राणी ज्ञानोपयोगको कर्ण इन्द्रियके द्वारा वर्तन करके रागद्वेष वर्द्धक बहुतसी बातें, कथा, नाटक, गाना, बजाना सुनकर शब्दके सात भेदोंमें रंजायमान होजाते हैं। सा, रे, गा, मा, पद, नी, सा इन सात स्वरोंके सुननेके भीतर राग कर लेते हैं जिससे संसारका मोह बढा लेते हैं। ज्ञानी जीव इस तरहके शब्दोंके सुननेसे विमुख होकर श्री जिनेन्द्रकी पवित्र वाणी सुनते हैं जिससे तत्वज्ञान होता है व शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान दृढ होता है। भगवन्‌के ज्ञानामृत पूर्ण शब्दोंकी प्रेरणासे वे ज्ञानी जीव अपने ही शुद्ध स्वरूपमें अनुरक्त होकर सात स्वरोंके विषयोंसे रहित निजानन्द रसका भोग करते हैं।

असुद्ध सब्द तिक्तं, संसारे सरनि सब्द तिक्तंती ।
सब्दं सुद्ध असुद्धं, ज्ञानमयं सब्द सुद्ध अति इन्द्री ॥ ५८४ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध सब्द तिक्तं) ज्ञानी जीव सर्व अशुद्ध भावकारक शब्दोंको सुनना छोड देते हैं (संसारे सरनि सब्द तिक्तंती) संसार मार्गमें लेजानेवाले शब्दोंका श्रवण त्याग कर देते हैं (सब्दं सुद्ध असुद्धं) शब्द दो प्रकारके होते हैं-एक शुद्ध शब्द, एक अशुद्ध शब्द (ज्ञानमयं सब्द सुद्ध अतिइन्द्री) ज्ञान उत्पन्न करानेवाले शब्दोंको शुद्ध शब्द कहते हैं जिनके ऊपर चलनेसे अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव होता है व निजानन्दका लाभ होता है ।

भावार्थ—जिन शब्दोंके सुननेसे शुद्ध आत्माकी तरफ लक्ष्य न जाकर पुद्गल सम्बन्धी अशुभ व शुभ क्रिया करनेमें लक्ष्य जावे वे सब शब्द अशुद्ध हैं । क्योंकि उन शब्दोंके श्रवणसे उपयोग अशुभ या शुभ होगा जिससे पाप या पुण्यका बंध होजायगा । ज्ञानी जीव ऐसे शब्दोंके सुननेसे उपयोग हटाकर उन अध्यात्म रस गर्भित शब्दोंको सुनते हैं, जो ज्ञानमई अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव कराते हैं । इन शुद्ध शब्दोंके द्वारा शुद्ध ज्ञानका लाभ पाकर अपने शुद्ध आत्माके अनुभवमें मगन होजाते हैं । सात स्वरोंका राग त्यागकर अध्यात्म रसमें तन्मय होजाते हैं वही कर्ण इंद्रियके अविरत भावका त्याग है ।

पंचेन्द्रि संवरनं, पंचविय भाव विषय संवरनं ।
पुग्गल सुभाव विरयं, ज्ञान सहावेन-अतींद्रिया सव्वे ॥ ५८५ ॥

अन्वयार्थ—(पंचेन्द्री संवरनं) पांचों इन्द्रियोंको निरोध करना यही है जो (पंचविय भाव विषय संवरनं) पांचों ही इंद्रियोंके विषय सम्बन्धी सत्ताईस भावोंका राग छोड दिया जावे (पुग्गल सुभाव विरयं) पांचों इंद्रियोंके सर्व विषय पुद्गलमय हैं उन सर्व पुद्गलोंकी अवस्थाओंसे विरक्त हुआ जावे (ज्ञान सहावेन सव्वे अतींद्रिया) तथा ज्ञान स्वभावमें तिष्ठनेके द्वारा सर्वकी इंद्रियोंसे उपयोगको हटाकर अतींद्रिय होकर निज आत्मामें ही रमण किया जावे ।

भावार्थ—पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें उपयोग रमकर अव्रती होता हुआ यह जीव नानाप्रकार

पाप कर्मोंको बांध लेता हैं। और संसारके भ्रमणको बढ़ा लेता है। अतएव मुमुक्षु जीव इन पांचों अविरत भावोंसे विरक्त होकर सर्व पुद्गलोंके विलाससे विमुख होजाते हैं और अपने ज्ञानोपयोगको ज्ञान स्वभावी अतीन्द्रिय आत्मामें जोडकर अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेते हैं। यही पांच इन्द्रिय विजय संयम है।

मन नो इन्द्रिय त्याग।

पुग्गल विषयं जानदि, हलुवं गरुवं च रुक्ख चिक्कनयं।
तप्तं सीत सुभावं, कठिनं कोमल असुद्ध विरयंमि ॥ ५८६ ॥

अन्वयार्थ—(पुग्गल विषयं जानदि) यह मन पुद्गलके विषयोंको जानकर मनन करता रहता है व संकल्प विकल्प करता रहता है (हलुवं गरुवं च रुक्ख चिक्कनयं तप्तं सीत सुभावं कठिनं कोमल) स्पर्श इन्द्रियोंके द्वारा हलके, भारी, रुखे, चिकने, गर्म, ठण्डे, कठिन, कोमल पदार्थोंको जानकर (असुद्ध) अशुद्ध रागद्वेषमय भावोंमें मनन करता रहता है (विरयंमि) ऐसे मनसे विरक्त होजाना मनका संवर है।

भावार्थ—इन्द्रियोंके द्वारा जाने हुए विषयोंको याद न करके उनके सम्बन्धमें रागद्वेष वर्द्धक अनेक विचारोंको उत्पन्न करना मनका स्वभाव है। जैसे स्पर्श इन्द्रियके आठ विषयोंका विचार करता है वैसे अन्य चार इन्द्रियोंके विषयोंका भी विचार करता है। मैंने ऐसे रसीले पदार्थ खाए व ऐसे खाऊँगा व वे पदार्थ अच्छे नहीं बने थे। मैंने सुगन्ध बहुत अच्छी सूँघी व मैं सुगन्ध सूघूँगा, दुर्गंधसे बचूंगा। मैंने सुन्दर रूप देखे हैं व देखूँगा। असुन्दर रूप देखकर मनमें ग्लानि करना आज किसका रूप देख लिया। मैंने आज अच्छे २ गाने सुने हैं फिर भी मैं सुनूँगा इत्यादि। अशुद्ध विकल्पोंमें फँसकर अज्ञानी जीव कर्म बांध लेता है। ज्ञानी जीव इस मनकी चञ्चलताको संसार-वर्द्धक जानकर छोड देते हैं और अपने ज्ञानोपयोगको जो मनके द्वारा काम करता था, रोककर निज आत्मामें ही बिठा देते हैं। आत्मानन्दका स्वाद लेते हुए निज आत्मामें मगन रहना, मनके अविरत भावका त्याग है।

विज्ञानं जानंतो, हलुवं कम्मं विमुक्क संसारे।
गरुवं च कम्म भारं, तं विरयं सुद्ध ज्ञान सहकारं ॥ ५८७ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं जानंतो) जो मन भेद विज्ञानको जानता है वह (संसारे हलुवं कम्मं विमुक्क) संसारमें हलके कर्मोंसे अर्थात् राग द्वेष वर्द्धक कर्मोंसे विरक्त होजाता है (गरुवं च कम्म भारं) जो आत्मापर भारी कर्मोंका भार है (सुद्ध ज्ञान सहकारं तं विरयं) शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे उससे उदास होजाता है।

भावार्थ—भेद विज्ञानके द्वारा मन विचार करता है कि आत्माका यथार्थ स्वरूप परमात्माके समान शुद्ध निर्विकार है। राग द्वेषादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म सब इस आत्मासे भिन्न हैं। चार गतिरूप संसार आत्माको दुःखकारक है। मोक्ष ही हितकारक है। इस विचारसे यह मन सर्व सांसारिक कर्मोंसे व कर्मोंके बंधसे उदासीन होजाता है और यही दृढ निश्चय करता है कि निज शुद्ध आत्माके ज्ञानमें ही तल्लीन रहना योग्य है।

रूषन ज्ञान सहावं, चिक्कन घन कम्म सयल विरयंमि।
ज्ञान सहावं जानदि, असरीरं ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ५८८ ॥

अन्वयार्थ—(रूषन ज्ञान सहावं) रूखा अर्थात् वीतरागमय ज्ञान स्वभावरूप आत्माको जानकर जो (चिक्कन घन कम्म सयल विरयंमि) सर्व साचिक्कन कर्मोंसे विरक्त होजाता है और (असरीरं ज्ञान निम्मलं सुद्धं ज्ञान सहावं जानदि) मनन करता है कि आत्मा शरीर रहित ज्ञानाकार कर्ममल शून्य रागादि रहित शुद्ध है।

भावार्थ—मनका काम मनन करनेका है। राग द्वेषकी चिकनइसे कर्मोंका बंध होता है तथा वह बंध भी ऐसा गाढ होता है कि कर्म आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह रूप दूध पानीकी तरह मिलकर ठहर जाते हैं। विवेकी मन आत्माके स्वभावको वीतरागमय ज्ञानाकार परम निर्मल जानकर सर्व कर्मबंधकी रचनासे विरक्त होजाता है और आत्माके ज्ञान स्वभावका ही मनन करता है।

उन्हं च कम्म डहनं, सीयं संसार सयल भान तिक्तं च।
कठिनं परिनाम विलयं, कोमल परिनाम अप्प ससरूवं ॥ ५८९ ॥

अन्वयार्थ—मन विचारता है कि (उन्हं च कम्म डहनं) ध्यान अग्निकी उष्णता ही सची उष्णता है जो कर्मोंको दग्ध कर देती है (सीयं संसार सयल तिक्तं च) शीतलता वही यथार्थ है जो सकल संसारके कारण भावोंको गला देवे (कठिनं परिनाम विलयं) कठिनपना वही ठीक है जो कठोर हिंसक भावोंको दूर कर दिया जावे (कोमल परिनाम अप्प ससरूवं) कोमलताका परिणाम वही है जो आत्माके स्वभावमें तन्मय हुआ जावे।

भावार्थ—मनमें जब सम्यग्ज्ञान पैदा होजाता है तब यह मन विचारता है कि कर्मोंके दग्ध करनेको ध्यानकी अग्निकी जरूरत है, सर्व संसारके कारण विकारी भावोंको शमन करनेके लिये परम शीतल भावोंकी जरूरत है, कठोर हिंसक भावोंको हठात् पास न आने देनेके लिये भावोंमें स्थिरतारूप कठिनताकी जरूरत है। तथा कोमलताका भाव या मार्दव गुण आत्माके स्वभावमें तन्मय होनेसे ही होता है।

गुनदोसं विज्ञानं, जानदि ज्ञानेन दव्व पज्जायं।
विज्ञानं ज्ञान सहावं, असरीरं अमलअप्पनो सुद्धं ॥ ५९० ॥

अन्वयार्थ—मन (गुन दोसं विज्ञानं) पदार्थोंके गुण तथा दोषोंको जानता है (ज्ञानेन दव्व पज्जायं जानदि) ज्ञानके बलसे द्रव्योंको व उनकी पर्यायोंको जानता है (विज्ञानं ज्ञान सहावं असरीरं अमल अप्पनो सुद्धं) भेद विज्ञानके द्वारा ज्ञान स्वभावी शरीर रहित निर्मल आत्माको शुद्ध रूप जानता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान द्वारा यह मन छःद्रव्योंको, उनके गुणोंको, उनकी स्वाभाविक व विभाविक पर्यायोंको जानता है। सर्व रागादि भावोंको व नर नारकादि पर्यायोंको जानता है। अशुद्ध सब पर्यायोंको त्यागने योग्य जानकर एक आत्माके शुद्ध वीतराग ज्ञानानन्दमय स्वभावको ही ग्रहण योग्य जानता है। यह सर्व भेद विज्ञानकी महिमा है।

पुग्गल सुभाव जाने, संवरनं सव्वममल ज्ञानस्य।
तम्हा मन संजमनं, अप्पा परमप्प सुद्ध मन धरनं ॥ ५९१ ॥

अन्वयार्थ—(पुग्गल सुभाव जाने) पुद्गलके स्वभावको पर जानके (संवरनं) जो उससे अपनेको रोके (सव्वं अमल ज्ञानस्य) सर्व प्रकारसे निर्मल ज्ञानमें अपनेको जोडे यही मनका सदुपयोग है (तम्हा)

इसीलिये (अप्पा परमप्प सुद्ध मन धरनं मन संजमनं) परमात्म-स्वरूप आत्मामें शुद्धतापूर्वक मनको स्थिर करना ही मनका संयम है।

भावार्थ—मन मनन करते हुए भिन्न २ द्रव्योंके गुणोंको पहचानकर यह स्थिर करता है कि आत्माका स्वरूप परमात्मारूप निर्विकार है व रागादि सर्व कर्म पुद्गल कृत विकार है तब यह मन हेयसे हटकर उपादेयमें लग जाता है-ज्ञान स्वभावमें तन्मय होजाता है यही मनका संयम है।

मन संजमनं उत्तं, असुहं परिनाम सयल विरयंमि।
विरयं मिच्छ सुभावं, विरयं संसार सरनि दुक्खानं ॥ ५९२ ॥

अन्वयार्थ—(मन संजमनं उत्तं) मनका संयम उसे कहते हैं जो (असुहं परिनाम सयल विरयंमि) सर्व अशुभ भावोंसे विरक्त रहा जावे (मिच्छ सुभावं विरयं) मिथ्यात्वमय स्वभावसे दूर रहा जावे (संसार सरनि दुक्खानं विरयं) व संसारके भ्रमणके दुःखोंसे विरक्त रहा जावे।

भावार्थ—जहां मन सर्व मिथ्यात्वमय संसारासक्तिको छोड देता है-रागद्वेष मोहको संसारका कारण जानके उनसे विरक्त होजाता है-चारों गतिके भीतर जीवोंको अनेक शारीरिक तथा मानसिक दुःखोंकी प्राप्ति होती है ऐसा समझकर चारों गतिके वाससे उदासीन होता है। वहीं मनका संयम प्राप्त होजाता है।

रागादि दोस विरयं, विरयं ममत्त पुन्य पावं च।
परिनाम असुह विरयं, इंद्री विषयं च सव्व विरयं च ॥ ५९३ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि दोस विरयं) रागादि दोषोंसे विरक्त होजाना (पुन्य पावं च ममत्त विरयं) पुण्य पाप दोनोंकी ममतासे विरक्त होजाना (परिनाम असुह विरयं) सर्व अशुभ भावोंसे विरक्त होजाना (सव्व इंद्री विषयं च विरयं च) तथा सर्व ही इंद्रियोंकी इच्छाओंसे विरक्त होजाना मनका संयम है।

भावार्थ—जहां यह पक्का निश्चय कर लिया जावे कि रागादि भाव कर्मबंधकारक हैं व कर्मबंध संसारमें रुलानेवाला है। तथा पुण्य पाप दोनों ही प्रकारके बंध जीवकी स्वाधीनताके बाधक हैं, आत्मीक शुद्ध भावके सिवाय सर्व ही परिणाम जीवके अहितकारी अशुभ हैं। पांचों इंद्रियोंके

भोगोंकी अभिलाषा आत्मधर्मसे छुडाकर पर पदार्थोंमें भटकानेवाली और घोर आकुलताको उत्पन्न करनेवाली है वहां मन इन सबसे हटकर संयमरूप होजाता है।

रहयं सुद्ध सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं।
रहयं दंसन ज्ञानं, चरित्तं चरन रहय विविहं च ॥ ५९४ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्मा परमात्माके समान निर्मल और वीतराग है ऐसा जानकर (सुद्ध सहावं रहयं) शुद्ध स्वभावमें रंजायमान होना (दंसन ज्ञानं रहयं) आत्माके दर्शन ज्ञान स्वभावमें मगन होना (विविहं च चरितं चरन रहयं) तथा नानाप्रकार चारित्रके आचरणमें रुचिवान होजाना मनका संयम है।

भावार्थ—जहां मन परभावोंको पर जानकर आत्माको शुद्ध निर्विकार ज्ञानानन्दमय परमात्माके समान जानकर उस आत्मासे व उसके दर्शन ज्ञान स्वभावसे प्रेमी होकर उस आत्म-स्वरूपमें रमण करनेके लिये जो २ मुनि श्रावकके योग्य नानाप्रकार आचरण हैं उनके पालनमें रुचिवान होता है वहीं मनका संयम है।

सम्मत्त सुद्ध भावं, ज्ञान सहावेन विमल भावं च।
मलमुक दंसन धरनं, ज्ञानं वर्तेय मनं व संवरनं ॥ ५९५ ।

अन्वयार्थ—(सम्मत्त सुद्ध भावं) आत्माके शुद्ध स्वभावकी रुचि करना (ज्ञान सहावेन विमल भावं च) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर निर्मल भावोंका प्रेमी होजाना (मलमुक दंसन धरनं) पचीस मल रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन पालना (ज्ञानं वर्तेय) तथा ज्ञानमें ही लीन होजाना (मनं च संवरनं) यही मनका संवर है।

भावार्थ—जिसका मन संयमित होगा, जो मनके संकल्प विकल्पोंका विजयी होगा वह आत्माके शुद्ध ज्ञानानन्दमय स्वभावका रुचिवान होकर आत्मामें ही ठहरेगा और आत्म-रसका पान करेगा। वह सर्व दोष रहित आत्म प्रतीतिमय सम्यक्तको व आत्मानुभूतिरूप ज्ञानको ग्रहण योग्य मानके उसीमें वर्तेगा। वास्तवमें आत्मतल्लीनता प्राप्त करना ही मनका संवर है या मनका संयम है।

प्राण अविरत त्याग ।

थावर रष्या सहियं, असुहं भावं च सयल तिक्तं च ।
मैत्री कृपा स उत्तं, षट्काय रष्यना सुद्धं ॥ ५९६ ॥

अन्वयार्थ—(असुहं भावं च सयल तिक्तं च) सर्व ही हिंसाकारी अशुभ भावोंको त्यागकर (थावर रष्या सहियं) स्थावर प्राणियोंकी भी जहां रक्षा है (स मैत्री कृपा उत्तं) उसीको सर्व प्राणियोंपर मैत्री-भाव व दयाका भाव कहते हैं (षट्काय रष्यना सुद्धं) छहों कायोंकी रक्षा करना ही शुद्ध प्राण संयम है।

भावार्थ—सर्व प्राणीमात्र पर मैत्री भाव व दयाका भाव रखकर उनकी हिंसा करनेके पापमय भावोंको दूर कर देना तथा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक व त्रसकायिक इन छः प्रकारके प्राणियोंकी रक्षा करते हुए परम अहिंसामय शुद्ध भाव रखना प्राण अविरत त्याग है।

गुनवंतोय प्रमोदं, अवरे सव्वस्समित्ती कृपानं ।
सुद्ध सहावं पिच्छदि, षटकाई रष्यना हुंती ॥ ५९७ ॥

अन्वयार्थ—(गुनवंतोय प्रमोदं) गुणवानोंपर प्रमोद भाव रखना (अवरे सव्वस्स मित्ती कृपानं) तथा और सर्वके ऊपर मैत्री भाव या दयाका भाव रखना (सुद्ध सहावं पिच्छदि) तथा शुद्ध आत्मीक स्वभावका अनुभव करना (षट् काई रष्यना हुंती) छःकायके जीवोंकी रक्षा है ।

भावार्थ—जो धर्मात्मा हैं, शुद्ध स्वभावके रमण करनेवाले हैं, उनके ऊपर प्रसन्नभाव रखकर उनके गुणोंका अनुराग करना अपनेको शुभ भावोंमें रमण करानेका साधन है । उनके सिवाय सर्व ही त्रस व स्थावर प्राणियोंका सदा हित विचारना-उनपर करुणा भाव रखकर उनके प्राणोंको अपने प्राणोंके समान समझकर उनकी रक्षाका भाव रखना अथवा अपने ही शुद्ध आत्माके स्वभावमें रम जाना जिसमें स्वतः ही सर्व षट्कायके प्राणियोंकी रक्षा है, प्राण रक्षा संयम है ।

बारह अव्रत कहियं, सुद्धं भावं च अमल ज्ञान संवरनं ।
सुद्ध सरूवं पिच्छदि, ज्ञान सहावेन सयल संवरनं ॥ ५९८ ॥

अन्वयार्थ—(बारह अव्रत कहियं) इस तरह बारह प्रकार अविरत भाव कहा गया है (सुद्धं भावं च अमल ज्ञान संवरनं) उनको शुद्ध निर्मल ज्ञानमई भावमें तिष्ठकर रोकना चाहिये (सुद्ध सरूवं पिच्छदिं) जो कोई शुद्ध आत्मीक स्वभावका अनुभव करता है वह (ज्ञानसहावेन सयल संवरनं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर सर्व अविरत भावोंका निरोध कर देता है।

भावार्थ—पांच इंद्रिय व मनके संचारका निरोध इंद्रिय संयम है। षट्कायके प्राणियोंकी रक्षा प्राण संयम है। जहां शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण होता है वहां ही उभय प्रकारका संयम है वहीं बारह अविरत भावोंका त्याग है। निश्चयनयसे आत्मानुभव ही संयम है या बारह अव्रतोंका त्याग है।

तेरा प्रकार चारित्र।

तेरह विहस्य चरनं, महावय गुत्ति पंच तेनोया।
समिदी पंच विहूवं, चारित्तं उवएसनं तंपो ॥ ५९९ ॥

अन्वयार्थ—(तेरह विहस्य चरनं) तेरह प्रकारका साधुका चारित्र है (महावय गुत्ति पंच तेनोया) पांच प्रकारका महाव्रत, तीन प्रकारकी गुप्ति (पंच विहूवं समिदी , पांच प्रकारकी समिति (चारित्तं उवएसनं तंपो) इस चारित्रका भी उपदेश किया जाता है।

भावार्थ—अब यहां साधुके तेरह प्रकारके चारित्रका उपदेश किया जाता है जो पांच समिति रूप है।



पंच महाव्रत।

हिंसा नृत अस्तेयं, वंभं परिग्रहं पंच वय सुद्धं।
जे पालंति ति सुद्धं, चारित्तं चरन सुद्ध संजुत्तं ॥ ६०० ॥

अन्वयार्थ—(हिंसा नृत अस्तेयं) अहिंसा, सत्य, अस्तेय (बंभ परिग्रहं च पंच वय सुद्धं) ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पांच शुद्ध व्रतोंको (जे ति सुद्धं पालंति) जो मन वचन काय तीनोंको शुद्ध कर पालते हैं (चारित्त चरन सुद्ध संजुत्त) वेही शुद्ध चारित्रके आचरण करनेवाले हैं।

भावार्थ—ऊपर कहे प्रमाण जिनके बारह प्रकार अविरत भावोंका त्याग है वेही साधुके तेरा प्रकार चारित्रको शुद्धतासे पालते हैं। व्यवहार नयसे सर्व हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म व परिग्रहके ममत्वको त्याग देते हैं, निश्चय नयसे अपने शुद्ध आत्मस्वरूपमें लीन होजाते हैं। शुद्ध स्वरूपमें तन्मयता करना वास्तवमें पांच महाव्रतोंको यथार्थ पालना है।

हिंसा असत्य सहियं, अनृत ऋतं न जानदि सुद्धं।
स्तेयं पद लोयं, बंभं च अबंभ तिक्तं च ॥ ६०१ ॥

पर पुग्गल परमानं, पुग्गल ग्रहनं असेष संवरनं।
भाव दुतिय संजोय न, पिच्छंतो लहई निव्वानं ॥ ६०२ ॥

अन्वयार्थ—(हिंसा असत्य सहियं) हिंसा मिथ्यात्व सहित (अनृत ऋतं सुद्धं न जानदि) तथा असत्य सत्य शुद्ध आत्माको नहीं पहचानता है (स्तेयं पद लोयं) अपने आत्मीक पदको लोपकर पर पदमें (बंभं च तिक्तं च अबंभ) ब्रह्मचर्यको त्यागकर अब्रह्म भावको रखना कुशील है (पर पुग्गल परमानं) आत्मासे भिन्न शरीरादि पुद्गलोंको अपना मानना परिग्रह है। हिंसादिको त्यागकर पर पुद्गलको पर मानकर (असेष पुग्गल ग्रहनं संवरनं) सर्व पुद्गलके ग्रहणका निरोध करके (भाव दुतिय संजोय न पिच्छन्तो) जो अपने आत्मामें आत्माके सिवाय दूसरे भावका संयोग नहीं देखता है वही महाव्रती साधु (लहइ निव्वानं) निर्वाणको प्राप्त करता है।

भावार्थ—रागादि भाव हिंसा, द्रव्य प्राण पीडन द्रव्य हिंसा दोनों हिंसाओंका त्याग अहिंसा महाव्रत है। शास्त्र विरुद्ध भावोंका व वचनोंका त्याग करके सत्य शास्त्रोक्त विचारना व कहना सत्य महाव्रत है। पर वस्तुका ग्रहण त्याग करना। तथा निज आत्माके पदमें सन्तुष्ट रहना, पर पदमें न रमना अचौर्य महाव्रत है। मन, वचन, कायसे कुशील सेवनका त्याग तथा निज स्वरूपमय

आत्माको त्यागकर पर पदार्थमें रमणरूप अब्रह्मको त्यागकर निज ब्रह्म स्वभावमें रमना ब्रह्मचर्य है। सर्व वस्त्रादि परिग्रहका त्याग करके व शरीरादि सर्व पदार्थोंसे ममता त्याग करके परके संयोगसे रहित निज आत्माको ही अपना मानना, परसे मूर्छा त्यागना परिग्रह त्याग है। जो इस तरह पांच महाव्रतोंको पालता है वह आत्मध्यानमें लीन होकर शीघ्र ही मोक्षको पाता है। मिथ्यादर्शन सहित प्राणी पर पीडा देनेसे व असत्य भाषणसे ग्लानि रहित होजाता है, उसके कठोर भावमें शुद्ध आत्माका श्रद्धान नहीं जमता है। इसलिये मिथ्यात्वको त्याग सम्यक्ती होकर पांच व्रतोंको पालना चाहिये। साधु पूर्ण पालते हैं, गृहस्थी एक देश पालता है।

जं च महावय धरनं, तद्भव संसार कम्म विमुक्कं।
पुग्गल प्रमाण सुद्धं, अप्पा परमप्प लहइ निव्वानं ॥ ६०३ ॥

अन्वयार्थ—(जं च महावय धरनं) जो कोई इन पांच महाव्रतोंको व्यवहारके द्वारा निश्चय रूपसे पालन करता है; वह (तद् भव संसार कम्म विमुक्कं) उसी भवसे संसार वर्द्धक कर्मोंसे मुक्त हो जाता है। वह (अप्पा) आत्मा (पुग्गलप्रमाण सुद्धं परमप्प) अपने शरीर प्रमाण आकार धारी शुद्ध सिद्ध परमात्मा होकर (निव्वानं लहइ) निर्वाणको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—इन पांच महाव्रतोंकी पूर्ति सामायिक चारित्र द्वारा होती है। सामायिक स्वरूप निर्विकल्प समाधिमें लीन साधु पांचों हिंसादि पापोंसे बिलकुल छुटा हुआ धर्मध्यानकी उत्कृष्टताको जब पाता है, तब क्षपकश्रेणी चढकर शुक्लध्यानको ध्याता है। शुक्लध्यानसे शीघ्र ही चार घातीय कर्मोंका नाश कर केवलज्ञानी अरहंत परमात्मा हो जाता है। फिर शेष चार अघातीय कर्मोंका भी नाश कर सिद्ध परमात्मा होजाता है। और तब अंतिम शरीर प्रमाण आत्मा सिद्धावस्थामें अनंत कालके लिये लोकाग्र विराजमान रहता है। महाव्रतोंके पालनका फल निर्वाण है।

मनोगुप्ति।

मनगुत्ती उवएसं, मन असुहं च असुद्ध परदेसं।
मन परिनै तिक्कं च, मन सुद्धप्पा प्रवेस मिलियं च ॥ ६०४ ॥

अन्वयार्थ—(मन गुत्ती उवएसं) अब मन गुप्तिका उपदेश करते हैं (असुद्धं मन च असुद्ध परवेसं) अशुद्धोपयोग धारी मन आत्माको छोडकर अशुद्ध पुद्गलमें व पुद्गल जनित रागादि भावोंमें प्रवेश करता है (मन परिनै तिक्तं च) इस मनकी अशुद्ध परिणतिको त्यागकर (मन सुद्धप्पा प्रवेस मिलियं च) मनका शुद्धात्मामें प्रवेश कर जाना और मनका आत्मामें ही मिल जाना मनोगुप्ति है।

भावार्थ—यह मन आत्मासे बाहर बाहर शरीर व इन्द्रियोंके सुखोंमें व सुखके कारणीभूत पदार्थोंमें व सुखके कारणोंके घातक पदार्थोंके भीतर द्वेष करनेमें तथा स्वर्गादिके हेतु व्यवहार धर्ममें लगा रहता है। अथवा तत्वज्ञानी होकर भी अपना उपयोग सांसारिक कार्योंमें व व्यवहार धर्मके पालनमें लगाए रखता है।

यह मन जब इस अशुद्ध परिणतिको रोककर एक अपने ही शुद्ध आत्माके स्वाद लेनेमें प्रवेशकर जाता है तब यह मन ऐसा आत्मासे मिल जाता है कि मिलकर एकमेक होजाता है। वास्तवमें ज्ञानोपयोग आत्माकी परिणति है। वह उपयोग जब मनके द्वारा काम करता है तब संकल्प विकल्पके कारण कार्यके विचार उठते हैं व पदार्थोंका मनन होता है, आत्मा व अनात्माका भेद विचारमें आता है। वही ज्ञानोपयोग जब मनकी सम्मुखताको छोडकर अपने स्वामी आत्मामें लय होजाता है तब परिणति परिणामधारी आत्मासे एकमेक होजाता है। इसीको आत्मानुभव कहते हैं व यही यथार्थ मनोगुप्ति है। जहां मनको निज आत्माके स्वरूपमें गुप्त कर दिया जावे, लोप कर दिया जावे वहां ही मनोगुप्ति है।

जहं जहं मन परवेसं, तहं तहं ज्ञान किरन संचरियं।
गुपितस्य चरन सुद्धं, अप्पा परमप्प विमल एकत्वं ॥ ६०५ ॥

अन्वयार्थ—(जहं जहं मन परवेसं) तत्वज्ञानीका मन जहां जहां जिस जिस पदार्थमें जाता है (तहं तहं ज्ञान किरन संचरियं) वहां वहां ज्ञानरूपी किरणका संचार होजाता है जिससे ज्ञानी आत्माके सिवाय किसी द्रव्य, गुण पर्यायको अपना नहीं देखता है (गुपितस्य सुद्धं चरन) मनोगुप्ति धारक महात्माके ही शुद्ध आचरण होता है (अप्पा परमप्प विमल एकत्वं) उसीका ही आत्मा परमात्माके निर्मल स्वभावके साथ एकताको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—भेदविज्ञानी महात्मा निश्चयनयसे या द्रव्यार्थिक नयसे जगतको देखता है तब उसे छः द्रव्य भिन्न २ दिखलाई पडते हैं। ऐसे ज्ञानीका मन जब जगतकी पर्यायोंमें जाता है, शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, मकान, राज्यादिमें जाता है तब यह ज्ञानी उनको भेद विज्ञानसे विचारता है तब इसे पुद्गल पुद्गल रूप तथा आत्मा आत्मा रूप दीखता है। द्रव्य दृष्टिसे देखते हुए राग द्वेष नहीं उपजता है, बीतरागता जमी रहती है। इसतरह मनको शुद्ध कर ज्ञानी उसे शुद्ध आत्माके चारित्रमें लीन कर देता है। तब उसका आत्मा परमात्माके साथ एकमेक होकर स्वानुभव रूप होजाता है। यही यथार्थ मनोगुप्ति है।

तम्हा मन गुत्तीए, जम्हा सुद्ध ज्ञान स सरूवं ।
कम्मंधनानि डहनं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ६०६ ॥

अन्वयार्थ—(तम्हा मन गुत्तीए) इसीलिये मन गुप्ति रखना चाहिये (जम्हा) कि जिससे (सुध ज्ञान स सरूवं) शुद्ध ज्ञान अपने आत्म-स्वरूपका होजावे (कम्मंधनानि डहनं) कर्मरूपी ईंधनका जलना होजावे (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) तथा आत्मा परमात्माके समान निर्मल व शुद्ध होजावे।

भावार्थ—मनको सर्व संकल्प विकल्पोंसे हटाकर आत्माके शुद्ध स्वरूपमें जोडनेका अर्थात् आत्मध्यान करनेका यही प्रयोजन है कि कर्मोंके काष्ठको जला दिया जावे और आत्माको निर्मल करके परमात्मारूप कर दिया जावे। मनोगुप्ति ही आत्मानुभवकी सहायक है। आत्मानुभव ही मोक्षका मार्ग है।

वचन गुप्ति।

वयनं गुत्ति समासं, जं वयनं कहंपि नहु दिट्ठं ।
तं वयन भावलद्धी, जिन उवएसं समायरहिं ॥ ६०७ ॥

अन्वयार्थ—(वयनं गुत्ति समासं) वचन गुप्तिका यह संक्षेप स्वरूप है कि (जं वयनं कहंपि नहु दिट्ठं) जो वचनका प्रयोग कहीं भी न देखा जावे–मौन रहा जावे (तं वयन भावलद्धी) मात्र भाव वचनको प्राप्त किया जावे (जिन उवएसं समायरहिं) और जिनेन्द्रके उपदेशके अनुसार आचरण किया जावे।

भावार्थ—मौन रहकर कुछ भी प्रगट वचनोंका प्रयोग नहीं करना वचनगुप्ति है। केवल श्री जिनेन्द्रके अनुसार तत्वका विवेचन अंतरंगमें किया जासक्ता है। भावमें जिन वचनोंका मनन किया जासक्ता है। अथवा भाव वचनको भी रोककर आत्मानुभव करना वचनगुप्ति है, ये ही श्री जिनेन्द्रके अनुसार निश्चय चारित्रका पालन है।

वयनं सुद्ध सहावं, वयनं जं केवलज्ञान स सरूवं।
तं वयन गुत्ति जानदि, वयनं परवेस सुद्ध सम्मत्तं ॥ ६०८ ॥

अन्वयार्थ—(वयनं सुद्ध सहावं) जिन वचनके अनुसार जैसा कुछ शुद्ध स्वभाव आत्माका है (वयनं जं केवलज्ञान स सरूवं) जिन वचनके अनुसार जो कुछ केवलज्ञान मई निज स्वरूप है (तं वयन गुत्ति जानदि) उसको वचनगुप्ति धारके यह आत्मा अनुभव करता है (वयनं परवेस सुद्ध सम्मत्तं) वचन रुक करके उपयोग शुद्ध सम्यग्दर्शनमें प्रवेश कर जावे सोही वचनगुप्ति है।

भावार्थ—वचनोंको रोककर श्री जिनेन्द्रके वचनोंके अनुसार शुद्ध आत्माके स्वरूपको केवलज्ञान मय जानना तथा अनुभव करना। अर्थात् शुद्ध आत्मा मैं हूं इस प्रतीतिके अनुसार स्वरूपका ही आचरण करना। भाव निक्षेप रूप सम्यग्दर्शनका होजाना वचन गुप्ति है।

वयनं च अचल सुद्धं, वयनं भासेइ सुद्ध सम्मतं।
अवयनं च सहावं, अह वयनं च केवलं सुद्ध ॥ ६०९ ॥

अन्वयार्थ—(वयनं च अचल सुद्धं) भगवानका वचन यह है कि यह आत्मा निश्चल शुद्ध है (वयनं भासेइ सुद्ध सम्मत्तं) जिन वचन शुद्ध सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताता है (अवयनं च सहावं) आत्माका स्वभाव वचनोंसे रहित है (अह वयनं च केवलं सुद्धं) अथवा जिन वचन यह है कि यह आत्मा केवल शुद्ध स्वरूप है।

भावार्थ—भगवानकी दिव्यध्वनिसे यही प्रकाश हुआ है कि यह आत्मा हलन-चलन रहित निश्चल कर्मकलङ्क रहित व रागादि दोषोंसे शून्य परमात्मास्वरूप है। तथा यही प्रतीति स्वानुभवरूप होजाना निश्चल सम्यग्दर्शन है। यद्यपि जिन वचनोंसे यह प्रगट होता है कि यह आत्मा सर्व पर-

द्रव्योंके सम्बन्धसे रहित व सर्व गुण गुणीके भेदोंसे रहित अभेद एक रूप शुद्ध है तथापि उसका स्वरूप वचन अगोचर है। केवल वाणीके सुनने मात्रसे जाना नहीं जासक्ता है। जब उपयोगको वचनोंसे हटाकर व मनके विचारोंको रोककर भीतर निज आत्म-श्रद्धामें प्रवेश किया जायगा, तब ही निज आत्माका यथार्थ अनुभव होगा। यही वचन गुप्तिका फल है।

वय गुत्ती जं पिच्छदि, जानदि पिच्छेइ दंसनं सुद्धं।
वयनं पि सुद्ध ज्ञानं, वय गुत्ती चरन सुद्ध संजुत्तं ॥ ६१० ॥

अन्वयार्थ—(वय गुत्ती जं पिच्छदि) वचन गुप्ति जो कुछ देखती है वह (सुद्धं दंसनं जानदि पिच्छदे) शुद्ध सम्यग्दर्शनको देखती है व जानती है (वयनं पि सुद्ध ज्ञानं) अथवा वचन भी शुद्ध आत्माके ध्यानमें लवलीन होजाता है (सुद्ध चरन संजुत्तं वय गुत्ती) शुद्धात्मामें आचरण करना वचन गुप्ति है।

भावार्थ—वचनगुप्ति रखनेसे, उपयोग इधर उधर भ्रमण नहीं करता है। किन्तु वह मात्र शुद्ध सम्यग्दर्शन स्वरूप आत्माको ही देखता जानता है। वचनोंका प्रयोग बन्द होकर शुद्ध आत्माका ध्यान प्रगट होजाता है। वास्तवमें शुद्ध स्वरूपमें रमण करना ही वचनगुप्ति है। यदि कोई मौन है परंतु मनमें संसार सम्बन्धी विचार किया करें व पाप भाव घुमा करें तो वह सच्ची वचनगुप्ति नहीं है। स्वरूपमें आचरण करना ही यथार्थ वचनगुप्ति है।

कायगुप्ति।

काईगुत्ति विसुद्धं, कृत कारित विसुद्ध परिनामं।
कृतं च कम्म डहनं, कारित तं तिविह कम्म वित्रीदं ॥ ६११ ॥

अन्वयार्थ—(काईगुत्ति विसुद्धं) निर्मल कायगुप्तिका स्वरूप यह है कि (कृत कारित विसुद्ध परिनामं) विशुद्ध परिणामको किया भी जावे व कराया भी जावे अथवा कृत कारित भावोंसे रहित, क्रिया रहित शुद्ध परिणाम रक्खा जावे (कृतं च कम्म डहनं) तथा किये हुए या बांधे हुए कर्मोंका क्षय किया जावे (कारित तं तिविह कम्म वित्रीदं) अथवा कारित या कराए हुए कर्मोंसे वैराग्य रक्खा जावे तथा तीन प्रकार कर्मोंसे भिन्न शुद्ध आत्माका अनुभव किया जावे।

भावार्थ—शरीरको निश्चल एक आसनसे रखना व्यवहारमें कायगुप्ति है। यहां निश्चय नयकी प्रधानतासे कायगुप्तिका कथन है कि कायको रोककर ऐसा निश्चल आत्मध्यान किया जावे व उस ध्यानके द्वारा ऐसे निर्मल भाव किये जावें कि दूसरे प्राणी भी उस ध्यानकी मुद्राको देखकर वैसा ही ध्यान करने लग जावें अथवा जो कुछ कर्म स्वयं किये हुए हों व कराए हों उन सर्वसे रहित अपने भाव निर्मल किये जावें। भावोंमें कृत कारित कार्योंका विकल्प न किया जावे। तथा आत्म-ध्यानसे बांधे हुए कर्मोंका नाश किया जावे अन्यथा कार्य कराते हुए जो कर्मोंका बंध हुआ था उसका नाश किया जावे तथा भावकर्म रागादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि इनसे भिन्न शुद्ध आत्माके ध्यानमें कायको निश्चल रक्खा जावे सो कायगुप्ति है।

कृतं च सुद्ध ज्ञानं, ज्ञानं वचं कृतं मनः सुद्धं।
व्रत संजम तव यरनं, काया कृतं च सुद्ध सद्भावं ॥ ६१२ ॥

अन्वयार्थ—(कृतं च सुद्ध ज्ञानं) जहां शुद्ध आत्म-ध्यान किया जावे (मनः सुद्धं ज्ञानं वचं कृतं) मनको शुद्ध करके मतिश्रुत आदि पांचों ज्ञानोंको प्राप्त किया जावे (व्रत संजम तव यरनं) कायके द्वारा व्रत, संयम, तपका आचरण किया जावे (काया च सुद्ध सद्भावं कृतं) तथा कायको निश्चल रखकर शुद्ध आत्मिक भाव किया जावे सो काय गुप्ति है।

भावार्थ—कायको थिर रखके केवल श्वासको चढा लेनेको या प्राणायाम करनेको काय गुप्ति नहीं कहते हैं। किन्तु कायको निश्चल रखकर शुद्ध आत्माके ध्यानको कायगुप्ति कहते हैं। परिणा-मोंमें शुद्ध भाव रखकर यह भावना की जावे कि ज्ञान शुद्ध स्वरूपमें रहे, यही शुद्ध भावकी रमणता मतिश्रुत ज्ञानको बढाती है, अवधि व मनःपर्यय ज्ञान पैदा करती है। तथा केवलज्ञानके निकट तक ले जाती है। शरीरको निश्चल रखके हिंसादि पापोंसे विरक्त रहकर महाव्रत पालना व पांच इन्द्रिय व मनका व मनरूप इन्द्री संयम, षट्कायके प्राणियोंकी रक्षारूप प्राण संयम पालना व बारह तप साधना तथा शुद्ध आत्मामें निश्चल रहना काय गुप्ति है।

कारित सुद्ध उवएसं, जं कृत कारित जिनवरिं देहिं।
तं भाव सुद्ध करनं, कायगुत्ती च मुक्तिगमनं च ॥ ६१३ ॥

अन्वयार्थ—(कारित सुध उवएसं) स्वयं आत्मध्यान करते हुए दूसरोंसे आत्मध्यान करनेके लिये शुद्ध उपदेश देना (जं कृत कारित जिनवरिं देहिं) जैसा श्री जिनेन्द्रोंने या तीर्थंकरोंने स्वयं आत्मध्यान किया था और अपने उपदेशसे दूसरोंसे भी कराया था (तं भाव सुद्ध करनं) तथा अपने भावोंको शुद्धोपयोगमें लीन रखना (कायगुत्ती च मुक्तिगमनं च) कायगुप्ति है, यही मोक्षमें जानेका उपाय है।

भावार्थ—शरीरको निश्चल रखकर आत्मामें लीन होना काय गुप्ति है। इसको स्वयं पालना चाहिये व अवसर पाकर दूसरोंको भी इसका उपदेश करना चाहिये। तीर्थंकर भगवान स्वयं आत्मध्यान करके अरहंत होजाते हैं फिर जीवन पर्यन्त धर्मोपदेश देते हुए विहार करते हैं। इसी-तरह तत्वज्ञानी साधुओंका व श्रावकोंका भी कर्तव्य है। तथा शुभोपयोग और अशुभोपयोगको छोडकर शुभोपयोगमें तन्मय होना ही वास्तवमें काय गुप्ति है। यही मोक्षका साक्षात् उपाय है। यही कर्मोंको क्षय करनेवाला है। यही धर्मध्यान व यही शुक्लध्यान है। तत्वार्थसारमें कहा है—

योगानां निग्रहः सम्यग्गुप्तिरित्यभिधीयते। मनोगुप्तिर्वचोगुप्तिः कायगुप्तिश्च सा त्रिधा ॥ ४ ॥

तत्र प्रवर्तमानस्य योगानां निग्रहे सति। तन्निमित्तास्रवाभावात्सद्यो भवति संवरः ॥ ५-६ ॥

भावार्थ—मन, वचन, काय योगोंका भलेप्रकार रोकना गुप्ति कहलाती है। वह तीन प्रकार है-मनको वश करना मन गुप्ति है, वचनको वश करना वचन गुप्ति है, कायको वश करना काय गुप्ति है। योगोंके रोक लेनेपर आत्मामें प्रवर्तमान होते हुए, योगोंके निमित्तसे जो कर्मोंका आस्रव होता था वह बंद हो जाता है, उनका संवर होजाता है। वास्तवमें आत्मध्यानमय शुद्धोपयोग ही गुप्ति है, इससे संवर व निर्जरा दोनों होती है।

पंच समिति।

समिदी समदर्सीए, सम दंसन ज्ञान चरन समभावं।
सम अप्पा परमप्पा, सम्मत्तं सुद्ध समय दर्सीए ॥ ६१४ ॥

अन्वयार्थ—(समिदी समदर्सीए) समदर्शी होना समिति है (सम दंसन ज्ञान चरन समभावं) निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप होकर समता भावको पाना समिति है (सम अप्पा परमप्पा) आत्माको

परमात्माके समान अनुभव करना समिति है (समं सुद्ध समं दर्शनं) शुद्ध सम्यग्दर्शनके द्वारा आत्माका अनुभव करना समिति है।

भावार्थ—भलेप्रकार वर्तन करनेको समिति कहते हैं। इसी भावको लेकर यहां निश्चयनयसे कथन है कि रागद्वेष छोडकर समताभावमें रहना, जहां निश्चय रत्नत्रयकी एकता होकर सामायिक चारित्र प्राप्त होजावे। आत्मा व परमात्माका समान स्वभाव जाना जावे। आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय रहा जावे, सो समिति है।

ईर्यासमिति।

ईर्जासमिदि स उत्तं, ईर्ज भावेन दंसनं ज्ञानं।
चरनं पि थान सुद्धं, ति अर्थं ईर्ज पंच निव्वेदं ॥ ६१५ ॥

अन्वयार्थ—(ईर्जासमिदि स उत्तं) ईर्यासमिति उसे कहा गया है जो (ईर्जभावेन दंसनं ज्ञानं चरनं पि थान सुद्धं) समता या सरलभावसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमें चला जावे-शुद्ध स्थान जो आत्मा है उसमें रमण किया जावे (ति अर्थं ईर्ज पंच निव्वेदं) तीन पदार्थ रत्नत्रयको साम्यमार्ग द्वारा अनुभव करना ईर्यासमिति है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे चार हाथ भूमि आगे देखते हुए दिनमें रौंदी हुई प्राशुक भूमिपर चलना ईर्यासमिति है। यहां निश्चयसे कथन है कि रत्नत्रय स्वरूप निज आत्मामें सरल भावसे चलना, जिससे आत्मामें कर्मास्रवके कारण राग द्वेष न होने पावें ऐसी सम्हाल रखनी। अपने आत्माको हिंसासे बचाना। शुद्ध आत्माका अनुभव करना ही ईर्यासमिति है।

तत्त्वार्थसारमें कहा है—

मार्गोद्योतोपयोगानामालम्बनस्य च शुद्धिभिः। गच्छतः सूत्रमार्गेण स्मृतेर्या समितिर्यतेः ॥ ७-६ ॥

भावार्थ—जिनधर्मको प्रकाश करनेके उपयोगको धारनेवाले साधुका मन वचन काय तीनोंकी शुद्धता पूर्वक सूत्रके अनुसार गमन करना ईर्यासमिति है।

ॐ वंकारं ह्रियंकारं, श्रियं कारं ति अर्थ संजुत्तं ।
पदार्थं पदविंदं, ईर्जभावेन दर्सए मग्गं ॥ ६१६ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वंकारं ह्रियंकारं श्रियं कारं) ॐ ह्रीं श्रीं इन तीन मंत्र पदोंमें (ति अर्थ संजुत्तं) तीनों रत्नत्रय पदार्थ गर्भित हैं (पदविंदं पदार्थं) ॐ पदमें जो बिंदु है उससे शुद्ध पदार्थ या सिद्ध परमात्माका बोध होता है (ईर्जभावेन मग्गं दर्सए) सरलभावसे ऐसे आत्माके आराधनरूपी मार्गको देखना या अनुभव करना ईर्यासमिति है ।

भावार्थ—ईर्या समितिपर निश्चयनयसे चलनेवाले साधुका कर्तव्य है कि वह ॐ ह्रीं श्रीं मंत्रोंके द्वारा निश्चय रत्नत्रय स्वरूप सिद्ध परमात्माके समान अपने ही आत्माका ध्यानमग्न हो आराधन करे, यही मोक्षमार्गपर चलना है व यही ईर्या समिति है।

सम्यक्दर्सन सुद्धं, ॐ वंकारं विंद स्थान संदिट्ठं ।
ह्रियंकारं अरहंतं, ज्ञान मयो ज्ञान सुद्ध संमत्तं ॥ ६१७ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सम्यग्दर्सन) शुद्ध सम्यग्दर्शन (ॐ वंकारं विन्दस्थान संदिट्ठं) ॐ शब्दके बिंदु स्थानमें बिराजित सिद्ध स्वरूप आत्माको भलेप्रकार देखनेवाला है (ह्रियंकारं अरहंतं) ह्रीं मंत्र अर्हंतको बतानेवाला है (ज्ञान मयो ज्ञान सुद्ध संमत्तं) ज्ञान स्वरूपी अपने आत्माका ज्ञान शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—ॐ शब्दमें यद्यपि पांच परमेष्ठी गर्भित है, परन्तु मुख्यतासे उसके ऊपर चन्द्र बिंदुसे सिद्ध शिलामें बिराजित श्री सिद्ध भगवानका ज्ञान होता है। इसलिये मोक्षमार्गीको ॐके आलम्बनसे सिद्धात्माका ध्यान करना चाहिये। ह्रीं मंत्रमें ह से ४, व १ से २ इस तरह २४ तीर्थंकर अर्हंत भगवान गर्भित हैं। इस मंत्रके द्वारा अर्हंत भगवानका स्वरूप विचारना चाहिये। अर्हंत व सिद्ध परमात्माका आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है वैसा ही मेरा आत्मा है। ऐसा श्रद्धान करके अपने शुद्ध आत्माका अनुभव करना शुद्ध सम्यग्दर्शन है। व इसीका आराधन ईर्या समिति है।

श्रींकारं सुद्ध सुभावं, अवधि संजुत्त ज्ञान स सरूवं ।
मन पर्जय जानंतं, पद विंदं सुद्ध केवलं ईर्जं ॥ ६१८ ॥

अन्वयार्थ—(श्रींकारं सुद्ध सुभावं) परम ऐश्वर्यमय लक्ष्मीको प्रगट करनेवाला श्रीं पद है-वह आत्माका एक शुद्ध स्वभाव ही है (अवधि संजुत्त ज्ञान स सरूवं) अवधिज्ञान सहित आत्माका स्वाभाविक ज्ञान एक ऐश्वर्य है (मन पर्यय जानंतं) मनःपर्यय ज्ञानको जानना भी एक ऐश्वर्य है (पद विंदं सुद्ध केवलं) इस पदके बिंदुसे द्योतित शुद्ध केवलज्ञान भी एक महान ऐश्वर्य है (ईर्ज) इन ऐश्वर्योंका लाभ मोक्षमार्गमें गमन रूप ईर्या समितिसे होता है।

भावार्थ—जो कोई तत्वज्ञानी श्रीं पदके द्वारा आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय लक्ष्मीका ध्यान करते हैं उनको अवधिज्ञान तथा मनःपर्यय ज्ञानकी ऋद्धियें सिद्ध होजाती हैं तथा अंतमें परम ऐश्वर्यमय केवलज्ञानका लाभ होता है। अतएव शुद्ध आत्माके मननरूप सरल पथमें गमन करना चाहिये, यही ईर्यासमिति है।

पंचज्ञान संसुद्धं, कुज्ञानं मिच्छ भाव विलयंती।
ईर्जा पंच निवेदं, ईर्जा समिदी च अप्प परमप्पं ॥ ६१९ ॥

अन्वयार्थ—(पंचज्ञान संसुद्धं) जिसके प्रतापसे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल पांचों ही ज्ञानोंकी सिद्धि होसके (कुज्ञानं मिच्छ भाव विलयंती) मिथ्याज्ञान व मिथ्यात्वभाव नाशको प्राप्त होजावे (ईर्जा पंच निवेदं) ऐसे सरल शुद्ध मार्गपर चलना ईर्या पथ गमन (ईर्जासमिदी च) या ईर्यासमिति कहलाता है (अप्प परमप्पं) जहां आत्माको परमात्मारूप जानके स्वानुभव किया जाता है। यही स्वानुभव ही ईर्यासमिति है।

भावार्थ—शुद्ध स्वभावके अनुभव रूप सरल शल्य रहित जिन मार्गपर चलनेसे मतिश्रुत ज्ञान भी निर्मल होजाते हैं। श्रुतज्ञानका पूर्ण लाभ होसक्ता है। शेष तीन ज्ञान भी इसीसे प्राप्त होजाते हैं, मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानका बिलकुल लोप होजाता है। आत्माका परमात्मारूप अनुभव करना ही ईर्यासमिति है।

भाषा समिति।

भाषा समिदि स उत्तं, जं उत्तं जिनंद केवलं ज्ञानं।
तं भाषा परमानं, ज्ञान सहावेन भाव संजुत्तं ॥ ६२० ॥

अन्वयार्थ—(भाषा समिदि स उत्तं) भाषा समिति वह कही गई है (जं जिंनद केवलं ज्ञानं उत्तं तं भाषा परमानं) कि जो कुछ जिनेन्द्रने केवलज्ञानसे जानकर कहा है उस भाषाको प्रमाण कर लेना-मान लेना (ज्ञान सहावेन भाव संजुत्तं) तथा ज्ञान स्वभावका मनन करते हुए शुद्ध भाषा कहना।

भावार्थ—जिनेन्द्र कथित तत्वोंके स्वरूपको यथार्थ मानकर उनका अनुभव करना, ज्ञान स्वभावमें वर्तन करना, शुद्ध आत्माका अनुभव करना व इसी स्वानुभव करानेवाले वचनोंका कहना सो भाषा समिति है। तत्वार्थसारमें कहा है—

व्यलीकादिविनिर्मुक्तं, सत्यासत्यामृषाद्वयम्। वदतः सूत्रमार्गेण, भाषासमितिरिष्यते ॥ ८-६ ॥

भावार्थ—असत्य व सत्य असत्य मिश्र तथा कठोर कर्कश भाषाको छोडकर सत्य व अनुभव इन दो प्रकारकी भाषाको सिद्धांत सूत्रके अनुसार कहना भाषा समिति है। आमंत्रणी आदि भाषाको अनुभय भाषा इसलिये कहते हैं कि न तो वह सत्य है न असत्य है, वहां कोई अभिप्राय सत्य या असत्यका नहीं है।

भाषा अविचल सुद्धं मय मिच्छात दोस परिहरनं।
भाषा जिन उवएसं, तं भाषा समिदि सुद्ध जाने हि ॥ ६२१ ॥

अन्वयार्थ—(अविचल सुद्धं भाषा) जो भाषा चञ्चलता रहित सरल शुद्ध मार्गको बतानेवाली है (मय मिच्छात दोस परिहरनं) जिससे मद व मिथ्यात्वका दोष न प्रगट हो अथवा जो दूसरोंके मद व मिथ्यात्वको हटानेवाली है ऐसी भाषा कहना अर्थात् (जिन उवएसं भाषा) जिनेन्द्रके उपदेशका प्रकाश करना (तं सुद्ध भाषा समिदि जानेहि) उसे शुद्ध भाषा समिति जानना चाहिये।

भावार्थ—संसारके पदार्थोंका सत्य मानना मिथ्यात्व है। उनमें घमण्ड करना मद है। इन दोषोंको छुडानेवाली व शुद्ध आत्माका अनुभव करानेवाली व जिनेन्द्रके उपदेशको यथार्थ प्रकाश

करनेवाली भाषाको कहना भाषा समिति है। जिनेन्द्रके कथनानुसार शुद्ध तत्वको अनुभव करना व इसीका भाषासे प्रकाश करना वास्तवमें भाषा समिति है।

एषना समिति।

एषन समिदि स उत्तं, ईर्ज पंथं च एषनं सुद्धं।
विज्ञान ज्ञान रूवं, पिच्छंतो सुद्ध दंसनं अमलं ॥ ६२२ ॥

अन्वयार्थ—(स एषन समिदि उत्तं) वह एषना समिति कही गई है (सुद्धं ईर्ज पंथं च एषनं) जो शुद्ध सरल मोक्षमार्गकी चाहना की जावे (विज्ञान ज्ञान रूवं) वह सरल मार्ग भेदविज्ञान द्वारा प्राप्त आत्मज्ञान स्वभाव रूप है (सुद्ध अमलं दंसनं पिच्छंतो) जहां शुद्ध व निर्दोष सम्यग्दर्शनका अनुभव किया जाता है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे भिक्षावृत्तिसे प्राप्त छ्यालिस दोष व बत्तीस अंतराय रहित मुनियोंके उद्देश्यसे न बनाया हुआ किन्तु कुटुम्ब हेतु बनाए हुए भोजनके भागको लेना-समताभावसे उदर भरना एषना समिति है। यहां निश्चय प्रधान कथन है कि आत्मा व अनात्माका भेदविज्ञान करके जहां शुद्ध आत्माकी भावना की जावे व अपने ही आत्माको शुद्ध आत्माके समान प्रतीतिमें लाकर उसीका ही अनुभव किया जावे। यही आत्माको शुद्ध भावका भोजन कराकर एषना समितिको पालना है। तत्वार्थसारमें कहा है—

पिंडं तथोपधिं शय्यामुद्गमोत्पादिनादिना। साधोः शोधयतः शुद्धा ह्येषणा समितिर्भवेत् ॥ ९-६ ॥

भावार्थ—जो साधु उद्गम उत्पादन आदि दोषोंसे रहित भोजन, पीछी, कमंडल, शैय्या आदि शोधते हैं उनहीके शुद्ध एषना समिति होती है। यह कथन व्यवहार नयसे है।

पिच्छे ज्ञान सरूवं, पिच्छे चरनं पि सुद्ध सम्मत्तं।
पिच्छे अप्प सहावं, अप्पा परमप्पं ममल पिच्छेइ ॥ ६२३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सरूवं पिच्छै) जो ज्ञानके यथार्थ स्वरूपको देखता है (चरनंपि सुद्ध सम्मत्त पिच्छै) चारित्रको तथा शुद्ध सम्यग्दर्शनको देखता है (अप्प सहावं पिच्छै) जो आत्माके स्वभावको देखता है (अप्पा परमप्पं अमल पिच्छेई) जो आत्माको परमात्माके समान निर्मल देखता है वह एषना समिति है।

भावार्थ—आत्मा स्वयं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र स्वरूप है। जो कोई भेद करके भिन्न २ तीनों गुणोंको विचारे फिर अभेद करके एक आत्माका ही मनन करें–आत्माको सिद्ध भगवानके समान देखें तथा एकाग्र होकर अनुभव करें वही तत्वज्ञानी महात्मा एषना समितिको पालन करनेवाला है। निश्चयसे आपसे आपको अनुभव करना ही एषना समिति है।

आदान निक्षेपन समिति।

आदानं निक्षेपं, आद सहावेन दंसए सुद्धं।
निक्खवइ कम्म तिविहं, आद सहावेन सयल दोष निक्षेपं ॥६२४॥

अन्वयार्थ—(आदानं निक्षेपं) आदान निक्षेपन समिति कहते हैं आदानके अर्थ हैं (आद सहावेन दंसए सुद्धं) जो आत्म-स्वभावको ग्रहण कर उसे शुद्ध अनुभव करना (तिविहं कम्म निक्खवइ) निक्षेपनके अर्थ हैं कि तीन प्रकार कर्मोंको क्षय करना अर्थात् (आद सहावेन सयल दोष निक्षेपं) आत्माका स्वभाव ग्रहण कर सर्व रागादि दोषोंका क्षय करना निश्चयसे आदान निक्षेपन समिति है।

भावार्थ—पीछी कमण्डल शरीर शास्त्रादि पदार्थोंको देखकर रखना उठाना आदान निक्षेपण समिति है जिससे प्राणियोंकी रक्षा हो यह कथन व्यवहारनयसे है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

सहसादृष्टदुर्मृष्टाप्रत्यवेक्षणदूषणम्। त्यजतः समितिर्ज्ञेयादाननिक्षेपगोचरा ॥ १०–६ ॥

भावार्थ—यकायक विना देखे विना झाडे जल्दीसे रखना, आदि दूषणोंको बचाकर जीव-जन्तुकी रक्षा करते हुए रखना उठाना सो आदाननिक्षेपण समिति है। यहां निश्चय प्रधान कथन है कि आत्माके निज स्वरूपको ग्रहण कर अर्थात् आत्माका अनुभव करते हुए भाव कर्म, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि और नोकर्म शरीरादिके सम्बन्धको दूर करना आदान निक्षेपण समिति है।

आद सहावं ज्ञानं, अप्पं च अप्प दंसनं ज्ञानं ।
चरनं दुविह संजुत्तं, कम्मं निषवै लहै निव्वानं ॥ ६२५ ॥

अन्वयार्थ—(आद सहावं ज्ञानं) आत्माके स्वभावका ध्यान करना अर्थात् (अप्पं च अप्प दंसनं ज्ञानं) अपनेसे आपको ही देखना जानना (दुविह चरनं संजुत्तं) दो प्रकार चारित्रके साथ वर्तना (कम्मं निषवै लहै निव्वानं) कर्मोंको नाश करके निर्वाणको प्राप्त करनेवाला है ।

भावार्थ—जो कोई भव्यजीव अपने आत्माको दर्शन ज्ञानमई श्रद्धान कर व जानकर व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय चारित्रमें आरूढ़ होकर आत्माका ध्यान करता है वह अवश्य कर्मोंको क्षय कर मुक्त होजाता है। इस आत्माका ध्यान ही आदान निक्षेपन समिति है, जो कर्मोंको दूर करनेवाली है।



प्रतिष्ठापन समिति ।

प्रतिस्ठापन समिदिओ, ज्ञानं धम्मं च सुक्क ज्ञानं च ।
प्रतिस्ठापन संजुत्तं, ज्ञान समत्थेन अप्प संतुट्ठं ॥ ६२६ ॥

अन्वयार्थ—(प्रतिस्ठापन समिदिओ) प्रतिष्ठापन समिति यह है कि (धम्मं ज्ञानं च सुक्क ज्ञानं च प्रतिस्ठापन संजुत्तं) अपनेको धर्मध्यान और शुक्लध्यानसे प्रतिष्ठित किया जावे (ज्ञान समत्थेन) ध्यानके बलसे (अप्प संतुट्ठं) आत्माको सन्तोषित व आनन्दित किया जावे ।

भावार्थ—व्यवहारनयसे जन्तु रहित स्थानमें मलमूत्र करना प्रतिष्ठापना समिति है ।
जैसा तत्वार्थसारमें कहा है:—

समितिर्दर्शितानेन प्रतिष्ठापनगोचरा । त्याज्यं मूत्रादिकं द्रव्यं स्थंडिले त्यजतो यतेः ॥ ११-६ ॥

भावार्थ—साधुको निर्जंतु प्राशुक भूमिमें मूत्रादिका छोडना प्रतिष्ठापना समिति है । यहां निश्चयनयसे शब्दके अर्थको लेकर कहा गया है कि अपने आपको धर्मध्यानमें अथवा शुक्लध्यानमें स्थापित करके आत्मानन्दको लेते हुए आपमें परम सन्तोष पाना प्रतिष्ठापना समिति है ।

ज्ञाने ज्ञान जोतोः, मल रहिओ सयल दोस परिचत्तो।
गय संकप्प वियप्पो, पंचम समिदी च ज्ञान संजुत्तो ॥ ६२७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान जोतोः ज्ञाने) ज्ञान ज्योतिके ध्यानमें तिष्ठकर (मल रहिओ सयल दोस परिचत्तो) अतीचार रहित व सर्व रागादि दोषोंसे हटकर (गय संकप्प वियप्पो) तथा संकल्प विकल्पोंसे रहित होकर (ज्ञान संजुत्तो च पंचम समिदी) आत्माके ध्यानमें लीन होना पंचमी प्रतिष्ठापना समिति है।

भावार्थ—जहां सर्व मिथ्यात्व व रागादि भावोंको हटा दिया जावे और सर्व ही संकल्प विकल्पोंको त्याग दिया जावे व आपको आपसे आपमें स्थापित किया जावे-निज आत्मामें एकतासे लीन होकर आपमें आपको प्रतिष्ठित किया जावे, अपने आत्माके ही सिंहासन पर अपने परमात्मा देवको प्रतिष्ठित किया जावे, यही प्रतिष्ठापना समिति है।

निश्चय मोक्षमार्ग।

समिदी पंच विसुद्धं, तेरह विहि चरन संजमं भनियं।
सम्मत्त चरन चरनं, संजम संजुत्त लहइ निव्वानं ॥ ६२८ ॥

अन्वयार्थ—(पंच समिदी विसुद्धं) पांच समितियोंको शुद्ध निश्चय नयसे पालना (तेरह विहि चरन संजमं भनियं) तथा तेरह प्रकार चारित्र पालना सो संयम कहा गया है (सम्मत्त चरन चरनं) जो भव्य जीव सम्यग्दर्शनका आचरण करता है (संजम संजुत्त) तथा संयमी होता है वह (निव्वानं लहइ) निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—साधुका तेरा प्रकार चारित्र है उसीमें पांच समिति भी गर्भित हैं। निश्चय नयके द्वारा जो इनको समझकर अपने ध्यानमें लेता है और शुद्ध आत्माकी प्रतीति सहित निज आत्माके भीतर संयमित होकर आत्माका अनुभव करता है वह अवश्य निर्वाणका पात्र हो जाता है।

चरनं सुद्ध सहावं, चरनं संसार सरनि तिक्तं च।
चरनं पि सुद्ध अप्पा, परमप्पा परम मोक्षस्य ॥ ६२९ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं सुद्ध सहावं) निश्चय चारित्र शुद्ध स्वभावमें चलना है (चरनं संसार म निसिक्त च) निश्चय चारित्र संसारके मार्गसे दूर रहना है (चरनं पि सुद्ध अप्पा) निश्चय चारित्र शुद्ध आत्मा ही है (परमप्पा परम मोक्षस्यं) निश्चय चारित्र पालनेवाला ही परम मोक्षका अधिकारी परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—निश्चय चारित्र रूप वास्तवमें आत्माका स्वभाव है। जब कोई तत्वज्ञानी संसारके कारणीभूत सर्व प्रकारके राग द्वेष मोह भावोंका परित्याग करके अपने आप ही ठहर जाता है व आपका ही शुद्ध अनुभव करता है तब वह सर्व कर्मोंसे छूटकर निश्चयसे सिद्ध परमात्मा होजाता है, यही निश्चय मोक्षमार्ग है।

एयं संजोगे नय, अवध्यं चिंतेइ लेइ गरु भारं।
अप्पा परमप्पानं, महावयं हुंति साहूनं ॥ ६३० ॥

अन्वयार्थ—(एयं संजोगे नय) इन तेरा प्रकार चारित्रका संयोग मिलाकर (अवध्यं चिंतेइ गरु भारं लेइ) पवित्र अविनाशी आत्माको चिन्तवन करता हुआ गुरुपनेके भारको लेता है अथवा अवधिज्ञानको चिंतवन करते हुए ज्ञानका विशेष भार प्राप्त कर लेता है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करता है (महावयं हुंति साहूनं) उसही साधुके महाव्रत होता है।

भावार्थ—गुरु वही है जो भारी भारको सहन कर सके। सबसे भारी भार परमात्मध्यान है। जो कोई साधु तेरा प्रकार चारित्र पालता हुआ आत्माको परमात्मा रूप निश्चय करके उसीके ध्यानमें लवलीन होजाता है वही महाव्रती साधु मोक्षमार्गके ऊपर चलता हुआ आत्मसंयमके भारी भारको ढोनेवाला है। अथवा जो कोई महाव्रतोंको यथार्थ पालके आत्माको ध्याता है उसका अवधिज्ञान प्राप्त होजाता है।

जंमन मरन विमुक्का, अप्पा अप्पेन अप्पयं सुद्धं।
परमप्पा परम पयं, परम सरूवं च चेयना सुद्धं ॥ ६३१ ॥

अन्वयार्थ—(जंमन मरन विमुक्का) जन्म मरणसे रहित यह अविनाशी (अप्पा अप्पेन अप्पयं सुद्धं) आत्मा अपने ही द्वारा आपको शुद्ध ध्याता है अर्थात् (परमप्पा परम पयं) परमात्माके श्रेष्ठ पदको

ध्याता है अर्थात् (परम सरूवं च चेयना सुद्धं) परम स्वरूपको ध्याता है या शुद्ध चेतनाको ध्याता है, यही निश्चय ध्यान है।

भावार्थ— निश्चय ध्यान ही मोक्षका साधक है। उस ध्यानमें आत्माको निश्चय नयसे देखा जाता है कि यह सदासे एकाकार चला आया हुआ एक अविनाशी पदार्थ है। जब ध्याता सर्व संकल्प विकल्प त्यागकर अपनेसे ही आपको शुद्ध भावनाके साथ ध्याता है, तब वही मानो परमात्माको ध्याता है या परम पदको ध्याता है या श्रेष्ठ आत्मस्वभावको ध्याता है या उसीका अनुभव कर्म चेतना व कर्मफल चेतनासे छूटकर शुद्ध ज्ञान चेतना रूप होजाता है, यही करने योग्य है।

सून्यं ज्ञान समत्थं, ज्ञानं ज्ञायंति निम्मलं सुद्धं ।
अप्पा परमप्पानं, मनपर्यय ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ६३२ ॥

अन्वयार्थ—(सून्यं ज्ञान समत्थं) रागादि विकल्पोंसे शून्य ध्यानकी सामर्थ्यसे जो (निम्मलं सुद्धं ज्ञानं ज्ञायंति) निर्मल शुद्ध आत्मध्यानको ध्याते हैं (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करते हैं उनको (निम्मलं सुद्धं मनपर्यय ज्ञान) निर्मल मनःपर्यय ज्ञानका लाभ होजाता है।

भावार्थ—निर्विकल्प आत्म रमण रूप ध्यानका यह बल है कि मनःपर्यय ज्ञानको आवरण करनेवाला कर्म कम होजाता है, उस कर्मका क्षयोपशम होजाता है। और निर्मल मनःपर्यय ज्ञान साधुको पैदा होजाता है जिसके प्रतापसे साधु परके मनके भीतर चिंतवनमें आए हुए सूक्ष्म-तत्वोंको भी जान सक्ता है।

रिजुमति मनःपर्यय ।

रिजुमति सुद्ध सरूवं, रूवातीतं च व्यक्त रूवेन ।
जम्बूदीव सुदिट्ठं, मनःपर्यय निम्मलं विमलं ॥ ६३३ ॥

अन्वयार्थ—(रिजुमति सुद्ध सरूवं) ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान शुद्ध आत्माका एक स्वभाव है (रूवातीतं च व्यक्त रूवेन) यह ज्ञान अतीन्द्रिय है, प्रत्यक्ष है (जम्बूदीप सुदिट्ठं) जम्बूद्वीपके भीतर इस ज्ञानका विषय है (मनपर्यय निम्मलं विमलं) यह मनःपर्यय ज्ञान अति निर्मल है।

भावार्थ—आत्माका ध्यान करनेसे ऋद्धिधारी मुनिके जब मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता है तब विशुद्ध भावोंसे ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान पैदा होता है। जो जम्बूद्वीपकी चौडाई एक लाख योजनके भीतर मनवाले प्राणियोंके भीतर जो वर्तमान कालमें पदार्थोंका चिंतवन होरहा है उसको जान लेता है। यह ज्ञान आत्मासे ही प्रत्यक्ष होता है, इसमें इन्द्रिय व मनकी सहायताकी जरूरत नहीं है। यह ज्ञान अवधिज्ञानकी अपेक्षा निर्मल है।

विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान।

विपुलमति सुद्ध सहावं, विमलं च सुद्ध केवलं ज्ञानं।
दीव अढाई सुद्धं, मनपर्ययज्ञान सुद्ध उववन्नं ॥ ६३४ ॥

अन्वयार्थ—(विपुलमति सुद्ध सहावं) विपुलमति मनःपर्यय शुद्ध आत्माका एक स्वभाव है (दीव अढाई सुद्धं) यह अढाई द्वीप तक जाननेकी शुद्धता रखता है (मनपर्ययज्ञान सुद्ध उववन्नं) ऋजुमतिकी अपेक्षा यह मनःपर्ययज्ञान विशेष शुद्धतासे उत्पन्न होता है (विमलं च केवलं ज्ञानं) सर्वसे निर्मल तो केवलज्ञान है, यह अकेला त्रिकालगोचर तीन लोकके पदार्थोंको सर्व गुण पर्याय सहित जानता है।

भावार्थ—आत्माके निर्मल ध्यानके प्रतापसे ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानसे अति निर्मल विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान पैदा होजाता है। यह जान अढाई द्वीपके पैतालीस लाख योजनके भीतर तिष्ठे हुए मनवाले प्राणियोंके मनके भीतरके सूक्ष्म रूपी पदार्थोंको जानता है। आत्मध्यानका अन्तिम फल पूर्ण केवलज्ञानको प्राप्त करना है। यह ज्ञान पांचों ज्ञानावरण कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है।

मनःपर्यय ज्ञानका कथन गोम्मटसारमें ऐसा दिया है:—

मणपज्जवं च दुविहं उजुविउलमदित्ति उजुमदी तिविहा। उजुमणवयणे काए गदत्थविसयात्ति णियमेण ॥ ४३८ ॥
विउलमदीवि य छद्धा उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं। अत्थं जाणदि जम्हा सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥ ४३९ ॥
तियकालविसयरूविं चिंतितं वट्टमाणजीवेण। उजुमदिणाणं जाणदि भूदभविस्सं च विउलमदी ॥ ४४० ॥

भावार्थ—मनःपर्यय ज्ञान दो प्रकारका है-रिजुमति विपुलमति। रिजुमति तीन प्रकारका है।

सरल मनके द्वारा चिंतवन किये हुए पदार्थोंको जाने। सरल वचनसे किये हुए पदार्थको जाने। विपुलमति ज्ञान छःप्रकारका है। सरलतासे किये हुए मन, वचन, काय द्वारा पदार्थोंको तथा कुटिलतासे मन, वचन, काय द्वारा किए हुए पदार्थोंको जाने। दूसरेके मनमें रहनेवाले पहले तीन प्रकारके पदार्थोंको रिजुमति जानता है जब कि विपुलमति पहले व दूसरे तीन प्रकारके अर्थात् छहों प्रकारके पदार्थोंको जानता है जो दूसरेके मनमें हो। रिजुमति ज्ञान तीन कालके पदार्थोंको जो वर्तमानमें कोई चिन्तवन कर रहा है उसीको जानता है। विपुलमति ज्ञान वर्तमान चिंतवन किए हुएको व भूतकालमें चिंतवन किए हुएको व भविष्यमें जो चिंतवन करेगा उस सबको जान सक्ता है। तारणस्वामीने गाथा ६३१ में रिजुमति मनःपर्यय ज्ञानका क्षेत्र जम्बूद्वीप बताया है। जब कि श्री नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्तीने गोम्मटसारमें सात आठ योजनसे अधिक क्षेत्र नहीं बताया है, जब कि विपुलमतिका क्षेत्र ढाई द्वीप है, इसे दोनों ग्रंथकर्ताओंने बताया है। इसपर अन्य ग्रंथोंसे विचारना चाहिये। गोम्मटसारकी वह गाथा यह है—

गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं। विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥ ४९४ ॥

भावार्थ—रिजुमतिका जघन्य क्षेत्र दो तीन कोस व उत्कृष्ट सात आठ योजन है। विपुलमतिका जघन्य आठ नव योजन व उत्कृष्ट नरलोक है।

अरहंत स्वरूप।

अरहंतं सर्वज्ञं, केवल भावेन सुद्ध स सरूवं।
अप्पा परमानंदं, अठारह दोस विवज्जिओ विमलं॥ ६३५ ॥

अन्वयार्थ—(केवलभावेन सुद्ध स सरूवं) केवलज्ञान रूपसे शुद्ध अपने स्वरूपमें रहनेवाले (अरहंतं सर्वज्ञं) अरहंत सर्वज्ञ भगवान होते हैं (अप्पा परमानंदं) उनका आत्मा परमानन्दको अनुभव करता है। वे अरहंत (अठारह दोस विवज्जिओ विमलं) अठारह दोषोंसे रहित वीतराग होते हैं।

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रयके आराधन स्वरूप निर्मल शुक्लध्यानके प्रतापसे जब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय चारों घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है तब वह साधु अरहंत पर-

मात्मा होजाता है। इस शुद्ध अवस्थामें अरहंत भगवान सर्वज्ञ वीतराग होते हैं तथा अपने अतीन्द्रिय आनन्दका भोग करते हैं। उनमें क्षुधा तृषा आदि अठारह दोष नहीं होते हैं।

धम्मरसायणमें पद्मनंदि मुनि कहते हैं—

छुह तण्हा भय दोसो राओ मोहो य चिंतणं वाही। जा मरण जम्म णिद्दा खेदो सेदो विसादो य ॥ ११८ ॥
रइ विम्हओ यदप्पो एए दोसा तिलोय सत्ताणं। सव्वेसिं सामण्णा संसारे परिभमंताणं ॥ ११९ ॥
एए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जंति छुह ति साईया। सोहोइ परमदेओ णिस्सं देहेण घेतव्वो ॥ १२० ॥

भावार्थ—१-क्षुधा, २-तृषा, ३-भय, ४-द्वेष, ५-राग, ६-मोह, ७-चिंता, ८ व्याधि, ९-जरा, १०-मरण, ११-जन्म, १२-निद्रा, १३-खेद, १४-स्वेद (पसीना), १५-विषाद, १६-रति, १७-जृम्भा, १८-दर्प। ये १८ दोष तीन लोकके प्राणियोंके पाए जाते हैं, सर्व संसारीयोंके हैं। जिनके ये नहीं हैं, वे निःसंदेह परम देव अरहंत हैं, उनको मानना चाहिये।

जृम्भा (जंभाई आना), विषाद, रतिके स्थानमें श्री रत्नकरंड श्रावकाचारकी टीकामें अरति, आश्चर्य व गर्व तीन दिये हैं।

चार घातीय कर्मोंके क्षयसे वे १८ दोष अरहंतमें नहीं होते हैं।

अठदह दोस वियानं दोसं गुन रूव भेय विज्ञानं।
रूवं रूव समत्थं, विज्ञानं ज्ञान जानि सद्भावं ॥ ६३६ ॥

अन्वयार्थ—(अठदह दोस वियानं) अठारह दोषोंको जानना चाहिये (दोसं गुन रूव भेय विज्ञानं) दोषोंका और गुणोंका भिन्न २ स्वरूप जानना भेदविज्ञान है (रूवं रूव समत्थं) पुद्गलका स्वरूप पुद्गलमई स्वरूपको समर्थन करता है (विज्ञानं ज्ञान सद्भावं जानि) ज्ञानीका स्वरूप ज्ञानमई जानना चाहिये।

भावार्थ—ये अठारह दोष उसीके होंगे जो शरीरादि पर पदार्थोंका मोही होगा। जिसका मोह शरीरसे हट गया है उसके पुद्गल जनित कोई चिंता नहीं होती है। अर्हंतका आत्मा निरन्तर ज्ञान स्वरूप वीतराग रहता है। कर्म जनित कोई विकार उनके निर्मल ज्ञानमें नहीं होता है इसलिये उनके ये दोष सम्भव नहीं हैं।

अठारह दोष रहित अरहंत।

क्षुधा त्रषा परिहरणं, संसारे सरनि भाव तिक्तं च।
ज्ञान सहावं सुद्धं, ज्ञान अहारेन अन्नपान सहकारं ॥ ६३७ ॥

अन्वयार्थ—(क्षुधा त्रषा परिहरणं) अर्हंत भगवानके भूख प्यासकी बाधा नहीं होती है (संसारे सरनि भाव तिक्तं च) क्योंकि उनके संसारके भ्रमणके कारणरूपी भावोंका अर्थात् सांपरायिक आस्रव भावोंका त्याग है (ज्ञान सहावं सुद्धं) शुद्ध ज्ञान स्वभाव प्रकाशमान है (ज्ञान अहारेन अन्नपान सहकारं) ज्ञानका आहार है, यही अन्नपानकी तरह सहकारी है।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके मोहनीय कर्मका नाश होगया है इसलिये कोई इच्छा पैदा नहीं होसक्ती है। यदि इच्छा हो तो कषाय भाव पाया जावे। कषाय हो तो सांपरायिक आस्रव हो। ये मोहके नाशसे पूर्ण वीतराग होकर यथाख्यात चारित्रमें तथा ज्ञान चेतनाके अनुभवमें लीन हैं। उनके ज्ञानानन्दका ही आहार है। वे सांसारिक प्राणियोंकी तरह अन्नपान नहीं लेते, उनका शरीर भी रत्न–स्फटिककी तरह या कपूरकी तरह धातु उपधातु रहित शुद्ध होगया है। उनके अनंत लाभकी शक्ति प्रगट होगई है जिससे शरीरको पुष्ट करनेवाली आहारक वर्गणाएँ स्वयं योगोंके द्वारा आकर्षित होकर आती हैं व शरीरमें मिलती हैं। जैसे वृक्षोंके व खानके पाषाणोंके लेप आहार है, मुखसे आहार नहीं है वैसे ही केवली भगवान अर्हंतके नोकर्म वर्गणाओंका ग्रहणरूप आहार है।

आप्तस्वरूप ग्रंथमें अरहंतका स्वरूप कहा हैः—

तदा स्फटिक संकाशं तेजोमूर्ति मयं वपुः। जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातु विवर्जितम् । ॥ १२ ॥

भावार्थ—तब दोष रहित अरहंत भगवानके स्फटिकमणिकी तरह तेजमूर्ति व सात धातु रहित शरीर होजाता है। १–रस, २–रुधिर, ३–मांस, ४–मेद (चरबी), ५–हाड, ६–मिंजी (गूदा), ७–शुक्र या वीर्य ये सात धातु अरहंतके नहीं रहती हैं।

भयं च दोषाईनं, भयं च संसार सरनि तिक्तं च।
ज्ञान सहाव सरूवं, भय अभयं दोष तिक्त स सरूवं ॥ ६३८ ॥

अन्वयार्थ—(दोषाईनं भयं च) दोषोंके होनेपर भय होता है (भयं च संसार सरनि तिक्तं च) केवली भगवानके संसारके भ्रमणका कोई भय नहीं रहा है (ज्ञान सहाव सरूवं) वे ज्ञान स्वभावमें लवलीन हैं (भय दोष तिक्त अभयं स सरूवं) वे भय नामके दोषसे रहित अभय निजस्वरूपमें सावधान हैं।

भावार्थ—कोई हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील आदि पाप होनेपर या शरीर व धनादिका मोह होनेपर भय पैदा होजाता है, केवली अरहंत भगवानके कोई पापका कारण भाव ही नहीं है और न शरीरादिका मोह ही है, इससे उनके भय नोकषायका उदय संभव ही नहीं है, वे निरंतर अनंत-वीर्यकी सहायतासे अपने स्वभावमें तल्लीन परम निर्भय हैं।

रागो मोह सचित्तं, संसारे तजंति सुद्ध ससरूवं ।
ज्ञानं राग सहावं, ज्ञानं मोहेन तजंति मोहं धं ॥ ६३९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध ससरूवं) अरहंतके शुद्ध आत्माका स्वरूप झलक रहा है इसलिये वहां (संसारे रागो मोह सचित्त तजंति) संसारके कारणीभूत राग व मोह सहित चित्तका अभाव है (ज्ञानं राग सहावं) वहां ज्ञानका ही स्वाभाविक राग है (ज्ञानं मोहेन तजंति मोहंधं) व अपने ज्ञानका ही मोह है इसीसे उन्होंने संसारके अंध व अज्ञानमय मोहको त्याग दिया है।

भावार्थ—अरहंत भगवानने दर्शनमोह व चारित्रमोहका सर्वथा क्षय कर डाला है इसलिये उनके भीतर राग या मोह कभी संभव नहीं है। वे परम वीतराग होकर शुद्ध स्वरूपमें लीन हैं, उनके संसारका अभाव है, अलङ्कार रूपसे यह कह सक्ते हैं कि वे प्रभु अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें ही रागी व मोही हैं। उनके पर पदार्थका अज्ञानमय राग व मोह नहीं है।

ज्ञान सहावे चित्तं, चिंता संसार तजंति परिनामं ।
चिंतं अप्प सहावं, अप्पा परमप्प केवलं सुद्धं ॥ ६४० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावे चित्तं) केवली महाराजकी चिंता ज्ञान स्वभावमें लय होगई है उन्होंने (संसार परिनामं चिंता तजंति) संसारके भावोंकी या सांसारिक अवस्थाओंकी चिंता या फिकर छोड़ दी है (अप्प सहावं चिन्तं) वे आत्मीक स्वभावका ही अनुभव कर रहे हैं (अप्पा परमप्प केवलं सुद्धं) उनके अनुभवमें आत्मा परमात्मारूप केवल शुद्ध झलक रहा है।

भावार्थ—अर्हंत भगवानको चिंताका दोष भी सम्भव नहीं है, उनके वीतराग भाव प्रगट है। उनको किसी शरीरादि व धनादि पर पदार्थसे राग ही नहीं है। जिन हेतुसे कोई चिंता या फिकर पैदा होवे तो निश्चिंत होकर अपने शुद्ध परमात्म स्वभावमें तल्लीन हैं, सर्व चिंता रहित हैं।

वृद्धं तुं अल्प मृत्युं, चौगइ भावेन तजंति सद्भावे।
ज्ञाने ज्ञान सहावं, अजरामर सासयं ठानं ॥ ६४१ ॥

अन्वयार्थ—(वृद्धं तुं अल्प मृत्युं) बुढापा होना व थोडे कालके लिये मरण होना (चौगइ भावेन) चार गति सम्बन्धी भावोंसे होता है (सद्भावे तजंति) केवलीने अपने स्वभावमें ठहरकर इन भावोंको त्याग दिया है (ज्ञाने अजरामर सासयं ठानं ज्ञान सहावं) उनके ज्ञानमें जरा व मरण रहित अविनाशी ज्ञान स्वभावी पदार्थ झलक रहा है।

भावार्थ—केवली भगवानका शरीर सात धातु रहित होनेसे उसमें जरा नहीं फैलती है, उनका शरीर चमकदार व तेजस्वी दीखना है। मरण उसे ही कहते हैं जहां फिर जन्म हो। केवली भगवानने चार गति बांधनेवाले भावोंका ही त्याग कर दिया है, उनके चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिका बंध नहीं है। इससे उनका फिर किसी शरीरमें जन्म नहीं है। जब जन्म नहीं है तब मरण भी नहीं है। वे तो निरंतर अजर अमर अविनाशी स्वाभाविक ज्ञानधारी परमात्मा होगए हैं। आयु कर्म हटते ही सिद्ध हो जायगे, जब शरीरका सम्बंध ही न रहेगा।

स्वेदं खेद संजुत्तं, भव कारनेन सयल तिक्तं च।
ज्ञान सहाव सरूवं, स्वादं च परम केवलं ज्ञानं ॥ ६४२ ॥

अन्वयार्थ—(स्वेदं खेद संजुत्तं) पसीना खेद या थकन सहित (भव कारनेन) संसारके कार्योंके निमित्तसे होता है (सयल तिक्तं च) उनको अरहंत भगवानने त्याग दिया है (ज्ञान सहाव सरूवं) वे तो एक ज्ञान स्वभावमई होरहे हैं (परम केवलं ज्ञानं च स्वादं) परम केवलज्ञानका ही स्वाद लेरहे हैं। उनको थकन न होनेसे न खेद है न स्वेद है।

भावार्थ—अरहंत भगवानके कोई इंद्रियोंके द्वारा कार्य नहीं है जिससे न उनको खेद होता है

न स्वेद होसक्ता है वे अतीन्द्रिय केवलज्ञानके धारी हैं जिससे वे सहज ही स्वपर ज्ञायक होरहे हैं। उनको अनन्त बल है इससे ज्ञानके कार्यमें कोई परिश्रम नहीं पड़ता है। वे निरन्तर ज्ञानानन्दका स्वाद लेते हुए परम निराकुल हैं।

मदो रति संजुत्तं, संसोर सरनि सयल तिक्कं च।
ज्ञानबलेन विसुद्धं, ममात्मा सुद्ध दंसनं अमलं ॥ ६४३ ॥

अन्वयार्थ—(मदो रति संजुत्तं) मद दोष व रति दोष सहित या अरति दोष सहित (संसारे सरनि सयल तिक्कं च) संसारमें जीवोंका भ्रमण होता है। अर्हंत भगवानने मोहका क्षय करके सर्व संसार भ्रमणके कारणोंको त्याग दिया है (ज्ञानबलेन) आत्माके यथार्थ ज्ञानके बलसे (विसुद्धं) वे परम वीतराग हैं तथा उनको यह अनुभव है कि (ममात्मा अमलं सुद्ध दंसनं) मेरी आत्मा रागादि मलसे रहित है व शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारी है।

भावार्थ—मोहका समूल क्षय कर देनेसे अर्हंत भगवानके मद या रति या अरति कोई मोह· कर्म जनित भावका होना सम्भव नहीं है। वे मोक्षरूप हैं–उनके संसारका कारण सब मिट गया है। वे अपने ज्ञानके बलसे ही अपने आपको शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन रूप अनुभव कर रहे हैं।

विस्मय जननी निद्रा, संसारे सरनि तिक्क मन विचलं।
ज्ञान सहावे सुद्धं, जम्मन मरनं च उवसमं भनियं ॥ ६४४ ॥

अन्वयार्थ—(विस्मय जननि निद्रा) आश्चर्य, जन्म तथा निद्रा ये तीन दोष भी (संसारे सरनि) संसारके मार्गमें रहनेवालेके होते हैं। (मन विचलं तिक्क) अरहंत भगवानका मन चंचलता रहित थिर है। वहां कोई मनमें प्रमाद नहीं होसक्ता। उन्होंने संसार नाश कर दिया है इससे जन्म नहीं होसक्ता है। (ज्ञान सहावे सुद्धं) वे अपने ज्ञान स्वभावमें लीन हैं, परम वीतराग हैं। (जम्मन मरनं च उवसमं भनियं) उनका जन्म व मरण दोष सब शांत होगया है। क्योंकि आगेके लिये किसी आयुका बंध नहीं है।

भावार्थ—श्री अरहंत भगवानका मन चंचल नहीं है। इससे वहां कोई आश्चर्य नहीं होसक्ता है न वहां कोई आलस्यका कारण है। इससे निद्रा नहीं होती है। वे प्रमादको पहले ही जीत चुके

हैं। निद्रा प्रमादका एक भेद है। वे केवल मनुष्य आयु भोग रहे हैं। आगेकी आयुकी कोई सत्ता नहीं है। इसलिये फिर उनका किसी शरीरमें जन्म नहीं होगा। वे अरहंत परमात्मा अपने आत्म स्वभावमें परम वीतरागता सहित लीन हैं। अब उनके कोई संसारीक पर्याय नहीं होनेवाली है। इससे वे जन्म मरणादिसे रहित हैं।

अठ दह दोस विमुक्कं, ज्ञान सहावेन दोष परिचत्तो।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, उप्पनं विमल केवलं ज्ञानं ॥६४४॥

अन्वयार्थ—(अठ दह दोस विमुक्कं) अरहंत भगवान क्षुधा आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं (ज्ञान सहावेन दोष परिचत्तो) वे ज्ञान स्वभावमें लीन हैं, इससे उनमें कोई रागादि दोष नहीं हैं। (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) उनका ज्ञान सर्व ज्ञानावरण कर्मके उदयसे रहित होकर ज्ञान-स्वरूप होगया है (विमल केवलं ज्ञानं उप्पन्नं) उनको परम शुद्ध केवलज्ञान उत्पन्न होगया है।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके भीतर सर्वज्ञपना व वीतरागपना अवश्य होता है। इसलिये उनमें क्षुधादि १८ दोष नहीं होते हैं। ग्रन्थकर्ताने ६३७ गाथासे ६४४ तकमें क्षुधा, तृषा, भय, राग, मोह, चिंता, जरा, मरण, स्वेद, खेद, मद, रति (अरति), विस्मय, जन्म, निद्रा; इन पन्द्रह दोषोंको गिनाया है। रोग, द्वेष विषद क्रमसे जरा, भय तथा खेदमें गर्भित होसक्ते हैं।

सयोग केवली अर्हंत।

संजोगे केवलिनो, तेरहमे गुण ठान ज्ञान संजुत्तो।
अप्पा अप्प सरूवं, अरुहो देओ मुने अव्वा ॥ ६४६ ॥

अन्वयार्थ—(संजोगे केवलिनो) योग सहित सयोगी केवली भगवानके (ज्ञान संजुत्तो तेरहमे गुण ठान) केवलज्ञान सहित तेरहवां गुणस्थान होता है (अप्पा अप्प सरूवं) आत्माके घातक चारों कर्मोंके क्षयसे उनका आत्मा आत्म-स्वरूप मय निर्मल होगया है (अरुहो देओ मुने अव्वा) उनको ही पूजने योग्य अर्हंतदेव मानना चाहिये।

भावार्थ—अठारह दोष रहित परम वीतराग सर्वज्ञ देव श्री अर्हंत भगवान तेरहवें सयोग-केवली गुणस्थानमें होते हुए अपने निज शुद्ध स्वरूपमें लीन रहते हैं, उनमें कुदेवोंके कोई भी दोष नहीं हैं। इसलिये जिनको परमात्माका आदर्श सामने रखके मोक्षमार्गपर चलना है उनको उचित है कि ऐसे ही पूज्यनीय अर्हंतदेवको अपना देव माने।

आहारोय सरीरो, अतिन्द्री ज्ञान आहार संजुत्तो।
चौदस प्रान सरूवं, अप्पा परमप्प लद्ध सद्भावं ॥ ६४७ ॥

अन्वयार्थ—(आहारोय सरीरो) अर्हंत भगवानके आहारक वर्गणाओंसे बना हुआ परम शुद्ध औदारिक शरीर होता है (अतिन्द्री ज्ञान आहार संजुत्तो) उनके इन्द्रियोंके द्वारा ज्ञान न होकर अतीन्द्रिय केवलज्ञानका ग्रहण है, यही एक आहार है (चौदस प्राण सरूवं) उनके द्रव्येन्द्रिय व द्रव्य मन तो है, परन्तु उपयोग इनके द्वारा काम नहीं करता है इससे दस प्राण द्रव्य अपेक्षा लेनेपर भी कार्यकी अपेक्षा छः प्राण रहित मात्र चार प्राण हैं। वचन बल, काय बल, आयु और श्वासोच्छ्वास (अप्पा परमप्प लद्ध सद्भावं) उनकी आतमा परमात्मारूप अपने स्वभावको प्राप्त किये हुए रहती है।

भावार्थ—केवली भगवानके परम शुद्ध औदारिक शरीर होता है। वाणी खिरती है इससे वचन बल प्राण है। विहार होता है इससे काय बल प्राण है। मंद श्वास होता है इससे श्वासोच्छ्वास प्राण है। आयु कर्मका उदय है इससे आयु प्राण है। पांच इन्द्रिय व द्रव्य मन है उनको भी लेकर दस प्राण कह सक्ते हैं। भाव इन्द्रिय व भाव मन नहीं है इससे चार प्राण ही कहे जाते हैं। अर्हंत भगवान सकल परमात्मा परम पूज्य हैं।

वाहि जर दोष रहिओ, आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो।
ज्ञान आहार संजुत्तो, ज्ञानेन ज्ञान अप्प परमप्पा ॥ ६४८ ॥

अन्वयार्थ—(वाहि जर दोष रहिओ) अर्हंत भगवान बाहर जराके दोषसे रहित हैं (आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो) आहार व निहारसे रहित शुद्ध हैं (ज्ञान आहार संजुत्तो) ज्ञानरूपी आहारको करनेवाले हैं (ज्ञानेन ज्ञान अप्प परमप्पा) ज्ञानके द्वारा ज्ञानका वे अनुभव कर रहे हैं उनकी आतमा परमात्मारूप है।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके बाहर शरीरपर बुढापेके चिन्ह नहीं दीखते हैं। युवान पुरुषके चिह्न दिखलाई पडते हैं। वे न तो साधारण मानवोंकी तरह भोजन करते हैं न उनके मल-मूत्रादिका नीहार होता है। वे निरन्तर ज्ञानके द्वारा ज्ञानका स्वाद लेते हुए परमात्मारूप रहते हैं। उन हीको आदर्श देव मानके पूजना व भजना चाहिये।

एरिय गुने हि सुद्धो, अयसय वर ज्ञान दंसनं समगं।
पडिहारं संजुत्तं. भावन भावंति अमल अरहंतं ॥ ६५९ ॥

अन्वयार्थ—(एरिस गुने हि सुद्धो) ऐसे गुणोंके धारी वीतराग (अयसय वर ज्ञान दंसनं समगं) चौतीस अतिशय अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यमई (पडिहारं संजुत्तं) आठ प्रातिहार्य सहित (अमल अरहंतं) घाति मल रहित अर्हंत होते हैं (भावन भावंति) उनकी भावना भानी चाहिये।

भावार्थ—श्री तीर्थङ्कर अर्हंत भगवानकी अपेक्षा यहां अर्हंतकी महिमा कह रहे हैं। जैसे वे १८ दोष रहित होते हैं वैसे वे ४६ गुण सहित होते हैं। चौतीस अतिशय + चार अनन्त चतुष्टय + आठ प्रातिहार्य। उनके नाम नीचे प्रकार हैं—

जन्मके १० अतिशय—(१) खेदरहितपना, (२) मलरहितपना, (नीहार नहीं), (३) दूध समान रुधिर, (४) वज्रवृषभनाराच संहनन, (५) समचतुरस्र संस्थान, (६) सुन्दर रूप, (७) सुगन्ध तन, (८) १००८ लक्षण, (९) अतुल वीर्य, (१०) प्रिय वैन।

केवलज्ञानके समय १० अतिशय—(१) ८०० कोस सब तरफ दुर्भिक्ष न होना, (२) आकाशमें प्रभुका गमन, (३) जीव वध न हो जहां समवशरण हो, (४) ग्रास रूप आहारका न होना, (५) उपसर्ग न होना, (६) चार मुख समवशरणमें दीखना, (७) सर्व विद्याका ईश्वरपना, (८) शरीरकी छाया न पडना, (९) नख केश नहीं बढना, (१०) पलकोंका न लगना।

देवकृत १४ अतिशय—(१) अर्ध मागधी वाणीका खिरना, (२) विरोधी जीवोंका समवशरणमें वैर न रहना, (३) षटरितुके फल फूल खिलना, (४) मंद सुगन्ध पवन चलना, (५) दर्पण रूप भूमि होना, (६) सुगन्धित जलकी वर्षा, (७) कंटक रहित भूमि, (८) सुवर्ण कमलोंपर प्रभुका विहार, (९) फलोंके भारसे नम्रीभूत धान्य, (१०) आकाशकी निर्मलता, (११) देवोंके जय जयकार शब्द,

(१२) धर्मचक्रका आगे चलना, (१३) आठ मंगल द्रव्यका रहना, (१४) सब प्राणियोंमें सुख रहना।

चार चतुष्टय—(१) अनन्त दर्शन, (२) अनन्त ज्ञान, (३) अनन्त सुख, (४) अनन्त वीर्य।

आठ प्रतिहार्य—धम्मरसायणमें पद्मनन्द मुनि कहते हैं—

सिंहासन छत्तत्तय दिव्वोधुणि पुप्फविट्ठि चमराइं। भामण्डल दुन्दुहिओ, वरतरु परमेट्ठि चिन्हूत्थं ॥ १२१ ॥

भावार्थ—(१) अशोक वृक्ष, (२) सिंहासन, (३) तीन छत्र, (४) दिव्यध्वनि, (५) पुष्पवृष्टि, (६) चौसठ चमर ढरना, (७) भामण्डल, (८) दुन्दुभी वाजोंका बजना।

इन ४६ गुण सहित ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय चार घातीय कर्म मल रहित अरहन्त भगवान होते हैं। उनका ध्यान करना योग्य है।

अरहंतो अरुहो देओ, रहिओ संसार सरनि विगतोयं।
विगतं अज्ञानमयं, ज्ञान सहावेन तिलोय दर्सतो ॥ ६५० ॥

अन्वयार्थ—(अरहंतो अरुहो देओ) अरहन्त भगवान पूज्यनीय देव हैं (संसार सरनि रहिओ) वे संसारके भ्रमणसे छूट गए हैं (विगतोयं) चारों गतिके गमनसे रहित हैं (अज्ञानमयं विगतं) अज्ञानमई भाव जिनके नष्ट होगया है (ज्ञान सहावेन तिलोय दर्सतो) जो ज्ञान स्वभावसे तीन लोकको देखनेवाले हैं।

भावार्थ—श्री अरहन्त भगवान मोहादि कर्मोंसे रहित होनेके कारणसे संसारके भ्रमणसे मुक्त होगए हैं। उनमें न कोई अज्ञान है न मोह है। वे त्रिलोकदर्शी केवलज्ञानी वीतराग परमात्मा पूजने योग्य हैं।

अरुहं अरुह सरूवं, ज्ञानबलेन तिलोय सम सुद्धं।
सम्यक्दर्सन दर्सं, उत्पन्नं अमल केवलं ज्ञानं ॥ ६५१ ॥

अन्वयार्थ—(अरुहं अरुह सरूवं) अरहन्त भगवान पूज्यनीय स्वभावके धारी हैं (ज्ञानबलेन तिलोय सम शुद्धं) आत्मज्ञानके बलसे तीन लोकमें समताभावके धारी शुद्ध हैं (सम्यक्दर्सन दर्सं) क्षायिक सम्यग्दर्शनके अनुभव करनेवाले हैं (अमल केवलं ज्ञानं उत्पन्नं) उनको निर्मल केवलज्ञान पैदा होगया है।

भावार्थ—अरहन्त भगवान रागद्वेष रहित समदर्शी वीतराग, परम निर्मल सम्यक्तके धारी, केवलज्ञानी, पूज्यनीय देव हैं।

अरुहो देओ झायदि, ह्रींकारे सुद्ध दंसनं अमलं।
अमलं अमल सहावं, अरुहो देओ सुद्ध ज्ञानसंजुत्तो ॥ ६५२ ॥

अन्वयार्थ—(अरुहो देओ झायदि) अरहन्त देवका ध्यान करना चाहिये (ह्रींकारे सुद्ध दंसनं अमलं) ह्रीं मंत्रके द्वारा शुद्ध निर्दोष सम्यग्दर्शनके धारी (अमलं अमल सहावं) चार घाति कर्म मल रहित निर्मल स्वभाव धारी (सुद्ध ज्ञानसंजुत्तो अरुहो देओ) शुद्ध आत्मध्यान सहित अरहन्त देवको मानना चाहिये।

भावार्थ—ह्रीं मंत्रको हृदय-कमलमें या नाशिकाके अग्रभागमें विराजमान करके उसके द्वारा श्री चौवीस तीर्थंकर अरहन्तका स्वरूप विचारना चाहिये कि वे निर्मल वीतराग आत्मा हैं, शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित हैं, अपने स्वभावमें लीन हैं, परम पूज्यनीय हैं। उनका ध्यान अपने ही शुद्ध आत्मामें है। अरहन्तके स्वरूपको विचारकर उसी समान अपने आत्माको शक्तिरूप मानना चाहिये। यह भी पुरुषार्थ करके उस पदपर पहुंच सक्ता है। जैसी भावना भावे वैसा फल होता है। अरहन्त भगवानकी स्तुति मन लगाकर करना चाहिये। उनके गुणानुवाद तन्मय होकर गाना चाहिये। उनकी भक्तिमें अपनेको भूल जाना चाहिये। अरहन्तकी भक्ति परम कल्याणकारी है।

सिद्ध परमेष्ठी।

सिद्धं सिद्धि संपत्तं, अट्ठ गुनं ज्ञान केवलं सुद्धं।
अट्ठंमि पुहमि समियं, सिद्ध सरूवं च सिद्धि संपत्तं ॥ ६५३ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धि संपत्तं सिद्धं) सिद्ध भगवानने सिद्धपनेकी संपत्तिको सिद्ध कर लिया है (अट्ठ-गुनं) आठ गुण सहित है (केवलं सुद्धं) पर वस्तुके सम्बन्ध रहित केवल शुद्ध स्वरूप हैं (अट्ठंमि पुहमि समियं) आठवीं पृथ्वीपर विराजित हैं (सिद्ध सरूवं च सिद्ध संपत्तं) ऐसी सिद्धिको प्राप्त श्री सिद्ध स्वरूप आत्मा है।

भावार्थ—अब श्री सिद्ध भगवानका स्वरूप बताते हैं। जो कुछ सिद्ध करना था उसको जो सिद्ध कर चुके उनको सिद्ध कहते हैं। जब सर्व आठों कर्म व उनके फलस्वरूप भावकर्म व शरीरादि

नोकर्म छूट जाते हैं तब केवल एक आत्मा परसे भिन्न रह जाता है, उसहीको सिद्ध कहते हैं। वे सर्वज्ञ वीतराग हैं, उनमें अनंत गुण होते हैं, जिनमें आठ गुण प्रसिद्ध हैं। वे सिद्ध भगवान ऊर्ध्वगमन स्वभावसे ऊपरको जाकर तीन लोकके अग्रभागमें तनु वातवलयमें सिद्ध-शिलाकी सीधमें तिष्ठते हैं। सिद्ध-शिला पैतालीस योजन चौडी नीचे रह जाती है। इसको आठमी पृथ्वी कहते हैं। रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वी मध्यलोकसे लेकर सातवें नर्क पर्यंत चली गई हैं।

सम्मत्त ज्ञान दंसन, बलवीरिय सुहम धम्म सहियं च।
अवगाहन गुणसमिधं, अगुरुलघु तिलोय निम्मलं विमलं ॥६५४॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्त ज्ञान दंसन) सम्यग्दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, (बलवीरिय) अनंतवीर्य, (सुहम धम्म सहियं च) सूक्ष्मपना धर्म सहित (अवगाहन गुणसमिधं) अवगाहन गुण सहित (अगुरुलघु तिलोय निम्मलं विमलं) अगुरुलघु गुण सहित तीन लोक द्वारा बाधा रहित ऐसे शुद्ध आत्मा सिद्ध भगवान हैं।

भावार्थ—यहां सिद्ध भगवानके आठ मुख्य गुण बताएँ हैं-मोहनीय कर्मके नाशसे कषाय रहित निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रगट है। ज्ञानावरणके नाशसे अनन्तज्ञान, दर्शनावरणके नाशसे अनन्त दर्शन, अंतरायकर्मके नाशसे अनंतवीर्य, नामकर्मके नाशसे सूक्ष्मता, आयुकर्मके नाशसे अवगाहन गुण, गोत्रकर्मके नाशसे अगुरु लघु, वेदनीयके नाशसे अव्याबाध गुण ऐसे आठ गुणधारी शुद्ध आत्मा है।

सिद्धं सहाव सुद्धं, केवलदंसन च ज्ञान संपन्नं।
केवल सुकिय सुभावं, सिद्धं सुद्धं मुनेयव्वा ॥ ६५५ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं) श्री सिद्ध भगवान (सहाव सुद्धं) स्वभावसे शुद्ध हैं (केवलदंसन च ज्ञान संपन्नं) केवलदर्शन व केवलज्ञानसे पूर्ण हैं (केवल सुकिय सुभावं) केवल अपने ही स्वभावमें हैं (सुद्धं सिद्धं मुनेयव्वा) ऐसे शुद्ध आत्माको सिद्ध जानना चाहिये।

भावार्थ—श्री सिद्ध महाराज उस आत्माको कहते हैं जहां कोई पर द्रव्यका सम्बन्ध नहीं है, जहां आत्माका अपना ही स्वभाव झलक रहा है, निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव द्वारा सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हुए भी आत्मामें ही रममाण हैं, परमानन्दका भोग कर रहे हैं।

षट् दव्व दव्व सुद्धं, काया पंचात्थि विमल सुपसिद्धं ।
तत्वं सप्त सरूवं, पदार्थ पदविंदं केवलं ज्ञानं ॥ ६५६ ॥

चौदस पाण विसुद्धं, अतिन्द्रिय ज्ञान सयल संमिद्धं ।
नंत चतुष्टय सहियं, सिद्धं सुद्धं च सिद्धि संपत्तं ॥ ६५७ ॥

अन्वयार्थ—(षट् दव्व दव्व सुद्धं) छःद्रव्योंमेंसे शुद्ध आत्म-द्रव्य सिद्ध हैं (काया पंचात्थि विमल सुपसिद्धं) पांच अस्ति कायोंमें निर्मल शुद्ध जीव अस्तिकाय हैं (तत्वं सप्त सरूवं) सात तत्वोंमेंसे शुद्ध जीव तत्व स्वरूप है (पदार्थ) नौ पदार्थोंमें शुद्ध जीव पदार्थ हैं (पदविंदं) ॐ मंत्रमें बिंदु स्वरूप है (केवलं ज्ञानं) केवलज्ञानाकार है (चौदस पाण विसुद्धं) न वहां चार प्राण हैं न दश प्राण हैं (अतिंद्रिय ज्ञान सयल संमिद्धं) पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञानसे समृद्ध हैं (नन्त चतुष्टय सहियं) अनन्त चतुष्टय सहित हैं (सुद्धं च सिद्धि संपत्तं) शुद्ध हैं ऐसे सिद्धिको प्राप्त श्री सिद्ध भगवान हैं।

भावार्थ—यहां बताया है कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश इन छः द्रव्योंमेंसे सिद्ध भगवान पांच अजीवोंसे रहित शुद्ध जीव द्रव्य हैं। कालको छोडकर पांच द्रव्योंको पंचास्तिकाय कहते हैं क्योंकि ये पांच बहु प्रदेशी हैं। इनमें शुद्ध जीवास्तिकाय सिद्ध भगवान हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंमें एक शुद्ध आत्म-तत्व सिद्ध भगवान हैं। पुण्य पाप सहित नौ पदार्थोंमें भी शुद्ध आत्मपदार्थ सिद्ध हैं। ॐके चंद्राकारमें चिन्हसे लक्षित हैं शरीरका सम्बन्ध न रहनेसे इंद्रिय, बल, आयु, श्वासोछ्वास ये चार प्राण या इनके दस भेदरूप प्राण जो शरीराश्रित हैं वे सिद्ध भगवानमें नहीं हैं इसीसे अमूर्तीक हैं। इंद्रियोंकी सहायता रहित अतीन्द्रिय ज्ञानके धारी, अनंत सुखी, अनंत बली, परम शुद्ध सर्वसिद्धिको प्राप्त श्री सिद्ध भगवान हैं उनका ध्यान करना चाहिये। अपने आत्माको सिद्धवत् अनुभव करके परमानन्द प्राप्त करना चाहिये।

चौदह गुणस्थान ।

मिथ्या सासन मिस्सो, अविरे देसव्रत सुद्ध समिद्धं ।
प्रमत्त अप्रमत्त भनियं, अपूर्वकरन सुद्ध संसुद्धं ॥ ६५८ ॥
अनिवर्त सूक्ष्मवतो, उवसंत कषाय क्षीण सुसमिद्दो ।
सजोग केवलिनो, अजोग केवली हुंति चौदसमो ॥ ६५९ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या सासन मिस्सो) १–मिथ्यात्व, २–सासादन, ३–मिश्र (अविरे देसव्रत सुद्ध समिद्धं) ४–अविरत सम्यग्दर्शन, ५–देशव्रत जो शुद्धता सहित है (प्रमत्त अप्रमत्त भनियं) ६–प्रमत्तविरत, ७–अप्रमत्तविरत कहा गया है (अपूर्वकरन सुद्ध संसुद्धं) ८–अपूर्वकरन जो परम शुद्ध है (अनिवर्त सूक्ष्मवतो) ९–अनिवृत्तिकरन, १०–सूक्ष्म लोभ (उवसंत कषाय क्षीन सु समिद्धो) ११–उपशांत कषाय, १२–क्षीण कषाय जहां कषाय भलेप्रकार क्षय होगई हैं (सजोग केवलिनो) १३–सयोग केवली जिन (अजोग केवली चौदसमो हुंति) १४–अयोग केवली जिन चौदहवां गुणस्थान है ।

भावार्थ—मोहनीयकर्म और योगके सम्बन्धसे चौदह गुणस्थान हैं । दसवें गुणस्थान तक मोह और योग दोनोंका सम्बन्ध है। ग्यारहवेंसे तेरहवेंका योगका ही सम्बन्ध है । चौदहवेंमें योग भी चंचल नहीं है ।

पहले पांच गुणस्थान परिग्रह धारियोंके होते हैं, छठेमे बारहवें तक परिग्रह त्यागी निर्ग्रंथ साधुओंके होते हैं। तेरहवां व चौदहवां गुणस्थान अरहंत केवली भगवानके ही होते हैं। सिद्ध भगवान सर्व गुणस्थानोंसे बाहर हैं ।

श्री गोमटसार जीवकांडमें कहा है—

जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु सम्भवेहिं भावेहिं । जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥ ८ ॥

भावार्थ—दर्शन मोहनीयादि कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाके होनेपर होनेवाले परिणामोंसे युक्त जो जीव होते हैं, उन जीवोंको सर्वज्ञ देवने उसी गुणस्थानवाला और

परिणामोंको गुणस्थान कहा है। इन गुणस्थानोंसे जीवके परिणामोंकी अशुद्ध व शुद्ध अवस्थाएँ मालूम पडती हैं।

मोहनीय कर्मके २८ भेद हैं–तीन दर्शन मोहनीय कर्म, मिथ्यात्व, सम्यक्त मिथ्यात्व ३ सम्यक्प्रकृति,। चारित्र मोहनीयके २५ भेद हैं–१६ कषाय, ९ नोकषाय। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद ये नौ नौ या इषत् या कम कषाय हैं। अनन्तानुबन्धी व मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। केवल अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे सासादन गुणस्थान होता है। मिश्र दर्शनमोहनीयके उदयसे तीसरा होता है। मिथ्यात्व एक या तीनों दर्शनमोहनीयके उपशम, क्षय, या क्षयोपशमसे तथा अनन्तानुबन्धीके उदय न होनेसे चौथा अविरत गुणस्थान होता है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यग्दर्शनकी व स्वरूपाचरणकी घातक हैं। श्रावक व्रतको रोकनेवाले अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदय न होनेसे पांचमा देशव्रत गुणस्थान होता है। सर्व त्यागको रोकनेवाले प्रत्याख्यानावरण कषायके उदय न होनेसे प्रमत्तविरत साधुका गुणस्थान होता है। संज्वलन चार कषाय तथा नौ नोकषायका मंद उदय होनेसे अप्रमत्त गुणस्थान होता है। इन्हींके अति मंद उदयपर अपूर्वकरण गुणस्थान होता है। जब चार संज्वलन कषाय व तीन वेदका ही उदय रह जाता है तब अनिवृत्तिकरण गुणस्थान होता है। जब केवल सूक्ष्म लोभका उदय रहता है तब दसवां गुणस्थान होता है। सर्व चारित्रमोहके उपशमसे ग्यारहवां व उसके क्षयसे बारहवां गुणस्थान होता है। चार घातीय कर्मोंके क्षयसे तेरहवां व योगोंके न रहनेपर चौदहवां गुणस्थान होता है।

ए चौदस गुनठानं, हुंति स सहाव सुद्ध मप्पानं।
अप्प सरूवं पिच्छदि, अप्पापरमप्प केवलं ज्ञानं॥ ६६० ॥

अन्वयार्थ—(ए चौदस गुनठानं) ये ऊपर कहे प्रमाण चौदह गुणस्थान (स सहाव सुद्ध मप्पानं हुंति) अपने स्वभावसे शुद्ध आत्माके ही होते हैं (अप्पा अप्प सरूवं पिच्छदि) जब आत्मा अपने आत्माके स्वभावका अनुभव करता है तब (केवलं ज्ञानं परमप्पा) केवलज्ञानको पाकर परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा स्वभावसे शुद्ध है तथापि संसार अवस्थामें कर्मोंके मैलके निमित्तसे ये चौदह श्रेणिया जीवोंके भावोंकी होजाती हैं। इनमेंसे जिस श्रेणीसे यह आत्मा अपने आत्मस्वरुपको अनुभव करने लगता है उस श्रेणीसे चढ़ता हुआ बारहवेंके अंतमें केवलज्ञानको पाकर परमात्मा होजाता है।

तत्वं च दव्व कायं, पदार्थ सुद्ध परम मप्पानं।
हेय उपादेय च गुनं, वर दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं ॥ ६६१ ॥

अन्वयार्थ—(तत्वं च दव्व कायं) सात तत्व, छःद्रव्य, पांच अस्तिकाय (पदार्थ सुद्ध परम मप्पानं) नव पदार्थ तथा शुद्ध परमात्माको जानकर (हेय उपादेय च गुनं) जो आत्मासे भिन्न तत्व है वह त्यागने योग्य हेय है। आत्माका जो गुण है वह ग्रहण करने योग्य उपादेय है (वर दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं) श्रेष्ठ व शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र ही उपादेय हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवका कर्तव्य है कि सात तत्व आदिको समझकर उसमें भेदविज्ञानके द्वारा विचार करे तो विदित होगा कि सात तत्व व नौ पदार्थ जीव और कर्म पुद्गलके बन्ध व मोक्षकी अपेक्षासे ही बने हैं। कर्मोंका आना आस्रव है, कर्मोंका बन्ध बन्ध है। कर्मका रुकना संवर है, कर्मका झडना निर्जरा है, सर्व कर्मोंका छूट जाना मोक्ष है। पुण्य कर्म प्रकृति पुण्य है, पाप कर्म प्रकृति पाप है तब कर्म पुद्गल हेय है, एक शुद्धात्मा उपादेय है। छः द्रव्य व पांच अस्तिकायोंमें भी एक शुद्ध जीव द्रव्य या जीव अस्तिकाय ही ग्रहण करने योग्य है। आत्माके स्वभावका श्रद्धान ज्ञान व चारित्र ही निश्चय रत्नत्रय है। जो आत्मानुभवरूप है यही मोक्षका मार्ग है, ऐसा सम्यक्ती समझता है।

टंकोत्कीर्न अप्पा, दंसन मल मूढ़ विरय अप्पानं।
अप्पा परमप्प सरूवं, सुद्धं ज्ञानमय ममल परमप्पा ॥ ६६२ ॥

अन्वयार्थ—(टंकोत्कीर्न अप्पा) टांकीसे उकेरी हुई मूर्तिके समान अविनाशी, स्वभावसे अमिट यह आत्मा है (दंसन मल मूढ विरय अप्पानं) दर्शन मोहनीय कर्ममलकी मूढ़तासे रहित यह आत्मा है (अप्पा परमप्प सरूवं) आत्मा परमात्म स्वरूप है (सुद्धं ज्ञान मयं) शुद्ध ज्ञानमई है (ममल परमप्पा) कर्ममलरहित परमात्मा है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी आत्माको शुद्ध निश्चयनयके द्वारा ऐसा अनुभव करता है कि यह सदा रहनेवाला है। त्रिकाल एकरूप द्रव्यस्वरूप है, द्रव्यका स्वभाव कभी मिटता नहीं। दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे जो मिथ्यात्वभाव होता है वह मिथ्यात्वभाव आत्मामें नहीं है। सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है। जिससे इस आत्माको अपने आत्माके सच्चे स्वरूपकी यथार्थ प्रतीति है। यह आत्मा निश्चयसे परमात्मा स्वरूप है, शुद्ध है, ज्ञानमई है, वीतराग है, कर्ममलरहित निरंजन स्वयं परमात्मारूप ही है।

रूवं भेय विज्ञानं, नय विभागेन सद्दहं सुद्धं।
अप्पसरूवं पिच्छदि, नय विभागेन सार्द्ध दिट्ठं ॥ ६६३ ॥

अन्वयार्थ—(भेयविज्ञानं) भेदविज्ञान (नयविभागेन सुद्धं रूवं सद्दहं) निश्चयनयके द्वारा परसे विभाग करके अपने शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान रखता है (नयविभागेन सार्द्ध दिट्ठं) नय विभागके साथ जो निर्मल दृष्टि है वह (अप्पसरूवं पिच्छदि) आत्माके स्वरूपको यथार्थ देखती है।

भावार्थ—जैन सिद्धांतमें निश्चयनय तथा व्यवहारनयके द्वारा आत्माके जाननेका उपदेश है। व्यवहारनय पर्याय दृष्टि है-नैमित्तिक अवस्था या भावोंको आत्माकी हैं ऐसा बतानेवाली हैं इसलिये यह नय अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। द्रव्यका सत्य निजस्वरूप नहीं बताती है जबकि निश्चयनय द्रव्य दृष्टि है। द्रव्यके मूल स्वरूपको अर्थात् उसके स्वभावको परसे भिन्न बतानेवाली है। व्यवहारनयसे देखनेपर यह आत्मा वर्तमानमें अशुद्ध है, रागी द्वेषी है, कर्ममलसहित है, ऐसी झलकती है।

निश्चयनयसे यह आत्मा शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप है, वीतराग है, विकार रहित है, परमानन्द स्वरूप है, परमात्मारूप है। दोनों नयोंसे पदार्थको जानकर निश्चयनयके द्वारा आत्माको अनात्मासे भिन्न जानना भेदविज्ञान है। जैसे धान्यको निश्चयनयसे देखनेपर चावल अलग भूसी अलग दिखलाई देगी। गंदे जलको देखनेसे जल अलग व मिट्टी अलग दिखलाई देगी। तिलोंमें तेल अलग व छिलका अलग दिखलाई देगा, इसी तरह अपने ही आत्माको देखनेसे निश्चयनय आत्माको अलग और कर्मोंको व शरीरको अलग दिखाएगा। इस तरह जो भेदविज्ञानसे अपने आत्माको शुद्ध देखता है, श्रद्धान करता है तथा अनुभव करता है वही सम्यग्दर्शनका धारी है।

मिथ्यात्व गुणस्थान।

उग्गवत तवादि जुत्तं, तववय क्रिया श्रुतं च अज्ञानं।
मिच्छात दोस सहियं, मिच्छात गुनस्थान व्रत संजुतं ॥ ६६४ ॥

अन्वयार्थ—(उग्गवत तवादि जुत्तं) बहुत कठिन व्रत तप आदि सहित हो परन्तु (मिच्छात दोस सहियं) मिथ्यात्वके दोष सहित हो तो (तव वय क्रिया श्रुतं च अज्ञानं) तप, व्रत, क्रिया व शास्त्र ज्ञान सब मिथ्या ज्ञान सहित हैं (व्रत संजुत्तं मिथ्यात गुनस्थानं) वह व्रती होकर भी मिथ्यात्व गुणस्थान वाला है।

भावार्थ—ऊपर कही गाथाओंमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया है जिसके आपा परका भेद विज्ञान नहीं है जो आत्माको परसे भिन्न अनुभव नहीं कर सक्ता है वही मिथ्यात्व गुणस्थानका धारी पर्याय बुद्धि बहिरात्मा है उसके मिथ्यात्व कर्म व अनन्तानुबन्धी कषायका उदय विद्यमान है। वह चाहे बहुत बड़े तपस्वी हो-महाव्रत या अणुव्रतका धारी है। बहुत क्रियाकांडमें मगन हो या बहुत शास्त्रोंका ज्ञाता हो तथापि मिथ्यात्व सहित उसका यह सब कार्य अज्ञानमय हैं। क्योंकि उसको न तो मोक्षका न तो मोक्षमार्गका सच्चा श्रद्धान है। उसके भीतर विषय कषायका कोई अभिप्राय अवश्य मौजूद है जिसके वशीभूत होकर वह व्यवहार चारित्र पाल रहा है। वह आत्मीक रसके स्वादसे बाहर है।

श्री गोम्मटसारमें इस गुणस्थानका स्वरूप यह कहा है—

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि। ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खुरसं जहा जरिदो ॥ १७ ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वभावको अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धान सहित होता है। उसको आत्मीक सच्चा धर्म उसी तरह नहीं रुचता है जैसे ज्वरसे पीडित मानवको मधुर रस नहीं रुचता है। अनादिकालसे जो जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें पड़े हैं उनके मिथ्यात्वकर्म व अनंतानुबंधी कषायका उदय है वे अनादि मिथ्यादृष्टी हैं। जो सम्यक्तको पाकर फिर मिथ्यात्व गुणस्थानमें आते हैं उनके किसीके दर्शनमोहकी तीनों प्रकृति व अनंतानुबन्धी कषाय सात प्रकृतिका व किसीके पांचका ही उदय रहता है। मिथ्यात्व गुणस्थान ही संसारके भ्रमणका मूल है।

सासादन गुणस्थान ।

एवं च गुन विसुद्धं, असुह कुभाव संसार सरनि मोहंधं ।
अप्प गुनं नहु पिच्छदि, संसय रूवेन दुभाव संजुत्तं ॥ ६६५ ॥
अप्पा परु पिच्छंतो, संसय रूवेन भावना जुत्तो ।
अंतराल व्रतीओ, न भुवनि न सिहरि वे संतो । ६६६ ॥

अन्वयार्थ—(एवं च गुन विसुद्ध अप्प गुनं नहु पिच्छदि) जो कोई ऊपर कथित शुद्ध गुणोंके धारी आत्माके स्वभावको नहीं अनुभव करता है किंतु (असुह कुभाव संसार सरनि मोहंधं) अशुभ खोटे भाव मई संसारके मार्गके मोहमें अन्धा होजाता है (संसय रूवेन दुभाव संजुत्तं) अथवा संशय करता हुआ दुकोटि भावमें फंस जाता है अर्थात् (अप्पा परू पिच्छंतो) आत्मा व पर पदार्थको जानता हुआ (संसय रूवेन भावना जुत्तो) संशयमय होकर निर्णय रहित भावोंमें उलझ जाता है (अंतराल व्रतीओ) वह सम्यग्दर्शनका व्रतधारी सम्यग्दर्शनसे गिरकर मिथ्यात्वमें आते हुए बीचकी अवस्थाका धारी है (न भुवनि न सिहरि वे संतो) न तो वह जमीनपर है न वह शिखरपर है, बीचमें है। यही सासादन गुणस्थानका स्वरूप है ।

भावार्थ—जब किसी उपशम सम्यग्दर्शनके धारी चौथे गुणस्थानवर्ती जीवके मिथ्यात्वका उदय तो न आया हो किंतु अनन्तानुबन्धी किसी कषायका उदय आगया हो तो वह सम्यग्दर्शनके शिखरसे गिरता है और मिथ्यात्वकी भूमिपर आरहा है, बीचके परिणामोंको सासादन गुणस्थान कहते हैं। न यहां सम्यक्त है न वहां मिथ्यात्व है। बीचमें कैसे भाव होते हैं सो यहां बताया है कि अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे या तो किसी इन्द्रिय विषयकी तीव्र इच्छामें, या किसी अभिमानमें या किसी विरोधीके साथ द्वेष भावमें या किसी विषय प्राप्तिके लिये मायाचारमें फंस जाता है। खोटे संसारके मार्गके मोहमें अंधा हो जाता है या उसके भीतर संशय पैदा हो जाता है कि आत्मा है या नहीं या अनात्मा ही आत्मा है क्या, या आत्माका स्वरूप जैन सिद्धांत कहता है वह ठीक है या वेदांतादि कहता है वह ठीक है। यद्यपि न तो विपरीत

मिथ्यात्व न संशय मिथ्यात्व ही होता है। किंतु विपरीत या संशय मिथ्यात्वकी तरफ गिरता हुआ कोई न कहने योग्य भाव होता है। इसका काल अधिकसे अधिक छः आवली व कमसे कम एक समय होता है। यह नियमसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें गिर पडता है। गोम्मटसारमें कहा है—

आदिम सम्मत्तद्धा समयादो छावलित्ति वा सेसे। अण अण्णद रुदयादो णासिय सम्मोति सासणक्खो सो ॥ १९ ॥

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादोमिच्छभूमि समभिमुहो। णा सियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥ २० ॥

भावार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त या द्वितीयोपशम सम्यक्तकालमें जब एक समयसे लेकर छः आवली तक काल बाकी रहता है तब अनन्तानुबन्धी चार कषायोंमेंसे किसी एकका उदय आनेपर सम्यग्दर्शनसे गिर जाता है। सम्यक्के रत्नमय पर्वतके शिखरसे गिरकर मिथ्यात्वकी भूमिमें आ-रहा है बीचके परिणामोंको सासादन गुणस्थान कहते हैं। आंखकी टिमकारसे भी कम काल एक आवलीमें लगता है। समय बहुत ही सूक्ष्म काल है, एक आंखकी टिमकारमें असंख्यात समय होजाता है।

मिश्र गुणस्थान।

मिश्रं मिश्र सहावं, षट्दर्सन सुभाव संजुत्तो।
अप्पा परु जानंतो, जैनोक्तं दंसनं ज्ञान बुझंतो ॥ ६६७ ॥

अन्वयार्थ—(मिश्रं मिश्र सहावं) मिश्र गुणस्थानका सम्यक्त मिथ्यात्वका मिला हुआ स्वभाव है (षट् दर्सन सुभाव संजुत्तो) ऐसा मिश्र गुणस्थानधारी छहों दर्शनोंके स्वभावोंको जानता है (जैनोक्तं दंसनं ज्ञान बुझंतो) तथा जैन शास्त्रमें कहे हुए जैनदर्शनके ज्ञानको भी रखता है (अप्पा परु जानंतो) आत्मा और परको भी जानता है परंतु उसका श्रद्धान मिला हुआ होता है।

न्याइक बौद्ध संजुत्तो, चारवाक सिव भट्ट पिच्छंतो।
षट्दर्सन मिश्रंतो, तव वयं काय तत्त जानंतो ॥ ६६८ ॥

अन्वयार्थ—(न्याइक बौद्ध संजुत्तो) मिश्र गुणस्थान धारी जैन दर्शनके साथ २ नैयायिक, बौद्ध, दर्शनको जानता है (चारवाक सिव भट्ट पिच्छन्तो) चारवाक दर्शन, शिव मत या सांख्य दर्शन, तथा भट्टके मीमांसक मतको जानता है (षट् दर्शन मिश्रंतो) छहों दर्शनोंमेंसे छहोंके या किसी दो, तीन, चार, पांचके मिश्र भावको रखता हुआ (तव वयं काय तत्त जानंतो) तप, व्रत, पालता है व पंचास्तिकाय व सात तत्व जानता है। या छः कायोंके जीवोंको पहचानता है।

व्रत क्रिया संजुत्तो, तव संजम मिच्छ भाव संजुत्तो।
कुओंधि कुरिधि संजुत्तो, दधिगुड मिश्र भाव मिश्रंतो ॥ ६६९ ॥

अन्वयार्थ—(व्रत क्रिया संजुत्तो) व्रत व चारित्र पालता है (तव संजम) तप व संयम धारण किए हुए हैं तथापि (मिच्छ भाव संजुत्तो) मिथ्यात्वके भाव सहित है (कुओंधि कुरिधि संजुत्तो) उसे कुअवधि-ज्ञान व कुरिद्धियां भी होती हैं (दधि गुड मिश्र भाव मिश्रंतो) दही गुडके मिश्र स्वादके अनुसार उसका भाव सम्यक्त व मिथ्यात्वसे मिला हुआ होता है।

रागमय मोह सहिओ, मिच्छा कुज्ञान सयल संजुत्तो।
पुन्य सहावे जुत्तो, रागमय मिश्र गुणस्थान संजुत्तो ॥ ६७० ॥

अन्वयार्थ—(रागमय मोह सहिओ) वह राग और मोह सहित होता है (मिच्छा कुज्ञान सयल संजुत्तो) मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान सहित होता है (पुन्य सहावेन जत्तो) पुण्यमई शुभ कार्योंमें लीन होता है (रागमय मिश्र गुणस्थान संजुत्तो) रागमई होता है, ऐसा मिश्र गुणस्थानधारी होता है।

भावार्थ—यहां चार गाथाओंमें मिश्र गुणस्थानका स्वभाव बताया है। वर्तमान कालके मानवोंकी अपेक्षा मिश्र भावको दिखलाते हुए तारणस्वामीने कहा है कि जो कोई जैन दर्शनके साथ२ बौद्ध, नैयायिक, चारवाक, सांख्य तथा पूर्व या उत्तर मीमांसाका भी श्रद्धान रखता है-जैनके साथ अन्य पांचका या चारका या तीनका या दोका या किसी एकका श्रद्धान हो वह मिश्र गुणस्थान है।

जैन शास्त्रानुसार व्रत, तप, क्रिया पालने हुए पर्यायबुद्धि रूपी मिथ्यात्व भाव भी सम्यक्तके साथ हो वह मिश्र गुणस्थान है। अवधि ज्ञानी व रिद्धि धारी कोई साधु चौथे या छठे या पांचवे

गुणस्थानसे गिरकर मिश्रमें आजाता है तब उसका अवधिज्ञान व रिद्धि लाभ भी मिश्र श्रद्धान सहित होजाता है। तब सुअवधि व सुरिद्धि लाभ नहीं रहता है। जैसे दही व गुडका स्वाद मिला हुआ रहता है, वैसे सम्यक्त व मिथ्यात्वका मिला हुआ कोई अनुभवगम्य श्रद्धान होता है, कोई जैन धर्मानुसार शुभ कार्य करता हो, परन्तु संसारका राग या मोहभाव, वैराग्यके साथमें आजावे व सच्चे ज्ञानके साथ मिथ्याज्ञान हो वह सब मिश्रगुणस्थानका स्वरूप जानना चाहिये। इस गुणस्थानमें मिश्र दर्शनमोहका उदय होता है। अनन्तानुबन्धी कषाय तथा मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता है। गोमटसारमें इसका स्वरूप बताया है—

दहिगुडमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं। एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छोत्तिणादव्वो ॥ २२ ॥

सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं। सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ २३ ॥

भावार्थ—जैसे दही और गुडको मिलानेपर मिला हुआ स्वाद आता है, अलग २ दोनोंका स्वाद नहीं आसक्ता है, उसी तरह सम्यक्त और मिथ्यात्वका मिला हुआ भाव मिश्र भाव है, यह तीसरा गुणस्थान एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं रहता है। यह मुनिव्रत व श्रावकके व्रतको नहीं ग्रहण करता है, यदि बाहरीमें पहलेसे हो तो वे यथार्थ नहीं होते हैं। इस गुणस्थानमें किसी आयु कर्मका भी बन्ध नहीं होता है न वहां मरण ही होता है। सम्यग्दर्शन या मिथ्या दर्शनमें आकर ही यह जीव मरता है। सादि मिथ्यात्वी भी चढकर मिश्र गुणस्थानी होसक्ता है और चौथे, पांचवें, छठेसे गिर करके भी यह गुणस्थान होता है। अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदय न होनेसे इसकी प्रवृत्ति तीव्र अन्याय रूप या तीव्र राग रूप या तीव्र पापरूप नहीं होती है। यह भद्र परिणामी होता है। परिणामोंकी जाति शुद्ध नहीं रहती है। निर्मल पानीमें कुछ मिट्टी मिला दी जाय ऐसी गंदली परिणति होजाती है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ।

अविरै सम्माइट्ठी जानै विच्छेद सुद्ध संमत्तं ।
षट् दव्व पंच कायं, नव पयथ सप्त तत्त पिच्छंतो ॥ ६७१ ॥

अन्वयार्थ—(अविरै सम्माइट्ठी) अविरत सम्यक्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थानवर्ती (सुद्ध संमतं पिच्छेद) शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शनको अनुभव करता है (षट् दव्व पंच कायं नव पयथ सप्त तत्तु पिच्छंतो) छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थ तथा सात तत्वपर श्रद्धान रखता है।

भावार्थ—चौथे गुणस्थानका स्वरूप यह है कि व्रत श्रावकके व मुनिके न होते हुए भी, संयमका नियम न होते हुए भी, जहां शुद्ध सम्यग्दर्शन हो वह अविरत सम्यग्दर्शन है। इस गुणस्थानधारीको आत्मा और अनात्माका सच्चा भेदविज्ञान होता है। वह शुद्ध आत्माको पहचानता है। आत्माके रसका स्वाद भी लेता है। व्यवहारमें उसको छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थ व जीवादि सात तत्वोंका जिनेंद्रके आगमके अनुसार दृढ पक्का श्रद्धान होता है।

अप्पसरूवं, पिच्छदि, वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छंतो ।
सहकारे तव सुद्धं, हैय उपादेय जानए निश्चं ॥ ६७२ ॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव (अप्प सरूवं पिच्छदि) आत्माके स्वरूपको अनुभव करता है (वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छंतो) निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका अनुभव करता है (सहकारे तव सुद्धं) सम्यग्दर्शनकी सहायतासे शुद्ध तप करता है (हेय उपादेय निश्चं जानए) त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्वको निश्चयसे यथार्थ जानता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवको भेदविज्ञान होता है इसलिये वह निज आत्माके स्वभावको ग्रहण कर लेता है और उसके सिवाय सर्व पर द्रव्य पर गुण पर पर्यायका त्याग कर देता है। वह जानता है कि निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही है। इसलिये सर्व पर पदार्थोंसे रागद्वेष त्यागकर परम समताभावमें लीन होकर निश्चिन्त होकर निज आत्माका ही अनुभव करता है। वह तप भी आत्म-शुद्धिके लिये ही करता है। वह भूलकर भी निदान नहीं करता है।

सुद्धं सुद्ध सहावं, देवं देवाधि सुद्ध गुरु धम्मं ।
जानै निव अप्पानं, मल मुक्कं विमल दंसनं सुद्धं ॥ ६७३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सुद्ध सहावं देवाधिदेवं) सम्यग्दृष्टी जीव वीतराग व शुद्ध स्वभावधारी देवोंके देव श्री अर्हंत सिद्ध भगवानको देव (सुद्ध गुरु धम्मं) शुद्ध निर्दोष परिग्रह त्यागीको गुरु और वीतराग विज्ञानमई शुद्ध धर्मको धर्म निश्चय रखता है (निव अप्पानं जानै) अपने आत्माको पहचानता है (मल-मुक्कं विमल सुद्धं दंसनं) उसके ही पचीस मल दोष रहित निर्मल शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव ही सच्चे देव गुरु धर्मको पहचानता है। आत्मामें आत्मारूप रहनेवाले अर्हंत सिद्धको देव, आत्मरमी निर्ग्रंथको साधु, आत्मानुभवको धर्म जानता है। अपने आत्माको परमात्माके समान निर्विकार ज्ञातादृष्टा अनुभव करता है-सम्यक्तके २५ दोषोंको बचाता है। शुद्ध सम्यग्दर्शनका आचरण करता है।

पंचाचार विया नदि, परिनय सुद्ध भाव सम्मत्तं ।
जिन वयनं सद्दहनं, सद्दहनं सुद्ध अमल सम्मत्तं ॥ ६७४ ॥

अन्वयार्थ—(पंचाचार विया नदि) सम्यग्दृष्टी जीव पांच प्रकारके आचारको समझता है (परिनय सुद्ध भाव सम्मत्तं) शुद्ध भावकी श्रद्धामें परिणमन करता है (जिन वयनं सद्दहनं) श्री जिनेन्द्रकी वाणीका श्रद्धान रखता है (सुद्धं अमल सम्मत्तं सद्दहनं) आत्मानुभूति रूप निश्चय निर्मल सम्यक्तका वह श्रद्धानी होता है।

भावार्थ—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पांच व्रतोंके आचरणसे जीवका हित होता है या दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य इन पांच आचारोंको पालना चाहिये। ऐसा दृढ श्रद्धान सम्यग्दृष्टीको होता है। उसके श्री जिनेन्द्रके आगमका पक्का विश्वास होता है। वह शुद्ध आत्माके रमणमें रुचि रखता हुआ उसीका अनुभव करता रहता है। वह यह भलेप्रकार समझता है कि निश्चय सम्यग्दर्शन वहींपर है जहां निर्मल आत्माके आनन्दका स्वाद लिया जावे।

रागादि दोस विरयं, असुद्धं परिनाम भाव विरयंतो ।
विरइ पमाई सव्वं, विरयं संसारसरनि मोहंधं ॥ ६७५ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि दोस विरयं) सम्यग्दृष्टि अन्तरंगमें सर्व औपाधिक रागादि दोषोंसे विरक्त होता है। (असुद्ध परिनाम भाव विरयंतो) शुद्धोपयोगके सिवाय सर्व अशुद्ध परिणामोंसे उदासीन होता है। (सव्वं पमाई विरइ) सर्व प्रमाद भावोंसे वैरागी होता है। (संसार सरनि मोहंधं विरयं) संसार मार्गमें पटकनेवाले अज्ञानमय मोहसे शून्य होता है।

भावार्थ—मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायके उदय न होनेसे सम्यग्दृष्टिको अपने शुद्ध आत्माकी व मोक्षकी ऐसी दृढ रुचि होजाती है कि उसको कर्म जनित सर्व रागादि दोष रोगके समान झलकते हैं। शुद्ध आत्मीक स्वभावकी परिणतिमें रमण करना ही उसका क्रीडा वन होजाता है। वह संसारकी किसी भी पर्याय इंद्र चक्रवर्ती आदिका मोही नहीं रहता है। वह सर्व प्रमाद भावोंसे विरक्त रहता है। मूल भेद प्रमादके पन्द्रह हैं—चार विकथा-स्त्री, भोजन, देश, राजा, पांच इंद्रिय, चार कषाय, निद्रा व स्नेह। इसके उत्तर भेद अस्सी होजाते हैं। ४×५×४×१×१=८० हरएक प्रमाद भावमें पांच भावोंका संयोग होता है। एक कोई कथा, एक कोई इंद्रिय, एक कोई कषाय, निद्रा तथा स्नेह। जैसे किसीने पुष्प सूंघनेका भाव किया, इस प्रमाद भावमें भोजन कथा, घ्राण इंद्रिय, लोभ कषाय, निद्रा तथा स्नेह गर्भित हैं। इंद्रियोंके विषय व कषायके विकारोंसे पूर्ण अरुचिको रखनेवाला सम्यक्ती जीव होता है।

मिच्छात समय मिच्छा, समय प्रकृति मिच्छ सद्‌भावं।
कषायं अनंतानं, तिक्तंति प्रकृति सप्त सद्‌भावं ॥ ६७६ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छात समय मिच्छा समय प्रकृति मिच्छ सद्‌भावं) मिथ्यात्व कर्म, सम्यक्त मिथ्यात्व कर्म, व सम्यक्त प्रकृति कर्म इनके उदयको (कषायं अनंतानं) व चार अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयको (सप्त प्रकृति सद्‌भावं तिक्तंति) इस तरह सात प्रकृतियोंके उदयको सम्यक्ती त्याग देता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनकी घातक सात कर्मकी प्रकृतियां हैं। उपशम सम्यक्तीके इनका उपशम रहता है। क्षायिक सम्यक्ती इनका क्षय करता है। क्षयोपशम सम्यक्तीके केवल सम्यक्त प्रकृतिका उदय होता है। शेष छःका उपशम या चारका क्षय, दोका उपशम, या पांचका छः एकका उपशम, या छःका क्षय एकका उदय होता है। इसीलिये अविरत सम्यक्ती मोक्षका पक्का श्रद्धावान होता

है। क्षयोपशम सम्यक्तीके सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे केवल कुछ मलीनता सम्यक्त भावमें रहती है। क्षायिक व औपशमिक सम्यक्त निर्मल होते हैं। उपशम सम्यक्तकी स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ही है। क्षयोपशमकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट छासठ सागर है। क्षायिककी अनन्तकाल है। मोक्ष जानेकी अपेक्षा वह अधिकसे अधिक और तीन भव लेकर मोक्षको चला जायगा।

जिन वयनं सद्दहनं, सद्दहै अप्प सुद्ध सद्भावं।
मतिज्ञान रूव जुतं, अप्पा परमप्प सद्दहै सुद्धं ॥ ६७७ ॥

अन्वयार्थ—(जिन वयनं सद्दहनं) सम्यग्दृष्टीको जिनवाणीका दृढ श्रद्धान होता है (सद्दहै अप्प सुद्ध सद्भावं) वह आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान रखता है (अप्पा परमप्प सुद्धं सद्दहै) आत्माको परमात्माके समान शुद्ध श्रद्धानमें लेता है (मतिज्ञान रुव जुतं) वह मतिज्ञान श्रुतज्ञान व कोई २ साथ ही रूपी पदार्थोंको जाननेवाले अवधिज्ञान सहित भी होता है।

भावार्थ—व्यवहारमें जिनवाणीके द्वारा कथन किये हुए तत्वोंका सम्यक्ती दृढ़ श्रद्धानी होता है। निश्चयसे वह अपने ही आत्माके शुद्ध स्वरूपका श्रद्धानी होता है। सम्यक्ती चारों गतियोंमें होता है। देव व नारकी सर्व तीन ज्ञानधारी सम्यक्ती होते हैं। मानव व पशुओंके साधारणतया मतिश्रुत दो ज्ञान होते हैं। किसी किसीके अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे अवधिज्ञान भी पैदा होजाता है या तीर्थंकर जन्मसे ही तीन ज्ञानधारी होते हैं। इस तत्वज्ञानीके भीतर मिथ्याज्ञान बिलकुल नहीं रहता है-वह इन्द्रियोंके द्वारा व मनके द्वारा जो कुछ जानता है उसके भीतर हेय उपादेय बुद्धि करके मात्र एक निज आत्माको ही उपादेय मानता है।

आरति रौद्रं च विरयं, धम्मध्यानं च सद हे सुद्धं।
अविरय सम्माइट्ठी, अविरय गुनठान अव्रती सुद्धं ॥ ६७८ ॥

अन्वयार्थ—(आरति रौद्रं च विरयं) सम्यक्ती भव्य जीव चार प्रकार आर्तध्यान व चार प्रकार रौद्र ध्यानसे जो संसारके कारण हैं व परिणामोंको मलीन रखनेवाले हैं, विरक्त रहता है (सुद्धं धम्म ध्यानं च सद है) शुद्धोपयोगरूप धर्मध्यानकी ही रुचि रखता है। (अविरय सम्माइट्ठी) ऐसा पांच व्रतोंकी प्रतिज्ञा

रहित सम्यक्‌दृष्टी (सुद्धं अव्रती) भावोंकी अपेक्षा शुद्ध परंतु व्रत रहित होता है (अविरय गुनठान) क्योंकि अविरत गुणस्थानमें है।

भावार्थ—अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका उदय होता है जिससे वह चारित्र धारनेको उत्सुक होनेपर भी चारित्रको धार नहीं सक्ता है। वह संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होता है इससे शारीरिक व मानसिक कष्टोंके भीतर उलझता नहीं और न सांसारिक सम्पत्तिके लिये हिंसादि पाप कर्मोंकी अन्याय पुर्वक भावना करता है। वह आर्तध्यान व रौद्रध्यानसे विरक्त होता है। उसको धर्मकी चर्चा सुहाती है, वह धर्मध्यानका प्रेमी होता है। शुद्ध आत्माको अनुभवमें लाकर आत्मरस पीनेका दृढ रुचिवान होता है। श्रद्धानापेक्षा शुद्ध है, चारित्र अपेक्षा प्रतिज्ञारहित है, इसीसे अविरत सम्यग्दर्शनका धारी होरहा है।

गोम्मटसारमें कहा है—

णो इंदियेसु बिरदो णो जीवे थावरे तसे वापि। जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो इंद्रियोंके विषयोंका न तो त्यागी है और न त्रस स्थावर प्राणियोंकी हिंसाका त्यागी है परन्तु जो जिनेन्द्रकथित तत्वोंका दृढ श्रद्धानी है वही अविरत सम्यग्दृष्टी है। अपि शब्दसे यह सूचित होता है कि वह निरर्थक न तो इंद्रियोंकी प्रवृत्ति करता है न हिंसादि पाप करता है। तथा उसमें चार गुण भीतर झलकते हैं—

(१) प्रशम-शांतभाव, (२) संवेग-धर्मसे प्रेम, संसारसे वैराग्य, (३) अनुकम्पा-प्राणीमात्रपर दया, (४) आस्तिक्य-तत्वोंपर पूर्ण विश्वास, लोक परलोक पुण्य पापकी श्रद्धा। यद्यपि वह व्रती नहीं है तथापि व्रती होनेकी भावना रखता हुआ बहुत सम्हालके प्रवृत्ति करता है।

देशविरत गुणस्थान।

देस व्रत संजुत्तं, एको उदेस वय गहै सुद्धं।
अविरय गुन संजुत्तं, श्रुतज्ञानं च भाव उववन्नं ॥ ६७९ ॥

अन्वयार्थ—(देस व्रत संजुत्तं) जो सम्यक्ती जीव अणुव्रतोंको धारता है, (एको उदेस वय सुद्धं गहै)

एकोदेश शक्तिके अनुसार व्रतोंको निर्दोष पालता है (अविरय गुन संजुत्तं) तथापि व्रत रहित श्रावको भी साथमें लिये हुए है। (श्रुतज्ञानं च भाव उववन्नं) परन्तु जो भाव श्रुतज्ञान विशेषपने प्राप्त किये हुए हैं। अर्थात् जिसका आत्मानुभव बढ गया है, वही पंचम गुणस्थानवर्ती देशव्रती श्रावक है।

भावार्थ—जब अप्रत्याख्यानावरण कषायका उपशम हो जाता है तब सम्यक्ती प्रतिज्ञावान होता है। वह अहिंसादि पांचों व्रतोंको पूर्ण न ग्रहण करके एकदेश पालने लगता है। जितने अंश पांच पापोंका त्यागी होता है उतने अंश व्रती है। जितने अंश त्यागी नहीं होता है उतने अंश अव्रती है। कषायोंकी मलीनता विशेष दूर हो जानेसे यह सम्यक्ती जीव चौथे दरजेकी अपेक्षा अधिक शुद्धात्माका अनुभव कर सक्ता है।

दंसन वय सं भाई, पोसह सचित्त राय भत्तीए।
बंभारंभ परिग्गह, अनुमनु उद्दिस्ट देस विरदोय ॥ ६८० ॥

अन्वयार्थ—(दंसन वय सं भाई) ग्यारह प्रतिमाएं या श्रेणियां इस पंचम गुणस्थानमें होती हैं। १-दर्शन प्रतिमा, २-व्रत प्रतिमा, ३-सामायिक प्रतिमा, (पोसह सचित्त राय भत्तीए), ४-प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५-सचित्त त्याग प्रतिमा, ६-रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा (बंभारंभ परिग्गह), ७-ब्रह्मचर्य प्रतिमा ८-आरंभ त्याग प्रतिमा, ९-परिग्रह त्याग प्रतिमा (अनुमनु उद्दिस्ट देस विरदोय), १०-अनुमति त्याग प्रतिमा, ११-उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा। ये सर्वादेशव्रती हैं।

भावार्थ—दर्शन प्रतिमासे चारित्रका धारना प्रारंभ होता है। फिर प्रत्येक श्रेणीमें चारित्र पहला बना रहता है। और कुछ बढ जाता है। इस तरह बढते बढते ग्यारहवी प्रतिमामें वह साधुके निकट पहुंच जाता है। ऐलक एक लंगोटी मात्र रखते हैं, उसके त्याग देनेसे निर्ग्रंथ मुनि हो जाते हैं। इन प्रतिमाओंका विस्तारपूर्वक कथन उन गाथासे ३१७ पर्यंत पहले किया जाचुका है—

पंच अनुव्वयाइं, व्रत तप क्रियं च सुद्ध सद्भावं।
ज्ञान सहाव ति सुद्धं, सुद्धं च अप्प परम पदविंदं ॥ ६८१ ॥

अन्वयार्थ—(पंच अनुव्वयाइं) श्रावक पांच अणुव्रतोंका धारी होता है। (व्रत तप क्रियं च सुद्ध सद्भावं)

शुद्ध भावोंके साथ यह श्रावक व्रत, तप, व क्रिया आचरण पालता है। (ज्ञान सहाव ति सुद्धं) उसका ज्ञान स्वभाव व रत्नत्रय मई भाव शुद्ध होता है। (सुद्धं च अप्प परम पद विंदे) वह शुद्ध आत्माको व परम पद मोक्षको अनुभव करता है।

भावार्थ—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इनको एकोदेश पालना अणुव्रत है। संकल्पी हिंसा त्यागना स्थूल असत्य व चोरी त्यागना, स्वस्त्रीमें संतोष रखना व सम्पत्तका प्रमाण कर लेना। ऐसे पांच अणुव्रतोंको यह श्रावक शुद्ध सम्यक्तभावसे पालता है, किसी लौकिक फलकी इच्छा नहीं रखता है। उसका सर्व व्रत, उपवास, खानपानादि आचरण शुद्ध भावोंके साथ माया-शल्य रहित होता है। रत्नत्रय धर्ममई शुद्ध आत्माका वह प्रेमी होता है और मोक्षके हेतुसे आत्मध्यानका अभ्यास बढाता रहता है।

अप्पा अप्प सरूवं, विरइय मिच्छात दोस संकाई।
अवयास सुद्ध धरनं, मनरोहो निई अप्पानं ॥ ६८२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा अप्प सरूवं) आत्माको आत्मीक स्वरूपमय निश्चय करना (विरइय मिच्छात दोस संकाई) मिथ्यात्वादि दोष व शंका आदिसे विरक्त रहना (अवयास सुद्ध धरनं) अपने आत्माके क्षेत्रको संकल्प विकल्पोंसे रहित शुद्ध धारण करना (मनरोहो निई अप्पानं) मनको रोककर अपने आत्माको अनुभवना यह देशव्रतीका मुख्य कार्य है।

भावार्थ—देशव्रती श्रावक जब बाहरसे बारह व्रतोंका साधन करता है तब अंतरंगमें वह अपने भीतरसे सर्व राग द्वेषको व सर्व शंकादि दोषोंको दूर कर शुद्ध आत्माका ध्यान करनेका दृढतासे अभ्यास करता है।

मनवयनकाय सुद्धं, उक्त सभावे सुनिश्च जिनवयनं।
दत्तं पत्त विसेषं, एको उद्देस देसव्रत ग्रहनं ॥ ६८३ ।

अन्वयार्थ—(मनवयनकाय सुद्धं) मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक (उक्त सभावे सुनिश्च जिनवयनं) जो जिनवचनोंके कहे अनुसार आत्माका स्वभाव निश्चय करके भावना करता है (दत्तं पत्त विसेषं) जो दातार भी है व पात्र भी है (एको उद्देस देसव्रत ग्रहनं) ऐसा श्रावक एकोदेश व्रतोंका धारी है।

भावार्थ—पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक जिनवचनोंको भलेप्रकार श्रद्धापूर्वक माननेवाला है अर्थात् जिनवाक्यानुसार स्वतत्व परतत्वको जानकर निश्चय करनेवाला है। पांच अणुव्रत व सात शीलोंको पालता है। ग्यारह प्रतिमाद्वारा चारित्रकी उन्नति व आत्मानुभवकी उन्नति करता है। यह श्रावक जहांतक परिग्रहका स्वामी है–आरंभ कार्यमें लीन है वहांतक दान भी पात्रोंको देता है इसलिये दातार है, तथा यह मध्यम पात्र है, दान लेनेके योग्य है। पहली प्रतिमासे लेकर छठी प्रतिमा तक मध्यम पात्रमें जघन्य पात्र है–सातमी आठमी नौमी प्रतिमाधारी मध्यममें मध्यम पात्र हैं। दशमी ग्यारहमी प्रतिमाधारी मध्यममें उत्तम पात्र हैं।

आरंभत्यागी श्रावकसे क्षुल्लक ऐलक तक मुख्यतासे ज्ञानदान व अभयदान करते हैं। शेष सर्व श्रावक चारों ही प्रकारका दान करते हैं। गोम्मटसारमें इस गुणस्थानका स्वरूप यह है:—

जो तसवहाउविरदो अविरदओ तहय थावरवहादो। एक्कसमयह्मि जीवो विरदाविरदो जिणेक्कमई ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो जिनेन्द्रदेवमें व उनके वाक्योंमें अपूर्व श्रद्धाको रखनेवाला है, त्रसकी हिंसासे विरक्त है उसी समय स्थावरकी हिंसासे विरक्त नहीं है इसलिये उसको विरताविरत कहते हैं। यह श्रावक संकल्पी हिंसाका त्यागी है। आरंभी हिंसाका त्यागी सातमी तक नहीं है। आगे आरम्भीका भी त्यागी है। जहांतक वस्त्रका पूर्ण त्याग नहीं है वहांतक पूर्ण आरम्भी हिंसाका त्याग नहीं है। इसीलिये इसको देशव्रती कहते हैं।

प्रमत्तविरत गुणस्थान।

अविरय भाव विजुत्तं, अनुवय भाव सुद्ध संधरनो।
धम्म झानं झायदि, मतिश्रुत ज्ञान संजुदं सुद्धं ॥ ६८४ ॥

अन्वयार्थ—(अविरय भाव विजुत्तं) प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती साधु अविरतभावसे विरक्त हैं–महा व्रती हैं (अनुवय भाव सुद्ध संधरनो) बाहरी व्रतोंके अनुकूल शुद्ध अहिंसक व निर्ममत्व भावको भलेप्रकार धरनेवाला है (सुद्धं मतिश्रुत ज्ञान संजुदं) शुद्ध मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानको रखता है (धम्मझानं झायदि) और धर्मध्यानको ध्याता है।

भावार्थ—छठा गुणस्थानवर्ती साधु प्रत्याख्यानावरण कषायोंके उपशमसे सर्व परिग्रह रहित निर्ग्रंथ है। हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म व परिग्रह इन पांच पापोंका पूर्ण त्यागी है। पांच इन्द्रिय व मन सम्बन्धी तथा त्रस स्थावरके वध सम्बन्धी, ऐसे बारह प्रकारका अविरत भाव जिसके परिणामोंसे चला गया है, जो अंतरंगमें शुद्ध आत्माके रमणमें वर्तता है, जिसका मतिज्ञान व श्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध है व जो निरंतर धर्मका ध्यान करता है।

अवहि उवन्नो भाओ, वयगहनं भाव संजदो सुद्धो।
विरओ संसार सरीरो, भोगं त्यजंति भोग उवभोगं ॥ ६८५ ॥

अन्वयार्थ—(अवहि भाओ उवन्नो) जिसको अवधिज्ञान उत्पन्न होसक्ता है (वयगहनं भाव संजदो सुद्धो) जो महाव्रतोंको ग्रहण करता हुआ शुद्ध भाव संयमी है (विरओ संसार सरीरो भोगं) जो संसार, शरीर तथा पंचेंद्रियके भोगोंसे विरक्त है (भोग उवभोगं त्यजंति) अतएव सर्व भोग व उपभोगोंका त्यागी है।

भावार्थ—यह महाव्रती साधु व्यवहारमें पांच महाव्रतोंको पालता हुआ अन्तरंगमें भावोंकी शुद्धता पूर्वक स्वरूपाचरण चारित्रमें लवलीन रहता है। जैसा इसका भेष है वैसा ही इसका भाव है। यह संसारका लोभ त्यागकर मुक्तिका प्रेमी है। शरीरको अपवित्र नाशवंत जानकर आत्माको ऐसे शरीरके वाससे छुडाना चाहता है। इसने इन्द्रियोंके भोगोंको अतृप्तिकारी जानकर उनका सम्बन्ध त्याग दिया है। ऐसे पूर्ण वीतरागी साधुके ही अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होकर अवधिज्ञानकी प्राप्ति होसक्ती है।

संमत्त सुद्ध चरनं, अवहिं चिंतेइ सुद्ध स सरूवं।
अप्पा परमप्पानं, परमप्पा निम्मलं सुद्धं ॥ ६८६ ॥

अन्वयार्थ—(संमत्त सुद्ध चरनं) यह साधु शुद्ध सम्यग्दर्शनके आचरणको करनेवाला है (अवहिं चिंतेइ सुद्ध स सरूवं) अवधिज्ञानका चिंतवन करनेवाला है तथा शुद्ध आत्माके स्वरूपका अनुभव करनेवाला है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मा रूप जानकर (परमप्पा निम्मलं सुद्धं) निर्मल शुद्ध परमात्माका अनुभव करता है।

भावार्थ—यह साधु निश्चय सम्यग्दर्शनसे विभूषित होता है। कभी अवसर पाकर अवधिज्ञानको जोडकर पूर्व व आगामी भवोंकी बातें दूसरोंको बता देता है, शुद्ध आत्मस्वरूपका भलेप्रकार अनुभव करनेवाला है, अपने आत्मीक रसमें लीन हैं।

ग्रंथं बाहिर भिंतर, मुक्का संसार सरनि सद्भावं।
महावय गुन धरनं, मूलगुनं धरन्ति सुद्ध भावेन ॥ ६८७ ॥

अन्वयार्थ—(संसार सरनि सद्भावं) संसारके मार्गमें भ्रमण करानेवाले (बाहिर भिंतर ग्रंथ मुक्का) बाहरी भीतरी परिग्रहको त्यागकर (महावय गुन धरनं) महाव्रतोंके गुणोंको धरनेवाले हैं तथा (सुद्ध भावेन मूलगुनं धरंति) शुद्ध भावोंसे मूलगुणोंको पालते हैं।

भावार्थ—यह साधु संसारसे पूर्ण विरक्त हैं तब ही संसारके कारण ऐसे ग्रन्थ अर्थात् परिग्रहको त्यागकर निर्ग्रंथ होगए हैं। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेद यह चौदह प्रकार अन्तरंग परिग्रह हैं व क्षेत्र, मकान, गोधन, धान्य, चांदी, सोना, दासी, दास, कपडे, वर्तन यह दश प्रकार बाहरी परिग्रह हैं ऐसे २४ प्रकारके परिग्रहके त्यागी हैं। तथा शुद्ध भावोंसे पांच महाव्रतोंको आदि लेकर अठारह मूलगुणोंको पालनेवाले हैं। पांच महाव्रत + पांच समिति + पांच इन्द्रिय दमन + छः आवश्यक कर्म + स्नान त्याग + दंतधावन त्याग + भूमिशयन + खडे भोजन + एकवार भोजन + केशलोंच, ये अट्ठाईस मूलगुण हैं।

दंसन दहविहि भेयं, ज्ञानं पंच भेय उवएसं।
तेरह विहस्य चरनं, ज्ञान सहावेन महावयं सुद्धं ॥ ६८८ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन दहविहि भेयं) सम्यग्दर्शन दश भेदरूप है तथा (पंच भेय ज्ञानं उवएसं) ज्ञान पांच प्रकार है ऐसा उपदेश साधुजन देते हैं। (तेरह विहस्य चरनं) तेरा प्रकार चारित्र पालते हैं। (ज्ञान सहावेन सुद्धं महावयं) आत्मज्ञानके स्वभावमें तिष्ठना यह जिनके शुद्ध महाव्रत है।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु स्वयं पांच महाव्रत, पांच समिति व तीन गुप्ति ऐसे तेरह प्रकार चारित्र पालते हुए अपने उपदेशमें बताते हैं कि सम्यग्दर्शन दश प्रकारका है। उनका स्वरूप पहले कह

चुके हैं तथा यह भी बताते हैं कि ज्ञानके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल ऐसे पाच भेद हैं। वे साधु शुद्ध आत्माके ध्यानमें नित्य मगन रहते हैं, यही उनका निश्चय महान व्रत है।

ध्यानं च धम्म सुक्कं, आरति रौद्रं न दृष्टि दिस्टंतो।
अप्पा परमप्पानं, ज्ञान सहावेन महावयं हुंति ॥ ६८९ ॥

अन्वयार्थ—(ध्यानं च धम्म सुक्कं) जो धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानको ही मोक्षमार्ग जानते हैं (आरति रौद्रं दृष्टि न दिस्टंतो) आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान पर अपनी दृष्टि नहीं देते हैं। (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप जानकर ध्याते हैं (ज्ञान सहावेन महावयं हुंति) ज्ञान स्वभावसे उनके महाव्रत होता है।

भावार्थ—यह छठे प्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु अन्तरङ्गसे ज्ञानपूर्वक महाव्रतोंको पालते हैं। धर्मध्यानका तो अभ्यास करते हैं परन्तु शुक्लध्यानके पानेकी भावना भाते हैं। शुक्लध्यान आठवें गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है। आर्त व रौद्रध्यानसे अपनी रक्षा करते हैं। आत्माको परमात्मारूप जानकर निरन्तर आत्माका ही अनुभव करते हैं। निर्ग्रन्थ पद छठे गुणस्थानसे प्रारम्भ है।

गोम्मटसारमें कहा है—

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा। मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥ ३२ ॥

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि। सयलगुणशीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—सकल संयमको रोकनेवाली प्रत्याख्यानावरण कषायके उपशमसे जिसके पूर्ण संयम है परन्तु साथमें चार संज्वलन कषाय तथा नौ नोकषायके उदयसे संयममें मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद भी है इसलिये इस गुणस्थानको प्रमत्तविरत कहते हैं। यह महाव्रती सम्पूर्ण मूलगुण और शीलभावसे युक्त होते हुए भी प्रगट (अनुभवगोचर) व अप्रगट प्रमादको रखनेवाले हैं। इनका आचरण चित्रल होता है अर्थात् कभी तो यह ध्यानमग्न होजाते हैं, कभी यह आहार विहार करते हैं–या धर्मोपदेश देते हैं। सातवेंसे लेकर सर्व गुणस्थान ध्यानमई ही है। इस छठे गुणस्थानमें ही मुनिके प्रवृत्ति रूप चारित्र होता है। इस गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्त है, फिर सातवां होजावे। सातवेंसे छठा होजावे ऐसा वारवार होसक्ता है। पंचम गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्त भी है व जीवन-

पर्यंत भी है। आगेके सर्व गुणस्थानोंका काल अंतर्मुहूर्त है, मात्र तेरहवेंका जीवनपर्यंत है उसमें चौदहवें गुणस्थानका काल रह जाता है। प्रमादोंका विशेष स्वरूप गोम्मटसारसे जानना चाहिये।

अप्रमत्त विरत गुणस्थान।

अप्रमत्त अप्रमानं, धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलं सुद्धं।
अवहिदिधि संजुत्तो, खय उवसम भाव संसुद्धं ॥ ६९० ॥

अन्वयार्थ—(अप्रमत्त अप्रमानं) अप्रमत्त गुणस्थान प्रमाण नय आदिकी कल्पनासे रहित है (धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलं सुद्धं) वहां शुक्लध्यानकी भावना सहित व शुक्लध्यानका कारण निर्दोष शुद्ध धर्मध्यान है (अवहिदिधि संजुत्तो) किसीको अवधिज्ञान प्राप्त होता है (खय उवसम भाव संसुद्धं) यहां शुद्ध क्षयोपशम भाव है।

भावार्थ—सातवां अप्रमत्त गुणस्थान उसे कहते हैं कि जहां अपने आत्मस्वरूपमें किंचित् भी प्रमाद नहीं है, इसीलिये यहांपर साधु बिलकुल ध्यानमग्न रहते हैं-निर्विकल्प होकर आत्माका ध्यान करते हैं। उसके मनमें प्रमाण व नयका विचार नहीं आता है। आगम द्वारा द्रव्योंका विचार व शास्त्रोंका चिंतवन छठे प्रमत्तविरत गुणस्थानमें है, सातवेंमें नहीं है। यहां निर्मल धर्मध्यान है। जिससे शुक्लध्यान उत्पन्न होसक्ता है। कोई२ मुनि अवधिज्ञानको धारनेवाले होते हैं। यहां अभी चारित्रकी अपेक्षा न उपशम भाव है न क्षायिक भाव है किंतु क्षयोपशमिक भाव है। बारह कषायोंका उदयाभाव रूप क्षय तथा उपशम है। शेष चार कषाय व नौ नोकषायका अति मंद उदय है।

त्यक्तं रूव सुदिट्ठी, विगतं संसार सरनि सद्भावं।
सुद्धं परमानंदं, ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं ॥ ६९१ ॥

अन्वयार्थ—(त्यक्तं रूव सुदिट्ठी) अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु आत्माके प्रगट रूपको भले प्रकार अनुभव करता है (विगतं संसार सरनि सद्भावं) वह संसारके मार्गमें लेजानेवाले भावोंसे रहित हैं (सुद्धं

परमानंदं) शुद्ध परम आनन्दका स्वाद लेता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं) ज्ञान स्वभावी आत्मामें ठहरकर शुद्ध आत्म तपन रूप तपश्चरण करता है।

भावार्थ—सातवें गुणस्थानमें मन, वचन, काय तीनों स्थिर रहते हैं। ध्यानमग्न साधु शुद्धोपयोगमें ठहरकर अपने आत्माको स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा जानकर उसीमें तल्लीन होकर निश्चय तपका साधन करता है और कर्मोंकी निर्जरा करता है। गोम्मटसारमें इसका स्वरूप यह है—

णट्ठासेसपमादो वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी। अणुवसमओ अखवओ झाणणिलीणोहु अपमत्तो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—सर्व प्रमादोंसे रहित–महाव्रत, मूलगुण व शील स्वभावसे मंडित ज्ञानी जबतक उपशम या क्षपकश्रेणी न चढ़े तबतक ध्यानमें तल्लीन रहता है, यही अप्रमत्तविरत साधु है।

अपूर्वकरण गुणस्थान।

अपूर्वकरण अपूर्वं, अवधिं संजुत्त निम्मलं सुद्धं।
ज्ञान सहावं नित्यं, अप्पा परमप्प संजुत्तं ॥ ६९२ ॥

अन्वयार्थ—(अपूर्वकरण) अपूर्वकरण गुणस्थान धारी साधुके (अपूर्वं) पहले कभी नहीं हुए ऐसे अपूर्व उज्वल भाव होते हैं (अवधिं संजुत्त निम्मलं सुद्धं) कोई २ अवधिज्ञान सहित निर्दोष शुद्ध भावके धारी होते हैं (ज्ञान सहावं नित्यं) वे सदा ज्ञान स्वभावमें मग्न रहते हैं (अप्पा परमप्प संजुत्तं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करते हैं।

भावार्थ—चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृतिको उपशम करनेवाला साधु उपशम श्रेणी व क्षय करनेवाला साधु क्षपकश्रेणी चढता है। द्वितीयोपशम सम्यक्ती अनन्तानुबन्धी कषायको उपशम या उनको अप्रत्याख्यानावरण आदिमें विसंयोजन (पलटन) करके उपशम श्रेणी चढता है। क्षायिक सम्यक्ती भी उपशम श्रेणी चढ सक्ता है। क्षपक श्रेणीपर तो क्षायिक सम्यग्दृष्टी ही चढता है। श्रेणीका पहला गुणस्थान अपूर्वकरण है। यहां समय समय अपूर्व अनन्तगुणी विशुद्धता बढती जाती है। यहां पृथक्त्ववितर्कविचार नामका पहला शुक्लध्यान प्रारम्भ होजाता है। इस ध्यानमें साधु

एकाग्र रहता है तथापि अबुद्धि पूर्वक योग, शब्द व पदार्थका पलटन होजाता है। यहां शुद्धोपयोग उन्नतिरूप है। आत्मानुभवकी छटा भी अपूर्व है। गोम्मटसारमें कहा है—

एदह्मि गुणट्ठाणे विसरिससमयट्ठियेहिं जीवेहिं। पुव्वमपत्ता जह्मा होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इस गुणस्थानमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम अपूर्व २ होते हैं। भिन्न २ समयवर्ती ध्यानियोंके परिणाम कभी नहीं मिलते। एक ही समयमें चढनेवाले जीवोंके परिणाम सदृश व विसदृश दोनों प्रकारके होते हैं। इस गुणस्थानमें चढनेवाला सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानमें अधःकरण लब्धि द्वारा परिणामोंको समय २ अनन्तगुणा उज्वल करता है। ये परिणाम इस जातिके होते हैं कि भिन्न समयवर्ती जीवोंके मिल भी जावें व न भी मिलें। दूसरी लब्धि शुरू करते ही अपूर्वकरण गुणस्थान होता है तब भिन्न समयवर्तीके परिणाम कभी मिलते नहीं हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान।

अनिवरतं ससहावं, सुद्ध सहावं च निम्मलं भावं।
षय उवसम सद अर्थं, ज्ञान सहावेन अनिवर्तयं सुद्धं ॥ ६९३ ॥

अन्वयार्थ—(अनिवरतं ससहावं) अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें साधु आत्मस्वभावमें रहता है (सुद्ध सहावं च निम्मलं भावं) शुद्ध स्वभावमें मग्न रहता है, निर्मल भावोंका धारी होता है (षय उवसम सद अर्थं) यातो क्षपकश्रेणीपर होता है या उपशम श्रेणीपर होता है, सत्य अस्तिरूप आत्म पदार्थको (ज्ञान सहावेन) ज्ञान स्वभावमें ही तिष्ठकर ध्याता है (सुद्धं अनिवर्तयं) तब यह शुद्ध अनिवृत्तिकरणके परिणामोंको पाता है।

भावार्थ—जहां शरीर, आयु, इत्यादिमें भेद होनेपर भी एक समयवर्ती नानाजीवोंके परिणामोंमें समान समय समय विशुद्धताकी उन्नति हो—एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम समान रहे सो अनिवृत्तिकरण लब्धिधारी नौवां गुणस्थान है। यहां भी उपशम या क्षपकश्रेणी होती है।

प्रथम शुक्लध्यानसे यह साधु आत्मध्यानकी ऐसी अग्नि जलाता है जिससे सिवाय सूक्ष्मलोभके सर्व मोहनीय कर्मका उपशम या क्षय कर डालता है। गोम्मटसारमें कहा है—

एक्कह्मि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति । ण णिवट्टंति तहावि य परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जहां शरीरके आकार आदिके भेद होनेपर भी एक समयवर्ती सर्व जीवोंके विशुद्ध परिणामोंमें जहां कोई भेद न पाया जावे वह अनिवृत्तिकरण गुणस्थान है।

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान।

सूक्षम भाव संजुत्तं, क्षय उवसम भाव संजदो सुद्धो ।
निम्मल सुद्ध सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ६९४ ॥

अन्वयार्थ—(सूक्षमभाव संजुत्तं) सूक्ष्म लोभ भाव सहित साधु (क्षय उवसम भाव संजदो सुद्धो) क्षपक-श्रेणीपर या उपशम श्रेणीपर होनेवाले भावोंका धारी शुद्ध संयमी (निम्मल सुद्ध सहावं) निर्दोष शुद्ध आत्मस्वभावको ध्याता है (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्माको परमात्मारूप मलरहित व रागादि दोष रहित शुद्ध ध्याता है।

भावार्थ—जहां मात्र सूक्ष्म लोभका उदय इतना अल्प हो कि ध्याताको ध्यानमें न झलक सके ऐसे ध्यानमई साधुके दसमा सूक्ष्म लोभ नामका गुणस्थान होता है। यह प्रथम शुक्लध्यानमें मग्न होता हुआ शुद्धात्माका ही अनुभव करता है, अंतर्मुहूर्तमें ही लोभको उपशम या क्षय कर डालता है।

घाय चवक्कय विरयं, नंतचतुष्टय भावना सुद्धं ।
कम्ममल पयडि तिक्कं, ज्ञान सहावेन सूक्षमं परमं ॥ ६९५ ॥

अन्वयार्थ—यह साधु (घाय चवक्कय विरयं) चार घातीय कर्मोंसे विरक्त है (नंतचतुष्टय भावना सुद्धं) अनंतज्ञानादि चतुष्टयकी शुद्ध भावनामें लीन है (कम्ममल पयडि तिक्कं) सर्व कर्म प्रकृतियोंके उदयसे ममता रहित है (ज्ञान सहावेन परमं सूक्षमं) आत्मज्ञानके स्वभावमें ठहरकर परम सूक्ष्म आत्माका अनुभव करता है।

भावार्थ—दशवें गुणस्थानवर्ती साधुके अन्तरंगमें पूर्व अभ्याससे यह भावना बनी रहती है कि किसी तरह घातीय कर्मोंका नाश होकर आत्माके स्वाभाविक अनंतज्ञानादि गुणोंका विकास हो। वह सर्व कर्मोंके उदयको नहीं चाहता है, केवल शुद्ध आत्माका प्रेमी है। वह निश्चल ध्यानमें तिष्ठकर अतीन्द्रिय आत्माका स्वाद लेता है। गोम्मटसारमें कहा है—

धुदकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहमरायसंजुत्तं। एवं सुहमकसाओ सुहमसरागोत्ति णादव्वो ॥ ५९ ॥

भावार्थ—जैसे धुले हुए कसूमी वस्त्रके लालपना बहुत सूक्ष्म रह जाता है वैसे जो साधु अत्यंत सूक्ष्म राग सहित है वह सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवाला जानने योग्य है। यह साधु वीतराग चारित्रके अनुभवमें किंचित् ही कम है।



उपशान्त मोह गुणस्थान।

उवसंतोयकषायं, दर्सन मोहंध उवसमं सुद्धं।
संसार सरनि तिक्तं, उवसंतो पुन्य सव्वहा सव्वे ॥ ६९६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध उवसमं सुद्धं) जहां दर्शन मोहनीय कर्म बिलकुल उपशम या क्षय होगया है (उव सन्तोय कषायं) तथा चारित्र मोहनीय कर्म बिलकुल उपशम होगया है (संसार सरनि तिक्तं) जो संसारके कारण भावोंसे रहित होगए हैं (सव्वहा सव्वे पुन्य उवसंतो) जहां सर्वथा सर्व शुभ भावोंकी भी शांति होगई है, एक वीतराग यथाख्यात चारित्र है, वह उपशांत मोह नामका ही ग्यारहवां गुणस्थान है।

भावार्थ—उपशम श्रेणीपर चढनेवाला साधु दशवें गुणस्थानसे ग्यारहवेंमें आता है। यह साधु या तो द्वितीयोपशम सम्यक्ती या क्षायिक सम्यक्ती होता है। इसलिये सम्यक्त घातक सातों प्रकृतियां उपशम होरही हैं। तथा चारित्र मोहनीय सम्बन्धी इक्कीस कषायोंका यह शुक्लध्यानके बलसे उपशम कर चुका है। सर्व प्रकार मोहनीय कर्मके उदय न रहनेसे यहां यथाख्यात चारित्र या नमूनेदार वीतरागता प्रगट है। यहां न अशुभ भाव है न कोई शुभ भाव है मात्र शुद्धोपयोग है।

शुक्लेश्या है। यहां सिवाय साता वेदनीयके और किसी कर्मका आस्रव नहीं होता है। यह भी ईर्यापथ आस्रव है। दूसरे ही समयमें उसकी निर्जरा होजाती है। कषायोंके न होनेसे स्थिति व अनुभाग नहीं पडता है। यह दशा अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं रहती है। आत्मबलकी कमीसे फिर लोभका उदय आजाता है और यहांसे गिरकर दशवेंमें या धीरे २ सातवें तक आजाता है। सातवेंसे फिर एक दफे उपशम श्रेणी चढ सक्ता है या तद्भव मोक्षगामी क्षपकश्रेणी चढ सक्ता है। यदि संसार अधिक हो तो और भी नीचेके गुणस्थानोंमें यहांतक कि मिथ्यात्वमें भी जासक्ता है।

सुद्धो सुद्धादेसो, सुद्धो परमप्प लीन संजुत्तो।
षय उवसम संजुत्तो, ज्ञान सहावेन चरन्ति तवयरनं ॥ ६९७ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धो सुद्धादेसो) उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती साधु वीतराग हैं व शुद्ध शासन या श्रुतज्ञानके धारी हैं। (सुद्धो परमप्प लीन संजुत्तो) शुद्ध परमात्म स्वभावमें लीनतारूप शुक्लध्यानके धारी हैं। (षय उवसम संजुत्तो) क्षायिक या क्षितीयोपशम सम्यक्त सहित है (ज्ञान सहावेन तवयरनं चरन्ति) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर निश्चय तपश्चरण कर रहे हैं।

भावार्थ—उपशांत मोह भावके धारी निर्ग्रन्थ साधु निर्मल श्रुतज्ञानके धारी होकर अपने शुद्ध स्वभावमें लीन होते हुए शुक्लध्यानको ध्याते हैं-आत्माके स्वभावमें वीतरागता सहित तपश्चरण या रमण कर रहे हैं। गोम्मटसारमें कहा है—

कदकफलजुदजलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलयं। सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि ॥ ६१ ॥

भावार्थ—निर्मली फल सहित जलकी तरह या शरदऋतुमें सरोवरके पानीकी तरह जहां सर्व मोहका उपशम होगया है ऐसे वीतराग परिणामके धारीके उपशान्त कषाय गुणस्थान होता है। जैसे कतकफलसे मिट्टी नीचे बैठ जाती है पानी ऊपर निर्मल है या शरदऋतुमें मिट्टी नीचे बैठ जाती है, ऊपर सरोवरका पानी निर्मल होता है, वैसे जहां मोहका उदय दबा हुआ है, ऊपर भाव मोह रहित है सो उपशान्त मोह गुणस्थान है।

क्षीणमोह गुणस्थान।

षीन कसायं उत्तं, षीनं घाय कम्ममल मुक्कं।
षीयंति षीन मोहो, ज्ञान सहावेन संजुत्त तवयरनं ॥ ६९८ ॥

अन्वयार्थ—(षीन कसायं उत्तं) अब क्षीणकषायके बारहवें गुणस्थानको कहते हैं जहां (षीन मोहो षीयंति) सूक्ष्म मोह भी नष्ट होगया है (ज्ञान सहावेन तवयरनं संजुत्त) जो ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध आत्मतपनरूप तपश्चरण करते हैं (षीनं घाय कम्ममल मुक्कं) तथा जो अनन्त क्षीणताको प्राप्त घातीय कर्मोंके मलको छुडा रहे हैं वे क्षीणमोह गुणस्थान धारी है।

भावार्थ—क्षपकश्रेणीपर चढनेवाला साधु दशवें गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्म लोभका भी क्षय करके सर्व मोहनीय कर्मकी वर्गणाओंसे रहित होकरके इस गुणस्थानमें आकर पूर्ण वीतराग होजाता है और दूसरे शुक्लध्यानको ध्याता हुआ एकत्ववितर्क अवीचार परिणतिसे ध्यानमग्न होजाता है। इस शुक्लध्यानके अन्तर्मुहूर्त चलनेसे ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातीय कर्मोंका बल क्षीण होता चला जाता है। जब इनका बिलकुल क्षय होजाता है तब तेरहवां गुणस्थान प्रारम्भ हो जाता है। क्षय करनेकी क्रिया इसी गुणस्थानमें होती है।

मनपर्यय उववन्नं, धम्मं सुक्कं च निम्मलं रूवं।
रूवातीत सहावं, ज्ञान सहावेन अप्प परमप्पं ॥ ६९९ ॥

अन्वयार्थ—(मन पर्यय उववन्नं) कोई १ साधु मनःपर्यय ज्ञानके धारी होते हैं (धम्मं सुक्कं च निम्मलं रूवं) वे पहले निर्मल आत्म स्वभावरूप धर्मध्यानको सातवें गुणस्थान तक फिर आठवेंसे शुक्लध्यानको ध्याते हुए इस गुणस्थानमें आते हैं (रूवातीत सहावं) यहां अमूर्तीक आत्माके स्वभावमें लीन हैं (ज्ञान सहावेन अप्प परमप्पं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर आत्माको परमात्मारूप ध्याते हैं।

भावार्थ—किन्हीं साधुओंको मतिश्रुत दो ही ज्ञान होता है और बारहवेंमें चढ जाते हैं, कोई मतिश्रुत अवधि तीन ज्ञान धारी कोई मनःपर्यय ज्ञान सहित चार ज्ञान धारी होकर यहां आते हैं।

पहले निर्मल धर्मध्यान किया था उसीके बलसे यहां निर्मल शुक्लध्यानको ध्या रहे हैं। दूसरा शुक्लध्यान अति निश्चल है जिसके प्रतापसे बिलकुल थिर आत्मामें लीन हैं।

श्री गोम्मटसारमें कहा है—

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो। खीणकसाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहिं ॥ ६२ ॥

भावार्थ—सर्व मोहके क्षय होजानेसे जिस साधुके परिणाम स्फटिकके निर्मल वर्तनमें रक्खे हुए जलकी तरह अति निर्मल हैं, उसी निर्ग्रंथ साधुको क्षीण कषाय वीतराग देवोंने कहा है।

सयोग केवलि जिन गुणस्थान।

सजोग केवलिनो, आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो।
केवलज्ञान उवन्नो, अरहंतो केवली सुद्धो ॥ ७०० ॥

अन्वयार्थ—(सजोग केवलिनो) सजोग केवली भगवान (आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो) आहार व निहार दोनोंसे रहित शुद्ध वीतराग होते हैं (केवलज्ञान उवन्नो) जिनको केवलज्ञान उत्पन्न होगया है (अरहंतो केवली सुद्धो) वे ही पूज्यनीय अरहंत परमात्मा केवली शुद्धोपयोगी सयोग केवलि जिन गुणस्थान धारी हैं।

भावार्थ—जब चारों घातीय कर्म क्षय होजाते हैं तब निर्ग्रंथ साधु बारहवेंसे तेरहवेंमें आकर केवलज्ञानी अर्हंत परमात्मा सयोगी जिन कहलाते हैं। यहां अभी योगोंका हलन चलन है। इससे उपदेश होता है व विहार होता है। आत्मामें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य प्रकाशमान हैं। इसीसे शरीर सहित सकल या जीवन्मुक्त परमात्मा कहलाते हैं। केवली भगवानके क्षुधाकी बाधा नहीं सताती है न वे भिक्षाके लिये जाते हैं न वे कवलाहार करते हैं। उनके मात्र शरीरको पोषण करनेवाली नोकर्म वर्गणाओंका आहार स्वतः शरीरमें उसी तरह हो जाता है जैसे वृक्षोंके लेपाहार होता है। न उनके मलमूत्रका नीहार होता है। उनका शरीर शुद्ध कपूरकी तरह धातु उपधातु रहित होता है। वे स्फटिक रत्नकी तरह तेजस्वी शरीरधारी होते हैं,

वे शुद्धोपयोगमें लीन हैं, परम वीतराग हैं। उनकी शांत मुद्राका दर्शन करके देव, मानव, पशु सब तृप्त होजाते हैं। उनको सर्व ही भव्यजीव भद्र परिणामी पूजते हैं व नमन करते हैं।

श्री गोम्मटसारमें कहा है—

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो। णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥ ६३ ॥

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण। जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणइणिहणारिसे उत्तो ॥ ६४ ॥

भावार्थ—जिनके केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे अज्ञानका सर्वथा नाश होगया है, जिनके नव केवललब्धियां प्राप्त हैं उसीसे उन्होंने परमात्मा नाम पाया है। वे नव गुण हैं-क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य। वे भगवान अतीन्द्रिय असहाय ज्ञान व दर्शनके धारी हैं। योगोंसे युक्त होनेके कारण सयोगी हैं। घातीय कर्मोंके जीतनेसे जिन हैं। ऐसा अनादि निधन ऋषि-प्रणीत आगममें कहा है।

अयोग केवलि जिन गुणस्थान।

अजोग केवलिनो, परमप्पा निम्मलो सुद्धं।
आनन्दं परमानन्दं, नन्त चतुष्टय मुक्ति संपत्तो ॥ ७०१ ॥

अन्वयार्थ—(अजोग केवलिनो) अयोग केवली जिन चौदहवें गुणस्थान धारी (परमप्पा निम्मलो सुद्धं) मल रहित शुद्ध परमात्मा है। योगोंका हलन चलन भी नहीं है (परमानन्दं आनन्दं) स्वाभाविक परमानन्दमें मग्न हैं (नंतचतुष्टय मुक्ति संपत्तो) अनन्त चतुष्टय सहित मुक्तिको पहुंचनेवाले हैं।

भावार्थ—जब आयुकर्ममें इतना काल बाकी रह जाता है जितना काल अ इ उ ऋ लृ इन पांच लघु अक्षरोंके उच्चारणमें लगता है तब अरहन्त परमात्माका योग बिलकुल निश्चल होजाता है योग रहित होनेसे वे अयोगी जिन कहलाते हैं। यहां चौथा शुक्लध्यान होता है। इसीसे शेष अघातीय कर्मोंका भी क्षय कर यह मुक्तिको प्राप्त कर लेते हैं। गोम्मटसारमें कहा है—

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो । कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि ॥ ६९ ॥

भावार्थ—जो १८००० शीलोंके स्वामी होगए हैं-जिनके पूर्ण सहकारसे कर्मोंका आस्रव नहीं है, जिनके कर्मरूपी रज निर्जराको प्राप्त होरहा है, जिससे वे शीघ्र मुक्त होंगे ऐसे अयोगकेवली होते हैं।

गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान।

सिद्धं सिद्ध सरूवं, सिद्धं सिद्धि सौख संपत्तो ।
नंदो परमानंदो, सिद्धो सुद्धो मुनेअव्वा ॥ ७०२ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं सिद्ध सरूवं) सिद्ध भगवान अपने स्वरूपको सिद्ध कर चुके हैं (सिद्धि सौख संपत्तो सिद्धं) सिद्ध भगवानके होनेवाले अनन्त सुखको प्राप्त होकर जो सिद्ध भए हैं (परमानंदो नंदो) जो परमानन्दमें आनन्दित हैं। (सुद्धो सिद्धो मुनेअव्वा) वेही शुद्ध निरंजन सिद्ध हैं, ऐसा जानना योग्य है।

भावार्थ—जब आठों कर्म क्षय होजाते हैं तब कर्मजनित सर्व रचना भी दूर होजाती है इसलिये सिद्ध महाराज रागादि भावकर्म व शरीरादि नोकर्म रहित हैं, सर्व बाधासे रहित हैं, स्वाभाविक परमानन्दमें नित्य मगन हैं, जो साध्य था उसको सिद्ध कर चुके हैं, इसीसे सिद्ध कहलाते हैं। यही परमात्माका वास्तविक स्वरूप है।

ए चौदस गुन ठानं, रूवं भेयं च किंचि उवएसं ।
ज्ञान सहावे निपुनो, कमेनय विमल सिद्ध नायव्वो ॥ ७०३ ॥

अन्वयार्थ—(ए चौदस गुन ठानं) ऊपर कहे प्रकार चौदह गुणस्थानोंके (रूवं भेयं च किंचि उवएसं) स्वरूपका व भेदका कुछ उपदेश किया गया है (ज्ञान सहावे निपुनो) जो भव्य जीव अपने ज्ञान स्वभावमें लीन होनेमें प्रवीण हैं वह (कमेनय विमल सिद्ध नायव्वो) उसीको गुणस्थानोंके क्रमसे निर्मल सिद्धपना होता है ऐसा जानना योग्य है।

भावार्थ—जो कोई भव्य जीव मोक्ष गए हैं व जानेवाले हैं व अब जारहे हैं उनके लिये मोक्ष-मार्गपर चलनेका एक ही मार्ग है। जबतक इन गुणस्थानोंको क्रमसे पार करके शुद्ध भावोंकी उन्नति

न की जायगी तथा बाधक कर्मोंका क्षय न किया जायगा तबतक कोई भी शुद्ध सिद्ध परमात्मा नहीं होसक्ता है। गोम्मटसारमें कहा है—

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा। अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥ ६८ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंसे रहित हैं, जो परमानन्दके अनुभवमें लीन होकर परम शान्त हैं, जो कर्मोंके आस्रवके कारण भावोंसे रहित निरंजन हैं, जो अविनाशी हैं, कृतकृत्य हैं, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघु, अव्याबाधत्व इन आठ गुणोंके धारी हैं तथा लोकके अग्रभागमें सिद्धक्षेत्रमें तिष्ठते हैं वे ही सिद्ध हैं।

बावन अक्षर निरूपण।

ॐ नमः सिद्धं–अक्षर पांच।

ॐ वंकारं च ऊर्ध, ऊर्ध सहावेन परमेष्ठि संजुत्तो।
अप्पा परमप्पानं विंदस्थितं जान परमप्पा ॥ ७०४ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वंकारं च ऊर्ध) ॐ मंत्र श्रेष्ठ पद है (ऊर्ध सहावेन परमेष्ठि संजुत्तो) इसमें श्रेष्ठ स्वभावधारी सिद्ध परमेष्ठी गर्भित हैं (अप्पा परमप्पानं) आत्मा या परमात्मारूप हैं (विन्द स्थितं परमप्पा जान) ॐमें बिन्दु चिह्नमें स्थित परमात्माको जानो।

भावार्थ—ॐ नमः सिद्धं पांच अक्षरी मंत्रमें ॐ शब्द श्रेष्ठपद इसीलिये है कि इसमें सिद्ध परमात्मा गर्भित हैं जो स्वाभाविक शुद्ध गुणोंके धारी हैं। यही द्रव्य दृष्टिसे आत्माका भी स्वभाव है। ॐमें अर्द्ध-चन्द्राकारमें जो बिंदु है वह सिद्ध परमात्माका द्योतक है।

ज्ञानं सुद्ध सहावं, ज्ञानमयं परमप्प संसुद्धं।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, अप्पा परमप्प सुद्धमप्पानं ॥ ७०५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं सुद्ध सहावं) सिद्ध भगवान ज्ञानमई शुद्ध स्वभावके धारी हैं (ज्ञानमयं परमप्प संसुद्धं) वे ही ज्ञानमई परम शुद्ध परमात्मा हैं (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) वे अपने ज्ञान स्वरूपका अनुभव करते हैं (अप्पा परमप्प सुद्धमप्पानं) वे आप ही अपने शुद्ध आत्माको परमात्मारूप ध्याते हैं।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा शरीर रहित व सर्व मूर्तीक पुद्गलोंके सम्बन्ध रहित अमूर्तीक ज्ञानाकार अपने शुद्ध स्वभावमें तल्लीन हैं। वे आपसे ही आपमें अपने आपका अनुभव करते हुए आत्मीक रसका पान कररहे हैं। उनका उपयोग अपने स्वरूपमें ही घुल रहा है।

ममात्मा अमलं सुद्धं, सुद्ध सहावेन तिअर्थ संजुत्तं ।
संसार सरनि विगतं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७०६ ॥

अन्वयार्थ—(ममात्मा अमलं सुद्धं) सिद्ध भगवानके समान ही निश्चयनयसे मेरा आत्मा कर्ममल रहित शुद्ध है (सुद्ध सहावेन तिअर्थ संजुत्तं) शुद्ध स्वभावमें तन्मय है तथा रत्नत्रय स्वरूप है (संसार सरनि विगतं) संसारके भ्रमणसे रहित है (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) यह आत्मा ही वास्तवमें परमात्मा है, परम वीतराग व निर्दोष है।

भावार्थ—इस पांच अक्षरी मंत्रसे सिद्धोंको नमस्कार करता हुआ, उनका शुद्ध स्वरूप विचारता हुआ अपने आत्माको देखे, तब यह अनुभव करे कि मेरा आत्मा द्रव्य स्वभावसे या निश्चयनयसे सिद्धके समान सर्व कर्मरहित व सर्व रागादि दोष रहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई सदा ही मुक्त रूप संसारभ्रमणसे रहित परमात्मा देव है।

ॐ वं नम एकत्वं, पद अर्थ नमस्कार उत्पन्नं ।
ॐ वंकारं च विंदं, विंदस्थं नमामि तं सुद्धं ॥ ७०७ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वं नम एकत्वं) ॐ नमः जो एक पद है (पद अर्थ नमस्कार उत्पन्नं) इस पदका अर्थ यह है कि ॐको नमस्कार किया जावे (ॐ वंकारं च विंदं) ॐका भाव अनुभव किया जावे (विंदस्थं तं सुद्धं नमामि) ॐ के बिंदुमें स्थित शुद्ध सिद्धको मैं भाव नमस्कार करता हूं ऐसा अनुभव किया जावे।

भावार्थ—ॐ नमः पांच अक्षरी संयुक्त पदसे पांच परमेष्ठीको नमस्कार हो ऐसा लिया जाता है, परन्तु इसमें जो बिंदु है उससे सिद्धका बोध होता है, इससे सिद्धको मुख्यतासे नमस्कार किया

गया है। यहां भाव नमस्कारसे प्रयोजन है कि सिद्धके समान अपने आत्माको शुद्ध रूप अनुभव किया जावे, यही सिद्धोंको भाव नमस्कार है। ॐ में जो पांच परमेष्ठी गर्भित हैं उनके भीतर भी जो निश्चयनयसे शुद्धात्मापना है वही शुद्धात्मापना मेरेमें है ऐसा अनुभव किया जावे, यही वास्तवमें ॐ नमः पदका अर्थ है। अपने आत्माको श्री सिद्ध भगवानके समान जानकर उसीमें तन्मय होजाना यही वास्तवमें भाव नमस्कार है। जो भावोंको शुद्ध करनेवाली है। शब्दोच्चारण करना व मस्तक झुकाना आदि द्रव्य नमस्कार है। इसका महत्व तब ही है जब भाव नमस्कार किया जावे। जिसको नमस्कार करना हो उसके गुणोंमें तन्मय होजाना ही सच्चा नमस्कार है। नमस्कारका प्रयोजन ही नमस्कार योग्यके गुणोंमें सच्चा प्रेम भाव है। ऐसा प्रेमभाव सिद्ध परमात्मामें करना अपनेको रागद्वेषसे मुक्तकर शुद्ध वीतराग भावमें जम जाना है। अर्थात् स्वानुभवको पाकर शुद्ध आत्मीक रसका पान करना है।

सिद्धं सिद्धि सदर्थं, सिद्धं सुद्धं च निम्मलं विमलं।
दरसन मोहंध विमुक्कं, सिद्धं सुद्धं समायरहि ॥ ७०८ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं सिद्धि सदर्थं) "ॐ नमः सिद्धं" मंत्रसे सिद्ध उन्हें कहते हैं जो सद्मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध कर चुके हैं (सिद्धं सुद्धं च निम्मलं विमलं) वे सिद्ध शुद्ध हैं, कर्ममल रहित हैं। रागद्वेषादि रहित वीतराग हैं (दरसन मोहंध विमुक्कं) दर्शन मोह व अज्ञानसे रहित हैं (सिद्धं सुद्धं समायरहि) ऐसे शुद्ध सिद्ध भगवानका अनुभव करना चाहिये।

भावार्थ—सिद्ध करने योग्य मोक्ष पुरुषार्थ है जिसकी सिद्धि होनेपर यह जीव कृतकृत्य व पूर्ण होजाता है। जिस भव्यजीवने ऐसे मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध कर लिया है उसको सिद्ध भगवान कहते हैं। वे केवल शुद्ध परम वीतराग आत्मा हैं। उनके समान अपने आत्माको जानकर अनुभव करना योग्य है।

धम्मं च चेयनत्वं, चेतना लक्षने हि संजुत्तं।
अचेत असत्य विमुक्कं, धम्मं संसार मुक्ति सिवपंथं ॥ ७०९ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मं च चेयनत्वं) धर्म आत्माका चेतनपना है। अर्थात् आत्माका आत्मारूप अनुभव करना है (चेतना लक्षने हि संजुत्तं) धर्मका लक्षण ही चेतना है (अचेत असत्य विमुक्कं) जहां न तो अज्ञान है न कोई मिथ्याभाव है (धम्मं संसार मुक्ति सिवपंथं) ऐसा आत्माका धर्म या स्वभाव संसारसे छुड़ानेवाला और मोक्षका मार्ग है।

भावार्थ—वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। आत्माका जो स्वभाव है वह आत्माका धर्म है। आत्मा स्वभावसे चेतना लक्षण है, यही आत्माका धर्म है। जहां आत्मा कर्म चेतना तथा कर्मफल-चेतनासे रहित हो ज्ञान चेतनाका अनुभव करता है वहीं वह अपने धर्ममें है। ऐसा ज्ञानानुभवरूप या आत्मानुभवरूप धर्म ही वीतरागताके भावको लिये हुए है। अतएव कर्मोंकी निर्जराका कारण है। नवीन कर्मोंका संवर करता है। इसीके वारम्वार अभ्याससे यह आत्मा एकदम संसारसे छूटकर मुक्त होजाता है।

पंच अक्षर उत्पन्नं, पंचम ज्ञानेन सम संजुत्तं।
रागादि मोह त्यक्तं, संसारे तरंति सुद्ध सद्भावं ॥ ७१० ॥

अन्वयार्थ—(पंच अक्षर उत्पन्नं) इस पांच अक्षरी "ॐ नमः सिद्धं" मंत्रके वाच्य परम शुद्ध सिद्धात्माके अनुभवसे उत्पन्न (पंचम ज्ञानेन सम संजुत्तं) पंचम केवलज्ञान तथा साम्य भाव सहित यह भव्य-जीव (रागादि मोह त्यक्तं) राग द्वेषादि मोह भावोंसे छूटकर (सुद्ध सद्भावं) शुद्ध आत्मीक भावरूप होकर (संसारे तरंति) संसारसे पार उतर जाता है।

भावार्थ—ॐ नमः सिद्धं मंत्रके जपनेसे व ध्यानेसे, सिद्ध भगवानको भाव नमस्कार करनेसे, सिद्धरूप अपने ही आत्माको अनुभव करनेसे धर्मध्यान होता है, फिर शुक्लध्यान होता है, जिससे चार घातीय कर्मोंका नाश होकर केवलज्ञानका व पूर्ण वीतरागताका लाभ होजाता है। सर्व राग, द्वेष, मोहादि छूट जाता है। फिर चार अघातीय कर्म भी नष्ट होजाते हैं और यह आत्मा संसारसे पार हो मुक्त होजाता है। यहां तारणस्वामीने यह प्रेरणा की है कि मोक्षके इच्छुकको उचित है कि इस पांच अक्षरी मंत्रके द्वारा सिद्धोंका स्वरूप विचारकर अपने आत्माको सिद्ध स्वरूपमय ध्यावे।

चौदा स्वर निरूपण।

अप्प सहावं सुद्धं, अप्पा सुद्धप्प सद्दहइ सुद्धं।
संसार भाव मुक्कं, अप्पा परम पयं च संसुद्धं ॥ ७११ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) आत्मा (सुद्धं अप्प सहावं) शुद्ध आत्माके स्वभावको (सुद्धप्प सुद्धं सद्दहइ) शुद्धात्मा रूप शुद्ध श्रद्धानमें लाता है। (संसारभाव मुक्कं) संसारके रागादि भावोंसे छूट कर (अप्पा संसुद्धं परम पयं च) आत्मा परम शुद्ध श्रेष्ठ मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—यहां प्रथम अ स्वरको लेकर विचार किया गया है। आत्मा जब अपनेको द्रव्य-दृष्टिसे शुद्ध सिद्ध सम श्रद्धानमें लाता है और सर्व राग द्वेषादि व संकल्प विकल्पोंसे छूटकर-अपने ही शुद्ध आत्माके ध्यानमें एकाग्र होकर अत्मानुभव करता है तब स्वयं ही परम पद रूप मोक्षको पा लेता है।

आदि अनादि सुद्धं, सुद्ध सचेयन अप्प सद्भावं।
मिथ्या राग विमुक्कं, आकारे विमल निम्मलं सुद्धं ॥ ७१२ ।

अन्वयार्थ—(आदि अनादि सुद्धं) कर्मका सम्बन्ध जो प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है व नवीन बंधकी अपेक्षा सादि है उस सर्व कर्म बन्धसे जो रहित होगए हैं (मिथ्याराग विमुक्कं) संसार सम्बन्धी मिथ्या-राग जिनके नहीं रहा है (सुद्ध सचेयन अप्प सद्भावं) जो शुद्ध चेतनामय आत्माका सत्तारूप हैं (आकारे विमल निम्मलं सुद्धं) जिनके आत्माके प्रदेश सब अतिशय निर्मल व शुद्ध हैं। ऐसे ही सिद्धात्मा ध्यानके योग्य हैं।

भावार्थ—यहां आ अक्षरको विचारा गया है। आत्मा और कर्मका परस्पर सम्बन्ध अनादि प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है। तथापि कर्म अपनी एक स्थितिको लिये हुए बन्धते हैं व उसी स्थितिके भीतर वे झड जाते हैं इस अपेक्षा कर्मका सम्बन्ध आत्मासे सादि है। ऐसे सर्व द्रव्य कर्मोंसे, रागादि पाप कर्मोंसे व शरीरादि नोकर्मोंसे रहित होकर जो शुद्ध चेतनामय स्वभावमें लीन हैं, जिनके आत्माके सर्व प्रदेश स्फटिकमणि सम शुद्ध झलक रहे हैं, वे ही सिद्ध भगवान हैं। उनका ध्यान सदाकाल करना योग्य है।

इस्ट संजोयं सुद्धं, इय दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं ।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, अप्पा परमप्पयं च जानेहि ॥ ७१३ ॥

अन्वयार्थ—(इस्ट संजोयं सुद्धं) जहां शुद्ध इष्ट संयोग है (इय दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं) जहां शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकताका लाभ है (मिथ्या सल्य विमुक्कं) जहां मिथ्यात्वकी शल्य नहीं है (अप्पा परमप्पयं च जानेहि) वहीं आत्माको परमपदका होना जानना चाहिये।

भावार्थ—यहां इ अक्षरपर विचार है-वज्रवृषभ नाराच संहनन आदि मुक्तिके योग्य शुभ सामग्रीका मिलना इष्ट संयोग है तब यथार्थ मोक्षका साधक निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मानुभवका होना परम इष्ट संयोग है। मिथ्या माया निदान तीन शल्य रहित जो भव्य-जीव निश्चय मोक्ष-मार्गको भलेप्रकार साधन करता है वह परमपदको शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

ईर्जा पंथ निवेदं, तिअर्थं संजुत्त ज्ञान संपन्नं ।
कुज्ञान मोह विरयं, ईर्जा पन्थ सु निम्मलं सुद्धं ॥ ७१४ ॥

अन्वयार्थ—(ईर्जा पंथ निवेदं) ईर्जा पंथ अर्थात् मोक्षगमनके यथार्थ शुद्ध मार्गका जो अनुभव करते हैं वे (तिअर्थं संजुत्त ज्ञान संपन्नं) रत्नत्रय सहित आत्मज्ञानके धारी होते हैं। (कुज्ञान मोह विरयं) वे मिथ्या ज्ञान व मिथ्या श्रद्धानमें कभी रचते नहीं हैं (सु निम्मलं सुद्धं ईर्जा पंथ) वे परम निर्मल शुद्ध मोक्षमार्गपर चलते हैं।

भावार्थ—यहां ई स्वर पर विचार है। चार हाथ भूमि देखकर चलना ईर्या समिति है। यहां मोक्षमार्गमें मन, वचन, कायकी गुप्ति सहित चलना ईर्यापंथ है ऐसा झलकाया है। जहां रत्नत्रयकी एकता होती है, आत्मानुभव होता है, वहां यथार्थ मोक्षमार्ग है। वहां सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मिथ्याश्रद्धान व मिथ्याज्ञान अवकाश नहीं पाता है। भव्यात्मा इसी मार्गपर चलकर परम पदको पाते हैं।

उत्पन्न ज्ञान सुद्धं, ज्ञानमई निश्च तत्त ससरूवं ।
तत्त अतत्त निवेदं, मल मुक्कं च दंसनं अमलं ॥ ७१५ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्न सुद्धं ज्ञान) जहां शुद्ध ज्ञान उत्पन्न होगया है, (ज्ञानमई निश्च तत्त ससरूवं) जहां ज्ञानमई निश्चय तत्व निज आत्माके स्वरूपका अनुभव है, (तत्त अतत्त निवेदं) जहां तत्व अतत्वका भेदविज्ञान है, (मल मुक्तं च दंसनं अमलं) वह मल रहित निर्मल सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—यहां तीन स्वरपर विचार है। निश्चय सम्यग्दर्शनका धारी वही आत्मा है जिसको आत्मा व परका भेदविज्ञान पैदा होकर निर्मल ज्ञान होगया है जिसको अपना स्वरूप ज्ञानमई रागादिसे भिन्न झलक गया है। जहां निज आत्म तत्वका परसे भिन्न यथार्थ अनुभव है।

ऊर्ध ऊर्ध सभावं, ऊर्ध संजुत्तु दिट्ठि दंसनं अमलं।
विषय कषाय विमुक्कं, ऊर्ध सम्मत्त सुद्ध संवरनं ॥ ७१६ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध ऊर्ध सभावं) श्रेष्ठमें श्रेष्ठ श्री सिद्ध भगवानका स्वभाव है (ऊर्ध संजुत्तु दिट्ठि दंसनं अमलं) जहां सिद्ध स्वरूप पर दृष्टि है वहीं निर्मल सम्यग्दर्शन है (विषय कषाय विमुक्कं) वहां पांच इंद्रियोंके विषयोंका व क्रोधादि कषायोंका त्याग है (ऊर्ध सम्मत्त सुद्ध संवरनं) वहां श्रेष्ठ या उत्तम या निश्चय सम्यक्त है जो शुद्ध है व संवररूप है, कर्मोंके आस्रवोंको रोकनेवाला है।

भावार्थ—तीन जगतमें सबसे महान् आत्मा श्री सिद्ध परमात्मा है। जो कोई सिद्धोंको पहचान कर उनके स्वरूपके समान अपने आत्माके स्वरूपको ध्याता है, वह विषय कषायोंसे पराङ्मुख होकर निज आत्माके स्वभावमें तन्मय होता है, वही निश्चय सम्यक्तका अनुभव करनेवाला यथार्थमें संवररूप है। वह वीतराग भावसे कर्मोंके आस्रवोंको रोक रहा है। यहां ऊ स्वपर विचार किया गया है।

ऋजु विपुलं च सहावं, सुद्ध ज्ञानेन ज्ञान संजुत्तं।
संसार सरनि विरयं, अप्पा परमप्प सुद्ध सद्भावं ॥ ७१७ ॥

अन्वयार्थ—(ऋजु विपुलं च सहावं) जिस साधुके आत्म-स्वभावमें रमण करनेसे ऋजुमति तथा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गए हैं (सुद्धं ज्ञानेन ज्ञान संजुत्तं) जो शुद्धात्माके ध्यानमें तन्मय होकर ज्ञानका आराधन कर रहे हैं (संसार सरनि विरयं) संसारके मार्गसे विरक्त हैं (अप्पा परमप्प सुद्ध सद्भावं) उनका ही आत्मा परमात्माके शुद्ध स्वभावको प्राप्त करता है।

भावार्थ—यहां ऋ अक्षरपर विचार है। विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी ऋद्धिधारी साधु उसी भवसे मोक्षको जाते हैं। ऐसे साधु शुक्लध्यानकी अग्नि जलाकर शुद्धोपयोगमें रमण करते हुए घातिया कर्मोंका क्षय करके अर्हंत परमात्मा होजाते हैं। और फिर चारों अघातीयोंका भी क्षय करके सिद्ध होजाते हैं। यह सब शुद्ध ध्यानकी महिमा है।

दीनं कर्म कलंकं, दीनं संसार सरनि मोहंधं।
रुचियंति अमल ज्ञानं, धम्मं सुकं च अमल अप्पानं ॥ ७१८ ॥

अन्वयार्थ—(दीनं कर्मकलंकं) जिन्होंने कर्मके कलंकको धोडाला है (दीनं संसार सरनि मोहंधं) तथा संसारमें भ्रमण करानेवाले मिथ्यात्वको दूर वहा दिया है (रुचियंति अमल ज्ञानं) जिनको निर्मल ध्यानकी रूचि होगई है (धम्मं सुकं च अमल अप्पानं) वेही निर्मल आत्माका अनुभव करते हुए धर्म तथा शुक्लध्यानको ध्याते हैं।

भावार्थ—यहां ऋ अक्षर पर विचार है। मिथ्यात्वका क्षय करनेवाले क्षायिक सम्यक्ती जीव निरन्तर कर्मोंकी निर्जरा करते हुए निर्मल रूचि रखते हैं, वे ही साधुपदमें पहले धर्मध्यानका अभ्यास करते हैं फिर शुक्लध्यानको ध्याकर निर्मल आत्माका अनुभव करते हुए सर्व कर्म-कलंकको धोकर परमात्मा होजाते हैं।

लिंगं च जिन वरिंदं, छिन्नं परभाव कुमय अज्ञानं।
अप्पा अप्प संजुत्तं, परमप्पा परम भावेन ॥ ७१९ ॥

अन्वयार्थ—(लिंगं च जिन वरिंदं) जो जिनेन्द्र भगवानके समान भाव व द्रव्यलिंगके धारी हैं वे (छिन्नं परभाव कुमय अज्ञानं) रागादि परभाव तथा मिथ्यामति व मिथ्या श्रुतज्ञानके क्षय करनेवाले हैं (अप्पा अप्प संजुत्तं परम भावेन परमप्पा) उनका आत्मा आत्माके स्वभावमें लीन होकर उत्कृष्ट ध्यानके प्रतापसे परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—यहां लृ अक्षरपर विचार है। मोक्षका मार्ग वही भावलिंग व द्रव्यलिंग है जिसे श्री जिनेन्द्र भगवानने तपके समय धारण किया था। भावलिंग रत्नत्रयकी एकता है। द्रव्यलिंग

दिगंबर नग्न बालकके समान सहज स्वभावी है। ऐसे निर्ग्रंथ साधु मिथ्यात्वके अभावसे सर्व मिथ्याज्ञानसे रहित होकर सम्यग्ज्ञानमें लीन हैं तथा अपने आत्माको परमात्मा स्वरूप ध्याते हुए कर्मोंका नाश कर परमात्मा होजाते हैं। यहां यह साफ बता दिया है कि बाहरी लिंग अंतरंग भावोंके लिये निमित्त कारण है। जब बाहरी सर्व वस्त्रादि परिग्रहका त्याग होगा तब ही अंतरंगमें ऐसा निर्ममत्व भाव जागृत होगा जिसके प्रतापसे प्रमत्तादि साधुके गुणस्थान होसकें और आत्मा मोक्षपथपर चढता चला जावे।

लीला अप्प सहावं, पर दव्वं च वै सव्वहा सव्वे।
अप्पा परमप्पानं, लीला परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७२० ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं लीला) जो अपने आत्माके स्वभावमें क्रीडा करते हैं (सव्वे पर दव्वं सव्वहा च वै) सर्व पर द्रव्योंको जिन्होंने सर्वथा त्याग दिया है (अप्पा परमप्पानं लीला) आत्माको परमात्म स्वरूपमें क्रीडा करनेसे (निम्मलं सुद्धं परमप्प) आत्मा कर्म रहित वीतराग परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—यहां लृ अक्षरको विचार किया गया है। जो महात्मा सर्व परद्रव्योंमें क्रीडा करना छोडकर एक अपने आत्माके स्वभावमें ही क्रीडा करते हैं—रमण करते हैं—आत्मानुभव करते हैं वे अवश्य कर्मोंसे रहित हो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा होजाते हैं।

एयं सुद्ध सहावं, एयं संसार सरनि विगतो य।
एयं च सुद्ध भावं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसनं सुद्धं ॥ ७२१ ॥

अन्वयार्थ—(एयं सुद्ध सहावं) एक शुद्ध स्वभावमें जहां रमण है, (एयं संसार सरनि विगतो य) जो एक आप ही संसारके मार्गसे रहित है, (एयं च सुद्ध भावं) एक ही शुद्ध भावको धारकर जो (ज्ञान दंसनं सुद्धं) शुद्ध ज्ञान व दर्शनमें लीन होता है, वही (सुद्धप्पा) शुद्ध आत्मा हो जाता है।

भावार्थ—यह आत्मा एक अकेला ही संसारमें भ्रमण करता है व आप अकेला ही मोक्षमार्गपर चलकर मुक्त हो जाता है। जब यह संसारके कारणीभूत राग, द्वेष, मोह भावोंसे रहित होकर एक अपने ज्ञान दर्शन स्वभावमें ठहरकर स्वात्म रमण करता है तब यह आप ही शुद्धात्मा होजाता है। यहां ए अक्षरका विचार किया गया है।

ऐयं इय अप्पानं, अप्पा परमप्प भावना सुद्धं ।
रागं विषय विमुक्कं, सुद्धं समहाव सुद्ध सम्मत्तं ॥ ७२२ ॥

अन्वयार्थ—(इय अप्पानं ऐयं) जहां एक अपने आत्मासे ही एकपना होरहा है (अप्पा परमप्प भावना सुद्धं) आत्मा परमात्माकी शुद्ध भावनामें लीन है (रागं विषय विमुक्कं) पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें रागसे जो मुक्त है (सुद्धं समहाव सुद्ध सम्मत्तं) और शुद्ध अपने स्वभावमें रत है वहीं शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—यहां ऐ अक्षरपर विचार किया गया है । अपने ही शुद्ध स्वभावसे एकमेक होकर व सर्व विषयवासनाके रागसे मुक्त होकर जो शुद्ध स्वभावमें तल्लीन है, वही निश्चय सम्यग्दर्शनका धारी है ।

ओं वं ऊर्ध सहावं, अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य ।
मिथ्या कुज्ञान विरयं, सुद्धं च अमल केवलं ज्ञानं ॥ ७२३ ॥

अन्वयार्थ—(ओं वं ऊर्ध सहावं) ॐ अक्षरमें सिद्ध भगवानका श्रेष्ठ स्वभाव झलक रहा है, (अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य) जब आत्मा ॐ के द्वारा परमात्माके निर्मल ज्ञानमें एकाग्र होता है । (मिथ्या कुज्ञान विरयं) मिथ्या श्रद्धान और मिथ्या ज्ञानसे विरक्त हो जाता है, तब इसे (सुद्ध च अमल केवलं ज्ञानं) शुद्ध निर्मल केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ—यहां ओ अक्षरका विचार किया गया है । ओं के भीतर परमात्माके निर्मल स्वभावका दर्शन होता है । जो कोई मिथ्यात्वको त्याग कर इस निर्मल आत्म स्वभावमें लीन होजाता है, वह शीघ्र ही केवलज्ञानको पालेता है ।

औकासं उवएसं, औकासं विमल केवलं ज्ञानं ।
संसार विगत रूवं, औकासं लहन्ति निव्वानं ॥ ७२४ ॥

अन्वयार्थ—(औकासं उवएसं) अभ्यन्तर आत्मा सम्बन्धी यही उपदेश है कि(औकासं विमल केवलं ज्ञानं) निर्मल केवल आत्माका ध्यान ही अभ्यन्तरमें जिसके रहता है वह (संसार विगत रूवं) संसारके विभावोंसे छूटकर (औकासं निव्वानं लहंति) अभ्यन्तरमें ही निर्वाणको पाता है ।

भावार्थ—यहां औं अक्षरका विचार किया गया है। निर्वाण और निर्वाणका मार्ग दोनों भीतर आत्मामें ही हैं। जो कोई बहिरात्मापना छोडकर तथा अन्तरात्मा होकर शुद्धात्माको ध्याता है वही निर्वाणको पाता है। केवल बाहरी क्रियाकांडसे मुक्ति नहीं होती है। आत्माका पूर्ण स्वभाव मोक्ष है तथा अपूर्ण स्वभाव मोक्षमार्ग है।

अप्पा परमप्पानं घाय चवक्कय विमुक्क संसारे।
रागादि दोस विरयं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७२५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) आत्मा (संसारे) संसारमें (रागादि दोस विरयं) रागादि दोषोंसे विरक्त होकर (परमप्पानं) व परमात्मामई स्वरूपमें लय होकर (घाय चवक्कय विमुक्क) चार घातीय कर्मोंसे छूटकर (अप्पा) आप ही (निम्मलं सुद्धं परमप्प) निर्मल शुद्ध परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—आत्माके शुद्ध होनेका उपाय आत्माका ही वीतराग विज्ञानमय होकर ध्यान करना है। जब शुद्धोपयोग रूप शुक्लध्यान प्रकाशित होता है तब ज्ञानावरणादि चारों घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है और यह आत्मा स्वयं अर्हत् परमात्मा होजाता है।

अह अप्पा परमप्पा, ज्ञानं संजुत सुदंसनं सुद्धं।
संसार सरनि विमुक्कं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ७२६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) यह आत्मा (ज्ञानं संजुत सुदंसनं सुद्धं) शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध ज्ञान सहित होकर जब (संसारे सरनि विमुक्कं) संसारके मार्गसे वैरागी होकर (अह परमप्पा) निरन्तर परमात्मा रूप अपनेको ध्याता है तो यही (परमप्पा लहै निव्वानं) परमात्मा होकर निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—रत्नत्रय व्यवहार तथा निश्चय उभयरूप है। जो कोई व्यवहार रत्नत्रय द्वारा निश्चय रत्नत्रय स्वरूप अपने आत्माका वारवार अनुभव करता है-संसारके रससे विरक्त होकर आत्मीक रसका पान करता है तो वह अवश्य कर्मबंधसे छूटकर सिद्ध परमात्मा होजाता है।

सुर चौदस संसुद्धं, नंत चतुस्टै विमल सुद्धं च।
सुद्धं ज्ञान सरूवं, सुरविंदं अमल ज्ञान स सहावं ॥ ७२७ ॥

अन्वयार्थ—(सुर चौदस संसुद्धं) चौदह स्वरोंके द्वारा परम शुद्ध (नंत चतुस्टै विमल सुद्धं च) अनन्त चतुष्टय विराजमान कर्ममल रहित निर्दोष आत्माके (सुद्धं ज्ञान सरूवं) शुद्ध ज्ञान स्वरूपका ध्यान करना चाहिये (सुर अमक ज्ञान ससहावं विंदं) अर्थात् इन स्वरोंके द्वारा निर्मल ज्ञान स्वभावी अपने आत्माका अनुभव करना चाहिये।

भावार्थ—यहां चौदस स्वरोंको लेकर आत्माके तत्वका विचार किया है-अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। इन चौदह स्वरोंकी अपेक्षासे परमात्माके स्वरूपका मनन किया गया है। अर्थात् आत्माके शुद्ध स्वभावका स्वयं स्वाद लिया गया है। मुमुक्षु जीवको उचित है कि एक२ स्वरका मनन करते हुए उसके सहारेसे आत्माका ध्यान करे।

तेतीस व्यंजन निरूपण।

विंजन स एन सुद्धं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसनं परमं।
परमं परमानन्दं, ज्ञान सहावेन विंजनं अमलं ॥ ७२८ ॥

अन्वयार्थ—(स सुद्धं विंजन) वही शुद्ध व्यंजन है (एन सुद्धप्पा ज्ञान दंसनं परमं) जिसके द्वारा शुद्ध ज्ञान दर्शन गुणोंका बोध हो (परमं परमानन्दं) श्रेष्ठ परमानन्दका लाभ हो (ज्ञान सहावेन अमलं विंजनं) तथा ज्ञान स्वभावके अनुभव द्वारा निर्मल आत्माका प्रकाश हो।

भावार्थ—अब आगे तेतीस क ख आदि व्यंजनोंके आलम्बनसे विचार करेंगे। वे ही शब्द व वे ही अक्षर सार्थक हैं जिनके द्वारा अपना आत्मा यथार्थ द्रव्यरूप अविनाशी ज्ञाता दृष्टा परमानन्दमई झलके व अपना उपयोग निजात्मीक स्वभावमें लवलीन होजावे। और निजानन्दका स्वाद मिल सके। तथा यह संसारीसे सिद्ध होजावे।

कक्का कम्म षिपनं, कक्का वर ज्ञान केवलं ज्ञानं।
कक्का कमल सुवन्नं, कम्मं षिपति सुद्ध ज्ञानस्थं ॥ ७२९ ॥

अन्वयार्थ—(कक्का कम्म षिपनं) क अक्षर बताता है कि कर्मोंका क्षय कर देना चाहिये (कक्का वर ज्ञान केवलं ज्ञानं) क अक्षर सुझाता है कि श्रेष्ठ ज्ञान जो केवलज्ञान है उसको प्राप्त करना चाहिये (कक्का कमल सुवन्नं) क अक्षर उन सुवर्णमई कमलोंकी स्मृति कराता है जिनको तीर्थंकर भगवानके अर्हंत अवस्थाके समय विहार करते हुए देवतागण रचते हैं (कम्मं षिपति सुद्ध ज्ञानत्थं) क अक्षर बताता है कि निर्मल ध्यानमें जमकर कर्मोंका नाश कर देना चाहिये।

भावार्थ—यहां क अक्षरपर विचार किया गया है। इसके द्वारा अपना भाव आत्माकी शुद्धावस्थापर खींचा गया है कि जिन कर्मोंने आत्माका स्वभाव रोक रक्खा है उन कर्मोंका क्षय कर देना चाहिये। और केवलज्ञानको प्रकाश करना चाहिये।

षषा षिपति सुकम्मं, षिपक श्रेनि षवं संसारे।
मिथ्या कुज्ञान षिपनं, अप्प सरूवं च ज्ञान सहकारं ॥ ७३० ॥

अन्वयार्थ—(षषा षिपति सुकम्मं) ष अक्षर द्वारा अपने कर्मोंको क्षय करनेका विचार करना चाहिये (षिपक श्रेनि षवं संसारे) क्षपकश्रेणीके गुणस्थानोंपर चढनेसे ही संसारका क्षय होता है (मिथ्या कुज्ञान षिपनं) मिथ्यादर्शन व मिथ्या ज्ञानका क्षय करना योग्य है (अप्प सरूवं च ज्ञान सहकारं) इस कार्यके हेतु आत्माके स्वरूपका ज्ञान सहकारी है।

भावार्थ—ष अक्षरपर विचारते हुए यही भावना की गई है कि मिथ्यात्वका व मिथ्याज्ञानका क्षय किया जावे। तथा चारित्रकी वृद्धि करके क्षपकश्रेणीपर आरूढ होकर चार घातीय कर्मोंको, जो संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं, क्षय किया जावे और आत्माको परमात्मामें बदल दिया जावे। इस सब कामके लिये निश्चय सम्यग्दर्शनके लाभकी आवश्यक्ता है। जिससे आत्माका स्वभाव द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्मसे भिन्न सिद्ध सम शुद्ध ज्ञानाकार झलके। यही आत्मानुभव आत्माको शुद्ध करनेवाला है व सर्व कर्मोंके क्षयका अमोघ बाण है।

गग्गा गमन सहावं, ज्ञानं ज्ञानं च अप्पयं विमलं।
तिक्तं ति सयल मोहं, त्रिक्तं रूवेन भावना निश्चं ॥ ७३१ ॥

अन्वयार्थ—(गगा गमन सहावं) ग अक्षरसे गमन स्वभावी अर्थात् परिणमन स्वभावी और ज्ञान स्वभावी आत्मापर लक्ष्य देना चाहिये (ज्ञानं ज्ञानं च अप्पयं विमलं) निर्मल आत्माका ही ज्ञान व उसीका ही ध्यान करना चाहिये (तिक्तं ति सयल मोहं) सर्व मोहको त्याग देना चाहिये (विक्तं रूवेन निश्चं भावना) प्रगट आत्माके स्वभावपर लक्ष्य देकर निश्चय स्वरूपकी भावना करनी चाहिये।

भावार्थ—यहां ग अक्षरपर विचार है। गमन शब्दका अर्थ परिणमन भी है और ज्ञान भी है। इससे आत्माका बोध होता है। आत्मा द्रव्य है, इससे परिणमनशील भी और ज्ञान स्वरूप भी है। आत्माके सच्चे स्वभावका ज्ञान प्राप्त करके हमको अपना उपयोग और सब संसारके मोहजनित कर्मोंसे हटा करके बिलकुल निर्मोही तथा निस्पृही होकर निज आत्माका ही ध्यान करना चाहिये। निश्चय निज आत्माकी ही प्रगट रूपसे भावना करना चाहिये अर्थात् मैं ही आत्मा हूं ऐसा जानकर स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा उसीका ही अनुभव करना चाहिये।

घन घाय कम्म मुक्कं, घनअ समूह कम्म निदलनं।
घन ज्ञान ज्ञान सुद्धं, सुद्धसरूवं च सुद्ध मप्पानं ॥ ७३२ ॥

अन्वयार्थ—(घन घाय कम्म मुक्कं) आत्माके साथ गाढ रूपसे अनादिसे प्रवाह रूप बंधे चल आए हुए इन ज्ञानावरणादि घातीय कर्मोंका नाश करना चाहिये, (घनअ समूह कम्म निदलनं) अत्यन्त गाढे बन्ध हुए अनन्त कर्मोंके समूहका क्षय कर देना चाहिये, (घन ज्ञान ज्ञान सुद्धं) दृढतासे निश्चय पूर्वक आत्माका ज्ञान प्राप्त करके शुद्ध आत्माका ही दृढतासे ध्यान करना चाहिये, (सुद्ध सरूवं च सुद्ध मप्पानं) जिससे शुद्ध आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकाशमान हो जावे।

भावार्थ—यहां घ अक्षरपर विचार है। इस अक्षरके द्वारा अनादि कालसे आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाह रूप गाढ सम्बन्ध रखनेवाले घाति तथा अघाति अनन्त कर्म समूहको क्षय करनेके लिये अपने ही आत्माका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके उसीका ही ध्यान करना चाहिये। आत्मध्यानकी अग्निमें ही यह शक्ति है जो कर्मोंको जला देवें और आत्माका शुद्ध स्वरूप झलका देवें।

नानाप्रकार सुद्धं, ज्ञानं ज्ञानं च सुद्ध ससरूवं।
निदलंति कम्म मलयं, नन्तानन्त चतुस्टयं अमलं ॥ ७३३ ॥

अन्वयार्थ—(नानाप्रकार सुद्धं) अनेक प्रकारसे शुद्ध अर्थात् संशय विमोह विभ्रम रहित (ज्ञानं ज्ञानं च सुद्ध ससरूवं) सम्यग्ज्ञानके द्वारा अपने ही शुद्ध स्वरूपका ध्यान (कम्म मलयं निदलंति) कर्मरूपी मैलको नाशकर डालता है (नंतानंत चतुष्टयं अमलं) तथा निर्मल अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य तथा अनन्त सुखका प्रकाश कर देता है।

भावार्थ—यहां ङ अक्षरपर विचार किया गया है। जिसको नकार ध्यानमें लेकर नानाप्रकारके मिथ्या ज्ञान संशयादि पर लक्ष्य दिया गया है कि इन सर्व विकारोंसे रहित आत्मा व परका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके आत्माका स्वभाव यथार्थ जान करके उसीका ही ध्यान करना चाहिये। आत्मध्यानमें ही यह शक्ति है कि जिससे कर्म मैल कट जावे और आत्माके केवलज्ञानादि गुण प्रकाशमान होजावे।

चेयन गुन संजुत्तं, चित्तं चिंतयन्ति तिय लोयं।
गय संकप्प वियप्पं, चेयन संजुत्त अप्प ससरूवं ॥ ७२४ ॥

अन्वयार्थ—(चेयन गुन संजुत्तं चित्तं) चेतन गुण सहित आत्मा या मन (तिय लोयं चिंतयंति) तीन लोकके स्वरूपका विचार करता है परन्तु (गय संकप्प वियप्पं) जब उस मनके सर्व संकल्प विकल्प मिट जाते हैं तब (चेयन संजुत्त अप्प ससरूवं) चेतन गुण सहित आत्माका निज स्वरूप ही अनुभवमें आता है।

भावार्थ—यहां च अक्षर पर विचार किया गया है। चित्त या भावमन आत्माके अशुद्ध चंचल उपयोगको कहते हैं। इस मनका ही यह काम है जो तीनलोकके स्वरूपका या तीनलोक जिनसे भरा है उन जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छः द्रव्योंके स्वरूपका गुणपर्याय रूप विचार कर जब यह मन थम जाता है तब सर्व संकल्प विकल्प मिट जाते हैं। अहंकार, ममकार, राग, द्वेष, नयोंके भेदरूप विचार सब बंद होजाते हैं तब आत्मा स्वयं निज निश्चल चेतन स्वरूपमें वीतरागता सहित आपको झलक जाता है अर्थात् आत्माका अनुभव होजाता है। समाधिशतकमें कहा है—

रागद्वेषादि कल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्। स पश्यत्यात्मनस्तत्वं स तत्वं नेतरो जनः ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जिसका मनरूपी जल रागद्वेषादि तरंगोंसे चलायमान नहीं है वही आत्माके तत्वको अनुभव कर सक्ता है, दूसरा मनुष्य कोई नहीं कर सक्ता है।

छ काय क्रिया जुत्तं, क्रिया ससहावं सुद्ध परिनामं ।
संसार विषय विरयं, मल मुक्कं दंसनं अमलं ॥ ७२६ ॥

अन्वयार्थ—(छकाय क्रिया जुत्तं) जो छःकायके प्राणियोंपर दयावान हैं (क्रिया ससहावं सुद्ध परिनामं) अहिंसामय आत्मीक स्वभाव रूप शुद्ध परिणामोंके धारी हैं (संसार विषय विरयं) संसारके विषय-भोगोंसे विरक्त हैं (मल मुक्कं दंसनं अमलं) दोष रहित निर्मल सम्यग्दर्शनके धारी हैं वे ही मोक्षगामी हैं।

भावार्थ—दयावान साधु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस इन छः काय धारी प्राणियोंके ऊपर करुणाभावसे वर्तते हुए इनकी रक्षा करते हैं। उनका परिणाम ही अहिंसामई वीतराग निज स्वभावमें आसक्त होता है। वे सर्व विषय-भोगोंके रागसे पूर्णतया विरक्त हैं। उनहीके शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन होता है जिसके प्रतापसे वे आत्मानुभव करते हुए मोक्षमार्गके पथिक होरहे हैं। यहां छ अक्षरपर विचार है।

जैवंतं जिनवयनं, जैवंतं विमल अप्प सहावं ।
कम्ममल पयडि मुक्कं, अप्प सहावेन ज्ञान सहकारं ॥ ७२६ ॥

अन्वयार्थ—(जिनवयनं जैवंतं) जिनवाणीकी जय हो (विमल अप्प सहावं जैवंतं) उस वाणी द्वारा प्रगट निर्मल आत्माका स्वभाव जयवन्त हो (अप्प सहावेन ज्ञान सहकारं) जिस आत्माके स्वभावमें ठहरनेसे आत्मज्ञानकी सहायतासे (कम्ममल पयडि मुक्कं) कर्ममलकी प्रकृतियोंसे आत्मा छूट जाता है।

भावार्थ—यहां ज अक्षरका विचार किया गया है। श्री जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित आगम परम वन्दनीय व प्रशंसनीय है, जिसके अभ्यास करनेसे भव्यजीवको अपने निर्मल आत्माका ज्ञान सर्व द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नोकर्मसे रहित झलक जाता है। वे भव्यजीव इसी आत्म-स्वभावका अनुभव करते हुए आत्मज्ञानके बलसे ऐसी प्रबल ध्यानकी अग्नि जलाते हैं जिससे कर्मोंका मैल उड़ जाता है और आत्मा पवित्र होजाता है।

ज्ञान सहावं सुद्धं, धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलयं ।
कम्मकलंक विमुक्कं, ज्ञानमय ज्ञान रूढ संजुत्तो ॥ ७२७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं सुद्धं) आत्मध्यानका स्वरूप वीतराग मय है (धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलयं) ऐसे निर्मल ध्यान धर्म तथा शुक्ल हैं (ज्ञानमय ज्ञान रूढ़ संजुत्तो) जो कोई सम्यग्दर्शनके साथ ध्यानारूढ होते हैं वे (कम्म कलंक विमुक्कं) कर्मोंके कलंकसे छूट जाते हैं।

भावार्थ—यहां ज्ञ अक्षरका विचार किया गया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक ध्यान ही सच्चा शुद्ध ध्यान है। इसहीको धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान कहते हैं। जो कोई इन दोनों ध्यानोंका क्रमशः अभ्यास करते हैं, वे सर्व कर्मोंसे शुद्ध होकर सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं।

नंतानंत सुदिट्ठी, नंतं संसार सरनि विलयन्ति।
विलयंति कम्म मलयं, ज्ञान सहावेन सुद्ध सद्भावं ॥ ७३८ ॥

अन्वयार्थ—(नंतानंत सुदिट्ठी) अनन्तानन्त ज्ञानादि गुणोंके धारी आत्माका जो भले प्रकार अनुभव करनेवाला है, उसके (नंतं संसार सरनि विलयंति) अनन्त संसारका मार्ग विला जाता है, (ज्ञान सहावेन सुद्ध सदभावं) वह आत्मीक ज्ञानके स्वभावसे शुद्ध स्वरूपमें वर्तन करता हुआ, (कम्म मलयं विलयंति) कर्म मलका क्षय करता है।

भावार्थ—यहां च वर्गका पांचवां अक्षर ञ है उसके स्थानपर न का विचार किया गया है। आत्मा अनंत ज्ञानादि गुणोंका समुदाय है। जो कोई भव्यजीव परम श्रद्धा सहित अपने आत्माको जान करके उसीका मनन तथा अनुभव करते हैं, उनका संसार कारणीभूत मिथ्यात्व नष्ट होजाता है। वे सम्यग्दृष्टी जीव अपनी ज्ञान चेतनाका विलास लेते हुए परम वीतरागताके प्रभावसे सर्व कर्मोंका क्षय करके परमात्मा हो जाते हैं।

टंकोत्कीर्नं अमलं, मल संसार सरनि विलयं च।
अप्प सहाव सुदीठं, निदिट्ठं संजदो रूवं ॥ ७३९ ॥

अन्वयार्थ—(टंकोत्कीर्नं अमलं) आत्माका स्वभाव टांकीसे उकेरी हुई मूर्तिके समान अविनाशी और शुद्ध है। (मल संसार सरनि विलयं च) जहां संसारके भीतर भ्रमण करानेवाला कर्म मल बिलकुल नहीं हैं, (अप्प सहाव सुदिट्ठं) जिसने ऐसे आत्माके स्वभावको भले प्रकार अनुभव किया है, (संजदो रूवं निदिट्ठं) उसीको संयमी साधुका स्वरूप कहा गया है।

भावार्थ—यहां ट अक्षरका विचार है। यह आत्मा अपने स्वभावसे ध्रुव है। जितने शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि गुणोंका धारी है, उतने गुण सदा बने रहते हैं। कोई भी गुण न तो कम होता है, न कोई गुण कहींसे नया आकर मिलता है। द्रव्यके स्वभावकी अपेक्षा देखा जावे तो आत्मामें न तो कभी कर्म थे न अब हैं न आगामी कर्म संयोग पाएँगे। ऐसे सिद्धवत् शुद्ध आत्माके स्वभावका जो साधु अनुभव करनेवाले हैं वे ही सच्चे संयमी, यति, अनगार हैं।

ठानं झानं झायदि, झायदि सुद्धं च अमल झानस्य ।
झायंति सुद्ध भावं, कम्ममल तिक्त असुह संसार ॥ ७४० ॥

अन्वयार्थ—(ठानं झानं झायदि) हरएक गुणस्थानमें या हर स्थानमें साधु आत्मध्यानको ध्याते हैं (सुद्धं च अमल झानस्य झायदि) शुद्ध वीतराग ज्ञानका ही ध्यान करते हैं (सुद्ध भावं झायंति) अर्थात् शुद्ध आत्मीक भावका ही ध्यान लगाते हैं जिससे (कम्ममल तिक्त असुह संसारे) कर्म-मलोंको छुड़ाकर इस आत्माके अहितकारी संसारसे पृथक् होजाते हैं।

भावार्थ—यहां ठ अक्षरका विचार किया गया है। साधुओंके गुणस्थान छः से बार तक होते हैं। छठे सातवेंमें साधु निर्मल ज्ञानस्वभावी आत्माका ध्यान करते हुए धर्मध्यानको ध्याते हैं फिर आठवेंसे बारहवें तक शुक्लध्यानको ध्याते हैं, यहां शुद्धोपयोगकी निर्मलता होती है। इसीसे घातीय कर्मका नाश कर अरहन्त होजाते हैं। फिर तीसरे चौथे शुक्लध्यानके बलसे चार अघातीय कर्मोंको भी क्षय कर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं-इस भ्रमणरूप-जन्म मरणरूप संसारके चक्रसे हमेशाके लिये छूट जाते हैं।

डंड कपाटं दिट्ठं, दिट्ठं विमल दंसनं सुद्धं ।
मिथ्यातराग विलयं, संसारे तजंति मोहंधं ॥ ७४१ ॥

अन्वयार्थ—(डंड कपाटं दिट्ठं) केवल समुद्घात दंड कपाट प्रतर लोक पूर्ण करनेवाले अरहन्तको जिसने जाना है (विमल सुद्धं दंसनं दिट्ठं) निर्दोष शुद्ध सम्यग्दर्शनका जिसने अनुभव किया है (मोहंधं मिथ्यातराग विलयं) मोहमें अन्धा करनेवाले मिथ्यात्वके रागका जहां नाश होगया है वे ही (संसारे तजंति) संसारसे छूट जाते हैं।

भावार्थ—मिथ्यात्व रहित सम्यग्दृष्टी जीवको श्री अरहन्त भगवान ही सच्चे देव हैं ऐसा दृढ श्रद्धान है, वह शुद्धात्माको श्रुतज्ञानके बलसे जानकर अनुभव करते हैं। इसी स्वात्मानुभवके प्रतापसे धीरे २ सर्व कर्मोंसे मुक्त होकर संसार रहित होजाते हैं। यहां ड अक्षरका विचार किया गया है।

ढं परमप्पा झानं, ज्ञान सरूवं च अप्प सद्भावं।
विकहा कषाय विरयं, अप्पा परमप्प भावना सुद्धं ॥ ७४२ ॥

अन्वयार्थ—(ढं) निर्गुण-अर्थात् औपाधिक गुण रागादिसे रहित (परमप्पा झानं) परमात्माका ध्यान है सोई (ज्ञान सरूवं च अप्प सद्भावं) ज्ञान स्वरूपी आत्माकी सत्तामें निवास है (विकहा कषाय विरयं) न जहां कोई स्त्री भोजनादि विकथाका विचार है न वहां क्रोधादि कषाय हैं, वहां (अप्पा परमप्प भावना सुद्धं) आत्मा परमात्माकी शुद्ध भावनामें लीन है।

भावार्थ—यहां ढ अक्षरका विचार किया गया है। ढ का अर्थ निर्गुण है। अर्थात् जहां कोई रागादि विकार नहीं है, ऐसे परमात्माका जो ध्यान है वही निज शुद्ध आत्माका ध्यान है। स्त्री, भोजन, देश व राजा कथाके भावोंको व क्रोध, मान, माया, लोभके विकारोंको दूर रखकर जो वीतराग भावसे शुद्धात्माकी भावना करते हैं वे ही मोक्षमार्गी हैं।

नाना प्रकार दिट्ठं, ज्ञानं झानेन सुद्ध परमेष्ठि।
झानेन ज्ञान सुद्धं, ज्ञान सहावेन सुद्ध स सहावं ॥ ७४३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध परमेष्ठि झानेन) शुद्ध परमेष्ठी अर्हंत सिद्धके ध्यान करनेसे (नानाप्रकार ज्ञानं दिट्ठं) अनेक प्रकारका ज्ञान प्रकाशित होता है (झानेन ज्ञान सुद्धं) ध्यानके द्वारा ही ज्ञान शुद्ध होता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध स सहावं) ज्ञान स्वभावमें लीन होने हीसे शुद्ध आत्माका स्वभाव झलक जाता है।

भावार्थ—शुद्ध आत्मापर लक्ष्य देते हुए अर्हंत सिद्ध परमेष्ठीके आलम्बनसे जब उपयोगको थिर करके आत्मध्यान किया जाता है तब भावोंकी शुद्धता होनेसे ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता है जिससे ज्ञानका विकाश होने लगता है। ध्यान हीसे पूर्ण श्रुतज्ञान होजाता है, नानाप्रकार देशावधि परमावधि व सर्वावधि ज्ञान झलकता है। ऋजुमति, विपुलमति, मनःपर्यय ज्ञान होजाता है। ध्यानके ही प्रतापसे सर्व ज्ञानावरण कर्मका क्षय होनेसे केवलज्ञान झलक जाता है। आत्माके

ज्ञान स्वभावमें लीन होना ही ध्यान है। इसी आत्मीक ध्यानसे आत्मा परमात्मारूप होजाता है। यहां ण के स्थानपर न अक्षरपर विचार किया गया है।

तारंति सुद्ध भावं, तिक्कंति भाव सयल मिच्छत्तं ।
अप्पा परु पिच्छन्तो, तरन्ति संसार सायरे घोरे ॥ ७४४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध भावं तारंति) शुद्ध भाव ही प्राणियोंको संसार सागरसे तारनेवाला है (सयल मिच्छत्तं भाव तिक्कंति) जहां सर्व मिथ्यात्व भावका त्याग कर दिया जाता है (अप्पा परु पिच्छंतो) आत्मा और परको भेदज्ञानसे भिन्न१ देखा जाता है वहीं शुद्ध भाव झलकता है। इसी शुद्ध भावके धारी सम्यग्दृष्टी जीव (घोरे संसार सायरे तरंति) भयानक संसाररूपी समुद्रको तरके पार होजाते हैं।

भावार्थ—यहां त अक्षरपर विचार किया गया है। शुभ अशुभ दोनों ही प्रकारके उपयोग पुण्य तथा पापकर्मके बांधनेवाले हैं, एक शुद्धोपयोग ही कर्मोंकी निर्जराका कारण है। यह भवसागरसे पार करनेको जहाज है। पर्याय बुद्धि मिथ्यात्व है, इसको छोडके जो शुद्ध आत्मीक आनन्दमें रुचि रखके अपने आत्माको सर्व कर्मोंसे भिन्न जानके अनुभव करता है वही शुद्धोपयोगको पाता है। शुद्धोपयोगी साधु ही अरहन्त व सिद्ध परमात्मा होते हैं।

थानं च सुद्ध ज्ञानं, ति अर्थं पंच दीप्ति थान सुद्धं च ।
मिथ्या कुज्ञान तिक्कं, ज्ञान सहावेन थान संसुद्धं ॥ ७४५ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध ज्ञानं च थानं) शुद्ध आत्मध्यान ही वह स्थान है जहां (तिअर्थं) रत्नत्रय धर्म है (च पंच दीप्ति सुद्धं थान) तथा पांचों ज्ञानोंके प्रकाशका शुद्ध स्थान है या पांच परमेष्ठी पदोंके प्रकाशका शुद्ध स्थान है (मिथ्या कुज्ञान तिक्कं) उस शुद्ध ध्यानमें मिथ्यादर्शन तथा मिथ्याज्ञान नहीं है (ज्ञान सहावेन संसुद्धं थान) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेहीसे परम शुद्ध स्थान जो मोक्ष है वह प्राप्त होना है।

भावार्थ—यहां प अक्षर पर विचार किया गया है। रागद्वेष रहित वीतरागता सहित तथा मिथ्यात्वभाव और मिथ्या ज्ञानकी वासनासे मुक्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई रत्नत्रयसे भूषित जो आत्मध्यानका अभ्यास करना है वही मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय तथा केवल-

ज्ञानको प्रकाश करनेवाला है अथवा इसी ध्यानसे अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुके पांच पद प्राप्त होजाते हैं। मोक्षका साधक ज्ञानमई ध्यान ही है।

दर्सन सुद्धि निमित्तं, भावं सुद्धं च निम्मलं सुद्धं।
ज्ञानेन ज्ञान रूवं, जिन उत्तं ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ७४६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन सुद्धि निमित्तं) सम्यग्दर्शनकी शुद्धताके कारणसे (सुद्धं भावं) शुद्ध भाव होता है (च निम्मलं सुद्धं) और आत्मा कर्ममलसे रहित शुद्ध होता है (ज्ञानेन ज्ञान रूवं) ज्ञानके द्वारा ज्ञान स्वभावी आत्माका अनुभव करना चाहिये, इसी ध्यानके प्रतापसे (जिन उत्तं निम्मलं सुद्धं ज्ञान) श्री जिनेन्द्रके कहेके अनुसार कर्ममल रहित शुद्ध केवलज्ञान प्रकाशमान होजाता है।

भावार्थ—यहां द अक्षरका विचार किया गया है। दर्शनविशुद्धि भावना सोलहकारण भावनाओंमें प्रथम इसीलिये दी है कि सम्यग्दर्शनकी शुद्धता सर्व भावनाओंकी जड है। इसीसे भावोंकी शुद्धता होती है। इसीसे शुद्ध आत्मध्यान होता है व इसीसे केवलज्ञानका प्रकाश होता है व इसीसे आत्मा कर्ममलसे रहित शुद्ध होता है। इसीके प्रतापसे आत्मा परसे हटकर निज स्वभावमें लीन होकर निजानन्दका स्वाद लेता है।

धरयंति धम्म जुत्तं, मन पसरन्त ज्ञान सह धरनं।
झायं सुद्ध सहावं, ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं ॥ ७४७ ॥

अन्वयार्थ—(धरयंति जुत्तं धम्म) जो संसार-समुद्रमें पडनेसे उद्धार करे वही योग्य धर्म है (मन पसरन्त ज्ञान सह धरनं) वह धर्म आत्मज्ञान है जिसकी सहायतासे पर पदार्थोंमें फैलनेवाले मनको रोक लिया जाता है (सुद्ध सहावं झायं) तथा शुद्ध आत्मीक स्वभावका ध्यान धर्म है (ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं) ज्ञान स्वभावमें लीन होने हीसे यह चेतन स्वरूप आत्मा कर्ममल रहित शुद्ध होजाता है।

भावार्थ—जो उद्धार करे-पतन होनेसे बचावे, संसार सागरसे उद्धार करे, मोक्षमें स्थापन करे वह धर्म है। वह धर्म निश्चय रत्नत्रयमई एक आत्मानुभूति है, जहां शुद्ध आत्माका ज्ञान भी है व ध्यान भी है। इसी आत्मानुभूतिके होते हुए संकल्प विकल्परूपी मन थम्भ जाता है, उपयोग

निर्विकल्प होजाता है। यही शुद्ध आत्माका ध्यान है। इस ध्यानसे ही आत्मा कर्मोंके मैलसे छूट-कर परमात्मा होजाता है। यहां घ अक्षरपर विचार किया गया है।

न्यानमयं अप्पानं छिंदंति दुट्ठ कम्म मिच्छत्तं।
छिन्नं कषाय विषयं, अप्प सरूवं च निम्मलं भावं ॥ ७४८ ॥

अन्वयार्थ—(न्यानमयं अप्पानं) ज्ञानमई आत्माको ध्यानेसे (मिच्छत्तं दुट्ठ कम्म छिंदंति) मिथ्यात्व कर्म तथा दुष्ट आठों ही कर्म नष्ट होजाते हैं (कषाय विषयं छिन्नं) क्रोधादि कषाय तथा पांचों इन्द्रियोंके विषय भोगके भाव दूर होजाते हैं (अप्प सरूवं च निम्मलं भावं) आत्माका स्वाभाविक निर्मल स्वभाव झलक जाता है।

भावार्थ—यहां न अक्षर पर विचार है। आत्माका स्वभाव ज्ञान दर्शनमय परम ज्योतिस्वरूप निर्विकार है। जो सर्व विकल्पोंसे मुंह मोडकर एक निज आत्माका ध्यान लगाते हैं उनका मिथ्यात्व कर्म क्षय होजाता है। वे क्षायिक सम्यक्ती होजाते हैं। फिर विशेष आत्मध्यानसे ही विषयवासनाका सर्व भाव नष्ट होजाता है। चारित्र मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे यथाख्यात चारित्र या वीतराग-भाव पैदा होजाता है। तथा उसी आत्मध्यान स्वरूप शुक्लध्यानसे चारों घातीय कर्मोंका नाश होकर केवलज्ञान होजाता है। शेष चारों अघातीय कर्मोंके भी नाशसे आत्माका स्वाभाविक सिद्ध पद झलक जाता है।

परमप्पय चिंतवनं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं।
कुज्ञान सल्य विरयं, तिक्तं संसार सरनि मोहंधं ॥ ७४९ ॥

अन्वयार्थ—(परमप्पय चिंतवनं) परमात्माका चिंतवन करनेसे (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्मा परमात्मारूप मल रहित शुद्ध होजाता है (कुज्ञान सल्य विरयं) मिथ्याज्ञान व तीन शल्यसे रहित हो जाता है (तिक्तं संसार सरनि मोहंधं) संसारके चक्रमें भ्रमण करनेवाला अन्ध मोह नष्ट होजाता है।

भावार्थ—यहां प अक्षरपर विचार किया गया है। परमात्मारूप मैं हूँ, मेरे आत्मामें परमात्मासे कई भी तरह भिन्नता नहीं है। प्रदेशोंका भेद होनेपर भी स्वभाव दोनोंका एक है। इस तरह श्रद्धा लाकर जो कोई परमात्माके शुद्ध ज्ञानानन्दमय स्वभावको आत्मामें आरोपण करता है

अर्थात् भेदविज्ञानसे आपको ही कर्म-बन्धसे रहित परमात्मा देखता है, उसका सर्व मिथ्याज्ञान व माया मिथ्या निदान शल्य भाव तथा सर्व ही मोहनीय कर्म नष्ट होजाता है। वह इसी आत्माके शुद्ध ध्यानसे सर्व कर्मोंसे छूटकर परमात्मा होजाता है।

फटिक सरूवं अप्पा, चेयनगुन सुद्ध निम्मलं भावं।
कम्ममल पयडि विरयं, संसार सरनि मोहन्धं ॥ ७५० ॥

अन्वयार्थ—(फटिक सरूवं अप्पा) यह आत्मा स्फटिकमणिके समान (चेयनगुन सुद्ध निम्मलं भावं) चेतना गुणधारी शुद्ध वीतराग भावरूप है (कम्ममल पयडि विरयं) यह सर्व कर्मरूपी मैलकी विभाव परिणातिसे रहित है (विरयं संसार सरनि मोहन्धं) यह संसारमें भ्रमण करानेवाले अन्ध मोहभावसे रहित है। इसीका ध्यान करना चाहिये।

भावार्थ—यहां फ अक्षरपर विचार किया गया है। आत्माका स्वभाव स्फटिक समान निर्मल है। यदि लाल पीले हरे रंगकी उपाधि लग जाती है तो फटिकके रंगका परिणमन लाल, पीले, हरे रंगरूप होजाता है परन्तु यदि उपाधि न लगे तो स्फटिक सदा निर्मल रहता है। इसी तरह आत्मा स्वभावसे शुद्ध वीतराग ज्ञानानन्दमय है। अनादिकालके प्रवाहसे कर्ममलकी उपाधिके कारणसे संसारमें राग द्वेष मोह करता हुआ भ्रमण किया करता है। परन्तु उपाधि पर पदार्थ है। स्वभावसे यह सर्व उपाधि रहित है। न इसके संसारका भ्रमण है न इसके कर्म मैलका सम्बन्ध है। निश्चय-नयसे आत्माको स्फटिकसम शुद्ध ही ध्याना चाहिये।

वर सुद्ध ज्ञान निश्चं, बंभं चरनं अबंभ तिक्तं च।
तिक्तं असुद्ध भावं, सुद्ध सहावं च भावना सुद्धं ॥ ७५१ ॥

अन्वयार्थ—(वर सुद्ध ज्ञान निश्चं) जिसने निश्चय शुद्ध आत्मध्यानको स्वीकार किया है (बंभं चरनं) जो ब्रह्मचर्यमें चलता है (अबंभ तिक्तं च) तथा अब्रह्म भावसे अलग है (असुद्ध भावं तिक्तं) उसने अशुद्ध भाव त्याग दिया है (सुद्ध सहावं च भावना सुद्धं) वह शुद्ध स्वभावमें ठहरकर शुद्ध भावना करता है।

भावार्थ—यहां ब अक्षरपर विचार किया गया है। निश्चयनयसे आत्माका ही ध्यान करता है। जो इस निश्चय आत्मध्यानका अभ्यास करता है वही ब्रह्मचर्य पालता है और अब्रह्मसे अलग है।

निश्चयसे आत्मा परब्रह्म है। अनात्मा अब्रह्म है व्यवहारसे कामभाव त्याग ब्रह्मचर्य है, कामभाव अब्रह्म है। जो आत्मध्यानमें अनुरक्त हैं वह व्यवहार व निश्चय दोनों ही प्रकारके अब्रह्मसे अलग होकर व्यवहार व निश्चय दोनों ही प्रकारके ब्रह्मचर्यमें लीन हैं। वही सर्व अशुद्धोपयोगसे छुटा हुआ व शुद्धोपयोगमें तिष्ठा हुआ मोक्षका सच्चा पथिक है।

भद्रं मनोज्ञ सुद्धं, भद्रं जाती च निम्मलं सुद्धं।
संसार विगत रूवं, अप्प सहावं च निम्मलं भावं ॥ ७५२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं च निम्मलं भाव) आत्माका स्वभाव निर्मल भावरूप है (भद्रं) मङ्गलरूप है (मनोज्ञ) सुन्दर तथा (सुद्धं) शुद्ध है (भद्र जाती च निम्मलं सुद्धं) आत्माकी जाति भी श्रेष्ठ निर्मल तथा शुद्ध है (संसार विगत रूवं) यह संसारके भ्रमणके स्वभावसे रहित है।

भावार्थ—यहां भ अक्षरपर विचार किया गया है। निश्चयनयसे विचारा जाय तो यह आत्मा परम शुद्ध है। इसी तरह सर्व ही आत्माएँ निश्चयसे शुद्ध हैं। अर्थात् आत्माकी जातिमें सर्व ही आत्माएँ एकरूप शुद्ध हैं। उनमें कोई कर्मका मैल नहीं है, न उनका कहीं चारों गतिमें भ्रमण है। यह आत्मा बहुत ही सुन्दर है, शांत है, आनन्दरूप है तथा यही भद्र है, परम मंगलरूप है। जो आत्माका ध्यान करते हैं वे कर्ममलको दूर कर परमानन्दको पाते हैं।

मम आत्मा सुद्धानं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं।
रागादि दोष रहियं, ज्ञान सहावेन सुद्ध सद्भावं ॥ ७५३ ॥

अन्वयार्थ—(मम आत्मा सुद्धानं) मेरा आत्मा निश्चयसे शुद्ध है (सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं) यही शुद्धात्मा ज्ञान दर्शन गुणोंसे पूर्ण है। (रागादि दोष रहियं) राग द्वेषादि विकारोंसे रहित है (ज्ञान सहावेन सुद्ध सद्भावं) ज्ञान स्वभावमें थिर होनेके कारणसे यही शुद्ध सत्ताको धरनेवाला है।

भावार्थ—यहां म अक्षर पर विचार किया गया है। ज्ञानीको यह विचारना चाहिये कि मेरा आत्मा निश्चय नयसे सिद्धके समान शुद्ध है, यह परम वीतराग है, पूर्ण ज्ञान व दर्शन गुणोंसे भरपूर है, इसकी शुद्ध सत्ता इसीमें है। इसतरह ध्यानमें लाकर जो शुद्ध आत्माका ध्यान करता है वही मोक्षमार्गी सम्यग्दृष्टी है।

जयकारं जिन उत्तं, जयवंतो सुद्ध निम्मलं भावं ।

मिच्छात राग मुक्कं, ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं ॥ ७५४ ॥

अन्वयार्थ—(जयकारं जिन उत्तं) श्री जिनेन्द्र कथित वाणीकी जय हो (सुद्ध निम्मलं भावं जयवंतो) इस वाणी द्वारा प्रगट शुद्ध निर्मल भावकी जय हो। जो भाव (मिच्छात राग मुक्कं) मिथ्यात्वसे व रागसे मुक्त है (ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं) इसी ज्ञान स्वभावमें तिष्ठनेसे आत्मा निर्मल होता है।

भावार्थ—यहां य अक्षरके स्थानपर ज का विचार किया गया है। इस जगतमें द्वादशांगवाणी धन्य है, जो स्याद्वादनयसे अनेकांत स्वरूप पदार्थोंको झलकानेवाली है, जो व्यवहारनयसे पर्यायोंको व निश्चयनयसे द्रव्यके स्वभावको झलकाती है। इसी वाणीके प्रतापसे अपने आत्माका बोध होता है कि यही निश्चयसे परमात्मा है, न इसमें मिथ्यात्व है न संसारका राग है। इस आत्माके ज्ञान स्वभावमें तिष्ठनेसे ही आत्मा कर्म-मल रहित शुद्ध होजाता है।

रयनत्तय संजुत्तं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ।

मयमान मिच्छ विरयं, संसारे तरंति निम्मलं भावं ॥ ७५५ ॥

अन्वयार्थ—(रयनत्तय संजुत्तं) जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र सहित हैं (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्माको परमात्मारूप दोष रहित शुद्ध अनुभव करते हैं (मयमान मिच्छ विरयं) मान माया व मिथ्यात्व भावसे विरक्त हैं वे (निम्मलं भावं संसारे तरंति) निर्मल भावोंके द्वारा संसारसे पार उतर जाते हैं।

भावार्थ—यहां र अक्षरपर विचार किया गया है। व्यवहार रत्नत्रयके आलम्बनसे जो निश्चय रत्नत्रयमें स्थिर होकर अपने आत्माको सिद्धके समान शुद्ध ध्याते हैं। तथा राग, द्वेष, मोहसे रहित वे अपने शुद्धोपयोगके बलसे संसारसे पार होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

लंकृत ज्ञान सहावं, कुज्ञानं त्यजंति सयल मिच्छातं ।

परमानन्द सरूवं, ज्ञानमयं परम भाव सिद्धीए ॥ ७५६ ॥

अन्वयार्थ—(कंकृत ज्ञान सहावं) तत्वज्ञानी ज्ञान स्वभावसे विभूषित होकर (कुज्ञानं सयल मिच्छातं त्यजंति) मिथ्याज्ञान व सर्व मिथ्या श्रद्धानको त्याग देते हैं (परमानन्द सरूवं ज्ञानमयं परम भाव सुद्धोए) जिससे कि वे परमानन्दमई ज्ञान स्वरूपी उत्तम भावकी सिद्धि कर सकें।

भावार्थ—यहां ल अक्षर पर विचार किया गया है। मोक्षमार्गपर चलनेवाले साधुजन मिथ्या-दर्शन मिथ्याज्ञान व मिथ्या चारित्रको त्यागकर आत्माके स्वभावमें ही रमण करते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य यही है कि अपने आत्माका शुद्ध स्वभाव जो परमानन्दमई व वीतराग है वह प्रकाशित होजावे।

बारापार महोर्म्मं, तरंति गे ज्ञान ज्ञान संजुत्तं।
भावंति सुद्ध भावं, ज्ञान सहावेन संजमं सुद्धं ॥ ७५७ ॥

अन्वयार्थ—(बारापार महोर्म्मं) वे ही महान अपार संसाररूपी बडे समुद्रको तर जाते हैं (तरंति गे ज्ञान ज्ञान संजुत्तं) जो आत्मज्ञान व आत्मध्यान सहित (सुद्ध भावं भावंति) शुद्ध भावकी भावना भाते हैं (ज्ञान सहावेन सुद्धं संजमं) तथा ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध संयमके आराधक हैं।

भावार्थ—यह संसाररूपी महान समुद्र है जहां राग द्वेष मोहकी तरंगे उठा करती हैं। जो तत्वज्ञानी शुद्ध आत्माका ध्यान करते हैं-शुद्धोपयोगमें जमते हैं अर्थात् निज आत्मामें ही संयमरूप होजाते हैं वे ही कर्मोंको काटकर भवसागरसे पार होजाते हैं। यहां व अक्षरपर विचार किया गया है।

सहकारे जिन उत्तं, सुतं संसार तारने नित्यं।
संसार सरनि विरयं, ज्ञान सहावेन भावना सुद्धं ॥ ७५८ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं सुतं) जिनेन्द्र कथित श्रुतज्ञान (संसारतारने नित्यं सहकारे) संसारसे पार होनेमें सदा ही सहकारी है। इस जिनवाणीकी सहायतासे जो (संसार सरनि विरयं) संसारके मार्गसे विरक्त होजाते हैं वे (ज्ञान सहावेन सुद्धं भावना) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध भावना करते रहते हैं।

भावार्थ—यहां श के स्थानमें स अक्षर विचार किया गया है। केवलज्ञानका साधक वास्तवमें आत्मानुभवरूप भावश्रुत ज्ञान है। जो कोई जिनवाणीके अभ्यासके इस भावश्रुत ज्ञानको पाकर

संसारके भ्रमणसे वैरागी होजाते हैं वे ज्ञान स्वभावमें तिष्टकर शुद्धात्माकी भावना भाते हुए संसारसे पार होजाते हैं।

षिपिनिक भाव निमित्तं, षिपिओ संसार सरनि मोहंषं।
षय उवसम संजुत्तं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७५९ ॥

अन्वयार्थ—(षिपिनिक भाव निमित्त) क्षायिक भावरूप मोक्षके लिये (संसार सरनि मोहंषं षिपिओ) जो संसारके भ्रमणके कारण दर्शनमोहको क्षय करके क्षायिक सम्यक्ती होजाते हैं, वे (षय उवसम संजुत्तं) क्षपकश्रेणी या उपशम श्रेणीपर चलते हुए (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) अपने आत्माको परमात्मारूप निर्मल शुद्ध अनुभव करते हैं।

भावार्थ—यहां ष अक्षरपर विचार किया गया है। मोक्ष आत्माका निज स्वभाव है। इस स्वभावकी प्रगटताके लिये भव्यजीव दर्शनमोहकी तीन प्रकृति और अनन्तानुबन्धी चार कषाय इन सात प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यक्ती होजाते हैं। फिर चारित्रकी उन्नतिके लिये साधु पदमें यदि तद्भव मोक्षगामी हुए तो क्षपकश्रेणीपर चढ जाते हैं, नहीं तो उपशम श्रेणीपर चढते हैं, दोनों ही श्रेणियोंपर जाकर शुद्ध आत्माका ही ध्यान शुक्लध्यानके द्वारा करते हुए चारित्र मोहका क्षय या उपशम करते हैं। कोई २ क्षायिक सम्यक्ती पहले उपशम श्रेणीपर चढकर फिर लौटकर क्षपकश्रेणी उसी शरीरसे चढ सक्ते हैं। ऐसे महात्मा शीघ्र ही परमात्मा होजाते हैं।

सहकार धम्म धरनं, सहजोपनीत सहज नन्द आनन्दं।
संसार विगत रूवं, अप्पा परमप्प सुद्ध मप्पानं ॥ ७६० ॥

अन्वयार्थ—(सहकार धम्म धरनं) मोक्षका साधक धर्मका पालना यह है जो (सहजोपनीत सहज नंद आनंदं) स्वाभाविक आनन्दको अपने स्वभावके द्वारा ही स्वादा जावे (संसार विगत रूवं) यह संसारके सुखसे विलक्षण है (अप्पा परमप्प सुद्ध मप्पानं) यहां आत्मा परमात्मारूप अपने शुद्ध आत्माका ही अनुभव करता है।

भावार्थ—यहां स अक्षर पर विचार किया गया है। मोक्ष आत्माका एक ऐसा स्वभाव है जहां निरन्तर सहजानन्दका विलास है। इसलिये मोक्षका मार्ग भी उसीके समान सहजानन्दका

भोग है। यह इंद्रियोंके सुखोंसे विलक्षण स्वाधीन है। जब आत्मा शुद्ध निश्चयनयके द्वारा अपनेको परमात्मारूप जानकर आपसे ही आपमें मगन होजाता है तब यह आनन्द प्रकाशित होता है।

ह्रींकारं अरहंतं, तेरह गुन ठान संजदो सुद्धं।
चौतीस अतिसय जुत्तो, केवल भावे मुने अव्वो॥ ७६१ ॥

अन्वयार्थ—(ह्रींकारं अरहंतं) ह्रीं मंत्रसे अर्हंतका ध्यान करना चाहिये (तेरह गुन ठान संजदो सुद्धं) जो सयोग केवली नामके तेरहवें गुणस्थान धारी स्नातक संयमी वीतराग हैं (चौतीस अतिसय जुत्तो) चौतीस अतिशयसे अलँकृत हैं (केवल भावे मुने अव्वो) वे केवल ज्ञानादि भावोंके धारी हैं ऐसा जानने योग्य है।

भावार्थ—यहां ह्र अक्षरपर विचार किया गया है। अर्हंतके स्वरूपका ध्यान ह्रीं मंत्रको नाशिकाके अग्रभाग आदि किसी स्थानपर बिराजमान करके करना चाहिये। अर्हंतका स्वरूप भी विचारना चाहिये कि वे सयोग केवली जिन हैं। उनका विहार होता है। वे भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देते हैं। वे चौतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य व केवलज्ञानादि चार चतुष्टय युत विराजमान हैं। इन अतिशयोंका स्वरूप ६४९ वीं गाथामें किया गया है।

षिपतं कम्म सभावं, षिपियं संसार सरनि सद्भावं।
अप्पा परमानंदं, परमप्पा मुक्ति संजुत्तं॥ ७६२ ॥

अन्वयार्थ—(षिपतं कम्म सभावं) जिन्होंने कर्मकी सब प्रकृतियोंका क्षय कर डाला है (षिपियं संसार सरनि सद्भावं) व जिन्होंने संसार मार्गके प्रेरक सर्व रागादि भावोंका क्षय कर डाला है (अप्पा परमानन्दं) जिनका आत्मा परमानन्द स्वरूप है (परमप्पा मुक्ति संजुत्तं) वे ही सिद्ध परमात्मा मोक्षरूप हैं।

भावार्थ—यहां चौदह स्वर, तेतीस व्यंजन व पांच अक्षरी "ॐ नमः सिद्धं" मंत्र इन बावन अक्षरोंके मननका सार यह है कि हम सिद्ध परमात्माको पहचाने, जो रागादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि आठों द्रव्य कर्म, व शरीरादि नोकर्मसे रहित हैं, परमानन्दमें निरन्तर मग्न हैं। मोक्ष स्वरूप अमूर्तीक ज्ञानाकार तथा पुरुषाकार विकल परमात्मा निरंजन देव हैं। सिद्ध सम आपका ध्यान ही मोक्षका साधन है।

अक्षर स्वर विंजन रूवं, पदविंद सुद्ध केवलं ज्ञानं ।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, अप्पानं लहंति निव्वानं ॥ ७६३ ॥

अन्वयार्थ—(अक्षर स्वर विंजन रूवं) पांच अक्षर, चौदा स्वर तथा तैतीस व्यंजनोंके द्वारा (पदविंद सुद्ध केवलं ज्ञानं) शुद्ध केवलज्ञानके धारी पद अरहंत तथा सिद्धका मनन करना चाहिये (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) अपने ज्ञानमई आत्माको ज्ञानमय (अप्पानं लहंति निव्वानं) आत्मारूप ध्यायकर निर्वाणको प्राप्त करना चाहिये ।

भावार्थ—ऊपर लिखित बावन अक्षरोंकी जापका अभिप्राय यह है कि हम अरहन्त तथा सिद्ध परमात्माके शुद्ध गुणोंपर लक्ष्य देकर अपने आत्माको परमात्मारूप निश्चयसे जानकर निज आत्माके ध्यानमें तल्लीन होजावें, इसी उपायसे आत्मा कर्मोंसे छूटकर मुक्तिका लाभ कर सक्ता है ।

तत्व पदार्थ निरूपण ।

तत्वं तत्तु सहावं, जीवाजीवं च तत्तु जाने हि ।
आस्रव बंध निरोधं, संवर निज्जर विमल भावस्य ॥ ७६४ ॥
मोक्षं षिपति ति कम्मं, तत्वं जाने हि सयल विज्ञानं ।
पदार्थं पदविंदं, जीवाजीवस्य विंद विज्ञानं ॥ ७६५ ॥
पुन्य पाप आस्रवनं, बंधं संवर ति ज्ञान सहकारं ।
निज्जर मोक्ष सुभावं, पदार्थं ज्ञान सहाव निम्मलयं ॥ ७६६ ॥

अन्वयार्थ—(तत्तु सहावं तत्वं) मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत वस्तुका जो स्वभाव है वही तत्व है । वे तत्व सात हैं (जीवाजीवं च तत्तु जाने हि) मुख्य तत्व जीव अजीवको जानो इनहीसे शेष पांच तत्व बने हैं (आश्रव बंध निरोधं संवर) तीसरा तत्व कर्मोंका आना सो आस्रव है, चौथा कर्मोंका बंधना सो बंध है । आस्रव बन्धका रोकनेवाला पांचवा तत्व संवर है (विमल भावस्य निज्जर) शुद्ध भावोंसे कर्मकी

निर्जरा होती है यह छठा तत्व है (ति कम्मं षिपति मोक्षं) तीन प्रकार कर्म अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्मका नाश होना सातवां तत्व मोक्ष है (तत्वं जाने हि सयल विज्ञानं) इन सात तत्वोंसे मोक्षमार्गका सर्व विज्ञान जाना जाता है (पदार्थं पदविंद) पदोंके द्वारा वस्तुको जनावे सो पदार्थ है। वे पदार्थ नौ हैं (जीवाजीवस्य विंद विज्ञानं) पहले मुख्य दो पदार्थ जीव और अजीवका ज्ञान अनुभव करना चाहिये (पुन्य पाप आस्रवनं) तीसरा पदार्थ पुन्य है, चौथा पाप है, पांचवा उनका आना आस्रव है (बन्धं संवर ति ज्ञान सहकारं) छठा पदार्थ कर्मोंका बन्ध है। सातवां पदार्थ कर्मोंका संवर है जो अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञानका सहकारी है (निज्जर मोक्ष सुभावं) आठवां पदार्थ कर्मोंकी निर्जरा है, नौमा पदार्थ आत्माका निज भाव रूप मोक्ष है (पदार्थ ज्ञान सहाव निम्मल यं) ये नौ पदार्थ ज्ञान स्वभावी आत्माके शुद्ध करनेके उपाय हैं।

भावार्थ—यहां तारणस्वामीने जैन सिद्धान्तानुसार सात तत्व व नौ पदार्थोंकी नामावली बता दी है। हरएक मोक्षमार्गीको सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिये उनको जानकर श्रद्धान करना योग्य है।

द्रव्य निरूपण।

दव्वं दव्व सरूवं, जीव दव्व अजीव दव्व विज्ञानं।
धम्मं अहम्मं जाने, आकासं काल दव्व दव्वार्थं ॥ ७६७ ॥

अन्वयार्थ—(दव्वं सरूवं दव्व) जो अपने गुणोंमें द्रवणको परिणमन करे उसे द्रव्य कहते हैं, वे छः हैं (जीव दव्व अजीव दव्व विज्ञानं) उनमेंसे मुख्यतासे जीव द्रव्यको तथा पुद्गल द्रव्यको जानना चाहिये, (धम्मं अहम्म जाने) तीसरे धर्म द्रव्यको, चौथे अधर्म द्रव्यको, (आकासं काल दव्व दव्वार्थं) पांचवे आकाश-द्रव्यको, छठे काल द्रव्यको आत्म द्रव्यके हितके लिये जानना योग्य है।

भावार्थ—जिनसे लोकालोक भरा है व जिनको छोडकर कोई और द्रव्य लोकमें नहीं है, वे सर्व छः द्रव्य हैं-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। यहां अजीवके स्थान पुद्गलको ही लेना

योग्य है। क्योंकि जीवके सिवाय पांचो ही अजीव हैं। द्रव्यका लक्षण सत्, उत्पाद व्यय ध्रौव्य है तथा गुण पर्यायवान है। ये तीनों लक्षण इन द्रव्योंमें सिद्ध होते हैं। ये सब द्रव्य न कभी पैदा हुए न कभी नाश होंगे। इनकी सत्ता सदासे है व सदा रहेगी। इसलिये ये द्रव्य सत् हैं। सत् होकरके भी कूटस्थ नित्य नहीं हैं। किंतु द्रवणशील या परिणामनशील हैं। इनमें सदा स्वभाव या विभाव पर्यायें हुआ करती हैं। पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं–एक पर्यायका नाश होता है तब दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है तथापि जिसमें परिणमन हुआ वह बना रहता है। इसीलिये द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है।

जैसे एक सुवर्णकी कण्ठीको तोडकर माला बना ली। कण्ठीकी पर्याय नष्ट हुई, मालाकी पर्याय पैदा हुई, परन्तु सुवर्ण द्रव्य दोनोंमें है, बना हुआ है। द्रव्यमें सदा गुण पर्याय पाए जाते हैं। जो सदा द्रव्यके साथ रहें वे गुण हैं, जो क्रमसे वर्ते वे पर्याय हैं। हरएक द्रव्य अपने२ साधारण तथा विशेष गुणोंका समुदाय है। साधारण गुण अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व हैं। विशेष गुण जीवके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र आदि है पुद्गलके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हैं। धर्मका जीव पुद्गलको गमन हेतुपना है। अधर्मका जीव पुद्गलको स्थिति हेतुपना है। आकाशका सर्व द्रव्योंको स्थान देना है। कालका सर्व द्रव्योंको पलटाना है। गुणोंके परिणमनको पर्यायें कहते हैं। शुद्ध द्रव्योंमें सदृश स्वाभाविक पर्यायें क्षीरसमुद्रमें कल्लोलवत् हुआ करती हैं। उन पर्यायोंसे कोई अशुद्धता नहीं आती है। संसारी जीव तथा पुद्गल द्रव्यमें विभाव पर्यायें हुआ करती हैं। जैसे कोई जीवका ज्ञान गुण, मतिज्ञान रूप था सो श्रुतज्ञान रूप होगया या अवधिज्ञान रूप होगया या चारित्र गुण क्रोधरूप था सो शांतरूप होगया। या मानव पर्याय थी, सो पलटकर देव पर्याय होगई। पुद्गलका एक स्कन्ध मिट्टीका डला था सो पलटकर घडा बन गया। या हरा पत्ता पलटकर पीला पत्ता होगया। यहां वर्ण गुण बना रहा, वर्णकी अवस्था हरेसे पीली होगई।

अस्तिकाय निरूपण ।

काया जीवास्ति सुद्धं, अजीवास्ति अतीन्द्रियं च सभावं ।
धम्मास्ति धम्म चेयनयं, अहमास्ति सयलकाल ठिदिकरनं ॥ ७६८ ॥
अवकास्ति दान अवयासं, कालं कायन संजदो हुंती ।
पंचास्तिकाय कहियं, सुद्ध सहावेन अमल उववन्नं ॥ ७६९ ॥

अन्वयार्थ—(काया जीवास्ति सुद्धं) पांच अस्तिकायोंमें प्रथम शुद्ध जीवास्तिकाय है (अतींद्रियं च सभावं) जिसका स्वभाव अतीन्द्रिय है, इन्द्रियोंके गोचर नहीं है (अजीवास्ति) दूसरा पुद्गलास्तिकाय है (धम्मास्तिकाय धम्म चेयनयं) तीसरा धर्मास्तिकाय है जो जीव पुद्गलके गमनमें सहकारी है (अहमास्ति सयल काल ठिदि करनं) चौथा अधर्मास्तिकाय है, जो सर्व काल द्रव्यकी स्थितिमें सहकारी है (अवकास्ति दान अवयासं) पांचमां आकाश अस्तिकाय है जो सर्व द्रव्योंको जगह देता है । (कालं काय संजदो न हुन्ती) काल द्रव्य काय संयुक्त नहीं है, (पंचास्तिकाय कहियं) ये पांच अस्तिकाय कहलाते हैं । काल अस्तिकाय नहीं है । (सुद्ध सहावेन अमल उववन्नं) ये सब अपने शुद्ध स्वभावसे शुद्ध परिणमन किया करते हैं ।

भावार्थ—जो सदा काय रूपसे पाए जावें, उनको अस्तिकाय कहते हैं। बहु प्रदेशवाले पिंडको काय कहते हैं । एक प्रदेशीको काय नहीं कहते हैं । जितने आकाशको एक अविभागी पुद्गलका परमाणु रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं । काल कालाणुरूप द्रव्य रत्नोंकी राशिके समान लोकाकाशके असंख्यात प्रदशोंमें अलग २ व्याप्त है । एक एक प्रदशोंपर एक २ कालाणु है, वे कभी मिलते नहीं, इसलिये वे काय नहीं हैं। शेष पांच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। जीव असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशके बराबर अखण्ड है । संकोच विस्तार शक्तिके कारण प्राप्त हुए शरीरके प्रमाण दीपकके प्रकाशकी तरह हो जाता है । सिद्ध जीवका आकार भी अंतिम शरीरमें जैसा था, वैसा रहता है । कर्मोंके उदयसे संकोच विस्तार होता है । कर्मोंके क्षयपर जैसाका तैसा रहता है । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, भी जीवके बराबर असंख्यात असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश भरमें व्याप्त अखण्ड एक एक द्रव्य है ।

जीव पुद्गलोंके गमनमें उदासीन कारण धर्म है, तब उनके स्थिति होनेमें उदासीन कारण अधर्म है।

आकाश अनन्त है, इससे उसके अनन्त प्रदेश हैं। पुद्गलके पिंड तीन प्रकारके बनते हैं। कोई संख्यात परमाणुओंके, कोई असंख्यात परमाणुओंके, कोई अनन्त परमाणुओंके, इसलिये पुद्गलमें तीन प्रकार संख्यात असंख्यात अनन्त प्रदेश होते हैं। परमाणु यद्यपि एकप्रदेशी है, परन्तु उसमें मिलनेकी शक्ति है, कालाणुमें नहीं है इससे परमाणु भी कायवान है।

तत्तुपय दव्व कहियं, काया स सरूव उवएसनं सुद्धं ।
गुन रूव भेय विज्ञानं, एको उदेस ज्ञान सहकारं ॥ ७७० ॥

अन्वयार्थ—(तत्तुपय दव्व काया कहियं) इस तरह सात तत्व, नौ पदार्थ, छः द्रव्य, पांच आस्तिकाय कहे गए हैं (स सरूव उवएसनं सुद्धं) जीवादि छः द्रव्य अपने स्वभावमें रहनेसे शुद्ध कहे गए हैं। (गुन रूव भेय विज्ञानं) इन सब तत्वादिके गुण स्वभावके भेदोंको विशेष जानना चाहिये (एको उदेस ज्ञान सहकारं) इनका जानना केवलज्ञानकी प्रगटतामें एकोदेश अर्थात् कुछ अंशमें सहकारी है।

भावार्थ—मोक्षमार्गके समझनेके लिये इन तत्वादिका स्वरूप भलेप्रकार जानकर निश्चय करना चाहिये। निश्चय सम्यक्तके लिये इनका श्रद्धान आवश्यक है। जब कि निश्चय सम्यक्तका अनुभव केवलज्ञानकी प्रगटताका साधन है।

जीव तत्व।

जीओ जीवंपि जीवं, जीवन्तो ज्ञान दंसन समग्गं ।
वीजं सुद्ध सु चरनं, ज्ञानमयोपिऽनन्त सुह निलयं ॥ ७७१ ॥

अन्वयार्थ—(जीओ-जीवंपि जीवंतो जीवं) जो जीता था, जीवेगा व जी रहा है सो जीव है (ज्ञान दंसन समग्गं) यह जीव ज्ञान दर्शन गुणोंसे पूर्ण है। (वीजं सुद्ध सु चरनं) यह आत्मवीर्यका धारी है, शुद्ध स्वभावमें आचरण करनेवाला वीतरागी है। (ज्ञानमयोपि अनन्त सुह निलयं) ज्ञानाकार होकर भी अनंत सुखका भंडार है।

भावार्थ—यहां शुद्ध जीव तत्वका निरूपण है। जो त्रिकाल सदा जीता है वही जीव है। यह कोई नया द्रव्य कभी पैदा नहीं हुआ। यह पहलेसे है, आगे भी रहेगा, इससे यह नित्य है। यह जीव अपने सर्व प्रदेशोंमें पूर्ण ज्ञान ध्यान गुणोंसे पूर्ण कलशकी तरह भरा है। यह अनंतवीर्यका धनी है, परम निर्विकार निज स्वरूपमें ही रमण करनेवाला है, ज्ञानाकार अमूर्तीक है, अनन्त सुखका भंडार है।

जीवो उड्ढगमओ जीव सहाओ सुनिम्मलो सुहमो।
अतिंद्री ज्ञान सहाओ, चौ दस प्राण अतीन्द्रिया सुहमो॥ ७७२॥

अन्वयार्थ—(जीवो उड्ढगमओ) जीवका स्वभाव ऊर्ध्वगमन है (जीव सहाओ सुनिम्मलो सुहमे) जीवका स्वभाव अत्यन्त निर्मल तथा सूक्ष्म है (अतिंद्री ज्ञान सहाओ) वह इंद्रियोंके अगोचर ज्ञानस्वभावी है (चौ दस प्राण) चार तथा दश प्राणधारी है (अतीन्द्रिया सुहमो) तौभी निश्चयसे अतीन्द्रिय सूक्ष्म है।

भावार्थ—जीवका स्वभाव ऊपरको जानेका है। जब कर्म सहित होता है, तब कर्मकी प्रेरणासे जो गति बांधी होती है, उधर चार दिशाओं व ऊपर नीचे छः दिशाओं द्वारा जाता है। परन्तु जब कर्म रहित हो जाता है, तब दीपककी लौके समान ऊपरको लोकके अग्रभाग तक जाता है और ठहर जाता है। क्योंकि वहींतक गमन सहकारी धर्मास्तिकाय द्रव्य है। जीवका स्वभाव सर्व रागादि रहित परम निर्मल है तथा वह इतना सूक्ष्म है कि पांचों इंद्रियां उसको नहीं जान सक्ती हैं। मन भी मात्र विचार कर सकता है, मन भी ग्रहण नहीं कर सकता। जब मन और इंद्रियोंसे उपयोगको हटाया जाता है और आप आपमें तन्मय हुआ जाता है, तब ही आत्माका स्व संवेदन ज्ञान द्वारा ग्रहण होता है। इसका स्वभाव स्वपरज्ञायक है। यह एक समयमें त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्योंको सर्व पर्यायोंको जाननेको समर्थ है। व्यवहारनयसे संसारावस्थामें संसारी जीवोंके बाहरी शरीरमें स्थितिके कारण चार मुख्य प्राण होते हैं-इंद्रिय, बल, आयु, स्वासोछ्वास। इसीके उत्तर भेद ५ इन्द्रिय + ३ बल + १ आयु + १ श्वासोछ्वास=१० हैं। पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन इंद्रिय, कायबल, आयु, स्वासोछ्वास ऐसे चार प्राण होते हैं। लट आदि द्वेंद्रिय प्राणियोंके रसना इंद्रिय और वचन बल अधिक लेकर छः प्राण होते हैं। चींटी आदि तेंद्रिय जीवके घ्राण

इंद्रिय जोडकर सात प्राण होते हैं। मक्खी आदि चौंद्री जीवोंके चक्षु जोडकर आठ प्राण होते हैं। पानीके कोई सर्प आदि असैनी पंचेन्द्रियके मन बल विना नौ प्रमाण होते हैं। सैनी पंचेंद्रिय गाय, भैंस, बकरा, घोडा, मछली, मच्छ, कबूतर, काग आदि, सर्व मनुष्य, सर्व देव, सर्व नारकी इन सबके दसों प्राण होते हैं। ये प्राण तो इंद्रियगोचर हो सकते हैं। परन्तु शुद्ध आत्मा तो अत्यन्त सूक्ष्म अतीन्द्रिय है।

जीओ जयं च रूवं, जाता उत्पन्न ज्ञान ससहावो।
आदि अनादि असंख्यं, उववन्नं ज्ञान दंसन समग्गं ॥ ७७३ ॥

अन्वयार्थ—(जीओ जयं च रूवं) यह जीव सदा जय स्वभाव है अर्थात् यह कर्मोंका विजय कर सक्ता है (जाता उत्पन्न ज्ञान ससहावो) संसार अवस्थामें एकेन्द्रिय आदि जातिसे उत्पन्न होता रहता है तथापि ज्ञानमई अपने स्वभावसे अविनाशी है। (आदि अनादि असंख्यं) गतिमें जन्म लेनेकी अपेक्षा आदि सहित है तथापि स्वभावसे अनादि है तथा प्रदेशोंकी अपेक्षा लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है (उववन्नं ज्ञान दंसन समग्गं) संसारमें उत्पन्न होते हुए भी ज्ञान दर्शन स्वभावसे पूर्ण रहता है।

भावार्थ—यह जीव जब अपने स्वभावको पहचानता है तब आत्माके ध्यानके बलसे कर्मोंको जीतकर जिन होजाता है। संसारकी गतियोंमें जन्म लेनेकी अपेक्षा उत्पन्न होता है व आदि सहित है। तथा शरीर प्रमाण आकार रखता है। परन्तु स्वभावसे यह जीव सदा ज्ञान स्वभाव बना रहता है। यह स्वभावमें स्वाभाविक ज्ञान दर्शनसे पूर्ण है, असंख्यात प्रदेशी है तथा अनादि अनंत नित्य है।

नादु न बिंदु नकारं, न हि उप्पत्ति बिपति धुव सुद्धं।
सुद्धं सुद्ध सरूवं, सुद्धं तियलोय मत्त निम्मलयं ॥ ७७४ ॥

अन्वयार्थ—(नादु न विन्दु नकारं) शुद्ध निश्चयनयसे जीवमें न तो कोई शब्द है न कोई चिह्न है जिससे इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किया जासके न उसमें कोई क्रिया है, हलन-चलनादि है (न हि उप्पत्ति बिपति धुव सुद्धं) न उसमें निश्चयसे कोई उत्पत्ति है न कोई व्यय है। वह तो ध्रुव शुद्ध है (सुद्धं सुद्ध

सरूवं) वह परम शुद्ध स्वरूप है (सुद्धं तिलोय मत्त निम्मलयं) शुद्ध अर्थात् निश्चल तीन लोक मात्र असंख्यात प्रदेशी है व सर्व कर्म मल रहित है।

भावार्थ—यहां परम शुद्ध निश्चयनयसे जीवके स्वरूपका विचार है। शुद्ध जीवमें कोई शब्द नहीं है। क्योंकि शब्द जड है व जडसे ही उत्पन्न होता है, न कोई जडमई चिह्न या लिंग है जिससे वह इन्द्रियोंका विषय हो, न उसमें कोई क्रिया है। जहांतक कर्मोंका सम्बन्ध है व योगोंका हलन-चलन है वहांतक संसारी जीवोंमें क्रिया पाई जाती है। द्रव्य स्वभावकी अपेक्षा यह जीव सर्व क्रिया रहित निष्क्रिय है। पर्यायार्थिकनयसे इसमें स्वाभाविक पर्यायोंका विचार होता है। पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद व्यय कहते हैं, द्रव्यकी अपेक्षा वह न उपजता है न विनशता है, वह सदा ही अविनाशी व स्फटिक मणिमय शुद्ध है। इसका स्वभाव रागादि भावोंसे रहित परम वीतराग है। यह निश्चयसे लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है। और सर्व कर्म मल व शरीरसे रहित है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें शुद्ध निश्चयनयसे जीवका स्वभाव कहते हैं—

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं। अविसेसमसंजुत्तं, तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १६ ॥

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनय आत्माको कर्मोंसे बन्धा व स्पर्शा नहीं देखता है। जैसे कमलका पत्ता जलसे अलग रहता है वैसे जीव कर्मोंसे अलग है। शुद्ध निश्चयनय जीवको सदा एकरूप देखता है। नर नारकादि पर्यायोंमें घूमा तथापि वही जीव है जैसे मिट्टीके घडे, प्याले, मटकैने आदि अनेक वर्तन बनाए जावे परन्तु यह मिट्टी रूपमें मिट्टी ही है—अन्य कुछ नहीं है। शुद्ध निश्चयनय जीवको निश्चल देखता है। जैसे पवनद्वारा तरंगोंसे रहित निश्चल समुद्र है वैसे यह क्रिया रहित निश्चल है। शुद्ध निश्चयनय जीवको अखंड एक सामान्य अभेद देखता है। जैसे सोना अपने भारीपने, चिकनेपन, पीलेपन आदि गुणोंसे अभेद है वैसे आत्मा अपने गुणोंसे अभेद है। शुद्ध निश्चयनय जीवको परके संयोग रहित वीतराग देखता है। जैसे जल अग्निके सम्बन्ध विना उष्ण नहीं होता है, स्वभावसे शीतल है वैसे यह आत्मा मोहनीय कर्मके उदय विना सदा वीतराग रहता है।

जीओ रूव विमुक्को, विगतं रूवं च चेयना अमलं।
लोयं लोयपमानं, नंत सरूवं च विमल ज्ञानस्य ॥ ७७५ ॥

अन्वयार्थ—(जीओ रूव विमुक्को) जीव स्पर्श, रस, गंध, वर्णसे रहित अमूर्तीक है (विगतं रूवं च चेयना ममलं) तथापि अरूपी चेतनाके निर्मल आकारको रखनेवाला है (लोयपमानं लोयं) लोकाकाश प्रमाण प्रदेशोंका धारी देखनेयोग्य है (विमल ज्ञानस्य नंत ससरूवं च) तथा अनंत केवलज्ञान स्वरूप है।

भावार्थ—यह जीव पुद्गल द्रव्यके विशेष गुणोंसे रहित है इसलिये अमूर्तीक है परन्तु एक वस्तु है इससे आकार अवश्य है। वह आकार अरूपी ज्ञानाकार है तथा लोकाकाश प्रमाण है। प्रदेशोंकी अपेक्षा जीव असंख्यात प्रदेशी है। ज्ञानकी अपेक्षा सर्वव्यापी है, अनन्त है। ज्ञानमें अनन्त पदार्थोंके द्रव्य गुण पर्याय एक समय झलक रहे हैं तौभी इसके निर्मल ज्ञानमें अनन्त ऐसे विश्वोंको झलकानेकी शक्ति है।

अजीव तत्व।

मन सुभाव उववन्नं, तत्वं पंचमि परिनाम संजुत्तं।
षिदि जल मरुं च पवनं, आकासं सुक्र श्रोनि मूर्छनयं ॥७७६॥

अन्वयार्थ—यहां अजीवतत्वसे मुख्यतासे अपने शरीर व कर्म सम्बन्धको लेकर कथन किया गया है, (मन सुभाव उववन्नं) जो हमारे पास मन है, वह सूक्ष्म मनोवर्गणासे उत्पन्न हुआ है। अतएव द्रव्य मन पुद्गल अजीव है। (षिदि जल मरुं च पवनं आकासं पंचमि तत्वं परिनाम संजुत्तं) पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा, आकाश इन पांच तत्वोंके परिणमनसे उत्पन्न हुआ यह शरीर है। (सुक्र श्रोनि मूर्छनयं) जो पिताका वीर्य तथा माताके रुधिरके संयोगसे जन्मा है, अतएव पुद्गल अजीव है।

भावार्थ—यहां भेदविज्ञानकी दृष्टिसे विचार रहे हैं कि कौन कौन अजीवका इस जीवके साथ सम्बन्ध है। पहले तो मनको विचार किया गया है कि यह मन जो हृदयस्थानमें आठ पांखडीके कमलके आकार द्रव्य मन है जिसके होते हुए संकल्प विकल्प रूप भाव मन काम करता है, वह मनोवर्गणारूपी पुद्गलसे रचित है अतएव जीव नहीं है, अजीव है। तथा यह औदारिक शरीर मलमें रजोवीर्यके संयोगसे जन्मा है तथा इसकी रचना पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशके

द्वारा हुई है। यह भी अजीव है। पांच तत्वोंमें चार तो पुद्गल हैं, एक आकाश अजीव है। इस शरीरको भी जीव मत जानो।

मन लेस्सा उत्पन्नं, इन्द्री बुध प्रान सुह असुहं।
पुग्गल सहाव उवनं, कम्म निबंध जीव संचरनं ॥ ७७७ ॥

अन्वयार्थ—(मन लेस्सा) मनके संकल्प विकल्पोंसे तथा लेश्याओंसे (सुह असुहं बुध इंद्री प्रान उत्पन्नं) शुभ अशुभ ज्ञानोपयोग तथा पांच इंद्रिय रूपी प्राणोंका कार्य उत्पन्न हुआ है। (पुग्गल सहाव उवनं कम्म) पुद्गलोंके स्वभावसे ही कर्म उत्पन्न हुए हैं। (निबंध जीव संचरनं) जिनसे बन्धा हुआ यह जीव चार गतियोंमें भ्रमण किया करता है।

भावार्थ—द्रव्य मन तो बिलकुल पुद्गलसे रचा हुआ है, भाव मन संकल्प विकल्प रूप मति ज्ञान व श्रुत ज्ञानसे काम करता है। ये दो ज्ञान शुद्ध आत्माके नहीं हैं, ये विभाव भाव हैं। कर्मोंके क्षयोपशमसे हुए हैं। इनके होते हुए क्रमवर्ती ज्ञानोपयोग काम करता है जिसमें कर्मके उदयकी निर्बलता है। इसलिये वे दोनों ज्ञान भी पौद्गलिक हैं। अर्थात् भाव मन भी शुद्ध जीवका स्वरूप नहीं है, अजीव है। योगोंका हलन चलन शरीर नामकर्मके उदयसे तथा मन, वचन, कायके आलम्बनसे होता है। क्रोधादि कषायोंके उदय रूप रंगसे रंजित योगोंको लेश्या कहते हैं।

अतएव कृष्ण नील कापोत अशुभ भावोंको झलकानेवाली तथा पीत, पद्म, शुक्ल शुभ भावोंको झलकानेवाली लेश्याएँ भी शुद्ध जीवसे भिन्न अजीव हैं। शुद्ध आत्मामें न योग है, न कषाय हैं, लेश्याएँ तेरहवें गुणस्थान तक ही हैं। भाव मनका भी परिणमन बारहवें गुणस्थान तक है क्योंकि तेरहवेंमें मतिश्रुत ज्ञान नहीं हैं। इन्द्रियोंके द्वारा जो पदार्थोंका ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है, यह भी शुद्ध जीवमें नहीं है अतएव अजीव है, जीवका स्वभाव नहीं है। ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका रचित जो यह कार्मण शरीर है, जिसके कारण यह जीव चारों गतियोंमें भ्रमण किया करता है वह भी कार्मण वर्गणारूप पुद्गलोंसे बना है अतएव अजीव है। प्रयोजन यह है कि रागद्वेषादि अशुभ व शुभ भाव आदि भाव कर्म कर्मोदय जनित सर्व भाव तथा आठ कर्ममय द्रव्य कर्म तथा शरीरादि नोकर्म सर्व अजीव तत्वमें डालकर जीवको इनसे रहित विचारना चाहिये।

सहकारेन संजुत्तं, रचियं पुग्गल सहाय संजुत्तं ।
सरीरं अवभासं, परिनै सहाव वृद्धि संप्रष्ठं ॥ ७७८ ॥

अन्वयार्थ—(सहकारेन संजुत्तं) कर्म शरीरके उदयके संयोगसे तथा (पुग्गल सहाव संजुत्तं रचियं) पुद्गलके स्वभावके संयोगसे रचा हुआ (सरीरं अवभासं) यह स्थूल शरीर प्रकाशमान होरहा है (परिनै सहाव वृद्धि संप्रष्ठं) जो परिणमन स्वभाव है, बढता है, पुष्ट होता है ।

भावार्थ—स्थूल शरीरको फिर यहां विचार किया गया है कि यह शरीर तब ही तक बनता है जबतक कर्मोंका उदय है । कर्मोंके उदयके साथ जीवके साथ इसका सम्बन्ध है । कर्मोंके नाश होते ही यह शरीर छूट जाता है । आहारक वर्गणाओंके परिणमन स्वभावसे यह शरीर रचा हुआ है । यह हमेशा बदलता रहता है, नए परमाणु आते हैं पुराने झडते हैं । यह बालकसे युवान व पुष्ट होता है फिर युवानसे वृद्ध होजाता है । कभी रोगी, कभी निरोगी, कभी भूखा, कभी तृप्त, कभी निर्बल, कभी सबल अनेक अवस्थाओंमें परिणमन करता हुआ प्रगट झलक रहा है । अतएव इस शरीरको जो एक दिन छूट जानेवाला है अपना न मानना चाहिये । यह पुद्गलसे रचा हुआ पौद्गलिक है, अजीव तत्वमें गर्भित है ।

कम्म उवनं भावं, इन्द्री मन विषय बुद्धि सद्भावं ।
अप्प सहाव न सुद्धं, कम्म निबन्धो य जीव तं भनियं ॥ ७७९ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म उवनं भावं) कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए ये सब पदार्थ या भाव हैं जैसे (इन्द्री मन विषय बुद्धि सदभावं) पांच इन्द्रिय और उनकी इच्छाएं-मन और उसके द्वारा होनेवाले संकल्प विकल्प-मतिज्ञान व श्रुतज्ञान रूपी बुद्धि (अप्प सुद्धं सहाव न) ये कोई भी आत्माके शुद्ध स्वभावमें नहीं हैं । जबतक ये हैं तबतक (कम्म निबंधो य जीव तं भनियं) कर्मोंसे बन्धा हुआ इस जीवको कहते हैं ।

भावार्थ—आठ कर्म पुद्गल हैं-अजीव हैं-सर्व ही संसारी जीवोंकी रचना इन्हीं आठ कर्मोंसे बनी है । अन्तरंगमें अज्ञान, रागद्वेष, अशुभ व शुभ परिणाम ये सब चार घातीय कर्मोंके कार्य हैं । बाहरमें शरीर आदि अघातीय कर्मोंके कार्य हैं । जब कर्म आत्मासे भिन्न है तब ये सब इन्द्रिय व

॥४३०॥

मनसे होनेवाले भाव व सर्व रागादि भाव भी आत्मासे भिन्न है। इन सबको अजीव तत्वमें गिनना चाहिये।

श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थसूत्रमें पुद्गलका जीवके साथ क्या क्या काम होता है इन सूत्रोंसे स्पष्ट कह दिया है।

शरीरवाङमनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २०–५ ॥

भावार्थ—शरीर, वचन, मन श्वासोश्वास तथा सांसारिक सुख दुःख, जीना, मरना सब पुद्गलोंके द्वारा जीवोंमें होता है। अजीवका सम्बन्ध जीवसे अलग कर लें तो जीव अपने स्वभावसे सिद्धके समान शुद्ध ही दिखलाई पड़ेगा।

जीव सहाव अजीवं, कम्म निबन्धोय सक्ति रूवेन।
गुनदोसं मइओनं जा मन मुंचनं च कम्म बन्धानं ॥ ७८० ॥

अन्वयार्थ—(जीव सहाव अजीवं) जीवका स्वभाव अजीवके समान होरहा है (कम्म निबन्धोय सक्ति रूवेन) क्योंकि जीवमें कर्मोंके बांध लेनेकी शक्ति है (गुनदोसं मइओनं) इसमें अनेक क्षयोपशम भाव सम्बन्धी गुण दोष दिखलाई पडते हैं, कभी गुणी कभी दोषी होरहा है (जामन मुंचनं च कम्म बन्धानं) यह दशा तबतक ही है जबतक जीव कर्मोंके बन्धसे न छुटे।

भावार्थ—जैसे पानी स्वभावसे शीतल है परन्तु अग्निके संयोगसे उष्ण होकर अग्निका काम करता है–शरीरको जला देता है इसी तरह यह जीव कर्मोंके संयोगसे अजीवके समान होरहा है। शुद्ध जीवका जो शुद्ध परिणमन है, निजानन्दका प्रत्यक्ष विलास है उससे छूटा हुआ है। रागादि भावोंमें, निर्बलतामें, जन्म–मरणमें परिणमन कर रहा है। कभी गुणी, कभी दोषी, कभी सज्जन, कभी दुर्जन, कभी साधु, कभी गृहस्थ कहलाता है। इस जीवमें कर्मोंसे बन्धनेकी भी शक्ति है। जब इसकी योग शक्ति शरीरनामकर्मके उदयसे चंचल होती है, कर्मोंको यह शक्ति खींच लेती है, जब घातीय कर्मोंका उदय होता है, ज्ञान दर्शन गुण अज्ञान भावमें चारित्र गुण कषायोंमें सम्यक्त गुण मिथ्यात्वमें परिणमन कर रहा है। यह विभाव भावमें परिणमन करनेकी एक वैभाविक शक्ति भी आत्मामें है। जैसे जलमें गर्म होनेकी शक्ति है, यदि अग्निका निमित्त न मिले वह गर्म न

होगा निमित्त मिलनेपर गर्म होगा, वैसे हरएक जीवमें विभाव रूप होनेकी व योगोंके द्वारा कर्मोंके खींचनेकी शक्ति है। जब कर्मोदयका निमित्त होता है तब विभाव रूप परिणमन या कर्मोंका बन्ध होता है। यदि कर्मोदयका निमित्त नहीं होता है तो जीव सदा अपने शुद्ध स्वभावमें ही कल्लोल करता है।

अचेतं असुहावं, असत्यं असास्वतं विजानेहि।
अजीव तत्तु भनियं, पुग्गल भावेन सरनि संसारे ॥ ७८१ ॥

अन्वयार्थ—(अचेतं असुहावं) जो ज्ञान शून्य है, जीवका स्वभाव नहीं है, (असत्यं असास्वतं विजानेहि) जो सत्य परमात्म स्वभावसे भिन्न असत्य है जिसका कार्य क्षणिक है ऐसा जाना जाता है, (अजीव तत्तु भनियं) उसको अजीव तत्व कहा गया है, (पुग्गल भावेन संसारे सरनि) इन्हीं रागादि पौद्गलिक भावोंके द्वारा, कर्म पुद्गलोंके द्वारा यह जीव संसारमें भ्रमण कर रहा है।

भावार्थ—जिससे सुख शांति मिले, वही सत्य पदार्थ है। पुद्गलमें सुख शांति नहीं इससे असत्य है। शरीर, वचन, मन, रागादि भाव ये सब पुद्गलकी रचना नित्य नहीं है क्षणिक है। पुद्गलमें ज्ञान नहीं है, जीवमें ज्ञान है। इससे पुद्गलको बिलकुल जीवसे भिन्न अजीव जानो। कर्म पुद्गलोंके सम्बन्धसे ही यह जीव संसारमें भ्रमण कर रहा है। इससे वैराग्य रखना ही हितकर है।

समयसार कलशमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः ॥ (२–१) ॥

भावार्थ—इस अनादि कालसे चले आए हुए महान अज्ञानके नाटकमें यह वर्णादि गुणधारी पुद्गल ही नृत्य कर रहा है। जीव तो निश्चयसे रागादि पुद्गलके विकारोंसे रहित शुद्ध चेतनामई स्वभावका धारी है।

इन्द्री सरीर सुभावं, अतिंद्री ज्ञान जीव सहकारं।
गुन दोसं न विजानइ, अजीव तत्वं च मनंपि सहकारं ॥ ७८२ ॥

अन्वयार्थ—(इन्द्री सरीर सुभावं) ये पांचों इन्द्रियें शरीरके स्वभावके साथ (अतिंद्री ज्ञान जीव सहकारं) व जीवके अतीन्द्रिय ज्ञानके साथ एकमेक वर्तन करती हुई (गुन दोसं न विनांनइ) आत्माके हित-अहितको नहीं समझती हैं। इन्द्रियोंके द्वारा विषयकी चाहनाएँ सब अजीव हैं (मनंपि सहकारं अजीव तत्वं च) मन भी इन्द्रियोंके कार्यमें सहकारी है, यह भी अजीव तत्व ही है।

भावार्थ—पांचों इन्द्रिय और मन ये छः ही संसारके प्रपंच-जालमें फँसानेवाले हैं। मन राग भावसे इन्द्रियोंके भोगोंका विचार करता है। उसकी प्रेरणासे सैनी जीवोंकी पांचों इन्द्रियां अपने विषयोंके भोगनेमें लग जाती हैं। उन छहोंके कार्यमें शरीर और जीवका ज्ञान दोनों सहकारी है। यदि अतीन्द्रिय ज्ञानका धारी जीव शरीरमें न हो तो इन इन्द्रियोंसे व मनसे कोई काम नहीं हो सक्ता है। परन्तु ये सब कार्य कर्म पुद्गलोंके उदयकी प्रेरणासे होते हैं। कर्म पुद्गल अजीव है। अतएव उनके सर्व कार्य भी अजीव हैं। पांच इन्द्रिय व मनके विषयोंमें लुब्धायमान होकर यह संसारी जीव अज्ञानी बन जाता है। अपने हित तथा अहितका विचार भूल जाता है। संसारके प्रपंचमें फँसकर कर्म बांधकर भव भवमें भ्रमण करता है। अतएव मुमुक्षु जीवको उचित है कि इन छहोंको अपने आधीन करके जितेन्द्रिय बने और निज आत्माके भीतर प्रवेश करनेकी चेष्टा करें। आत्मानुभवसे ही जीवका हित है। वह तब ही होगा जब सर्व अजीवकी रचनासे वैराग्य होगा।

आस्रव बन्ध तत्व।

जीव अजीवं एकं, कम्म निबंधाइ सरनि संसारे।
पुन्यं पाव उत्पन्नं, मन सहकारं आस्रवै कम्मं ॥ ७८३ ॥

अन्वयार्थ—(जीव अजीवं एकं) अनादि कालसे जीव और अजीव एकसे होरहे हैं (कम्म निबंधाइ संसारे सरनि) इसीसे यह जीव कर्मोंको बांधकर संसारमें भ्रमण करता है (पुन्यं पाव उत्पन्नं) तथा पुण्य पापको उत्पन्न करता है (मन सहकारं आस्रवै कम्मं) भावोंके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव होता है।

भावार्थ—यह जीव पुद्गलके साथ अनादि कालसे संयोग किये हुए है। भूल यह होरही है कि यह जीव अपनेको भूले हुए पुद्गलको ही अपना मानता चला आरहा है, इस मिथ्या भावके कारण

रागद्वेष होते हैं। रागद्वेष मोहके कारणसे कर्मोंका आस्रव होता है। कभी कुछ शुभ भाव होते हैं तब पुण्य कर्मका आस्रव होता है, जब अशुभ भाव होते हैं तब पाप कर्मका आस्रव होता है। परिणामों हीसे कर्म आते हैं। यहां गाथामें मन शब्दसे परिणाम लेने चाहिये। इन्हीं कर्मोंके उदयसे यह जीव संसारमें भ्रमण करता रहता है, वारम्वार नवीन कर्म बांधता है और पिछले कर्मोंका फल भोगता रहता है।

देव गुरुं नवि जानै, नहु धम्मं च सुद्ध चेयना सुद्धं।
कुगुरुं कुदेव दिट्ठं, कुधम्मं विकहा राग संबन्धं ॥ ७८४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं देव गुरुं नवि जानै) मिथ्यात्वके अधिकारमें यह प्राणी सच्चे देव व सच्चे गुरुको नहीं समझता है (नहु धम्मं च सुद्ध चेयना) न यह समझता है कि शुद्ध ज्ञान चेतना ही धर्म है (कुगुरुं कुदेव कुधम्मं विकहा राग सम्बन्धं दिट्ठं) कुगुरु, कुदेव व विकथाओंमें राग भावरूप कुधर्मको ही यथार्थ धर्म माना करता है।

भावार्थ—अनादि कालसे मोहके नशेमें गाफिल प्राणी सर्वज्ञ वीतराग ऐसे निर्दोष देवको, परिग्रह रहित निर्ग्रंथ साधुको तथा निश्चय रत्नत्रयमई शुद्ध चेतनाके अनुभवरूप धर्मको नहीं समझता है। किन्तु सांसारिक प्रयोजनके लोभसे रागी, द्वेषी, कल्पित देवोंको देव, परिग्रहासक्त संसार मोहीको साधुको गुरु तथा स्त्री, भोजन, देश, राजाके सम्बन्धमें प्रीति बढानेवाले भावोंको ही धर्म मान लेता है। अथवा जिस धर्मके नियमोंपर चलनेसे सुन्दर स्त्री, भोजन, राज्य, धन धान्य आदि सांसारिक विभूति प्राप्त हों उनको धर्ममान लेता है। यही मिथ्यात्व कर्मोंके आस्रवका कारण है।

अनृत अचेतं सहियं, मिथ्या कुज्ञान असंजदो भावं।
परिनै असुह सुहावं, मनः सहायेन सयल संजुत्तं ॥ ७८५ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत अचेतं सहियं) मिथ्यात्व व अज्ञान सहित होनेसे (मिथ्या कुज्ञान असंजदो भावं) मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान, व मिथ्या चारित्र सम्बन्धी भावोंको करता हुआ (असुह सहावं परिनै) यह अशुद्ध स्वभावमें परिणमन करता रहता है। (मनः सहायेन सयल संजुत्तं) परिणामोंकी सहायतासे ही सर्व कर्मोंका संयोग होता है।

भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादिकालसे मिथ्यादर्शन तथा ज्ञानावरण कर्मका ऐसा उदय है जिससे यह जीव मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या ज्ञान व मिथ्या चारित्रमें रहता हुआ सदा संसारवर्द्धक अशुद्ध भावोंको किया करता है और उनही भावोंसे नानाप्रकार कर्मोंका आस्रव करके कर्मोंसे बन्धता है।

जीवो कम्म निबद्धं, आस्रवै कम्म विविह भावेन।
आस्रव तत्तु समिद्धं, मन सहकारेन आस्रवो भनियं ॥ ७८६ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म निबद्धं जीवो) पूर्वके कर्मोंसे बन्धा हुआ जीव (विविह भावेन कम्म आस्रवे) नानाप्रकारके भावोंसे कर्मोंका आस्रव करता है (आस्रव तत्तु समिद्धं) यही आस्रव तत्व है (मन सहकारेन आस्रवो भनियं) परिणामोंके निमित्तसे ही आस्रव कहा गया है।

भावार्थ—शुद्ध जीवके कर्मोंका आस्रव नहीं होता है। क्योंकि आस्रवका मूल कारण मन, वचन, काय द्वारा आत्माका परिस्पंद होते हुए योगशक्तिका परिणमन है सो शुद्ध जीवके सम्भव नहीं है किन्तु कर्मबद्ध अशुद्ध जीवके सम्भव है। इस अशुद्ध जीवके आस्रवके कारणीभुत भाव मिथ्यादर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय तथा योग होते हैं। इन ही भावोंको भावास्रव कहते हैं। कर्मोंके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं। भावास्रवोंके भेद द्रव्यसंग्रहमें इस प्रकार कहे हैं—

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ सविण्णेया। । पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥ ३० ॥

भावार्थ—पांच मिथ्यात्व–एकांत, विपरीत, संशय, अज्ञान, विनय। पांच अविरति–हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह। पंद्रह प्रमाद–स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राजा कथा, स्पर्शन इन्द्रियादि पांच इन्द्रि व चार कषाय और स्नेह तथा निद्रा। चार क्रोधादि कषाय। तीन मन वचन कायके योग ये ३२ भेद भावास्रवके जानने चाहिये। नय प्रमादके ८० भेद होजाते हैं– ४ विकथा × ५ इन्द्रिय × ४ कषाय × १ निद्रा × १ स्नेह = ८०।

इन्हींको भावबन्ध भी कहते हैं। बन्ध और आस्रवके भाव समान हैं, एक ही अशुद्ध परिणामसे दो कार्य होते हैं। कर्मोंका बन्धके निकट होना सो आस्रव है, उनका बन्ध कार्माण शरीरसे हो जाना बन्ध है। तत्वार्थसूत्रमें बन्धके कारण यही बताए हैं—

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १-८ ॥

जीवो अप्प सहावं, मन सुद्धं सुद्ध दिष्टि अप्पानं ।
मन चेयन सद्भावं, बन्धं आस्रव सुहं च असुहं च ॥ ७८७ ॥

अन्वयार्थ—(जीवो अप्प सहावं) जीवका अपना स्वभाव (मन सुद्धं) शुद्ध परिणाम है (सुद्ध दिष्टि अप्पानं) जहां शुद्ध आत्मामें ही दृष्टि है (मन चेयन सद्भावं) जब चेतन मनके द्वारा काम करने लगता है तथा अशुद्ध परिणाम होते हैं तब (सुहं च असुहं च आस्रव बन्धं) शुभ तथा अशुभ कर्मोंका आस्रव तथा बन्ध होता है ।

भावार्थ—जब जीव आप अपने शुद्ध स्वभावका श्रद्धान ज्ञान तथा अनुभव करता हुआ शुद्धोपयोगमें रमण करता है तब कर्मोंका आश्रव तथा बन्ध नहीं होता है, परन्तु जब अनेक प्रकारके संकल्प विकल्पोंमें परिणाम उलझ जाते हैं-शुद्ध आत्माके मननसे विरुद्ध सांसारिक कामोंमें परिणाम रत होजाते हैं तब शुभ भावोंसे पुण्यकर्मोंका तथा अशुभ भावोंसे पापकर्मोंका आस्रव तथा बन्ध होता है ।

देव गुरु धम्मं सुद्धं, अप्प सरूवं च निम्मलं विमलं ।
मिथ्या कुन्नान विरयं, बंधतत्वं न चेयना भावं ॥ ७८८ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं देव गुरु धम्मं) जहां निश्चयनयसे शुद्ध आत्मा ही देव है, गुरु है, धर्म है (अप्प सरूवं च निम्मलं विमलं) ऐसा जो कर्म मल व रागादि मल रहित आत्माका स्वरूप है (मिथ्या कुन्नान विरयं) जहां न मिथ्या श्रद्धान है न मिथ्याज्ञान है (चेयना भाव) एक ज्ञान चेतनाका ही अनुभवरूप भाव है वहां (बंधतत्वं न) बन्ध तत्व नहीं है, वहां कर्मोंका बन्ध नहीं होता है ।

भावार्थ—बन्धके कारण वास्तवमें रागद्वेष मोह हैं। जहां रागद्वेष मोह नहीं है, एक शुद्ध आत्मामें ही परिणति रमण कर रही है । शुद्ध ज्ञानका ही जहां स्वाद आरहा है। आत्मीक परमानन्दमें जहां मगनता है वह भाव कर्मोंकी निर्जराका कारण है, बन्धका कारण नहीं है । मुमुक्षुको बंधसे बचनेके लिये शुद्धोपयोगका प्रकाश करना चाहिये ।

संवर तत्व।

चिंतइ अप्प सहावं, दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानं।
अप्पा परमप्पानं, संवर तत्वं च सुद्ध जाने हि ॥ ७८९ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं चिंतइ) आत्माके स्वभावका जहां अनुभव है (दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानं) जहां शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान, तथा शुद्ध सम्यक्चारित्र है (अप्पा परमप्पानं) आत्मा परमात्मा रूप होरहा है (सुद्ध संवर तत्वं च जाने हि) वहीं शुद्ध संवर तत्वको पहचानना चाहिये।

भावार्थ—कर्मोंके आस्रवको रोकना संवर है। जिन२ भावोंसे कर्म आते हैं उनको रोकना भाव संवर है। सम्यग्दर्शन, व्रत भाव, आमोद भाव, वीतराग भाव, मन, वचन, कायकी गुप्ति संवरके भाव हैं। यहां निश्चय संवरको बताया है कि रत्नत्रय स्वरूप धारी अपने ही आत्माको शुद्ध आत्मारूप परम शुद्ध अनुभव करना ही संवर है। इससे वास्तवमें प्रचुर कर्मोंका संवर होता है।

पंच इन्द्री संवरनं, अतिंद्री भाव सुद्ध परिनामं।
मिथ्या राग निरोधं, अप्पा ज्ञान दंसन समग्गं ॥ ७९० ॥

अन्वयार्थ—(पंच इन्द्री संवरनं) पांचों इन्द्रियोंका रोकना (मिथ्या राग निरोधं) संसारके मिथ्या नाशवन्त पदार्थोंका राग छोडना (अप्पा ज्ञान दंसन समग्गं) आत्मा ज्ञान दर्शनसे पूर्ण है उसकी ओर लक्ष्य देकर (अतिंद्री भाव सुद्ध परिनामं) अतीन्द्रिय शुद्ध भावोंमें परिणमना संवर है।

भावार्थ—संसारकी चारों गतियोंमें जितनी पर्यायें हैं वे सब वारवार छूट जानेवाली मिथ्या हैं कर्मजनित हैं, उनसे मनको रोककर तथा पांच इन्द्रियोंसे मनको रोककर जो ज्ञाता दृष्टा परमानन्दमई निज आत्मामें उपयोगको लगाकर अतीन्द्रिय शुद्ध भावोंमें रमण करना अर्थात् आत्माका अनुभव करना संवर तत्व है। शुद्ध भावोंमें ठहरनेसे कर्मोंका संवर होता है। जितना २ गुणस्थान चढता जायगा उतना २ संवर होता जायगा। आस्रवके पांच कारण हैं–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग। मिथ्यात्वका उदय दूसरे आदिके गुणस्थानोंमें नहीं इससे मिथ्यात्वके उदयसे जो कर्म आते थे वे आगे नहीं आएंगे। अनन्तानुबन्धी कषायका उदय दूसरे गुणस्थान तक है उसके

आगे अनन्तानुबन्धी द्वारा आनेवाले कर्म न आएंगे। मिश्र प्रकृतिका उदय तीसरेमें है, उसके उदयसे जो कर्म बंधेंगे वेही वहां बन्ध प्राप्त होंगे। चोथे गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी व दर्शनमोहनीयकी तीनोंका उदय नहीं है व वेदक सम्यक्तीके केवल एक सम्यक्त प्रकृतिका उदय है, ऐसी दशामें जितने कर्म आएंगे उससे अधिक न आएंगे। पांचवें देशविरतिमें अविरति भाव कुछ चला गया। अप्रत्याख्यानावरण कषायका उदय नहीं है इससे इस कषाय सम्बन्धी कर्म न आवेंगे। छठे प्रमत्तविरतमें प्रत्याख्यानावरण कषाय भी उदयमें न रहा तब उस सम्बन्धी कर्म नहीं आएंगे। सातवेंसे लेकर दशवें तक प्रमाद नहीं रहा, संज्वलन कषायका उदय है वहांतक कषाय जनित कर्म आएंगे, आगे कषाय नहीं है। केवल तेरहवें तक योग है, इससे एक सातावेदनीय कर्म एक समयका स्थितिवाला ही आयगा अन्य कर्म नहीं आएंगे। इसतरह जैसे जैसे भाव चढते जायंगे कर्मोंका संवर होता जायगा।

निर्जरा तत्त्व।

निज्जरइ भाव सुद्धं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं।
अप्पा परमप्पानं, सुद्ध सहकारेन केवलं ज्ञानं ॥ ७९१ ॥

अन्वयार्थ—(भाव सुद्धं निज्जरइ) शुद्ध भावोंसे कर्मोंकी निर्जरा होती है (सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं) अपना ही आत्मा शुद्ध स्वरूप ज्ञान दर्शनसे परिपूर्ण है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप समझ ध्यान करना (सुद्ध सहकारेन केवलं ज्ञानं) इसी शुद्धोपयोगके प्रतापसे केवलज्ञान होता है।

भावार्थ—निर्जरा दो प्रकारकी है-सविपाक निर्जरा, अविपाक निर्जरा। कर्मोंका अपनी स्थिति पूरी होनेपर झडना सो सविपाक निर्जरा है। यह सब संसारी जीवोंके होती है। स्थितिके पकनेके पहले ही वीतराग भावसे कर्मोंको दूर करना अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा अविरत सम्यग्दृष्टीके होना प्रारम्भ होजाती है। क्योंकि तत्वज्ञानी आत्माका अनुभव करने लग जाता है। आत्मानुभवके कारण जितनी वीतरागता होती है उतनी कर्मकी निर्जरा होती है। फिर आगे २ गुणस्थानोंमें जितना २ अधिक आत्मानुभव बढता है, कर्मकी निर्जरा अधिक २ होती जाती है।

आत्मानुभवरूप धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ही तप है। उसके प्रतापसे आठों ही कर्मकी निर्जरा हो-जाती है और यह आत्मा अपनेको परमात्मारूप ध्याता हुआ स्वयं परमात्मा होजाता है।

मोक्ष तत्व।

मोक्षं मुक्ति सुभावं, संसारे सरनि सयल तिक्तं च।
अप्पा अप्प सहावं, मोक्षं विमल ज्ञान ज्ञानत्थं ॥ ७९२ ॥

अन्वयार्थ—(मोक्षं मुक्ति सुभावं) मोक्षतत्व सर्व परसे छूटा हुआ आत्माका स्वभाव है (संसारे सरनि सयल तिक्तं च) संसारमें भ्रमण करानेवाले भावोंसे व कर्मोंसे पुर्णपने मुक्ति होजाना है। (अप्पा अप्प सहावं) आत्माका अपने स्वभावको प्राप्त कर लेना है तथा (विमल ज्ञान ज्ञानत्थं मोक्षं) निर्मल ज्ञानके ध्यानमें तिष्ठना मोक्ष है।

भावार्थ—आत्मा और कर्मोंका अनादि सम्बन्ध प्रवाहकी अपेक्षा चला आता था। शुक्लध्यानके बलसे जब सर्व कर्म गिर जाते हैं तब कर्मोंके कारणसे रहनेवाले तैजस व औदारिक शरीर भी गिर जाते हैं। आत्मा अकेला शुद्ध निज स्वभावमें रह जाता है। कर्मोंके उदय विना कोई चंचल भाव या रागादि भाव नहीं होता है। तब आत्मा अपने शुद्ध ज्ञानमें ही आनन्दामृतको पान करता हुआ रहता है। अनन्तकाल तक स्वरूप मग्न रहता है, निराकुल रहता है, अतिन्द्री आनन्दका भोग करता है, यही मोक्षतत्व है। मोक्ष प्राप्त कर आत्मा अपनी सत्ताको नहीं खोता है। अन्तिम शरीरके आकार आत्मा शुद्ध भावोंमें रहता है। परम कृतकृत्य परम सुखी अनन्तकाल तक बना रहता है।

तत्वस्य भाव निरूपं, एको उदेस्त किंचितं कहियं।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, तत्व सरूवं च दंसनं अमलं ॥ ७९३ ॥

अन्वयार्थ—(तत्वस्य भाव निरूपं) सात तत्वोंका भाव कहा गया है (एको उद्देस किंचित कहियं) यहां कुछ एकोदेश थोडासा कहा है—सातों तत्वोंका सार (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञान स्वभावी ज्ञानी आत्मा है (तत्व सरूवं च दंसनं अमलं) वही वास्तविक तत्वमय निर्मल सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—सात तत्वोंका विस्तारसे कथन और ग्रन्थोंसे जानना योग्य है। यहां कुछ कथन किया गया है। इनमें मुख्य तत्व एक अपना आत्मा है, जो निर्मल ज्ञान दर्शनसे पूर्ण सिद्धवत् परमात्मा है। इसीका दृढ विश्वास करना सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। जब कि सात तत्वोंका श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। व्यवहारके मथनसे निश्चय सम्यक्त उसी तरह प्राप्त होता है जैसे दूधके मथनेसे मक्खन निकलता है।

जीव पदार्थ।

पदार्थ पद विंदं, जीव पदार्थ पद विंद संजुत्तं।
ॐ नमः विंद संजुत्तं, ज्ञानमयं च दंसनं चरनं ॥ ७९४ ॥

अन्वयार्थ—(पदार्थ पद विंदं) पदार्थ वह है जो पदके द्वारा वस्तुको जनावे (जीव पदार्थ पद विंद संजुत्तं) जीव पदके द्वारा जीव वस्तु या पदार्थका ज्ञान होता है (ॐ नमः विंद संजुत्तं) ॐ नमः पदके द्वारा शुद्ध जीवका ज्ञान होता है वह जीव (ज्ञानमयं च दंसनं चरनं) ज्ञानमई सम्यग्दर्शनमई तथा सम्यक्चारित्रमई अर्थात् स्वात्मानुभवमई है।

भावार्थ—शब्दके द्वारा जो निश्चय किया जावे सो पदार्थ है। जीव पदार्थमें त्रिकाल जीनेवाला जीव जाना जाता है। शुद्ध जीव पदार्थ रत्नत्रय स्वरूप शुद्धोपयोग मय सिद्ध भगवान या अर्हंत परमेष्ठी है या शुद्धात्माका अनुभव करनेवाले आचार्य, उपाध्याय, तथा साधु परमेष्ठी हैं। ॐ नमः पदमें इन पांचोंको नमस्कार किया गया है। ॐ मंत्र पांच प्रथम अक्षरोंसे बना है। अर्हंतका अ सिद्ध या अशरीरका अ, आचार्यका आ, उपाध्यायका उ, साधु या मुनिका म्। इस तरह अ + अ + आ + उ + म् मिलानेसे ओम् या ॐ होजाता है।

अक्षर सुर विंजनयं, पदार्थ सुद्ध ज्ञान निम्मलयं।
अप्पा परमप्पानं, नंत चतुस्टय सरूव निम्मलयं ॥ ७९५ ॥

अन्वयार्थ—(सुर्विजनय अक्षर पदार्थं) स्वर, व्यंजन अक्षरोंसे पद बनता है। पदसे अर्थका बोध होता है सो पदार्थ है। जीव शब्दसे (सुद्ध ज्ञन निम्मलयं) शुद्ध ज्ञान स्वरूपी निर्मल आत्माका ज्ञान होता है, (अप्पा परमप्पानं) आत्मा परमात्मा स्वरूप है, (नंत चतुष्टय सरूव निम्मलयं) अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय स्वरूप शुद्ध है, ऐसा ज्ञान होता है।

भावार्थ—जीव पदार्थसे अपने आत्माको आत्मारूप या परमात्मा रूप शुद्ध वीतराग ज्ञान दर्शनसे पूर्ण जानना योग्य है।

ज्ञान सरूव सुभावं, अप्पा विमल निम्मलं सुद्धं।
ज्ञानं ज्ञान सहावं, ज्ञान सहावेन पदार्थं सुद्धं ॥ ७९६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सरूव सुभावं) जीवका स्वभाव ज्ञान स्वरूप है, (अप्पा विमल निम्मलं सुद्धं) यही आत्मा कर्ममल व रागादि दोष रहित शुद्ध कहलाता है, (ज्ञानं ज्ञान सहावं) यही ज्ञानमई है व ज्ञान स्वभाव है। (ज्ञान सहावेन सुद्धं पदार्थं) तथा यही ज्ञान स्वभावमें ठहरनेसे शुद्ध जीव पदार्थ है।

भावार्थ—ज्ञान जीव पदार्थका मुख्य गुण है इसीके द्वारा अन्य गुणोंका बोध होता है। ज्ञान सिवाय आत्माके और किसी पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश अजीव द्रव्योंमें नहीं पाया जाता है। यह ज्ञान इसका असाधारण लक्षण है। इस जीवको सर्व कर्ममल व रागादि मल रहित शुद्ध अपने ही निज स्वभावमें कल्लोल करनेवाला जानना यथार्थमें जीव पदार्थका ज्ञान है।

अजीव पदार्थ।

अजीवं अचेतं, इन्द्री विषय राग दोष संजुत्तं।
मन सुद्धं ज्ञान सहावं, अतिन्द्री विषय पदार्थं सुद्धं ॥ ७९७ ॥

अन्वयार्थ—(अजीवं अचेतं) अजीव पदार्थ वह है जिसमें चेतना न हो। वे अजीव पांच हैं-पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल (इन्द्री विषय राग दोष संजुत्तं) इन्द्रियोंके भोगने योग्य विषय सब पुद्गल अजीव हैं तथा राग दोष भाव भी पुद्गल हैं क्योंकि मोहनीय कर्म पुद्गल जनित विकार हैं (मन सुद्धं

ज्ञान सहावं) जहां परिणाम रागादि दोष रहित वीतराग हैं व ज्ञान स्वभाव ही हैं (अतिन्द्री विषय पदार्थं सुद्ध) जो इन्द्रियोंके द्वारा जानने योग्य नहीं है ऐसा शुद्ध पदार्थ आत्मा है उससे रहित जो कुछ है सो अजीव पदार्थ है।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि शुद्ध जीव पदार्थको छोडकर बाकी सर्व प्रपंचजाल अजीव पदार्थमें समझ लेना चाहिये। जीवके साथ कार्माण, तैजस, औदारिक या वैक्रियिक या आहारक शरीर संयोग करते हैं। ये सब पुद्गल अजीव हैं। कर्मोंके निमित्तसे जितने रागादि विभाव होते हैं वे भी शुद्ध जीव नहीं हैं, इसलिये उनको भी अजीव समझना चाहिये। अजीवसे वैराग्य भजकर शुद्ध जीव पदार्थसे प्रेमालु होना योग्य है।



पुन्य पाप तथा आस्रव पदार्थ।

आस्रवै पुन्य पावं, भावं असुहं च विविह कम्मानं।
चेयन सुद्ध स उत्तं, पदार्थ तंपि पुन्य पावं च॥ ७९८॥

अन्वयार्थ—(असुहं भावं च विविह कम्मानं पुन्य पावं आस्रवै) अशुद्ध भाव ही नानाप्रकार पुन्य पाप कर्मोंका आस्रव करता है (चेयन सुद्ध स उत्तं) जो शुद्ध चेतन पदार्थ कहा गया है (तंपि पुन्य पावं च) वही पुन्य पाप रूप होजाता है।

भावार्थ—आत्मा निश्चयसे शुद्ध है परन्तु व्यवहारसे कर्मोंके बन्ध तथा उदयके कारण अशुद्ध है। अशुद्ध आत्मामें अशुद्ध भाव होते हैं। योगोंके और कषायोंके परिणाम होते हैं, इन्हींको लेश्या कहते हैं। जब पीत पद्म शुक्ल लेश्या होती है तब शुभ परिणाम कहाते हैं, जब कृष्ण, नील, कापोत लेश्या होती है तब अशुभ परिणाम कहाते हैं। शुभ परिणामोंको भाव पुण्य, अशुभ परिणामोंको भाव पाप कहते हैं। दोनोंको भाव आस्रव कहते हैं। शुभ भावोंसे सातावेदनीय आदि पुण्य-कर्मोंका तथा अशुभ भावोंसे असातावेदनीय आदि पापकर्मोंका आस्रव होता है। इनको द्रव्य पुण्य द्रव्य पाप व कर्मोंके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं। यहां पुन्य, पाप, आस्रव तीनोंका संक्षेप कथन किया गया है। पुण्य पाप पदार्थ वास्तवमें आस्रवमें गर्भित हैं।

बंध पदार्थ ।

पदार्थ पद विंदंतो, सुद्ध सहावेन निम्मल सरूवं ।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, संसारे सरनि बन्ध जानेहि ॥ ७९९ ॥

अन्वयार्थ—(पदार्थ पद विंदंतो) जो जीव पदार्थके द्वारा अपने आत्मीक पदका अनुभव करता है (सुद्ध सहावेन निम्मल सरूवं) शुद्ध स्वभावमें ठहरकर निर्मल स्वरूपका ध्यान करता है (मिथ्या सल्य विमुक्कं) जहां बहिरात्मपना रूप मिथ्यात्वकी कोई शल्य नहीं है वही मोक्षका मार्ग है, उसके विरुद्ध (संसारे सरनि बन्ध जानेहि) जितना भी संसार भ्रमणका कारण है उसे कर्मका बन्ध जानना चाहिये ।

भावार्थ—शुद्ध जीव पदार्थका श्रद्धा व ज्ञान व चारित्र सहित अनुभव करना सर्व शल्य व इच्छा रहित होजाना मोक्षका मार्ग है । इसके विरुद्ध कर्मोंके प्रपंचजालमें राग द्वेष करना बन्धका मार्ग है । कर्मका बन्ध ही संसारमें भव भवके भीतर भटकानेवाला है । बन्धन कभी भी सुखदाई नहीं होसक्ता है इसलिये बन्ध पदार्थको हेय समझकर मोक्षमार्गपर चलना चाहिये ।

संवर पदार्थ ।

संवरन राय दोसं, मिथ्या संसार सरनि संवरनं ।
ज्ञानमई अप्पानं, ज्ञान सहावेन संवरं भनियं ॥ ८०० ॥

अन्वयार्थ—(राय दोसं संवरन) राग द्वेषको रोकना (मिथ्या संसार सरनि संवरनं) मिथ्या संसारके मार्गके भ्रमणको रोकना (ज्ञानमई अप्पानं) ज्ञानमई आत्माको (ज्ञान सहावेन) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकरके ध्याना (संवरं भनियं) संवर पदार्थ कहा गया है ।

भावार्थ—इस मिथ्या नाशवन्त चार गतिरूप संसारमें भ्रमण करानेका कारण कर्मोंका बन्ध है जो मिथ्यात्वभाव तथा राग द्वेष भावोंके कारणसे होता है । इसलिये राग द्वेष मोहको रोककर ज्ञानमई अपने शुद्धात्माका अनुभव करना ही कर्मोंके रोकनेका उपाय है । यही संवर पदार्थ कहा गया है ।

निर्जरा पदार्थ ।

निज्जरइ पुन्य पावं, भावं असुहं च विविह कम्मानं ।
अप्प सहावं पिच्छदि, परमप्पा निज्जरं अमलं ॥ ८०१ ॥

अन्वयार्थ—(पुन्य पावं निज रइ) जिससे पुन्य तथा पाप दोनों कर्मोंकी निर्जरा हो, (विविह कम्मानं असुहं भावं च) तथा नाना प्रकार कर्मोंके बन्धके कारण अशुद्ध भावोंका अभाव हो, (अप्प सहावं पिच्छदि) जहां आत्माके स्वभावका अनुभव हो, (परमप्पा अमलं निज्जरं) परमात्मा स्वरूपमें तन्मय रूप निर्मल भाव हो, वही निर्जरा पदार्थ है ।

भावार्थ—भाव निर्जरा द्रव्य निर्जराका कारण है। वीतराग भावोंके साथ अपने शुद्ध आत्माके स्वभावमें तन्मय होजाना, आत्म ध्यानमय होना, आत्माहीमें तपना, यही निश्चय तप रूप भाव भाव निर्जरा है। इसके प्रतापसे अशुद्ध भाव नहीं होने पाते हैं। तथा पाप कर्मोंकी निर्जरा हो जाती है। तथा पुण्य कर्मोंकी स्थिति घटकर तथा अनुभाग बढकर वे शीघ्र ही रस देकर गिर पडते हैं। इस तरह कर्मोंकी निर्जराका कारण निज आत्मानुभव ही निर्जरा पदार्थ है ।

मोक्ष पदार्थ ।

मोक्ष पदार्थ सुद्धं, अविगत रूवेन विगत भावेन ।
अप्पा परमानन्दं, परमप्पा ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ८०२ ॥

अन्वयार्थ—(मोक्ष पदार्थ सुद्धं) मोक्ष पदार्थ शुद्ध आत्मा है (अविगत रूवेन) जिसमें कोई पौद्गलिक रूप रस गन्ध स्पर्श नहीं है (विगत भावेन) जिसमें कोई औपशमिक, क्षयोपशमिक तथा औदयिक ऐसे तीन प्रकार विभाव नहीं हैं (अप्पा परमानन्दं) जहां शुद्धात्मा परमानन्दमें मगन रहता है (परमप्पा ज्ञान निम्मलं सुद्धं) वही परमात्मा है जहां कर्ममल रहित वीतरागमय ज्ञान है ।

भावार्थ—सर्व द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, भाव कर्म रागद्वेषादि, नोकर्म शरीरादिसे छूटकर आत्माका अपने अमूर्तीक ज्ञानमई शुद्ध स्वभावमें होजाना मोक्ष है। यही परमात्माका स्वभाव है।

यहां कोई कर्मजनित भाव नहीं होते हैं। अनन्त ज्ञानादि क्षायिक भाव हैं या जीवत्व नामका पारिणामिक भाव है। मोक्षरूप सिद्ध परमात्मा सदा अपने स्वाभाविक आनन्दमें मगन रहते हैं।

पदार्थं संसुद्धं, सुद्धं ससहाव चेयना सहियं।
संसार विगत रूवं, ज्ञान सहावेन सुद्ध पद विंदं ॥ ८०३ ॥

अन्वयार्थ—(संसुद्धं पदार्थं) मोक्ष परम शुद्ध आत्मा पदार्थ है (सुद्धं ससहाव चेयना सहियं) वह कर्म-मल रहित शुद्ध है तथा अपने स्वाभाविक चेतना गुण सहित है (संसार विगत रूवं) संसारकी सर्व विभाव परिणातियोंसे व सर्व विभाव भावोंसे व संसारके सर्व नर-नारकादि रूपोंसे रहित है (ज्ञान सहावेन सुद्ध पद विंदं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध आत्मीक पदका जहांपर अनुभव है।

भावार्थ—मोक्ष पदार्थरूप आत्मा अपनी स्वाभाविक ज्ञान चेतनारूप रहता है वहां अशुद्ध चेतना अर्थात् कर्मफल या कर्म चेतना नहीं होती है। कर्मोंके निमित्तसे जितने विभाव भाव होते हैं-ज्ञानकी पर्यायें या असंख्यात लोक प्रमाण कषायके भाव व शरीरके अनेक रूप जीव समास, भावोंकी श्रेणियां चौदह गुणस्थान तथा जीवकी परिणतियां चौदह मार्गणा स्थान इत्यादि कोई भी संसार सम्बन्धी विभाव या रूप उस शुद्ध आत्मामें नहीं है। वे शुद्धात्मा ज्ञानाकार अपने शुद्ध सिद्ध पदका निरन्तर भोग किया करते हैं।

पदार्थं परम ध्रुवं, परमप्पा ज्ञान निम्मल सरूवं।
पदं पदार्थं सुद्धं, सुद्धं ससहाव चेयना भावं ॥ ८०४ ॥

अन्वयार्थ—(पदार्थं परम ध्रुवं) मोक्ष पदार्थ परम ध्रुव है, निश्चय अविनाशी है (परमप्पा ज्ञान निम्मल सरूवं) वहां परमात्मा अपने ज्ञानमई निर्मल स्वभावमें रहता है (सुद्धं पदं पदार्थं) वही पदार्थ शुद्ध पद है (सुद्धं ससहाव चेयना भावं) वही शुद्ध अपने स्वाभाविक चेतनाके भावमें मगन हैं।

भावार्थ—मोक्ष प्राप्त आत्मा कभी मोक्ष अवस्थाको त्यागते नहीं हैं। वे सदा सिद्ध पदमें ध्रुव निश्चल बने रहते हैं। वे अपने स्वाभाविक अनन्त गुणोंमें तन्मय रहते हैं। शुद्ध ज्ञान चेतनाका वे निरन्तर अनुभव करते हैं। आत्मानन्दका अपूर्व रस भोगते हैं।

पद सुद्धं मन सुद्धं, अप्पा परमप्प सुद्ध निम्मलयं ।
पदविंदं ससहावं, ज्ञान सरूवं च लहैं निव्वानं ॥ ८०५ ॥

अन्वयार्थ—(पद सुद्धं मन सुद्धं) वह मोक्षपद शुद्ध है वहां परिणाम भी शुद्ध हैं (अप्पा परमप्प सुद्ध निम्मलयं) वहां आत्मा शुद्ध वीतराग निरंजन रूप परमात्मा रूप है । (ससहावं पद विंदं) वे अपने स्वाभाविक पदका अनुभव करते हैं (ज्ञान सरूवं च लहैं निव्वानं) वास्तवमें जो ज्ञानस्वरूप होजाता है, जिसका परसे सम्बन्ध छूट जाता है वही निर्वाणको प्राप्त करता है ।

भावार्थ—मोक्षको ही निर्वाण कहते हैं, जहां संसारकी अवस्थासे आत्माकी निर्वृत्ति होजाती है । इस मोक्षपदमें केवल शुद्ध आत्मा अपने स्वभावका विलास करता हुआ सदा आनन्दमग्न रहता है । पांचों परमेष्ठीके पदोंमें यही शुद्ध पद है ।

जीव द्रव्य ।

दव्वं दव्व सहावं, जीव दव्वं तिलोय संसुद्धं ।
छह गुन निवास सुद्धं, दो गुन अनाइ एक संजुत्तं ॥ ८०६ ॥

अन्वयार्थ—(दव्वं दव्व सहावं) द्रव्य उसे कहते हैं जिसका द्रवण या परिणमन स्वभाव हो (जीव दव्वं तिलोय संसुद्धं) जीव द्रव्य तीन लोकके भीतर भरे हुए छः द्रव्योंमेंसे एक शुद्ध द्रव्य है (छह गुन निवास सुद्धं) छः गुणोंको रखनेवाला शुद्ध पदार्थ है (दो गुन) उनमेंसे दो गुण मुख्य हैं (एक संजुत्तं) संग्रह नयसे एक जीवत्व गुण सहित है ।

भावार्थ—जो सदा परिणमन करे उसको द्रव्य कहते हैं । जीव भी परिणमनशील है इसलिये द्रव्य है । इसमें छः शुद्ध प्रसिद्ध गुण हैं, जिनका वर्णन आगेकी गाथाएं हैं, वे हैं–(१) अस्तित्व, (२) वस्तुत्व, (३) प्रमेयत्व, (४) अगुरुलघुत्व, (५) चेतनत्व, (६) अमूर्तत्व । इनमेंसे चेतनत्व और अमूर्तत्व दो मुख्य गुण हैं । ये दोनों किसी अपेक्षा विशेष गुण हैं। अस्तित्व आदि चार गुण सामान्य सब द्रव्योंमें पाए जाते हैं। चेतनत्व जीवमें ही है। अमूर्तत्व पुद्गलमें नहीं है। यद्यपि धर्म अधर्म आकाश

कालमें है। चेतनत्वके साथ अमूर्तत्व ये दो गुण तो जीवमें ही है, और किसी द्रव्यमें नहीं। यदि संग्रहनयसे देखें तो जीवमें एकत्व जीवत्व गुण है।

आलापपद्धतिमें श्री देवसेनाचार्यने जीव द्रव्यमें आठ गुण बताए हैं—

(१) अस्तित्व, (२) वस्तुत्व, (३) द्रव्यत्व, (४) प्रमेयत्व, (५) अगुरु लघुत्व, (६) प्रदेशत्व, (७) चेतनत्व, (८) अमूर्तत्व। यहां छःकी संज्ञा दी है। द्रव्यत्व गुण द्रव्य स्वभावमें गर्भित है। तथा प्रदेशत्व गुण अस्तित्वमें गर्भित है, ऐसा समझमें आता है। प्रमेयत्वके स्थानमें यहां अप्रमेयत्व लिया है। सो भी किसी अपेक्षासे ठीक है जो आगे कहेंगे। इन गुणोंका धारी जीव अनादिसे ही है, कभी इन गुणोंसे शून्य न था न होवेगा। अथवा यह भी अर्थ होसक्ता है कि जीवमें सद्भाव गुण छ हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, द्रव्यत्व। दो विशेष गुण हैं—चेतनत्व, अमूर्तित्व।

अस्तित्व गुण।

अस्ति अस्ति तिलोकं, वर दंसन ज्ञान चरन संजुत्तं।
दंसेइ तिहु वनग्गं, ज्ञानमयो ज्ञान ससरूवं ॥ ८०७ ॥
अस्ति चरन संजुत्तं अस्ति, सरूवेन सहाव निम्मलं सुद्धं।
विगतं अविगत रूवं, चेयन संजुत्त निम्मलो सुद्धो ॥ ८०८ ॥

अन्वयार्थ—(अस्ति अस्ति तिलोकं) जीवद्रव्य है तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशोंका धारी है, (वर दंसन ज्ञान चरन संजुत्तं) निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान तथा निश्चय सम्यक्चारित्र सहित है, (तिहु वनग्गं दंसेइ) तीन भुवनके अन्त तक सर्व लोकको देखनेवाला है (ज्ञानमयो ज्ञान ससरूवं) ज्ञानमई है तथा ज्ञान ही जिसका अपना स्वरूप है (चरन संजुत्तं अस्ति) चारित्र अर्थात् वीतरागता सहित है। (सरूवेन सहाव निम्मलं सुद्धं अस्ति) यह जीव अपने स्वरूपसे स्वभावमई निर्मल शुद्ध अस्तित्वको रखनेवाला है (विगतं अविगत रूवं) स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णके न होनेसे जीव अरूपी अर्थात् अमूर्तीक है तथापि

प्रदेशत्व गुणके रखनेसे प्रदेशी है अर्थात् असंख्यात प्रदेशी है (चेयन संजुत्त निम्मलो सुद्धो) चेतना सहित परम शुद्ध निरंजन है।

भावार्थ—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो उसको अस्तित्व गुण कहते हैं। इन दो गाथाओंको इसीका व्याख्यान कहते हुए प्रदेशत्व गुणको भी साथ साथ कह दिया है। क्योंकि द्रव्यके अस्तित्वका ज्ञान उसके आकार पर ही निर्भर है। जिसका कोई आकार नहीं वह वस्तु अपना अस्तित्व नहीं रख सक्ती है। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं। यह जीव है, क्योंकि मैं जानता हूं ऐसा अनुभव होरहा है। यह प्रदेशोंकी अपेक्षा लोकाकाश व्यापी असंख्यात प्रदेशी है। शरीरमें संकोच विस्तार स्वभावके कारण छोटे या बडे आकारका शरीर प्रमाण होजाता है, मुक्त अवस्थामें पूर्व शरीरके प्रमाण उससे कुछ कम आकार रखता है, यह निश्चय रत्नत्रय स्वरूप है। तथा यह छहों द्रव्योंको देखने जाननेवाला है। जिनसे लोकालोक भरा है। गाथामें तिहुवनग्गं शब्द है उससे तीन लोकके अंत तकका बोध होता है। परन्तु वास्तवमें यहां सर्व लोकालोकसे प्रयोजन है। इसका आकार ज्ञानमई है, यह चारित्र गुणसे परिपूर्ण भरा परम शांतिमय है। इसका स्वभाव शुद्ध कभी मिटता नहीं। यही अस्तित्व गुणका काम है। यह अमूर्तीक होनेपर भी ज्ञानाकार मूर्ति है। वह जीव स्वभावसे द्रव्य कर्म, भाव कर्म तथा नोकर्मसे शुद्ध है, शुद्ध ज्ञान चेतनाका विलासी है।

वस्तुत्व गुण।

वस्तुत्वं वसति भुवने, वस्तुत्वं ज्ञान दंसन अनन्तो।
नन्तानन्त चतुष्टं, वस्तुत्वं तिलोय निम्मलो सुद्धो॥ ८०९॥

अन्वयार्थ—(वस्तुत्वं वसति भुवने) इस जीवका वस्तुपना यह है कि यह लोकमें वसता है—कोई वस्तु है (वस्तुत्वं ज्ञान दंसन अनन्तो) इसका वस्तुपना यह है कि इसके भीतर अनन्त ज्ञान तथा अनन्त दर्शन वसते हैं (नन्तानन्त चतुष्टं) तथा अनन्त चतुष्टय रहते हैं (वस्तुत्वं तिलोय निम्मलो सुद्धो) इसका वस्तुपना यह हैं कि तीन लोकमें निर्मल शुद्ध पदार्थ है।

भावार्थ—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो अर्थात् जो कुछ कार्य कर सके उसको वस्तुत्व गुण कहते हैं।

यह जीव वस्तुत्व गुणको रखता है क्योंकि यह निश्चयसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यको रखता हुआ परम वीतराग स्वभावके अनुभवसे प्राप्त परमानन्दका विलास करता रहता है। यदि व्यवहार नयमें देखे तो यह जीव संसारावस्थामें रागी द्वेषी मोही होकर आप ही पाप बांधकर दुःख उठाता है, आप ही पुण्य बांधकर सुख उठाता है, आप ही कर्मोंका नाश करके मुक्त होजाता है। आप ही सुखी दुखी होता है। कभी अहितकारी कभी हितकारी होता है। जीवमें वस्तुत्वके रहनेसे ही वह संसार अवस्थामें अशुद्ध कार्यको मुक्तावस्थामें शुद्ध आनन्दमें मगनरूप कार्यको करता है।

अप्रमेयत्व (प्रमेयत्व) गुण।

अप्रमेयं अप्रमानं, अप्पा परमप्प दिट्ठि अप्रमेयं।
सुद्ध सरूवं रूवं, ज्ञानं विमल केवलं सुद्धं ॥ ८१० ॥

अन्वयार्थ—(अप्रमेयं अप्रमानं) यह जीव न प्रमेय है न प्रमाण है (अप्पा परमप्प दिट्ठ अप्रमेयं) आत्मा परमात्माके द्वारा देखने योग्य है, अन्य प्रकारसे जानने योग्य नहीं है (सुद्ध सरूवं रूवं) इसका शुद्ध स्वभाव इसका रूप है (ज्ञानं विमल केवलं सुद्धं) इसमें निर्मल वीतराग केवलज्ञान भरा हुआ है।

भावार्थ—यहां एक अपेक्षा प्रमेयत्व गुण व एक अपेक्षा अप्रमेयत्व गुणको कहा है। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं। यह गुण भी जीवमें है। यह जीव निश्चयसे आप आपको जानता है। अथवा सिद्ध परमात्मा या अरहंत परमात्मा द्वारा जानने योग्य है, क्योंकि केवलज्ञानी प्रत्यक्ष मूर्तीक अमूर्तीक सर्व द्रव्योंको जानते हैं। तथापि इसमें अप्रमेयपना भी है। क्योंकि इसको तर्कके द्वारा या परोक्ष ज्ञानके द्वारा स्पष्ट

नहीं जान सक्ते हैं। यह निश्चयसे किसी प्रमाणके विकल्पोंसे जानने योग्य नहीं है। इसलिये अप्रमाण है। जो कोई प्रमाण व नयकी कल्पनाओंको उल्लंघ जाता है ऐसा स्वानुभवी या तो स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा जानते हैं या फिर पूर्ण स्पष्ट श्रुतके विकल्पोंसे रहित केवलज्ञानी जानते हैं। इसका स्वभाव शुद्ध निर्मल केवलज्ञानमय है यह केवलज्ञान द्वारा प्रमेय है जब कि मति श्रुत अवधि मनःपर्यय चार ज्ञानके द्वारा अप्रमेय है।

अगुरुलघुत्व गुण।

गुरु तियलोय पमानो, लघु वित करित अप्प सुद्ध सद्भावो।
गुरुत्वं लघु स उत्तं, ज्ञानमयो सुद्ध दंसनं अमलो ॥ ८११ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु तियलोय पमानो) तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी आत्मा है ऐसा गुरु है (लघु वित करित अप्प सुद्ध सद्भावो) लघु या हलका ऐसा है कि अपने शुद्ध स्वभावको लिये हुए है, परम सूक्ष्म है, (गुरुत्वं लघु स उत्तं) यही गुरुपना या लघुपना कहा गया है, (ज्ञानमयो सुद्ध दंसनं अमलो) वह ज्ञानमई शुद्ध निर्मल सम्यग्दर्शनका धारी है।

भावार्थ—अगुरु लघुत्व गुण उसको कहते हैं जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य अपनी मर्यादा या स्वभावको स्थिर रक्खे। कभी अन्य द्रव्यरूप न हो न उसके गुण उसमेंसे छूटें, न कोई गुण उसमें नया आकर मिले। यही भाव ऊपरकी गाथामें बताया है कि आत्मा असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशके बराबर है, इससे कभी कम या अधिक नहीं होता है तथा इसका स्वभाव निरंजन निर्विकार ज्ञाता दृष्टा है उसको कभी त्यागता नहीं है। सदा ही अपने स्वभावमें बना रहता है। यह कभी जीवसे अजीव नहीं होता है। अनादिकालसे कर्मोंके सम्बन्धमें है तथापि इस शक्तिके निमित्तसे जैसाका तैसा ही रहा, कभी अजीव नहीं हुआ, न कोई अपना गुण छोडा न परका गुण ग्रहण किया।

चेतनत्व गुण ।

चेयन सुद्ध सहावं, चेयन संसार विगत रूवेन ।
कम्ममल पयडि षयंतो, चेयन रूवेन निम्मलो सुद्धो ॥ ८१२ ॥

(चेयन सुद्ध सहावं) चेतनपना जीवका शुद्ध स्वभाव है। (चेयन संसार विगत रूवेन) यह चेतन प्रभु संसार सम्बन्धी रूपोंसे या अचेतन पर्यायोंसे रहित है (कम्ममल पयडि षयंतो) सारी कर्मोंकी प्रकृतियोंको क्षय किये हुए है (चेयन रूवेन निम्मलो सुद्धो) यह चेतनरूप होकर निरंजन निर्विकार है।

भावार्थ—आलापपद्धतिमें कहा है कि 'चैतन्यं अनुभूतिः स्यात्' कि चेतनपना अपने आपकी अनुभूति है अर्थात् अपनेसे आपको लवलीन होकर जानना या स्वाद लेना है। यह निश्चयसे जीवका अपना स्वभाव है। यह चेतनपनेको रखता हुआ संसार सम्बन्धी अशुद्ध भावोंका अनुभव नहीं करता है। क्योंकि इसमें अशुद्ध भावोंके कारण सर्व कर्म प्रकृतियोंके सम्बन्धका अभाव है। यह निरंजन निर्विकार रहकर आपसे आपका ही स्वाद लिया करता है। यही चेतनपना जीवद्रव्यका गुण है।

अमूर्तत्व या अरूपत्व (रूपत्व) गुण ।

रूवं अविगत रूवं, अविगत रूवेन निम्मलो सुद्धो ।
अप्पा परमप्पमओ, ज्ञानमई रूव निम्मलो सुद्धो ॥ ८१३ ॥

अन्वयार्थ—(रूवं अविगत रूवं) इसका स्वभाव अमूर्तीक होनेपर भी अरूपी नहीं है। अर्थात् अपने ज्ञानमई आकारका धारी है, (अविगत रूवेन निम्मलो सुद्धो) तथा ज्ञान रूपी निर्मल शुद्ध है, (अप्पा परमप्पमओ) यह आत्मा परमात्मा रूप है, (ज्ञानमई रूव निम्मलो सुद्धो) यह ज्ञानमई रूपका धारी, रागादि मल व कर्मादि मल रहित परम शुद्ध है।

भावार्थ—स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णमई मूर्ति या रूप जिसमें न हो उसको अरूपत्व या अमूर्तत्व कहते हैं। इस गुणका धारी होकर भी जीव द्रव्य आकार रहित सर्वथा शून्य नहीं है। यह ज्ञानमई शुद्ध आकारका धारी है, अनन्त गुणोंका धारी है, परमात्माके समान ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुणोंका धनी है। इसमें कोई पुद्गलका सम्बन्ध नहीं है। न पुद्गलमई कोई आकार है न विकार है।

दो मुख्य गुण कथन।

ऊर्ध ऊर्ध सहावं, सुद्धं सर्वज्ञ चेयना सहियं।
अर्ध अविगत रूवं, सुद्धं सुयमेव परम आनंदं ॥ ८१४ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध ऊर्ध सहावं) यह जीव द्रव्य सब द्रव्योंमें श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ स्वभावका धारी है, (सुद्धं सर्वज्ञ चेयना सहियं) यह निश्चयसे शुद्ध है, सर्वज्ञ है व चेतनामई अनुभूति सहित है (ऊर्ध अविगत रूवं) अमूर्तीक होकर भी ज्ञानाकार श्रेष्ठ पदार्थ है (सुद्धं सुयमेव परम आनंदं) यह रागादि रहित शुद्ध है तथा स्वयं ही स्वाधीनतासे परम आनन्दका धारी है।

भावार्थ—ऊपरकी गाथाओंमें छः गुणोंको बताकर यहां दो मुख्य गुणोंको बताया है अर्थात् चेतनत्व व अरूपत्वका संकेत किया है। यह जीव द्रव्य सर्व द्रव्योंमें इसलिये श्रेष्ठ है कि और द्रव्य तो जानने योग्य हैं परन्तु वे न आप अपनेको जानते हैं न परको जानते हैं। जीव द्रव्य अपनेको भी जानता है, परको भी जानता है यह स्वपर ज्ञायक है। इसका स्वभाव सर्व द्रव्योंसे महान है। यह कर्ममल रहित होनेपर सर्वको एक समयपर जानता है इसलिये सर्वज्ञ है तथापि अपनी स्वानुभूतिमें तन्मय है इससे ज्ञान चेतनामई अमूर्तीक होकर भी ज्ञानाकार है तथा पराधीनता रहित अपनेसे ही अपने सुखका भोग करता हुआ परमानन्दमई बना रहता है।



एक गुण कथन।

एकेन एकवंतो, एको संसार सरनि विगतोय।
एको तिय लोय स उत्तो, परमानंद नंद संजुत्तं ॥ ८१५ ॥

अन्वयार्थ—(एकेन एकवंतो) संग्रह नयसे देखें तो जीव द्रव्य एकरूप ही जीवत्व गुणका धारी है (एको संसार सरनि विगतोय) यह अकेला है निराला है, संसारके भ्रमणसे रहित है (एको तिय लोय स उत्तो)

वह एक ही तीन लोक प्रमाण आकार धारी कहा गया है (परमानंद नंद संजुत्तं) यही परमानन्दमें मगनता सहित है।

भावार्थ—यहां एक जीवत्व नामके पारणामिक गुणको बताया गया है। यह एक जीवत्वको रखता हुआ सदा ही एकरूप शुद्ध निर्विकार कर्म रहित, संसार भ्रमण रहित, असंख्यात प्रदेशी, परमानन्दमें मग्न सदा बना रहता है। शुद्ध निश्चयनयसे कभी इस एक जीवत्व स्वभावसे अन्यथा नहीं होता।

भावार्थ—यहां एक जीवत्व नामके पारणामिक गुणको बताया गया है। यह एक जीवत्वको रखता हुआ सदा ही एक रूप शुद्ध निर्विकार कर्मरहित, संसार भ्रमण रहित, असंख्यात प्रदेशी परमानन्दमें मग्न सदा बना रहता है। शुद्ध निश्चयनयसे कभी इस एक जीवत्व स्वभावसे अन्यथा नहीं होता।

जीवं दव्व स उत्तं, संसारे विषय राग परिचत्तो।
दंसन ज्ञान सहावो, चरनंपि जीव दव्व चेयना जुत्तो ॥ ८१६ ॥

अन्वयार्थ—(जीवं दव्व स उत्तं) वही जीव द्रव्य कहा गया है (संसारे विषय राग परिचत्तो) जो इस संसार सम्बन्धी इन्द्रियोंके विषयोंके रागसे रहित है (दंसन ज्ञान सहावो) जो दर्शन ज्ञान स्वभावधारी है या जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान स्वभावमई है (चरनंपि जीव दव्व चेयना जुत्तो) तथा सम्यक्चारित्र रूप भी है, परम वीतराग है और यह जीवद्रव्य ज्ञानचेतना सहित है।

भावार्थ—जीव द्रव्यका असली स्वरूप सर्व तृष्णा रहित परम वीतराग है, वह रत्नत्रयमई है, अपने स्वरूपमें लीन है। तथा अपने ज्ञानानन्दका नित्य अनुभव करनेवाला है। यह सिद्धके समान शुद्ध है। जब इस जीव द्रव्यको स्वभावसे देखा जायगा तो शुद्ध ही झलकेगा। छः द्रव्योंके भिन्न २ स्वभावोंको देखते हुए जीव द्रव्य परमात्मारूप ही विदित होगा। पर्यायापेक्षा संसारमें जीव द्रव्य कर्मोंकी संगतिसे नाना रूपमें दिखता है। तथापि एक तत्वज्ञानीको द्रव्यकी दृष्टिसे वही जीव नाना शरीरोंमें रहते हुए भी एक शुद्ध जीवरूप या परमात्मारूप ही दिखता है।

तात्पर्य यह है कि भव्यजीवको उचित है कि शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षाको सदा सामने

रखकर अपने आत्माको शुद्ध स्वरूप श्रद्धा सहित व ज्ञान सहित अनुभव करनेका अभ्यास करना चाहिये। यही स्वानुभव ही जीवनका सार है। यही पवित्र कार्य है। यही मोक्षका मार्ग है।

पुद्गल अजीव द्रव्य।

अजीवं पिच्छंतो, अनृत अचेत इंदिया सहिओ।
मन सुभाव संचरतो, अतिंद्री प्रानदव्व संजुत्तो ॥ ८१७ ॥

अन्वयार्थ—(अजीवं पिच्छंतो) अजीव पुद्गलको देखा जावे तो (अनृत अचेत इंदिया सहिओ) इस जीवके साथ ही जो कुछ मिथ्या तत्व कर्मादि हैं व अज्ञानरूप शरीरादि हैं व इंद्रियादि हैं ये सब जड पुद्गल हैं। (मन सुभाव संचरतो) यह भ्रमण करनेवाले चंचल मनके स्वभावको भी पुद्गल जानना चाहिये (अतिंद्री प्रानदव्व संजुत्तो) इनके साथमें अतीन्द्रिय प्राणोंका धारी जीव द्रव्य है।

भावार्थ—पुद्गल द्रव्यसे परमाणु लेना चाहिये जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये विशेष गुण रहते हैं। इन परमाणुओंसे अनेक स्कंध बनते हैं। उनही स्कंधोंमेंसे आहारक वर्गणाओंसे यह स्थूल औदारिक शरीर बना है या वैक्रियिक या आहारक शरीर बनता है। तैजस वर्गणाओंसे तैजस शरीर बनता है। कार्माण वर्गणाओंसे कार्माण शरीर बनता है। भाषा वर्गणाओंसे भाषा बनती है। मनोवर्गणासे मन बनता है। जिसके निमित्तसे तर्क वितर्क संकल्प विकल्प चंचलपना होता है। ये सब शरीर भाषा मन पुद्गल द्रव्य हैं। इनसे भिन्न उनके साथ रहा हुआ इंद्रियोंके द्वारा न जानने योग्य एक शुद्ध जीव द्रव्य है। प्रयोजन यह है कि शुद्ध जीव द्रव्यको अलग छांटकर शेष जो कुछ रागादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म व शरीरादि नोकर्म जीवमें हैं वे सब पौद्गलिक हैं। इनको अपनेसे भिन्न अनुभव करना चाहिये। यही पुद्गल द्रव्यकी सच्ची पहचान है।

समयसार कलशमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः। तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नोदृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५–२॥

भावार्थ—वर्णादि तथा रागादिक ये सब इस जीव द्रव्यसे भिन्न हैं। इसलिये तत्वदृष्टिसे यदि अन्तरंगमें देखा जावेगा तो एक श्रेष्ठ पदार्थ जीव द्रव्य ही दिखलाई पडेगा।

धर्म द्रव्य।

धम्मं चेयन रूवं, अचेयन भाव सयल विवरीदो।
चेयन सहाव सुद्धो, धम्म झाने हि अप्प परमप्पो ॥ ८१८ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मं चेयन रूवं) धर्म चेतन स्वरूप आत्माका स्वभाव है (अचेयन भाव सयल विवरीदो) यह सर्व ही अचेतन भावोंसे विपरीत है (चेयन सहाव सुद्धो) यह चैतन्य स्वभावी शुद्ध है (धम्म झाने हि अप्प परमप्पो) धर्मध्यानके द्वारा अनुभव किया जावे तो यही आत्मा परमात्मारूप अनुभवमें आता है।

भावार्थ—यहां ग्रन्थकर्ताने धर्म द्रव्यको कहते हुए उसका स्वरूप आत्मापर घटाकर कहा है। यह ग्रन्थकर्ताके आध्यात्मिक ज्ञानकी एक तरंग है। सिद्धांतमें धर्म द्रव्य उसे कहते हैं जो एक अमूर्तीक लोकव्यापी धर्मास्तिकायरूप द्रव्य है जिसमें चेतनपना नहीं है, जिसका काम जीव पुद्गलोंको स्वयं गमन करते हुए गमनमें सहकारीपना है। जैसे-मछलीको स्वयं गमन करते हुए जल सहकारी है। यहां अध्यात्मदृष्टिसे कहा है कि धर्म इस जीवका स्वरूप है। अर्थात् धर्ममयी आत्मा ही है जिसमें न तो कर्म है, न रागादि है, न संकल्प विकल्प है, न कोई अज्ञान है, न कोई शरीरादि है। यह ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय परम शुद्ध है। जो कोई धर्मध्यान करते हैं उनको यह अपना जीव द्रव्य परमात्माके समान अनुभवमें आता है।

अधर्म द्रव्य।

अहमं असुद्ध भावो, संसारे सरनि सयल संजुत्तो।
स्थिति बन्ध संजुत्तो, ठिदि करनोय अस्थिरी भूतो ॥ ८१९ ॥

अन्वयार्थ—(अहमं असुद्ध भावो) अधर्म जीवका अशुद्ध भाव है (संसारे सरनि सयल संजुत्तो) जिसके कारण संसारमें सर्व प्रकारका भ्रमण होता है (स्थितिबन्ध संजुत्तो) इसीसे कर्मोंका स्थितिबन्ध पडता है (ठिदि करनोय अस्थिरी भूतो) यह कर्मबन्ध अपनी स्थितिभर रहता हुआ पतनशील अस्थिर है।

भावार्थ—अधर्म द्रव्यका सैद्धांतिक स्वरूप यह है कि एक अमूर्तीक लोकव्यापी अचेतन द्रव्य है। जीव पुद्गलोंकी स्थिति करनेमें यह सहकारी है। यहां आत्मापर घटाकरके कहा है कि धर्म जब जीवका शुद्ध भाव है तब अधर्म जीवका अशुद्ध भाव है। संसारके भ्रमणके कारणभूत कर्मोंका बन्ध होजाता है। कषाय भावोंसे कर्मोंमें स्थिति पडती है। जहांतक मर्यादा पडती है वह कर्म बिलकुल नहीं झडता है, किन्तु वहांतक झड़ता रहता है, तथा स्थिति पूरे ही सर्व झड जायगा। यह अधर्म हेय है।

अहं म सुद्ध सहाओ, चित्तं चिंतंति अप्प सद्भावं।
ज्ञान ज्ञान थिर सुद्धो, स्थिर मुक्ति नन्त काल संजुत्तो ॥ ८२० ॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं (म) शिवरूप (सुद्ध महाओ) शुद्ध स्वभावका धारी हूं। (चित्तं चिंतंति अप्प सद्भावं) मेरा चित्त आत्माके यथार्थ स्वरूपका मनन करता है (ज्ञान ज्ञान थिर सुद्धो) यह मेरा आत्मा अपने आत्मज्ञानके ध्यानमें स्थिर है वीतराग है (थिर मुक्ति नन्त काल संजुत्तो) इसीमें अनन्तकाल स्थिर रहनेवाली मुक्ति भी है।

भावार्थ—यहां अहं म शब्दके अर्थ लेकर कहा है कि अधर्मद्रव्य मैं ही शिवरूप हूं। मैं ही अपने आपका ज्ञान रखता हुआ अपने ध्यानमें मगन हूं। मुक्ति मेरा स्वभाव है। वह कभी नाश नहीं होसक्ती। अनन्तकाल मेरेमें रहनेवाली है।

काल द्रव्य।

काल दव्व स सहावं, अन्तर गर्भओ परिनमै असंख्यं।
परिनाम अनन्तानन्तु, निश्चै व्यवहार काल स सहावं ॥ ८२१ ॥

अन्वयार्थ—(काल दव्व स सहावं) काल द्रव्य अपने स्वभावमें रहता है (अन्तर गर्भओ परिनमै असंख्यं) अपनेमें लीन असंख्यात कालाणु परिणमन किया करते हैं (परिनाम अनन्तानन्तु) काल द्रव्यके पर्याय समय है सो भूत भविष्य वर्तमान कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त है (निश्चै व्यवहार काल स सहावं) यह निश्चय तथा व्यवहार कालका अपना स्वभाव है।

भावार्थ—कालाणु रूप काल द्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें भिन्न २ रत्नके ढेरके समान व्यापक है। येही असंख्यात काल द्रव्य है। ये सदा परिणमन किया करते हैं। इनके परिणामोंको या पर्यायोंको समय कहते हैं। इन्हीं समयोंसे पल, विपल, दिन, रात, घडी, घण्टा आदि बने हैं। जब एक कालाणु परसे एक परमाणु दूसरे निकट कालाणु पर उल्लंघता है तब समय पर्याय पैदा होती है। यही व्यवहार काल है। यदि इस गाथाका अर्थ आत्मामें घटाकर करे तो ऐसा कर सक्ते हैं कि अपना आत्मीक स्वभाव असंख्यात प्रदेशोंमें सदा परिणमन किया करता है। यह परिणमन होना ही आत्माका स्व काल है या निश्चय काल है। अनन्त कालकी जो अनन्त परिणतियें होती हैं उनको व्यवहार काल कहते हैं। दोनों ही आत्माके स्वभाव हैं।

आकाश द्रव्य।

अवयास दान सुद्धो, सुद्धं अवयास दिस्टि नन्त दर्सतो।
ज्ञानं अनंत रूवं, चरनं सुद्ध चेयना अवयासो ॥ ८२२ ॥

अन्वयार्थ—(अवयास दान सुद्धो) आकाश द्रव्य सिद्धांतकी अपेक्षा सर्व द्रव्योंको जगह देनेवाला शुद्ध एक अमूर्तीक अनन्त पदार्थ है। इसीको आत्मापर घटाके कहे तो यह आत्माका शुद्ध द्रव्य आकाश गुण धारी सर्वव्यापक है (सुद्धं अवयास दिस्टि नन्त दर्सतो) इसके शुद्ध दर्शन प्रकाशके भीतर अनन्त पदार्थ दिखलाई पडते हैं (ज्ञानं अनन्त रूवं) इसका ज्ञान अनन्त है जिसमें अनन्त पदार्थ जाने जाते हैं (चरनं सुद्ध चेयना अवयासो) इसके वीतराग चारित्रमें शुद्ध चेतना विराजती है अर्थात् शुद्ध आत्माका अनुभव होता है।

भावार्थ—सिद्धांतकी अपेक्षा सब द्रव्योंको अवकाश देनेवाला आकाश द्रव्य अमूर्तीक अनन्त है। जैसे आकाश अनन्त व सर्वव्यापी है वैसे यह जीव द्रव्य भी सर्वव्यापक है। इसके अनंत दर्शन व अनन्त ज्ञानमें तीन लोक व अलोकके सर्व द्रव्य अपनी त्रिकालवर्ती अनन्त गुण व अनन्त पर्यायोंके साथमें एक ही साथ झलकते हैं। इसमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान चेतना बिराजमान है। अर्थात् यह शुद्धात्मा निरन्तर अपने ज्ञानानन्द स्वभावका आनन्द लिया करता है।

दव्व भाव उवएसं, दव्व सहावेन सरूव पिच्छंतो।
अप्पा अप्प सरूवं, दव्व सहावेन जीव संसुद्धो ॥ ८२३ ॥

अन्वयार्थ—(दव्व भाव उवएसं) छः द्रव्योंका स्वरूप उपदेश किया गया (दव्व सहावेन) जो द्रव्यके स्वभावकी तरफ लक्ष देकर (सरूव पिच्छन्तो) अपने स्वभावको देखना है उसको (अप्प अप्प सरूवं) अपना आत्मा आत्मारूप ही दिखलाई पडता है (दव्व सहावेन जीव संसुद्धो) द्रव्यके स्वभावकी दृष्टिसे यह जीव अत्यन्त शुद्ध है।

भावार्थ—छः द्रव्योंका स्वभाव जानकर मुमुक्षु जीवको योग्य है कि समस्त परद्रव्योंसे उपयोगको हटाकर एक अपने जीवको द्रव्यार्थिक नयसे देखनेका अभ्यास करे तो यह अपना ही आत्मा परम शुद्ध सिद्धसम दिखलाई पडेगा। ऐसा ही अनुभव करना मोक्षका मार्ग है।

जीवास्तिकाय।

काया काय प्रमानो, जीवास्तिकाय जिनवरे उवएसो।
चौविहि बंध विमुक्को, जीओ तियलोय मंत सुपएसो ॥ ८२४ ॥
नंत चतुस्टय सहिओ, नंतानंत दिस्टि सुद्ध दर्सतो।
परभाव मुक्क समओ, ज्ञान संजुत्तोय काय उवएसो ॥ ८२५ ॥

अन्वयार्थ—(काया काय प्रमानो) पांच द्रव्योंको अस्तिकाय इसलिये कहते हैं कि वे काय या शरीरके समान बहु प्रदेशी हैं। उनमेंसे (जिनवरे जीवास्तिकाय उवएसो) जिनेन्द्र भगवानने जीवास्तिकायका उपदेश किया है कि यह (जीओ चौविहि बंध विमुक्को) जीव चार प्रकारके बंधसे रहित है (तियलोय मंत सुपएसो) तथा तीन लोकके प्रदेशोंके बराबर इसके असंख्यात शुद्ध प्रदेश हैं (नंत चतुस्टय सहिओ) यह अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य सहित है (नंतानंत दिस्टि सुद्ध दर्सतो) यह अपनी शुद्ध अनन्त दृष्टिसे अनन्तानन्त पदार्थोंको देखनेवाला है (परभाव मुक्क समओ) यह रागादि

परभावोंसे रहित समय है। अर्थात् अपने स्वभावमें परिणमनेवाला व स्वपरको जाननेवाला है (ज्ञान संजुत्तोय काय उवएसो) यह ज्ञान संयुक्त भी है, इसतरह जीवास्तिकाय कहा गया है।

भावार्थ—जितने आकाशके सूक्ष्म अंशको एक पुद्गलका वह परमाणु जिसका भाग न हो, रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं। यह एक प्रकारकी माप है। इस मापसे जब छः द्रव्योंको मापा जाता है तब पांच द्रव्योंके तो बहुत प्रदेश आते हैं। जब कि कालका एक ही प्रदेश आता है। इसलिये काल अस्तिकाय नहीं है, पांच अस्तिकाय हैं। इनमेंसे जीवास्तिकाय एक एक स्वभावसे लोकके बराबर असंख्यात प्रदेशी है। शुद्ध निश्चयसे इसमें प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग ये चार प्रकारके कर्मबंध नहीं हैं। यह अनन्तज्ञानादि चतुष्टयका धारी है। सर्व रागादि भावोंसे व कर्मजनित सर्व ही अशुद्ध अवस्थाओंसे रहित है, सिद्धसम शुद्ध है।

पुद्गल अजीवास्तिकाय।

अजीव काय भनियं, इन्द्रो बल प्राण अतींद्रिया जुत्तो।
सहकारे इन्द्रि उत्तो, अतिंद्री सहाव अजीव काय संजुत्तो॥ ८२६॥

अन्वयार्थ—(अजीव काय भनियं) अब अजीव अस्तिकायको कहते हैं (इंद्री बल प्राण अतीन्द्रियां जुत्तो) पाच इंद्रिय प्राण तथा मन वचन काय बल प्राण अतीन्द्रिय जीव सहित अजीव हैं (सहकारे इंद्री उत्तो) पांच इन्द्रियें जीवके मतिज्ञानमें सहकारी हैं (अतिन्द्री सहाव अजीव काय संजुत्तो) अतीन्द्रिय स्वभावधारी जीव अजीव कायके साथमें हैं।

भावार्थ—यहां जीवके साथ पुद्गलास्तिकायके सम्बन्धको लेकर कहा गया है। जीव स्वभावसे शुद्ध है इन्द्रियातीत है। इसके साथ जो कार्माण तैजस औदारिकादि शरीरोंका सम्बन्ध है वह सब पुद्गलास्तिकाय है। शरीरमें जो पांच इन्द्रियां हैं व मन, वचन, काय बल हैं, ये प्राण भी पौद्गलिक हैं। द्रव्यापेक्षा तो पौद्गलिक हैं ही, परन्तु भावापेक्षा भाव इन्द्रिय व भाव मन, वचन काय, प्राण

भी पुद्गल कृत हैं। क्योंकि कर्मोंके क्षयोपशमसे काम करते हैं व शरीर नाम कर्मके व अंगोपांग व स्वर नाम कर्मके उदयसे रचित हैं। इसलिये इन सबको पुद्गलास्तिकाय जानकर एक शुद्ध जीवका ही अनुभव करना योग्य है।



धर्मास्तिकाय।

धमास्ति धम्म संजुत्तो, चेयन परिनाम सरूव सहकारो।
चेयन सुद्ध सहाओ, संजुत्तो धम्मास्तिकायममलोय ॥ ८२७ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मास्ति धम्म संजुत्तो) धर्मास्तिकाय रूप जीव अपने धर्म या स्वभाव सहित है (चेयन परिनाम सरूव सहकारो) यह जीव चेतनमय स्वभाव परिणति सहित है (चेयन सुद्ध सहाओ संजुत्तो) चेतन रागादि रहित शुद्ध स्वभाव सहित है (धर्मास्तिकायं अमलोय) ऐसा यह जीव ही निर्मल धर्मास्तिकाय है।

भावार्थ—यहांपर भी धर्मास्तिकायको जीव पर घटाकर कहा है। यह जीव ही अपने धर्मको रखनेसे धर्मास्तिकाय है। इसका स्वभाव शुद्ध ज्ञान चेतनामय है। यह अपने ज्ञानानन्दमें मगन परम शुद्ध निर्विकार है।

अर्हं मास्तिकाय।

अहं म काय संजुत्तो, ठिदिकरन सयल असुह सुह सुद्धं।
सुद्धं काये बंधं, ज्ञान ज्ञान तव दंसनं दिट्ठं ॥ ८२८ ॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं (म) शिवरूप या आनन्दरूप (काय संजुत्तो) काय सहित हूं (ठिदिकरन सयल असुह सुह सुद्धं) मैं सर्व ही अशुभ तथा शुभ भावोंको ठहराकर शुद्ध भावोंमें परिणमन कर रहा हूं। (सुद्धं काये बंधं) शुद्ध असंख्यात प्रदेशी अमूर्तीक ज्ञानाकार कायमें बद्ध हूं (ज्ञान ज्ञान तव दंसनं दिट्ठं) मेरेमें ज्ञान, आत्मध्यान, आत्मीक तप व शुद्ध सम्यग्दर्शन दिखलाई पडते हैं।

भावार्थ—यहां अधम्म शब्दको अहं म मानकर आत्मापर घटाकर आत्माका ही मनन किया है। यह आत्मा सदा आनन्द रूप है। इसके असंख्यात प्रदेशोंमें आनन्द गुण भरा है, वीतरागभाव भरा है, न शुभ राग है न अशुभ राग है। यह जीव अखण्ड है, इसके प्रदेशोंका कभी खण्डन नहीं होसकता है। यह शुद्ध ज्ञानमय है, आत्म ध्यानरूप है, आत्मीक तप रूप है व शुद्ध सम्यक्-दर्शन रूप है। यही परमात्मा है।

आकाशास्ति काय।

अवयासं उवएसं, अप्पा परमय अवयास संसुद्धं।
विलसैं परमानंदं, ज्ञान सरूवं च अवयास संसुद्धं ॥ ८२९ ॥

अन्वयार्थ—(अवयासं उवएसं) अब आकाशका उपदेश करते हैं, (अप्पा परमय अवयास संसुद्धं) आत्मा ही परमात्मा है जिसके सब प्रदेश परम शुद्ध हैं (विलसैं परमानंदं) यह परमानन्दका स्वाद लेरहा है। (ज्ञान सरूवं च अवयास संसुद्धं) यह ज्ञान स्वरूपी है व परम शुद्धताका स्थान है।

भावार्थ—यहां आकाशको जीवपर घटाकर कहा है। यह जीव ही आकाशतुल्य ज्ञानापेक्षा सर्वव्यापक है। इसके लोकाकाशके सर्व प्रदेश कर्म व नोकर्मके संयोग रहित परम शुद्ध हैं। यह परमात्माके समान परमानंदका विलास करनेवाला है तथा परम वीतराग है, ऐसा ध्याना ही कार्यकारी है।

काल अकाय।

कालं काय न जुत्तं, अनंत परिनमै बन्ध नहु जुत्तं।
परिनमै अनंतानंतं, कालं काया नत्थि उवएसं ॥ ८३० ॥

अन्वयार्थ—(कालं काय न जुत्तं) कालद्रव्यके बहुप्रदेशीपना नहीं है (अनंत परिनमै बंध नहु जुत्तं) कालाणु अनन्त समयोंमें परिणमन करते हैं परन्तु परस्पर बंधको प्राप्त नहीं होते हैं (परिनमै अनंतानंतं) तीन काल सम्बन्धी अनन्तानन्त समयोंमें परिणमते हैं (कालं काया नत्थि उवएसं) इसलिये कालद्रव्यके काय नहीं है ऐसा उपदेश है।

भावार्थ—कालाणु लोकाकाशमें भिन्न १ रत्नराशिके समान एक प्रदेशमें एक एक व्यापक हैं। यही निश्चय कालद्रव्य है। यह समय समय परिणमनशील हैं तथापि कोई कालाणु दूसरे कालाणुसे मिलकर बंधते नहीं हैं, जब कि पुद्गलके परमाणु अपने रूखे चिकने गुणोंके कारण बन्धकर स्कन्ध बन जाते हैं। ऐसी शक्ति कालाणुमें नहीं है। उनके परिणमनसे समय नामकी पर्याय होती है जिसको व्यवहार काल कहते हैं। तीन कालकी अपेक्षा यह समय अनन्तानन्त हैं। अनन्त समय वीत गया है व अनन्त ही भविष्यमें है। कालाणुके एक ही प्रदेश होता है, इसलिये काय नहीं है। दूसरा अर्थ इस गाथाका जीव द्रव्यपर घटा कर कहें तो ऐसा अर्थ कर सक्ते हैं कि जीव द्रव्य शरीरके साथ संसारमें अनन्त कालसे एक साथ रह कर नाना पर्यायोंमें चार गतियोंके भीतर परिणमन कर रहा है, अनन्तानन्त पर्याय धारण की है, तथापि कभी भी कार्माण, तेजस आदि किसी भी शरीरके साथ एकमेक नहीं हुआ है, न हो सकता है। इसलिये जीव द्रव्यके कभी कायका स्वाभाविक वन्ध नहीं होसक्ता। इस लिये जीव सदा काल काय रहित है।

तत्तु पदार्थं उत्तं दव्वं काय भाव उत्तं च।
अप्प सरूवं पिच्छदि, अप्पा परमप्प सुद्ध सुह निलयं ॥ ८३१ ॥

अन्वयार्थ—(तत्तु पदार्थं उत्तं) सात तत्व नौ पदार्थोंको कहा गया, (दव्वं काय भाव उत्तं च) छः द्रव्य पांच आस्तिकायोंका भाव कहा गया, (अप्प सरूवं पिच्छदि) इनके द्वारा भेदविज्ञानसे तत्वज्ञानी आत्माके स्वरूपको अनुभवमें लेता है। वह अनुभव करता है कि (अप्पा परमप्प सुद्ध सुह निलयं) यह आत्मा परमात्मारूप शुद्ध सुखका निधान है।

भावार्थ—इन सप्त तत्वादिका श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्त है। इनके द्वारा निश्चय नयसे यह विचारना चाहिये कि मेरा जीव भिन्न है, और सर्व अजीव भिन्न हैं। जीव अजीवके ही ये सप्त तत्व पदार्थादि विशेष भेद हैं। इनमेंसे अजीव त्यागने योग्य है क्योंकि मेरा स्वरूप नहीं है, केवल एक जीव ग्रहण करने योग्य है। जीवका असल स्वभाव सिद्ध परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा वीतराग अनन्त सुखका भंडार है। इसतरह आत्मा व अनात्माका विवेक करके जो आत्मापर दृढ

प्रतीति लाकर आत्माके रसका स्वाद पाता है वही निश्चय सम्यग्दर्शनसे विभूषित होजाता है। वह फिर अतीन्द्रिय सुखका प्रेमी होजाता है, विषयसुखसे विरक्त होजाता है।



चार आर्त ध्यान।

इस्टं अरूव रूवं, कम्म विमुक्त निम्मलं भावं।
इस्टविओयं दिस्टदि, आरति पाए सुदुग्गए जाए ॥ ८३२ ॥

अन्वयार्थ—(इस्टं अरूव रूवं) आत्माका इस्ट अपना अमूर्तीक स्वभाव है, (कम्म विमुक्त निम्मलं भावं) जो सर्व कर्मोंसे मुक्त शुद्ध भाव है, (इस्ट विओयं दिस्टदि) जिसके इस परम हितकारी शुद्ध भावका वियोग है वह (आरति पाए सुदुग्गए जाए) इस्ट वियोग आर्त ध्यानको पाकर परिणामोंके अनुसार शुभ गति या अशुभ गतिमें जाता है।

भावार्थ—यहां प्रथम आर्त ध्यानका स्वरूप बहुत ही बढिया बताया है। सिद्धांतमें प्रसिद्ध तो यही अर्थ है कि अपने स्त्री, पुत्र, बन्धु या धन सम्पदा आदि इष्ट सामग्रीका वियोग होनेपर, उसकी प्राप्तिके लिये चिन्तातुर होना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। यहां आत्म तत्वपर घटाकर कहते हैं कि इस जीवका सच्चा प्यारा अपना एक वीतराग निर्मल शुद्धोपयोग है। जो किसी प्रकार कर्मोंके उदयसे मलीन नहीं है। जिनको इस शुद्धोपयोगका वियोग है वे रात दिन शुद्धात्म तत्वके अश्रद्धानी व अजानकार रहते हुए शरीर व शरीराश्रित विषयोंमें व उनकी प्राप्तिकी वासनामें लीन रहते हुए जीवन विताते हैं। इस इष्ट वियोगज आर्त ध्यानसे कभी पुण्य बांध कर देव, मनुष्य शुभ गतियोंमें जाते हैं, कभी पाप बांधकर नरक व तिर्यंच अशुभ गतियोंमें जाते हैं। अपने इष्ट मोक्ष गतिको प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

अनिस्ट मिथ्या भावं, संसारे सरनि सरनि सद्भावं।
रागादि दोष जुत्तं, आरति पाएन सरनि संसारे ॥ ८३३ ॥

अन्वयार्थ—(अनिस्ट मिथ्या भावं) इस जीवका अहितकारी मिथ्यात्व भाव है (संसारे सरनि सरनि

सद्भावं) जिससे संसारके मार्गमें भ्रमण ही रहा करता है (रागादि दोष जुतं) जिसके प्रभावसे रागादि दोषोंसे मलीन रहना हुआ यह जीव (आरति पाएन संसारे सरनि) अनिष्ट संयोगज आर्तध्यानसे संसारमें भ्रमण किया करता है।

भावार्थ—सिद्धांतमें अप्रिय स्त्री पुत्र बन्धु आदिके संयोग होनेपर या असुहावने मकान, वस्त्र, देश, नगरके संयोग होनेपर उनके साथ किस तरह वियोग हो ऐसी चिन्ता करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान दूसरा है। यहां और भी गम्भीर अर्थमें जाकर तारणस्वामी कहते हैं कि जीवका अनिष्ट करनेवाला एक मिथ्यात्व भाव है। जिसके कारण यह अपने शुद्ध आत्माके स्वभावपर श्रद्धान नहीं कर पाता है। अपने परम इष्ट आत्मीक सुन्दर घरको न पहचान कर यह अपने भीतर परमानन्द होते हुए भी सुखकी तृष्णामें आकुलव्याकुल होकर इंद्रियोंके विषयोंमें बार बार जाता है। उनके लाभमें राग व उनके वियोगमें द्वेष करता है। विषयोंके सहकारी स्त्री बन्धु आदिसे राग व उनके विरोधियोंसे शत्रुता करता है। इसतरह राग, द्वेष, मोहमें पड़ा हुआ घोर कर्म बांध कर संसारमें भ्रमण कर रहा है। मिथ्यात्व सहित तप करके भी अनिष्टके संयोगसे नौ ग्रैवयक जाकर भी संसारसे कभी दूर होनेका मार्ग नहीं पाता है। मिथ्यात्वकी संगति ही जीवकी अनिष्ट संगति है। इसकी संगतिमें उलझे रहना ही अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है।

पीडा अमृत दिट्ठं, असत्य असास्वतेन सद्भावं।
मिथ्या सल्य संजुत्तं, आरति पाएन दुग्गए गमनं ॥ ६३४ ॥

अन्वयार्थ—(पीड़ा अमृत दिट्ठं) मिथ्यादृष्टिपना ही पीडा या कष्ट है, (असत्य असास्वतेन सद्भावं) जहां भाव मिथ्या व क्षणभंगुर भोग्य व उपभोग्य पदार्थोंमें फँसा रहता है, (मिथ्या सल्य संजुत्तं) जो भाव मिथ्यात्वकी शल्य सहित है वह (आरति पाएन दुग्गए गमनं) पीडा, चिंतवन तीसरा आर्त ध्यानका पाया है। इसीसे मोक्षगतिमें न जाकर चतुर्गतिमें भ्रमण करता है। चारों ही दुर्गति हैं नाशवंत हैं।

भावार्थ—सिद्धांतमें शरीरादिमें रोगादि होनेपर उसकी पीडाका बार बार चिंतवन करके दुःखित भाव करना पीडा चिंतवन आर्त ध्यान कहा है। यहां गम्भीरतासे विचारते हुए तारणस्वामी कहते हैं कि जीवको भव भवमें कष्ट देनेवाला मिथ्यात्व रूपी रोग है। जिस रोगकी पीडासे

यह विषयातुर होकर विषय भोगोंके भीतर लोलुपी रहता है। उनके मिलनेपर रागी न मिलनेपर वियोगी हो जाता है। विषय वासना व कषायकी वासनाको उपादेय समझना ही मिथ्या शल्य है। जबतक आत्मानन्दकी प्रतीति रूप सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं होता है, तबतक जप तप व्रतादि पालते हुए भी अशुद्ध संसारकी वासना नहीं मिटती है। इस शल्यसे उसी तरह पीडित रहता है, जैसे कोई कांटा लगजानेपर पीडित होता है। इस मिथ्यात्वकी शल्य रख कर संसारमें दुःखित रहना यही तीसरा पीडा चिन्तवन आर्तध्याम दुर्गतिका कारण है।

निदान बंध संसारे, संसारे सरनि सरइ मोहंधं।
मन मक्कड पसरंतो, आरति संजोय निगोय वासंमि ॥ ८३५ ॥

अन्वयार्थ—(निदान बन्ध संसारे) संसारमें बन्धे रहना निदान है। (मोहंधं संसारे सरनि सरइ) संसारके मोहमें अन्धा प्राणी संसारके मार्गमें भ्रमण किया करता है। (मन मक्कड पसरंतो) उसके मन रूपी मर्कट या बन्दर संसारके विषय भोगोंमें ही बडी चंचलतासे भ्रमण किया करता है। (आरति संजोय निगोय वासंमि) इस संसारकी तृष्णा रूप निदान आर्त ध्यानके कारण यह जीव नीच तिर्यंच आयु बांधकर एकेंद्रिय साधारण वनस्पति रूप निगोदमें जाकर जन्म धारण करता है।

भावार्थ—संसारके विषय भोगोंकी तृष्णा रखना, भोगोंके लिये आतुर रहना निदान आर्तध्यान है। संसारके मोहमें या मिथ्यात्वमें अन्धा होकर प्राणी अपने निज तत्वको न पहचानता हुआ पर तत्वका मोही बना रहता है। उसका मन रूपी बन्दर पांचों इंद्रियोंके भोगोंमें वार वार भ्रमण किया करता है। मनकी चंचलताके कारण वह कभी मनको थिर करके निज आत्माकी तरफ लक्ष्य नहीं दे सकता है। उसका संसारका भ्रमण इसी मिथ्या मोहसे अनादिसे चलता आया है व चलता रहेगा। संसारासक्त अज्ञानी जीव तिर्यंच आयु बांधकर तीव्र ज्ञानावरण कर्मके उदयसे अति अल्प ज्ञानवाले निगोदके भवमें चला जाता है, जहां बार बार जन्म मरण करता रहता है। फिर निगोदसे निकलना कठिन होजाता है।

आरति ध्यान स उत्तं, आरतिं संसार वीय संजुत्तं।
आरति कुज्ञान सहावं, आरति संसार भावना हुन्ती ॥ ८३६ ॥

अन्वयार्थ—(आरति ध्यान स उत्तं) आर्तध्यान वही कहा गया है जो (संसार बीय संजुत्तं आरति) संसारके बीजरूप मिथ्यात्व सहित आर्तभाव हो या दुःखित भाव हो (आरति कुज्ञान सहावं) आर्तध्यान मिथ्याज्ञानके स्वभावको धरनेवाला है (आरति संसार भावना हुंती) संसारकी भावना ही आर्तध्यान है।

भावार्थ—इस गाथामें चारों आर्तध्यानका संक्षेप है कि संसारासक्तिके कारण ही आर्तध्यान होता है। मोक्षकी भावना न पाकर उससे विपरीत संसारके सुखोंकी भावना रखना ही आर्तध्यान है। यही विषयवासना ही मिथ्यात्व है। यही संसारके भ्रमणका बीज है। यही मिथ्याज्ञान है। सम्यग्ज्ञानी आत्मारूपी निर्मल बागमें क्रीडा करना ही अपना कर्तव्य समझता है। इस यथार्थ ज्ञानको न पाकर मिथ्याज्ञानी विषयवासनाके भयानक वनमें रमता हुआ आत्मानन्दको न पाकर दुःखित रहता हुआ आर्तध्यान किया करता है जिससे संसारमें भ्रमता है।

आरति शुद्ध प्रयोजन।

आरति अप्प सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं भावं।
आरति ज्ञान अवयासं, ज्ञान सहावेन निव्वुए जंती ॥ ८३७ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं आरति) आत्माके स्वभावमें भले प्रकार सब तरफसे तन्मय होजाना (अप्पा परमप्प निम्मलं भावं) आत्माको परमात्मारूप निर्मल भावोंसे अनुभवना (ज्ञान अवयासं आरति) आत्मज्ञानके भीतर भलेप्रकार लीन होना आरति ध्यान है (ज्ञान सहावेन) इस ज्ञानस्वभावी आत्मध्यानके द्वारा (निव्वुए जंती) भव्य जीव निर्वाण प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—रतिका अर्थ रमण करनेका है। आ का अर्थ है चारों ओरसे। अर्थात् सर्व तरफसे रमना सो आरति है।

आत्माका स्वभाव शुद्ध निश्चय नयके द्वारा देखते हुए सिद्ध परमात्माके समान वीतराग निरंजन शुद्ध परमानन्दमई है, इसी स्वभावमें एकमेक होजाना, आसक्त होना, अपने ही ज्ञानके भीतर मगन होजाना, एक अद्वैत निर्विकल्प आत्मानुभवमें पहुंच जाना, यही आरति ध्यान है। यही ध्यान मोक्षको लेजानेवाला परम आदरणीय है।

चार रौद्रध्यान ।

हिंसानन्द सुभावं, पर पुग्गल उत्पाद पुन्य सहकारं ।
पुन्य पाव उववन्नं, मिथ्या कुज्ञान संजदो होई ॥ ८३८ ॥

('हिंसानन्द सुभावं) हिंसानन्द रौद्रध्यानका यह स्वभाव है कि (पर पुग्गल उत्पाद पुन्य सहकारं) आत्मासे भिन्न शरीरादि पुद्गलोंके उत्पन्न करनेवाले पुन्य कर्मकी मदद चाहना (पुन्य पाव उववन्नं) जिससे पापका बंध करता है । यह हिंसानन्दी (मिथ्या कुज्ञान संजदो होई) मिथ्यात्व व मिथ्याज्ञान सहित संयमी भी होजाता है ।

भावार्थ—अपने इष्ट प्रयोजनमें बाधा देनेवालोंकी हिंसा करने कराने व हिंसा होनेपर आनन्द माननेके लिये जो ध्यान करना सो हिंसानन्दी रौद्रध्यान है । यहां गंभीरतासे बताया है । आत्माकी हिंसा सर्व प्रकारके कर्मोंसे होती है । कर्मके बंधनमें पड़ा हुआ यह निज शुद्ध वीतराग अहिंसक भावको नहीं पासक्ता है । इसलिये यदि कोई संयमी या साधु होकर नानाप्रकारके तप करे, भीतर मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान हो तो वह आत्मासे भिन्न नानाप्रकार देवादिके शरीरको पानेवाले पुन्यकी प्राप्तिकी ही भावना करता है जिससे साता वेदनीयादि पुन्य तथा मिथ्यात्वादि पाप कर्म दोनोंको बांधकर संसारमें ही अपनेको गिराता है । जिस संसारमें आत्माकी हिंसा हो, उस संसारकी भावना ही हिंसानंदी रौद्रध्यान है ।

अनृत दिस्टि सहावं, अनृत पिच्छंति ऋतं तिक्तं च ।
अनृत नंद स रौद्रं, रौद्र झानेन नरय वासंमि ॥ ८३९ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत दिस्टि सहावं) जिसका स्वभाव मिथ्यादृष्टिपनेसे भरपूर है वह (अनृत पिच्छंति ऋतं तिक्तं च) मिथ्या संसारके पदार्थोंके उपभोगमें ही श्रद्धान रखता है । सत्य आत्मानन्दको त्याग देता है । (अनृत नंद स रौद्रं) मिथ्या संसारके सुखमें आनन्द मानना मृषानन्द रौद्रध्यान है । (रौद्र झानेन नरय वासंमि) इस रौद्र ध्यानसे प्राणी नरकमें चला जाता है ।

भावार्थ—अपने प्रयोजन सिद्ध करनेको असत्य बोलना, असत्य बुलवाना व असत्य वचनोंकी

अनुमोदना करना, इन तीन प्रकारसे आनंदित होना मृषानंद रौद्रध्यान है। यहां गंभीरतासे बताया है कि जगमें मिथ्यात्व ही मृषा है। सम्यक्त्व ही सत्य है। जो मिथ्यादृष्टि आत्मानन्दका प्रेम नहीं पाते हुए विषयानन्दमें मगन रहते हैं वे मिथ्या संसारके क्षणिक सुखोंमें आनन्द मानते हुए मृषानन्द रौद्र ध्यानके कर्ता हैं। उनका पतन नरक धरामें होता है।

स्तेयानंद नंदितं, पद लोपन विकह भाव संजुत्तो।
मिथ्या असुह सुभावं, सल्यं विषयं च रौद्र झानत्थं ॥ ८४० ॥

अन्वयार्थ—(स्तेयानंद नंदितं) चौर्यानन्दमें आनंदित होना चौर्यानन्द रौद्र ध्यान है। (पद लोपन) अपने आत्मीक पदको लोप करनेवाले (विकह भाव संजुत्तो) स्त्री भोजनादि विकथा सम्बन्धी भावोंमें रमण करना, (मिथ्या असुह सुभावं) मिथ्यात्वसे भरा हुआ अशुद्ध स्वभाव रखना (विषयं सल्यं च) तथा विषय भोगोंकी चाह रूपी शल्य रखना, (रौद्र झानत्थं) चौर्यानन्द रौद्र ध्यानमें तिष्ठना है।

भावार्थ—दूसरेका माल हरनेमें, हरानेमें व चोरी हुई सुनकर आनन्द माननेमें रंजायमान होना स्तेयानन्द या चौर्यानन्द रौद्रध्यान है।

यहां गम्भीरतासे बताया है कि निज आत्माके शुद्ध पदमें रमण करना ही अचौर्यव्रत है, साधुपना है या साहूकारी है। जो अपने आत्माके पदकी तरफसे हट कर पर वस्तु या परभावको अपनाते हैं, वे ही चोर हैं व अपराधी हैं। वे स्त्री, भोजन, देश व राजा कथा सम्बन्धी भावोंमें रागी रहते हैं। संसारके प्रेम रूप अशुद्ध भावसे शुद्ध भावका लोप करते हैं। पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी चाह रूपी शल्यसे अपने आत्मानंदको लोप करते हैं। इसलिये वे चोर हैं और वे ही चौर्यानन्द रौद्रध्यानी महा अपराधी हैं।

पर भावोंको अपनाना ही चोरी है। यही बडा भारी अपराध है जिससे तीव्र कर्मोंका बंध होता है। समयसार कलशमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बद्ध्येतैवा पराधवान्। बद्ध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥ ७–९ ॥

भावार्थ—जो परद्रव्यको अपना मानता है वही अपराधी है व बंधको प्राप्त होता है। जो मुनि अपने आत्मद्रव्यमें संतोषी हैं वे संवर रूप हैं, वह निरपराधी है, वही बन्ध रहित है।

अबम्भ भाव जुत्तो, मिथ्या कुज्ञान असुह परिनम्य ।
चिंतंति विषय रागं, मन सहकारेन रौद्र नरयंमि ॥ ८४१ ॥

अन्वयार्थ—(अबंभ भाव जुत्तो) अब्रह्म भावमें लीन प्राणी (मिथ्या कुज्ञान असुह परिनम्य) मिथ्यादर्शन मिथ्या ज्ञान मिथ्या चारित्रमें परिणमन करके (विषय रागं चिंतंति) पांच इन्द्रियोंके पदार्थोंमें रागभावका ही चिंतवन करते हैं (मन सहकारेन रौद्र नरयंमि) यह मन सम्बन्धी विषयानंद रौद्रध्यान नरकगतिका कारण है।

भावार्थ—आत्मामें लीन भाव ब्रह्मभाव है, इस ब्रह्मभावको न पाकर संसारासक्त प्राणी मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र सम्बंधी अशुद्ध भावोंमें रहते हुए सदा ही मनसे पांच इंद्रियोंके भोगोंकी चिंता, धनादि संग्रहकी तीव्र लालसा करके परिग्रहानंद व विषयानन्द रौद्रध्यानमें फंसकर तीव्र कषायसे नरकायु बांध लेते हैं।

रौद्रध्यान सुभावं, नरयं तिरियं कुदेव दुह सहनं ।
अज्ञान मूढ भावं, रौद्र ज्ञानंमि नरय वीयंमि ॥ ८४२ ॥

अन्वयार्थ—(रौद्रध्यान सुभावं) जिनका स्वभाव चार प्रकार रौद्रध्यानमेंसे एकका व अनेकका पड जाता है वे (नरयं तिरियं कुदेव दुह सहनं) पाप बांधकर नरक, तिर्यंच अथवा भवनत्रिक देवोंमें हीन देव होकर दुःखोंको सहते हैं। (अज्ञान मूढ भावं) यह अज्ञान व मूर्खताका भरा भाव है (रौद्र ज्ञानंमि नरय वीयंमि) वास्तवमें रौद्रध्यान नरकका बीज है।

भावार्थ—रौद्रध्यानसे अति दुष्ट, हिंसक, परको पीडाकारी, विषयलम्पटी परिणाम होते हैं। परिणामोंकी तीव्रता मंदताके अनुसार कोई नरकायु, कोई तिर्यंच आयु, कोई हीन देवायु बांधकर नारकी या पशु या हीन जातिके भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवोंमें पैदा होकर शारीरिक व मानसिक कष्ट भोगते हैं। विषय वांछाके प्रेरे हुए ही हिंसानन्द आदि रौद्रध्यान करते हैं। वे प्राणी आत्मज्ञानसे विमुख अत्यन्त मूढ मिथ्याज्ञानी हैं। बहुधा रौद्रध्यानी नरक आयु बांधकर नरक जाते हैं। जिनको नरकोंके भयानक दुःखोंसे बचना हो उनको उचित है कि जिनधर्मको भलेप्रकार समझकर चारों ही प्रकारके रौद्रध्यानोंसे अपनेको बचावें।

रौद्र शुद्ध प्रयोजन ।

अप्पा अप्प सरूवं, कम्म निकन्दंति तिविह जोएन ।
ज्ञान सहाव स रौद्रं, मिथ्यामय कम्म निदले साहू ॥ ८४३ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा अप्प सरूवं) आत्मा आत्माके स्वभावमें रत होकर (तिविह जोएन कम्म निकन्दंति) मन वचन कायकी गुप्ति सहित होकर कर्मोंको नाश करते हैं (ज्ञान सहाव स रौद्रं साहू) ज्ञान स्वभावमई अपने रौद्रभावसे साधु (मिथ्यामय कम्म निदले) मिथ्यामई संसारके भ्रमणके कारण कर्मोंका नाश करते हैं यही शुद्ध रौद्रध्यान है।

भावार्थ—हिंसक भावोंको रौद्रध्यान कहते हैं। कर्मोंकी हिंसा करनेवाला भाव भी रौद्रध्यान है। यह शुद्ध रौद्रध्यान एक शुद्ध आत्मज्ञानमें परिणमन रूप आत्मामें तल्लीन भाव है। शुद्धोपयोगके द्वारा जली हुई वीतरागतामई अग्निसे साधुजन कर्मोंको विध्वंश कर डालते हैं और अपने आत्माको शुद्ध कर लेते हैं।

चार धर्मध्यान ।

आज्ञा अप्प सहावं, अप्पा परमप्प भाव संजुत्तं ।
जिनवयनं सद्दहनं, ज्ञान सहावेन अप्प संजुत्तं ॥ ८४४ ॥

अन्वयार्थ—(आज्ञा अप्प सहावं) आज्ञाविचय धर्मध्यान आत्माके स्वभावका ध्यान है (अप्पा परमप्प भाव संजुत्तं) आत्माको परमात्माके स्वभावमें जोडना ध्यान है (जिनवयनं सद्दहनं) वहां जिनेन्द्रके वचनोंका श्रद्धान रखना है (ज्ञान सहावेन अप्प संजुत्तं) ज्ञान स्वभावसे रहना ही आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

भावार्थ—जिनेन्द्रकी आज्ञाके अनुसार जीवादि तत्वोंका श्रद्धान करके व शुद्ध निश्चय नयसे अपने आत्माको परमात्माके समान ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमई जानकरके अपने स्वभावमें तिष्ठकर आत्मानुभव करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

अप्पा परमप्पानं, चेयन रूवेन धम्म झानत्थं ।

मल मुक्क दंसन धरं, ज्ञान झानेन धम्म सहकारं ॥ ८४५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप जानकर व (चेयन रूवेन धम्म झानत्थं) चेतनरूपमें रहकर धर्मध्यानमें तिष्ठना (मल मुक्क दंसन धरं) दोष रहित सम्यग्दर्शनको धरना (ज्ञान झानेन धम्म सहकारं) आत्मज्ञानका ध्यान करना धर्म सहित होनेसे धर्मध्यान है ।

भावार्थ—दूसरा धर्मध्यान अपायविचय है । इसमें यह विचारना चाहिये कि हमारे मिथ्यात्वका नाश व दूसरोंके मिथ्यात्वका नाश कैसे हो । यह विकल्परूप ध्यान है । इसीका निश्चल ध्यान यह है कि पचीस दोषोंको टालकर निश्चल शुद्ध सम्यग्दर्शनको रखते हुए अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें तन्मय होकर ध्यान करना अपायविचय धर्मध्यान है ।

विसुद्ध सुद्ध भावं, मिथ्या रागादि सयल विरयंमि ।

रयनत्तय ज्ञान सहावं, कम्मानि डहै धम्म झानत्थं ॥ ८४६ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या रागादि सयल विरयंमि) मिथ्या राग द्वेषादि सर्व विभावोंसे विरक्त होकर (विसुद्ध सुद्ध भावं) अति निर्मल वीतराग स्वभावमई (रयनत्तय ज्ञान सहावं) रत्नत्रय स्वरूप आत्मज्ञानके स्वभावमें रहकर (धम्म झानत्थं) धर्मध्यान करता हुआ (कम्मानि डहै) कर्मोंको जला देता है ।

भावार्थ—तीसरा विपाकविचय धर्मध्यान है। इसका व्यवहार स्वरूप यह है कि कर्मोंके फलको विचार कर दुःख सुखकी अवस्थामें समताभाव रखना । निश्चय स्वभाव यह है कि राग द्वेषादिको त्यागकर निश्चय रत्नत्रयमई आत्माके अति विशुद्ध स्वभावमें रमण करना-आत्मध्यानकी अग्निको जलाना, जिससे बहुतसे कर्म अविपाक अवस्थामें नाश होजावें । समताभावसे कर्मोंका फल भोग लेनेसे सविपाक निर्जरा होती है, नवीन बंध नहीं होता है। परंतु आत्मानुभव करनेसे कोटि भवोंके बन्धे कर्म झड जाते हैं ।

संस्थानं पंच सुभावं, चिंतइ वरज्ञान दंसनं सुद्धं ।

ज्ञान उवन्नं पिच्छदि, पदविंदं केवलं ज्ञानं ॥ ८४७ ॥

अन्वयार्थ—(संस्थानं पंच सुभावं) संस्थानविचय धर्मध्यान पांच परमेष्ठीके स्वभावोंको तथा (वर-ज्ञान सुद्ध दंसनं चिंतइ) शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शनका चिंतवन करता है। (ज्ञान उवलं पिच्छदि) आत्मज्ञानकी वृद्धिको अनुभव करता है (पदविंदं केवलं ज्ञानं) आत्माके स्वभावको अनुभव करते हुए केवलज्ञान प्राप्त होजाता है।

भावार्थ—संस्थानविचय धर्मध्यानका स्वरूप यह है कि तीन लोकका आकार चिंतवन किया जावे या आत्माका स्वरूप ध्यानमें लिया जावे। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पांच पापोंके द्योतक ॐ आदि मंत्रोंके द्वारा शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव धारी आत्माका अनुभव करना संस्थानविचय धर्मध्यान है। इसके द्वारा अवधिज्ञानादि प्राप्त होते २ केवलज्ञान भी झलक जाता है।

धम्मज्झानं झायदि, अविगत रूवेन दंसनं सुद्धं।
अप्पा परमानन्दं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ८४८ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मं ज्झानं अविगत रूवेन दंसनं सुद्धं झायदि) धर्मध्यान अमूर्तीक तथापि ज्ञानाकार शुद्ध सम्यग्दर्शनमई आत्माको ध्याता है (अप्पा परमानन्दं) जब आत्मा परमानन्दमें मग्न होजाता है तब (परमप्पा लहै निव्वानं) परमात्मा होकर निर्वाणको पालेता है।

भावार्थ—धर्मध्यान आत्माकी उन्नति करके श्रेणीके निकट पहुँचा देता है। आठवें गुणस्थानके नीचे तक धर्मध्यान है। इसी ध्यानके बलसे साधु अधःकरण लब्धिको सातिशय प्रमत्त गुणस्थानमें प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त पीछे अपूर्वकरण लब्धिको पाता हुआ आठवां गुणस्थानवाला होकर शुक्लध्यानको ध्याता है।

चार शुक्लध्यान या शून्य ध्यान।

गय संकप्प वियप्पं, अप्पा परमप्प अमल ज्ञानस्य।
विगतं अविगत रूवं, सुन्य सहावेन अप्प परमप्पं ॥ ८४९ ॥

अन्वयार्थ—(गय संकप्प वियप्पं) जहां संकल्प विकल्प नहीं रहे हैं (अप्पा परमप्प अमल ज्ञानस्य) आत्मा परमात्माके निर्मल ज्ञानमें लीन है (विगतं अविगत रूवं) जहां अमूर्तीक ज्ञानाकार आत्माका अनुभव

है (सुन्य सहावेन अप्प परमप्पं) शून्य अर्थात् रागादि विकल्पोंसे शून्य होकर आत्माका परमात्मारूप ध्यान ही प्रथम शुक्लध्यान है।

भावार्थ—प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार है। जहां अबुद्धिपूर्वक पूर्व अभ्यासके बलसे श्रुतके आलम्बन द्वारा योगसे योगांतर, शब्दसे शब्दांतर, ध्येय अर्थसे अर्थांतर पलटन हो तथा बुद्धिपूर्वक शुद्धोपयोगमें विना किसी विकल्पके लीनता हो सो पहला शुक्लध्यान है। मन, वचन, काय योगोंका पलटना, श्रुतके किसी एक शब्दसे दूसरे शब्दपर पलट जाना व आत्मा ध्येयसे किसी ज्ञान गुणपर चले जाना या किसी पर्यायपर चले जाना ऐसी पलटन होती है। यह ध्यान है तो परम विशुद्ध, संज्वलनका अति मंद उदय है। आत्मा अपने शुद्ध स्वभावमें एकतान होकर आत्मानन्दका भोग कर रहा है। यह ध्यान बारहवें गुणस्थानके प्रारम्भ तक रहता है। यही मोहका सर्वथा क्षय कर डालता है।

एकं जिनं सरूवं, मल मुक्कं अनंतदंसनं सुद्धं।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, ज्ञान सहावेन निव्वुए जंती ॥ ८५० ॥

अन्वयार्थ—(एकं जिनं सरूवं) जहां एक जिनेन्द्रके स्वभावमें लीनता है (मल मुक्कं अनंतदंसनं सुद्धं) दोष रहित परम वीतराग अनन्त क्षायिक सम्यग्दर्शनमें एकतानता है (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञान ज्ञान स्वरूपमें थम्भ गया है। ऐसा एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान है (ज्ञान सहावेन निव्वुए जंती) इस ज्ञान स्वभावमें ठहरनेसे निर्वाण होजाता है।

भावार्थ—दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्क अवीचार है। जहां किसी एक योग द्वारा व किसी एक शब्द द्वारा व किसी एक ध्येय द्वारा पलटन रहित स्वरूपमें एकाग्रता है। आत्मा परम क्षायिक निश्चय आत्मप्रतीति रूप भावमें जमा हुआ आपसे आपमें आप रूप होजाता है। इस निर्मल ध्यानका लाभ क्षीणमोह गुणस्थानमें होता है। इसके प्रतापसे ध्यानी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके जीवन्मुक्त अरहन्त परमात्मा होजाता है।

सूक्ष्म भाव स उत्तं, सूक्ष्मं प्रतिपात सूक्ष्मं चरनं।
सूक्ष्म धम्मज्झानं, ज्ञान सहावेन ज्ञान संजुत्तं ॥ ७५१ ॥

अन्वयार्थ—(सूक्षम भाव स उत्तं) सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान उसे कहा गया है जहां (सुक्ष्मं प्रतिपात) सूक्ष्म काय योग रह जाता है (सूक्षमं चरनं) जहां अति सूक्ष्म कायका हलन चलन है। (सूक्षम धम्मज्झानं) यहां अति सूक्ष्म स्वाभाविक ध्यान है (ज्ञान सहावेन ज्ञान संजुत्तं) यहां ज्ञान स्वभावमें ठहरना यही ध्यान है।

भावार्थ—तीसरा शुक्लध्यान सयोगकेवली जिन तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें होता है, जब काय योगका परिस्पंदन या हलन चलन रह जाता है। केवली भगवानका विहार आदि नहीं होता है। वे स्वरूपमें मग्न रहते हैं, कुछ ध्यान यहां करना नहीं पडता है। स्वाभाविक आत्म-तल्लीनता तो केवलज्ञानीके सदा रहती ही है।

पिरियो अप्प संजुत्तं, विप्रिय मुक्कस्य सुद्ध स सहावं।
ज्ञान ज्ञान संजुत्तं, अविगत रूवेन सिद्धि संपत्तं ॥ ८५२ ॥

अन्वयार्थ—(पिरियो अप्प संजुत्तं) जहां अत्यन्त प्रिय निज आत्मा है (विप्रिय मुक्कस्य सुद्ध स सहावं) सर्व अप्रिय जो आत्मासे परभाव हैं उनसे मुक्ति है, शुद्ध आत्मीक स्वभावमें लीनता है (ज्ञान ज्ञान संजुत्तं) निज ज्ञान व निजके ध्यान सहित है (अविगत रूवेन) निज ज्ञानाकार रूपसे (सिद्धि संपत्तं) जिसके द्वारा सिद्ध गति प्राप्त होती है, ऐसा चौथा शुक्लध्यान है।

भावार्थ—चौथा शुक्लध्यान व्युपरतक्रियानिवर्ति है। यह अयोग केवली जिनके चौदहवें गुणस्थानमें होता है जहां सर्व क्रियाओंसे निवृत्ति होजाती है, न श्वास चलता है न शरीरका कुछ भी सकम्प होता है। आत्मा आप आपमें लीन निश्चल रहता है। केवलज्ञान व केवल ध्यानका यह एक भाव है। इस ध्यानके अन्तर्मुहूर्त रहनेसे चार अघातीय कर्म, आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय क्षय हो जाते हैं और आत्मा सर्व पुद्गलके सम्बन्धसे छूटकर शुद्ध केवल आत्मारूप होकर जैसा था वैसा ही बिना संकोच विस्तारके ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकाग्र जाकर विराजमान होजाता है। इसीको सिद्ध परमात्मा कहते हैं, पुरुषाकार ज्ञानमई अमूर्तीक रूप रह जाता है।

ज्ञानं चौविहि उत्तं, विन्यानं जानंति सुद्ध स सहावं।
विन्यान ज्ञान सुद्धं, कम्म विमुक्कं लहै निव्वानं ॥ ८५३ ॥

अन्वयार्थ—(चौविहि झानं उत्तं) चार प्रकारके ध्यानका स्वरूप कहा गया (विज्ञानं जानंति सुद्ध स सहावं) भेदविज्ञान शुद्ध आत्माके स्वभावको पहचानता है (विज्ञान ज्ञान सुद्धं) भेदविज्ञानके द्वारा ज्ञान शुद्ध अनुभवमें आता है। (कम्म विमुक्कं लहै निव्वानं) इसी शुद्ध ज्ञानके अनुभवसे सर्व कर्मोंसे छूट कर निर्वाणको यह भव्य जीव प्राप्त करता है।

भावार्थ—आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल चार प्रकारका ध्यान कहा गया। इनमें आर्त, रौद्र छोड़ने योग्य हैं। तथा धर्म, शुक्ल ध्याने योग्य हैं। परसे मैं भिन्न हूं, मेरा स्वभाव परमात्मा रूप है ऐसा विवेक या भेदविज्ञान होनेसे आत्माका यथार्थ स्वभाव ज्ञानमें झलकता है। तब इसी आत्माके ध्यान करनेसे धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान प्राप्त होते हैं। शुक्लध्यानसे भव्य जीव सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

ध्यानका विशेष कथन।

आरति द्विविध सुभावं, आरति संसार कारनं निश्चे।
आरति कुज्ञान सुभावं, दंसन मोहंध आरति असुद्धं ॥ ८५४ ॥

अन्वयार्थ—(आरति दिविध सुभावं) आर्तध्यानका स्वभाव दुःखित भाव है, (आरति संसार कारनं निश्चे) यह आर्तध्यान निश्चयसे संसारका कारण है, (आरति कुज्ञान सुभावं) आर्तध्यानमें मिथ्या ज्ञान भरा है। (दंसन मोहंध आरति असुद्धं) मिथ्यात्वके उदयसे अन्ध प्राणी अशुद्ध दुःखित परिणाम करके आर्तध्यान किया करता है।

भावार्थ—'ऋतं दुःखं तत्र भवं आर्तं' (सर्वार्थसिद्धि) अर्थात् जो दुःख या पीडा या शोक या चिंताके कारणसे पैदा हो वह आर्तध्यान है। इससे घोर असाता वेदनीयका बन्ध होजाता है। तथा जो मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी है वही पर पदार्थको अपनाता है, वही इष्टके वियोगमें शोक मानेगा, वही अनिष्टके सम्बन्धमें दुःख करेगा, वही शरीरकी पीडासे चिंतित होगा, वही आगामी भोगोंके लिये आकुलित होगा। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पर पदार्थसे निर्मोही है। शरीरसे भी निस्पृही है। भोगोंसे उदास है। वह किसी प्रकारके शुभ या अशुभ संयोगमें कर्मके उदयको विचार करके समभाव रखेगा।

वह अतीन्द्रिय आनन्दका प्रेमी है, वह विषयोंको विषवत् जानता है वह कभी निदान नहीं, करेगा। यद्यपि आर्तध्यान तत्वार्थसूत्रमें छठे प्रमत्त विरत तक बताया है तथापि उसकी मुख्यता मिथ्यादृष्टीके ही है। सम्यग्दृष्टीके चारित्र मोहके उदयसे कभी कोई तरंगसी आसक्ती है, इसलिये कहा है।

तंबोलं तवजुत्तं, आरति सभाव सयल परिनामो।
कुसुमं कुज्ञान जुत्तं, ज्ञान सहावेन कदापि उववन्नं ॥ ८५५ ॥
लेपं लिपत सुभावं, लिप्तं कम्मान राग विषयं च।
भूषन पुन्य सहावं, सल्यं संजुत्त आरति भनियं ॥ ८५६ ॥

अन्वयार्थ—(तंबोलं तव जुत्तं) तप करते हुए आर्तध्यान होना, पान खानेके समान मिश्रित स्वादको पाना है, (आरति संभाव सयल परिनामो) उस तपमें आर्तध्यानको लिये हुए सर्व परिणाम होते हैं। (कुसमं कुज्ञान जुत्तं) उसमें मिथ्या ज्ञानको पुण्यकी गन्ध आती है, (ज्ञान सहावेन कदापि उववन्नं) ज्ञान स्वभावमें चलनेवालेके भी कदाचित ऐसा आर्तध्यान होसक्ता है, (लेपं लिपत सुभावं) आर्तध्यानको लेप भी कह सक्ते हैं। क्योंकि इसका लिपना स्वभाव है, (राग विषयं च कम्मान लिप्तं) राग विषयमें अन्ध होनेके कारण इससे कर्मोंका बन्ध होता है, (भूषन पुन्य सहावं) पुण्यकी बांछा रूप निदान एक आभूषण है, (सल्य संजुत्तं आरति भनियं) वहां पुण्यकी वांछाकी शल्य सहित आर्तध्यान कहा गया है।

भावार्थ—यहां आर्तध्यानके लिये चार दृष्टांत दिये हैं। पान खानेका, पुष्पकी गन्धका, लेपका तथा आभूषणका। जिनका भाव जो समझमें आया सो लिखा जाता है। विशेष ज्ञानी विचार लेवें। तांबूलमें पानपत्ता, कत्था, चूना, सुपारी, इलायची आदिका मिला हुआ स्वाद आता है वैसे ही जो किसी शोकके कारण व घरमें कलहके कारण व दारिद्रके दुःखके कारण या आगामी भोगोंकी वांछाके कारण तपस्वी होकर तप करते हैं वे धर्मका चिंतवन करते हुए भी आर्तध्यानके परिणामोंसे मिले हुए रहते हैं। यद्यपि वे शास्त्रज्ञानी हैं व तत्वके ज्ञाता हैं, तथापि उनके भीतर यदि किसी प्रकारकी चिन्ता घर कर रही हो तो वह पुण्यकी गन्धके समान उनके भावोंमें आया करती है। इस आर्तध्यानकी गन्धसे व आर्तध्यानके मिले हुए भावसे कर्मोंका लेप होता है। अशुभ

कर्मोंका बन्ध होता है, पुण्यके हाथ पापका भी बन्ध होता है। क्योंकि भीतर विषयोंका राग है या दुःखित परिणाम संबंधी दोष है। जो यह वांछा करें कि हमें तपके द्वारा पुन्य बंध हो जिससे हम मोक्षके कारण वज्रवृषभनाराच संहननादि प्राप्त करें और शीघ्र मोक्ष जावें। यह एक प्रशंनीय या शोभनीय निदान है। तथापि उस तपस्वीके लिये आभूषण पहननेके समान एक परिग्रह है। इसलिये उचित नहीं है। सम्यग्दृष्टी तत्वज्ञानी पुन्यकी भी वांछा नहीं करते हैं। वे केवल आत्मानन्दके रसमें मग्न हो धर्मध्यान करते हैं। उनको मोक्षकी भी वांछा नहीं होती है क्योंकि वे मोक्षको भी अपने पास समझते हैं। वे निर्विकल्प होकर शुद्ध भावसे ध्यान करके आर्तध्यानकी गंधसे भी अलिप्त रहते हैं।

रौद्रं रौद्र स दिट्ठं, रौद्रं परिनाम कठिन संजुत्तं।
असत्त्य अनृत भावं, उदमाद परमाद रौद्र ज्ञानत्थं ॥ ८५७ ॥

अन्वयार्थ—(रौद्रं रौद्र स दिट्ठं) रौद्रध्यान वह है जहां दुष्ट परिणाम देखे जावें (रौद्रं परिनाम कठिन संजुत्तं) कठोर परिणामोंको रौद्रध्यान कहते हैं (असत्त्य अनृत भावं) जहां मिथ्या श्रद्धान व मिथ्याज्ञान सहित भाव हों (उदमाद परमाद रौद्र ज्ञानत्थं) रौद्रध्यानीके मनमें घवडाहट तथा असावधानता रहती है।

भावार्थ—"रुद्रः क्रूराशयः यस्तस्य कर्म तत्र भवं वा रौद्रम्" (सर्वार्थसिद्धि) जो ध्यान दुष्ट आशय या दुष्ट आशयसे किये हुए कार्यके द्वारा हो वह रौद्रध्यान है। इसमें कठोर परिणाम होते हैं। रौद्रध्यानी मिथ्या संसारमें लिप्त होता हुआ अपने सांसारिक प्रयोजनके वश हो हिंसा करनेमें, असत्य बोलनेमें, चोरी करनेमें, परिग्रह बढानेमें आनन्द मानता है। परको पीडा देकर भी धनादिका संचय करना चाहता है। रौद्रध्यानीके मनमें सदा आकुलता रहती है कि जल्दी ही अपना स्वार्थ साधन करलूं। उसके कर्तव्य अकर्तव्य, न्याय अन्यायके विचारकी सावधानी नहीं होती है। यह रौद्रध्यान अधिकतर मिथ्यादृष्टीके होता है। सिद्धांतमें पांचवें गुणस्थानतक इसलिये कहा है कि वहांतक परिग्रहका सम्बन्ध है। चारित्र मोहके तीव्र उदयसे कभी कभी कुछ कालके लिये ऐसा दुष्ट ध्यान होजाना सम्भव है।

बन्धं असुद्ध बन्धं, असुहं भावं च असुह परिनामं।
बन्धंति विविह भावं, बन्धं कम्मान तिविह संजुत्तं ॥ ८५८ ॥

अन्वयार्थ—(बन्धं असुद्ध बन्धं) यह रौद्रध्यानी अशुद्ध भावोंके बन्धनमें पडा रहता है (असुहं भावं च असुह परिनामं) इसके अशुभ भाव व अशुभ ही वचन तथा कायका परिणमन होता है (विविह भावं बन्धंति) यह रौद्रध्यानी नानाप्रकारके दुष्ट कषायके भावोंको किया करता है (तिविह संजुत्तं कम्मान बन्धं) मन, वचन, कायकी दुष्टताके कारण कर्मोंको बांधता है।

भावार्थ—हिंसा आदि पापोंमें फंसा हुआ रौद्रध्यानी दूसरोंको दुःख देनेमें कुछ भी ग्लानि नहीं करता है। उसका आशय अपना कषाय पोषण है, दूसरेके दुःखोंकी परवाह उसको नहीं होती है। उसकी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति कुटिल हिंसात्मक होती है। संसारासक्त रौद्रध्यानी घोर अशुभ भावोंसे कृष्ण लेश्याके होते हुए सातवें नर्क तककी आयु बांध लेता है।

जदनंति सुद्धभावं, अहिओ सुह कम्म सयल भावं च।
षट्काई जीवानं, विराहनं विदारनं भनियं ॥ ८५९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धभावं जदनंति) रौद्रध्यानीके शुद्ध भावोंका नाश होजाता है (सयल भावं च सुह कम्म अहियो) मलीन भावोंके होते हुए उसके शुभ कर्म नष्ट होजाता है (षट्काई जीवानं विराहनं विदारनं भनियं) उसके छःकायके प्राणियोंका नाश व छेदन भेदन होता रहता है, ऐसा कहा गया है।

भावार्थ—रौद्रध्यानीके धर्मध्यान होना असम्भव है। उसके दुष्ट आशयके होते हुए उससे दान पूजा जप तपादि शुभ कार्य शुभ परिणामोंसे नहीं होसक्ते हैं। यदि कदाचित् शुभ काम करना भी है तो मलीन आशयसे—किसीकी हानिके लिये व परिग्रह बढानेके लिये करता है। उसके व्यवहारमें दया नहीं होती है। वह निरर्थक प्रवृत्ति करता हुआ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस छः प्रकारके प्राणियोंका घात करता है, पशुओंपर भारी बोझा लादकर सताता है, मानवोंको ठगता है, पशुबलि कर देता है, स्वार्थवश मनुष्योंकी भी हत्या कर डालता है।

मारन जीव अभावं, अजीव असुद्धस्य सहाव संजुत्तं।
रौद्रभाव स सहावं, रौद्रध्यानं च संजदो भनियं ॥ ८६० ॥

अन्वयार्थ—(मारन जीव अभावं) जहां प्राणियोंके वधका तो अभाव है परन्तु (अजीव असुद्धस्य भाव संजुत्तं) अशुद्ध शरीर व धन, व स्त्री आदिकी ममतामें फंसा हुआ भाव है (रौद्रभाव स सहावं) वहां भी रौद्रध्यान सहित आत्माका परिणाम होता है (रौद्र झानं च संजदो भनियं) ऐसा रौद्रध्यान संयमीके भी होना सम्भव है।

भावार्थ—कभी कभी व्रती श्रावकोंके भी रौद्रध्यान होजाता है। यद्यपि वे हिंसासे विरक्त हैं परन्तु उनका राग स्त्रीके, व धनके व कुटुम्ब परिवारके मोहमें चारित्र मोहके उदयसे ऐसा उलझ जाता है कि वे परिग्रहानन्द या विषयानन्द रौद्रध्यानमें लिप्त होकर पापका बन्ध करते हैं। कभी २ अन्यायके दमन करनेके लिये, न्यायके प्रचार करनेके लिये उनको हिंसानन्दी रौद्रध्यान कुछ अंशोंमें हो जाता है। वे अन्यायीके विध्वंशमें प्रयत्नशील होते हैं। जैसे श्री रामचन्द्रजीने अन्यायी रावणको शिक्षा देकर ही चैन ली, धर्मात्मा सीताजीकी रक्षा करी। युद्धादि करते हुए श्रावक गृहस्थको हिंसामई भावोंका होजाना संभव है। यहां संकल्पी हिंसा नहीं है, किन्तु आरम्भी हिंसा है। आशय शुभ है तथापि कषायकी प्रबलतासे व शांतभाव न होनेसे रौद्रध्यान ही कहा जायगा इसी लिये देशविरत पांचवें गुणस्थानतक रौद्रध्यान बताया है।

चरयंति धम्म झानं, चेयन रूवेन मनुव संवरनं।
सुद्ध सहावं उत्तं, चेयन चेयंति धम्म झानत्थं ॥ ८६१ ॥

अन्वयार्थ—(धम्म झानं चरयंति) जो धर्मध्यान चरते हैं वे (चेयन रूवेन मनुव संवरनं) चैतन्य स्वभावमें तिष्ठ कर मनको रोकते हैं (सुद्ध सहावं उत्तं) धर्मध्यानीका स्वभाव शुद्ध कहा गया है (धम्म झानत्थं चेयन चेयंति) धर्मध्यानी आतमाका ही अनुभव करते हैं।

भावार्थ—"धर्मादनपेतं धर्म्यम्, इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः" (सर्वार्थसिद्धि) अर्थात् धर्म सहित ध्यानको धर्मध्यान कहते हैं। जो इष्ट जो मोक्ष उसमें धारण करे वह धर्म है। इसलिये जहां मनको

निरोध कर अपने आत्माके स्वभावका अनुभव करते हुए शुद्ध भावोंमें लीन होना सो धर्मध्यान है। यह निर्विकल्प धर्मध्यान है। सविकल्प धर्मध्यान शुद्ध भावोंके आशयसे जप, तप, पूजा, पाठ, स्वाध्याय, दान, श्रावक व मुनिव्रतका आचरण, दशलाक्षणी धर्म व बारह भावनाओंका चिंतवन, आपा परका विवेक, परोपकार आदि हैं।

पदस्तं पद विंदन्तो, अक्षर स्वर विंजनस्य स सरूवं।
पदं पदार्थं सुद्धं, अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं ॥ ८६२ ॥
सुध सरूव चिंतवनं, असुहं मिच्छात राग विरयंमि।
विषयं तिसल्य तिक्तं, पदविंद सुद्ध निम्मल स सरूवं ॥ ८६३ ॥

अन्वयार्थ—(पदस्तं पद विंदन्तो) पदस्थ ध्यान वह है जहां पदके द्वारा अर्हंतादि पदोंका अनुभव किया जावे (अक्षर स्वर विंजनस्य स सरूवं) अक्षर स्वर व्यंजनोंके द्वारा आत्माके स्वरूपका चिन्तवन किया जावे (सुद्धं पदार्थ पदं) शुद्ध आत्मा पदार्थ ही पद है उसको विचारा जावे (अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं) आत्माको परमात्माके समान वीतराग व कर्म रहित अनुभव किया जावे (सुध सरूव चिन्तवनं) जहां शुद्ध आत्म-स्वरूपका चिंतवन किया जावे (असुहं मिच्छात राग विरयंमि) अशुद्ध मिथ्यात्वका राग छोड दिया जावे (विषयं तिसल्य तिक्तं) इन्द्रियोंके विषयोंकी चाह व माया मिथ्या निदान तीन ही शल्योंको छोडा जावे (सुद्ध निम्मल स सरूवं पदविंद) शुद्ध निर्मल आत्म-स्वरूप रूपी पदका अनुभव किया जावे।

भावार्थ—यहां धर्मध्यानमें पदस्थ आदि चार ध्यानका वर्णन है जिनका कुछ स्वरूप हम ३६९ गाथाके भावार्थमें दिखा चुके हैं। ॐ, हँ, अर्हं, ह्रीं, श्रीं इत्यादि अनेक पदोंको नाशिकाके अग्र भागमें हृदय कमलमें भौंहोंके बीचमें, मस्तकपर, नाभिकमलमें स्थापित करके चमकता हुआ देखे, कभी भी पांच परमेष्ठीके गुणोंको व कभी २ अपने आत्माके शुद्ध गुणोंको विचारते हुए अपने स्वरूपमें लय होजावे, जब ध्यान हटे तब इन अक्षरोंपर चित्त जमादे या गुणोंका विचार करने लग जावे। इसका विशेष स्वरूप श्री ज्ञानार्णव ग्रन्थसे जानना योग्य है।

पिंडं ज्ञान सपिंडं, ज्ञान सहावेन पिंड सद्भावं ।
तिक्कंति असुह पिंडं, अनृत असरन असत्य तिक्कंति ॥ ८६५ ॥
पिंड सरूवं सुद्धं, रूवं संजुत्त पिंड विरयंमि ।
ज्ञानमयो पिंडस्थं, श्रुत सास्वतेन पिंड चिंतनं अमलं ॥ ८६६ ॥

अन्वयार्थ—(पिंडं ज्ञान सपिंडं) ज्ञानमई पिंड स्वरूप आत्मा इस शरीर सहित है, (ज्ञान सहावेन पिंड सद्भावं) यह आत्मा ज्ञान स्वभाव होकरके भी अनेक प्रदेशोंका एक अखण्ड पिंड अस्तिकाय है, (तिक्कंति असुह पिंड) इसके अशुद्ध रागादिका व कर्मादिका पिंड नहीं है, (अनृत असरन असत्य तिक्कंति) इसने मिथ्या स्वरूप व शरण रहित सर्व जगतकी क्षणिक पर्यायोंका ममत्व त्याग दिया है, (पिंड सरूवं सुद्धं) यह आत्मा सर्वांग शुद्ध है, (रूवं संजुत्त पिंड विरयंमि) रूपादि सहित पिंडसे भिन्न है, (ज्ञानमयो पिंडस्थं) ज्ञानमई आत्मा इस पिंड अर्थात् शरीरमें विराजित है, (श्रुत सास्वतेन पिंड चितनं अमलं) वही सत्य नित्य एक अखण्ड पदार्थ है-सर्व मल रहित है, उसका ध्यान करना पिंडस्थ ध्यान है ।

भावार्थ—यहां ग्रन्थकर्ताने पिंडस्थ शब्दके कई अर्थ कहकर आत्माका ध्यान सिद्ध किया है। प्रथम अर्थ यह है कि पिंड नाम शरीरका है । इस शरीरमें विराजित आत्माका ध्यान पिंडस्थ ध्यान है । दूसरा अर्थ है कि यह आत्मा असंख्यात ज्ञानमई प्रदेशोंका एक अखण्ड पिण्ड है। इसका ध्यान पिण्डस्थ ध्यान है । तीसरा अर्थ यह है कि यह अस्तिकाय रूप आत्मा सर्व भावकर्म व द्रव्यकर्म व नोकर्मके पिण्डसे रहित है, न इसमें कोई भी वैभाविक नाशवन्त चार गति रूप पर्यायें व औदयिक, क्षयोपशम, औपशमिक भावकी क्षणिक पर्यायें हैं। यह आत्मा सर्व स्पर्श, रस, गन्ध वर्णमई पुद्गलोंसे भिन्न एक सत्य, अविनाशी, अखण्ड, निर्मल, ज्ञाताद्दष्टा पदार्थ है । इसीका एकाग्र होकर ध्यान करना पिंडस्थ ध्यान है । इस पिण्डस्थ ध्यानमें पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल तथा तत्वरूपवती पांच धारणाओंका विचार किया जाता है, जिनका संक्षेप स्वरूप गाथा ५६९ के भावार्थमें है । विशेष ज्ञानार्णव ग्रन्थसे जानना योग्य है ।

रूवस्तं चेयन रूवं, चिद्रूपं विमल निम्मलं सुद्धं ।
वर्न रूव विरयंतो, स सरीरं रूव चिंतनं सुद्धं ॥ ८६६ ॥

रूवं रूव स सुद्धं, असुह परिनाम सयल विरयंतो ।
सुद्धं सरूवं पिच्छदि, रूवस्तं विमल निम्मलं सुद्धं ॥ ८६७ ॥

अन्वयार्थ—(रूवस्तं चेयन रूवं) रूपस्थ ध्यानमें चैतन्य स्वरूपका ध्यान है (चिद्रूपं विमल निम्मलं सुद्धं) जो चेतना स्वरूप, भाव कर्म, द्रव्य कर्म व नोकर्म रहित शुद्ध है (वर्न रूव विरयन्तो) जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शमई मूर्तिसे रहित है (स सरीरं रूव चिंतनं सुद्धं) अर्हतके शरीरमें विराजित शुद्धात्माका ऐसा चिंतवन करना चाहिये (रूवं रूव ससुद्धं) उस शुद्धात्माका रूप परम शुद्ध स्वरूप है (असुह परिनाम सयल विरयन्तो) उसमें सर्व अशुद्ध भावोंकी शून्यता है (सुद्धं सरूवं पिच्छदि) ऐसे शुद्ध आत्म-स्वरूपको जो देखता है वह (रूवस्तं विमल निम्मलं सुद्धं) अपने स्वरूपमें स्थित निरंजन निर्विकार शुद्ध आत्माको अनुभव करता हुआ रूपस्थ ध्यानका धारी है ।

भावार्थ—रूपस्थ ध्यानमें श्री अर्हंत परमेष्ठीके ध्यान द्वारा अपने शुद्धात्माका ध्यान है। ध्याता अपने भावोंमें समवसरणमें स्थित श्री अर्हंत परमेष्ठीको अन्तरीक्ष सिंहासनपर विराजित देखता है, जो पद्मासन ध्यानाकार हैं। उनकी शांत मुद्रा परम आकर्षक है, फिर उनके शरीरके भीतर जो आत्मा विराजित है उधर लक्ष्य लेजाकर देखता है कि अर्हंतका आत्मा घाति कर्म रहित है। रागादि विकारोंसे रहित है। आत्मामें शरीरका भी कोई स्वाभाविक संयोग नहीं है। आत्मा स्पर्शादि गुणोंसे रहित अमूर्तीक है। सर्व संकल्प विकल्प रहित है, परमानन्द निमग्न है। इस तरह देखकर फिर अपने आत्माको भी निश्चयसे उसी स्वरूप देखकर अपने निर्विकार शुद्ध आत्माका ध्यान करता है यही रूपस्थ ध्यान है ।

रूवातीत स उत्तं, तिक्तं रूवेन विगत रूवं च ।
अविगत परमानन्दं, विगतं संसार सरनि मोहंधं ॥ ८६८ ॥

गय संकप्प वियप्पं, मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि ।
चेयन सहाव सुद्धं, रूवातीतं च धम्म ध्यान स सहावं ॥८६९॥

अन्वयार्थ—(रूवातीत स उत्तं) रूपातीत ध्यान वह कहा गया है जहां सिद्धात्माका ध्यान किया जावे जो (तिक्तं रूवेन विगत रूवं च) शरीरादि व कर्मादि रूपी पुद्गलको त्याग कर चुके हैं व स्वयं अमूर्तीक हैं (अविगत परमानन्दं) जो परमानन्दसे कभी रहित नहीं होते हैं (विगत संसार सरनि मोहंधं) जहां संसारमें भ्रमणका कारण कोई मोहांधपना नहीं है (गय संकप्प वियप्पं) जहां कोई संकल्प विकल्प नहीं है (मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि) वहां सर्व मिथ्यात्व व अज्ञानसे शून्यता है (चेयन सहाव सुद्धं) जहां एक शुद्ध चेतन स्वभाव है वही (रूवातीतं च धम्म ध्यान स सहावं) रूपातीत धर्म-ध्यान अपना ही स्वभाव है ।

भावार्थ—सिद्ध भगवानके स्वरूपका विचार करके उनके समान अपने आत्माको ध्याना रूपातीत धर्मध्यान है । अरहन्त भगवान जब शरीर सहित होनेसे रूपस्थ हैं तब सिद्ध भगवान शरीर रहित होनेसे रूपातीत हैं । वे सर्व सांसारिक भावोंसे रहित, कर्मकलंकसे रहित, निर्विकार परम शुद्ध निर्विकल्प आत्मसमाधिमें लीन शुद्ध ज्ञानमई व आनन्दमई परमात्मा हैं, वे पुरुषाकार लोकाग्रस्थित हैं, निरन्तर आत्मानन्दका भोग कर रहे हैं, उनके समान निश्चय नयसे अपने आत्माको विचारकर ध्याना रूपातीत धर्मध्यान है ।

सून्यं सुद्ध सहावं, सून्यं संसार सरनि मिच्छातं ।
विषय रागमइ सून्यं, अप्पा परमप्प भाव निम्मलयं ॥ ८७० ॥

अन्वयार्थ—(सून्यं सुद्ध सहावं) शून्य या शुक्लध्यान शुद्ध स्वभावरूप है (संसार सरनि मिच्छातं सुन्यं) उसमें संसारका भ्रमण करानेवाला मिथ्यात्व भाव नहीं है (रागमई विषय सून्यं) तथा उसमें राग द्वेषमय कोई विषय नहीं है (अप्पा परमप्प भाव निम्मलयं) वहां आत्मा परमात्मा रूप परम शुद्ध भावधारी झलक रहा है ।

भावार्थ—शून्य ध्यानको शुक्लध्यान भी कहते हैं क्योंकि वहां बुद्धिपूर्वक रागभावकी शून्यता

है। दसवें गुणस्थान तक इतना मन्द कषायका उदय है कि ध्याताके ध्यानमें कषायकी मलीनता नहीं झलकती है। ध्याता एक निर्विकल्प शुद्धोपयोगमें लीन रहता है। ग्यारहवेंसे चौदहवें तक तो कषायोंका उदय ही नहीं है। परमात्माका जो कुछ शुद्ध स्वभाव है वही इस ध्यानीके ध्यानमें आरहा है। यहां शुक्ललेश्या ही होती है। यह धर्मध्यानकी अपेक्षा अधिक शुद्ध है। धर्मध्यान तो सातवें अप्रमत्तविरत गुणस्थान तक ही होता है। यह आठवें अपूर्वकरणसे प्रारम्भ होता है। यह शुक्लध्यान ही परम अद्वैत आत्मध्यान है, यही घातीय कर्मोंका नाशक है।

आज्ञा आकीर्णत्वं, अनृत तिक्कंति अशुद्ध परिणामं।
आज्ञा सुद्ध सहावं, जिन उवएस विमल निम्मलं भावं ॥ ८७१ ॥

अन्वयार्थ—(आज्ञा आकीर्णत्वं) जहां जिनेंद्रकी आज्ञानुसार ज्ञान फैला हुआ है, (अनृत अशुद्ध परिणामं तिक्कंति) मिथ्या व अशुद्ध परिणामोंका त्याग है, (आज्ञा सुद्ध सहावं) आज्ञानुसार शुद्ध आत्म स्वभावका जहां अनुभव है, (जिन उवएस विमल निम्मलं भावं) वह जिनेन्द्रके द्वारा उपदेशित अति शुद्ध भाव रूप आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

भावार्थ—यहां फिर आज्ञाविचय धर्मध्यानकी अपेक्षा उपदेश है कि श्री जिनेन्द्र भगवानके उपदेशके अनुसार तत्वज्ञानको प्राप्त कर व राग, द्वेष, मोहको त्यागकर शुद्ध आत्माके स्वरूका जो ध्यान है, वही आज्ञा विचय धर्म ध्यान है।

अपायं परमं ज्ञानं, अप्पानं परम सुद्ध सद्‌भावं।
विरयं मूढ सुभावं, सुद्धं स सरूव निम्मलं सुद्धं ॥ ८७२ ॥

अन्वयार्थ—(अपायं परमं ज्ञानं) अपाय अर्थात् संसारका नाशक आत्माका उत्तम ज्ञान है, (अप्पानं परम सुद्ध सदभावं) अपने आपको परम शुद्ध सत्ता रूप विचार करना, (मूढ सुभावं विरयं) मिथ्यात्व भावसे विरक्त होना, (सुद्धं स सरूप निम्मलं सुद्धं) कर्मांजन रहित परम निर्मल शुद्ध अपने स्वरूपका ध्यान करना अपायविचय धर्मध्यान है।

भावार्थ—राग, द्वेष, मोहसे रहित अपने शुद्ध स्वभावका ध्यान ही वास्तवमें अपायविचय धर्मध्यान है। इसीसे संसारका नाश होता है।

विचयं विमल सुहावं, विमल ज्ञानेन केवलं निश्चै ।
केवल दंसनं सुद्धं, अप्पा परमप्प जंति निव्वानं ॥ ८७३ ॥

अन्वयार्थ—(विमल सहावं विचयं) निर्मल आत्मस्वभावका विचारना विचय धर्मध्यान है, (विमल ज्ञानेन केवलं निश्चै) निर्मल ज्ञानसे केवल आत्माका निश्चय करके (केवल सुद्धं दंसनं) निश्चय शुद्ध सम्यक्दर्शनको धार कर (अप्पा परमप्प) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करनेवाला (निव्वानं जंति) निर्वाणको जाता है ।

भावार्थ—सर्वार्थसिद्धिमें विचय विवेक व विचारनेको कहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि तारणस्वामीने विचय धर्मध्यानकी अपेक्षा यहां गाथामें विचार किया है। भेदविज्ञानके द्वारा अपने आत्माको रागादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म; शरीरादि नोकर्मसे भिन्न विचार करके अपने शुद्ध स्वरूपकी प्रतीति सहित निज आत्माका अनुभव करना विचय धर्मध्यान है। यह निर्वाणका उपाय है ।

धम्म रयन संजुत्तं, धम्मं धरयंति अमल सहकारं ।
ज्ञानं ज्ञान सहावं, परमप्पा परम जोएहिं ॥ ८७४ ॥

अन्वयार्थ—(रयन धम्म संजुत्तं) रत्नत्रय धर्म सहित (अमल धम्मं सहकारं धरयंति) जो निर्मल ध्यानको सहकारी जानकर धारण करते हैं (परम जोएहिं) ऐसे परम योगियोंके द्वारा (परमप्पा ज्ञान सहावं ज्ञानं) अपना आत्मा परमात्मारूप ज्ञान स्वभावी अनुभव करने योग्य है ।

भावार्थ—इस गाथामें ध्यानका सार बता दिया है कि जो मोक्षको साधन करना चाहें ऐसे योगीश्वरोंको सर्व चिंता छोडकर तथा निर्विकल्प होकर अपने ही आत्माको परमात्मारूप निश्चय करके उसे ज्ञानानन्दमय वीतरागरूप ध्याना चाहिये। यही वास्तवमें धर्मध्यान है व यही शुक्लध्यान है।

पाँच प्रकार सम्यक्दर्शन ।

आज्ञा सम्यक्त ।

आज्ञा समय जिनुत्तं, जिन दिट्ठं परम केवलं ज्ञानं ।
ज्ञान दिस्टि उवएसं, निश्चय रूवेन विमलज्ञान सद्दहनं ॥ ८७५ ॥

अन्वयार्थ—(जिनुत्तं आज्ञा समय) जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहा हुआ उपदेश सो ही आगम है (जिन परम केवलं ज्ञानं दिट्ठं) जिसको जिनेन्द्रने परम केवलज्ञानके द्वारा देखा था (ज्ञान दिस्टि उवएसं) ज्ञान दृष्टिसे उस उपदेशको ग्रहण करना फिर (निश्चय रूवेन विमलज्ञान सद्दहनं) निश्चयसे अपने निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्माका श्रद्धान करना आज्ञा सम्यक्त है।

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनिसे जो उपदेश प्रगट हुआ है। तदनुसार गणधरोंने द्वादशांग वाणीकी रचना की है उसीके अनुसार परम्परागत आचार्योंने जैन शास्त्र लिखे हैं। उन शास्त्रोंके द्वारा सात तत्वोंका यथार्थ स्वरूप समझकर व्यवहार सम्यक्तके द्वारा फिर आत्म-प्रतीति-रूप निश्चय सम्यक्तको प्राप्त करना आज्ञा सम्यक्त है।

जिन उत्तं अप्पानं, मिच्छा भावं च तिक्त कुज्ञानं ।
उत्तं चेयन भावं, विज्ञान अप्प सुद्ध सहकारं ॥ ८७६ ॥
आज्ञा सुद्ध सरूवं, सुद्धं देवं च सुद्ध गुरु धम्मं ।
मिच्छा अनृत तिक्तं तं, आज्ञा सम्मत्त निम्मलं भावं ॥ ८७७ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं अप्पानं) जिनेन्द्रके कहे प्रमाण अपने आत्माको जाने (मिच्छा भावं च कुज्ञानं तिक्त) मिथ्यात्व व मिथ्याज्ञानको छोड़कर (चेयन भावं) चैतन्यका जो परिणाम है (विज्ञान) उसे भेदविज्ञानसे अपना जाने। यही श्रद्धान (सुद्ध अप्प सहकारं) शुद्धात्माका साधक है (आज्ञा सुद्ध सरूवं) जिनेन्द्रकी आज्ञानुसार शुद्ध स्वरूपको पहचाने (सुद्धं देवं च सुद्ध गुरु धम्मं च) निर्दोष वीतराग देवको

देव, परिग्रह रहित निर्ग्रंथको गुरु व वीतराग विज्ञानमई धर्मको यथार्थ जाने (मिच्छा अनृत तिक्तं तं) मिथ्या भाव व असत्य ज्ञानको छोड देवें (निम्मलं भावं) अपने श्रद्धानको निर्मल रक्खे सो ही (आज्ञा सम्मत्त) आज्ञा सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—सच्चे देव गुरु धर्मका श्रद्धान करे। रागी द्वेषी देव, परिग्रहधारी गुरु, हिंसामय व सराग भावरूप धर्मको यथार्थ देव, गुरु, धर्म न माने। आत्माके शुद्ध ज्ञाता दृष्टा आनन्दमई स्वरूपको पहचाने। संसारको असार मिथ्या व क्षणभंगुर जाने। आत्मानन्दको ग्रहण योग्य व विषयसुखको त्यागने योग्य जाने। भेदविज्ञानके बलसे भाव कर्म, द्रव्य कर्म, नोकर्मको भिन्न व आत्माको भिन्न जाने। निज स्वरूपकी दृढ प्रतीति लावे सो आज्ञा सम्यक्त है। यहां आज्ञानुसार तत्वोंके ऊपर श्रद्धा हुई है इस अपेक्षासे इस सम्यक्तको आज्ञा सम्यक्त कहते हैं। वास्तवमें सम्यक्त तो एक आत्माका अनिर्वचनीय गुण है। तथा एक ही प्रकार है। इसको किसी अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त भी कह सक्ते हैं। क्योंकि यहां देव, गुरु, धर्मका व सात तत्वोंका सविकल्प श्रद्धानकी मुख्यता है। यही निश्चय सम्यक्तका कारण है।

वेदक वेद संजुत्तं, वेद वेदांत वेदतो नित्यं।
अप्पा पर वुज्झंतो, परचवे वि अप्प सुद्ध सद्भावं ॥ ८७८ ॥
पदविंजन विंदंतो, असरन संसार सयल दोस विवरीदो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, अप्पा परमप्प निव्वुए जंति ॥ ८७९ ॥

अन्वयार्थ—(वेदक वेद संजुत्तं) वेदक सम्यक्ती वह है जो आत्मज्ञान सहित हो, (नित्यं वेद वेदांत वेदतो) जो सदा द्वादशांगवाणीके सारको जानता हो, (अप्पा पर वुज्झंतो) आत्मा व परको अलग २ समझता हो, (सुद्ध सद्भावं अप्प परचवे वि) तथा शुद्ध सत्तारूप अपने आत्माका परिचय रखता हो, (पद विंजन विंदंतो) जिनवाणीके अक्षर व शब्दोंका भाव जानता हो, (असरन संसार सयल दोस विवरीदो) जो इस अशरण संसारके सर्व दोषोंसे विपरीत हो, (अप्पा अप्पम्मि रओ) जिसका आत्मा आत्मामें रत हो, (अप्पा परमप्प निव्वुए जंति) ऐसा वेदक सम्यक्ती आत्मा परमात्मा रूप होकर निर्वाणको जाता है।

भावार्थ—यहां वेदक सम्यक्तका शब्दार्थ लेकर स्वरूप कहा है। वेदक जाननेवाले व अनुभव करनेवालेको कहते हैं। जो जिनवाणीके रहस्यका ज्ञाता होकर आत्माको अनात्मासे भिन्न जाने तथा आत्माको स्वभावसे शुद्ध ज्ञाताद्दष्टा वीतराग सिद्धसम जानके श्रद्धान करे, मोक्षको प्राप्त करने योग्य व संसारका क्षणभंगुर राग, द्वेषादि प्रपंचोंसे पूर्ण जाने। सबसे मोह त्यागकर आत्माका सच्चा प्रेमी हो जावे। उपयोगको आत्माके स्वरूपके अनुभवमें जमाकर आत्मानन्दका स्वाद लेवे। ऐसा वेदक सम्यक्ती कर्मबन्धसे छूटकर अवश्य निर्वाणको पाता है।

सिद्धांतके अनुसार इतना विशेष है कि वेदक सम्यक्तके दर्शनमोहकी तीसरी प्रकृति सम्यक्प्रकृतिका उदय रहता है, जिससे सम्यग्दर्शन तो रहता है परन्तु इसमें कुछ मलिनता रहती है। इसीलिये इसको क्षयोपशम सम्यक्त भी कहते हैं। इसके कई भेद हैं। एक तो यह है कि चार अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्व, तथा मिश्र छहोंका उपशम हो, एकका उदय हो। दूसरा यह है कि अनन्तानुबन्धीका अन्य कषाय रूप परिणमन होकर विसंयोजन हो गया हो, अर्थात् क्षय होगया हो और दोका उपशम हो, एकका उदय हो। तीसरा यह है कि चार अनंतानुबंधीके साथ मिथ्यात्वका क्षय हो, एकका उपशम एकका उदय हो। चौथा यह है कि चार अनंतानुबंधीके साथ मिथ्यात्व व मिश्रका भी क्षय हो एक सम्यक्तका उदय हो। सम्यक्त प्रकृतिको अर्थात् कुछ मलीन सम्यक्तभावको यह वेदक सम्यक्ती अनुभव करता है इसलिये इसको वेदक सम्यक्त कहते हैं। गोम्मटसारमें कहा है—

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं। चलमलिनमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥ २९ ॥

भावार्थ—देशघाति सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे वेदक सम्यक्त होता है यह चंचल है, मलीन है व अगाढ या अदृढ है तथापि आत्मानुभव रूप होकर कर्मोंके क्षयका कारण है।

उपशम सम्यक्त।

उवसम उवसन्त कषायं, उवसम रागदोष विषयकषायं।
मिच्छा कुज्ञान तिक्तं, उवसमनं सुह असुहस्य परिनामं ॥ ८० ॥

क्षय उवसम संजुत्तु, क्षपनक रूवेन अप्प सद्भावं।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा सुद्ध निम्मलं चित्तं ॥ ८८१ ॥

अन्वयार्थ—(उवसम उवसंत कषायं) उपशम सम्यक्त वह है जहां अनन्तानुबन्धी कषायोंका उपशम होगया हो (उवसम रागदोष विषय कषायं) जिसके बलसे अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी अन्याय युक्त राग-द्वेषका, इन्द्रियोंके विषयोंकी चाहनाका व क्रोधादि कषाय भावोंका उपशमन होगया हो (मिच्छा कुज्ञान तिक्त) मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या ज्ञानका त्याग होगया हो (सुह असुहस्य परिनामं उवसमनं) शुभ या अशुभ भावोंका उपशम होगया हो, शुद्ध भावोंका ही प्रेम होगया हो (क्षय उवसम संजुत्तु) क्षयो-पशम भाव सहित हो (क्षपनक रूवेन अप्प सद्भावं) आपके स्वभावको कर्म रहित क्षायिक जानता हो (अप्पा सुद्धप्पानं) आत्माको शुद्धात्मा रूप मानता हो (परमप्पा सुद्ध निम्मलं चित्तं) जिसका भाव श्रद्धा-नापेक्षा परमात्माके समान निर्मल हो वह उपशम सम्यक्ती है।

भावार्थ—चार अनन्तानुबन्धी कषाय तथा मिथ्यात्व ऐसी पांच प्रकृतियोंका अथवा मिश्र और सम्यक्त प्रकृति लेकर सात प्रकृतियोंका उपशम होनेसे जो शुद्धात्माकी प्रतीति रूप भाव हो उसको उपशम सम्यक्त कहते हैं। चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा यहां क्षयोपशम भाव है क्योंकि अनन्तानुबन्धीका उपशम या उदयाभावी क्षय है। तथा अन्य कषायोंका उदय है। यह सम्यक्त निर्मल है। यहां अपने आत्माकी प्रतीति परमात्माके समान शुद्ध है। इसके मिथ्यात्व व संसारा-सक्त भाव नहीं रहा है। अन्यायरूप प्रवृत्ति मिट गई है। अन्यायके विषयोंसे व कषायोंसे यह उदासीन होगया है। परिणामोंमें परम वैरागी है। प्रथमोशम सम्यक्त सातवें तक फिर श्रेणी चढते हुए इसीको श्रेणीपर द्वितीयोपशम सम्यक्त कहते हैं। इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। फिर बदल जाता है। वेदक सम्यक्त होजाता है या मिथ्यात्वादिके उदयसे नीची श्रेणीमें भी आसक्ता है।



क्षायिक सम्यक्त।

क्षायिक क्षपनक रूवं, क्षिपियो संसार सरनि मोहंधं।
रागदोष मिच्छातं, कम्ममल पयडि सयल क्षयऊनं ॥ ८८२ ॥
क्षय उवसम सुद्ध सहावं, अप्पा अप्पेन अप्पनो निश्चं।
गय संकप्प वियप्पं, क्षायिक सम्मत सुद्ध धुव निश्चं ॥ ८८३ ॥

अन्वयार्थ—(क्षायिक क्षपनक रूवं) क्षायिक सम्यक्त वह है जो सम्यक्त विराधक कर्मोंके क्षयसे हुआ हो (क्षिपयो संसार सरनि मोहंधं) यहां संसारके भीतर भ्रमण करानेवाले अन्ध मोहका नाश हो गया है (रागदोष मिच्छातं कम्ममल पयडि सयल क्षयऊनं) रागद्वेष मोहको उत्पन्न करनेवाली अनन्तानुबन्धी कषायकी चार व दर्शन मोहनीयकी तीन ऐसी सात कर्म प्रकृतियोंका बिलकुल क्षय होगया है। (क्षय उवसम सुद्ध सहावं) यहां चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा क्षय, उपशम तथा क्षयोपशम तीनों शुद्ध स्वभाव हैं (अप्पा अप्पेन अप्पनो निश्चं) यहां आत्माको अपनेसे अपना निश्चय है (गय संकप्प वियप्पं) संकल्प विकल्पोंका यहां अभाव है (क्षायिक सम्मत सुद्ध धुव निश्चं) क्षायिक सम्यक्तको ही शुद्ध, ध्रुव या निश्चय सम्यक्त कहते हैं।

भावार्थ—क्षायिक सम्यक्त वही है जो असली, शुद्ध, अविनाशी आत्माका एक स्वभाविक सम्यक्त गुण है। सात प्रकृतियोंके क्षयसे हुआ है इसलिये इसको क्षायिक कहते हैं। यह अनन्त काल तक रहता है। चारित्र मोहनीयके कारण चौथेसे सातवें तक इस क्षायिक सम्यक्तके साथ क्षयोपशम भाव, उपशम श्रेणीकी अपेक्षा उपशम भाव व क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्षायिक भाव रहता है। जब यह सम्यक्त भाव निश्चय रूप उपयोगात्मक होता है तब वहां सर्व संकल्प विकल्प व सर्व विचार मिट जाते हैं। आत्मा, आत्मामें आत्माके द्वारा ही लीन होजाता है। आत्मानन्दका लाभ होने लगता है। यही शुद्ध क्षायिक सम्यक्त है।

गोम्मटसार जीवकांडमें कहा है—

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य। विदियकसायुदयादो असंजदो होदि सम्मो य ॥ २६ ॥

भावार्थ—सातों प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यक्त व सातोंके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त होता है। चौथे गुणस्थानमें अप्रत्याख्यान कषायके उदयसे यह सम्यक्ती भी असंयमी होता है।

शुद्ध सम्यक्त।

सुद्धं सुद्ध सहावं, सुद्ध सरूवं च निम्मलं भावं।
अप्पा परमप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ८८४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सुद्ध सहावं) शुद्ध सम्यग्दर्शन आत्माका शुद्ध स्वभाव है (सुद्ध सरूवं च निम्मलं भावं) यह शुद्ध स्वभाव रागादि मल रहित वीतराग भाव है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मा स्वरूप ध्याता हुआ (परमप्पा लहै निव्वानं) यह परमात्मा होकर निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—यहां शुद्ध या वीतराग सम्यग्दर्शनकी मुख्यतासे कथन है जो सराग भाव रहित सातवें या आठवें गुणस्थानसे होता है। शुद्ध सम्यक्तमें परम वीतरागताके साथ आत्माको एकाग्रभावसे ध्याता हुआ शुद्धोपयोगमें लीन हुआ कर्म काटकर परमात्मा होकर निर्वाणके पदका भागी होता है।



पंचाचार कथन।

दर्शनाचार।

दरसन सुद्ध सहावं, दर्संति लोय ज्ञान सहकारं।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, दरसन चरनस्य निम्मलं विमलं ॥ ८८५ ॥
दर्सन अनन्त रूवं, अनन्त दर्सन विमल सुद्ध दरसेई।
मिच्छात कम्म विलयं, दरसन चरनस्य जन्ति निव्वानं ॥८८६॥

अन्वयार्थ—(दरसन सुद्ध सहावं) सम्यग्दर्शन आत्माका एक शुद्ध स्वभाव है (दर्संति लोय ज्ञान सहकारं) जो लोकके पदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान करता है वह सम्यग्दर्शन ज्ञानका सहकारी है (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं)

सम्यग्ज्ञानसे ही ज्ञान शुद्ध होता है। (दरसन चरनस्य निम्मलं विमलं) यह दर्शनाचरण दोष रहित व वीतराग है (मिच्छात कम्म विलयं) इस सम्यग्दर्शनके होते हुए मिथ्यात्व कर्मका लोप होगया है। (दर्शन अनन्त रूवं अनन्त दर्सन विमल सुद्ध दरसेई) यह सम्यग्दर्शन अनन्त स्वभावरूप अनन्त दर्शनधारी वीतराग कर्ममल रहित आत्माका श्रद्धान करनेवाला है। (दरसन चरनस्य जन्ति निव्वानं) दर्शनाचारसे मोक्ष होता है।

भावार्थ—आचार्य महाराज दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, तपाचार, चारित्रचारको पालते हैं उन्हींका यहां कथन है। दर्शनाचारका भाव यह है कि सम्यग्दर्शन स्वभावधारी आत्माका श्रद्धान करते हुए अनुभव करना। मिथ्यात्वके दोषसे शून्य सम्यक्तभावमें परिणमन करते हुए अनन्तदर्शन गुणधारी आत्माका श्रद्धान करना। इसीसे ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यक्त सहित ज्ञानके वारवार अनुभव करनेसे ज्ञानावरण कर्मका नाश होकर केवलज्ञानका लाभ होजाता है। इस सम्यक्तके आचारसे अन्य चार आचारकी सफलता है और इसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

ज्ञानाचार।

ज्ञानचरन संसुद्धं, ज्ञानं आचरण केवलं अमलं।
विषयं च राग विरयं, अप्पा परमप्प ज्ञान आचरनं ॥ ८८७ ॥
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, कुज्ञानं तजंति मिच्छ सद्भावं।
अप्प सरूव सहावं, परमप्पा सुद्ध ज्ञान आचरनं ॥ ८८८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानचरन संसुद्धं) ज्ञानाचार परम शुद्ध (केवलं अमलं ज्ञानं आचरण) केवल निर्मल स्वाभाविक आत्मज्ञानका अनुभव या रमण है (विषयं च राग विरयं) जहां इंद्रियोंके विषयोंका राग नहीं है (अप्पा परमप्प ज्ञान आचरनं) आत्माको परमात्माके ज्ञानमें आचरण कराना है। (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञानका ज्ञान स्वरूप रहना है (मिच्छ सद्भावं कुज्ञानं तजंति) जहां मिथ्यात्व भाव व मिथ्या ज्ञानका त्याग होगया है (अप्प सरूव सहाव) आत्माका स्वभाव आत्मारूप है (परमप्पा सुद्ध ज्ञान आचरनं) या परमात्मा रूप है। ऐसा जानकर अपने शुद्ध ज्ञानमें रमना ही ज्ञानाचार है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान श्रद्धा सहित आत्माको सर्व आत्माओंसे भिन्न जानता है। वहां न मिथ्यात्व है न मिथ्या ज्ञान है न विषयोंका राग है। आत्माका द्रव्य स्वभाव परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा वीतराग परमानन्दमई है। सर्व संकल्प विकल्प मिटाकर व निश्चिन्त होकर अपने शुद्ध आत्मस्वरूपमें ज्ञानका परिणपना, रमना, तन्मय रहना, आत्मानुभव करना ज्ञानाचार है।

वीर्याचार।

वीर्जं वीर्जं सुद्धं, वीर्जं अंकुरन ज्ञान सहकारं।
चरनं अप्प सरूवं, चरनं वीर्जं च सुद्धमप्पानं ॥ ८८९ ॥
अप्पानं अप्पानं, अप्पा सुद्ध ज्ञान निरू निश्चं।
परमपयं सुध रूवं, वीर्जं आचरन निव्वुए जंति ॥ ८९० ॥

अन्वयार्थ—(वीर्जं वीर्जं सुद्धं) वीर्य आत्माका स्वभाव वीर्य गुण है (वीर्जं अंकुरन ज्ञान सहकारं) यह वीर्य ही ज्ञानके अंकुर फूटनेका साधन है (चरनं अप्प सरूवं) चारित्र आत्माका स्वरूप है (चरनं वीर्जं च सुद्धमप्पानं) शुद्ध आत्मामें आचरण करना भी वीर्याचार है (अप्पानं अप्पानं) अपनेसे अपनेको जानना (अप्पा सुद्ध ज्ञान निरू निश्चं) आत्माको शुद्ध स्वभावरूप भलेप्रकार निश्चय करना (परमपयं सुध रूवं) परम पद शुद्ध स्वभाव है ऐसा जानकर अनुभव करना (वीर्जं आचरन निव्वुए जंति) वीर्याचरण है, इसीके प्रभावसे भव्यजीव निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—आत्माके भीतर अनन्त बल है। इसी बलके प्रभावसे मन, वचन, कायकी क्रिया होती है। उत्साह होना इस वीर्यका एक प्रकाश है। जब उत्साहपूर्वक तत्त्वज्ञानका अभ्यास किया जाता है। आत्मबलके द्वारा अपने उपयोगको विषय कषायोंसे रोककर आत्मा व अनात्माके भेद विज्ञानके मननमें लगाया जाता है तब ही आत्माके यथार्थ ज्ञानका या श्रद्धा सहित ज्ञानका या आत्मानुभवका अंकुर फूटता है। अपने शुद्धात्माके स्वभावमें रमण करना भी वीर्याचार है। आत्मबलसे ही अपनी परिणति परात्मासे रोककर शुद्ध स्वरूपमें जोडी जाती है। शुद्ध स्वभावमें भलेप्रकार निश्चय करनेमें, जाननेमें व उसीका स्वाद लेनेमें जो कुछ आत्मबलकी सहायता ली जाती

है वही वीर्याचार है। यदि वीर्याचारको काममें न लिया जावे तो श्रद्धानकी उज्वलता, ज्ञानकी निर्मलता व चारित्रकी शुद्धता नहीं होसक्ती है।

तपाचार।

तव आचरन सहावं, अप्प सहावेन सुद्ध तव यरनं।
सुद्धं सुद्ध सरूवं, तव आचरनं निम्मलं भावं ॥ ८९१ ॥
कम्ममल मुक्क रागं, मिथ्या विषयं च तिक्त कषायं।
अप्पा अप्प सरूवं, सहकारेन चरन तव यरनं ॥ ८९२ ॥

अन्वयार्थ—(तव आचरन सहावं) तपाचारका स्वभाव यह है कि (अप्प सहावेन सुद्ध तवयरनं) आत्माके स्वभावमें ठहरकर शुद्ध तपश्चरण करना (सुद्धं सुद्ध सरूवं) शुद्ध भावोंसे शुद्ध स्वरूपका अनुभव करना (निम्मलं भावं तव आचरनं) निर्मल भाव ही तपाचार है (कम्ममल मुक्क रागं) जहां कर्मरूपी मैलका राग छोड़ दिया गया हो (मिथ्या विषयं कषायं च तिक्तं) मिथ्या पांच इंद्रियोंके विषयोंको तथा कषायोंको त्याग कर दिया हो (अप्पा अप्प सरूवं) आत्मा आत्मारूप अनुभवमें आवे सोही (तवयरनं चरन सहकारेन) तपश्चरण चारित्रका सहकारी है।

भावार्थ—इच्छाओंको रोकना सो तपाचार है। सर्व प्रकारके इंद्रियोंके विषयोंसे चाह रोककर, व क्रोधादि कषायोंको वशकर आत्माके शुद्ध ज्ञानानन्दमय स्वभावमें जमकर आप आपमें तपना सो तपाचार है। यही स्वरूपाचरण चारित्रका सहकारी है। अनशन ऊनोदर्य आदि व्यवहार तपोंके द्वारा मन वचन कायको अपने वशमें करके निश्चय रत्नत्रयमई स्वस्वभावमें जम जाना तपाचार है।

चारित्राचार।

चरनंपि सुद्ध भावं, चरनं अप्पान निम्मलं रूवं।
थिर दिठि दंसनममलं, चारित्र चरन सुद्ध संजमं रूवं ॥८९३॥
चरनं अप्प सहावं, चरनं परम परभाव सुद्धानं।
घाय चवक्कय मुक्कं, चरनं चारित्र परम निव्वानं ॥ ८९४ ॥

अन्वयार्थ—(चरनंपि सुद्ध भावं) शुद्ध भाव ही चारित्र है (चानं अप्पान निम्मलं भावं) आत्माका निर्मल भाव चारित्र है (अमल दंसनं थिर दिठि) निर्मल सम्यग्दर्शनको स्थिरतासे अनुभव करना चारित्र है (सुद्ध संजमं रूवं चरन चारित्र) शुद्ध आत्म संयमके स्वभावमें चलना चारित्र है (अप्प सहावं चरनं) आत्माका स्वभाव चारित्र है (परभाव सुद्धानं परम चरनं) रागादि परभावोंसे शुद्ध होकर उत्कृष्ट वीतराग भावमें चलना चारित्र है (चवक्कय घाय मुक्कं) जिससे चार घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है (चरनं चारित्र परम निव्वानं) यही चारित्राचार परम मोक्षको प्राप्त कराता है। अथवा चारित्राचार ही परम निर्वाण है।

भावार्थ—चारित्र वास्तवमें आत्माके परम शांत या वीतराग भावको कहते हैं। यह आत्माका निज स्वभाव है। इस चारित्रकी प्राप्तिके लिये जो आचरण किया जावे वह चारित्राचार है। व्यवहार चारित्रकी सहायतासे मन वचन कायको थिर करके व बुद्धिपूर्वक सर्व रागादिसे उपयोगको हटाकर जैसी श्रुतज्ञानके बलसे शुद्ध आत्मप्रतीति प्राप्त की है, इस आत्मप्रतीतिमें इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त होकर जम जाना, शुद्ध आत्माके स्वभावमें विहार करना, यही सामायिक आदि चारित्राचार है। इसीके अभ्याससे यथाख्यात चारित्र होजाता है व इसीके प्रतापसे चारों घातीय कर्मोंका क्षय कर आत्मा अरहन्त परमात्मा होजाता है। अनन्त केवलज्ञान केवल दर्शन अनन्तवीर्यके प्रतापसे यथाख्यात चारित्र रूपी चारित्राचार अति विशुद्ध होता हुआ व अति विशद होता हुआ शेष चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय कर डालता है। और इस आत्माको निर्वाण लाभ कर देता है। मोक्षावस्थामें भी यह स्वात्मामें ही आचरण करता हुआ अपने चारित्रगुणके पूर्ण विकासमें रहता हुआ परमानन्दका स्वाद लेता है।

पंचाचार स उत्तं, पञ्चाचरन तिक्त संसारे।
गय संकप्प वियप्पं, पञ्चाचरनं च सुद्ध निव्वानं ॥ ८९५ ॥

अन्वयार्थ—(पंचाचार स उत्तं) पंच प्रकार आचार वही कहा गया है। (पंचाचरन तिक्त संसारे) जिस पंच प्रकार आचारसे संसारसे राग छोडकर (गय संकप्प वियप्पं) व संकल्प विकल्प भावोंको मिटाकर स्वात्माका अनुभव किया जावे (सुद्ध पंचाचरनं च निव्वानं) यही निश्चय पंचाचार निर्वाणको प्राप्त करा देता है। अथवा निर्वाण रूप है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्वीर्य, सम्यक्तप, सम्यक्चारित्र इन पांच प्रकार आचारको निश्चय नयके द्वारा जो पालेगा वह शुद्ध आत्माके अनुभवमें तल्लीन होजायगा। उसका सांसारीक राग व उसके सर्व संकल्प विकल्प मिट जायंगे। वह शुद्धोपयोगी होकर सिद्ध होजायगा। वहां सिद्ध गतिमें भी अपने आत्मस्वभावमें मगन रहता हुआ पांचों ही प्रकारके आचारका स्वामी अनन्तकाल तक बना रहेगा।

ज्ञानसमुच्चयसारका महात्म्य।

ज्ञान समुच्चय सारं, उवइट्ठं जिनवरेहि जं ज्ञानं।
जिन उत्तं ज्ञान सहावं, सुद्धं ध्यानं च ज्ञान समुच्चय सारं ॥ ८९६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय सारं) यह ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थ ज्ञान समूहका सार है (जिनवरेहि जं ज्ञानं उवइट्ठं) जिनेन्द्रोंने जो ज्ञान उपदेश किया है वही है (जिन उत्तं ज्ञान सहावं सुद्धं ध्यानं च ज्ञान समुच्चय सारं) जिनेन्द्रने जो आत्म-ज्ञानके स्वभावमें रमनेको शुद्ध ध्यान कहा है वही इस सर्व द्वादशांगका सार है।

भावार्थ—इस ग्रन्थका नाम जो ज्ञान समुच्चयसार है वह यथार्थ है। श्री जिनेन्द्र द्वारा प्रकाशित दिव्यध्वनिके अनुसार जो द्वादशांगकी रचना गणधरोंने की है, उसी सर्व श्रुतज्ञानका सार जो शुद्धात्माका अनुभव है या शुद्ध ध्यान है वह प्राप्त होगा। वास्तवमें जो शुद्धात्माका अनुभव करता है वही श्रुतकेवली निश्चयसे होता है।

ऐसा ही श्री कुन्दकुन्दाचार्यने श्री समयसारमें कहा है—

जो हि सुएणहिगच्छई, अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं। तं सुयकेवलिमिमिणो, भणंति लोयप्पईवयरा ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो कोई श्रुतज्ञानके द्वारा इस केवल शुद्ध अपने आत्माको अनुभव करता है वही श्रुत केवली है ऐसा लोकके प्रकाशक ऋषिगण कहते हैं।

ज्ञान समुच्चय भनियं, सद्दहनं रूव भेदविज्ञानं।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, षवइ संसार सरनि मोहंधं ॥ ८९७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय भनियं) इस ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थको कहा गया है; जो कोई (सद्दंसन रूव भेदविज्ञानं) भेदविज्ञानको पाकर अपने आत्माके स्वभावका श्रद्धान करेगा (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) जिसका ज्ञान, ज्ञान स्वभावमें तन्मय होजायगा वही (संसार सरनि मोहंध षवइ) संसारके भ्रमणके कारण अन्ध मोहको क्षय कर डालेगा।

भावार्थ—इस ग्रन्थको भलेप्रकार पढकर जो आत्मा और अनात्माको भिन्न२ परखकर भेदविज्ञान प्राप्त करेगा, परसे मोह छोडकर आत्माके स्वभावमें श्रद्धापूर्वक लय होगा। अर्थात् ज्ञान चेतनाका स्वाद लेगा वही निर्मल भावोंसे मोहरूपी शत्रुका संहार करेगा। जिस मोहके नशेमें चूर होकर यह प्राणी इस संसारमें भटकता हुआ वारवार जन्म मरण करता हुआ अनेक प्रकारके मानासिक तथा शारीरिक कष्ट उठाता है उस मोहको नाश करके वीतराग परमात्मा होजायगा।

ज्ञानेन ज्ञान जोयं, जोयं थिर दिट्ठि दंसनं अमलं।
जोइ य निय अप्पानं, अप्पा परमप्प सुद्ध निव्वानं ॥ ८९८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन ज्ञान जोयं) ज्ञानके द्वारा ही ज्ञानका प्रकाश होता है या ज्ञान योग होता है (अमलं दंसनं थिर दिट्ठि जोयं) निर्मल सम्यग्दर्शनमें स्थिर दृष्टि रखना योग है (निय अप्पानं जोइ य) निज आत्माका ही ध्यान करनेसे (अप्पा परमप्प सुद्ध निव्वानं) आत्मा परमात्मा व शुद्ध होकर निर्वाणको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—ज्ञान योग ही मोक्षका द्वार है। परम शुद्ध सम्यग्दर्शनके साथ निज आत्माके शुद्ध स्वभावमें लीन होनेसे ही धर्मध्यान व शुक्लध्यान होता है। यही योगाभ्यास है, यही ज्ञानका ज्ञानमें परिणमन है। इसीसे आत्मा परमात्मा होकर मुक्त होजाता है।

जानै दिट्ठै समतं, पिच्छै विमल दंसनं सुद्धं।
तं थिर भाव सवन्नं, चरनं चारित्र सुद्धमप्पानं ॥ ८९९ ॥

अन्वयार्थ—(समतं जानै दिट्ठै) जो सम्यग्दर्शनको जानेगा, मनन करेगा (विमलं सुद्धं दंसनं पिच्छै) (तं थिर भाव सवन्नं) उसीको ही स्थिर भाव कहा गया है (सुद्धं अप्पानं चरनं चारित्र) वही शुद्ध आत्मामें आचरण करना चारित्र है।

भावार्थ—इस ग्रन्थको जाननेका फल यही है जो सम्यग्दर्शनके विषयभूत छः द्रव्य सात तत्व आदिको समझा जावे, उनपर श्रद्धा लाई जावे। फिर निश्चय सम्यक्तको प्राप्त किया जावे, फिर शुद्धात्मामें स्थिरता पाकर शुद्ध आत्मामें आचरण रूप चारित्रको पाला जावे जिससे मोक्षका लाभ हो।

दव्वकाय पिच्छंतो, तत्त पदार्थ च सुद्ध संजुत्तो।
संसार सहाव विमुक्को, अप्पा परमप्प केवलो सुद्धो ॥ ९०० ॥

अन्वयार्थ—(दव्वकाय तत्त पदार्थ च पिच्छन्तो) छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थोंको जानकर निश्चय करता हुआ व (सुद्ध संजुत्तो) निश्चयसे शुद्ध भावसे संयुक्त होता हुआ (संसार सहाव विमुक्को) संसारके स्वभावसे छूट जाता हुआ (अप्पा केवलो सुद्धो परमप्प) आत्मा परभावोंसे रहित व कर्मोंसे रहित शुद्ध परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—इस ग्रन्थके द्वारा तत्वोंका स्वरूप समझकर जो शुद्ध आत्माका श्रद्धान ज्ञान तथा आचरण पालता हुआ सर्व रागादिसे विरक्त हो वीतराग होजाता है वही सर्व कर्मोंसे छूटकर परमात्मा होजाता है।

ज्ञान समुच्चय सारं, असरन अभाव सयल तिक्तं च।
सारं सुद्ध सहावं, सारं स स्वरूव निम्मलं सुद्धं ॥ ९०१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय सारं) इस सर्व ज्ञानका सार यही है जो (असरन अभाव सयल तिक्तं च) सर्व ही नाशवन्त क्षणिक सांसारीक पर्यायोंसे विरक्त होकर (सारं सुद्ध सहावं) शुद्ध स्वभावका सार समझा जावे (स स्वरूव निम्मलं सुद्धं सारं) अपने ही आत्माके रागादि रहित व कर्ममल रहित स्वभावको सार या उपादेय समझा जावे।

भावार्थ—इस ग्रन्थके द्वारा प्राप्त सर्व ज्ञानका प्रयोजन यह है कि मुमुक्षु जीवोंको देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक चारों ही गतियोंकी दशाओंको नाशवन्त व अशरण मिट जानेवाली समझना चाहिये। तथा एक अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावको ही सार व उपादेय समझना चाहिये। संसार पुद्गल और जीवकी मिश्रित पर्यायरूप है। इसी अशुद्धतामें संसार नाटक चलता है। और जीव

भव भवमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव परिवर्तनोंमें भ्रमण किया करता है। जब यह जीव पुद्गलके संयोगसे मुक्त होजावे और आप अकेला रहकर अपने स्वभावमें रमण करे तब इसका संसार भ्रमण मिटे और यह शुद्ध द्रव्य स्वभावमें सदाकाल शोभायमान हो।

ज्ञानेन ज्ञान सहावं, कुज्ञानं तजंति सयल मिच्छातं।
ज्ञान समुच्चय सुद्धं, ज्ञान सहावेन जंति निव्वानं ॥ ९०२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन ज्ञान सहावं) ज्ञानके द्वारा ज्ञान स्वभावका अनुभव होता है (कुज्ञानं सयल मिच्छातं तजंति) जब मिथ्या ज्ञानको व सर्व मिथ्या श्रद्धानको त्याग कर दिया जाता है (ज्ञान समुच्चय सुद्धं) तब ज्ञान समूह आत्मा शुद्ध होता है। (ज्ञान सहावेन निव्वानं जंति) ज्ञान स्वभावके द्वारा भव्य जीव निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानकी अपूर्व महिमा है। जब सम्यग्दृष्टी जीवके श्रद्धानमें व ज्ञानमें मिथ्या श्रद्धान तथा मिथ्या ज्ञान बिलकुल नहीं रहता है और यह रागादि भावोंको त्यागकर वीतराग भावसे ज्ञानमें अपने उपयोगको थिर करके ज्ञान स्वभावका ही अनुभव करता है तब शुद्धोपयोगके बलसे कर्मकी निर्जरा होजाती है और यह भव्य जीव मोक्षका लाभ करता है।

सयल जन बोहनत्थं, जिनमग्गे जिनवरेंद्र जं उत्तं।
जिन उत्तं सहकारं, ज्ञान संजुत्त लहइ निव्वानं ॥ ९०३ ॥

अन्वयार्थ—(सयल जन बोहनत्थं) सर्व जनोंके समझानेके लिये (जिन मग्गे) जिन मार्गके सम्बंधमें (जिनवरेन्द्र जं उत्तं) जिनेन्द्रोंने जो कुछ कहा है। (जिन उत्तं सहकारं) उसी जिनवाणीकी सहायतासे (ज्ञान संजुत्त निव्वानं लहइ) जो सम्यग्ज्ञानसे भूषित होता है वह निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—श्री अरहन्त तीर्थंकरोंने भव्योंके कल्याणके लिये जो कुछ मोक्षका मार्ग बताया है वही जिनवाणीमें प्रतिपादित है। जो कोई जिनवाणीका या इस ग्रन्थको भलेप्रकार पढ़ेगा, मनन करेगा, फिर भेदविज्ञानके द्वारा आत्माका अनुभव प्राप्त करेगा वह अवश्य मुक्त होजायगा।

दंसेइ मोक्ष मग्गं, ज्ञान सहावेन दंसनं अमलं।
चरनं संजम जुत्तं, संजुत्तो लहै निव्वानं ॥ ९०४ ॥

अन्वयार्थ—(मोक्ष मग्गं दंसेइ) यह जिनवाणी मोक्षमार्गको दिखलाती है। (ज्ञान सहावेन अमलं दंसनं) इसे जानकर अपने ज्ञानमई स्वभावसे निर्मल सम्यग्दर्शनको जो पाते हैं (संजम जुत्तं चरनं) फिर संयम लेकर चारित्र पालते हैं। (संजुत्तो निव्वानं लहै) ऐसे संयमी साधु निर्वाणको पाते हैं।

भावार्थ—निर्वाण लाभका सरल मार्ग यह है कि जिनवाणीको भलेप्रकार अभ्यास करके अपने आत्माके ज्ञानमई स्वभावको पहचानना। इसी विवेकके वारवार अभ्याससे निर्मल या निश्चय सम्यग्दर्शनका लाभ होता है। फिर वही सम्यग्दृष्टी संसार शरीर भोगोंसे उदास होकर जब सर्व परिग्रह त्यागकर संयमी साधु होता है और व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय आत्मरमण रूप चारित्रको पालता है तब वह कर्मोंसे छूटकर मुक्त होजाता है।

ज्ञान समुच्चय सारं, जिन उवएस कहिय सहकारं।
एको उद्देस उत्तं, कम्म क्षय कारन निमित्तं ॥ ९०५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय सारं) इस ज्ञान समुच्चयसार ग्रंथको (जिन उवएस कहिय सहकारं) जिनेन्द्रके उपदेशसे कहे हुए आगमकी सहायतासे (कम्म क्षय कारन निमित्तं) कर्मोंके क्षयके साधनके लिये (एको उद्देस उत्तं) एकोदेश कुछ कहा गया है।

भावार्थ—ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि मैंने श्री जिनेन्द्र कथित आगमका अभ्यास करके जो कुछ जाना है उसीका कुछ कथन इस ग्रन्थमें इसलिये किया है कि शुद्ध आत्माकी भावना करनेसे मेरे कर्मोंका क्षय हो तथा पढ़नेवालोंके भी कर्मोंका क्षय हो। जो कोई इसका मनन करेगा उसके कर्मोंका नाश होगा।

जिन उवएसं सारं, किंचित् उवएस कहिय सद्भावं।
तं जिन तारन रइयं, कम्म क्षय मुक्तिकारनं सुद्धं ॥ ९०६ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उवएसं सारं) जो श्री जिनेन्द्रने सार उपदेश किया है (सदभावं किंचित् उवएस कहिय) उसका कुछ भाव यथार्थ भावसे इस ग्रन्थके उपदेशमें कहा गया है (तं जिन तारन रइयं) इसको जिन तारण (स्वामी) ने रचा है (कम्मक्षय मुक्ति कारनं सुद्धं) जिससे कर्मोंका क्षय होनेके लिये शुद्ध मोक्षमार्गका अनुभव हो।

भावार्थ—इस ग्रन्थको श्री जिन तारणस्वामीने श्री जिन आगमके अनुसार रचा है। इसमें थोडासा उपदेश अपने निर्मल सरल भावसे इसी लिये किया है कि उसको मनन करनेसे मुझे भी शुद्ध आत्माका अनुभव रूप निश्चय मोक्षमार्गका लाभ हो तथा और जो कोई पढे उनको भी इस मोक्षमार्गका लाभ हो। जिससे यह आत्मा कर्मके बन्धनोंसे छूटकर कभी न कभी मोक्षलाभ कर सके।

भावेन भाव सुद्धं, अप्पा परमप्प विमल स सहावं।
तं भव्वजीव सरनं, आराहन जुत्त निव्वुए जन्ती ॥ ९०७ ॥

अन्वयार्थ—(भावेन भाव सुद्धं) भावसे भावोंकी शुद्धि होती है। वह भाव यह है कि (अप्पा परमप्प विमल स सहावं) यह अपना आत्मा निश्चयसे परमात्मा रूप निर्मल अपने स्वभावमें रहनेवाला है (तं भव्वजीव सरनं) यही भाव भव्यजीवोंके लिये शरण है (आराहन जुत्त निव्वुए जंती) जो इस आत्मानुभव रूपी भावकी आराधना करते हैं वे निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—इस ग्रन्थका सार यह है कि भावोंसे ही आत्माके भावोंकी शुद्धि होती है। बाहरी मन वचन कायकी क्रिया केवल निमित्त कारण है। अंतरंग आत्माका शुद्ध परिणाम ही आत्माकी शुद्धिका साधन है। निश्चय नयसे यह आत्मा परमात्माके समान बिलकुल शुद्ध स्वभावका धारी है ऐसा निश्चय करके व उसका संशय रहित ज्ञान प्राप्त करके इसी ही शुद्ध भावमें तन्मय होना या आत्माका अनुभव करना ही मोक्षमार्ग है।

हरएक भव्यजीवको इसीकी शरणमें जाना चाहिये। इसीकी आराधना करके भव्यजीव मोक्ष गए हैं, जाते हैं व जावेंगे, यही इस ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थका सार है।

श्री समयसार कलशमें श्री अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं—

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं। स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः ॥
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-। चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥ ११-९ ॥

भावार्थ—जो कोई अशुद्धताके कारण सर्व परद्रव्यको स्वयं छोड करके अपने आप ही अपने ही आत्मद्रव्यमें प्रेम करके लीन रहता है वह सर्व अपराधसे छूटा हुआ बन्धका नाश करके नित्य प्रकाशमान अपनी आत्मज्योतिमें तिष्ठकर चैतन्यरूपी अमृतसे पूर्ण महिमा सहित होकर शुद्ध होता हुआ मोक्षको प्राप्त कर लेता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य श्री समयसारमें कहते हैं—

मुक्खपहे अप्पाणं ठवेहि वेदयहि झायहि तं चेव। तत्थेव विहर णिच्चं माविहरसु अण्णदव्वेसु ॥ ४१४ ॥

भावार्थ—आत्मानुभव रूपी मोक्षमार्गमें अपनेको स्थापित कर उसीका अनुभव कर, उसीका ध्यान कर, उसीमें नित्य विहार कर, आत्माके सिवाय अन्य द्रव्योंमें विहार मत कर।

इति ज्ञान समुच्चयसार ग्रंथ जिन तारनतरन विरचितसमुत्कलिता।

इसप्रकार श्री जिन तारणतरण विरचित यह श्री ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थ समाप्त हुआ। इसकी भाषा टीका रची मिती आश्विन सुदी ४ शनिवार वीर संवत् २४५९ विक्रम संवत् १९९० तारीख २३ सितम्बर १९३३।

दोहा—मंगल श्री जिन आदि हैं, मंगल वीर जिनेश। मंगल गौतम गुरु नमो, मंगल श्री परमेश ॥ १ ॥
मंगल हैं सिद्धात्मा, परम ज्ञान भंडार। परमानन्द निमग्न प्रभु, वन्दूं बारम्बार ॥ २ ॥
कुन्दकुन्द आचार्य हैं, आत्मतत्व भंडार। वारवार सुमरण करूँ, कटैं कलेश अपार ॥ ३ ॥
तिनहीके अनुसार शुचि, ज्ञान सार प्रगटाय। तारणतरण सु जिन लिखो, ग्रंथ सार सुखदाय ॥ ४ ॥
वंदन तिनको करत हूं, धन्य अध्यातम ज्ञान। पद पदपर आतम छटा, दरशाई गुण खान ॥ ५ ॥
श्री जिनवाणी नमन कर, धर्म जिनेश्वर ध्याय। मंगल हो सब भविनके, निज सुखको प्रगटाय ॥ ६ ॥
अल्पबुद्धिसे ग्रंथकी, भाषा लिखी स्वप्रेम। भूलचूक हो बुद्धिजन, क्षमा करहु धर प्रेम ॥ ७ ॥

इटारसी (सी० पी०)
दिगम्बर जैन चैत्यालय (तारण समाज)
ता० २३-९-१९३३।

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

टीकाकारकी प्रशस्ति।

दोहा।

लक्ष्मणपुर अवधि हि बसै, अग्रवाल कुल जान। गोयल गोत्र मंझानमें, मंगलसैन सुजान॥
आतमरमी ज्ञाता बडे, धर्म सुवक्ता जान। समयसार अभ्यासमें, रहत सदा सुख मान॥ १॥
तिन सुत मक्खनलालजी, गृही कार्य लवलीन। संतलाल तिम ज्येष्ठ सुत, सीतल तृतिय अदीन॥
कुछ विद्या लौकिक पढी, किया जगत व्यापार। बत्तिस वय अनुमानमें, श्रावक व्रत हिय धार॥ २॥
गृह तज देशाटन करत, करत धर्म अभ्यास। संवत विक्रम उन्नीसैं, नव्वै धरि हुल्लास॥
मध्यप्रांतका मध्य थल, इटारसी शुभ ग्राम। वर्षाकाल बिताइयो, कर सुमरण जिन नाम॥ ३॥
जैन दिगम्बर वसत हैं, तारण पंथ सुहाय। चैत्यालय सुन्दर बना, जिनवाणी पधराय॥
ताहीमें विश्राम कर, संगति श्रावक पाय। ज्ञान समुच्चय सारकी, टीका लिखी स्वभाय॥ ४॥
सिंघई गुरुप्रसाद युत, शाला पाठ सुहाय। धर्मज्ञान बालक सबैं, लेवैं चित्त लगाय॥
शामलालजी सेठ हैं, सिंघई भरोसेलाल। फूलचन्द भाई लसैं, और फदालीलाल॥ ५॥
पांडे नाथूरामजी विज्ञ सु चुन्नीलाल। दुर्गाप्रसाद विराजते, श्री ठाकुरसीलाल॥
रामलाल पांडे लसैं, दुलीचन्दजी जान। घासीलाल विराजते, दमरूलाल अमान॥ ६॥
गृह हैं लगभग बीस दो, तारण पंथ सुजान। मंदिर दो प्रतिमा सहित, राजत हैं इस थान॥
ता पूजक गृह तीस हैं, साधत धर्म बनाय। वैद्य सु सुन्दरलालजी, दलिपचन्द वृषभाय॥ ७॥
बाई कस्तूरी लसैं, सेठानी वृष लीन। पण्डित छोटेलालजी, मन्नूलाल प्रवीन॥
सर्व दिगम्बर मेलसे, रहत प्रेम हिय धार। श्रद्धा भक्ति सु ज्ञान धर, करत धर्म संचार॥ ८॥
पण्डित श्री मूलचन्दजी, वंश तिवारी जान। धर्म रसिक आतम सुविद, हितू जैन गुण खान॥
इत्यादिक संयोगमें, धर आनन्द अपार। थिरता धर टीका रची, निज अनुभव चित धार॥ ९॥

९ राज सेवा या रागसे वर्तन, १० रात्रिको चलना। ये दस शीलकी विरोधनाएँ हैं। ऊपरके ८४००को इन १० से गुण करनेसे ८४००० उत्तर गुण हुए।

आकंपिय अणुमणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहुमं च। छण्णं सद्दाकुलियं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी॥ १०३० ॥

भावार्थ—१-अकंपित, २-अनुमानित, ३-दृष्टि, ४-बादर, ५-सूक्ष्म, ६-प्रच्छन्न, ७-शब्दाकुलित, ८-बहुजन, ९ असक्त, १०-तत्सेवी। ये दश आलोचनाके दोष हैं। इनको ८४००० से गुणनेसे ८४०००० हुए।

आलोयण पडिकमणं, उभय विवेगो तथा उस्सग्गो। तविउ छेदो मूलं पि यं परिहारो चेव सद्दहणा॥ १०३१ ॥

भावार्थ—१-आलोचना, २-प्रतिक्रमण, ३-उभय, ४-विवेक, ५-व्युत्सर्ग, ६-तप, ७-छेद, ८-मूल, ९-परिहार, १०-श्रद्धान। इन दस प्रकारके प्रायश्चित्तसे ८४०००० दोषको टालनेसे (८४०००००) ८४ लाख उत्तर गुण कहलाते हैं। इन उत्तर गुणोंके धारी साधु होते हैं।

पंच ज्ञान स सहावं, दह धम्मं सम्मत्त सुद्ध सं सुद्धं।
तेरह विहस्य चरनं, सम्मत्तं संजमेन सुद्ध संजुत्तं॥ ३८२ ॥

अन्वयार्थ—(पंच ज्ञान स सहावं) पांच ज्ञानमई निज स्वभावको (दह धम्मं) उत्तम क्षमादि दया धर्मको (सम्मत्त सुद्धं) शुद्ध सम्यग्दर्शनको (सं सुद्धं तेरह विहस्य चरनं) शुद्ध तेरा प्रकार चारित्रको (सुद्ध सम्मत्तं संजमेन संजुत्तं) व शुद्ध सम्यक्त पूर्वक संयमकी साधन करते हैं।

भावार्थ—साधु वे ही हैं जो साधन करें। वे निश्चयसे आत्माके स्वभावका ध्यान करते हैं। उसीसे उनमें मतिज्ञानादि पांच ज्ञान झलक जाते हैं। उनमें तेरह प्रकारका चारित्र भी यथार्थरूपसे पाया जाता है। अर्थात् ये पांच महाव्रत, पांच समिति व तीन गुप्तिको पालते हैं। वे शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध संयमका यथार्थ आराधन करते हैं। वे उत्तमक्षमादि दश धर्मका साधन करते हैं।

गुन रूव भेयविज्ञानं, ज्ञान सहावेन संजुत्त धुव निश्चं।
मूलगुनं सं सुद्धं, उत्तरगुन धरइ निम्मलं विमलं॥ ३८३ ॥

अन्वयार्थ—(गुन रूव भेयविज्ञानं) गुण स्वरूप उपयोगी भेदविज्ञान है जिसके द्वारा (ज्ञान सहावेन

संजुत धुव निश्चे सं सुद्ध मूलगुनं) ज्ञान स्वभावमई अविनाशी आत्माका अनुभव होता है उसे धारना सो ही निश्चय शुद्ध मूलगुण है (उत्तर गुन धाइ निम्मलं विमलं) इसी आत्मध्यानको रागादि दोष रहित अति निर्मल धारण करना--उसीको बढाते जाना उत्तरगुण है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे मूलगुण साधुओंके अठाईस हैं या तेरह हैं या दश उत्तम क्षमादि हैं या रत्नत्रय हैं। निश्चयनयसे मूलगुण आत्माको भेदविज्ञानके द्वारा सर्व पर द्रव्योंसे, पर गुणोंसे, पर पर्यायोंसे व पर निमित्तसे होनेवाले भावोंसे भिन्न अनुभव करना है या आत्मानुभव है। यही असली मूलगुण है, उसके विना व्यवहार मूलगुणोंका कोई महत्व नहीं है। उसी आत्मानुभवको बढाते बढाते केवलज्ञानीके होनेवाले प्रत्यक्ष आत्मानुभव तक लेजाना उत्तर गुण है।

उत्तर ऊर्ध सहावं, ऊर्ध सहाव विमल निम्मलं सहसा।
सुद्ध सहावं विच्छदि, उत्तर गुन धरंति सुद्ध स सहावं ॥ ३८४ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर ऊर्ध सहावं) उत्तर गुण श्रेष्ठ आत्म-स्वभावको प्राप्त करना है (सहसा ऊर्ध सहाव विमल निम्मलं) वह अकस्मात् चार घातिया कर्मोंसे रहित रागादिसे रहित श्रेष्ठ प्रत्यक्ष केवलज्ञान स्वभावका प्रकाश है तब आत्मा (सुद्ध सहावं विच्छदि) अपने शुद्ध स्वभावको प्रत्यक्ष अनुभव करता है यही (सुद्ध स सहावं उत्तर गुण धरंति) शुद्ध स्वाभाविक उत्तर गुणोंका धारण है।

भावार्थ—यहां यह भाव झलकाया है कि श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मा व अनात्माका भेदविज्ञान करके द्रव्य दृष्टिसे आत्माको परमात्माके बराबर अनुभव करना। आत्माकी शुद्ध परिणतिमें लीन होना मूलगुण है। यही मोक्षरूपी फलको उत्पन्न करनेवाले आत्म-धर्मरूपी वृक्षका मूल है। यही मूल आत्म-धर्मरूपी वृक्षको बढाते बढाते-श्रेष्ठ या उत्तर गुणरूप प्रत्यक्ष आत्माके अनुभवमें उन्नत कर जाता है, जो केवलज्ञानियोंके प्रगट होता है, जहां अत्यन्त निर्मलता होजाती है। परोक्ष भाव श्रुतज्ञान केवलज्ञानका साधक है। जैसे चन्द्रमाका प्रकाश दोइजके दिन कम होता है वही बढते बढते पूर्णमासीके दिन पूर्ण होजाता है वैसे भेदविज्ञान द्वारा आत्माका अनुभव चौथे अविरतसम्य-ग्दर्शन धारीके दोइजके चन्द्रमाके समान प्रारम्भ होता है वही गुणस्थान गुणस्थान प्रति बढते बढते तेरहवें गुणस्थानमें ज्ञानावरणादिके क्षयसे पूर्ण चन्द्रमाके समान पूर्ण प्रकाशमान होजाता है।

केवली अरहंत भगवान तथा सिद्ध महाराज प्रत्यक्ष विना किसी श्रुतज्ञानके आलम्बनके आत्माका आनन्द लेते हैं। यही उत्तर गुणका प्रकाश है।

मूल उत्तर संसुद्धं, सुद्धं सम्मत्त सुद्ध तवयरनं ।
तिक्कं चेल सहावं, सुद्धं सम्मत्त धरन संसुद्धं ॥ ३८५ ॥

अन्वयार्थ—(मूल उत्तर संसुद्धं) जिसके मूलगुण व उत्तर गुण शुद्ध हैं (सुद्धं सम्मत्त सुद्ध तवयरनं) जहां शुद्ध क्षायिक सम्यक्त है शुद्ध आत्म-रमणरूप व आत्म तपन रूप तपश्चरण है (तिक्कं चेल सहावं) जहां वस्त्र परिधानके समान सर्व पर भावोंका त्यागमई स्वभाव है (सुद्धं सम्मत्त धरन संसुद्धं) जहां शुद्ध सम्यग्दर्शनका निश्चयसे धारना है। वही यथार्थ साधुपना है।

भावार्थ—अरहंत पदको भी स्नातक नामके निर्ग्रंथ साधुपदमें गर्भित किया है। स्नातक साधुके मूलगुण उत्तर गुणोंकी परिपूर्णता होती है। आत्मीक शुद्ध स्वभावको ढकनेवाले कर्मरूपी वस्त्रोंका जहां बिलकुल त्याग होजाता है, वहां ही परमावगाढ सम्यग्दर्शन है, वहीं पूर्ण तप है, वहीं पूर्ण चारित्र है, तथा वहीं पूर्ण ज्ञान है। बाहरी वस्त्रोंका त्याग तो मूलगुणोंको धारते हुए या प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें सम्भव आत्मानुभव करते हुए साधुके होजाता है। परन्तु आत्माको ढकने-वाले कर्मरूपी वस्त्रोंका त्याग तेरहवें गुणस्थानमें होता है, जहां ज्ञानावरणादिके क्षयसे केवलज्ञान प्रकाशित होजाता है।

चेलं पंच सहावं, तिक्कं परिनाम चेलजं रसियं ।
अंडज वुंडज उत्तं, वंकज चरमज रोम विरयंति ॥ ३८६ ॥

अन्वयार्थ—(चेलं पंच सहावं) वस्त्र पांच तरहका होता है (तिक्कं परिनाम चेलजं रसियं) उनसे जो साधु रहित हैं तथा आवरणसे उत्पन्न जो विभाव परिणामोंमें रसिकपना उससे भी रहित हैं (अण्डज वुंडज वंकज चरमज रोम उत्तं) वे पांच प्रकार वस्त्र कहे गए हैं एक अंडज अर्थात् रेशमके वस्त्र, दूसरे वुंडज अर्थात् कपासके वस्त्र तीसरे वंकज अर्थात् छालके वस्त्र, चरमज अर्थात् चमडेके वस्त्र, रोमके वस्त्र (विरयंति) उनको जो साधु नहीं धारते हैं।

भावार्थ—श्री मूलाचारमें श्री वट्टकेरस्वामी मूलगुण अधिकारमें कहते हैं—

वत्थाजिण वक्केण य अहवा पत्ताइणा असंवरणं । णिब्भूसण णिग्गंथं अचेलक्कं जगदि पुज्जं ॥ ३७ ॥

भावार्थ—कपास, रेशम, रोम तीनके बने हुए वस्त्र, मृगछाला आदि चर्म, वृक्षादिकी छालसे उत्पन्न सन आदिके टाट अथवा पत्ता, तृण आदि इनसे शरीर आच्छादन नहीं करना; कडे, हार आदि आभूषणोंसे भूषित न होना, संयमके नाशक द्रव्योंकर रहित होना, ऐसा जगत पूज्य अचेलक व्रत है । यहां वत्था शब्दमें कपास, रेशम, रोमके वस्त्र गर्भित हैं । जिण नाम चर्मका है । वक्केण नाम छालका है । इन पांचों प्रकारोंके वस्त्रोंको मुनि नहीं धारते हैं तथा अभ्यंतर आत्माके स्वभावको रोकनेवाले व मलीन करनेवाले भावोंसे भी रहित हैं । ऐसे दिगम्बर जैन साधु होते हैं ।

अभ्यंतर अंडज वस्त्र ।

अंडज चेल स उत्तं, हृदयं असुद्ध भावजं रसियं ।
परिनाम असत्य सहियं, तिक्कंति चेल अंडजं भनियं ॥२८७॥

अन्वयार्थ—(अंडज चेल स उत्तं) उसको ही अंडज वस्त्र कहा गया है जो (हृदयं असुद्ध भावजं रसियं) हृदयरूपी कोषमें भरे हुए अशुद्ध भावोंसे उत्पन्न रसिकपना है (परिनाम असत्य सहियं) वह मिथ्या परिणाम सहित है । इसलिये (अंडज चेल तिक्कंति) साधु ऐसे अंडज वस्त्रोंको त्याग देते हैं । (भनियं) ऐसा कहा गया है ।

भावार्थ—मन भी एक कोश है । जैसे अंडेके भीतरसे पक्षी निकलता है या रेशमके कोषमें जो अंडके समान होता है रेशम निकलता है वैसे जिसका हृदयरूपी कोष रागादि अशुद्ध भावोंसे भरा है ऐसे हृदयसे जो विषयानुराग रूपी रंजायमानपना प्रगट होता है वही एक प्रकारका रेशम है । ऐसे रेशमको जिन्होंने त्याग दिया है वे अंडज वस्त्र रहित साधु हैं । यह परिणाम असत्य है क्योंकि संसारके क्षणिक व असत्य पदार्थोंमें रागरूप है ।

अंडज अनर्थं रूवं, आलापं परपंच विभ्रमं सहियं ।
रंजन लोक सहावं, तिक्तंति सुद्ध साधवाऽसुद्धं ॥ ३८८ ॥

अन्वयार्थ—(अंडज अनर्थं रूवं) रेशमके वस्त्रके समान रागभाव अनर्थक है (आलापं परपंचं विभ्रमं सहियं) इससे वृथा बकवाद होती है व संसारके मोहमें फंसना होता है (रंजन लोक सहावं) लौकिक विभावोंमें रंजायमानपना होता है ऐसा जानकर (सुद्ध साधवा) शुद्ध भावोंके प्रेमी साधुजन (असुद्धं तिक्तंति) इस अशुद्ध भावको छोड देते हैं।

भावार्थ—जैसे रेशम चिकना होता है व देखनेमें शोभनीक लगता है व मनको प्रसन्न करता है वैसे ही मनके भीतरसे उत्पन्न अहंकार भयकाररूपी संकल्प विकल्प या स्त्री भोजनादिमें राग-भाव देखनेमें अच्छे मालूम होते हैं परन्तु वृथा ही पापको बंध करते हैं। जैसे कोई यह विचारे कि मैं धनका संग्रह करूंगा, विवाह करूंगा, स्त्रीभोग करूंगा उससे मन बहलाऊंगा तो इन भावोंसे वह विषयानुरागी पाप बांध लेगा। या यह विचारा करे कि उसका धन नाश हो, कुटुम्ब नाश हो, या किसीकी हानि होगई उसको जानकर प्रसन्न भाव दर्शाया हो तो ऐसे मनके निरर्थक भावोंसे वृथा ही पापका बंध होगा। जब ऐसे रागद्वेषमें रंजायमानपना होता है तो मित्रोंसे मिलकर ऐसी ही वार्तालाप करता है। इन बातोंसे और भी संसारके मोहमें फंस जाता है। लौकिक बातोंमें ही राग बढ जाता है, मोक्षमार्गसे प्रीति हट जाती है। ऐसे रेशमके समान रागद्वेष भावको या मनके संकल्प विकल्पोंको शुद्धोपयोगके प्रेमी साधुजन बिलकुल त्याग देते हैं क्योंकि वे अशुद्ध भाव संसारके कारण हैं।

अभिंतर असुह सहावं, सल्यं सहकार विभ्रमं उत्तं ।
अनेयभेय अनर्थं, अज्ञानं भावं सयल तिक्तंति ॥ ३८९ ॥

अन्वयार्थ—(अभिंतर असुह सहावं) मनके भीतर जो अशुद्ध भाव हैं वे (सल्यं सहकार विभ्रमं उत्तं) माया, मिथ्या, निदान शल्य सहित संसारीक भाव कहे गए हैं। (अनेय भेय अनर्थं) ये अनेक भेदरूप निरर्थक हैं (अज्ञानं) व अज्ञान रूप हैं (सयल भावं तिक्तंति) साधु ऐसे सर्व भावोंको त्याग देते हैं।

भावार्थ—रागद्वेष वर्द्धक जितने भी अशुद्ध परिणाम हैं वे पांच इंद्रियोंके विषयोंमें लीनताके कारण व क्रोधादि कषायोंके वशीभूत होनेके कारण अनेक भेद रूप होते हैं। उनके भीतर तीन शल्य गर्भित रहती हैं। या तो वे मायाचार पूर्ण होते हैं या मिथ्या भाव सहित होते हैं। या आगामी भोगोंकी वांछा रूप निदान भाव सहित होते हैं। वे सर्व विभाव वृथा ही कर्मोंको बांधते हैं तथा वे मिथ्या ज्ञानके कारणसे होते हैं क्योंकि सम्यग्ज्ञानीके भीतर वीतराग भावमें रसिकपना होता है। संसारीक प्रपंच जालोंमें रंजायमानपना नहीं होता है। इन सर्व भावोंको साधुजन त्याग देते हैं।

वास्तवमें अपध्यान ही एक अंडज वस्त्र है जिसे व्रतीको त्याग देना चाहिये। रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें अपध्यानका स्वरूप यह है—

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः। आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः॥ ७८॥

भावार्थ—जिन मतमें किसीका वध, किसीका बंधन, किसीका अंगच्छेद व परस्त्री आदिका रागद्वेषके वशीभूत हो मनमें चिंतवन करना अपध्यान है, ऐसा निर्मल पुरुषोंने कहा है।

अभ्यंतर वुंडज वस्त्र।

वुण्डज भाव स उत्तं, वचनं असुहाइनंद सहकारं।
गुनदोसं न वि पिच्छदि, वुण्डज सभाव सयल तिक्तंती॥३९०॥

अन्वयार्थ—(वुण्डज भाव स उत्तं) वुंडजके समान भाव उसे कहा गया है जहां (असुहाइनंद सहकारं वचनं) अशुभ आदि भावोंमें आनन्द मानने रूप वचन प्रगट हो (गुनदोसं न वि पिच्छदि) जहां गुण व दोषका विचार न हो ऐसे (वुण्डज सभाव सयल तिक्तंती) वुंडज स्वभावके समान सर्व भावोंको साधु छोड देते हैं।

भावार्थ—कपासके वस्त्रोंको वुंडज कहते हैं, कपाससे बने वस्त्र गाढे व महीन दोनों प्रकारके होते हैं उसी तरह मिथ्यात्व भावोंके द्वारा प्रगट होनेवाले नानाप्रकारके अशुभ व अज्ञानमय

भावोंमें आनन्द मानके उन मिथ्यात्व सहित भावोंमें रंजायमान होनेके लिए जो मानसिक व वचनकी प्रवृत्ति है। तथा जहां ऐसा बुद्धिमें अहंकार है कि गुण व दोषका भेद नहीं मालूम होता है वहीं कपासके वस्त्रके समान अशुद्ध भाव है। इनको साधुजन परिग्रह जानकर छोड़ देते हैं। सच्चे वस्त्र त्यागी दिगम्बर होजाते हैं।

वुंडज पाप सरूवं, हिंसा अनृत असत्य आनन्दं।
दह विहि अवंभ नंदं, वयनं तिक्तंति वुंडजं भावं ॥ ३९१ ॥

अन्वयार्थ—(वुण्डज पाप सरूवं) वुंडज भाव पापमय होते हैं (हिंसा अनृत असत्य आनन्दं) हिंसा, झूठ व अज्ञानमें आनन्द माननेवाले हैं (दह विहि अवंभ नन्दं) इस प्रकार अब्रह्ममें मगन होनेवाले हैं (वुण्डजं भावं वयनं तिक्तंति) वुंडज भावोंको व ऐसे वचनोंको साधुजन त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां भीतरसे अभिप्राय पापमय हो वे सब भाव वुंडजभाव हैं। जहां पशुबलि आदि हिंसाकर्म करके आनन्द मनाया जाता हो। असत्य-मिथ्यात्वरूप व अज्ञानरूप क्रिया करके आनन्द मनाया जाता हो। जैसे दिवसमें उपवास करके रात्रिको भोजन करनेमें, किसीके मरणका शोक मनानेमें व रुदन करनेमें तथा जहां दस प्रकार कुशील भावोंको करके प्रसन्नता अनुभव की जाती हो—ब्रह्मचर्य व्रतके वर्णनमें इस दस प्रकार अब्रह्मका स्वरूप कहा जाचुका है, तथा हिंसा, अनृत, अज्ञान व अब्रह्म पोषक वचनोंको कहा जाता हो। इस सब वुंडज भावोंको लिए हुए प्रवृत्तिको साधुजन कभी नहीं करते हैं।

वंकज भाव स्वरूप।

वंकज सहाव उत्तं, ज्ञानं विज्ञान वंकजं रूवं।
दर्सन असुद्ध दर्सं, वंकज भावेन सयल तिक्तंति ॥ ३९२ ॥

अन्वयार्थ—(वंकज सहाव उत्तं) वंकज स्वभाववाले भावोंको कहते हैं (ज्ञानं विज्ञान वंकजं रूवं) जहां ज्ञान विज्ञान वंकज स्वरूप हों। अर्थात् मायाचार या टेढेपनको लिए भावोंमें वक्ररूप हों (दर्सन

असुद्ध दर्स) जहां अशुद्ध श्रद्धान दिखलाई पडता हो (वंकज भावेन सयल तिक्कंति) ऐसे वक्रतापूर्ण सर्व भावोंको मुनि त्याग देते हैं।

भावार्थ—वल्कल व छालके वस्त्रोंको पहनना वंकजको धारना है। यहां भावोंकी अपेक्षा यह कथन है कि ऊपरसे ज्ञान विज्ञानकी-शास्त्रोंके मर्मकी गूढ चर्चाएं करना। परन्तु भीतरसे मायाचार रखना, या मिथ्यात्वभाव रखना। मायाचार व मिथ्या शल्य सहित जो शास्त्रकी व भेदविज्ञानकी चर्चा है वह सब वंकज या टेढे भाव हैं। इन सबको दिगम्बर जैन साधु त्याग देते हैं। सरल शुद्ध श्रद्धा सहित भावसे शास्त्र ज्ञानका व भेदविज्ञानका मनन व कथन करना साधुओंका धर्म है।

वंकज असुद्ध भावं, ज्ञानावरनादि घाय उववन्नं।
ज्ञान सहावन दिट्ठं, वंकज तिक्कंति साधवाऽसुद्धं ॥ ३९३ ॥

अन्वयार्थ—(वंकज असुद्ध भावं) वंकज रूप असुद्ध भावोंसे (ज्ञानावरनादि घाय उववन्नं) ज्ञानावरणादि घातीय कर्मोंका बंध होता है (ज्ञान सहाव न दिट्ठं) ज्ञान स्वरूप आत्माका वहां दर्शन नहीं होता है (साधवा असुद्धं वंकज तिक्कंति) साधुजन ऐसे अशुद्ध वंकज भावोंको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां परिणामोंमें वक्रता है, कुटिलता है, आर्जवपना नहीं है वहां अशुद्ध भावोंके होनेसे चाहे बाहरी क्रिया शुभ भी दीखती हो, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, व अंतराय इन चार घातीय कर्मोंका तीव्र बंध होता है। साधुजन आर्जव धर्मके पालनेवाले होते हैं। व ऐसे भावोंके त्यागी सच्चे दिगम्बर होते हैं।

कप्प वियप्पं जानदि, सुद्धं स सहाव वंकजं रूवं।
वंकज अमलसहावं, वंकज तिक्कंति ज्ञानसहकारं ॥ ३९४ ॥

अन्वयार्थ—(कप्प वियप्पं जानदि) जो संकल्प विकल्पोंका अनुभव कर रहा है (सुद्धं स सहाव वंकज रूवं) जहां शुद्ध आत्मीक स्वभाव स्वरूपमें लीन न होकर डांवाडोलपना है (वंकय अमल सहावं) निर्मल भाव भी टेढा होरहा है (वंकज तिक्कंति ज्ञान सहकारं) ऐसे वंकज भावोंको साधुजन आत्मज्ञानकी सहायतासे छोड देते हैं।

भावार्थ—आत्माका शुद्ध स्वभाव जानते हुए भी जहांपर राग द्वेषोंकी कल्लोलें उठ रही हों या जहां नानाप्रकारकी नयोंसे तर्क वितर्क द्वारा आत्माका शुद्ध व अशुद्ध भेद या अभेद विचार होरहा हो वहां निर्मल नयातीत शुद्ध स्वरूप संवेदन रूप भाव नहीं पैदा होसक्ता है, क्योंकि वहां भावोंमें चंचलता है, डांवाडोलपना है, एकाग्रता नहीं है। इसलिये साधुजन निर्मल आत्मज्ञानमें अनुभवरूप होकर व स्वरूपाचरण चारित्रमें लीन होकर सर्व ही तरहके संकल्प विकल्पोंको वक्र-भाव जानकर छोड देते हैं और स्वरूप मगन होजाते हैं।

समयसार कलशमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ। यस्तत्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥ २९ ॥

भावार्थ—एक नयसे अर्थात् व्यवहार नयसे यह जीव कर्मोंसे बंधा है, दूसरे निश्चय नयसे यह जीव कर्मोंसे बंधा नहीं है। आत्माके सम्बन्धमें इन दोनों नयोंका पक्षपात है या विकल्प है। जो आत्मतत्वके अनुभवी हैं वे इन सर्व पक्षपातोंको या विकल्पोंको त्यागकर निर्विकल्प होजाते हैं उन्हींके अनुभवमें आत्मा आत्मारूप ज्ञानस्वरूपी निश्चल झलक जाता है।

चरमज सहाव।

चरमज सहाव उत्तं, जं चरनं चरंति नेय कालंमि।
चरनं विभ्रम रूवं, संसारे सरनि तिक्तंती ॥ ३९५ ॥

अन्वयार्थ—(चरमज सहाव उत्तं) चर्मज स्वभाव यह कहा गया है (जं चरनं नेय कालंमि चरंति) जो अनेक प्रकारका आचरण किया जावे परन्तु वह (चरनं विभ्रम रूवं) आचरण भ्रम रूप हो सो (संसारे सरनि) संसारका मार्ग है (तिक्तंती) ऐसे आचरणको त्यागना सो ही चरमज वस्त्र त्याग है।

भावार्थ—व्यवहारमें चर्मके वस्त्र मृगछाला आदिका त्याग सो चर्मज वस्त्र त्याग है। निश्चयसे अनेक प्रकारका जो व्यवहार मुनि या श्रावकका चारित्र मिथ्यात्वसे मिला हुआ है, संसारकी आसक्ति रूप है, विषयोंकी वांछा सहित है। सो सर्व संसार भ्रमणका मार्ग होनेसे चर्मज वस्त्र

स्वभाव है। इस प्रकारके आचरणको त्यागना तथा आत्मस्वरूपमें ही लवलीन होना सो चरमज वस्त्र त्याग है।

चरनं विप्रिय भावं, आरति रौद्रं च चरन सद्भावं ।
अनेय चरनं चरियं, चरनं तिक्तंति ज्ञान सहकारं ॥ ३९६ ॥

अन्वयार्थ—(विप्रिय भावं चरनं) विपरीत प्रकारका मिथ्या आचरण (आरति रौद्रं च चरन सद्भावं) आर्तध्यान व रौद्रध्यान सहित चारित्रका होना (अनेय चरनं चरियं) ऐसा अनेक प्रकारका चारित्र पाला जावे तौ भी चरमज स्वभाव (चरनं तिक्तंति ज्ञान सहकारं) ऐसे आचरणको ज्ञानकी सहायतासे साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान रहित शास्त्र मार्गसे उलटा काय क्लेश रूप अनेक प्रकारका आचरण सब विपरीत चारित्र है। ऐसा नाना प्रकारका आचरण आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान सहित है क्योंकि तत्त्व प्रतीति रहित, मिथ्यादर्शन सहित है ऐसे विपरीत चारित्रको साधुजन सम्यग्ज्ञानकी मददसे त्याग देते हैं।

चरनं सुभाव तिक्तं, चौगय संसार सरनि नेयकालंमि ।
विषय वसन संचरनं, चर्मज चेल तिक्तंति ससहावं ॥ ३९७ ॥

अन्वयार्थ—(सुभाव तिक्तं चरनं) आत्म स्वभावमें रमनरूप भावको छोडकर आचरण पालना, (नेय कालंमि चौगय संसार सरनि) अनंतकाल चार गतिमय संसारमें भ्रमण करानेवाला है (विषय वसन संचरनं) पांच इंद्रियोंके विषयोंमें तथा जूआ आदि सात व्यसनोंमें आचरण करना (चर्मज चेल तिक्तंति ससहावं) ऐसे चर्मज वस्त्रको साधुजन अपने स्वभावमें लीन होकर त्याग देते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन रहित जितना भी आचरण है वह चर्मज स्वभाववाला है। इस जीवने अनादिकालसे लेकर अबतक आत्मानुभवको न पाकर नानाप्रकार मिथ्या चारित्र पाला है। पांच इंद्रियोंमें रंजायमानपना छोड़ा नहीं, द्यूत आदि सात व्यसनोंका राग त्यागा नहीं। ऐसा मिथ्या चारित्र भवभवमें अनंतकाल तक संसारमें भ्रमण करानेवाला है। ऐसे चर्मज आचरणको छोड़कर साधुजन अपने स्वाभाविक आत्म चारित्रमें लीन होते हैं।

रोमज स्वभाव ।

रोमज सहाव उत्तं, रुचियं नो कम्म दव्व कम्मानं ।
भावं रुचित असुद्धं, रोमज तिक्कंति ज्ञान सहकारं ॥ ३९८ ॥

अन्वयार्थ—(रोमज सहाव उत्तं) रोमज स्वभाव इस प्रकार कहा गया है जो (नोकम्म दव्व कम्मानं रुचियं) शरीरादि नोकर्म व ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्ममें रुचिका होना या (असुद्धं भावं रुचित) अशुद्धोपयोगमें रुचि करना (रोमज ज्ञान सहकारं तिक्कंति) ऐसे रोमज वस्त्रोंको साधुजन आत्मज्ञानकी सहायतासे त्याग देते हैं।

भावार्थ—साधुजन ऊनके वस्त्र नहीं पहनते हैं यह व्यवहार त्याग है। निश्चयसे रोमज भाव यह है जो अपने आत्म स्वभावको छोडकर शरीरादि नोकर्ममें, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्ममें व रागद्वेषादि भावकर्ममें रुचि करना। ऐसी मिथ्या रुचिको साधुजन अपने ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर त्याग देते हैं यही रोमज वस्त्र त्याग है।

रुचियं कुज्ञान मइओ, रुचियं मिथ्यात विषय सद्भावं ।
रुचियं पुग्गल रूवं, रोमज तिक्कंति चेयनाभावं ॥ ३९९ ॥

अन्वयार्थ—(कुज्ञान मइओ रुचियं) मिथ्या ज्ञान स्वरूपकी रुचि करना (रुचियं मिथ्यात विषय सद्भावं) मिथ्यात्व व पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी रुचि करना तथा (रुचियं पुग्गल रूवं) पुद्गलके स्वभावकी रुचि करना (रोमज तिक्कंति चेयना भावं) ऐसे रोमज स्वभावको अपने चेतनाके शुद्ध भावमें रमन करके साधुजन छोड देते हैं।

भावार्थ—मिथ्या रुचि सो ही रोमज स्वभाव है। मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, व विषय कषायोंमें लीन रूप मिथ्या चारित्र तथा सर्व पौद्गलिक स्वभाव रागद्वेषादि विभाव भाव व संकल्प-विकल्प रूप भाव, मन, वचन, कायकी क्रिया, उनमें रुचि करना रोमज स्वभाव है। आत्मज्ञानी साधु अपनी ज्ञान चेतनामें तल्लीन होकर ऐसे रोमज स्वभावको त्याग कर देते हैं। वे ही सच्चे दि०साधु हैं।

अचेल कथन ।

ए पंच चेल उत्तं, तिक्कं मन वयन काय सद्भावं ।
विज्ञान ज्ञान सुद्धं, चेलं तिक्कंति निव्वुए जंति ॥ ४०० ॥

अन्वयार्थ—(ए पंच चेल उत्तं) इस तरह ऊपर लिखित पांच प्रकार वस्त्र कहे गए हैं (तिक्कं) उनको छोड़कर व (मन वयन काय सद्भावं चेलं तिक्कंति) जो मन वचन काय सम्बन्धी सर्व वस्त्रको त्याग देते हैं वे साधु (विज्ञान ज्ञान सुद्धं) शुद्ध विज्ञानमई आत्मज्ञानमें लीन होकर (निव्वुए जंति) निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु बाहरमें तो रेशमके, रुईके, छालके, चर्मके व ऊनके ऐसे पांच प्रकारके वस्त्रोंको त्यागते हैं। तथा अंतरंगमें इन पांच प्रकार वस्त्र स्वरूप सम्पूर्ण मन वचन कायकी क्रियामई अनेक संकल्प विकल्पोंको व रागद्वेषोंको त्याग देते हैं और भेदविज्ञानके बलमें अपने आत्माके अनुभवमें लीन होते हैं। इसी तरह बाहरी व भीतरी दिगम्बरत्वके द्वारा ही साधु मोक्षके स्वामी परमात्मा होजाते हैं।

चेलं वाहिज उत्तं, चेलं पंचंमि तिक्क मोहंधं ।
चेल सहाव न ग्रहनं, वालं तिक्कंति चेल उत्पन्नं ॥ ४०१ ॥

अन्वयार्थ—(चेलं वाहिज उत्तं) आत्मासे जो बाहर या भिन्न हो उसको चेल कहते हैं (पंचंमि मोहंधं चेलं तिक्क) पांचों ही मोह व अज्ञानमई वस्त्रको छोड़ना चाहिये (चेल सहाव न ग्रहनं) पांच प्रकार वस्त्रके सदृश विभावोंको नहीं ग्रहण करना चाहिये तथा (चेल उत्पन्नं वालं तिक्कंति) पांच प्रकार चेलसे बने हुए वस्त्रोंको त्यागना चाहिये।

भावार्थ—जिनरूपी साधु अचेलक होते हैं। वे अंतरंग तथा बहिरंग दोनों ही प्रकारके वस्त्रोंके त्यागी होते हैं। बहिरंग वस्त्र ऊपर कहे प्रमाण रेशम, कपास, छाल, चर्म व ऊनके, स्वभावके समान अंतरंग मिथ्यात्व, राग द्वेषादि सर्व संकल्प विकल्प हैं। दोनोंके त्यागी वास्तवमें अचेलक हैं। जो परभावको न ग्रहण करते हुए निज आत्मीक भावमें तल्लीन हैं वे ही वास्तवमें नग्न, दिगम्बर या अचेलक हैं।

दिगम्बर शब्द व्याख्या ।

दिगंबर वयन उत्तं, दिग दिसा अंबरेन सद्भावं ।
अंबर चेल विमुक्तं, दिगंबरेन ज्ञान सहकारं ॥ ४०२ ॥

अन्वयार्थ—(दिगंबर वयन उत्तं) साधुको दिगम्बर वचन इसलिये कहा गया है कि वे (दिग दिसा अंबरेन सद्भावं) दिक् अर्थात् दिशा, अंबर अर्थात् वस्त्र अर्थात् दिशारूपी वस्त्रको धारण करते हैं (चेल अंबर विमुक्त) पांच प्रकार रेशमादिके बने वस्त्रोंसे रहित हैं (दिगंबरेन ज्ञान सहकारं) वे आत्मज्ञानकी सहायतासे दिगम्बरपनेको धारण करनेवाले हैं।

भावार्थ—अब यहां दिगंबर शब्दकी व्याख्या करते हैं-दिशारूपी वस्त्र ही जिनके हों, रेशम कपास आदिके वस्त्रोंको जो न धारण करते हों तथा जो भीतरसे पूर्ण आत्मज्ञानी, वैरागी तथा रागादि भावोंके त्यागी हों वे ही सच्चे दिगंबर साधु हैं।

पूर्व दिशा अंबर कथन ।

पूर्वं पूर्वं उक्तं, पूर्वं सहकार परमभत्तीए ।
पूर्वं ज्ञान सहावं, पूर्वं उत्तं च निम्मलं विमलं ॥ ४०३ ॥

अन्वयार्थ—(पूर्वं पूर्वं उत्तं) पूर्व दिशाको पहले या मुख्य कहा जाता है (परम भत्तीए पूर्वं सहकार पूर्वं ज्ञान सहावं निम्मलं विमलं च पूर्वं उत्तं) परम भक्ति सहित चौदह पूर्वरूप शास्त्रकी सहायतासे मुख्य ज्ञान स्वभावी कर्ममल रहित रागादि रहित सर्व द्रव्योंमें श्रेष्ठ आत्माको पूर्व कहा गया है।

भावार्थ—पूर्वादि दश दिशा रहित दिगंबर कहाते हैं। दसों दिशाओंमें पूर्वको इसलिये मुख्य कहा गया है कि पूर्व दिशासे सूर्यका उदय होता है। इसी तरह यहां ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व रूप जिनवाणीका मनन जो परम भक्तिसे करते हैं उसके भीतर ज्ञान स्वभावी परम निर्मल शुद्ध आत्माका अनुभव प्रकाशमान होजाता है। अर्थात् पूर्वोंके ज्ञान द्वारा पूर्व अर्थात् श्रेष्ठ या मुख्य

या अग्र अपने ही शुद्ध आत्माका ज्ञान उदय होता है। ऐसे आत्मज्ञानके जो धारी हैं जो आत्मज्ञानी पूर्व दिशाके समान निर्मल हैं, उस साधुको ही पूर्व दिशा रूपी वस्त्रका धारी पूर्व दिगम्बर कहते हैं।

पूर्व परम सरूवं, अप्पा सुद्धप्प हवे परमप्पा।
ज्ञानेन ज्ञान अमलं, ज्ञान सहावेन पूर्व उवएसं ॥ ४०४ ॥

अन्वयार्थ—(पूर्व परम सरूवं) पूर्व जो आत्माका ज्ञान सो ही उत्कृष्ट आत्म स्वभाव है (सुद्धप्प अप्पा परमप्पा हवे) जिससे शुद्ध स्वरूपी आत्मा परमात्मा होजाता है (ज्ञानेन ज्ञान अमलं) आत्मज्ञानके अनुभवसे निर्मल केवलज्ञान प्रगट होता है। इसीलिये (ज्ञान सहावेन पूर्व उवएसं) ज्ञान स्वभावको ही पूर्व कहा गया है।

भावार्थ—जिनवाणीके अभ्याससे जो आत्मज्ञान प्रगट होता है उसीका अनुभव करनेसे कर्म कलंक मिटता है और यह आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा होजाता है। अंतरंगमें जो साधु आत्मानुभव रूप पूर्व दिशाको रखते हैं और बाहरमें पूर्व दिशारूपी अम्बरको रखते हैं ऐसे दिगम्बर साधु ही केवलज्ञानको जगाते हैं। इसीलिये पूर्वको आत्माका ज्ञान स्वभाव कहते हैं। इसीको पहननेवाले सच्चे दिगम्बर यति होते हैं।

नंत चतुष्टय पूर्व, नंतानंतं च ज्ञान सहकारं।
रागादि दोस तिक्तं, अंबर पूर्व च ज्ञान उक्तं च ॥४०५॥

अन्वयार्थ—(पूर्व नंत चतुष्टय) आत्माके मुख्य गुण अनंत चतुष्टय हैं (नंतानंतं च ज्ञान सहकारं) उनमेंसे अनंतानंत ज्ञानको सिद्ध करनेवाला (रागादि दोस तिक्तं) राग द्वेषादि दोषोंसे रहित (अंबर पूर्व च ज्ञान उक्तं च) पूर्व दिशा रूप निर्मल आत्मज्ञान कहा गया है।

भावार्थ—अरहंत पदमें जो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख व अनंत वीर्य गुण प्रगट होते हैं उनमेंसे केवलज्ञानरूपी सूर्यको उदयमें लानेवाला वीतराग विज्ञानमय आत्मज्ञानरूपी पूर्व दिशा है जो अति निर्मल है। इसी पूर्व दिशारूपी वस्त्रको धारनेवाले दिगम्बर जैन साधु होते हैं।

आग्नेय दिशा अम्बर कथन।

अग्नि च अग्रभावं, अग्रं अवयास सुद्ध अवयासं।
अग्रं अमल सहावं, अग्नि दिसा च अंबरं अमलं ॥ ४०६ ॥

अन्वयार्थ—(अग्नि च अग्रभावं) यहां अग्निसे प्रयोजन प्रधानभावसे है (अग्रं अवयास सुद्ध अवयासं) प्रधान आकाश शुद्ध आत्माका क्षेत्र है (अग्रं अमल सहावं) या आत्माका निर्मल स्वभाव प्रधान है (अग्नि दिसा च अंबरं अमलं) इस प्रधान आत्माके निर्मल स्वभावको आग्नेय दिशा कहते हैं। इसके धारी आग्नेय दिशारूप अम्बरके धारी दिगम्बर साधु होते हैं।

भावार्थ—यहां आग्नेय दिशाका भाव अंतरंगमें अग्र शब्दकी मुख्यतासे प्रधान आत्माका क्षेत्र या आत्माका निर्मल स्वभाव लिया गया है। जो साधु बाहरमें नग्न दिगम्बर होते हुए अंतरंगमें वीतराग विज्ञानमय निर्मल आत्माके स्वभावका अनुभव करते हैं अर्थात् जो अनुभव करते हैं कि असंख्यात प्रदेशी आत्माके स्वरूपमें सर्वत्र निर्मल वीतराग भाव अवकाश पारहा है ऐसे बाहरमें आग्नेय दिशाका वस्त्र व अंतरंगमें निर्मल आत्म स्वभावके अनुभवका वस्त्र पहननेवाले जो दिगम्बर जैन साधु हैं वे ही यथार्थमें दिगम्बर साधु मोक्षके साधक हैं।

अग्नि च अग्र तेजं, जोति स सहाव रूव सं सुद्धं।
अग्रं तिलोय मइओ, लोका अवलोक लोकनं अग्नि ॥ ४०७ ॥

अन्वयार्थ—(अग्नि च अग्र तेजं) आग्नेय दिशामें अग्नि शब्दसे अर्थ मुख्य ज्ञान तेजसे है (जोति स सहाव रूव सं सुद्धं) जो परम ज्योतिस्वरूप आत्माका शुद्ध स्वभाव है (अग्रं तिलोय मइओ) तीन लोकमई पदार्थोंका ज्ञान प्रधान है (लोका अवलोक लोकनं अग्नि) वह अग्नि लोक व अलोकको देखनेवाली ज्ञानस्वरूपी है।

भावार्थ—अग्नि शब्दका अर्थ ज्ञानरूपी तेज है। आत्माका स्वभाव ज्ञान तेजसे परिपूर्ण है, परम निर्मल है, तीन लोक व अलोकका ज्ञान ऐसा केवलज्ञान प्रधान है। जो साधु बाहरमें आग्नेय दिशारूपी वस्त्रको धारते हैं व अंतरंगमें आत्माके ज्ञान तेजका अनुभव करते हुए आग्नेय दिशारूपी वस्त्रके धारी हैं वे ही सच्चे दिगम्बर जैन साधु हैं। आत्माको परमात्माके समान परम ज्योतिस्वरूप केवलज्ञान स्वभावी अनुभव करना ही आग्नेय दिशारूपी अंतरंग वस्त्रको धारना है।

दक्षिण दिशा अंबर कथन ।

दष्यन दिसि अंबरयं, वर दंसन ज्ञान चरन सहकारं ।
दंसेइ मोक्खमग्गं, नन्तानन्त दिस्टि संदर्स ॥ ४०८ ॥

अन्वयार्थ—(दष्यन दिसि अंबरयं) साधु अंतरङ्गमें दाक्षिण दिशाका वस्त्र धारते हैं । वह वस्त्र (बर दंसन ज्ञान चरन सहकारं) श्रेष्ठ अर्थात् अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान व वीतराग चारित्रका साधक वह ज्ञान दर्शन है (मोक्खमग्गं दंसेइ) जो रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्गको अनुभव करनेवाला है व जो (नन्तानन्त दिस्टि संदर्स) अनन्तानन्त दर्शनको देखनेवाला है ।

भावार्थ—यहां दक्षिण दिशारूपी अंतरंग वस्त्रका कथन है । आत्माका दर्शन व आत्माका अनुभव ही दाक्षिण दिशा है, जिसके द्वारा मोक्षमार्गमें चलते हुए अरहंत पदका लाभ होजाता है। जहां वीतराग चारित्र है व क्षायिक सम्यक्त है, अनन्त दर्शन है, व अनन्त ज्ञान है । दिगम्बर जैन साधु वे ही हैं जो बाहरमें दक्षिण दिशारूपी वस्त्रको धारते हैं व अन्तरंगमें आत्मानुभवकी निर्मलता रखते हैं ।

दंसेइ तिहुवनग्गं, दंसन दंसेइ नन्त सहकारं ।
षिपि ऊन तिविहिकम्मं, ज्ञान सहावेन सुदर्सनं अमलं ॥४०९॥

अन्वयार्थ—(तिहुवनग्गं दंसेइ) जो तीन लोकमें प्रधान आत्माको देखनेवाला है ऐसा जो (दंसन) सम्यग्दर्शन या आत्मदर्शन (नन्त सहकारं दंसेइ) वह अनन्तदर्शनका सहकारी है उसका जो अनुभव करते हैं वे (षिपि ऊन तिविहिकम्मं) तीन प्रकार कर्मोंको क्षय करके (ज्ञान सहावेन सुदर्सनं अमलं) ज्ञान स्वभावी परम निर्मल आत्माके स्वभावको भलेप्रकार देखनेवाले सिद्ध होजाते हैं ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ही मुख्य आत्मदर्शन है । इसीके प्रभावसे आत्माका ऐसा यथार्थ अनुभव होता है जिससे ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागद्वेषादि भावकर्म व शरीरादि नोकर्मोंका नाश होजाता है । और यह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है । जहां अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख और स्वाभाविक गुण प्रकाशमान होजाते हैं । ऐसे सम्यग्दर्शनके धारी ही साधु दक्षिण दिशारूपी वस्त्रके पहननेवाले हैं ।

दष्यन दिसि अंबरयं, दिष्टं ज्ञान पञ्चम सभावं ।
षिपनक रूव सुदिट्ठं, अंबर दिसियं च ज्ञानसहकारं ॥ ४१० ॥

अन्वयार्थ—(दष्यन दिसि अंबरयं) दक्षिण दिशाका वस्त्र वह है (दिस्टं ज्ञान पंचम सभावं) जिससे आत्माका स्वाभाविक पंचम केवलज्ञानका दर्शन होजावे (षिपनक रूव सुदिट्ठं) नग्न क्षपणक या साधुका स्वरूप वहीं भलेप्रकार देखा जाता है जिसके (ज्ञान सहकारं अंबर दिसियं) केवलज्ञानका सहकारी अंबर दिखलाई पडता है।

भावार्थ—दक्षिण दिशारूपी वस्त्रको जो बाहरमें धारण करे व अंतरंगमें सम्यग्दर्शन पूर्वक आत्मानुभव रूपी दक्षिण दिशाको धारण करे वही सच्चा दिगम्बर क्षपणक या साधु है। वही साधु आत्मज्ञानके अभ्याससे केवलज्ञानको प्रकाश कर सक्ता है। ऐसे ही जिनरूपी सच्चे यति होते हैं।

नैरित्य दिशा अम्बर कथन ।

नैरित्यं उवएसं, ऋतं जानेहि सुद्ध स सहावं ।
अनृत असरन तिक्तं, ऋतं लोयालोयं च धुव निश्चं ॥ ४११ ॥

अन्वयार्थ—(नैरित्यं उवएसं) नैरित्य दिशा अम्बरका उपदेश किया जाता है (सुद्ध स सहावं ऋतं जानेहि) आत्माका शुद्ध स्वभाव सत्य है ऐसा जानो (अनृत असरन तिक्तं) जहां सर्व मिथ्या कल्पनाओंका व अशरण अवस्थाओंका त्याग है (ऋतं लोयालोयं च धुव निश्चं) सत्य लोकालोक अविनाशी है यह निश्चय है।

भावार्थ—ऋतं नाम सत्यका है। संसारकी चतुर्गति रूप सर्व अवस्थाएं व रागादि सर्व भाव—मनकी सर्व कल्पनाएं नाशवंत हैं, क्षणिक हैं, अतएव मिथ्या हैं, इनको कोई राक्षित नहीं रख सक्ता है। सर्व ही प्राणी आयु कर्मके आधीन हैं। सर्व ही पुद्गलकी रचनायें बनती हैं बिगड जाती हैं। इन सब अनित्य व अशरण अवस्थाओंसे मुंह मोडकर एक अपने आत्माके द्रव्य स्वभावको जो परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा अविनाशी है सत्य मानना चाहिये। अथवा जिन छः द्रव्योंसे लोकालोक भरपूर है उनको नित्य व अपने २ स्वभावोंमें रहनेवाला निश्चय करना चाहिये।

ऋतं अनंतं भावं, चेयन संजुत्त ऋत सहकारं।
नैरित्यं ऋत दिट्ठं, नैरित्यं ऋत ज्ञान अंबरयं ॥ ४१२ ॥

अन्वयार्थ—(ऋतं चेयन संजुत्त अनंत भावं) आत्मा सम्बन्धी अनंत ज्ञानादि भाव सत्य है (ऋत सहकारं) इस सत्य स्वभावके प्रकाशको साधन करनेवाला जो (ऋत) सम्यग्ज्ञान व आत्मानुभव रूप सत्य है उसे (नैरित्यं दिट्ठं) नैरित्य देखना चाहिये अतएव (ऋत ज्ञान अंबरयं नैरित्यं) सत्य ज्ञान या आत्मानुभवका वस्त्र सो नैरित्य है।

भावार्थ—सत्य एक अपना निज स्वभाव है जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अनन्त स्वाभाविक गुणोंका समुदाय है, इस स्वभावको प्रकाश करनेमें साधक अभेद रत्नत्रय स्वरूप स्वसंवेदन ज्ञानमय आत्माका अनुभव है। यही अनुभव नैरित्य दिशाका वस्त्र है। जो साधु बाहरमें नैरित्य दिशाका वस्त्र पहनते हैं व अंतरंगमें निज आत्माके अनुभव स्वरूप वस्त्रको पहनते हैं वे ही सचे दिगम्बर जैन साधु हैं।

पश्चिम दिशा अम्बर कथन।

पश्चिम पिच्छदि सुद्धं, संसार सरनि असुद्ध न हि पिच्छं।
पिच्छदि अप्प सहावं, अप्पा सुद्धप्प ज्ञान परमप्पा ॥ ४१३ ॥

अन्वयार्थ—(पश्चिम सुद्धं पिच्छदि) पश्चिम दिशा शुद्ध आत्माको अनुभव करनेवाली है (संसार सरनि असुद्ध न हि पिच्छं) संसारके मार्गमें भ्रमण करानेवालोंके स्वभावको देखती है (अप्प सहावं पिच्छदि) आत्माके अशुद्ध आत्माको नहीं देखती है (अप्पा सुद्धप्प ज्ञान परमप्पा) कि यह आत्मा शुद्ध स्वरूप है ज्ञानमई है व परमात्मारूप है।

भावार्थ—यहां पश्चिम दिशाको कहते हैं कि शुद्ध आत्माको शुद्ध स्वरूप ज्ञानानन्दमय परमात्माके समान अनुभव करना तथा रागादि सहित अशुद्ध आत्माका अनुभव न करना पश्चिम दिशा है। अशुद्ध आत्माका अनुभव कर्म बंधकारक है व संसारमें भ्रमण करानेवाला है।

पिच्छदि अनन्त रूवं, विज्ञानं ज्ञान पिच्छि सभावं ।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, पच्छिम पिच्छेइ अंबरं अमलं ॥ ४१४ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं) भेदविज्ञानसे उत्पन्न आत्मानुभव (अनन्त रूवं ज्ञान पिच्छि सभावं पिच्छदि) अनन्त ज्ञानदर्शन स्वभावमई आत्माको अनुभव करनेवाला है (मिथ्या सल्य विमुक्कं) जिसमें मिथ्या, माया, निदान तीन शल्य नहीं है (पच्छिम अम्बरं अमलं पिच्छेइ) ऐसी पश्चिम दिशारूप आत्मानुभूति निर्मल आकाश तुल्य आत्माको अनुभव करनेवाली है।

भावार्थ—पश्चिम दिशा उसे कहते हैं जो अपने सामने अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्यमई आत्मारूपी सूर्यको देखनेवाली है, जिसमें कोई मिथ्या भाव नहीं है न कोई मायाचार है और न कोई निदान भाव है। यह वह आत्मानुभूति है जो भेदविज्ञानसे पैदा होती है। निर्मल आत्माका दर्शन होना ही पश्चिम दिशा है।

पिच्छेइ अप्पु अप्पं, वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छेई ।
पिच्छेइ मोक्ख मग्गं, ज्ञान सहावेन अम्बरं पिच्छं ॥ ४१५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पं अप्पु पिच्छेइ) जो आत्माको आप ही देखती है या अनुभव करती है (वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छेई) व जो श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकताको देखनेवाली है। (मोक्खमग्गं पिच्छेइ) ये मोक्षमार्गको अनुभव करनेवाली है। (ज्ञान सहावेन अम्बरं पिच्छं) जो अपने ज्ञान मई स्वभावसे आकाश तुल्य आत्माको देखनेवाली हैं वही पश्चिम दिशा है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु पश्चिम दिशाके वस्त्रको तो बाहरमें पहनते हैं। अन्तरंगमें जो निज आत्माके अनुभवमें लीनता स्वरूप आत्मानुभूतिमई पश्चिम दिशाका वस्त्र धारण करते हैं। जिनके भीतर आत्माके सर्वांग प्रदेशोंमें निज शुद्ध आत्मानुभवमई मोक्षका मार्ग जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई है, भलेप्रकार झलका करता है। ऐसे ही सच्चे साधु द्रव्यलिंग व भावलिंग दोनोंके धारी दिगम्बर जैन यति हैं।

वायव्य दिशा अंबर कथन ।

वाइवं दिसि उत्तं, विगतं रूवेन अंबरं अमलं ।
विगतं संसार सुभावं, अविगत रूवेन सुद्ध सहकारं ॥ ४१६ ॥

अन्वयार्थ—(वाइवं दिसि उत्तं) अब वायव्य दिशा वस्त्रको कहते हैं (विगतं रूवेन अम्बरं अमलं) जो रूपातीत आकाशके समान निर्मल आत्माका अनुभव है (विगतं संसार सुभावं) जिसमें संसारके किसी स्वभावका विकल्प नहीं है सो ही (अविगत रूवेन सुद्ध सहकारं) स्वभावमें लीन शुद्ध आत्माकी प्रगटताका साधन है। यही वायव्य दिशा वस्त्र है।

भावार्थ—शुद्ध आत्माके प्रकाशका उपाय आत्माके वीतराग विज्ञानमय स्वरूपका अनुभव है। यह अनुभव जिस साधुमें है वही अंतरंग वायव्य दिशा वस्त्रका धारी है।

अविगत परमानंदं, विगतं संसार सरनि सहकारं ।
अविगत रूवे रूवं, अविगत परम केवलं ज्ञानं ॥ ४१७ ॥

अन्वयार्थ—(अविगत परमानंदं) जिसमें परमानंद स्वभाव भरपूर है, (विगतं संसार सरनि सहकारं) जो संसारके मार्गसे दूर होगया है (अविगत रूवे रूवं) जो निश्चल स्वभावमें एकरूप है (अविगत परम केवलं ज्ञानं) जो केवलज्ञानसे तन्मय है ऐसे परमात्म स्वभावका प्रकाश आत्मानुभवरूप वायव्य दिशा वस्त्रसे होता है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु बाहरमें तो वायव्य दिशा वस्त्रको रखनेवाले हैं व अन्तरंगमें आत्मानुभव रूप वस्त्रको रखनेवाले हैं। केवल बाहरसे दिगम्बर हो और अन्तरंगमें स्वात्मानुभव रूप अम्बर न हो तो वे सच्चे दिगम्बर नहीं हैं।

उत्तर दिशा वस्त्र कथन।

उत्तर दिसि उवएसं, वर दंसन ज्ञान चरन तव सुद्धं ।

उत्तर गुनानि धरनं, अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं ॥ ४१८ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर दिसि उवएसं) अब उत्तर दिशा वस्त्रको कहते हैं (वर दंसन ज्ञान चरन तव सुद्ध) उत्तम शुद्ध सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र व सम्यक् तप इन चार आराधनाओंका करना (उत्तर गुनानि धरनं) आत्माके गुणोंको अन्तरंगमें धारण करना (अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं) व आत्माको परमात्माके समान निर्मल और वीतराग अनुभव करना उत्तर दिशा वस्त्र है ।

भावार्थ—उत्तर दिशा वस्त्र वही है जो उत्तम प्रकारसे निश्चय नयके द्वारा सम्यग्दर्शन आदि चार आराधनाओंको अन्तरंगमें धारण कर आपको शुद्ध परमात्माके समान अनुभव करते रहना ।

उत्तर गुन संजुत्तं, मय मिच्छात भाव परिचत्तं ।

उत्तर ऊर्ध सहावं, षय उवसम स्रेनि उत्तरं सुद्धं ॥ ४१९ ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर गुन संजुत्तं) श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित रहना (मय मिच्छात भाव परिचत्तं) मद व मिथ्यात्वके भावोंसे रहित होना (उत्तर ऊर्ध सहावं) उत्तम श्रेष्ठ आत्म-स्वभावको धारण करना (षय उवसम स्रेनि उत्तरं सुद्धं) क्षपक-श्रेणीपर हो या उपशम श्रेणीपर हो उत्तम शुद्ध आत्मानुभव करना यही उत्तर दिशा वस्त्र ग्रहण है ।

भावार्थ—आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानसे आठ नौ, दस व उपशांत मोह ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम श्रेणी कहलाती है । आठवें अपूर्वकरणसे आठ, नौ, दश, बारह गुणस्थान तक क्षपक श्रेणी है । कोई भी श्रेणीपर होवे ऐसा श्रेणी-आरूढ साधु ध्यानमग्न होता है । उस समयका ही आत्मानुभवरूप शुक्लध्यान साधुका उत्तम वीतरागभाव है, वहां कोई मिथ्यात्व व मद नहीं है, वहां तो केवल श्रेष्ठ आत्मीक परिणति ही है, यही उत्तर दिशा वस्त्र ग्रहण है ।

उत्तर दिसि ऊर्ध सहावं, अवगाहन गुन धरन्ति साहूनं ।

उत्तर ज्ञान सहावं, अम्बर सुद्धं च ज्ञान सहकारं ॥ ४२० ॥

अन्वयार्थ—(उत्तर दिसि ऊर्ध सहावं) उत्तर दिशाका वस्त्र यह है कि ऊपर गमन स्वभावधारी श्री सिद्ध भगवान हैं जो (अवगाहन गुन धारिन) अवगाहना गुण धारण करते हैं। ऐसे प्रसिद्ध स्वभावको (सोहंत) साधन करनेवाले साधुओंके भीतर जो (उत्तर ज्ञान सहावं अम्बर सुद्ध च) उत्तम ज्ञान स्वभावी शुद्ध वस्त्र हैं वही (ज्ञान सहकारं) केवलज्ञानको प्रगट करनेमें साधक हैं।

भावार्थ—आत्मा जब सिद्ध होजाता है तब उर्ध्वगमन स्वभावसे ऊपरको जाता है। जहां एक सिद्धका आत्मा तिष्ठता है वहां अनेक भी सिद्ध भगवान अवकाश पाते हैं क्योंकि अमूर्तीक होनेसे कोई बाधा नहीं होती है। ऐसे सिद्ध स्वभावके प्रकाश करनेके लिये परम वीतराग निर्विकल्प आत्माका अनुभव ही उत्तर दिशाका वस्त्र है। इसे साधु अंतरंगमें धारते हैं, तथा बाहरमें उत्तर दिशाको अपना वस्त्र बनाते हैं, ये ही सच्चे दिगम्बर जैन साधु हैं।

ईशान दिशा अम्बर कथन।

ईशान दिसि उवएसं, ईसंति लोय मत्त सुपएसं।
ईसं इष्ट सजोयं, अनिष्टरूवं च सयल तिक्तं च ॥ ४२१ ॥

अन्वयार्थ—(ईसान दिसि उवएसं) अब ईशान दिशा वस्त्रका उपदेश करते हैं (लोय मत्त सुपएसं ईसंति) जहां लोक मात्र अपने आत्माके प्रदेशोंकी ही इच्छा की जावे (इष्ट संजोयं ईसं) आत्मोन्नति कारक उपयोगी संयोगोंकी इच्छा की जावे (अनिष्टरूवं सयल तिक्तं च) और सम्पूर्ण आत्माकी उन्नतिमें बाधक अनिष्ट कारणोंको त्याग किया जावे वही ईशान दिशा वस्त्र है।

भावार्थ—आत्माके प्रदेश लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेश है यही आत्माका अपना क्षेत्र है। इस हीको अपना मान करके और सब परक्षेत्रोंको त्यागना। सबसे मोह हटाना, आत्माको लाभकारी निर्विकल्प समाधिका संयोग मिलाना। आत्माको अहितकारी रागद्वेष, मोहादि भावोंका त्याग करना। निजको ग्रहण कर परका त्याग करना ही ईशान दिशा अम्बर है जिसे जैन साधु अन्तरङ्गमें धारण करते हैं।

इर्या पंथ निवेदं, ईर्य्या इत्यादि समिदि संजुत्तं ।
इष्टं च इष्टरूवं, ज्ञान सहावेन ईस तियलोयं ॥ ४२२ ॥

अन्वयार्थ—(इर्या पंथ निवेदं) जहां विकल्प व रागद्वेष रहित सरल मोक्षमार्गकी भावना की जावे (ईर्य्या इत्यादि समिदि संजुत्तं) ईर्या भाषा आदि पांच समितिको पाला जावे (इष्टरूवं च इष्टं) आत्माके शुद्ध स्वरूपकी चाहना की जावे (ज्ञान सहावेन तियलोयं ईस) ज्ञान स्वभावकी अपेक्षा अपनेको तीन लोकका स्वामी अनुभव किया जावे वही ईशान दिशा है।

भावार्थ—ईशान दिशा वस्त्रधारी मुनि पांच समितियोंको पालते हैं। चार हाथ प्राशुक भूमि आगे देखकर दिनमें चलना इर्या समिति है। शुद्ध भाषा बोलना भाषा समिति है। शुद्ध भोजन भिक्षासे लेना एषना समिति है। देखकर रखना उठाना आदान निक्षेपन समिति है। देखकर निर्जंतु भूमिमें मल मूत्र करना प्रतिष्ठापना समिति है। तथा वे साधु संसारके पदार्थको रञ्च मात्र इच्छा न रखते हुए मात्र सरल आनन्द निर्विकल्प समाधिरूप मोक्षमार्गको प्यार करते हैं, जिस मार्गमें कर्मरूपी बीज नहीं उगता है। या अपने ही शुद्ध स्वभावसे प्रेम करते हैं तथा अपनेको ज्ञान स्वभावकी अपेक्षा त्रिलोकका ज्ञाता अनुभव करते हैं। ऐसे ही साधु ईशान दिशा वस्त्रधारी होते हैं।

इस्टं सुद्ध सहावं, असुद्धपरिनाम सयल तिक्तं च ।
ईसं तिलोय ईसं, ईसं अंबर विसुद्ध सहकारं ॥ ४२३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं इस्टं) जिनको शुद्ध आत्मीक स्वभाव प्यारा है (असुद्धपरिनाम सयल तिक्तं च) व जिन्होंने सर्व अशुद्ध परिणामोंको त्याग दिया है (ईसं तिलोय ईसं) जो तीन लोकके प्रभुत्व स्वरूप परमात्माको चाहते हैं वे साधु (ईसं अंबर विसुद्ध सहकारं) ईशान दिशाके वस्त्रके धारी हैं जो आत्मशुद्धिका साधन है।

भावार्थ—सच्चे दिगम्बर जैन साधु वे ही हैं जो बाहरमें नग्न रहकर ईशान दिशारूपी वस्त्रके धारण करनेवाले हैं तथा अंतरंगमें सर्व रागादि भावोंसे रहित शुद्ध आत्माके स्वभावके अनुभव स्वरूप ईशान दिशारूपी वस्त्रके धारनेवाले हैं।

ऊर्द्ध दिशा अम्बर कथन ।

ऊर्ध दिसा सा उत्तं, ऊर्ध स सहाव निम्मलं सुद्धं ।
ऊर्ध ऊर्ध सरूवं, ऊर्ध ज्ञानं पि केवलं सुद्धं ॥ ४२४ ॥

अन्वयार्थ—(सा ऊर्ध दिसा उत्तं) वही साधुओंके ऊर्ध दिशाका वस्त्र कहा गया है जो (ऊर्ध स सहाव निम्मलं सुद्धं) श्रेष्ठ आत्मीक स्वभावको मल रहित शुद्ध अनुभव किया जावे (ऊर्ध ऊर्ध सरूवं) वह श्रेष्ठ स्वभाव सिद्ध परमात्माके समान है। (ऊर्ध ज्ञानं पि केववं सुद्धं) वही श्रेष्ठ ध्यान स्वाधीन शुद्ध ध्यान है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु ऊपरकी तरफ भी ऊर्द्ध दिशा वस्त्रको रखते हैं। अन्तरंगमें अपने आत्माके श्रेष्ठ कर्म रहित वीतराग स्वरूपका ध्यान करते हैं। आपको सिद्ध परमात्मवत् ध्याते हैं। यही आत्म-ध्यान शुद्ध है व निर्विकल्प है।

सुद्धं च भाव सुद्धं, असुद्ध परिनाम सयल तिक्तं च ।
सुद्धं जिन उवएसं, ऊर्ध अम्बर विज्ञान सहकारं ॥ ४२५ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध अम्बर) ऊर्ध दिशाका अन्तरंग श्रेष्ट वस्त्र (सुद्धं च भावं सुद्धं) शुद्ध है। जहां भावोंमें शुद्धोपयोग है (असुद्ध परिनाम सयल तिक्तं च) सर्व ही रागादि अशुद्ध भावोंको जिसने त्याग दिया है (सुद्धं जिन उवएसं) जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ ऐसा ही भाव लिंगरूप शुद्ध उपयोग (विज्ञान सहकारं) केवलज्ञानका साधक है।

भावार्थ—ऊर्द्ध दिशा सम्बन्धी वस्त्र अन्तरंगमें एक मात्र शुद्धोपयोग है, इन्हीं भावोंके द्वारा शुक्लध्यान प्रगट होता है, जो केवलज्ञानका कारण है, बाहरी वस्त्र नग्न दिगम्बरत्व है।

अधो दिशा अम्बर कथन ।

अर्ध दिसि उवएसं, ज्ञानं ज्ञानं च दिष्टि सद्भावं ।
अर्ध ऊर्ध सहावं, अप्पा परमप्प विगतरूवेन ॥ ४२६ ॥

अन्वयार्थ—(अर्ध दिसि उवएसं) अब अधो दिशा अम्बरका कथन करते हैं (ज्ञानं ज्ञानं च दिष्टि सद्भावं) सम्यग्दर्शन सहित आत्मज्ञान व आत्माका ध्यान अधो दिशा वस्त्र है (अर्ध ऊर्ध सहावं) परमात्मासे व्यवहारनयसे अधो रहनेवाला यह आत्मा निश्चयसे परमात्माके समान श्रेष्ठ स्वभावधारी है। अर्थात् (अप्पा परमप्प विगत रूवेन) आत्मा परमात्माके बराबर अमूर्तीक है। ऐसा ध्यान ही अधो दिशा वस्त्र है।

भावार्थ—दिगम्बर जैन साधु बाहरमें अधो दिशामई वस्त्र रखते हैं। अन्तरंगमें वे अपने ही आत्माको शुद्ध परमात्माके समान वीतराग विज्ञानमई अनुभव करते हैं।

ॐ वंकारं ह्रियंकारं, श्रियंकारं ति अर्थ सुद्धं च ।
पंच स्थान सयुत्तं, सम्मत्तं सुद्ध समय सर्वज्ञं ॥ ४२७ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वंकारं ह्रियंकारं श्रियंकारं) ॐ, ह्रीं, श्रीं इन तीन पदोंका ध्यान करते हुए (सुद्धं च ति अर्थं) शुद्ध रत्नत्रयका विचार करते हुए तथा (पंच स्थान सयुत्तं) पांच परमेष्ठीका स्वरूप चिंतवते हुए (सुद्ध समय सर्वज्ञं सम्मत्तं) शुद्ध आत्माको सर्वज्ञ समान ध्याना यही सम्यग्दर्शनका आचरण है।

भावार्थ—अपने भौंहोंके मध्यमें व नासिकाकी नोकपर व अन्य भी कहीं ॐ, ह्रीं या श्रीं इन तीन मंत्र पदोंमेंसे किसीको बिराजमान करके पांच परमेष्ठीका स्वरूप विचारते हुए निश्चय रत्नत्रयको विचारना। अर्थात् ज्ञानस्वरूप शुद्ध आत्मामें लीन होना योग्य है। यही अधो दिशा वस्त्र धारण है।

दिसि अम्बर सं सुद्धं, दिगम्बर ज्ञान ज्ञान सहकारं ।
अम्बर दिग् दिष्टं च, ज्ञान सहावेन अम्बरं भनियं ॥ ४२८ ॥

अन्वयार्थ—(दिसि अम्बर सं सुद्धं) दिशाओंका वस्त्र परम शुद्ध है यह बाहरी व अन्तरंग (दिगम्बर

ज्ञान ज्ञान सहकारं) दिगम्बरका स्वरूप शुद्ध आत्मज्ञान व ध्यानका सहकारी है (अम्बर दिग् दिट्ठं च) बाहरी अम्बर दिशाओंको देखना चाहिये (ज्ञान सहावेन अम्बरं भनियं) भीतर ज्ञान स्वभावमें रमण करना अन्तरंग अम्बर कहा गया है।

भावार्थ—यहां ग्रन्थकर्ताने दिगम्बर जैन साधुका बडा ही सुन्दर विवेचन किया है। और यह झलकाया है कि मात्र बाहरी नग्न रहनेसे कल्याण न होगा। किन्तु बाहरी परिग्रहके साथ साथ अन्तरंग परिग्रहका भी त्याग जिसके होगा वही दिगम्बर जैन साधु है। ज्ञान स्वभावमें रमणकर आत्मानुभव करना अन्तरंग भावलिंगरूप दिशाका वस्त्र है। वहां सर्व मिथ्यात्व, रागद्वेषादि विभाव भावोंका त्याग हो जाता है। निश्चय रत्नत्रयमई परम सामायिक भावोंको धारना ही अन्तरंग दिशाका वस्त्र है।

निर्ग्रंथ स्वरूप कथन।

निःचेल सुद्ध सुद्धं, अम्बर सुद्धं च निम्मलं विमलं।
अमल अमल सहावं, ज्ञान सहावेन सुद्ध वयधरनं ॥ ४२९ ॥

अन्वयार्थ—(निःचेल सुद्ध सुद्धं) वस्त्र रहित साधु अन्तरंग व बहिरंग शुद्ध परिग्रह रहित होते हैं (अम्बर सुद्धं च निम्मलं विमलं) अन्तरंगमें शुद्ध कर्मकलंक रहित व रागादि रहित (अमल अमल सहावं) परम निर्मल आत्माका स्वभाव है जहां (ज्ञान सहावेन सुद्ध वयधरनं) ज्ञान स्वभावमें स्थिर होना ही शुद्ध व्रतका धरना है।

भावार्थ—निर्ग्रंथ या अचेलक दिगम्बर जैन मुनि बाहरमें वस्त्र रहित होते हैं परंतु अन्तरंगमें शुद्ध आत्मीक भावके अनुभव करनेवाले होते हैं। बाहरी व्रत पांच महाव्रत आदि हैं परंतु अन्तरंग व्रत शुद्ध स्वभावमें रमण करना है।

ग्रन्थं सहाव उत्तं, जं ग्रहनं असुद्ध भाव परिनामं।
ग्रन्थं विमुक्त तिविहं, कम्मानं मुक्त सरनि संसारे ॥ ४३० ॥

अन्वयार्थ—(ग्रन्थं सहाव उत्तं) अब निर्ग्रंथका स्वभाव कहते हैं (जं असुद्ध भाव परिनामं ग्रहनं) अशुद्ध भावोंके परिणमनको उपादेय मानना व उसमें तिष्ठना ग्रंथ है (ग्रन्थं विमुक्त) इस ग्रंथसे छूटना निर्ग्रंथ है (तिविहं कम्मानं संसारे सरनि मुक्त) तीन प्रकार कर्मोंसे छूटना जो संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं, यथार्थ निर्ग्रंथ होना है।

भावार्थ—पर पदार्थका व पर भावोंका ग्रहण ग्रंथ है। निर्ग्रंथ वही है जो सर्व पर भावोंका व कषायादिका त्यागी है; जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म सहित संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं, इनसे रहित शुद्ध आत्माका जो ध्याता है वही निर्ग्रंथ है।

वाहिज भितर ग्रंथाः, मुक्ता संसार सरनि वावारे।
मुक्ता राग कषायं, मुक्ता पुग्गल सहाव सम्बन्धं ॥ ४३१ ॥

अन्वयार्थ—(बाहिज भितर ग्रंथाः संसार सरनि वावारे मुक्ता) निर्ग्रंथ साधु बाहरी व भीतरी परिग्रहोंको तथा संसार मार्गको भ्रमानेवाले आरम्भोंको छोड चुके हैं (मुक्ता राग कषायं) राग भावको व क्रोधादि कषायोंको दमन कर चुके हैं (मुक्ता पुग्गल सहाव सम्बन्धं) तथा सर्व पुद्गल सम्बन्धको छोड चुके हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु वही हैं जिसके क्षेत्र मकानादि बाहरी दश प्रकारकी परिग्रह व मिथ्यात्व आदि चौदह प्रकार अन्तरंग परिग्रह नहीं है। जिसने खेती, व्यापारादि व गृह सम्बन्धी सर्व व्यापारोंको भलेप्रकार त्याग दिया है, सर्व संसारके प्रपंचोंसे राग हटा लिया है, क्रोधादि कषायोंको दमन किया है। सिवाय एक आत्मीक सामायिक भावके सर्व कर्म नोकर्मादि पौद्गलिक सम्बन्धसे अपना नाता तोड दिया है।

सिंघासन ग्रह छित्तं, जानहि सभाव असुह परिनामं।
पुग्गल सहाव रूवं, ज्ञान सहावेन तिक्तं संसारे ॥ ४३२ ॥

अन्वयार्थ—(सिंघासन ग्रह छित्तं सभाव असुह परिनामं जानहि) सिंघासन, घर क्षेत्रादिका स्वभाव अशुभ परिणामोंको बांधा करना है ऐसा साधु जानते हैं इसलिये (ज्ञान सहावेन) अपने आत्माके ज्ञान स्वभावके द्वारा साधु महाराजने (पुग्गल सहाव रूवं संसारे तिक्तं) पुद्गल स्वभावमई सर्व सांसारिक भावोंको त्याग दिया है।

भावार्थ—सिंघासन, मकान, खेत आदि बाहरी परिग्रह अन्तरंग भावोंको बिगाडनेमें निमित्त कारण है, ममता पैदा करनेवाले हैं इसलिये इनको त्यागते हुए साधुओंने सर्व ही विभावोंको त्याग दिया है। रागद्वेषादिसे मुंह मोड लिया है। एक अपने शुद्ध ज्ञायक भावको अपना मानके उसीमें प्रेम स्थिर कर लिया है। अर्थात् वे उसीमें आसक्त हैं। परिग्रह सम्बन्धी भाव हिंसा है।

पुरुषार्थ०में कहा है—

हिंसापर्यायत्वात्सिद्धा हिंसान्तरङ्गसंगेषु। बहिरंगेषु तु नियतं प्रयातु मूर्छैव हिंसात्वम् ॥ ११९ ॥

भावार्थ—अन्तरंग परिग्रह चौदह प्रकार मिथ्यात्व, वेद, रागद्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ ये तो भाव हिंसा है ही क्योंकि आत्माके शुद्ध वीतराग भावके घातक हैं। बाहरी दश प्रकारके परिग्रह, क्षेत्र, मकान, धन, धान्य, चांदी, सोना, दासी, दास, कपडे, वर्तन अंतरंग मूर्छा पैदा करनेका निमित्त है इसलिये इनसे भी भाव हिंसा होती है। तथा ये द्रव्यहिंसाके भी कारण हैं। ऐसा जान निर्ग्रन्थ साधु दोनों प्रकारकी परिग्रहका त्याग देते हैं।

सिंघासन परिग्रह कथन।

सिंहासनं स उत्तं, चौ गइ संसार आसनं सहसा।
बंधं चौविहि उत्तं, ज्ञानसहावेन आसनं मुक्कं ॥ ४३२ ॥

अन्वयार्थ—(स सिंहासनं उत्तं) वास्तवमें वही सिंहासन कहा गया है (चौ गइ संसार आसनं सहसा) जो यह आत्मा अपने सिद्ध स्वभावमई आसनको छोडकर यकायक चार गति रूपी संसारके आसनोंको प्राप्त करता रहता है तथा (चौविहि बंधं उत्तं) चार प्रकार कर्म बंधको भी सिंहासन कहा गया है। निर्ग्रंथोंने (ज्ञानसहावेन आसनं मुक्कं) अपने आत्मज्ञानके स्वभावमें थिर होकर इन सर्व आसनोंका मोह त्याग कर दिया है।

भावार्थ—राजागण दीक्षा लेते हुए राज्य सिंहासनको छोड देते हैं। यह तो बाहरी सिंहासन त्याग है। अंतरंग सिंहासन यह है जो यह जीव शुद्ध आत्मीक भावमई आसनको छोडकर चार

गतिमें भ्रमानेवाले अ… भावरूपी आसनोंको … है तथा उन भावोंसे प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग इन चार प्रकार कर्मबंधको करता है, … मोंके उदयसे चारों गतियोंमें भ्रमण किया करता है। इन सर्व विभाव भावरूपी आसनोंको भी आत्मानुभव रूपी निज आसनमें थिर होकर निर्ग्रंथ साधु छोड देते हैं यही यथार्थ सिंहासन परिग्रह त्याग है।

आसन सहाव सहियं, आस्रवै कम्मं च पुन्यं पावं च।
आस्रवै द्रव्य कम्मं, ज्ञानबलेन आसनं मुक्कं ॥ ४३४ ॥

अन्वयार्थ—(आसन सहाव सहियं) जो ऊपर लिखित चार गतिमें भ्रमानेवाले भावरूपी आसनोंके भीतर बैठता रहता है वह मोही प्राणी (पुन्यं च पावं च कम्मं आस्रवै) पुण्य पाप कर्मोंका आस्रव करता है (आस्रवै द्रव्य कम्मं) वही सर्व आठ प्रकार द्रव्य कर्मोंका आस्रव करता है ऐसा जानकर निर्ग्रंथ साधुओंने (ज्ञानबलेन आसनं मुक्कं) आत्मज्ञानके बलसे सर्व प्रकारके निज आसनके प्रतिपक्षी आसनोंका त्याग कर दिया है।

भावार्थ—जिन २ रागद्वेषादि भावोंमें ठहरनेसे पुन्यका व पापका अथवा आठों ही प्रकारके कर्मोंका बंध होता है उन सर्व भावोंका निर्ग्रंथ साधुओंने ममत्व त्याग दिया है। मिथ्यात्वसे लेकर सयोग केवली नामके तेरहवें गुणस्थान तक मोह व योगका सम्बन्ध है। इसलिये कर्मोंका आस्रव होता है। इसी लिये निर्ग्रंथ साधुओंने मोह व योगसे अथवा इनके विस्ताररूप गुणस्थानोंसे मोह त्याग दिया है। केवल मात्र एक निज आत्माके शुद्ध पदसे प्रेम कर लिया है, जहां कोई प्रकारका बंध नहीं है। इस सिंहासन पर बैठकर परके आसनोंको त्याग देना ही सिंहासन परिग्रह त्याग है।

ग्रह परिग्रह कथन।

ग्रहनं संसार सुभावं, दुविहि कुज्ञान ग्रहन उत्पन्नं।
पुग्गलसहाव ग्रहनं, तिक्कंति मन वयन काय संसुद्धं ॥ ४३५ ॥

अन्वयार्थ—(दुविहि कुज्ञान ग्रहन उत्पन्नं) दो प्रकार मिथ्याज्ञानके ग्रहणसे उत्पन्न (संसार सुभावं ग्रहनं)

संसारके स्वभावको ग्रहण करना तथा (पुग्गल सहाव ग्रहनं) पौद्गलिक भावोंको ग्रहण करना ग्रह परिग्रह है। निर्ग्रंथ साधु (मनवयन काय संसुद्धं तिक्तंति) मन वचन कायको शुद्ध करके इस ग्रह परिग्रहका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें तो ग्रह परिग्रहको छोडते हैं, अंतरंगमें उन सर्व सांसारिक रागद्वेष मोह पापोंको छोडते हैं जो भाव मिथ्या मतिज्ञान व मिथ्या श्रुतज्ञानके द्वारा पैदा होते हैं। तथा वे एक निजात्मीक भावके सिवाय सर्व पुद्गल कर्म जनित रागादि भावोंको व संकल्प-विकल्पोंको मन, वचन, कायकी शुद्धताके साथ छोड देते हैं। परको आपका मानना ग्रह परिग्रह है। जिसने पर माननेको त्यागकर निज स्वभावमें रमण किया उसीने ग्रह परिग्रहका त्याग किया।

उत्पाद्यं विधिग्रहनं, संबंधं सरनिबंध मित्तानं।
ग्रहनं कम्म सहावं, ज्ञान सहावेन तिक्त ग्रहभेयं ॥ ४३६ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पाद्यं विधिग्रहनं) उत्पन्न किये हुए कर्मोंको ग्रहण करना ग्रह परिग्रह है (संबंध सरनिबंध मित्तानं) इसी मोहसे बंध करनेवाले सम्बन्धीकी प्राप्तिका मार्ग बढता है (कम्म सहावं ग्रहनं) अर्थात् कर्मजनित भावोंको ग्रहण करना ग्रह परिग्रह है। (ज्ञान सहावेन तिक्त ग्रहभेयं) इसीलिये निर्ग्रंथ साधु ग्रह नामके परिग्रहको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जो कर्म इस समयसे पूर्व समयोंमें जीवने अपने भावोंके निमित्तसे संचित किये हैं वे सर्व उत्पाद्य कर्म हैं। उनको अपना मानना ग्रह परिग्रह है। ये बंध आठ कर्म बंधकी परिपाटीको बढानेवाले हैं। उन्हींके उदयसे चार गतिमें भ्रमण होगा, उनमें रागद्वेष होगा, रागद्वेषसे फिर बंध होगा। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इन सर्व प्रकारके पौद्गलिक कर्मोंसे ममत्व करना ग्रह परिग्रह है। निर्ग्रंथ साधुजन इस सर्वसे मोह त्यागकर एक अपने आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करते हैं। यही ग्रह परिग्रह त्याग है।

क्षिति परिग्रह कथन।

छेत्तं सहाव उत्तं, छेत्तं अनादि कम्म सद्भावं।
चौगइ गमन सहावं, असयनं सयन क्षेत्त परिनामं ॥ ४३७ ॥

अन्वयार्थ—(छेत्तं सहाव उत्तं) क्षेत्र परिग्रहका स्वभाव कहा जाता है। (छेत्तं अनादि कम्म सद्भावं) अनादिकालसे कर्मोंकी सत्ताका चले आना क्षेत्र है (चौगइ गमन सहावं) इसीके कारण चारों गतियोंमें जीवका भ्रमण रहता है (असयनं सयन क्षेत्त परिनामं) जागृत व निद्रित दो ही इस क्षेत्रकी अवस्था हैं।

भावार्थ—जहां धान्य पैदा होते हैं उस भूमिको खेत कहते हैं। साधु बाहरी खेत परिग्रहके त्यागी हैं। अन्तरंगमें खेत अनादिकालसे चले आए हुए कर्मोंका सम्बन्ध है। इसी खेतके कारण कर्मोंके फलसे चारों गतिमें यह जीव भ्रमण करता है। कर्मोंकी सत्तामें जब सम्यक्त अवस्था होती है तब तो यह प्राणी अपने स्वरूपमें जागता है और जब मिथ्यात्व अवस्था होती है तब अपने स्वरूपमें शयन करता है। इस कर्मरूपी खेतके मोहसे भी निर्ग्रंथ विरक्त हैं।

छेत्तं उवनं उत्तं, छेत्तं संसार सरनि सद्भावं।
छेत्तं भवनसहावं, ज्ञान सहावेन छेत्तं तिक्तंति ॥ ४३८ ॥

अन्वयार्थ—(छेत्तं उवनं उत्तं) क्षेत्र उपवनको कहा गया है (छेत्तं संसार सरनि सद्भावं) अंतरंग क्षेत्र संसार मार्गकी सत्ताको कहा गया है (छेत्तं भवन सहावं) जहां खेत है वहां उत्पत्ति होती रहती है यही खेतका स्वभाव है (ज्ञान सहावेन छेत्तं तिक्तंति) निर्ग्रंथ साधु ज्ञान स्वभावमें रमण करके बहिरंग व अन्तरङ्ग क्षेत्रको त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां बीज बोए जावें व फल उपजे उसे ही क्षेत्र कहते हैं, बाहरमें उपवन या खेत क्षेत्र हैं। अन्तरङ्गमें संसारके फलोंको उत्पन्न करनेवाला कर्मरूपी खेत है। खेतका स्वभाव ही सदा फलोंको उत्पन्न करना है। ऐसा जानकर साधुजन बाहरी व अन्तरंग दोनों प्रकारके क्षेत्र परिग्रहको त्याग देते हैं व अपने ज्ञान स्वभावमें एकाग्र होजाते हैं। वे कर्मके प्रपंच-जालसे विरक्त हो कर्म रहित पदकी भावना करते हैं।

सुवर्ण परिग्रह कथन।

सुवरण भाव स उत्तं, सुरैयं अनृत अभाव अथिरानं।
चपल सहाव सुवर्णं, तिक्कंति ज्ञान सुद्ध सहकारं ॥ ४३९ ॥

अन्वयार्थ—(सुवरण भाव स उत्तं) सुवर्ण स्वभाव उसे कहा गया है जो (अनृत अभाव अथिरानं सुरैयं) मिथ्या, कल्पित व अथिर भावोंमें रंजायमान हुआ जावे (चपल सहाव सुवर्णं) भावोंमें चंचलता होना ही सुवर्ण है (सुद्ध ज्ञान सहकारं तिक्कंति) तत्वज्ञानी शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे इस सुवर्ण परिग्रहको त्याग देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें सुवर्णके त्यागी हैं, अंतरंगमें सुवर्ण सदृश भावोंके त्यागी हैं। संसार शरीर भोगोंमें व इनके लिये नानाप्रकार संकल्प विकल्पोंमें रंजायमान होना सुवर्ण है। ये संसारकी अवस्थाएं अथिर हैं, मिथ्या हैं, व कल्पित हैं। प्राणियोंने मोहवश किन्हींको अच्छा व किन्हींको बुरा मान लिया है। आत्मामें समतारूप न होकर इंद्रिय विषयोंकी ही इच्छासे चंचल रहना एक तरह सुवर्ण भाव है। जो अच्छा दीखे वह सुवर्ण है। इन सर्व सुवर्ण सदृश संसारसे मोह बढानेवाले भावोंसे साधुजन विरक्त रहते हैं। यही सुवर्ण परिग्रह त्याग है।

धनधान्य परिग्रह कथन।

धन धान्य अभ्र पटलं, विनास रूवेन चेयना रहियं।
अनृत असत्य सहियं, धनधान्य तिक्त सुद्ध सहकारं ॥४४०॥

अन्वयार्थ—(धन धान्य अभ्र पटलं) धन धान्य परिग्रह बादलोंके समान (विनास रूवेन) नाशवंत है (चेयना रहियं) ज्ञान चेतनासे रहित (अनृत असत्य सहियं) जो कुछ मिथ्या व क्षणिक संसारकी अवस्थाएं हैं वे सर्व (धनधान्य) धन धान्य हैं इनको (सुद्ध सहकारं तिक्त) शुद्ध भावोंकी सहायतासे साधुओंने त्याग दिया है।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें धन धान्य परिग्रहके त्यागी हैं, अंतरंगमें अपनी ज्ञान चेतना रूप

स्वानुभूतिके सिवाय जितनी रागद्वेष संकल्प विकल्प रूप अथिर व मिथ्या विभाव परिणतियें हैं वे धन धान्य हैं उनके त्यागी हैं। शुद्ध ज्ञानके अनुभवकी सहायतासे निर्ग्रंथ साधुओंने इन सर्व धन धान्योंका त्याग कर दिया है।

कुप्य परिग्रह कथन।

कुप्पं कुधर्म जुत्तं, अंधं अधुवं च अधुव स सहावं।
अज्ञान मिच्छ सहियं, ज्ञानबलेन कुप्प तिक्कं च ॥ ४४१ ॥

अन्वयार्थ—(कुप्पं कुधर्म जुत्तं) वस्त्र परिग्रह व वस्त्र स्वभाव रूप कुधर्म सहित परिणाम (अंधं अधुवं च) अज्ञानरूप अन्ध है व नाशवंत है (अधुव ससहावं) उसका स्वभाव ही अनित्य है (अज्ञान मिच्छ सहियं) जो कुछ भी मन वचन कायकी क्रिया मिथ्या ज्ञान व मिथ्या दर्शन सहित है सो (कुप्प) कुप्य परिग्रह है उसे (ज्ञानबलेन तिक्कं च) निर्ग्रंथ साधु आत्मज्ञानके बलसे छोड देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहर तो वस्त्रका त्याग करते हैं अंतरंगमें शुद्ध भावके आच्छादनेवाले सर्व ही मिथ्या दर्शन मिथ्या ज्ञान संयुक्त भावोंको, रागद्वेषोंको, संकल्प विकल्पोंको त्याग देते हैं। कर्मजनित सर्व ही भाव नाशवंत हैं। उनमें रंजायमान होना अन्धपना है व मूर्खता है ऐसी मूर्खताका त्याग सो ही कुप्य परिग्रह त्याग है।

भाजन परिग्रह कथन।

भाजन मिथ्या सहावं, संसारे दुःख भाजनं उत्तं।
भाजन विकह स उत्तं, भाजन तिक्कंति ज्ञानसहकारं ॥ ४४२ ॥

अन्वयार्थ—(भाजन मिथ्या सहावं) भाजन वर्तनको कहते हैं, बाहरमें वर्तनोंका रखना परिग्रह है। अन्तरंगमें भाजनके समान मिथ्यात्व भावको रखना परिग्रह है, यह मिथ्या दर्शन (संसारे दुःख भाजनं उत्तं) संसारमें दुःखोंका भाजन कहा गया है (विकह स भाजन उत्तं) स्त्री आदि विकथाओंमें रंजायमान

होना भी भाजन परिग्रह है (ज्ञान सहकारं भाजन निक्ंति) ज्ञानकी सहायतासे ऐसे भाजनका त्याग साधुजन कर देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु सिवाय पीछी व कमण्डलके और कोई वर्तन नहीं रखते हैं। आरम्भकारक सर्व भाजनोंके त्यागी हैं। अन्तरंगमें सर्व प्रकारके सांसारिक दुःखोंको देनेवाले मिथ्यात्व भावके त्यागी हैं। तथा वे कभी स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा व राजा कथामें रंजायमान होकर वृथा पापको नहीं बांधते हैं। यही भाजन परिग्रहका त्याग है।



दुपद परिग्रह कथन।

दुपदं दुबुहि जुत्तं, अज्ञानं ज्ञान सुद्धपद रहियं।
दुपदं अनिष्ट दिष्टं, इष्ट विओय दुपद तिक्तं च ॥ ४४३ ॥

अन्वयार्थ—(दुपदं दुबुहि जुत्तं) दुपद परिग्रह दासी दासको कहते हैं, अन्तरंगमें दुपद परिग्रह दुर्बुद्धि सहित भावको कहते हैं (अज्ञानं ज्ञान सुद्धपद रहियं) या उस मिथ्या ज्ञानको कहते हैं जहां शुद्ध ज्ञानमई निज पदका अनुभव नहीं है (अनिष्ट दिष्टं दुपदं) जहां आत्माको अहितकारी भावोंपर दृष्टि है वह दुपद है (इष्ट विओय दुपद) या आत्मध्यान जो आत्माको हितकारी है उससे वियोग है सो दुपद है (तिक्तं च) ऐसे दुपद परिग्रहके त्यागी निर्ग्रंथ साधु होते हैं।

भावार्थ—निज पद आत्माका श्रद्धान ज्ञान व चारित्रमई आत्मानुभव है इससे विरुद्ध भाव सो सब दुपद, अपद, व दुःखकारी परपद है। आत्माका अहित परपदमें रमणसे है व आत्माका हित निज पदमें रमणसे है। यह दुपद परिग्रह धारी निज पदमें न रमण कर परपदमें ही रमण किया करता है। निर्ग्रंथ साधु इस पर पद रमणको त्यागकर निज पदमें रमण करते हुए दुपद परिग्रहके त्यागी होते हैं।

दुपदं दुर्मति जुत्तं, हिंसानंदी च दुर्बुधिं जुत्तं।
दुपदं निगोय भावं, ज्ञानसहावेन दुपद तिक्तं च ॥४४४॥

अन्वयार्थ—(दुपदं दुर्मति जुत्तं) दुपद कुमति ज्ञान सहित भाव है (हिंसानंदी च दुर्बुधि जुत्तं) हिंसानन्दी और मिथ्या शास्त्रज्ञान सहित हैं (दुपदं निगोयभावं) दुपद निगोदमें लेजानेवाला भाव है। (ज्ञानसहावेन दुपद तिक्तं च) इसलिये निर्ग्रंथ साधु ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर दुपद परिग्रहका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—स्वपदसे उलटा दुपद है। जिन भावोंमें रमण करनेसे यह प्राणी मोक्षमार्गसे छूट जावे वह सब भावोंकी श्रेणी दुपद है। कुमतिज्ञान व कुश्रुतज्ञानसे वासित परिणाम संसारवर्द्धक विषय भोगोंकी तृष्णामें फंसा रहता है, आत्मानंदको कभी श्रद्धान नहीं करता है। वह धनादिके हेतु परको पीडा देनेमें संकोच नहीं रखता है। हिंसानंदी रौद्रध्यानमें वर्तन करता है। महा अज्ञानरूप भाव जिससे धर्मके जाननेकी बिलकुल उत्कंठा न हो, जो पापमें धर्म मानता है ऐसे भावोंसे यह जीव निगोद पर्यायमें चला जाता है। वहां बहुत ही आत्मज्ञान व्यक्त रहता है। निर्ग्रंथ साधु जैसे बाहर दासी दास दुपदका त्याग करते हैं वैसे वे अन्तरंगके दुपद परमें आसक्त होनेरूप भावोंको भी त्याग देते हैं।

चतुष्पद परिग्रह कथन।

चतुपद चौ गइ सहियं, चौगइ चौ कशाय संजुत्तं।
धाय चवक्कय सहियं, चौविहि बन्धं च बन्ध सहकारं ॥४४५॥
ठिदि अनुभाग स उत्तं, प्रकृति प्रदेश बन्ध सुह असुहं।
चौपद बन्ध सहावं, ज्ञान बलेन चौपदं तिक्तं ॥ ४४६ ॥

अन्वयार्थ—(चतुपद चौ गइ सहियं) चतुपद परिग्रह चार गति सम्बन्धी परिग्रह है (चौगइ चौकषाय संजुत्तं) तथा चार गतिमें होनेवाले चारों प्रकारके कषायोंसे मिला हुआ भाव है (धाय चवक्कय सहियं) चार घातीय कर्मोंके उदयरूप भाव हैं (चौविहि बन्धं च बन्ध सहकारं) चार प्रकार बंधरूप भाव है जिनसे कर्मोंका बंध होता है (ठिदि अनुभाग प्रकृति प्रदेश बन्ध सुह असुहं स उत्तं) वह बंध स्थिति अनुभाग, प्रकृति

प्रदेशरूप शुभ तथा अशुभ कहा गया है (चौपद बंध स्हावं) इस तरहके चार प्रकारके बंधके स्वभावको (ज्ञान बलेन चौपदं तिक्तं) ऐसे चतुर्पद परिग्रहको आत्म-ज्ञानके बलसे साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु बाहरमें तो गो भैंस आदि चार पगवालोंके परिग्रहको त्यागते हैं। अंतरंगमें उन सर्व भावोंको चार पदरूप जानकर त्याग देते हैं जैसे (१) चार गतिकी नानाप्रकारकी अवस्थाओंमें रागद्वेष भावको। वे न तो देवगति व मानवगतिमें मोह करते हैं, न नर्क व पशुगतिसे द्वेष करते हैं। (२) चार गतिमें लेजानेवाले अर्थात् चार गतिका बंध करानेवाले कषाय भावको। (३) चार प्रकार कर्म बंधको जो पुण्य पाप रूपसे प्रकृति, प्रदेश, स्थिति अनुभाग रूप होता है तथा (४) चार घातीय कर्मोंके उदयरूप भावको अर्थात् अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अशांतभाव तथा आत्मबलकी निर्बलताको। इत्यादि सर्व विभावोंको त्याग देते हैं। यही चतुर्पद परिग्रह त्याग है।

जानस परिग्रह कथन।

जानसक्रमय सहावं, कुश्रुति कुअवधि दिस्टि संचरनं।
व्रत संजम तव उत्तं, ज्ञानविज्ञान जानसं तिक्तं ॥ ४४७ ॥

अन्वयार्थ—(जानस क्रमय सहावं) बाहर जानस रथादि सवारी है अंतरंग जानस कुमतिमय स्वभाव है तथा (कुश्रुत कुअवधि दिस्टि संचरनं) कुश्रुत व कुअवधि ज्ञानमें लीन होना है (व्रत संजम तव उत्तं) इस कुज्ञान सहित जो व्रत, संयम, तपमें आरूढ होना कहा गया है वही जानस है ऐसे (जानसं) वाहनको (ज्ञान विज्ञान तिक्तं) सम्यग्ज्ञानके बलसे निर्ग्रंथ साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु किसी रथ, गाडी, ऊंट, घोडा, हाथी, पालकी आदि सवारीपर नहीं चढते हैं। वे बाहरके सर्व वाहनोंके त्यागी होते हैं। वे अंतरंग वाहनोंके भी त्यागी होते हैं। मिथ्यात्व सहित मतिश्रुत अवधिज्ञान विपर्यय मार्गमें प्रेरित करता है। इस विपरीत बुद्धि सहित श्रावक व मुनिके व्रत पालना संयम रखना व तप करना यह सब मिथ्या है, संसारवर्द्धक है। इस मिथ्या भावरूपी सवारीको भी निर्ग्रंथ साधु आत्मज्ञानके अनुभवके बलसे छोड देते हैं। वे यथार्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रके पालक होते हैं।

वाहिज ग्रंथ सुभावं, संसारे सरनि दुःख वीजंमि ।
तिक्कंति सुद्ध सुद्धं, ज्ञानवलेन कम्म विलयंती ॥ ४४८ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सुद्धं) परम शुद्ध भाव धारी निर्ग्रंथ साधु (संसारे सरनि दुःख वीजंमि वाहिज ग्रन्थ सुभावं तिक्कंति) संसार मार्गमें भ्रमण करानेवाले व दुःखोंके बीजरूप बाहरी परिग्रहके ऊपर लिखित स्वभावोंको त्याग देते हैं (ज्ञानवलेन कम्म विलयंती) वे आत्मज्ञानके बलसे सर्व परिग्रहको त्याग कर्मोंका नाश करते हैं ।

भावार्थ—ऊपर लिखित बाहरी परिग्रहको जो बाहरसे त्यागते हैं व अन्तरंगमें उन बाहरी परिग्रह सम्बन्धी भावोंको त्यागते हैं जो भाव संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं व चारों गतिके दुःखोंको पैदा करनेवाले हैं । आत्मज्ञानके ध्यानमें लीन होकर वे निर्ग्रंथ साधु अपने पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करते हैं ।

अभ्यंतर परिग्रह कथन ।

आभिंतर ग्रंथ स उत्तं, मनवयकायेन ग्रंथ संवरनं ।
ग्रंथ सहावं पिच्छदि, ज्ञानवलेन सयल तिक्कं च ॥ ४४९ ॥

अन्वयार्थ—(आभिंतर ग्रंथ स उत्तं) भीतरी परिग्रह उसको कहा गया है जो (मनवयकायेन ग्रंथ संवरनं) मन वचन कायसे अपनेको रागादि भावोंसे वेष्ठित कर लेना ऐसा परिग्रह धारी (ग्रंथ सहावं पिच्छदि) रागादि भावोंका ही अनुभव करता है । निर्ग्रंथ साधु (ज्ञानवलेन सयल तिक्कं च) आत्मज्ञानके बलसे इस सर्व ही भीतरी परिग्रहका त्याग कर देते हैं ।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव वीतराग विज्ञानमय है । इस स्वभावको आच्छादन करनेवाले अज्ञान व कषाय हैं । जो प्राणी अज्ञान व कषायके वशीभूत हो मन, वचन, कायकी क्रिया करता है वह अपने शुद्ध भावोंका अनुभव न करके अशुद्ध रागादि भावोंका ही अनुभव करता है । इस भीतरी परिग्रहको निर्ग्रंथ साधु आत्मानुभवके बलसे त्याग देते हैं ।

मिथ्यात्व परिग्रह कथन ।

मिच्छात वे वि कहियं, मिच्छातं समय मिच्छ संजुत्तं ।
कुज्ञान सल्य सहियं, मिथ्या तिक्तंति ज्ञान सहकारं ॥ ४५० ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छात वे वि कहियं) मिथ्यात्व परिग्रह दो प्रकारका कहा गया है (मिच्छातं समय मिच्छ संजुत्तं) एक तो मिथ्यात्व भाव दूसरे सम्यक्त मिथ्यात्व भाव निर्ग्रंथ साधु (ज्ञान सहकारं) आत्मज्ञानकी सहायतासे (कुज्ञान सल्य सहियं मिथ्या तिक्तंति) मिथ्या ज्ञान व शल्य सहित सर्व मिथ्यात्वको त्याग देते हैं ।

भावार्थ—जिस भावमें तत्वका बिलकुल श्रद्धान न हो वह मिथ्यात्व भाव है। जिस भावमें सच्चे व झूठे तत्वोंका मिला हुआ श्रद्धान हो वह सम्यक्त मिथ्यात्व भाव है। निर्ग्रंथ साधु इन दोनों ही प्रकारके भावोंको अपने आत्मज्ञानकी सहायतासे बिलकुल त्याग देते हैं वे मिथ्याज्ञानको त्यागकर सम्यग्ज्ञानका आराधन करते हैं उनमें माया मिथ्या निदान तीन प्रकार शल्य नहीं होती है।

मिच्छा मिच्छ सहावं, जिनवयनं च लोपनं उत्तं ।
अनृत असत्य सहियं, असरनं दुःखभाजनं मिथ्या ॥ ४५१ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छा मिच्छ सहावं) मिथ्यात्व परिग्रह मिथ्यात्व स्वभाव रूप है। (जिनवयनं च लोपनं उत्तं) जिन वचनका लोप करना भी मिथ्यात्व कहा गया है (अनृत असत्य सहियं) जो भाव असत्य व मिथ्यात्व सहित है (मिथ्या असरनं दुःखभाजनं) वह मिथ्यात्व है। यह भाव जीवको संसारमें रक्षा करनेवाला नहीं है, दुःखोंको देनेवाला है।

भावार्थ—वस्तु अनेकांत स्वरूप है, किसी अपेक्षा नित्य है किसी अपेक्षा अनित्य है। इस बातको न समझकर उसे एक रूप ही मानना मिथ्यात्व है। जिनेन्द्रकी वाणी अनेकांत स्वरूप है। स्याद्वाद-नय गर्भित है। उसे यथार्थ न समझकर जिन आज्ञाके विरुद्ध मनमानी वर्ताव करनेका भाव करना। सत्य देव, शास्त्र गुरुको न मानकर कुदेव, कुशास्त्र व कुगुरुकी भक्ति करना, हिंसादि पापोंमें धर्म मानना, यह सब मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व भावसे जगतके स्वप्नवत् चारित्रमें रंजायमान होकर विषय-

भोगकी तृष्णामें फँसा रहता है। तीव्र कषायसे तीव्र पाप बांधकर प्राणी दुर्गतिमें जाकर दुःख उठाता है। वहां कोई भी दुःखोंसे बचानेवाला नहीं मिलता है। कर्मोंके उदयसे कोई भी जगतमें रक्षक नहीं है।

मिच्छा असत्य उत्तं, अप्पा परमप्प भाव नहु पिच्छे।
प्रपंच विभ्रम सहियं, ज्ञान सहावेन मिच्छ तिक्कंति ॥ ४५२ ॥

अन्वयार्थ—(असत्य मिच्छा उत्तं) जो सत्य नहीं है उसको सत्य जानना मिथ्यात्व कहा गया है। मिथ्यात्व सहित अज्ञानी प्राणी (अप्पा परमप्प भाव नहु पिच्छे) आत्मा और परमात्माके स्वभावोंको श्रद्धानमें नहीं लाता है (प्रपंच विभ्रम सहियं) जगतके प्रपंचमें और भ्रम बुद्धिमें अटका रहता है (ज्ञान सहावेन मिच्छ तिक्कन्ति) निर्ग्रंथ साधु अपने आत्मज्ञानके स्वभावसे इस मिथ्यात्वको त्याग देते हैं।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव शुद्ध ज्ञाता दृष्टा परमात्माके समान है। परमानन्द आत्मा हीमें है। इस सत्यको न समझकर मिथ्यात्वी अज्ञानी प्राणी सांसारिक सुखोंको जो क्षणभंगुर हैं व जो कल्पित तथा असत्य हैं उनको ही यथार्थ सुख मान लेता है। इन्द्रिय सुखोंकी तृष्णावश जगतकी मायामें उलझा रहता है। ऐसा मिथ्यात्व भावरूपी परिग्रह निर्ग्रंथ साधुओंके नहीं होता है क्योंकि वे सम्यग्ज्ञानी होते हुए आत्माके यथार्थ ज्ञाता होते हैं व आत्मानन्दके ही रसिक होते हैं। उनको संसार शरीर भोगोंसे पूर्ण वैराग्य रहता है।

मिच्छा समय स उत्तं, समयं संजुत्तु मिच्छ उवएसं।
विस्वासन्ते मूढा, निगोयवासं च मिच्छ तिक्कन्ते ॥ ४५३ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छा समग स उत्तं) सम्यक्त मिथ्यात्व या मिश्र श्रद्धान उसे कहा गया है जहां (समयं संजुत्तु मिच्छ उवएसं) सम्यक्तके साथ २ मिथ्यात्वका उपदेश ग्रहण किया जावे (मूढा विस्वासंते) अज्ञानी ऐसा विश्वास करते हैं। (मिच्छ निगोयवासं च) ऐसा मिथ्यात्व भी निगोदमें लेजानेवाला है। निर्ग्रंथ साधु (तिक्कते) इसे त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां सच्चा झूठा मिला हुआ श्रद्धान हो उसे दही गुडके मिले हुए स्वादके समान सम्यक्त मिथ्यात्व भाव कहते हैं। यह भी एक प्रकारका मिथ्यात्व ही है। इसके होते हुए भी निर्मल

तत्वका श्रद्धान नहीं होता है। मिथ्यात्वभाव अज्ञानरूप है। एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिकी निगोद पर्यायमें दीर्घकाल वास करानेवाला है। निर्ग्रंथ साधु ऐसी मिथ्यात्व परिग्रहके सर्वथा त्यागी होते हैं।

राग परिग्रह कथन।

रागादि भाव कहियं, राग संबन्धं सरनि संसारे।
रागं आरति पुन्यं, ज्ञानसहावेन राग विलयंतो ॥ ४५४ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि भाव कहियं) रागादि परिग्रहको कहा जाता है (संसारे सरनि राग संबंधं) संसारके मार्गसे रागका सम्बन्ध करना राग परिग्रह है तथा (आरति पुन्यं रागं) आर्तध्यान करते हुए पुन्य कमानेका राग रखना राग परिग्रह है (ज्ञान सहावेन राग विलयंती) निर्ग्रंथ साधु अपने ज्ञान स्वभावमें संतोष मानकर सर्व सांसारिक राग भावका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—राग भाव भी अन्तरङ्ग परिग्रह है। आदि कहनेसे रति परिग्रह भी रागमें गर्भित है। संसार चार गतिरूप है, इंद्रिय विषयोंमें उलझा हुआ है। इन्हीं इंद्रिय विषयोंकी चाहमें जलना राग है तथा इसी भावसे अनेक शुभ कार्य-व्रत, उपवास, तप आदि करना—आगामी इंद्रिय सुख मिले ऐसा निदानभाव रखना सो सब राग परिग्रह है। आत्मज्ञानी साधु इस सर्व रागसे विरक्त रहते हैं।

द्वेष परिग्रह कथन।

दोषं रौद्र सहावं, हिंसाबंदी अनृत असत्य नंदीओ।
अबम्भ नन्दनन्दं, दोषं तिक्कंति ज्ञान सहकारं ॥ ४५५ ॥

अन्वयार्थ—(दोषं रौद्र सहावं) दुष्ट स्वभाव रखना द्वेष परिग्रह है (हिंसानन्दी) हिंसा करने, करानेमें व अनुमोदनामें आनन्द मानना (अनृत असत्य नंदीओ) मिथ्या व अज्ञानमई सांसारिक पदार्थोंमें लीन होकर उनके विरोधियोंसे द्वेष करना (अबंभ नंदनंदं) कुशील भावोंमें आनंद मानके इसके रोकने-

वालोंमें द्वेष भाव रखना (दोषं ज्ञान सहकारं तिक्तंति) ऐसे द्वेष परिग्रहको साधुजन आत्मज्ञानकी सहायतासे त्याग देते हैं।

भावार्थ—विषयोंमें आसक्ति ही द्वेषभाव उत्पत्तिमें कारण है। धनादिकी व विषय भोगोंकी चाहके वशमें पडकर यह अज्ञानी प्राणी मानवोंको मृषा व चोरीसे ठगनेमें वर्तता है। मांसके लोभसे पशुओंकी हिंसामें प्रवर्तता है। कुशीलके लोभसे पर स्त्रियोंकी चाह करके उनके स्वामियोंसे द्वेष करता है। जो जो बाधक उसके स्वार्थ साधनमें होते हैं उनसे द्वेष करके परिणामोंको हिंसक व दुष्ट रखना द्वेष परिग्रह है। ज्ञानी साधु इससे बिलकुल दूर रहते हैं।

हास्य परिग्रह कथन।

हासि विकहा सुभावं, रागादि मिथ्या कषाय संजुत्तं।
हिंसानन्द सुभावं, हास्यं तिक्तंति ज्ञान उवएसं ॥ ४५६ ॥

अन्वयार्थ—(हासि विकहा सुभावं) विकथाओंके भीतर रति करके हास्य किया जाता है। यह हास्यभाव (रागादि मिथ्या कषाय संजुत्तं) रागद्वेष मिथ्यात्व व कषाय भावोंसे भरा होता है (हिंसानन्द सुभावं) हास्यमें मनके भीतर परकी हिंसामें आनन्द भाव रहता है (ज्ञान उवएसं हास्यं तिक्तंति) सम्यग्ज्ञानके उपदेशको माननेवाले साधु हास्य परिग्रहको त्याग देते हैं।

भावार्थ—स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राजा कथा, परकी निंदा, अपनी प्रशंसा आदि अनेक प्रकारकी खोटी कथाओंके द्वारा हास्य परिणाम प्रगट किये जाते हैं। हँसी ठट्ठा करनेमें मिथ्यात्व भाव आजाता है। राग भाव–लोभ कषाय व माया कषाय, परिणामोंमें रहता है। परकी हिंसा व बिगाड हुआ हो उसमें आनन्द मानता हुआ परकी हँसी उडाता है, ऐसे हास्य परिग्रहको आत्मज्ञानकी सहायतासे साधुजन त्याग देते हैं। रागद्वेषकी तीव्रता व संसारासक्तिके विना हास्य करनेके भाव नहीं होते हैं। इन हास्य भावोंमें उलझना साम्यभावसे गिर जाना है। ज्ञानीजन इससे सर्वथा विरक्त रहते हैं।

हास्यं अबंभ रूवं, रति संसार सरनि ठिदिकरनं ।
आरति दुर्बुहि रूवं, ज्ञानबलेन तिक्त सव्वानं ॥ ४५७ ॥

अन्वयार्थ—(हास्यं अबंभ रूवं) कुशील स्वभाव हास्य परिग्रहमें रहता है (रति संसार सरनि ठिदिकरनं) हास्यमें संसार मार्गके प्रेमका स्थितीकरण किया जाता है (आरति दुर्बुहि रूवं) हास्य आर्तध्यान है तथा कुबुद्धि रूप है (ज्ञानबलेन सव्वानं तिक्त) आत्मज्ञानके बलसे साधु इन सर्व हास्यके भावोंको छोड देते हैं ।

भावार्थ—हंसी दिल्लगी जब की जाती है तब भीतर कुशीलका भाव रहता है तथा कुशील भावको ही यह हास्य दूसरोंके मनमें जागृत करता है। हास्य करनेसे आपको और दूसरोंको संसार मार्गके प्रेममें प्रेरित किया जाता है। खोटी बुद्धि भी हास्यमें रहती है। किसीको चिढानेका व बनानेका भाव रहता है। भोगाभिलाष रूप निदान नामका आर्तध्यान हास्यमें गर्भित रहता है। कभी किसीके इष्ट वियोग पर उसकी हंसी की जाती है या अनिष्ट संयोगमें हंसी की जाती है या किसीको चोट लग गई है तब हंसी की जाती है। चारों ही प्रकारके आर्तध्यान हास्यमें आजाते हैं। अतएव साधुजन आत्मानुभवके अभ्यासमें तन्मय रहते हुए हास्य परिग्रहको बडे भावसे जीतते हैं।



वेद परिग्रह कथन ।

अस्त्री अस्त्रित भावं, पुंसह पूर्व सहकार मिच्छातं ।
नपुंसय गुनहीनं, ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च ॥ ४५८ ॥

अन्वयार्थ—(अस्त्री अस्त्रित भावं) स्त्रीवेद स्त्री सम्बन्धी भावको कहते हैं (पुंसह पूर्व सहकार मिच्छातं) पुरुष वेद, स्त्री वेदको सहकारी मिथ्याभाव है (नपुंसय गुनहीनं) नपुंसक वेद स्त्री या पुरुष दोनोंके गुणोंसे रहित मिश्रित भाव है (ज्ञान सहावेन तिक्तं च) साधुजन आत्म-ज्ञानके स्वभावसे इन सर्वको त्याग देते हैं ।

भावार्थ—पुरुषके साथ मैथुन करनेके भावको स्त्रीवेद कहते हैं, स्त्रीके साथ मैथुन करनेके

भावको पुरुष वेद कहते हैं। स्त्री व पुरुष उभयसे मैथुन करनेके भावको नपुंसक वेद कहते हैं। सर्वार्थसिद्धिमें पूज्यपाद स्वामी कहते हैं "स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायति अस्यां गर्भ इति स्त्री। पुंवेदोदयात् सूते जनयत्यपत्यं इति पुमान्। नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम्" स्त्री-वेदके उदयसे जिसके गर्भ धारण करानेकी भावना हो वह स्त्री है। पुंवेदके उदयसे संतान उत्पन्न करनेकी भावना हो वह पुरुष है। नपुंसक वेदके उदयसे दोनोंकी शक्ति न हो सो नपुंसक है। तीनों शब्द रूढिवाचक हैं। प्रयोजन यहां कामवासनाका है। कामभाव तीनों वेदोंमें पाया जाता है ब्रह्मभावमें रमण करनेवाले साधु तीनों ही प्रकारके कामभावको जीतते हैं।

लोभ कषाय निरूपण।

कषायं उवएसं, चौगइ संसार सरनि संजुत्तं।
जहं जहं कम्म सहावं, तहं तहं कषाय रसिय मिच्छातं॥ ४५९॥

अन्वयार्थ—(कषायं उवएसं) अब लोभादि कषायोंकी परिग्रहका उपदेश करते हैं (चौगई संसार सरनि संजुत्तं) ये कषाय चारों गतिके मार्गमें भ्रमण करानेवाले हैं, कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग कषायोंसे पडता है (जहं जहं कम्म सहावं) जहां जहां कर्मोंके उदयका स्वभाव देखा जाता है (तहं तहं कषाय रसिय मिच्छातं) वहां वहां कषायोंमें रसिकपना है और मिथ्यात्व है।

भावार्थ—आत्माके स्वभावको जो मलीन करे उसे कषाय कहते हैं। आठों ही कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग कषायोंकी तीव्रता व मंदताके कारणसे कम व अधिक पडता है। स्थिति व अनुभाग ही चारों गतियोंमेंसे भिन्न २ गतिमें जीवको कैद रखकर सुख या दुःखका फल भुगवानेमें कारण हैं। जहां २ कर्मोंका उदय हो और यह अज्ञानी प्राणी उनमें रंजायमान या क्लेशित हो तौ वहां अवश्य मिथ्यात्व सहित कषायोंके द्वारा ही रंजितपना है। यदि राग भाग होता है तौ सुख दुःखमें व उनके कारणोंमें लीन होजाता है। यदि द्वेषभाव होता है तो दुःखोंसे छुटनेकी आकुलता करता है। सर्व परिग्रहका मूल कषाय परिग्रह है। इसीसे इच्छा तथा द्वेष होते हैं। धन्य हैं वे निर्ग्रंथ

साधु जो इन कषायोंको जीतते हुए वीतराग भावमें लीन रहते हुए निज आत्माके आनन्द रूपी रसका पान करते हैं।

लोभं अनृतरूवं, अनृत असत्य सहित जो मिथ्या।
तं लोभं नहु पिच्छदि जं लोभं दुःख कारणं सहियं ॥ ४६० ॥

अन्वयार्थ—(लोभं अनृत रूवं) लोभका स्वभाव ही मिथ्या है। (अनृत असत्य सहित जो मिथ्या) यह लोभ क्षणभंगुर कल्पित पदार्थोंके सम्बन्धमें होता है इसीसे मिथ्या है। (जं लोभं दुःखकारणं सहियं तं लोभं नहु पिच्छदि) यह लोभ संसारके दुःखोंका कारण है। इस लोभका साधुजन दर्शन भी नहीं करते हैं।

भावार्थ—विषय भोगोंकी तृष्णा ही लोभ है संसारके सुखोंकी इच्छा ही लोभ है। संसारके इंद्रियजनित सुख सब अनित्य व असत्य पदार्थोंके सम्बन्धसे होते हैं। स्त्री, पुत्र, मित्र, धनधान्य, गृह, खेत आदि वस्तुओंकी चाह करके उन सबको अपनाना चाहता है परंतु वे अपने बनते नहीं वे छूट जाते हैं या आप उनको छोड देता है। इसका लोभ करना वृथा ही इसको पापबंधका कारण होजाता है। ज्ञानी साधु सर्व क्षणिक जगतकी मायामे मुंह मोड चुके हैं। वे आत्मविभूतिके व आत्मानन्दके रसिक होगए हैं अतएव उन ज्ञानी साधुओंने सुगमतासे ही लोभ परिग्रहको जीत लिया है।

लोभं पुन्य सहावं, असत्य सहित रैयजं मिथ्या।
ज्ञान विना वय धरनं, तं लोभं तिक्त सहकारं ॥ ४६१ ॥

अन्वयार्थ—(लोभं पुन्य सहावं) पुन्यकी प्राप्तिका लोभ (असत्यसहित रैयजं मिथ्या) मिथ्या क्षणिक पदार्थोंमें [illegible] ममानपना है इसलिये मिथ्या है (ज्ञान विना वय धरनं) जैसे आत्मज्ञानके विना महाव्रतोंको व [illegible]को पालना (तं लोभं ज्ञान सहकारं तिक्त) ऐसे लोभको ज्ञानकी सहायतासे निर्ग्रंथ साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—पाप कार्योंके करनेका लोभ तो बुरा है ही किन्तु पुण्यबंध कारक शुभ कार्योंको

करके मैं पुन्य कमाऊं जिससे भविष्यमें मनोज्ञ इन्द्रिय विषयोंको प्राप्त करूं ऐसा लोभ भी मिथ्या है क्योंकि वह नाशवंत संसारके अतृप्तिकारक भोगोंकी वासनामें उलझा हुआ है। जो कोई आत्मोन्नति तथा आत्मानुभव व आत्मानन्दकी प्राप्तिकी भावना न करके मात्र पुण्य बंधके हेतुसे व्रतोंको आचरण करता है वह लोभ व तृष्णाके परिग्रहसे विरक्त नहीं है। ऐसे पुण्यके लोभको भी निर्ग्रंथ साधु त्याग देते हैं।

क्रोध परिग्रह कथन।

कोहं कोहाग्नि उत्तं, कोहं थावर त्रस अभाव संजुत्तं ।
कोहं कम्म उवन्नं, तिविहं कम्मान वर्धनं कोहं ॥ ४६२ ॥

अन्वयार्थ—(कोहं कोहाग्नि उत्तं) क्रोध परिग्रहको क्रोधकी आग कहा गया है क्योंकि (कोहं थावर त्रस अभाव संजुत्तं) क्रोधकी आग स्थावर व त्रस प्राणियोंको घात करनेवाली होती है। (कोहं कम्म उवन्नं) क्रोधसे कर्मोंका बंध होता है (कोहं तिविहं कम्मान वर्धनं) क्रोध तीनों प्रकारके कर्मोंको बढाता है।

भावार्थ—क्रोधकी परिग्रह जिसके भीतर रहती है वहां द्वेषकी आग जला करती है। जिससे उसके परिणाम हिंसात्मक होते हैं। दयाका भाव चित्तमेंसे चला जाता है। हिंसात्मक भावसे वह क्रोधी प्राणी मानवोंको, पशुओंको, वृक्षादिकोंको कष्ट पहुंचाता है, उनके प्राण लेलेता है। युद्धादिमें क्रोधकी आग जब भडकती है तब शस्त्रोंका प्रहार चलता है। मानवोंकी व पशुओंकी व साथमें अनेक प्रकार स्थावरोंकी घोर हिंसा करनी पडती है। क्रोध कषाय सहित हिंसात्मक भावोंसे घोर कर्मका बंध होता है। ज्ञानावरणादि कर्मोंका संचय होता है उनमें वृद्धि होती है। रागादि भावोंकी भी वृद्धि होती है तथा कर्मोंके उदयसे संसारमें अधिक कालतक नोकर्म जो शरीर उसको धारनेकी वृद्धि होती है। संसारवर्द्धक यह क्रोध त्यागने योग्य है।

कोहं उवनं भावं, कोहं उत्पन्न मिच्छ सहकारं ।
कोहाग्नि अनृत रूवं, कोहं तिक्कंति ज्ञान सहकारं ॥ ४६३ ॥

अन्वयार्थ—(कोहं उवनं भावं) क्रोधके उदयसे मलीन भाव रहता है । (कोहं उत्पन्न मिच्छ सहकारं) यह क्रोध मिथ्या संसारके पदार्थोंके निमित्तसे उत्पन्न होता है इस लिये (कोहाग्नि अनृतरूवं) यह क्रोधकी आग मिथ्या स्वभाववाली है । (कोहं ज्ञान सहकारं तिक्तंति) ऐसा जानकर इस क्रोध परिग्रहको निर्ग्रंथ साधुजन ज्ञानकी सहायतासे त्याग देते हैं ।

भावार्थ—जो कोई संसारके धनादि परिग्रहमें, राज्यपाटादिमें अनुरक्त होगा वही उनकी प्राप्तिमें बाधक व उनके वियोगकारक प्राणियोंपर क्रोध करेगा, उनको बिगाड करनेका भाव करेगा । जिस शरीरके सुखके लिये वह क्रोध करेगा, वह शरीर जब अनित्य है तब शरीरके संबंधमें प्राप्त हुये पदार्थ भी अनित्य हैं । अनित्यको बनाये रखनेकी कल्पना ही मिथ्या है, मोहजनक है, महान संसार बढ़ानेवाली है । साधुजन निर्ग्रंथ पदके धारी, पूर्ण विरक्त, सम्यक्‌दृष्टी होते हैं । वे अपने प्राण लेने वालेपर भी क्रोध नहीं करते हैं क्योंकि उनको किसी भी नाशवंत पदार्थपर रागभाव नहीं है । अतएव ऐसे यतिगण क्रोधकी परिग्रहका त्याग सम्यग्ज्ञानके बलसे करते रहते हैं । क्रोधके कारणोंके मिलनेपर भी अपने शांत स्वभावको कभी क्रोधको आगसे नहीं जलाते हैं ।

मान परिग्रह कथन ।

मानं असत्य रूपं, व्रततपक्रियं च गर्हियं सभावं ।
मानं च ज्ञानहीनं, मानं रागादि असुह तिक्तं च ॥ ४६४ ॥

अन्वयार्थ—(मानं असत्य रूपं) यह मान असत्य स्वभावरूप है । (व्रत तप क्रियं च गर्हियं स्वभावं) मैं व्रती हूं, मैं तपस्वी हूं, मैं क्रियावान हूं, इस अहंकारके भावको लिये हुये है । (मानं च ज्ञानहीनं) यह मान अज्ञानभाव है, ज्ञान रहित है । (रागादि असुह मानं तिक्तं च) संसारके पदार्थोंमें राग होनेके कारणसे यह अशुभ मानभाव पैदा होता है । निर्ग्रंथ साधु इसका त्याग कर देते हैं ।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानी एक मात्र आत्माको व आत्माके गुणोंको ही अपना मानता है । वह आत्मीक स्वभावके सिवाय किसी भी परभावको अपना नहीं मानता है । क्योंकि सर्व परभाव व परका सम्बन्ध कर्मोदय जनित नाशवंत है । शरीर, धन, पुत्र, मित्र, राज्यपाट आदि सब नाश-

वंत हैं। व्यवहार व्रत, तप, क्रियाकांड सब नाशवंत हैं। ग्रही व्रत व साधुके व्रत सब नाशवंत हैं। अशुद्ध उपयोग सब नाशवंत है। मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थान सब नाशवंत हैं। गति इंद्रिय आदि चौदह मार्गणाएं सब भेदरूप होनेके कारण व्यवहार रूप हैं-छूटनेवाली हैं। इन सर्व जगतकी प्रपंचमय अवस्थाओंके लिये अहंकार करना मान है। मैं धनी हूं, मैं रूपवान हूं, मैं बलवान हूं, मैं राजा हूं, मैं विद्वान हूं, मैं बडा श्रावक हूं, मैं बडा साधु हूं, मैं बडा तपस्वी हूं, मैं शुद्ध भोजन करनेवाला हूं, मैं बडा ज्ञानी हूं, इत्यादि भाव रखना मान कषाय है-बिलकुल असत्य है क्योंकि यह सब बातें छूटजानेवाली हैं। आत्मज्ञानी कभी भी इस अज्ञान भावमें नहीं फंसता है। यह मान संसारके रागके कारण होता है। मान प्रतिष्ठा पूजा पानेका लोभ मानको बढा देता है। ऐसे मानकी परिग्रहको साधुजन वैराग्य भावके द्वारा विचार कर बिलकुल छोड देते हैं।

मानं पुग्गलरूवं, गलंति पूरयंति भाव सदभावं।
मानं अनृतरूवं, ज्ञानसहावेन मान तिक्तं च ॥ ४६५ ॥

अन्वयार्थ—(मानं पुग्गलरूवं) यह मान पुद्गलके समान है। (गलंति पूरयंति भाव सदभावं) जैसे पुद्गल पिंडमें परमाणु छूटते हैं व नये आकर मिलते हैं। पुद्गल पूरन गलन स्वभाव है अथवा जैसे पुद्गलकी अवस्था एकसी नहीं रहती है, अवस्था बदल जाती है, स्पर्श, रस गंध, वर्णमें तबदीली होजाती है, वैसे मानकषाय गलन पूरन स्वभाव है। जब कोई वस्तु नाश होजाती है तब मान चला जाता है, जब कोई वस्तु मिल जाती है तब मान बढ जाता है। जब कोई अपमान करता है तब मान गल जाता है, जब कोई प्रतिष्ठा करता है तब मान बढ जाता है। पुद्गलस्वरूपी बाहर दीखनेवाली शरीरादि व परिग्रहकी रचनामें ही रागी होकर यह अज्ञानी प्राणी अहंकार करता है। (मानं अनृत रूवं) जब ये सब पदार्थ नाशवंत हैं तब इसका अहंकार करना भी मिथ्या है और नाश स्वरूप है। मानीकी धन हानि पुत्र हानि होती है तब वह बहुत ही क्रोशित होता है। (ज्ञान सहावेन मान तिक्तं च) ऐसे मिथ्या स्वभावरूप मानकी परिग्रहको निर्ग्रंथ साधुजन मार्दवगुणसे अलंकृत आत्मज्ञानके द्वारा दूर कर देते हैं।

भावार्थ—मान बडा ही मलीन भाव है। आत्माका वैरी है, पर पदार्थोंको अपनानेके कारणसे

ही मानभाव होता है। ज्ञानी सिवाय अपनी आत्मविभूतिके और किसी वस्तुको अपना नहीं जानता है। इस लिए वह कदापि भी मान नहीं करता है। बहुत विद्वान व बहुत तपस्वी होनेपर भी वह अहंकार नहीं करता है। कोमलतामई मार्दवगुणसे सदा शुद्ध भावोंमें जमा करता है। निर्ग्रंथ साधु ऐसी कलुषित मान परिग्रहसे विरक्त रहते हैं।

माया परिग्रह कथन।

माया अनृतरूपं, विषयं अहिलास माय उत्पन्नं।
माया बंधति सत्यं, माया मिथ्यात रूव सहकारं॥ ४६६॥

अन्वयार्थ—(माया अनृतरूपं) माया कषाय मिथ्या स्वभावमई है। क्योंकि (विषयं अहिलास माय उत्पन्नं) पांचों इंन्द्रियोंको विषयोंकी अभिलाषासे माया बंधी होती है। (माया बंधति सत्यं) यह माया माया शल्यको बढा देती है। (माया मिथ्यात रूव सहकारं) यह माया मिथ्यात्व भावकी सहायतासे उपजती है।

भावार्थ—मायाचार या कपट करना भी मिथ्या है। यह प्राणी विषयोंका लोभी होकर उनकी प्राप्तिके लिये मायाचार करता रहता है। जिसको संसारके क्षणिक पदार्थोंका मोह होगा, जो मिथ्यात्वके विषसे दूषित होगा वही मायाचार करेगा। उसीके भीतर व्रत, तप आदि आचरण करते हुए भी मायाका कांटा बना रहेगा। यथार्थ तपादि न करते हुए वह यह दिखाएगा कि मैं यथार्थ तपादि कर रहा हूं। मिथ्यादृष्टिके ही माया कषाय रहती है। वही मायाके भावसे तिर्यंच आयु बांध लेता है। मायाके कारण धर्मकार्य किया हुआ भी संसारका बढानेवाला होता है।

माया परिनाम बन्धं, परिनामं असत्य अनृतं दिट्ठं।
मायासंसार मइओ, माया त्यजंति ज्ञान सहकारं॥ ४६७॥

अन्वयार्थ—(माया परिनाम बंधं) मायाचारका भाव कर्मबंधका कारण है (परिनामं असत्य अनृतं दिट्ठं) मायाचारका भाव असत्य व क्षणिक पदार्थोंके सम्बन्धमें देखा जाता है (माया संसार मइओ) संसारमें

भ्रमण करानेवाली माया है। (ज्ञान सहकारं माया त्यजंति) ज्ञानी साधु ज्ञानकी सहायतासे मायाका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—मायाचार नाशवंत जगतके पदार्थोंके लोभके कारण किया जाता है। सो बिलकुल वृथा ही है, क्योंकि लाभ तो उतना ही होगा जितना पुण्यकर्मका उदय होगा। यह अज्ञानी मायाचार करके पाप बांधकर संसारमें भ्रमण करता है। ज्ञानी साधु इस मायाकी परिग्रहको पर जानकर त्याग देते हैं।

आभितरं ग्रंथ स उत्तं, संसारे सरनि तिक्त मोहंधं।
ग्रंथं चौ गइ समयं, ज्ञान सहावेन ग्रंथ तिक्तंति ॥ ४६८ ॥

भावभावार्थ—(आभितरं ग्रंथ स उत्तं) वही अभ्यंतर परिग्रह कही गई है जो (संसारे सरनि) संसारमें भ्रमण करानेवाली है तथा (मोहंधं) तथा मोहके अंधकारसे व्याप्त है (तिक्त) सो त्यागने योग्य है। (ग्रन्थं चौ गइ समयं) इस परिग्रहका धारना चारों गतियोंका अंगीकार करना है (ज्ञान सहावेन ग्रंथ तिक्तंति) निर्ग्रंथ साधु ज्ञान स्वभावमें ठहरकर इस परिग्रहका त्याग कर देते हैं।

भावार्थ—मिथ्यात्व राग, द्वेष, मोहादिक अंतरंग परिग्रह संसारके मोहसे व्याप्त होनेके कारणसे नरकादि चारों गतियोंमें जाने लायक पापबंध करानेवाली है। आत्मध्यानी निर्ग्रंथ साधु आत्मज्ञानमें ठहरकर इस परिग्रहका सर्वथा त्याग कर देते हैं।

बाहिज भितर ग्रंथाः, मुक्का जे दुट्ठ कम्म संजुत्ताः।
तिक्तंति भव्य जनयाः, ज्ञान सहावेन ग्रंथ विम्मुक्का ॥ ४६९ ॥

अन्वयार्थ—(जे दुट्ठ कम्म संजुत्ताः) जो दुष्ट आठ कर्मोंको बांधनेवाली हैं ऐसी (बाहिज भितर ग्रंथाः) बाहरी भीतरी परिग्रह (मुक्का) त्यागने योग्य हैं (ग्रंथ विमुक्का भव्य जनयाः) ग्रंथ रहित भव्य मुनिगण (ज्ञान सहावेन तिक्तंति) ज्ञान स्वभावमें ठहरकर इस परिग्रहको छोड देते हैं।

भावार्थ—ऊपर बाहरी व भीतरी परिग्रहका कथन किया गया है। इन्हीं परिग्रहोंके कारण संसारमें भ्रमण करानेवाले आठ कर्मोंका बंध होता है। निर्ग्रंथ मुनि इन सर्वका त्याग कर शुद्ध आत्मीक ज्ञान स्वभावमें रमण करते हैं।

इस ग्रंथमें सिंहासन, गृह, क्षेत्र, सुवर्ण, धनधान्य, कुप्य, भाजन, द्विपद, चतुस्पद, यान इस-तरह दश बाहरी परिग्रहको बताया गया है। दूसरे ग्रंथोंमें क्षेत्र, गृह, धन, धान्य, दासी, दास, चांदी, सोना, कुप्य, भाजन इसतरह दश बाहरी परिग्रहको बताया गया है। सो सब यहां कही गई दशामें गर्भित है। इस ग्रंथमें भीतरी परिग्रह मिथ्यात्व, राग, द्वेष, हास्य, वेद, लोभ, क्रोध, मान, मायाको बताया है। अन्य ग्रंथमें मिथ्यात्व, राग, द्वेष, वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे चौदह प्रकार अंतरंग परिग्रह बताई है। सो राग भावमें रति गर्भित है द्वेष भावमें अरति, शोक, भय जुगुप्सा गर्भित हैं। इसतरह नौमें चौदह गर्भित हैं। ये ग्रंथकर्ताने बडी ही विद्वत्तासे बाहरी परिग्रहको भी अन्तरंग भावोंमें घटाकर सिद्ध किया है। ये ही सर्व विभाव हैं व ये ही आठों कर्मोंमें स्थिति व अनुभाग डालते हैं। जो निर्ग्रंथ साधु इन सर्वका त्याग करते हैं वे ही सच्चे दिगम्बर जैन साधु हैं।

ग्रन्थ मुक्त साधु विशेष निरूपण।

ग्रहनं जिनवरवयनं, ग्रहनं अप्प भाव संजुत्ता।
ग्रहनं ति अर्थभावं, जोयंतो जोयिनो ते ही ॥ ४७० ॥

अन्वयार्थ—(जिनवरवयनं ग्रहनं) जो जिनेन्द्रके वचनोंको ग्रहण करनेवाले हैं (अप्पभाव संजुत्ता ग्रहनं) जो आत्मीक भावोंको लिये हुए सर्व भावोंको ग्रहण करनेवाले हैं (ति अर्थ भावं ग्रहनं) जो रत्नत्रय मई तीन भावोंको ग्रहण करनेवाले हैं (तेही जोयिनो जोयंतो) तेही निर्ग्रंथ योगी आत्माको देखनेवाले हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु जब बाहरी व भीतरी परिग्रहके त्यागी होते हैं तब ये ग्रहण भी कुछ करते हैं या नहीं, इसका खुलासा करते हुए ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि वे निर्ग्रंथ साधु जिनेन्द्रकी आज्ञाके अनुसार तत्वोंके श्रद्धावान होते हैं, अपने आत्माके शुद्ध स्वभावका अनुभव करनेवाले होते हैं। तथा व्यवहार व निश्चय उभय रूपसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन रत्नत्रयमई भावको ग्रहण करते हैं। येही योगी मुक्तिके लिये आत्माका अनुभव किया करते हैं।

ग्रहनं दंसनं ज्ञानं, चरनं चारित्र ग्रहण दुभेयं ।
ग्रहनं ज्ञान सहावं, अप्पा सुद्धप्प ज्ञान सद्भावं ॥ ४७१ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञान चरनं ग्रहनं) निर्ग्रंथ साधु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको धारण करते हैं (चारित्र दुभेयं ग्रहण) दो प्रकारके चारित्रको पालते हैं (ज्ञान सहाव ग्रहनं) ज्ञान स्वभावी आत्माको अनुभव ही करते हैं (अप्पा सुद्धप्प ज्ञान सद्भावं) आत्माको ज्ञान स्वभावी, शुद्धात्मा रूप जानते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु वे ही हैं जो व्यवहारनयसे भेदरूप रत्नत्रय धर्मको व निश्चयनयसे अभेदरूप एकाकार रत्नत्रय धर्मको पालते हैं। जो अपने आत्म-द्रव्यको परमात्माके समान गुणोंसे परिपूर्ण ज्ञाता दृष्टा आनन्दमई जानकर निश्चल हो स्वआत्माका ध्यान करते हैं।

संमत्तं संग्रहनं, ज्ञानं पंचंमि भाव उवलंभं ।
अप्पा परमप्पानं, ज्ञान सहावेन मुक्त संवरनं ॥ ४७२ ॥

अन्वयार्थ—(संमत्तं संग्रहनं) जो साधु सम्यग्दर्शनको भलेप्रकार पालते हैं (पंचंमि ज्ञानं भाव उवलंभं) पांचवें केवलज्ञानके उत्पन्न करनेवाले भावोंको प्राप्त किये हुए हैं (अप्पा ज्ञान सहावेन मुक्त संवरनं परमप्पानं) अपने आत्माको भेदविज्ञानके स्वभावसे सर्व आवरणसे रहित परमात्मा रूप अनुभव करते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु दृढ सम्यग्दर्शनके धारी हैं। केवलज्ञानके साधक भावश्रुतज्ञानमई आत्मानुभवको करनेवाले हैं। जिनको भेदविज्ञानके द्वारा अपना ही आत्मा सर्व कर्मोंके आवरणसे रहित परमात्माके समान शुद्ध दीखता है।

व्रत तव संजम ग्रहनं ति अर्थं तीर्थंकारेन संसुद्धं ।
सुद्धं सुद्ध सहावं, सुद्धं ज्ञानं मि ज्ञान परमप्पा ॥ ४७३ ॥

अन्वयार्थ—(व्रत तव संजम ग्रहनं) वे निर्ग्रंथ साधु महाव्रत, तप तथा संजमके धारनेवाले होते हैं (तीर्थंकारेन संसुद्धं ति अर्थं) संसार समुद्रसे पार करनेको जहाजके समान शुद्ध रत्नत्रय धर्मको पालते हैं (सुद्धं सुद्ध सहावं) आठ कर्मसे शुद्ध व रागादिसे शुद्ध आत्म स्वभावको पहचानते हैं (सुद्धं ज्ञानं मि ज्ञान परमप्पा) निर्मल धर्म-ध्यानमें एक परमात्माको ही ध्याते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु परम महाव्रत, बारह प्रकारका तप, सामायिक नामके संजम व इंद्रिय तथा प्राण संजमको पालते हैं। संसार तारक रत्नत्रय धर्मको धारकर धर्म-ध्यानमें शुद्ध आत्माको एकाग्र मन हो ध्याते हैं।

पिच्छदि अप्प सरूवं, पिच्छदि नन्त दंसनं अमलं।
ज्ञानं च ज्ञान अमलं, अप्पा परमप्प केवलं भावं ॥ ५७४ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सरूवं पिच्छदि) निर्ग्रंथ साधु आत्माके स्वरूपको देखते जानते हैं (नंत दंसनं अमलं पिच्छदि) अनन्त निर्मल दर्शन स्वभावी आत्माको श्रद्धानमें रखते हैं (ज्ञानं च ज्ञान अमलं) ज्ञानके बलसे निर्मल आत्मज्ञानको धारते हैं (अप्पा परमप्प केवलं भावं) आत्माको परमात्माके समान केवलज्ञानादि स्वभावमय जानते हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु अपने आत्माको परमात्माके समान शुद्ध केवलज्ञान, केवलदर्शन अनंतवीर्य व अनंत सुखमई अनुभव करते हैं। वे साधु सर्व पर भावोंके त्यागी होते हैं किन्तु निज शुद्ध भावोंके ग्रहण करनेवाले हैं। उनमें स्याद्वाद सिद्धांत कूट कूट कर भरा है। वे अपने आत्माके अस्तित्वको स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्वभावके द्वारा अस्तिरूप व पर द्रव्य, पर क्षेत्र, पर काल व पर भावके द्वारा नास्तिरूप जानते हैं। ऐसे ही साधु यथार्थ मोक्षमार्ग पर चलनेवाले होते हैं।

श्री पद्मनंदि पंचविंशतिकामें यतिभावनाष्टकमें कहा है—

अन्तस्तत्वमुपाधिवर्जितमहं व्यापारवाच्यं परं। ज्योतिर्यैः कलितं श्रुतं च यतिभिस्ते सन्तु नः शान्तये।
येषां तत्सदनं तदेव शयनं तत्सम्पदस्तत् सुखं। तद्वृत्तिस्तदपि प्रियं तदखिलं श्रेष्ठार्थसंसाधनम् ॥ ८ ॥

भावार्थ—वही सच्चे साधु हैं जिन्होंने अपने आत्माके तत्वको रागादिकी उपाधिसे रहित, परम ज्योति स्वरूप, अर्हं शब्दसे अनुभवने योग्य भलेप्रकार जानकर अनुभव कर लिया है तथा जिनके रहनेका स्थान वही आत्मतत्व है, जिनकी शय्या वही आत्मतत्व है, जिनकी श्रेष्ठ सम्पदा वही आत्मतत्व है, वहीं उनको आनन्दका स्वाद आता है, वहीं उनकी वृत्ति रहती है, वही तत्व उनको प्यारा है तथा वही आत्मतत्व उनको श्रेष्ठ मोक्ष पुरुषार्थको साधन करनेवाला है। ऐसे निर्ग्रंथ साधु हमें शांति प्रदान करें।

पांच महाव्रत कथन ।

महावयं व्रतग्रहनं, ज्ञानमय ज्ञान सुद्धसभावं ।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, महावय सुद्ध धरंति साहूनं ॥ ४७५ ॥

अन्वयार्थ—(महावयं व्रतग्रहनं) पांच महाव्रतोंकी प्रतिज्ञाको धारनेवाले साधु होते हैं (ज्ञानमय ज्ञान सुद्धसभावं) वे ज्ञानमई शुद्ध आत्मस्वभावको मनन करनेवाले होते हैं (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) ज्ञानके द्वारा अपने ज्ञानको शुद्ध करते हैं (साहूनं सुद्ध महावय धरंति) साधु महाराज शुद्ध महाव्रतोंको पालते हैं ।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पांच महाव्रतोंको निर्दोष पालते हुए निश्चय महाव्रतका भले प्रकार अभ्यास करते हैं । भेदविज्ञानके द्वारा ज्ञानमई शुद्ध आत्माका अनुभव करना ही शुद्ध महाव्रत है । इसके विना बाहरी महाव्रत मोक्ष मार्गमें उपयोगी नहीं है ।

अहिंसा महाव्रत ।

अप्पं अप्प सहावं, अप्प परमप्पा ज्ञान संजुतं ।
चिंतंतो परम पयं, अहिंसओ महावयं हुंती ॥ ४७६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पं अप्पसहावं) अपने आपको आत्मा स्वरूप जानकर (अप्पा परमप्प ज्ञान संजुतं) अपने आपको परमात्माके ध्यानमें लीन करके (परम पयं चिंतंतो) परम पदका अनुभव करना ही (अहिंसओ महावयं हुंती) अहिंसा महाव्रत होता है ।

भावार्थ—यहां निश्चय अहिंसा महाव्रतका कथन है । राग द्वेषादि संकल्प विकल्प आत्माकी हिंसा करनेवाले हैं । जहां इन अशुद्ध भावोंको त्याग कर अपने आत्माको आत्मारूप या परमात्मा रूप वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानमें ठहरकर अनुवभ किया जावे वही निश्चय अहिंसा महाव्रत है । यहीं आत्माकी पूर्णपने रक्षा हो रही है । हिंसाका अभाव सो ही अहिंसा है । तत्त्वार्थसारमें हिंसाको बताया है—

द्रव्यभाव स्वभावानां प्राणानां व्यपरोपणं । प्रमत्तयोगतो यत्स्यात् सा हिंसा संप्रकीर्तिता ॥ ७४ । ४ ॥

भावार्थ—प्रमाद या कषाय सहित मन, वचन कायोंके द्वारा जो इंद्रिय, बल, आयु, स्वासोछ्वास, इन चार द्रव्य प्राणोंको व आत्माके स्वाभाविक ज्ञान शांति आदि भाव प्राणोंको कष्ट देना सो हिंसा कही गई है। महाव्रती साधु पूर्ण अहिंसा पालते हैं। स्थावर व त्रस सर्व प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। अन्तरंगमें क्रोधादि भावोंसे आत्माके स्वभावकी रक्षा करते हैं।

सत्य महाव्रत।

अनृत मयं न दिष्टदि, ऋतं जानंति अप्प सद्भावं।
सून्यं ज्ञान संजुत्तं, ऋतं ससहाव महावयं हुंती ॥ ४७७ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत मयं न दिष्टदि) निर्ग्रंथ साधु मिथ्यामई स्वभावको नहीं श्रद्धा करते हैं (अप्प सदभावं ऋतं जानंति) आत्माके स्वभावको यथार्थ जानते हैं (सुन्य ज्ञानं संजुतं) रागादिसे शून्य वीतराग मय निर्विकल्प ध्यान करते हैं। ऐसे साधु (ऋतं स सहाव महावयं हुंती) आत्माके स्वाभाविक सत्य महाव्रतको पालते हैं।

भावार्थ—आत्माका यथार्थ सत्य स्वभाव परमात्मारूप है, सर्व रागादि विकारोंसे रहित है, परमानन्दमई है। इसीको सत्यरूपसे जानना और ऐसा ही श्रद्धान करना व इसी श्रद्धान व ज्ञान सहित भावके साथ निर्विकल्प समाधिमें जमकर आत्मध्यान करना यही स्वाभाविक निश्चय सत्य महाव्रत है। वस्तुको अनेकांत रूपसे जानना सत्य है। एकांत रूपसे जानना असत्य है। सांसारिक क्षणिक सुखको सुख जानना मिथ्या है। आत्मिक सुखको सुख जानना सत्य है। शरीर व स्त्री पुत्रादिको अपना जानना मिथ्या है। निज गुणोंको अपना जानना सत्य है। साधु महाराज सब मिथ्याभावोंसे रहित हो एक सत्य निज स्वरूपका ही अवलम्बन करते हैं।

अनृतका त्याग सत्य व्रत है। तत्वार्थसारमें कहा है—

प्रमत्तयोगतो यत्स्यादसदर्थाभिभाषणम् । समस्तमपि विज्ञेयमनृतं तत्समासतः ॥ ७५–४ ॥

भावार्थ—प्रमाद सहित मन, वचन, कायके द्वारा जो अप्रशस्त व अहितकारी वचनोंको कहना

सो सर्व असत्य है। इस असत्यका त्याग व्यवहार सत्य महाव्रत है। आत्मामें आत्मारूप होकर ठहरना सत्य महाव्रत है।

अस्तेय महाव्रत।

स्तेयं न हु दिट्ठदि, जिन उत्तं उत्त सव्वहा सव्वं।
जिनरूवं जिन वयनं, ज्ञान सहावेन ज्ञान उवएसं ॥ ४७८ ॥

अन्वयार्थ—(स्तेयं न हु दिट्ठदि) साधु महाराजमें किंचित् भी चोरी नहीं पाई जाती है (जिन उत्तं सव्वं सव्वहा उत्त) वे जिनेन्द्र कथित सर्व तत्व स्वरूपको सर्वथा सत्य कहते हैं (जिन रूवं) उनका भेष जिनेन्द्रके समान दिगम्बर है (जिन वयनं) जिनेन्द्रके समान ही उनके सत्य वचन हैं (ज्ञान सहावेन ज्ञान उवएसं) वे ज्ञानस्वभावी आत्मामें लीन होते हुए अवसर पाकर सत्य ज्ञानका ही उपदेश देते हैं।

भावार्थ—विना दी हुई वस्तुका त्याग अचौर्य महाव्रत है। जिनेन्द्र कथित उपदेशको औरका और कहना व विचारना चोरी है। ऐसा न करके यथार्थ उपदेशको यथार्थ कहना अचौर्य महाव्रत है। जिनेन्द्रकी आज्ञासे विरुद्ध साधुका द्रव्य स्वरूप रखना व भावोंमें विपरीत भाव रखना चोरी है। इस चोरीका त्याग करे। जिनेन्द्रकी आज्ञानुसार नग्न दिगम्बर भेष रखना व परिणामोंमें भी विषय-भोगोंको त्यागकर निर्विकल्प समाधिमें लीन रहना अचौर्य महाव्रत है। जिनेन्द्रके कथनको यथार्थ ही कहना, कुछ भी नहीं छिपाना अचौर्य महाव्रत है। अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रमना व अवसर पाकर ज्ञान स्वरूपको पुष्ट करनेवाला उपदेश देना अचौर्य महाव्रत है।

तत्वार्थसारमें कहा है:—

प्रमत्तयोगतो यत्स्यादत्तार्थपरिग्रहः। प्रत्येयं तत्खलु स्तेयं सर्वसंक्लेशयोगतः ॥ ७६–४ ॥

भावार्थ—प्रमाद सहित योगसे विना दिये हुए पदार्थका ग्रहण करना चोरी है। इस चोरीको त्याग करके साधुजन व्यवहार अचौर्य महाव्रत पालते हैं। अन्तरंगमें शुद्धता रखके, शास्त्रोक्त चलते शास्त्रोक्त कहते व शास्त्रोक्त विचार करते हैं। व शास्त्रानुसार शुद्ध आत्म-ध्यानमें विना किसी कपटके लीन रहते हैं सो अचौर्य महाव्रत है।

ब्रह्मचर्य महाव्रत।

बंभं बंभ सरूवं, अबंभ भाव सयल दोस परिचित्तो।
अप्पा परमानन्दं, बंभवयं महावयं हुंती ॥ ४७९ ॥

अन्वयार्थ—(बंभं बंभ सरूवं) ब्रह्मचर्यव्रत ब्रह्म स्वभावमें लीन होना है (अबंभ भाव सयल दोस परिचत्तो) अब्रह्म या कुशील सम्बन्धी सर्व दोषोंका छोड देना है (अप्पा परमानन्दं) आत्माको परमानन्द-मई अनुभव करना है यही (बंभवयं महावयं हुंती) ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

भावार्थ—सर्व कुशील भावोंका त्यागना व्यवहार ब्रह्मचर्य व्रत है। अन्तरंगमें निश्चय ब्रह्म-स्वरूपमें लीन होना निश्चय ब्रह्मचर्य व्रत है। जहां रागादि सर्व विकल्प मिट गए हों और आत्मा-परमानन्दमई अनुभव किया जाता हो वही ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

अब्रह्मका त्याग ब्रह्मचर्य है। तत्वार्थसारमें कहा है—

मैथुनं मदनोद्रेकादब्रह्म परिकीर्तितम् ॥ ७७–४ ॥

भावार्थ—कामके उद्वेगसे मैथुन करना अब्रह्म कहा गया है। मन, वचन, कायसे अब्रह्मका त्याग ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

परिग्रह त्याग महाव्रत।

पर पुद्गल परमानं, पुग्गल स सहाव सयलदोस परिचत्तो।
अप्पा परमप्प रूवं, पुग्गल सहकार दोस परमानं ॥ ४८० ॥

अन्वयार्थ—(पर पुद्गल परमानं) आत्माके सिवाय शरीरादि पुद्गलको पर मानना (पुग्गल स सहाव सयलदोस परिचत्तो) पुद्गलके स्वभावके निमित्तसे होनेवाले सर्व रागादि दोषोंको छोडना (पुग्गल सहकार दोस परमानं) पुद्गलकी संगतिसे होनेवाले सर्व दोषोंको अपनेसे भिन्न मानना (अप्पा परमप्प रूवं) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करना परिग्रह त्याग महाव्रत है।

भावार्थ—निज द्रव्य गुण पर्यायको अपना स्वरूप मानके सर्व पर द्रव्य, पर गुण, पर पर्यायकी

परिग्रहको पर स्वरूप मानके छोड देना। केवल मात्र अपने परमात्म स्वभावमें निस्पृह हो लीन होना परिग्रह त्याग महाव्रत है। परमाणु मात्र भी अपना न जानना, कर्मके उदयसे जो २ बाहरी व भीतरी अवस्थाएं होती हैं उनको परमानके ममत्व त्याग देना परिग्रह त्याग महाव्रत है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

ममेदमिति संकल्परूपा मुर्च्छा परिग्रहा ॥ ७७–४ ॥

अपने आत्माके सिवाय सर्वपरमें यह मेरा है ऐसा संकल्प न करना मूर्च्छा है सो ही परिग्रह है। महाव्रती इस मूर्च्छाके त्यागी होते हैं। उनका निज स्वामित्व निज आत्म-विभूतिमें रहता है।

पंचमहावय सुद्धं, अप्पा अप्पेन अप्प ससरूवं।
ज्ञानं अवहि संजुत्तं, मनपर्यय केवलं भावं ॥ ४८१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं पंचमहावय) निश्चयनयसे पांच महाव्रतका स्वरूप यह है जो (अप्पा अप्पेन अप्प ससरूवं) आत्मा अपने ही द्वारा अपने निज स्वभावका अनुभव करे (ज्ञानं अवहि संजुत्तं मनपर्यय केवलं भावं) आत्माके ज्ञानमें ही अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञान गर्भित हैं।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय चारित्रको पालते हैं। अहिंसादि पांचों व्रतोंको जीव रक्षा करते हुए, सत्य बोलते हुए, विना दी वस्तु न लेते हुए, ब्रह्मचर्य पालते हुए व परिग्रह रहित होते हुए पालते हैं। यह व्यवहार चारित्र है। निश्चयसे मन, वचन, कायके सर्व विकल्पोंको त्यागकर आप अपने स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा आपमें ही लीन होकर आत्मानुभव करते हैं, वही निश्चय चारित्र है। यहां रागादि विकल्प न होनेसे अहिंसाव्रत है, सत्य पदार्थ आत्मामें लय होनेसे सत्यव्रत है, परभावका ग्रहण नहीं है इससे अचौर्यव्रत है, आत्म स्वरूपमें लयता है उससे ब्रह्मचर्य व्रत है, पर पदार्थकी मान्यताका त्याग है इससे परिग्रह त्याग महाव्रत है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है। उसमें पांचों ही ज्ञान गर्भित हैं। ध्यानके द्वारा जैसे जैसे ज्ञानावरणका परदा हटता जाता है अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान तथा केवलज्ञान प्रकाशमान होजाता है।

दिग्व्रत महाव्रत ।

दिग्व्रत सुद्धं सुद्धं, दिगम्बर परिनाम सुद्ध ससहावं ।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, दिग्व्रत महावयं हुंती ॥ ४८२ ॥

अन्वयार्थ—(दिग्व्रत सुद्धं सुद्धं) साधुओंका परम शुद्ध दिग्व्रत यह है कि (दिगम्बर परिनाम सुद्ध ससहावं) बाहरीमें दिशाको वस्त्र रखते हुए अंतरंगमें पर भाव रहित शुद्ध निज स्वरूपमें लीन होजाना (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञानका शुद्ध ज्ञान स्वरूप ही वर्तना यही (दिग्व्रत महावयं हुंती) दिग्व्रत महाव्रत है।

भावार्थ—यहां श्रावकोंके तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतकी तरफ लक्ष्य देकर ग्रंथकर्ताने उनको युक्तिसे साधुओंके स्वरूपमें घटाया है। बाहरी दिशाओंको ही पहननेका वस्त्र रखना व अंतरंगमें रागादि परभावोंका त्याग करके अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें लीन होना दिग्व्रत महाव्रत है ऐसा घटाया है। बाहरी व भीतरी एकाकार आत्मामई होजाना ही दिग्व्रत है।

रत्नकरंड श्रावकाचारमें इसका स्वरूप कहा है—

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि। इति संकल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्यै ॥ ६८ ॥

भावार्थ—श्रावक मरण पर्यंतके लिये किंचित् भी पाप मर्यादाके बाहर न लगे इसलिये दशों दिशाओंकी मर्यादा कर लेता है कि इससे बाहर न जाऊंगा, यह श्रावकोंका दिग्व्रत है। लौकिक कार्योंके लिये की हुई मर्यादाके बाहर नहीं जाता है न लेनदेन व्यवहार रखता है।

देशव्रत महाव्रत ।

देसो सुद्ध सहाओ, ऊरेसनं पि दंसनं ज्ञानं ।
देसो उद्देस सुद्धं, देसव्रतं महावयं हुंती ॥ ४८३ ॥

अन्वयार्थ—(देसो सुद्ध सहाओ) निश्चयसे आत्माका देश या वास करनेका स्थान अपना शुद्ध स्वभाव है (दंसनं ज्ञानं ऊरेसनं पि) जहां दर्शन और ज्ञानमें तिष्ठनेका ही उद्देश्य या प्रयोजन है (देसो उद्देस सुद्धं) जहां शुद्ध ही स्थान है व शुद्ध ही अभिप्राय है वही (देसव्रत महावयं हुंती) देशव्रत ही महाव्रत होता है।

भावार्थ—यहां दूसरे श्रावकके गुणव्रत देशव्रतको लक्ष्यमें लेकर कहा है कि जो साधु सर्व संकल्प विकल्प त्याग करके अपने ही स्वक्षेत्रमें या अपने ही स्वभावमें तिष्ठनेकी प्रतिज्ञा करके अपने ही ज्ञान दर्शनके मार्गका उद्देश्य रखते हैं वे ही देशव्रत महाव्रतके धारी हैं। रत्नकरंडमें कहा है—

देशावकाशिकं स्यात् कालपरिच्छेदनेन देशस्य । प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९२ ॥

भावार्थ—दिग्व्रतमें जो जन्म पर्यंतके लिये दशों दिशाओंकी मर्यादा की थी उसमेंसे घटाकर प्रतिदिनके लिये मर्यादा करना सो अणुव्रत धारी श्रावकोंका देशव्रत है।



अनर्थ दंडव्रत महाव्रत।

अज्ञान अर्थ न दिट्ठीदि, ज्ञान सहावेन भव्य उवसंतो।
कीला अप्प सहावं, अप्पा परमप्पओ हवई ॥ ४८४ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान अर्थ न दिट्ठदि) मिथ्याज्ञान सहित पदार्थ ही अनर्थ है जहां उसका श्रद्धान न हो। (ज्ञान सहावेन भव्य उवसन्तो) किन्तु सम्यग्ज्ञानमय आत्म-स्वभावके द्वारा सत्य स्वरूपमें शांति प्राप्त की जावे (कीला अप्प सहावं) अर्थात् अपने आत्माके स्वभावमें आपको कील दिया जावे (अप्पा परमप्पओ हवई) जिससे आत्मा परमात्मा होसके यही अनर्थ दंडव्रत महाव्रत है।

भावार्थ—सत्य अर्थ या परमार्थ अपना ही शुद्ध आत्मा है। इसके सिवाय रागी, द्वेषी, मोही, आत्मा पुद्गलादि पदार्थ सब अनर्थ हैं। इस अनर्थका त्याग करके जो साधु वीतरागताके साथ अपने स्वभावमें भलेप्रकार तन्मय होजाते हैं, निर्विकल्प आत्मसमाधिमें या धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानमें आरूढ होजाते हैं वे ही अनर्थदंड त्याग महाव्रतको पालते हुए अपने आत्माको परमात्माके स्वरूपमें परिणमा देते हैं। श्रावकोंके लिये इस व्रतका स्वरूप रत्नकरंडमें कहा है—

अभ्यंतरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः। विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥ ७४ ॥

भावार्थ—दिशाओंकी की हुई मर्यादाके भीतर २ प्रयोजन रहित पापके कारणोंसे विरक्त होनेको महाव्रती साधुओंने अनर्थदंड कहा है।

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पंच। प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥

भावार्थ—गणधरादिने पांच प्रकारका अनर्थदंड कहा है—

(१) पापोपदेश–दूसरेको पाप करनेका, हिंसामई आरंभ करनेका उपदेश देना। (२) हिंसादान–फरशा, तलवार, शस्त्र, सांकल, अग्नि आदि हिंसाकारक पदार्थ दूसरेको मांगे देना। (३) अपध्यान–दूसरोंका वध, बंधन, नाश आदि राग द्वेषके वशमें हो विचारना। (४) दुःश्रुति–आरंभ परिग्रह व मिथ्यात्व, रागद्वेष बढानेवाली व चित्तको क्लेशित करनेवाली कथाओंको सुनना, (५) प्रमादचर्या–विना प्रयोजन आलस्यसे मिट्टी खोदना, पानी फेंकना, अग्नि जलाना, पवन लेना, वनस्पति छेदना, सैर करना आदि। श्रावक इन पांचों ही प्रकारके अनर्थदण्डसे बचा रहता है।

मिच्छा भावे विरदो, विरदो संसार सरनि वावारे।
अज्ञान अर्थ विरदो, सुरदो सुद्ध चेयना भाओ ॥ ४८५ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छा भावे विरदो) जो मिथ्यात्व भावसे विरक्त है (विरदो संसार सरनि वावारे) संसारमें भ्रमण करानेवाले व्यापारोंसे विरक्त है (अज्ञान अर्थ विरदो) अज्ञानमई पदार्थसे विरक्त है (सुद्ध चेयना भाओ सुरदो) शुद्ध चेतना भावमें भलेप्रकार रत है सो ही अनर्थदंड त्याग महाव्रतका धारी है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं इनसे विरक्त होकर जो मोक्षमार्गके आलंबनोंके द्वारा अपने शुद्ध चेतनाके स्वादमें मग्न होकर आत्मीक अतीन्द्रिय आनन्दका लाभ लेते हैं वे ही अनर्थदंड त्यागी साधु हैं।

चार शिक्षाव्रत महाव्रत।

शिष्यावय चत्वारि, सिष्या दिष्या च ज्ञानसंजुत्तो।
सुरदो चेयन भाओ, सिष्यावय उवएसनं तं पा ॥ ४८६ ॥
भोगा उपभोग पडिमा, अतिथि सुयंभाग सलेहनावंतो।
विज्ञानं जानंतो, सुद्ध सरूवं च ज्ञानसंजुत्तो ॥ ४८७ ॥

अन्वयार्थ—(शिष्यावय चत्वारि) चार शिक्षाव्रतके धारी साधु (सिक्षा दिक्षा च ज्ञानसंजुत्तो) शिक्षा, नियम तथा ज्ञानके धारी होते हैं (चेयन भाओ सुद्दो) चैतन्यभावमें भलेप्रकार लीन होते हैं (सिष्यावय उवएसनं तं पी) उनहीके लिये शिक्षाव्रतोंका उपदेश है। (भोगा उपभोग पडिमा) प्रथम शिक्षाव्रत भोग प्रतिमा, दूसरा शिक्षाव्रत उपभोग प्रतिमा (अतिथि सुयंभाग सल्लेहनावंतो) तीसरा शिक्षाव्रत अतिथि स्वयं विभाग, चौथा शिक्षाव्रत सल्लेखना है इनके धारी साधु (विज्ञानं जानंतो) भेद विज्ञानको जानते हुए (सुद्ध सरूवं च ज्ञानसंजुत्तो) शुद्ध आत्मस्वरूपके अनुभवके कर्ता होते हैं।

भावार्थ—यहां युक्तिसे श्रावकके व्रतोंको मुनिके चारित्रमें घटाया है। यहां चार शिक्षाव्रत जो कहे हैं उनसे तत्वार्थसूत्रमें कहे हुए शिक्षाव्रतोंसे कुछ अंतर है। तत्वार्थसूत्रमें सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण तथा अतिथि संविभाग ऐसे चार शिक्षाव्रत हैं। यहां प्रयोजन यह है कि साधुओंको ऐसी योग्य शिक्षा मिलती है, वे ऐसे नियमोंमें दृढ होते हैं कि वे सर्व पर भावोंको त्याग करके एक अपने चैतन्य भावमें लीन होते हैं, पूर्ण निर्मल भेदविज्ञानके द्वारा शुद्ध स्वरूपके यथार्थ ज्ञाता रहते हैं। यहां निश्चय नयसे घटानेके लिये इसतरह चार शिक्षाव्रत कहे हैं।

भोगप्रतिमा शिक्षाव्रत।

भोगो संसार मइओ, अनृत असत्य सहित जो मिथ्या।
रागादि दोष विषयं, तिक्तं च अभाव सिष्ययं भनियं ॥४८८॥

अन्वयार्थ—(संसार मइओ भोगो) संसार सम्बन्धी भोग (अनृत असत्य सहित जो मिथ्या) अनित्य व मिथ्या पदार्थोंके सम्बन्धमें होते हैं इसीसे मिथ्या हैं (रागादि दोष विषयं) जिनका विषय रागद्वेषादि है (तिक्तं अभाव सिष्ययं भनियं) इन भोगोंके रागका त्याग करना, भोगोंका अभावरूप शिक्षाव्रत कहा गया है।

भावार्थ—संसारके विषयभोग धन, धान्य, स्त्री, पुत्रादि, मकानादि सर्व क्षणभंगुर हैं। इनको थिर मानके उनके भोगोंकी अभिलाषा करना मिथ्यात्वभाव है। इन भोगोंके निमित्तसे रागद्वेष बढते हैं। जहां इनकी इच्छाओंका त्याग है वहीं भोग त्याग शिक्षाव्रत है।

राागादि य उववन्नं, पुन्यं पावं च दुक्खस सहावं ।
अज्ञानं संतुट्ठं, भोगं सहकार सयल तिक्तं च ॥ ४८९ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि य उववन्नं) रागद्वेषादि भावोंको उत्पन्न करनेवाले (पुन्यं) पुण्य कर्म (दुक्खस सहावं पावं च) तथा दुःखोंको पैदा करनेवाले पाप कर्म (अज्ञानं संतुट्ठं) जहां मिथ्याज्ञानमें संतोष माना जाता है (भोगं सहकार) ऐसे भोगोंके साधक (सयल तिक्तं च) सर्व भावोंको साधु त्याग देते हैं।

भावार्थ—जहां सम्यग्ज्ञान नहीं है वहां मोक्षकी व आत्माके शुद्ध स्वभावकी श्रद्धा नहीं है, उससे विपरीत संसारकी श्रद्धा व परमें आत्म-बुद्धिकी मिथ्या श्रद्धा है। ऐसे मिथ्या भावोंका धारी जो कोई शुभ कार्य भी करता है उनमें विषयभोगोंसे राग होता है व नरकादिके कारण भावोंसे द्वेष होता है। उनसे पुण्य कर्म बांधकर भोगोंको पाता है। कदाचित् पाप कर्म करता है तो दुःखकारक पाप कर्म बांध लेता है। ऐसे मिथ्यात्वी जीव मिथ्याज्ञान पूर्वक क्रियाओंके करनेमें सन्तोष मान लेते हैं। सम्यग्ज्ञानी साधु संसारके भोगोंके कारण सर्व भावोंको बिलकुल त्याग देते हैं, जहां पाप पुण्य दोनोंकी अभिलाषा नहीं होती है, केवल शुद्ध आत्मीक आनन्दका भोग होता है। वही भोग प्रतिमा शिक्षाव्रतको पालता है। यहां आत्माका भोग है, परका भोग नहीं है। यही भाव साधुओंका शिक्षाव्रत है।

भोगं जिनेहि उत्तं, सुद्धं भोगं च सयलदोस परिचत्तो ।
मतिज्ञानं संतुट्ठं, भोगं सुद्धं संसार सरनि विरदोय ।। ४९० ॥

अन्वयार्थ—(जिनेहि उत्तं भोगं) जिनेन्द्र भगवंतोंने जो भोग कहा है वह (सयलदोस परिचत्तो सुद्धं भोगं च) सर्व दोषोंसे रहित शुद्ध आत्मभोग है (मतिज्ञानं संतुट्ठं) जहां आत्माके अनुभवमें संतोष हो वही (सुद्धं भोगं) शुद्ध आत्मभोग है (संसार सरनि विरदोय) ऐसा भोगी संसार मार्गके कारण भोगोंसे विरक्त होता है।

भावार्थ—साधुजन चतुर्गतिमें भ्रमणके कारण सर्व भोगोंको मन वचन कायसे त्याग देते हैं। केवल आत्मानन्दका भोग करते हैं। जो स्वाधीन है, निर्दोष है, कषाय रहित है, यही भोगप्रतिमा शिक्षाव्रत है।

आयम पुण्ण सुद्धं, अष्यर सुर विंजनस्य पद अर्थं ।
अप्प सरूव सुदिट्ठं, अप्पा परमप्प सुद्ध संतुट्ठं ॥ ४९१ ॥

अन्वयार्थ—(आयम पुण्ण सुद्धं) जिसने आगम व पुराणको शुद्ध भावोंसे जाना हो (अष्यर सुर विंजनस्य पद अर्थं) उनके स्वर व्यंजन अक्षरोंको व शब्दोंको व वाक्योंको अर्थ सहित ठीक २ समझता हो (अप्प सरूव सुदिट्ठं) तथा उन आगमोंके द्वारा आत्माके स्वरूपका ठीकर निश्चय किया हो (अप्पा परमप्प सुद्ध संतुट्ठं) और आत्माको परमात्मा रूप निश्चय करके शुद्ध भावमें तृप्ति प्राप्त की हो उसीने ही आत्मभोग किया है व भोगप्रतिमा महाव्रत धारा है।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि ज्ञानका भोग बडा भारी भोग है, परम तृप्तिको देनेवाला है। व्यवहार नयसे ज्ञानका भोग यह है कि जिनवाणीके चारों अनुयोगोंके शास्त्रोंको शुद्ध पढकर उनका अर्थ शुद्ध व भाव शुद्ध समझा जाय, फिर उनके भीतरसे सारभूत आत्मतत्वको भिन्न जानकर यह निश्चय किया जाय कि मेरा आत्मा परमात्माके तुल्य ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि शुद्ध गुणोंका धारी है। निश्चय नयसे ज्ञानका भोग यह है कि सर्व संकल्प विकल्पोंको त्यागकर एकाग्रचित्त हो निज आत्माका ध्यान लगाया जावे, रत्नत्रयकी एकता प्राप्त की जावे, आत्मानुभव जागृत किया जावे और आत्मानन्द रूपी अमृत रसका पान किया जावे व उसीके पानमें संतोष माना जावे।

उपभोग प्रतिमा शिक्षाव्रत।

उवभोग दुष्ट भनियं, संसारे सरनि साधनं नित्यं।
मिथ्यातराग सहियं, कुज्ञान विषयचिंतनं तं पि ॥ ४९२ ॥

अन्वयार्थ—(दुष्ट उवभोग भनियं) दुष्ट या हानिकारक उपभोग यह कहा गया है जो (संसारे सरनि साधनं नित्यं) संसारमें भ्रमण करानेवाले साधनोंको नित्य किया जावे (मिथ्यातराग सहियं) मिथ्यादर्शन व रागमें लिप्त रहा जावे (कुज्ञान विषयचिंतनं तं पी) या मिथ्याज्ञान द्वारा अनेक विषयोंका चिन्तवन किया जावे।

भावार्थ—साधुजन ऐसे उपभोगोंका कभी सेवन नहीं करते हैं जो हानिकारक हैं, जो संसारमें रुलानेवाले पाप कर्मोंको बांधनेवाले हैं। जिन मिथ्यात्व व रागके वशीभूत हो प्राणी स्त्री, धन, मकान, राज्य, वस्त्राभूषण आदि उपभोगोंका वारवार भोगकर तृष्णाकी दाहमें फँसे रहते हैं या मिथ्या मिथ्या मतिज्ञानके द्वारा खोटी बुद्धि उपजाकर अनेक हिंसाकारी शस्त्रादि बनाते रहते हैं या मिथ्या शास्त्र ज्ञानके द्वारा रागवर्द्धक काम अलङ्कार छन्द आदि रचते रहते हैं व मनोज्ञ उपभोगोंके लिये चिंता किया करते हैं। उन सर्व मिथ्यात्व व राग भावोंका उपभोग साधुओंने त्याग दिया है।

जस्य य मनस्य पसरो, तस्य य परिनाम असुह सव्वे ही।
तिक्कंति सयल दोसं, ज्ञान सहावेन तिक्त उवभोगं ॥ ४९२ ॥

अन्वयार्थ—(जस्य य मनस्य पसरो) जिसका मन वशमें न होकर सर्व तरफ घूमता रहता है (तस्य य सव्वे ही असुह परिनाम) उसके सर्व ही परिणाम अशुद्ध हैं (ज्ञान सहावेन सयल दोसं तिक्कंति) साधुजन निज आत्माके ज्ञान स्वभावमें स्थिर होकर मनके सर्व दोषोंको दूर कर देते हैं (तिक्त उवभोगं) यही उपभोगका त्याग है।

भावार्थ—मन बडा चञ्चल है, यह मन पांचों इंद्रियोंके भोगने योग्य मनोज्ञ पदार्थोंमें सदा ही भ्रमण किया करता है। मनके सर्व ही संकल्प विकल्प अशुद्ध परिणमन हैं, कर्म बंधके कारक हैं। ऐसे मनके द्वारा होनेवाले उपभोगको भी साधुजन निज आत्माके ज्ञान स्वभावके उपभोगमें तृप्त होकर त्याग देते हैं तब सर्व दोषसे रहित हो, पर उपभोगके त्यागी होजाते हैं।

बृहत् सामायिकपाठमें श्री अमितगति महाराज कहते हैं—

व्यावृत्येन्द्रियगोचरोरुगहने लोलं चरिष्णुं चिरं। दुर्वारं हृदयोदरे स्थिरतरं कृत्वा मनोमर्कटं।
ध्यानं ध्यायति मुक्तये भवततेर्निर्मुक्तभोगस्पृहो। नोपायेन विना कृता हि विधयः सिद्धिं लभंते ध्रुवं ॥ ९४ ॥

भावार्थ—यह मनरूपी बन्दर पांचों इंद्रियोंके महान भयानक वनमें चिरकालसे रमण कर रहा था। जिसको रोकना कठिन था उस मनको अपने हृदयके भीतर स्थिर करके उद्योगी साधुजन सर्व भोगोंकी इच्छाओंको त्याग करके मुक्तिके लिये ध्यानका अभ्यास करते हैं। क्योंकि उपायके विना सिद्ध नहीं होसक्ती है यह निश्चय है।

जिन उत्तं उवभोगं, संसार सरनि तिक्त उवभोगं ।
अप्पर पदं च जानदि, अवयासं अप्प सुद्ध परमप्पा ॥४९४॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं उवभोगं) जिनेन्द्र भगवानका कहा हुआ उपभोग यह है कि (संसार सरनि उवभोगं तिक्त) संसारमें भ्रमण करानेवाले पांचों इंद्रियोंके व मनके उपभोगोंको त्याग करके (अप्पर पदं च जानदि) जिनवाणीके अक्षरोंको व वाक्योंको भलेप्रकार जाना जावे, तथा (अवयासं अप्प सुद्ध परमप्पा) अपने भीतर आत्माको शुद्ध परमात्माके समान अनुभव किया जावे ।

भावार्थ—यथार्थ उपभोग साधुओंका यह है कि वे मनको व इंद्रियोंको संसारके पदार्थोंसे व विषयभोगोंसे रोक लेते हैं। और निश्चिन्त होकर अपना सर्व ध्यान जिनवाणीके पठन पाठन व मननमें लगा देते हैं। यह व्यवहार उपभोग है। निश्चयनयसे वे साधु अपने आत्माको परमात्माके समान शुद्ध निर्विकार जान करके उसी निज आत्माके स्वभावमें लीन होकर उसीके अनुभवका बारबार भोग करते हुए परम तृप्तिलाभ करते हैं। वास्तवमें आत्माके उपभोगके सामान जगतमें कोई उपभोग हो नहीं सक्ता है। यही मोक्षका साधन है।

अवयास सुद्धं सुद्धं, दंसनज्ञानेन सुद्ध चरनानि ।
चिंतंति भावं सुद्धं, उवभोगं च चेयनाभावं ॥ ४९५ ॥

अन्वयार्थ—(अवयास सुद्धं सुद्धं) जिसका भीतरी भाव परम शुद्ध है (दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानि) जहां सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व शुद्ध सम्यक्चारित्र विराजमान है (सुद्धं भावं चिंतंति) जो साधु शुद्ध आत्मीक भावका मनन करते हैं (उवभोगं च चेयनाभावं) वहीं शुद्ध ज्ञान चेतना भावका उपभोग है।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु सर्व पर भावोंका उपभोग त्यागकर अपने भीतरी अवकाश या स्थानको आकाशके समान निर्मल करते हैं, सर्व संकल्प विकल्पोंसे हटाते हैं व निश्चय रत्नत्रयोंसे भरपूर करते हैं। इस तरह शुद्ध आत्माका अनुभव करते हुए व अपनी ज्ञान चेतनाका स्वाद लेते हैं, कर्म चेतना व कर्मफल चेतनाका स्वाद नहीं लेते हैं, यही शुद्ध उपभोग शिक्षाव्रत है। श्रावकके भोगोपभोग शिक्षाव्रतको दो भागोंमें बांटकर ग्रंथकर्ताने साधुके चारित्रमें घटाया है। व्यवहारसे भोगोपभोग शिक्षाव्रतका स्वरूप रत्नकरंडमें इस भांति है—

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् । अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ ८२ ॥

भावार्थ—रागादि भावोंको घटानेके अर्थ परिग्रह प्रमाण व्रतमें की हुई मर्यादाके भीतर प्रतिदिन प्रयोजनभूत इंद्रियोंके विषयोंका परिमाण करके शेषका त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत है।

शिक्षाव्रतोंमें सामायिक व प्रोषधोपवास भी गर्भित है उनका स्वरूप रत्नकरंड श्रावकाचारमें इस भांति है—

आसमयमुक्तिमुक्तं पंचाघानामशेषभावेन । सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ।। ९७ ॥

भावार्थ—मन वचन काय व कृत कारित अनुमोदनासे सर्व जगह किसी नियत समयके लिये पांचों हिंसादि पापोंको बिलकुल त्याग करके आत्मस्वरूपमें समताभावसे लीन होना उसको शास्त्रज्ञ सामायिक कहते हैं। सवेरे, सांझ व दोपहरको एक मुहूर्त या अंतर्मुहूर्तके लिये एकांतमें बैठकर ध्यान करना सामायिक शिक्षाव्रत है।

प्रोषधोपवासका स्वरूप यह है—

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु । चतुरभ्यवहार्याणां प्रत्याख्यानं सदिच्छाभिः ॥ १०६ ॥

भावार्थ—चौदश व अष्टमीके दिन आत्म-शुद्धिकी भावना पूर्वक चार प्रकारके आहारका त्याग करना प्रोषधोपवास है।

अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत।

अतिथिं सुयं विभागं, मिथ्या मय रागदोस विरयंतो।
अज्ञानं न हु पिच्छैं, सुद्ध सहावं च पिच्छए अप्पा ॥ ४९६ ॥

अन्वयार्थ—(सुयं अतिथिं विभागं) अपने आत्मारूपी अतिथि अर्थात् साधुको आत्मानुभवका प्रदान करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है (मिथ्या मय रागदोस विरयंतो) मिथ्यात्व, मद, राग, द्वेषोंको छोडता हुआ (अज्ञानं न हु पिच्छे) मिथ्याज्ञानको नहीं देखता हुआ (अप्पा सुद्ध सहावं च पिच्छए) आत्मा शुद्ध स्वभावका ही अनुभव करता है यही अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे तो पात्रोंको दान देना अतिथि सुयं विभाग या अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत है। इसको वैय्यावृत्य भी कहते हैं रत्नकरण्डमें कहा है—

दानं वैय्यावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये। अनपेक्षितोपचारोपक्रममगृहाय विभवेन ॥ १११ ॥

भावार्थ—गुणवान, धर्म स्वरूप, गृह रहित तपस्वीको अपने पासके द्रव्यसे बदलेकी अपेक्षा विना दान देना वैय्यावृत्य है। निश्चयनयसे अपने आत्मारूपी पात्रको सर्व मिथ्यात्व मिथ्याज्ञान व रागद्वेषादि मिथ्या चारित्रसे रहित होकर शुद्ध स्वाभाविक आत्मानुभूतिका दान देना। अर्थात् आपको आपसे ही आत्मानन्दका प्रदान करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

सुयं विभागं सुद्धं, अन्यो पुग्गल वियान अप्पानं।
विवगत सरूव सुद्धं, अप्पा परमप्पयं जानं ॥ ४९७ ॥

अन्वयार्थ—(सुयं सुद्धं विभागं) अपने शुद्ध स्वरूपको परसे विभाग करना अतिथि सुयं विभाग है अर्थात् (अन्यो पुग्गल अप्पानं वियान) पुद्गल अन्य है आत्मा अन्य है ऐसा जानना (विवगत सुद्धं सरूव) अपने शुद्ध स्वरूपको जान करके (अप्प परमप्पयं जानं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

भावार्थ—भेदविज्ञानके द्वारा अपने आत्माको सर्व अन्य आत्माओंसे, सर्व प्रकार पुद्गलोंसे, कर्म नोकर्मसे, धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्योंसे व सर्व पुद्गल कर्मके उदय जनित रागादि भावोंसे भिन्न जानकर परमात्मा स्वरूप अपने आपका अनुभव करना अतिथि सुयं विभाग शिक्षाव्रत है।

सल्लेखना शिक्षाव्रत।

सल्लेहना सरीरो, इन्द्री मन पसार दोस सलिहेई।
सलिहर रायं दोसं, मिथ्या अज्ञान सल्य सलिहेई ॥ ४९८ ॥
सलिहई सयल विभावं, अप्पा अप्पेन चेयना सुद्धं।
अप्पा परमप्पानं, निश्चय ठिये दंसनं सुद्धं ॥ ४९९ ॥

अन्वयार्थ—(सरीरो सल्लेहना) शरीरसे भलेप्रकार ममत्व त्यागना (इंद्रि मन पसार दोस सलिहेई) पांचों इंद्रियोंकी इच्छाओंको व मनके संकल्प विकल्पादि दोषोंको दूर करना (गयं दोसं सलिहेइ) रागद्वेष मिटाना (मिथ्या अज्ञान सल्य सलिहेई) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व माया मिथ्या निदान शल्योंको दूर करना (सयल विभावं सलिहेइ) तथा सर्व औपाधिक भावोंको नाश करना (अप्पा अप्पेन चेयुना सुद्धं) अपने आत्माको अपने आपके द्वारा शुद्ध चेतनारूप अर्थात् (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करना (सुद्धं दंसनं निश्चय ठिये) अर्थात् शुद्ध सम्यग्दर्शनमें निश्चयसे लीन होना सल्लेखना शिक्षाव्रत है।

भावार्थ—श्रावकका अंतिम व्रत सल्लेखना या समाधिमरण है। ये चार शिक्षाव्रतोंके सिवाय तत्वार्थसूत्र या रत्नकरंडमें कहा है। रत्नकरंडमें इसका स्वरूप यह है:—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निष्प्रतीकारे। धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥ १२२ ॥

भावार्थ—उपसर्ग पडनेपर, दुर्भिक्षमें, बुढापा होनेपर, व असाध्य रोगके होनेपर धर्मकी रक्षाके अर्थ शरीरको छोडना अर्थात् शरीरसे ममत्व छोड आत्मामें लीन होना सल्लेखना है ऐसा गणधरादिने कहा है। पुरुषार्थ सि० में कहा है—

नीयंतेऽत्र कषाया हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम्। सल्लेखनामपि ततः प्राहुरहिंसा प्रसिद्धयर्थम् ॥ १७९ ॥

भावार्थ—जहां हिंसाके कारण कषायोंको कृश किया जावे उसे सल्लेखना कहते हैं। यह अहिंसाको सिद्ध करनेवाली है। यहां निश्चयसे कहा है कि सर्व प्रकार शरीरसे, पांच इंद्रिय व मनके विकल्पोंसे, रागद्वेषादि भावोंसे, तीन शल्योंसे, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्रसे, सर्व ही विभाव परिणामोंसे ममत्व हटाकर अपने शुद्ध रत्नत्रय स्वरूप आत्मामें ही लवलीन होना सल्लेखना शिक्षाव्रत है।

बारह वय उवएसं, धरन्ति भावे विसुद्ध सद्भावं।
आसन्नभव्वपुरिसा, ज्ञानबलेन निव्वुए जंती ॥ ५०० ॥

अन्वयार्थ—(बारह वय उवएसं) ऊपर कहे प्रमाण बारह व्रतोंका उपदेश निश्चयनयसे किया गया है। जो कोई (आसन्नभव्वपुरिसा) निकट भव्य पुरुष (भावे विसुद्ध सद्भावं धरन्ति) अपने भावोंमें शुद्ध आत्मीक भावको धारण करते हैं वे (ज्ञानबलेन निव्वुए जंती) अपने आत्मज्ञानके बलसे निर्वाणको पाते हैं।

भावार्थ—इस ग्रंथमें साधुकी अपेक्षासे निश्चय नयकी प्रधानतासे नीचे प्रमाण बारह व्रतोंका कथन किया गया है। पांच व्रत-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग। तीन गुणव्रत--दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदंड व्रत। चार शिक्षाव्रत-भोग प्रतिमा, उपभोग प्रतिमा, अतिथि सुसंविभाग और सल्लेखना। जो कोई भव्य जीव निकट संसारी इन बारह व्रतोंका मनन करके अपने आपको सर्व विभावोंसे शून्य करके शुद्ध आत्माके भावको धारण करके शुद्ध आत्माका अनुभव करेंगे वे आत्मज्ञानके अनुभवके प्रतापसे कर्मोंको नाश कर अवश्य निर्वाणको प्राप्त करेंगे। वास्तवमें बहुत ही उत्तम कथन किया गया है। सम्यग्दर्शनके प्रेमियोंको यह कथन वारवार मनन करने योग्य है। यह आध्यात्मिक अदुभुत विवेचन मोहके खंड खंड करनेको वज्रके समान है।

बारह तप निरूपण।

तव बारह उवएसं, अप्प सहावं च दंसनं सुद्धं।
चरनं चरित्त वंतं, साहंति जे भव्य पुरिसस्याः॥ ५०१॥

अन्वयार्थ—(बारह तव उवएसं) अब बारह प्रकार तपका उपदेश करते हैं इनके द्वारा (जे भव्य पुरिसस्याः) जो भव्य पुरुष हैं वे (अप्प सहावं च दंसनं सुद्धं चरित्त वंतं) आत्माके स्वभावको शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध चारित्रका आचरण करते हुए (साहंति) साधन करते हैं।

भावार्थ—बारह प्रकार तप निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्रमें सहायक हैं। आत्मानुभवरूपी मोक्षमार्गमें उपयोगी हैं। ऐसा जानकर भव्य पुरुष इन तपोंके अभ्याससे आत्माके स्वभावको झलका लेते हैं।



निश्चय बाहरी तप कथन।

वाहिज तव संसुद्धं, सुद्धं सम्पत्त सुद्ध ससहावं।
सुद्धं दंसन ज्ञानं, सुद्धं चरनं पि सहाव तव यरनं॥ ५०२॥

अन्वयार्थ—(संसुद्धं बाहिज तव) परम शुद्ध निश्चय बाहरी तप यह है कि (सुद्धं सम्मत्त सुद्ध ससहावं) शुद्ध सम्यग्दर्शनका व शुद्ध अपने स्वभावका (सुद्धं दंसन ज्ञानं) शुद्ध दर्शन व ज्ञानका (सुद्धं चरनं पि) शुद्ध चारित्रका (सहाव तव यरनं) तथा स्वाभाविक तपका आचरण किया जावे।

भावार्थ—व्यवहारनयसे बाहरी तप जब शरीरकी मुख्यतासे है तब यहां निश्चय सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान, शुद्ध सम्यक्चारित्र, शुद्ध तपका आचरण करते हुए अपने आत्माके ज्ञान दर्शनमय स्वभावका साधन किया जावे वही बाहरी तप है।

अनशन तप निरूपण।

अनसयन सयन सुद्धं, मनवयकायेन सुद्ध तव यरनं।
सेन्यं अप्प सहावं, परिनामं सुद्ध साधनं जुत्तं ॥ ५०३ ॥

अन्वयार्थ— (अनसयन) जहां आत्म कार्यमें निद्रा न लीजावे (सुद्धं सयन) शुद्ध कार्यमें लीन रहा जावे (मनवयकायेन सुद्ध तव यरनं) मन, वच, कायके द्वारा शुद्ध तप किया जावे (अप्प सहावं सेन्यं) आत्माकी स्वभावानुभूति रूपी सेनाको लेकर (सुद्ध परिनामं साधनं जुत्तं) शुद्धोपयोगका साधन भले-प्रकार किया जावे वह अनशन तप है।

भावार्थ—व्यवहार नयसे अनशन तप उपवास करना है। जैसा तत्त्वार्थसारमें कहा है—

मोक्षार्थं त्यज्यते यस्मिन्नाहारोऽपि चतुर्विधः। उपवासः स तद्भेदाः सन्ति षष्ठाष्टमादयः ॥ १०७ ॥

भावार्थ—जहां मोक्षके प्रयोजनसे खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इन चार प्रकारके आहारोंका त्याग किया जावे वह उपवास है। उसके भेद बेला, तेला आदि हैं। यह निश्चय नयसे कथन है कि जहां अपने आत्मकार्यमें सावधान होकर आत्मस्वरूपमें निर्विकल्प समाधि द्वारा शयन किया जावे। मन वचन कायोंको रोककर आत्माहीमें आपको तपाया जावे। आत्माकी साधारण परिणतिरूपी सेनाके द्वारा शुद्ध स्वभावके घातक कर्मोंका संहार करके निज स्वभावकी पूर्णताका साधन किया जावे सो अनशन या उपवास तप है। जहां सर्व इंद्रियोंसे व मनसे उपयोगको हटाकर आपसे

आपमें ही तन्मय होकर बसाया जावे सो उपवास है। इससे यह दिखलाया है कि केवल भोजन त्याग तो बाहरी तप है, व भोजन त्यागके साथ साथ जहां निज स्वभावमें लीन होकर आत्माका साधन हो वही सच्चा अनशन है।

अनसन अप्प सहावं, रागादि दोस सयल परिहानं।
मिथ्या कुज्ञान कसायं, तिक्कंति अनसन सुद्ध ससहावं ॥५०४॥

अन्वयार्थ—(अनसन अप्प सहावं) अनशन या भोजनका त्याग तप वही है जहां आत्माके स्वभावमें रमा जावे (रागादि दोस सयल परिहानं) सर्व राग द्वेषादि भावोंको त्याग किया जावे (मिथ्या कुज्ञान कसायं तिक्कंति) जहां मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान व कषायोंका त्याग किया जावे (अनसन सुद्ध ससहावं) शुद्ध आत्मीक स्वभावमें तिष्ठा जावे वही अनशन तप है।

भावार्थ—जैसे बाहरी भोजनका त्याग करना उपवासमें प्रमाद व निद्राको व इंद्रियोंके विकारको जीतनेके लिये आवश्यक है वैसे मोक्षके साधनके लिये भीतरसे राग द्वेषादि विभावोंका, मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानका व कषायोंका भी त्याग करना जरूरी है। तथा शून्य न होकर अपने आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय होकर आत्मानंदका पान करना आवश्यक है। शरीरसे मोह हटानेके लिये शरीरको भोजनपान न देकर आत्माको पुष्ट करनेके लिये आनन्दामृतका पान कराना अनशन तप है।

अनसन अरूव रूवं, रूवातीतं च भाव चिंतन्तो।
ज्ञानमई स सहावं, ज्ञान सहावं च अनसनं सुद्धं ॥ ५०५ ॥

अन्वयार्थ—(अनसन अरूव रूवं) यह अनशन तप अरूपी आत्माका स्वभाव है (रूवातीतं च भाव चिंतन्तो) जहां रूपातीत सिद्ध भगवानका स्वभाव विचार किया जावे (ज्ञानमई स सहावं) या ज्ञानमई अपने आत्माके स्वभावको ध्याया जावे। अर्थात् (ज्ञान सहावं) ज्ञान चेतनाके स्वभावमें लीन रहा जावे यही (सुद्धं अनसनं) शुद्ध अनशन तप है।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव ही अनशन है। यह न तो पौद्गलिक भोजन करता है और न उसके

स्वभावमें रागादिकका भोग है। वह बहिरङ्ग व अन्तरङ्ग भोगोंसे रहित है। निज आत्माके ज्ञानानन्दमय स्वभावके लाभ करनेके लिये रूपातीत धर्म ध्यान किया जावे या ज्ञानमई निज स्वभाव की भावना भाई जावे, यही शुद्ध अनशन तप है।

विरइय संसार सुभावं, विरइय मिच्छातदोस परिनामं।
रइयं सुद्ध सहावं, ज्ञान सहावेन अनसनं सुद्धं ॥ ५०६ ॥

अन्वयार्थ—(संसार सुभावं विरइय) संसारके क्षणभंगुर स्वभावसे विरक्त होकर व (मिच्छात दोस परिनामं विरइयं) मिथ्यात्वके सदोष भावको त्यागकर (ज्ञान सहावेन सुद्ध सहावं रइयं) ज्ञानमई स्वभावके द्वारा अपने शुद्ध स्वभावमें रच जाना सो (सुद्धं अनसनं) शुद्ध अनशन तप है।

भावार्थ—संसार दुःखमय है। रागद्वेष मोहसे पूर्ण है, भव भवमें अनेक शारीरिक व मानसिक कष्टोंको दाता है। ऐसा जानकर मिथ्यात्व व रागद्वेषादि भावोंसे हटकर अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रुचिपूर्वक अनुभव करना निश्चय अनशन तप है।

ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, कुज्ञानं त्यजंति सव्वहा सव्वे।
इन्द्री विषय विमुक्कं, ज्ञान सहावेन अनसनं अमलं ॥ ५०७ ॥

अन्वयार्थ—जो साधु (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) आत्मज्ञानके अनुभवसे अपने ज्ञानको शुद्ध करते हैं (सव्वहा सव्वे कुज्ञानं त्यजंति) व सर्वथा सर्व मिथ्या ज्ञानका त्याग कर देते हैं (इन्द्री विषय विमुक्कं) और पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त रहते हैं (ज्ञान सहावेन अमलं अनसनं) वे ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर निर्मल अनशन तपका पालन करते हैं।

भावार्थ—सर्व राग द्वेष मोहादि विकल्पोंको तथा पांच इन्द्रियोंकी विषयवासनाको त्यागकर जो साधु भेदज्ञानके द्वारा अपने आत्माको सर्व द्रव्यकर्म, नोकर्म व भावकर्मसे भिन्न जानकर आप ही अपने स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा आपका अनुभव करते हैं वे ही यथार्थ अनशन तपके पालन करनेवाले हैं।

आमोदर्य तप निरूपण।

अप्पसहावं निलयं, अमलं अप्पं निम्मलं च परमप्पा।
सम्यक्दंसन दर्स, आमोदर्ज सुद्ध मप्पानं ॥ ५०८ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पसहावं निलयं) आत्माके स्वभावमें लीन होना (अमलं अप्प निम्मलं च परमप्पा) मल रहित आत्माको कर्म रहित परमात्माके समान जानना तथा (सम्यक्दंसन दर्स) निश्चय सम्यग्दर्शनको अनुभव करना सो (अप्पानं सुद्ध आमोदर्ज) अपना अन्तरंग शुद्ध आमोदर्य तप है।

भावार्थ—व्यवहार नयसे आमोदर्य तप भूखसे कम खाना जिससे ध्यान स्वाध्यायमें विघ्न न पडे जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

सर्वं तदवमोदर्यमाहारं यत्र हापयेत्। एकद्वित्र्यादिभिर्ग्रासैराग्रासं समयान्मुनिः ॥ ९–७ ॥

भावार्थ—जहां आहारको घटाया जावे, एक ग्रास दो ग्रास आदि कम करते हुए एक ग्रास मात्रका ही आहार किया जावे वह सर्व अवमोदर्य तप है।

यहां निश्चय नयसे कथन है कि अपने आत्माको शुद्ध निश्चय नयसे परमात्माके समान जानके अपने ही आत्माके स्वभावमें प्रमादभाव छोडकर लय हुआ जावे। निश्चय सम्यग्दर्शन रूप आचरण किया जावे। आत्माका अनुभव किया जावे सो निश्चय आमोदर्य तप है। आमोद शब्दके अर्थ आनन्द मनानेके हैं। इस अपेक्षासे हम ऐसा भाव भी लेसक्ते हैं कि अपने आत्मामें मगन होकर अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेना ही आमोदर्य तप है।

सम्यक् ज्ञानं जानदि, सम्यक् चरनं चरंति भावेन।
सम्यक् परिनै सुद्धं, आमोदर्ज सुद्ध मप्पानं ॥ ५०९ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक् ज्ञानं जानदि) जो साधु निश्चय सम्यग्ज्ञानको जानता है व (भावेन सम्यक् चरनं चरंति) भाव सहित निश्चय सम्यक्चारित्रका आचरण करता है (शुद्धं सम्यक् परिनै) तथा शुद्ध सम्यग्दर्शनमें परिणमन करता है वह ही (अप्पानं सुद्धं आमोदर्ज) आत्मा सम्बन्धी भीतरी शुद्ध आमोदर्ज तप पालन करता है।

भावार्थ—मैं निश्चयसे शुद्ध आत्मा हूं यह प्रतीति निश्चय सम्यग्दर्शन है। मैं अवश्य शुद्ध आत्मा हूं ऐसा संशय रहित जानना सम्यग्ज्ञान है। तथा शुद्ध आत्माके स्वभावमें तन्मय होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। इस तरह आत्मानुभवरूप अभेद रत्नत्रयमें तिष्ठना शुद्ध अध्यात्मीक आमोदर्य तप है।

अनन्त दर्सन दरसै, जानदि पिच्छेइ ज्ञान स सहावं।
तप यरनं संजुत्तं, आमोदर्ज ज्ञान सहकारं॥ ५१०॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहकारं आमोदर्जं तप यरनं संजुत्तं) जो साधु आत्मज्ञान सहित आमोदर्ज तपका साधन करते हैं और (ज्ञान स सहावं जानदि पिच्छेइ) ज्ञानमई आत्म-स्वभावको जानते देखते हैं वे (अनन्त दर्सन दरसै) अनन्त दर्शनको प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—आत्माके अनुभवमें आनन्द मानने रूप जो आमोदर्ज नामका तप है उसको जो आचरण करते हुए अपने ज्ञानस्वभावी आत्माको ही देखते जानते हैं वे धर्मध्यान व शुक्लध्यानके प्रतापसे चार घातीय कर्मोंको नाश कर अरहंत होजाते हैं और अनंत दर्शनको प्राप्त कर लेते हैं।

वस्तु संख्या प्रमाण तप।

वस्तुसंख्या परमाणं, वासं संसार तिक्त मोहंधं।
मिच्छात त्रिय विरयं, रागादि दोस त्रिय विरयंती॥५११॥

अन्वयार्थ—(वस्तुसंख्या परमाणं) वस्तु संख्या प्रमाण तप उसको कहते हैं जहां (वासं संसार तिक्त मोहंधं) मोहमई अज्ञानरूप संसारका वास त्याग दिया जावे (मिच्छात विरय विरयं) मिथ्यात्व व इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त रहा जावे (रागादि दोस विरय विरयन्ती) जिन २ पदार्थोंसे रागादि दोष उत्पन्न होते हों उनको छोड दिया जावे।

भावार्थ—वस्तु संख्या प्रमाण तपको वृत्ति परिसंख्यान तप भी कहते हैं जिसका प्रयोजन यह है कि जब साधु वृत्ति अर्थात् भिक्षाके लिये जाते हैं तब कुछ वस्तुकी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि

यह वस्तु मिलेगी तो आज आहार करेंगे अन्यथा न करेंगे। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

एकवस्तुदशागारपानमुद्गादिगोचरः। संकल्पः क्रियते यत्र वृत्तिसंख्या हि तत्तपः॥ १२।७॥

भावार्थ—एक वस्तुका, घरका, पीनेकी वस्तुका, मूंग आदिका इच्छानुसार जहां संकल्प किया जावे फिर भिक्षाको जाया जाय वह वृत्ति संख्या नामका तप है।

यहां निश्चय नयकी प्रधानतासे कथन है कि-मोह सहित संसारका वास, मिथ्यात्वभाव, इंद्रियोंके विषयोंकी चाह, राग द्वेष वर्द्धक संपूर्ण पर पदार्थोंका जहां त्याग किया जावे वही वस्तु-संख्याप्रमाण तप है।

विरइय परिनाम असुद्धं, वासं विरयं मि ज्ञान सहकारं।
जं चिय असुह परिनामं, विरइय परमाद ज्ञान सहकारं॥५१२॥

अन्वयार्थ—(विरइय परिनाम असुद्धं) जहां अशुद्ध परिणामोंको त्यागा जावे (ज्ञान सहकारं वासं विरयं मि) व आत्मज्ञानकी सहायतासे परवस्तुमें वास या परवस्तुके मोहको या वस्त्रादिको त्याग दिया जावे (जं चिय असुह परिनामं) और जो कुछ भी अशुभ भाव हैं उनसे विरक्त रहा जावे (ज्ञान सहकारं परमाद विरइय) आत्मज्ञानकी सहायतासे प्रमादको त्यागा जावे वही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—जहां राग द्वेष मोह आदि सर्व अशुद्ध भावोंको त्यागकर आत्मज्ञानमें तिष्ठा जावे वही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

तवयरनं ज्ञानसहावं, उग्र तवयरन ऊर्ध सद्भावं।
दिंति सुदर्सनं सुद्धं, घोर नव संसार सरनि मुक्कस्य॥५१३॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानसहावं तवयरनं) आत्मज्ञानमें लीन रूप स्वाभाविक तपका करना (ऊर्ध सद्भावं उग्र तवयरन) श्रेष्ठ निज आत्मामें तिष्ठने रूप घोर तप करना (सुद्धं सुदर्सनं दिंति) जिससे शुद्ध आत्म-प्रतीतिकी दृढता होती जावे तथा (घोर नव संसार सरनि मुक्कस्य) नवीन भयानक संसारके मार्गसे मुक्ति होसके सो वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—इस भयानक संसारमें आगामी भ्रमना न पड़े इसलिये कर्मोंकी निर्जरा व नवीन

कर्मोंके संवर करनेकी जरूरत है। उसका उपाय यही है कि जो सर्व पर भावोंसे उदास होकर निज आत्मामें रमण रूप ऐसा घोर तप आचरण किया जावे कि परीषह उपसर्गके पडनेपर भी उससे चलायमान न हुआ जावे। शुद्ध आत्मश्रद्धाको ऐसा दृढ बनाया जावे कि वह परमावगाढ सम्यक्तमें पलट जावे। यही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

वासं तिक्त खुमेओ, ज्ञान बलेन तिक्त संसारं।
दंसन ज्ञान ससमयं, ज्ञानबलेन सुद्ध तव यरनं ॥५१४॥

अन्वयार्थ—(खुमेओ वासं तिक्त) जहां स्वयं अपने शुद्ध भावोंसे वस्त्रादि पर वस्तुका त्याग किया जावे (ज्ञान बलेन तिक्त संसारं) आत्मज्ञानके बलसे संसारका मोह छोड दिया जावे (दंसन ज्ञान ससमयं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको पाला जावे (ज्ञानबलेन सुद्ध तव यरनं) आत्मज्ञानके बलसे शुद्ध तपश्चरण किया जावे सोही वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—आत्मज्ञानमें लीन होकर अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमें तन्मय होकर जो शुद्ध निर्दोष आत्मामें तपनरूप तप किया जावे, अपने ही निर्मल भावोंसे परसे मोह छुडाया जावे सो वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

अप्प सरूवं पिच्छदि, जानदि ज्ञानेन दव्वए जीवं।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, वासं तिक्तंति इत्थु संसारे ॥ ५१५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सरूवं पिच्छदि) जहां आत्माके स्वभावको देखा जावे (ज्ञानेन दव्वए जीवं जानदि) ज्ञानके बलसे द्रव्यके स्वरूपकी अपेक्षा जीवको जाना जावे (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) आत्मज्ञानके ध्यानसे ज्ञानको कर्म रहित शुद्ध किया जावे (इत्थु संसारे वासं तिक्तंति) इस तरह संसारके वासको मिटाया जावे, कर्मोंकी निर्जरा की जावे सो वस्तु संख्या प्रमाण तप है।

भावार्थ—द्रव्यार्थिक नयसे आत्मा परमात्माके समान शुद्ध ज्ञानानन्द मई परम वीतराग है, ऐसा जानकर उसी आत्माके स्वभावसे तन्मय होकर ध्यान लगाया जावे इसीसे संसारवर्द्धक कर्मोंकी निर्जरा होती है, नवीन कर्मोंका संवर होता है। ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे ज्ञान बढता

है व शुद्ध होता है। इसी अभ्यासके जब ज्ञानावरणका क्षय होता है तब केवलज्ञान प्रकाशित होजाता है। ऐसा तप तपना वस्तुसंख्या प्रमाण तप है।

रस परित्याग तप।

रसियं मिथ्यात मइयं, रसियं संसार सरनि वासंमि।
कुज्ञानं रसियानं ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च ॥ ५१६ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात मइयं रसियं) मिथ्यात्व मई रुचिको (संसार सरनि वासंमि) संसार भ्रमणके वासकी रुचिको (कुज्ञानं रसियानं) मिथ्याज्ञानकी रुचिको (ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च) आत्म-ज्ञानके स्वभावमें ठहरकर इस सर्व रुचिको छोडना रस परित्याग तप है।

भावार्थ—व्यवहारसे शक्कर, घृत आदि रसोंका त्यागना रस परित्याग तप है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

रसत्यागो भवेत्तैलक्षीरेक्षुदधिसर्पिषाम्। एकद्वित्रीणि चत्वारि त्यजतस्तानि पंचधा ॥ ११-७ ॥

भावार्थ—जहां तेल, दूध, मिष्ठ, दही, घृत इन पांच रसोंमेंसे एक दो तीन चार या पांचोंका ही त्याग किया जाये वह रस परित्याग तप है। यहां निमकको नहीं गिनाया है, निमकको भी गिननेसे छः रस होजाते हैं। यहां निश्चयकी प्रधानतासे कथन है कि आत्माके स्वभावका रासिक होकर सर्व संसारवर्द्धक रसोंको या रुचियोंको त्याग दिया जावे, मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानकी रुचिको हटाया जावे। केवल शुद्ध आत्म-प्रतीति व स्वसंवेदन ज्ञानको बढाया जावे। आत्माके आनन्दमें ही तृप्ति मानी जावे और किसी भी मानसिक संकल्प विकल्पमें रुचि न रक्खी जावे। सर्व शृँगारि वीर बीभत्सादि रसोंको त्यागकर परम शांत रसका प्रेमी बना जावे यही पंच परित्याग तप है।

रसियंति मूढभावं, मलपच्चीस रसित सब्भावं।
रसियं संसारवने, ज्ञानसहावेन सयल तिक्तं च ॥ ५१७ ॥

अन्वयार्थ—(मूढभावं रसयंति) मूढ भावोंमें रसिकता (मलपचीस रसित सब्भावं) सम्यक्तके २५ मल दोषोंमें रसिकता (संसारवने रसियं) संसारके वनमें रुचि (ज्ञानसहावेन सयल तिक्तं च) ज्ञान स्वभावके द्वारा तपस्वी साधु सर्व रुचिभावोंको त्याग देते हैं।

भावार्थ—अंतरंगसे सिवाय आत्मानुभूति व आत्मानंदके किसी अन्य रससे रागका त्यागना रसपारित्याग तप है। इस तपके धारी तपस्वी मोक्ष महलके रसिक होकर संसारके दुःखमय भयानकपनसे रुचि हटा लेते हैं। इसीलिये जिस मिथ्यात्व भावके कारण व जिन पचीस सम्यक्तके मल दोषोंके कारण तीव्र कर्मका बंध होता है जिससे भवमें भ्रमण होता है उन सबको आत्मरसिक साधु सर्वथा त्याग देते हैं।

विकहा वसन सहावं, आरतिरौद्रस्य रसिय सब्भावं।
परे पंच वि भ्रम सहियं, ज्ञानसहावेन सयल तिक्तं च ॥ ५१८ ॥

अन्वयार्थ—(विकहा वसन सहावं) चार विकथाके कहने सुननेका स्वभाव व सातों व्यसनोंकी रुचि (आरतिरौद्रस्य सब्भावं रसिय) आर्तध्यान तथा रौद्रध्यानके स्वभावोंमें रासिकता (भ्रम सहियं परे पंच वि) भ्रम सहित सर्व प्रपंच पर मायाचारकी रुचि (ज्ञान सहावेन सयल तिक्तं च) आत्मज्ञानके स्वभावमें ठहरकर इन सर्व रुचि भावोंको तपस्वी त्याग देते हैं।

भावार्थ—रस परित्याग तपके पालन कर्ता साधु स्त्री भोजनादि चारों विकथाओंकी रुचि, जूआ खेलन आदि सात व्यसनोंकी रुचि, इष्ट वियोगादि आर्तध्यानमें रंजकता, हिंसानंद आदि चार रौद्रध्यानोंमें मग्नता तथा सर्व प्रकार मायाचार या मिथ्यात्व भावोंकी रुचिको निज आत्माके आनंदमय स्वभावके रसमें भ्रमरवत् तन्मय होकर छोड़ देते हैं।

सुद्धं रसिय सुज्ञानं, दंसनवरज्ञान सुद्धतवयरनं।
अप्पा परमप्पानं, ज्ञानसहावेन सुद्ध तवयरनं ॥ ५१९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सुज्ञानं रसिय) शुद्ध सम्यग्ज्ञानमें रसिक होकर (दंसन वर ज्ञान सुद्ध तव यरनं) जो उत्तम सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सहित निर्मल तपका आचरण करते हैं (अप्पा परमप्पानं) आत्माको

परमात्मारूप अनुभव करते हैं (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यानं) वे ही आत्मज्ञानके स्वभावके द्वारा शुद्ध रस परित्याग तपको पालते हैं।

भावार्थ—संसारकी सर्व रुचि टालकर जो सम्यग्दृष्टी तपस्वी शुद्ध आत्मीक रसके रसिक होकर अभेद रत्नत्रय स्वरूप स्वानुभवमें तल्लीन होते हैं, वे ही निश्चय नयसे रस परित्याग तपको पालते हैं।

विविक्त शय्यासन तप।

विविक्त आसन सेज्जा, पुग्गलजीवान विविक्तं सुद्धं।
पुग्गलसरनि विमुक्कं, अप्पा अप्पेन दंसनं सुद्धं ॥ ५२० ॥

अन्वयार्थ—(विविक्त आसन सेज्जा) सर्व प्रकारके परद्रव्य सम्बन्धी आसन व शय्याको त्याग देना (पुग्गलजीव न विविक्तं सुद्धं) तथा पुद्गल और जीवको भिन्न २ जानकर शुद्ध जीवको भिन्न समझना (पुग्गलसरनि विमुक्कं) पुद्गल सम्बन्धी सर्व मार्गको त्याग देना। अर्थात् पौद्गलिक द्रव्य तथा भावोंसे विरक्त होजाना (अप्पा अप्पेन सुद्धं दंसनं) आत्माको आत्माके द्वारा शुद्ध देखना या अनुभव करना विविक्त शय्यासन तप है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे एकांतमें निर्जन्तु भूमिमें शयन व आसन करना विविक्त शैयासन तप है। जैसा तत्त्वार्थसारमें कहा है—

जंतुपीडाविमुक्तायां वसतौ शयनासनम्। सेवमानस्य विज्ञेयं विविक्तशयनासनम् ॥ १४-७ ॥

भावार्थ—जहां जन्तुओंको कष्ट न पहुंचे ऐसी वस्तीमें शयन व आसन करना विविक्त शैयासन तप है। यहां निश्चयसे कथन है कि सर्व प्रकारके आसन व शैयाओंसे मन रोककर पुद्गलद्रव्योंसे शरीर, धन, मकान, क्षेत्रादिसे तथा कर्मजनित रागादि दोषोंसे रहित निज आत्माको परमात्माके समान शुद्ध जानकर सर्व प्रकारके परभावसे रहित होकर निज आत्मीक भावमें आपसे आप ही तन्मय होजाना। शुद्धात्माका अनुभव करना, ध्याता, ध्येयके द्वैतभावको दूर करके एक अद्वैतभावमें रम जाना विविक्त शय्यासन तप है।

विविक्तं घाय चवकं, विविक्त कम्मान तिविहि जोएन।
मिथ्याराग विविक्तं, सुद्ध असुद्ध विविक्तं परिनया हुंती ॥ ५२१ ॥

अन्वयार्थ—(विविक्तं घाय चवकं) जिसने चार घातीय कर्मोंसे अमल हटा लिया है (तिविहि जोएन विविक्त कम्मान) मन, वचन, काय द्वारा सर्व कर्मोंसे वैराग्य प्राप्त कर लिया है (मिथ्या राग विविक्तं) संसारके झूठे रागको त्याग दिया है (सुद्ध असुद्ध विविक्त परिनया हुंती) तथा शुभोपयोग शुभोपयोगसे रहित शुद्धोपयोगमें जो परिणमन करते हैं वे ही विविक्त शय्यासन तपके धारी हैं।

भावार्थ—द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, भाव कर्म रागद्वेषादि, नोकर्म शरीरादि इनसे उदासीन होकर व सर्व इंद्रिय विषय कषायसे हटकर व सर्व शुभ अशुभ भावोंको छोडकर जो शुद्धोपयोगमें रमण करते हैं वे ही विविक्त शय्यासन तपके साधु हैं। जिन्होंने सर्व पर आसनों पर व शय्याओं-पर वास करना त्याग दिया है मात्र निज आत्मीक शय्या व आसन पर ही तिष्ठते हैं।

विविक्त सेज्ज आसनं, विविक्त मनचवल इन्दिया विषयं।
ज्ञान बलेन विविक्तं, अप्पा परमप्प ज्ञान स सरूवं ॥ ५२२ ॥

अन्वयार्थ—(विविक्त मनचवल इंदिया विषयं) जिसने चञ्चल मन व इंद्रियोंके विषयोंकी चाहको रोक लिया है (ज्ञान बलेन) आत्मज्ञानके बलसे (विविक्तं) सर्व रागादिसे रहित (अप्पा परमप्प ज्ञान-स सरूवं) अपने ही आत्माको परमात्माके समान ज्ञान स्वरूपी अनुभव किया है वही (विविक्त सेज्ज आसनं) विविक्त शय्यासन तपका धारी है।

अन्वयार्थ—जबतक यह ज्ञानोपयोग पांच इंद्रियोंकी तरफ व मनकी तरफ उपयुक्त होता है तबतक आत्माका दर्शन नहीं होता है। जब उपयोग इन छहोंसे हटकर निज आत्माके शुद्ध स्वभावमें उपयुक्त होता है तब ही अपने भीतर परमात्म तत्वमय आत्माका अनुभव होजाता है। यही विविक्त शय्यासन तप है। समाधिशतकमें कहा है—

सर्वेन्द्रियाणि संयम्यस्तिमितेनान्तरात्मना। यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मनः ॥ ३०-१ ॥

भावार्थ—जब सर्व इंद्रियोंको संयममें लाकर स्थिर होकर भीतर देखा जायगा, तब ही परमात्माका स्वरूप झलक जायगा।

कायक्लेश तप।

कायकलेसं उत्तं, कललं कृत कम्म त्यजंति संसारे।
सुद्धं सरूवं पिच्छदि, ज्ञानसहावेन काय अकलेसं ॥ ५२३ ॥

अन्वयार्थ—(कायकलेसं उत्तं) अब कायक्लेश तपको कहते हैं (कललं कृत कम्म त्यजंति संसारे) जहां इस संसारमें शरीरके द्वारा किये हुए कर्मोंका ममत्व छोड दिया जावे (सुद्ध सरूवं काय अकलेसं ज्ञानसहावेन पिच्छदि) व कायके सर्व क्लेशसे रहित शुद्ध आत्माके स्वरूपको ज्ञान स्वभावमें ठहरकर अनुभव किया जावे वही कायक्लेश तप है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे कायक्लेश तप वह है कि कठिन२ स्थानोंपर जाकर कायकी ममता हटानेको कायको क्लेश बाहरसे दीखे ऐसा कठिन तप किया जावे। तत्वार्थसारमें कहा है—

अनेकप्रतिमास्थानं मौनं शीतसहिष्णुता। आतपस्थानमित्यादिकायक्लेशो मतं तपः ॥ १३-७ ॥

भावार्थ—मौन रखकर अनेक कठिन२ आसनोंमें रहकर, धूपमें भी आसन जमाकर निर्मल स्वभावके साथ कायक्लेशको सहना सो कायक्लेश तप कहा गया है।

यहां निश्चय प्रधान कथन है कि शरीरके द्वारा जो आठ कर्मोंका बन्ध किया गया है उन सर्वसे ममत्व हटाकर अपनेको कर्म रहित व शरीर सम्बन्धी सर्व दुःखोंसे रहित मानकर अपने ही शुद्ध आत्माका अनुभव करना, भीतर आनन्द मानना सो कायक्लेश तप है।

कायकलेस असुद्धं, सरीर संस्कार इंद्रिया विषयं।
अप्प सहावं अमलं, ज्ञान सहावेन काय अकलेसं ॥ ५२४ ॥

अन्वयार्थ—(सरीर संस्कार इंद्रिया विषयं) शरीरका शृंगार करना व इंद्रियोंके विषयोंमें अनुरक्त रहना आदि (असुद्धं काय कलेस) मलीन कायक्लेश है इसको त्यागकर (ज्ञान सहावेन) आत्मज्ञानके स्वभावमें रमकर (काय अकलेसं अमलं अप्प सहावं) काय सम्बन्धी सर्व कष्टोंसे व विकारोंसे रहित व कर्म रहित निर्मल आत्म-स्वभावको अनुभवना कायक्लेश तप है।

भावार्थ—शरीरको पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें रमाना व शरीरको शोभनीक रखना भी काय-

क्लेश है। यद्यपि इसमें बाहरसे क्लेश नहीं दिखता है, परन्तु रागभावसे कर्मोंका बंध होजाता है जिससे भविष्यमें शरीर धार करके आत्माको शरीर द्वारा क्लेश होगा। इस सर्वको त्यागकर जो शरीर रहित ज्ञान स्वभावी परम वीतराग अपने आत्मामें रमन करते हैं, जहां रंच मात्र भी क्लेश नहीं है किंतु परमानंद है यही काय क्लेश तप साधते हैं।

अप्प सहावं सुद्धं, पर दव्वं विरय सव्वहा सव्वे।
अप्प सहावं रूवं, ज्ञान सहावेन हुंति तव यरनं ॥ ५२५ ॥

अन्वयार्थ—(सव्वहा सव्वे पर दव्वं विरय) सर्वथा सर्व पर द्रव्योंसे विरक्त होकर (सुद्धं अप्प सहावं) शुद्ध आत्माके स्वभावको जानकर (अप्प सहावं रुवं) आत्माके स्वभावमें एकरूप होजाना (ज्ञान सहावेन तव यरनं हुंति) ज्ञान स्वभावसे तपश्चरन है।

भावार्थ—ऊपर लिखित छः बाह्य तप ही तप कहलाते हैं। जब सर्व पर द्रव्योंसे विरक्त होकर निज शुद्ध आत्मामें रमण किया जावे। क्योंकि तपसे संवर और निर्जरा होती है यह सिद्धांत है। जबतक आत्मानुभव न होगा, आप आपमें तन्मय न होगा, शुद्ध उपयोगका झलकाव न होगा तबतक नवीन कर्मोंका संवर न पुरातन कर्मोंकी निर्जरा न होगी। इसलिये बाहरी तप विना आत्मानुभवके तप नहीं कहे जासक्ते। उपवास आदि केवल निमित्त हैं। उपादान तो निज आत्मीक तप है। तारणस्वामीने इस ही तपका महात्म्य वर्णन किया है।

आभ्यंतर तप कथन।

वाहिज तव उवएसं, आभिंतर तव सुद्ध ससहावं।
अप्प सरूवं पिच्छदि, अप्पा परमप्प तिविहि जोएन ॥ ५२६ ॥

अन्वयार्थ—(बाहिज तव उवएसं) बाहरी छः तपोंका उपदेश किया गया (आभिंतर तव सुद्ध ससहावं) अब भीतरी छः तपोंको कहते हैं जो शुद्ध अपना स्वभाव है। जहां (तिहिवि जोएन) मन, वचन, काय तीनों योगोंको थिर करके (अप्पा परमप्प अप्प सरूपं पिच्छदि) आत्मा परमात्माके समान है ऐसा निश्चय करके अपने आत्माको उसी स्वभावमें अनुभव किया जाय वह आभ्यंतर तप है।

अन्वयार्थ—आभ्यंतर तपसे प्रयोजन यह है कि अपने आत्माके भीतर ही तप किया जावे। मन, वचन, काय तीनोंमें उपयोग हटाके निज शुद्ध आत्मामें उपयोगको रमाया जावे।

प्रायच्छित्त विनयेन, वैयाव्रत सुद्ध ध्यायमुपएसं।
उत्सर्ग उवएसं, झानं झायंति सुद्ध मप्पानं॥ ५२७॥

अन्वयार्थ—(प्रायच्छित्त विनयेन) प्रायाश्चित्त, विनय (वैयाव्रत सुद्ध ध्यायमुपएसं) वैयावृत्य, स्वाध्याय (उत्सर्ग उवएसं) व्युत्सर्ग (झानं सुद्धमप्पानं झानंति) इन पांच तपके द्वारा शुद्ध आत्माका ध्यान साधुगण ध्याते हैं।

भावार्थ—छः आभ्यंतर तप है। प्रायाश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान। इनमें मुख्य तप ध्यान है जिससे आत्माका ध्यान करके कर्मोंकी निर्जरा की जाती है। पांच तप ध्यानके सहकारी हैं।

प्रायाश्चित्त तप।

प्रस्तुतं नहि पिच्छदि, अप्रस्तुतं परम सुद्ध मप्पानं।
मिथ्या मयं न दिष्टदि, सुद्ध सहावेन सरूव पिच्छंतो॥ ५२८॥

अन्वयार्थ—(प्रस्तुतं नहि पिच्छदि) जो प्रस्तुत अर्थात प्राप्त शरीरादि पदार्थ व कर्मादि उनको नहीं देखता है किन्तु (अप्रस्तुतं परम सुद्ध मप्पानं) जो वर्तमानमें प्राप्त नहीं हैं ऐसे परम शुद्ध आत्माकी ओर ध्यान लगाता है (मिथ्या मयं न दिष्टदि) मिथ्यात्व व मदको नहीं देखता है (सुद्ध सहावेन सरूव पिच्छंतो) शुद्ध आत्म-स्वभावके द्वारा जो अपने स्वरूपको देखता है वह प्रायाश्चित्त तप पालता है।

भावार्थ—शरीरादि पदार्थ हमारे दृष्टिगोचर हैं। रागादि अनुभवमें आरहे हैं ये सब प्रस्तुत हैं, उपस्थित हैं, किन्तु अपना शुद्ध आत्मा हमारे सामने उपस्थित नहीं है, वह तो मात्र अनुभवगम्य है, इसलिये अप्रस्तुत है। अतएव जो कोई विवेकी मिथ्यादर्शन व मद आदि भावोंको त्यागकर अनुभवगम्य अपने ही शुद्ध आत्माको शुद्ध स्वरूपके द्वारा अनुभव करता है सो प्रायश्चित्त तपका पालनेवाला है।

राागादि दोस रहियं, धम्म झानं झायंति तं मुनिना ।
कुज्ञान सल्य रहियं, रूवत्थं सरूव झानत्थं ॥ ५२९ ॥

अन्वयार्थ—(मुनिना) मुनि महाराज (रागादि दोष रहियं) रागादि दोषोंसे रहित (तं धम्म झानं झायंति) उस धर्मध्यानको ध्याते हैं जिसमें (कुज्ञान सल्य रहियं) न तो मिथ्याज्ञान है न कोई शल्य है (सरूव ज्ञानत्थं) जो अपने स्वरूपके ध्यानमें स्थिरतारूप है (रूवत्थं) उसे ही रूपस्थध्यान कहते हैं।

भावार्थ—यहां ग्रंथकर्ता निश्चयनयकी प्रधानतासे प्रायाश्चित्त तपका स्वरूप कह रहे हैं। व्यवहारनयसे इसका भाव यह है कि यदि प्रमादादि कारणसे कोई दोष होगया हो तो उसको गुरुको निवेदन कर दंड लेकर दोषको शुद्ध करना। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है:—

आलोचनं प्रतिक्रांतिस्तथा तदुभयं तपः व्युत्सर्गश्च विवेकश्च तथोपस्थापना मता ॥ २१-७ ॥
परिहारस्तथाच्छेदः प्रायश्चितभिदा नव ॥ २१-७ ॥

भावार्थ—दोषकी शुद्धि नौ प्रकार दंड लेकर होती है। जैसा अपराध होता है वैसा दंड दिया जाता है, (१) आलोचना–गुरुके सामने अपने दोषको कह देना, (२) प्रतिक्रमण-मेरे दोष मिथ्या हों ऐसा पश्चात्ताप करना, (३) तदुभय–आलोचना प्रतिक्रमण दोनों करना, (४) तप–उपवास, अल्प भोजन रस त्यागादि करना, (५) व्युत्सर्ग–२७ श्वासमें ९ दफे णमोकार मंत्र पढना एक कायोत्सर्ग है। एक या अनेक कायोत्सर्ग करना। (६) विवेक–कोई अन्न या पान आदिको कुछ कालके लिये त्याग करना, (७) उपस्थापना–दीक्षा छेदकरके फिरसे दीक्षा देना, (८) परिहार–कुछ मासोंके लिये संघसे अलग रखना, (९) छेद–दीक्षाका समय कम कर देना–दरजा घटा देना, दीर्घकालके दीक्षितको अल्पकालका दीक्षित कर देना इस गाथाका भाव यह है कि वास्तवमें कर्म रूपी दोषोंकी शुद्धि आत्मध्यानसे होती है। मिथ्याज्ञान व शल्य रहित होकर जो अपने स्वरूपमें थिर होना वही निश्चय प्रायाश्चित्त है।

इंद्री विषय विमुक्कं, अप्प सरूवं च चेयना सुद्धं ।
मन चवलं रुंधंता, सम्यग्दर्सन दर्सनं सुद्धं ॥ ५३० ॥

अन्वयार्थ—(इंद्री विषय विमुक्कं) पांचों इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त होकर व (मन चवलं रूंधंता) चंचल मनको रोककर (अप्प सरूवं च सुद्ध चेतना) आत्माका स्वभाव शुद्ध चेतनामय जानकर (सुद्ध सम्यग्दर्सन दर्सनं) शुद्ध आत्मानुभव रूप सम्यग्दर्शन देखना ही निश्चय प्रायश्चित्त है।

भावार्थ—पांच इन्द्रिय व मनके विषयोंमें जाते हुए उपयोगको रोककर ज्ञान चेतनामय शुद्ध आत्माके अनुभवमें उसे जोड देना-निश्चय सम्यग्दर्शनमय होजाना-निजानन्दका स्वाद लेना सो ही निश्चय प्रायश्चित्त है जो सर्व कर्म मैलको छुडानेवाला है।

अशुद्ध परिनय विरयं, सुद्ध परिनय सरूव पिच्छंति।
अप्पा अप्पमि रओ, ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं ॥ ५३१ ॥

अन्वयार्थ—(अशुद्ध परिनय विरयं) अशुद्ध परिणामोंसे विरक्त होकर जो (सुद्ध परिनय सरूव पिच्छंति) शुद्ध परिणामोंसे अपने स्वरूपको देखते हैं (अप्पा अप्पंमि रओ) अर्थात् जहां आत्मा आत्मामें ही तन्मय होजाता है यही (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं) ज्ञान स्वभावसे शुद्ध तपश्चरण करना है।

भावार्थ—पिछले पापोंसे शुद्धि करना ही प्रायश्चित्त तप है। अशुद्ध भावोंसे कर्म बंधे थे, इसलिये उनको त्यागकर कर्मकी निर्जराके कारण शुद्ध भावोंमें जब आत्मा परिणमन करता हुआ आपसे आपमें एकाग्र होजाता है तब प्रचुर कर्मोंकी निर्जरा होती है। यही शुद्ध तप है जहां भीतर आत्मानन्दका स्वाद आवे। और कर्मका कलङ्क मिटता चला जावे।

विनय तप।

विज्ञानं स सहावं, अप्पा परपिच्छि विरय बहिरप्पा।
विज्ञान ज्ञान ज्ञायदि, अप्पा परमप्प सुद्ध विज्ञानं ॥ ५३२ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं स सहावं) भेद विज्ञानसे अपने स्वाभाविक (अप्प परपिच्छि) आत्माको और परको पहचानकर (बहिरप्पा विरय) आत्मासे जो कुछ बाहर है या भिन्न है उससे विरक्त होकर (विज्ञान ज्ञान ज्ञायदि) भेद विज्ञानके द्वारा अपने ज्ञानका जो ध्यान करता है (अप्पा परमप्पा) कि आत्मा

ही परमात्मा है यही (सुद्ध विज्ञानं) शुद्ध विज्ञान है। जो आत्माको शुद्ध करनेवाला है व यही अंतरंग विनय तप है। यहां आत्माकी ओर ही परम भक्तिरूप है।

भावार्थ—विनय तपका स्वरूप तत्वार्थसारमें कहा है—

दर्शनज्ञानविनयौ चारित्रविनयोपि च । तत्रोपचारविनयो विनयः स्याच्चतुर्विधः ॥ ३०–७ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी बडी ही भक्ति करना तथा व्यवहारमें वन्दनादि पूज्य पुरुषोंको करना उपचार विनय है। इस तरह विनय तप चार प्रकारका है। यहां निश्चयनयकी मुख्यतासे कथन करते हुए, रत्नत्रय स्वरूप निज आत्मामें मग्न हो जाना ही विनय तप कहा है।

विनयेन सुद्ध भावं, मय मिच्छातदोस निरयंमि ।
आद सहावं विनयं, सल्यं कुज्ञान दोस विरयंती ॥ ५३३ ॥

अन्वयार्थ—(मय मिच्छात दोस विरयंमि) मद व मिथ्यात्वके दोषोंको त्यागकर (सल्यं कुज्ञानं दोस विरयंती) तीन शल्य व मिथ्या ज्ञानके दोषोंसे दूर रहकर (विनयेन सुद्ध भावं आद सहावं विनयं) बडी भक्तिसे शुद्ध भावमई आत्माके स्वभावमें मग्न होजाना विनय तप है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान, माया मिथ्या निदान शल्य तथा आठ मद आदि अशुद्ध भावोंको छोडकर जो कोई श्रद्धा व परम भक्तिसे अपने ही अशुद्ध आत्माके स्वभावमें एकाग्र होकर ध्यान करता है वही विनय तपका साधनेवाला है।

विनयपदानं अंगं, असुह संसार सरनि विरदो यो ।
परिनाम सुद्धभावं, ज्ञान सहावेन जोइ तवयरनं ॥ ५३४ ॥

अन्वयार्थ—(असुह संसार सरनि विरदो यो) जो कोई अशुद्ध संसारके मार्गसे विरक्त होकर (अंग पदानं विनय) द्वादशांग वाणीके पदोंकी विनय करता है (परिनाम सुद्ध भावं) और शुद्ध भावोंमें परिणमन करता है वही (ज्ञान सहावेन जोइ तवयरनं) ज्ञान स्वभावके द्वारा तपश्चरणको अनुभव करता है।

भावार्थ—संसार शरीर भोगोंसे उदास होकर जिनवाणीका बहुत विनयसे अभ्यास करना

ज्ञान विनय है। इस ज्ञान विनयके द्वारा अपने शुद्ध भावोंको पहचानकर उन्हींमें रमण करना निश्चय आत्माका विनयरूप तप है।



वैय्यावृत्य तप।

वैय्याव्रतं स उत्तं, वय संजम वृत्ति सुद्ध सम्मत्तं।
वैय्याव्रत ज्ञान सहावं, मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि ॥ ५३५ ॥

अन्वयार्थ—(वैय्याव्रतं स उत्तं) वैय्याव्रत तप वह कहा गया है जो (वय संजम वृत्ति सुद्ध सम्मतं) व्रत व संयममें वर्तन करते हुए शुद्ध व आत्म प्रतीतरूप सम्यक्तको पाला जावे (ज्ञान सहावं वैय्याव्रत) ज्ञान स्वभावी आत्माकी सेवा की जावे (मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि) मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानसे पूर्णतया विरक्त रहा जावे।

भावार्थ—व्यवहारनयसे वैय्याव्रत तप साधुओंकी सेवा करना है। उनके कष्टोंको निवारण करना है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

सूर्युपाध्यायसाधूनां शैक्ष्यग्लानतपस्विनाम्। कुलसंघमनोज्ञानां वैय्यावृत्यं गणस्य च ॥ २७–७ ॥

भावार्थ—आचार्य, उपाध्याय, साधु, नवीन शिष्य मुनि, रोगी मुनि, घोर तप करनेवाले मुनि, एक आचार्य हीके शिष्य कुल मुनि, मुनिसंघ, एकगण या संप्रदायके मुनि, तथा प्रसिद्ध मनोज्ञ मुनि, इन दश प्रकारके साधुओंकी सेवा करना वैय्यावृत्य तप है। यहां निश्चय प्रधान कथन है कि मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानके विकारोंसे हटकर निर्दोष महाव्रत व सामायिक संयमको पालते हुए व शुद्ध आत्म प्रतीतिको रखते हुए अपने ज्ञान स्वभावकी ही सेवा करना—आत्मामें ही रमण करना वैय्यावृत्य तप है।

अप्पा परमप्पानं, पिच्छे लोयालोयं मि अन्नयासं।
रूवानं रूव तीतं, ज्ञानं ज्ञायंति सुद्ध मप्पानं ॥ ५३६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्पानं लोयालोयं मि अवयासं पिच्छै) जो अपने आत्माको परमात्मा स्वरूप लोकालोकका ज्ञाता दृष्टा देखता है वह (सुद्ध मप्पानं) शुद्ध आत्माको ध्याता हुआ (रूवानं रूवतीतं झानं झायंति) रूपस्थ व रूपातीत ध्यानको ध्याता है।

भावार्थ—अरहंतके स्वरूपको विचार कर ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है। सिद्धके स्वरूपको विचार कर ध्यान करना रूपातीत ध्यान है। निश्चयनयसे जहां अपने आत्माको सर्वज्ञ वीतराग परमात्माके अनुसार श्रद्धामें लाकर शुद्ध आत्माके स्वरूपमें एकाग्र होजाना है वही रूपस्थ या रूपातीत ध्यान है। यही आत्माका वैयावृत्य है।

लिंगं च जिनवरिंदं, धम्मं सुक्कं च भावना सुद्धं ।
झायंति झान सुद्धं, वैय्यावृत्तं च सुद्ध स सरुवं ॥ ५३७ ॥

अन्वयार्थ—(जिनवरिंदं च लिंगं) जहां श्री जिनेन्द्र भगवानके समान बाहरी व भीतरी लिंग है ऐसा द्रव्य व भाव लिंगी दिगम्बर जैन साधु (भावना सुद्धं) भावनाको शुद्ध करके (सुद्धं धम्मं सुक्कं च झानं झायंति) शुद्ध धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ध्याता है वहीं (सुद्ध स सरूवं वैय्यावृत्तं च) शुद्ध आत्म-स्वरूपमें रमण रूप वैय्यावृत्य तप है।

भावार्थ—दिगम्बर मुनि बाहरसे तो सर्व वस्त्रादि परिग्रह रहित बालकके समान नग्न होता है, अन्तरङ्ग रागादि दोषोंसे शून्य नग्न होता है। ऐसा साधु जब छठे व सातवें गुणस्थानमें शुद्ध आत्माको ध्याता है तब तो वह धर्म ध्यान करता है। जब उपशम या क्षपक श्रेणीपर आरूढ होकर शुद्ध आत्माको ध्याता है तब वह शुक्लध्यान करता है। दोनों ही ध्यानोंमें शुद्ध आत्माकी ही सेवा करता हुआ वैय्यावृत्य तप पालता है।

षय उवसम संजुत्तं, षयनिक भावेन सयल दोस परिचत्तं ।
ऋजुविपुलं च उवन्नं, ज्ञान सहावेन हुंति तवयरनं ॥ ५३८ ॥

अन्वयार्थ—(षय उवसम संजुत्तं) क्षयोपशम भाव सहित साधु (षयनिक भावेन सयल दोस परिचत्तं) गुणस्थान चढकर क्षायिक भावको प्राप्त होकर सर्व दोषोंसे मुक्त होजाते हैं (ऋजुविपुलं च उवन्नं) इस

तरह ध्यान करनेसे ऋजुमति विपुलमति दो मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न होजाते हैं (ज्ञान सहावेन तवयरनं हुंति) यह आत्म-ज्ञान सहित तपश्चरणका फल होता है।

भावार्थ—जिसकी सेवा करो उससे कुछ फल अवश्य होता है। यदि कोई साधु छठे सातवें गुणस्थानमें धर्मध्यान ध्याता है, यद्यपि यहां अभी न उपशम भाव है, न क्षायिक भाव है, किन्तु क्षयोपशम भाव है, इसी भावके प्रतापसे किसी२ साधुको दोनों प्रकारका या एक प्रकारका मनःपर्यय ज्ञान पैदा होता है। फिर यही वह साधु क्षपकश्रेणीके आठवें, नौमे, दसवें गुणस्थानोंपर चढता है तो क्षायिक भावके प्रतापसे वह सर्व मोहनीय कर्मका क्षय कर डालता है। फिर बारहवें गुणस्थानमें चढकर तीन घातीय कर्मोंको नाशकर सर्व प्रकार अज्ञान व रागादि दोषोंसे छूटकर अरहंत परमेष्ठी होजाता है। आत्माकी वैय्यावृत्य करनेसे अनेक ऋद्धियें सिद्ध होजाती हैं व आत्मा परमात्मा होजाता है।

स्वाध्याय तप।

सुद्धं सुद्ध सरूवं, सुद्धं झायंति सुद्ध मप्पानं।
मिच्छा कुज्ञान विरयं, सुद्ध सहावं च सुद्ध ज्ञानत्थं ॥ ५२९ ॥

अन्वयार्थ—स्वाध्याय तपके धारी (सुद्धं सुद्ध सरूवं) कर्म मल रहित व रागादि रहित शुद्ध तत्वस्वरूपको ध्याते हैं (सुद्धं सुद्धं मप्पानं झायंति) व परम शुद्ध आत्माको ध्याते हैं (मिच्छा कुज्ञान विरयं) मिथ्या दर्शन व मिथ्या ज्ञानसे विरक्त होकर (सुद्ध ज्ञानत्थं सुद्ध सहावं च) शुद्ध ध्यानमें तिष्ठते हुए शुद्ध आत्मस्वभावको पाते हैं।

भावार्थ—व्यवहारनयसे शास्त्र पठन-पाठन, धारण व मननको स्वाध्याय तप कहते हैं जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

वाचनापृच्छनाम्नायस्तथा धर्मस्य देशना। अनुप्रेक्षा च निर्दिष्टः स्वाध्यायः पंचधा जिनैः ॥ १६-८ ॥

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवानने स्वाध्याय पांच तरहका बताया है। (१) वाचना—शुद्ध शब्द व उसका अर्थ पढना या सुनना। (२) पृच्छना—किसी संशयके दूर करनेके लिये या निश्चयकी दृढताके

लिये विशेष ज्ञानीसे पूंछकर निर्णय करना। (३) अनुपेक्षा-समझे हुए शास्त्रके भावका वारवार विचार करना। (४) आम्नाय-शुद्ध शब्द व अर्थको घोप कर कंठ करलेना। (५) धर्मोपदेश-धर्मकथा दूसरोंको उपदेश करना।

यहां निश्चय प्रधान कथन है कि संसारका मिथ्या राग छोड़कर निश्चिंत होकर धर्मध्यानमें तिष्ठकर शुद्ध आत्माका ध्यान या मनन करना स्वाध्याय है। छः द्रव्योंका निश्चयनयसे व व्यवहार-नयसे यथार्थ स्वरूप जानना भी स्वाध्याय है।

सुद्धं जिने हि उत्तं, अशुद्धं संसार सरनि विरदो यो।
सुद्धं परमानंदं, सुद्ध सहावं च निम्मलं सुद्धं ॥ ५४० ॥

अन्वयार्थ—(यो असुद्धं संसार सरनि विरदो) जो कोई अशुद्ध संसारके मार्गसे विरक्त होकर (जिने हि उत्तं सुद्धं) जिनेन्द्र भगवान कथित शुद्ध तत्वोंका मनन करता है (सुद्ध सहावं च निम्मलं सुद्धं) तथा कर्ममल रहित व रागादि रहित शुद्ध आत्मस्वभावका ध्यान करता है वह (सुद्धं परमानंदं) वीतरागता सहित परमानन्दको प्राप्त करता है।

भावार्थ—जो कोई चार गतिमय दुःखदाई संसारके भ्रमणसे उदासीन होकर जिनेन्द्रके आगमके अनुसार तत्वोंका मनन करता है। फिर भेद विज्ञानके द्वारा अपने आत्माके स्वभावको परमात्माके समान शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनुभव करता है वही निश्चयसे स्वाध्याय करता हुआ परमानन्दका लाभ पाता है।

सुद्धं ध्याय स उत्तं, विभ्रम परपंच तिक्त मोहंधं।
सुद्धं दंसन सुद्धं, अप्पा सुद्धप्प परम सुद्धं च ॥ ५४१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं ध्याय स उत्तं) शुद्ध ध्याय या स्वाध्याय तप उसको कहा गया है जहां (विभ्रम परपंच मोहंधं तिक्त) भ्रमबुद्धि, मायाचार व मोहांधपना छोड़कर (सुद्धं दंसन सुद्धं) निश्चय सम्यग्दर्शनको शुद्धतासे पाला जावे अर्थात् (अप्पा सुद्धप्प परम सुद्धं च) आत्माको शुद्ध आत्मारूप समझकर परम शुद्ध भावोंसे आराधन किया जावे।

भावार्थ—संशय, विभ्रम, विमोह रहित शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके जहां अंतरंगसे सर्व प्रकारके मिथ्यात्वको—विपरीत भावको व माया, मद व निदान भावको त्यागकर निज आत्माको शुद्ध निश्चय नयके द्वारा द्रव्यमई शुद्ध सर्व परभाव रहित एकाकार अभेद ध्याया जावे व उसीके ध्यानमें एकाग्रता प्राप्तकर आत्मानंदका स्वाद लिया जावे यही निश्चय स्वाध्याय तप है।

व्युत्सर्ग या कायोत्सर्ग तप।

कायोत्सर्ग स उत्तं, कायोत्सर्ग ऊर्ध सुद्ध ससभावं।
विंदंति विंद रूवं, आद सहावं च निम्मलं ज्ञानं ॥ ५४२ ॥

अन्वयार्थ—(कायोत्सर्ग स उक्तं) कायोत्सर्ग या व्युत्सर्ग तप उसे कहा गया है जो (कायोत्सर्ग ऊर्ध सुद्ध ससभावं विंदरूपं विंदंति) शरीरोंसे रहित श्रेष्ठ व शुद्ध अपने स्वभावको सिद्धके समान अनुभव किया जावे अर्थात् (आद सहावं च निम्मलं ज्ञानं) आत्माका स्वाभाविक निर्मल ध्यान किया जावे—आपसे आपमें लयता प्राप्त की जावे।

भावार्थ—व्यवहारनयसे सर्व बाहरी व भीतरी परिग्रहसे ममत्व त्यागना व्युत्सर्ग तप है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

बाह्यान्तरोपधित्यागाद्, व्युत्सर्गो द्विविधो भवेत। क्षेत्रादिरूपधिर्बाह्यः क्रोधादिरपरः पुनः ॥ २९७ ॥

भावार्थ—बाहरी क्षेत्र मकान आदि परिग्रहका त्याग बाह्य व्युत्सर्ग है। अंतरंगमें क्रोधादि भावोंका त्याग अंतरंग व्युत्सर्ग है ऐसे व्युत्सर्ग दो प्रकारका होता है।

यहां निश्चय नयकी मुख्यतासे कथन है कि कायोंसे रहित अपने ही आत्माको सिद्ध परमात्माके समान शुद्ध निर्विकार समझकर स्वाभाविक सहजानंद रूप आत्मध्यान किया जावे। यही कायोत्सर्ग तप है।

सम्यकुदर्सन सुद्धं, उत्सर्ग ऊर्ध चेयना भावं।
गय संकप्प वियप्पं, अप्पा परमप्प तुल्य संकलियं ॥ ५४३ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक्दर्शन सुद्धं) निश्चय सम्यग्दर्शनका आचरण ही कायोत्सर्ग तप है जहां (उत्सर्ग ऊर्ध चेयना भावं) परभावोंसे रहित श्रेष्ठ अपने चैतन्य भावको (गय संकप्प वियप्पं) संकल्प विकल्पोंसे रहित ध्याया जावे (अप्पा परमप्प तुरय संकलियं) तथा आत्माको परमात्माके समान अनुभव किया जावे।

भावार्थ—निश्चय सम्यग्दर्शन आत्मप्रतीतिको कहते हैं। जहां इस आत्मप्रतीतिमय होकर निज स्वरूपका आचरण किया जावे अर्थात् सर्व इंद्रिय विषय विकार व कषाय भाव व मन वचन कायकी क्रियाको त्यागकर आत्माको शुद्ध एकाकार परम चैतन्य स्वरूप अनुभव किया जावे, यही निश्चय कायोत्सर्ग तप है।

तिअर्थं समय सुद्धं, जानंति रिजु विपुल ज्ञान सद्भावं ।
उत्सर्गं ऊर्ध गुनं, ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं ॥ ५४४ ॥

अन्वयार्थ—(तिअर्थं सुद्धं समय) तीन पदार्थ अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई निश्चयसे शुद्ध आत्मा है (जानंति रिजु विपुल ज्ञान सद्भावं) उसीके ध्यानसे रिजुमति तथा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानका प्रकाश होसक्ता है (उत्सर्गं ऊर्ध गुनं) तथा परसे रहित श्रेष्ठ आत्मगुण जैसे केवलज्ञानादि झलक जाता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं) अपने ज्ञान स्वभावमें रमण करनेहीसे शुद्ध तपश्चरण होता है।

भावार्थ—जहां अपने शुद्ध आत्मस्वभावमई आत्मध्यान किया जावे वहीं कायोत्सर्ग तप है, वहीं रत्नत्रयकी एकता है, वहीं समयसार है। इसी अभेद सामायिकमें लीन होनेसे तपस्वियोंको मनःपर्यय ज्ञानका लाभ होता है तथा इसीके श्रेष्ठ भावमें पहुंच जानेपर केवलज्ञानकी प्राप्ति होजाती है।

ध्यान तप ।

ध्यानं ज्ञान समर्थं, तुहे तह आसवे वि दुवियप्पो ।
धाय चवक्कय सुक्कं, परिनामं संसारसरनि सुक्कस्य ॥ ५४५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समत्थं ध्यानं) ध्यान तप वह है जहां ऐसा वज्रबल आत्मध्यान किया जावे (तर दुवियप्पो आस्रवे वि तुहे) जिससे दोनों प्रकारका आस्रव छूट जावे (घाय चवक्कय मुक्कं) चारों घातीय कर्मोंका नाश होजावे (परिनामं संसारसरनि मुक्कस्य) संसार मार्गमें लेजानेवाले परिणामोंसे मोक्ष हो जावे।

भावार्थ—ध्यान तप ही मोक्षका साक्षात् उपाय है। धर्मध्यानके बलसे श्रेणीपर चढ़ता है। शुक्लध्यानके बलसे श्रेणीमें सर्व आस्रवभावोंको, भावास्रवोंको व द्रव्यास्रवोंको निरोध करता है। कषाय सहित आस्रवको सांपरायिक आस्रव कहते हैं, यही संसारमें भ्रमण करानेवाला है सो आस्रव क्षीण मोह बारहवें गुणस्थान पर पहुंचनेपर बिलकुल नहीं रहता है-और वह साधु मोहका पहले ही नाश कर चुका था। अब यहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय तीन घातीय कर्मोंका भी नाश कर अर्हंत केवली होजाता है। तत्वार्थसारमें कहा है—

आर्तं रौद्रं च धर्म्यं च शुक्लं चेति चतुर्विधम्। ध्यानमुक्तं परं तत्र तपोङ्गमुभयं भवेत्॥ ३१-७॥

भावार्थ—आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल चार प्रकारका ध्यान होता है उनमेंसे धर्म व शुक्लध्यान तपमें गर्भित है। इन्हीं दोनों तपोंसे कषायोंका नाश होजाता है जो कर्मोंके आस्रवके मुख्य कारण हैं।

सुकलं झानं झायदि, अप्पानं सुद्ध चेयना रूवं।
सक्ति च विक्तरूवं, अयसय जयवंत सिद्धि संजुत्तं॥ ५४६॥

अन्वयार्थ—(सुकलं झानं झायदि) श्रेणीपर चढ़ा हुआ साधु परम निर्मल एकाग्रतारूप शुक्लध्यानको शुक्ल लेश्याके बलसे ध्याता है जहां (सुद्ध चेयना रूवं अप्पानं) शुद्ध चेतनारूप आत्माको अनुभव करता है (सक्ति च विक्तरूवं) दूसरे एकत्व वितर्क अविचार शुक्लध्यानके बलसे शक्तिरूप जो परमात्मपद था सो व्यक्तरूप प्रकाशमान होजाता है (अयसय जयवंत सिद्धि संजुत्तं) तब केवलज्ञानी अर्हंतके अतिशय व अपूर्व आत्माकी सिद्धियें झलक जाती हैं।

भावार्थ—शुक्लध्यान शुद्धोपयोगका अनुभव कराता है। इसीके बलसे आत्मा परमात्मा अर्हंत होजाता है। जहां अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अतिशय प्रगट हो जाते हैं। केवली परम वीतराग होते हुए क्षुधा तृषाकी बाधासे मुक्त होजाते हैं। योगबलसे उनमें ऐसी शक्ति प्रगट होजाती है जिससे उनके शरीरको पुष्टि देनेवाली आहारक वर्गणाएँ स्वयं

खिंचकर शरीरमें प्रवेश कर जाती हैं। उनको भिक्षा मांगकर ग्रास रूप आहारकी जरूरत नहीं होती है। उनकी वाणीका ऐसा अतिशय होता है कि सर्व सभा निवासी पशु, पक्षी, देव, मानव अपनी२ भाषामें समझ जाते हैं। ध्यानकी अपूर्व महिमा है।

झानं अप्प सरूवं, अप्पा परमप्प चेयनं सुद्धं।
झायंति ऊर्ध सुद्धं, झान समत्थं च सुद्ध तव यरनं ॥ ५४७ ॥

अन्वयार्थ—(झानं अप्प सरूवं) ध्यान आत्माका स्वरूप है (अप्पा परमप्प चेयनं सुद्धं ऊर्ध सुद्धं झायंति) जो कोई आत्माको परमात्माके समान शुद्ध चेतनामय परम शुद्धरूप ध्याते हैं वे ही (झान समत्थं च सुद्ध तव यरनं) ध्यानके बलसे शुद्ध तपश्चरण करते हैं।

भावार्थ—आत्माका आत्मारूप होजाना-अद्वैत भावसे आप आपमें थिर होजाना सो ही निर्विकल्प समाधिरूप ध्यानरूपी तप है। इस ध्यानमें आपको बिलकुल शुद्ध परमात्माके समान ध्याया जाता है। यही ध्यानरूपी तप कर्मोंकी निर्जरा करनेको समर्थ है। जबतक निज स्वरूपमें परसे विमुख हो तन्मय न हुआ जावे तबतक असली ध्यान तप नहीं होसक्ता है।

बारह विहि उवएसं, झानं झायंति सुद्ध तव यरनं।
जे साहंति स पुरिसा, तत्तो पुन लहै निव्वानं ॥ ५४८ ॥

अन्वयार्थ—(बारह विहि उवएसं सुद्ध तव यरनं झानं झायंति) बारह प्रकारका कहा हुआ यह शुद्ध तपश्चरण ध्यानके द्वारा ही ध्याया जाता है (जे स पुरिसा साहंति) जो साधु पुरुष इसका साधन करते हैं (तत्तो पुन निव्वानं लहै) वे इसीके प्रतापसे ही निर्वाणको प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—बारह प्रकारका तप व्यवहारनय रूपसे सविकल्प है, साधनरूप है। उसके द्वारा निश्चय बारह प्रकारके तपको साधा जाता है। निश्चय तप मात्र एक शुद्धात्माका ध्यान है। यदि शुद्धात्माका ध्यानरूपी निश्चय तप न प्राप्त किया जावे तो सविकल्प तप या व्यवहार तप मोक्षका साधक नहीं होसक्ता है। क्योंकि आत्मानुभव रूप तपके साधनसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है और यह जीव मोक्षका लाभ कर लेता है। जो भव्य पुरुष अपने आत्माको भेदविज्ञानके द्वारा सर्वसे भिन्न परमात्मारूप परम शुद्ध अनुभव करते हैं, वे ही अर्हंत व सिद्ध होसक्ते हैं।

दश प्रकार सम्यक्दर्शन कथन ।

दह विहि सम्मत्ते नय, ज्ञान उवदेस अत्थबीजंमि ।
संक्षेप सुत्त उत्तं, ववहार अवगाहनेन सद्भावं ॥ ५४९ ॥
प्रवचन केवलि उत्तं, परमं सम्मत्त सुद्ध सद्भावं ।
दह विज्ञान सरूवं, अप्पा अप्पेन सुद्ध सम्मत्तं ॥ ५५० ॥

अन्वयार्थ—(दह विहि सम्मत्ते नय) दश प्रकार सम्यग्दर्शनके द्वारा भी आत्म-हित किया जाता है, वे दश भेद हैं (ज्ञान उवदेस अत्थबीजंमि)—१-ज्ञान सम्यक्त, २-उपदेश सम्यक्त, ३-अर्थ सम्यक्त, ४-बीज सम्यक्त, (संक्षेप सुत्त उत्तं) ५-संक्षेप सम्यक्त, ६-सूत्र सम्यक्त या सूत्रोक्त सम्यक्त, (ववहार अवगाहनेन सद्भावं) ७-व्यवहार सम्यक्त, ८-अवगाहन सम्यक्त, (प्रवचन केवलि उत्तं) ९-प्रवचन केवलि सम्यक्त, (परमं सम्मत्त सुद्ध सद्भावं) १०-परम सम्यक्त यह शुद्ध आत्म स्वभाव है (दह विज्ञान सरूवं) दशों ही सम्यक्त आत्मज्ञान स्वरूप हैं (अप्पा अप्पेन सुद्ध सम्मत्तं) आत्माका आत्माके द्वारा अनुभव किया जावे वही शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—यद्यपि सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है तथा एकरूप ही है तथापि उसकी प्राप्तिके लिये साधन भेद है । इस दृष्टिसे तथा ज्ञान व चारित्रकी वृद्धिसे सम्यक्तकी विशेष उज्वलता होती है, इस दृष्टिसे यहां ये दश भेद कहे गए हैं । श्री गुणभद्राचार्य कृत आत्मानुशासनमें भी सम्यक्तके दश भेद कहे गये हैं जैसे:—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् । विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढ़परमावगाढ़े च ॥ ११ ॥

भावार्थ—१-आज्ञा सम्यक्त, २-मार्ग सम्यक्त, ३ उपदेश सम्यक्त, ४-सूत्र सम्यक्त, ५-बीज सम्यक्त, ६-संक्षेप सम्यक्त, ७-विस्तार सम्यक्त, ८-अर्थ सम्यक्त, ९-अवगाढ सम्यक्त, १०-परमावगाढ सम्यक्त ।

तारणस्वामीने जो १० भेद बताए हैं उनमेंसे पांच मिल जाते हैं । शेष पांच नहीं मिलते हैं । गुणभद्राचार्यने जब आज्ञा, मार्ग, विस्तार, अवगाढ, परमावगाढ ये पांच भेद कहे हैं तब तारण-

स्वामीने ज्ञान, व्यवहार, अवगाहन, प्रवचनकेवलि, परम ऐसे पांच भेद कहे हैं। मालूम होता है कि तारणस्वामीने आज्ञा और मार्गको ज्ञानमें, विस्तारको व्यवहारमें, अवगाढको अवगाहनमें, परमावगाढको प्रवचन केवलिमें गर्भित करके एक परम सम्यक्तका भेद बढ़ा दिया है।

इसमें कोई दोष नहीं है–वक्ताके कहनेकी अपेक्षा है–बात एक ही है। इस दश भेदोंसे भी एक निश्चय सम्यक्तको ही झलकाता है जो वास्तवमें आत्मानुभव रूप है। यह आत्मानुभव केवली भगवानमें परमावगाढ होता है। सिद्ध भगवानमें भेद रहित परम होता है। इनका स्वरूप आगे कहेंगे।

ज्ञान सम्यक्त।

ज्ञानं ज्ञान सरूवं, ज्ञानं तजंति मिच्छ संजुत्तं।
संसार सरनि तिक्तं, ज्ञानेन ज्ञान अप्प सद्भावं ॥ ५५१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं) ज्ञान सम्यग्दर्शन (ज्ञान सरूवं) ज्ञान स्वरूप है (मिच्छ संजुत्तं ज्ञानं तजंति) जहां मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानका त्याग है (संसार सरनि तिक्तं) जो संसारके मार्गसे बाहर है (ज्ञानेन ज्ञान अप्प सद्भावं) जहां ज्ञानके द्वारा ज्ञानमई आत्माका स्वभाव अनुभवमें आरहा है।

भावार्थ—आत्माके स्वरूपका ज्ञान रागादि रहित भीतर झलक जानेसे जो सम्यक्त हो वह ज्ञान द्वारा प्राप्त सम्यक्त है। किसी भी कारणसे चाहे परोपदेशसे या पूर्व जन्मके स्मरणसे, वेदनाको भोगते हुए जिन महिमा आदिको देखते हुए या देवोंकी ऋद्धि देखते हुए जो अपने आत्माका परसे भिन्न बोध होजावे उसे आत्माका ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञानके द्वारा कुछ काल तक मनन करनेसे जब अनंतानुबंधी कषाय तथा मिथ्यात्व कर्मका उपशम होगा तब उपशम सम्यक्त होगा। इस अपेक्षा इसे ज्ञान सम्यक्त कह सक्ते हैं। सम्यग्दर्शनके जगनेपर मिथ्यात्वका अंधेरा नहीं रहता है। संसारके मार्गसे हटकर मोक्षके मार्गमें चलना प्रारंभ होजाता है। स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा निज आत्माका अनुभव होजाता है।

ज्ञानं सुद्ध सहावं, रागादि दोस सयलविरयंमि।
विरयं असुद्ध भावं, अप्पा परमप्प ज्ञान संजुतं ॥ ५५२ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं ज्ञानं) जहां शुद्ध आत्माके स्वभावका ज्ञान हो (रागादि दोस सयल विरयंमि) सर्व रागादि दोषोंसे विरक्त भाव प्राप्त होगया हो (विरयं असुद्ध भावं) अशुद्धोपयोग न रहा हो (अप्पा परमप्प ज्ञान संजुतं) आत्मा परमात्माके ज्ञानमें तन्मय हो वही ज्ञान सम्यक्त है।

भावार्थ—रागादि रहित, द्रव्यकर्म रहित, शरीर रहित, केवल एक अपने आत्मद्रव्यका बोध परमात्मारूप होकर शुद्ध भावमें जहां रमणता हो वही ज्ञान सम्यक्त है।

उपदेश सम्यक्त ।

उवएसं संसुद्धं, सुद्धं अप्पान अप्पनो सुद्धं ।
सुद्धं जिने हि कहियं, सुद्धं सम्मत्त सुद्ध उवएसं ॥ ५५३ ॥

अन्वयार्थ—(संसुद्धं उवएसं) जहां शुद्ध या निर्दोष तत्वोंका उपदेश प्राप्त हो (सुद्धं अप्पान अप्पनो सुद्धं) शुद्ध आत्माको अपने आत्माके बलसे शुद्ध अनुभवकी रीति बतलाई गई हो (जिने हि कहियं सुद्धं) जिनेन्द्रके कथनके अनुसार शुद्ध बोध प्राप्त हुआ हो। इसतरह उपदेश द्वारा (सुद्धं सम्मत्त) आत्मानुभवरूप निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त हो वह (सुद्ध उवएसं) निश्चय उपदेश सम्यक्त है।

भावार्थ—जहां परसे उपदेश मिलनेपर सम्यक्त होजावे वह उपदेश सम्यक्त है। किसीने यह समझा था कि श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंका उपदेश इस प्रकार है—आत्मा अनात्माका बोध बताकर आत्माको परसे भिन्न जानकर अनुभव करनेका उपाय बताया। इस बातको दूसरेके उपदेशसे समझकर जो आत्माका भेदविज्ञान द्वारा मनन करते हुए अनन्तानुबन्धी व मिथ्यात्वको उपशम करके सम्यक्त हो वह उपदेश सम्यक्त है। वास्तवमें सम्यक्त एक ही प्रकार है। यहां कारणके कुछ अन्तरसे भिन्न २ नाम देकर समझाया है। उपदेशकी मुख्यतासे हो वह उपदेश सम्यक्त है।

सुद्धं जिन उत्त परं, असुद्ध तिक्तं च सव्वहा सव्वे ।
सुद्धं उद्देस ज्ञानं, चरनं जिन उवएस उत्तं च ॥ ५५४ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त परं सुद्धं) जिनेन्द्र कथित परम शुद्ध तत्वको जाने (सव्वहा सव्वे असुद्ध तिक्तं च) सर्वथा सर्व अशुद्ध तत्वकी श्रद्धाको त्याग देवे (सुद्धं उद्देष ज्ञानं) जहां शुद्ध आत्म-स्वरूप प्राप्तिके उद्देश्यका ज्ञान हो (चरनं) तथा उसी आत्म-स्वरूपमें चारित्र हो वही (जिन उवएस उत्तं) जिनेन्द्र कथित उपदेश सम्यक्त कहा गया है।

भावार्थ—परके उपदेश द्वारा यथार्थ अपने आत्माको सर्व रागादि रहित जान लेवें। जो आत्मा नहीं है उसको आत्मा न माने। शुद्ध तत्वोंकी श्रद्धा लावे, अशुद्ध तत्वोंकी श्रद्धा न करे तथा यह ध्येय बनाले कि मुझे परमात्मपदकी प्राप्ति करनी है। इस तरह दृढ़ श्रद्धा सहित मनन करते हुए जब स्वरूपाचरण चारित्रमई आत्मानुभव प्राप्त हो तब ही यथार्थ उपदेश सम्यक्तका लाभ कहा जायगा।

सुद्धं च सुद्ध ज्ञानं, असुद्धं संसार सरनि युक्तस्य ।
सुद्धं परमप्पानं, उवएसं सुद्धं सम्मतं ॥ ५५५ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध ज्ञानं च सुद्धं) जहां शुद्ध आत्माका यथार्थ ध्यान है वही शुद्ध ध्यान है (असुद्धं संसार सरनि युक्तस्य) रौद्रध्यान या मिथ्यात्व या संसार सुखकी कामना सहित ध्यान जहां न होकर अशुद्ध संसार मार्गके भ्रमण करानेवाले परिणामोंसे जहां मुक्ति हो (सुद्धं परमप्पानं) शुद्ध परमात्माका जहां अनुभव हो वही (उवएसं सुद्ध सम्मतं) उपदेश निश्चय सम्यक्त है।

भावार्थ—निश्चय सम्यक्त वास्तवमें आत्मानुभवरूप या आत्मध्यान स्वरूप है। संसार वर्द्धक निदानभाव रहित केवल अपनेको शुद्ध करनेके अभिप्रायसे जहां शुद्ध आत्माका ध्यान किया जावे-आपको परमात्मारूप अनुभव किया जावे वही निश्चय उपदेश सम्यग्दर्शन है।

अर्थ सम्यग्दर्शन ।

अर्थंति अर्थ सुद्धं, सम सम्मत्त दंसनं सुद्धं ।
अर्थं समय ति अर्थं, उवएसं अर्थ सम्मत्तं ॥ ५५६ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं अर्थ अर्थति) जहां शुद्ध पदार्थकी प्राप्तिका प्रयोजन हो (सम) समताभाव हो (सुद्धं सम्मत्त दंसनं) पचीस दोष रहित निर्मल सम्यग्दर्शन हो (ति अर्थ मयं अर्थ) तीन पदार्थ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र सहित आत्मारूपी पदार्थपर लक्ष हो वही (अर्थ सम्मत्तं उवएसं) अर्थ सम्यग्दर्शन कहा गया है।

भावार्थ—अर्थ पदार्थको भी कहते हैं, प्रयोजनको भी कहते हैं। इस कारण वही अर्थ सम्यक्त है जहां शुद्ध आत्मीक पदार्थके लाभका उद्देश्य हो। आत्मा स्वभावसे रत्नत्रयमई है। जहां राग-द्वेष छोडकर समताभाव प्राप्त किया जाता है वहीं आत्माका अनुभव जाग्रत होता है, वहीं निश्चय अर्थ सम्यक्त है ऐसा अभिप्राय है।

अर्थं अप्प सरूवं, अनर्थ अज्ञान मिच्छ विरयंमि ।
अनेय अनर्थ भावं, तिक्तंति जे ज्ञान सहकारं ॥ ५५७ ॥

अन्वयार्थ—(अर्थं अप्प सरूवं) प्रयोजनभूत आत्माका स्वरूप है (अनर्थ अज्ञान विरयंमि) अहितकारी अज्ञान है उससे विरक्त होकर (जे) जो कोई (ज्ञान सहकारं) ज्ञानकी सहायतासे (अनेय अनर्थ भावं तिक्तंति) नानाप्रकार संकल्प विकल्परूप निरर्थक भावोंको त्याग देते हैं वे ही अर्थ सम्यक्तका आराधन करते हैं।

भावार्थ—आत्माके शुद्ध स्वरूपके अनुभवमे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है व मोक्षका लाभ होता है। इसीको ही प्रयोजनभूत अर्थकारी समझना अर्थ सम्यक्त है। संसारमें भ्रमण करानेवाले मिथ्याज्ञान तथा रागद्वेषादि सर्व ही पर पदार्थोंमें सन्मुख होनेवाले भाव हैं। ये सर्व आत्माके मोक्षरूप अर्थको नाश करनेवाले अनर्थकारी भाव हैं। जो साधु इन सब अनर्थ भावोंको त्याग करके निज आत्माके श्रद्धान ज्ञान व चारित्रमें तन्मय होजाते हैं वे ही अर्थ सम्यक्तको पालते हैं।

अर्थं ज्ञानसरूवं, तिलोयं त्रिभुवन ति अर्थ संसुद्धं ।
विंदस्थं विंदंतो, सुद्धं सरूवं ति अर्थ सम्मत्तं ॥ ५५८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानसरूवं अर्थं) ज्ञान स्वरूपमें रहना अर्थ है। (तिलोयं त्रिभुवन ति अर्थ संसुद्धं) तीन लोकके भीतर तीन भुवन सम्बन्धी सर्व पदार्थोंको यथार्थ जानकर श्रद्धान करना तथा (विंदस्थं विंदंतो)

ॐ मंत्रमें बिंदुके स्थानमें श्री सिद्ध परात्माको अनुभव करना या (सुद्ध सरूवं ति) शुद्ध स्वरूपमें रमना (अर्थ सम्मत्तं) अर्थ सम्यक्त है।

भावार्थ—आत्माका सत्य कार्य अपने ज्ञान स्वरूपमें तिष्ठना है, इसीका श्रद्धान अर्थ सम्यक्त है, या तीन लोक सम्बन्धी जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, इन छः द्रव्योंको यथार्थ जानकर श्रद्धान करना अर्थ सम्यक्त है। या सिद्ध परमात्माको जानकर उनको भावोंमें भजना अर्थ सम्यक्त है या निज शुद्ध स्वरूपका अनुभव करना अर्थ सम्यक्त है।

बीज सम्यक्त।

बीजं च ज्ञान सुद्धं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं।
चरनं दुविहि सहावं, सहकारे तव सुद्ध वीयंमि ॥ ५५९ ॥

अन्वयार्थ—(बीजं च सुद्धं ज्ञान) मोक्षका बीज शुद्ध आत्मज्ञान है (ज्ञान दंसन समग्गं सुद्धप्पा) ज्ञान दर्शनसे पूर्ण शुद्ध आत्मा है ऐसा जानना (दुविहि सहावं चरनं) दो प्रकार व्यवहार तथा निश्चय चारित्र पालना (तव सहकारे सुद्ध वीयंमि) या तप साधना यह शुद्ध आत्मज्ञानमई बीजके लिये सहकारी है।

भावार्थ—आत्मज्ञानमई सम्यक्तको बीज सम्यक्त कहते हैं। अनन्त दर्शन व अनन्त ज्ञानसे पूर्ण शुद्ध आत्माको जानना व श्रद्धान करना। तथा व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय चारित्र पालना व बारह प्रकारका तप करना ये सब आत्मज्ञान या आत्मानुभवको पैदा करनेवाले हैं। आत्मानुभव ही मोक्षका मार्ग है, या बीज है। जहां बीजका पक्का श्रद्धान हो वही बीज सम्यक्त है। या श्रद्धापूर्वक आत्माका आत्मामें लय होना सो ही बीज सम्यक्त है।

देव गुर धम्म सुद्धं, मिथ्या कुज्ञान सयल विरयंमि।
संसार सरनि विरयं, वीयं सम्मत्त सुद्धमप्पानं ॥ ५६० ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं देव गुर धम्म) निर्दोष वीतराग देव, निर्ग्रंथ गुरु व अहिंसा धर्मका श्रद्धान करना (मिथ्या कुज्ञान सयल विरयंमि) मिथ्या देव, गुरु धर्मसे व सर्व मिथ्या तत्वज्ञानसे विरक्त होजाना (संसार

सारंनि विरयं) संसारके भ्रमण करानेवाले कर्मबंधसे विरक्त होजाना (सुद्धप्पानं सम्मत्त बीयं) शुद्ध आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शनका बीज है।

भावार्थ—वास्तवमें निश्चयसे शुद्ध आत्माका अनुभव करना ही बीज सम्यक्त है, इसकी प्राप्तिका साधन सच्चे देव, गुरु, धर्म व तत्वोंका श्रद्धान करना है व तत्वोंका मनन करना व संसारके कारण कर्मबंधसे व कर्मबंधके कारणोंसे उदास रहना व भेद विज्ञानका अभ्यास करना है। ये सर्व निश्चय सम्यक्तके बीज हैं।

संक्षेप सम्यक्त।

संषेप सुद्धमप्पं, सुयं षिपति नंत संसारे।
कम्ममल षिपति भावं, ज्ञान सहावेन सुयं संक्षेपं ॥ ५६१ ॥

अन्वयार्थ—(संषेप सुद्धमप्पं) संक्षेप सम्यक्त शुद्ध स्वरूपमय है (सुयं नन्त संसारे षिपति) जिसके प्रतापसे स्वयं अनन्त संसार छूट जाता है (कम्ममल भावं षिपति) कर्ममलको बांधनेवाला भाव दूर होजाता है (ज्ञान सहावेन सुयं संक्षेपं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठना ही स्वयं संक्षेप है। अर्थात् भलेप्रकार परभावोंका निवारण है।

भावार्थ—यहां निश्चयनय प्रधान संक्षेप सम्यक्तका कथन है कि जहां आत्मा अपने शुद्धोपयोगमें रमण करता है वहां स्वयं ही अनन्त संसार नहीं रहता है। क्षायिक सम्यक्त एक तीन या चौथे भवमें मुक्ति प्रदान कर देता है। तथा जिन शुभ या अशुभ भावोंसे कर्मबंध होता है वे भाव भी छूट जाते हैं। ज्ञानीका सर्व राग द्वेषादि भावोंसे रहित होकर अपने ज्ञान स्वभावमें तन्मय रहना ही वास्तवमें पर भावोंको व द्रव्यकर्मोंको भलेप्रकार हटानेवाला भाव है।

दंसन ज्ञान सहावं, अप्प सहावेन सुद्ध सद्भावं।
सुद्धं सुद्ध सरूवं, सम्मत्तं सुद्ध ममल संषेपं ॥ ५६२ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञान सहावं) दर्शन ज्ञान स्वभावमई (अप्प सहावेन सुद्ध सदभावं) आत्माके स्वरूपके

अनुभव द्वारा शुद्ध उपयोगमें तिष्ठना (सुद्धं सुद्ध सरूवं) परम शुद्ध स्वरूपमें एकाग्र होना (सुद्धं अमल संषेपं सम्मतं) शुद्ध निर्दोष संक्षेप सम्यक्त है

भावार्थ—आत्माका स्वभाव दर्शन ज्ञानमय है, रागादि रूप नहीं है। इस स्वभावको श्रद्धान, ज्ञानमें लाकर उसी स्वरूप आप होजाना-अर्थात् सर्व संकल्प विकल्प छोडकर-सर्व मोह ममता हटाकर-सर्व शुभ व अशुभ भाव टालकर शुद्धोपयोगमें जमजाना ही निर्दोष निश्चय संक्षेप सम्यग्दर्शन है। यह सम्यक्त कर्मईंधनको जलानेके लिये ध्यानरूपी अग्नि उत्पन्न कर देता है, परम उपादेय है।



सूत्र सम्यक्त।

सूत्रं सुद्ध सहावं, संसूत्रं सास्वतेन चेयनाभावं ।
विकहा वसन असूत्रं, संसारे सरनि सयल विरयंमि ॥५६३॥

अन्वयार्थ—(सूत्रं सुद्ध सहावं) शुद्ध स्वभावमें लिपटे रहना सूत्र सम्यक्त है (सास्वतेन संसूत्रं चेयनाभावं) सदासे अपने आत्माके साथ भलेप्रकार गंठा हुआ व चला आया हुआ चेतनाभाव है (विकहा वसन असूत्रं) चार विकथा व सात व्यसनोंका जहां कोई सूत्र या धागा या सूत नहीं है। (संसारे सरनि सयल विरयंमि) इसलिये सर्व संसारके मार्गसे विरक्त है।

भावार्थ—सूत्र नाम धागेका है, वेष्टनेका है, नियमसे रहनेका है। सूत्र सम्यक्त यह है कि श्रद्धापूर्वक अपने ही शुद्ध नित्य ज्ञानचेतना रूपी भावोंमें लिपटे रहना-तन्मय रहना, वहां स्त्री, भोजन, देश, राजा कथा सम्बन्धी कोई भाव व जूआ आदि सात व्यसन सम्बन्धी कोई भाव नहीं रखना। इन विभावोंका एक तंतु मात्र भी वहां नहीं रहना। ऐसा शुद्ध सम्यग्दर्शन सर्व संसारके कारण कर्ममैलको टालनेवाला है, सीधा मोक्षमार्ग है

सूत्रं जं जिन कहियं, तं सूत्रं सुद्ध भाव संकलियं ।
असूत्रं नहु पिच्छादि, सूत्रं ससरूव सुद्ध मप्पानं ॥५६४॥

अन्वयार्थ—(सूत्रं जं जिन कहियं) जो जिनेन्द्रके द्वारा कहा गया है वही सूत्र सिद्धांत है (तं सूत्रं

सुद्ध भाव संकलियं) वह सूत्र शुद्ध भावोंसे पूर्ण है (असुत्रं नहु पिच्छदि) वहां कोई सिद्धांत विरुद्ध बात नहीं देखी जाती है (सुत्रं ससरूवं सुद्धमप्पानं) इस सिद्धांतका सार अपने ही शुद्ध आत्माके स्वरूपमें रमण करना है, यही सूत्र सम्यक्त है।

भावार्थ—अर्हंत भगवान द्वारा प्रगट दिव्यध्वनिके अनुसार गणधर देवादिने द्वादशांग वाणीके सूत्र रचे हैं। उनमें शुद्ध सत्य तत्वोंका स्वरूप है, उनमें कोई बात ऐसी नहीं है जो असत्य हो। उस सर्व द्वादशांग वाणीका सार अपने ही शुद्ध आत्माको सर्व द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नोकर्म रहित श्रद्धानमें लाकर परम एकाग्रतासे अनुभव करना है। यह स्वात्मानुभव ही वास्तवमें सूत्र सम्यक्त है। यही सिद्धांतका सार है व यही नियमसे सूत्ररूप मोक्षका मार्ग है।

व्यवहार सम्यक्त।

ववहारं सम्मत्तं, देवगुर सुद्ध धम्म संजुत्तं।
दंसन ज्ञान चरित्तं, मलमुक्कं ववहार सम्मत्तं ॥ ५६५ ॥

अन्वयार्थ—(ववहारं सम्मत्तं) व्यवहार सम्यग्दर्शन यह है कि (देव गुर सुद्ध धम्म संजुत्तं) निर्दोष शुद्ध देव, गुरु तथा धर्मका श्रद्धान किया जावे तथा (मलमुक्कं दंसन ज्ञान चरित्तं) दोष रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र मय भावका अनुभव किया जावे सो (ववहार सम्मत्तं) व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—जहां विस्तारसे भेदरूप पदार्थोंको जान करके शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त किया जावे सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। निर्दोष देव श्री अर्हंत वीतराग भगवान हैं, निर्दोष गुरु तेरा प्रकार चारित्र पालनेवाले निर्ग्रंथ गुरु हैं, निर्दोष धर्म वीतराग विज्ञानमय अहिंसा धर्म है। निश्चयनयसे विचार किया जावे तो शुद्ध आत्मा ही देव है, शुद्ध आत्मा ही गुरु है, शुद्ध आत्माका स्वभाव ही धर्म है। आत्मा निश्चयसे रत्नत्रय स्वरूप है। सम्यक्त, ज्ञान, चारित्र तीनों ही आत्माके गुण हैं। इसीसे शुद्ध आत्माका अनुभव ही व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

ज्ञानेन ज्ञान दिट्ठं, कुज्ञानं मिच्छ असुह विरयंमि ।
विरयं सुह असुहं च, ववहारं सुद्धमप्पानं ॥ ५६६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन ज्ञान दिट्ठं) ज्ञानके द्वारा ज्ञानका अनुभव करना (कुज्ञानं मिच्छ असुह विरयंमि) मिथ्याज्ञान, मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या आचरणसे विरक्त होना (सुह असुहं च विरयं) तथा शुभ अशुभ मन वचन कायकी प्रवृत्तिसे विरक्त होना (सुद्धमप्पानं) शुद्ध आत्मा रूप होजाना (ववहारं) व्यवहार सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—मिथ्या श्रद्धान, ज्ञान व चारित्रको छोडकर व सर्व शुभ व अशुभ भावोंको त्यागकर शुद्धोपयोग रूप परिणमन करना-निजात्माके स्वाभाविक आनन्दका स्वाद लेना व्यवहार सम्यक्त है ।

अवगाह सम्यक्त ।

अवगाहन संमत्तं, अवगहइ अंग पुव्व वित्थरणं ।
अवगहै सुद्ध भावं, सुद्धं च असुद्ध विवरीदो ॥ ५६७ ॥

अन्वयार्थ—(अवगाहन संमत्त) अब अवगाह सम्यग्दर्शनको कहते हैं । जो (अंग पुव्व वित्थरणं अवगहइ) ग्यारह अंग चौदा पूर्वके विस्तारको जाने फिर (सुद्धं भावं अवगहै) शुद्ध आत्मिक भावको जानकर (असुद्ध विवरीदो) अशुद्ध भावोंसे विपरीत (सुद्धं च) शुद्ध भावका ही अनुभव करे सो अवगाढ सम्यक्त है।

भावार्थ—द्वादशांग वाणीको समझकर श्रुतकेवलीके जो शुद्ध अवगाढ सम्यग्दर्शन होता है वह अवगाढ सम्यक्त है । यहां सर्व अशुद्ध भावोंका त्याग है व शुद्ध स्वरूपका ही ग्रहण है ।

अवगहइ सुद्ध ज्ञानं, आरति रौद्रं च सयल विवरीदो ।
अवगहइ अप्प अप्पं, सम्यक्दंसनं च अवगहनं ॥ ५६८ ॥

अन्वयार्थ—(आरति रौद्रं च सयल विवरीदो) सर्व आर्त तथा रौद्रध्यानसे हटकर (सुद्ध ज्ञानं अवगहइ)

जो शुद्ध ध्यानको अवगाहन करता है (अप्प अप्पं अवगहइ) आपसे आपको ग्रहण करता है (अवगहनं च सम्यक्दंसनं) वही अवगाढ सम्यग्दर्शनको धारता है।

भावार्थ—परिणामोंको संक्लेशित करनेवाले आर्त तथा रौद्रध्यान हैं इन दोनों ध्यानोंको छोड़कर जो धर्मध्यानमें तिष्ठकर अपने ही आत्माके द्वारा अपने आत्माका अनुभव करता है वही अवगाढ सम्यक्तका धारी है।

पदस्तं पिंडस्तं, रूवस्तं रूवतीत ज्ञानस्थं।
अवगहे धम्म सुक्कं, अवगाहन ज्ञान ज्ञान संमत्तं ॥ ५६९ ॥

अन्वयार्थ—(पदस्तं पिंडस्तं) जो कोई पदस्थ ध्यान, पिंडस्थ ध्यान (रूवस्तं रूवतीत ज्ञानस्थं) रूपस्थ ध्यान तथा रूपातीत ध्यानमें ठहरा हुआ (धम्मं सुक्कं अवगहै) धर्म तथा शुक्लध्यानको अवगाहन करता है सो ही (अवगाहन ज्ञान ज्ञान सम्मत्तं) अवगाहन ज्ञानका ध्यान रूप सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—धर्मध्यानके चार भेद श्री ज्ञानार्णव ग्रन्थमें कहे हैं, वहांसे इनका विशेष स्वरूप जानना योग्य है। यहांपर कुछ संक्षेप स्वरूप लिखा जाता है।

पिंडस्थ ध्यान—पिंड अर्थात् शरीर उसमें स्थित आत्माका ध्यान सो पिंडस्थ ध्यान है। इसकी पांच धारणाएं हैं-पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और तत्व रूपवती।

(१) पृथ्वी धारणा—मध्य लोकके समान क्षीर समुद्रका चिंतवन करै उसके मध्यमें जंबूद्वीप समान एक लाख योजन चौडा ताए हुए सुवर्णके समान एक हजार पत्तेका कमल विचारे, उसके मध्यमें सुमेरु पर्वतके समान पीतरंगकी कर्णिकाको विचारे, सुमेरुपर्वतके ऊपर पांडुकवनमें पांडुक शिलापर स्फटिक मणिका सिंहासन सोचे, उसपर अपनेको पद्मासन बैठा हुआ विचार करै कि मैं कर्मोंके नाशके लिये बैठा हूं। ऐसा वारवार विचारना पार्थिवी धारणा है। जब इसका अभ्यास होजावे तब अग्नि धारणाका अभ्यास करै।

(२) अग्नि धारणा—उसी सिंहासनपर बैठा हुआ अपने नाभिस्थानमें भीतर सोलह पत्तेका सफेद कमल विचार करै, उसके १६ पत्तोंपर पीतरंगके अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ, ए ऐ, ओ औ, अं अः ऐसे १६ स्वरोंको विचारें। फिर उस कमलके मध्यमें हैं विचार करे इसीकी सीधमें

हृदय स्थानपर औंधा आठ पत्तोंका एक कमल ज्ञानावरणादि आठ कर्मकी स्थापना रूप विचार करैं। ह्रैं की रेफसे धूआं निकला फिर अग्नि निकली। लौ बढी और आठ कर्मके कमलको जलाने लगी। वही लौ उस कमलके मध्यमेंसे ऊपरको गई। मस्तक पर जाकर उसकी एक एक लाइन दोनों तरफ शरीरके नीचेको गई और फिर वे दोनों एक लाइनसे मिल गईं। अर्थात् शरीरके तीन तरफ त्रिकोण मंडल बन गया ऐसा सोचे। फिर इस मंडलके भीतर तीनों कोनोंपर ॐ र्रं और बाहरके तीनों कोनोंपर स्वस्तिक 卐 अग्निमय विचारे। त्रिकोणकी तीन लाइनोंको ररररररर अक्षरोंकी बनी हुई अग्निमय विचारे। इस तरह सोचे कि भीतरी अग्नि आठ कर्मको व बाहरी अग्नि शरीरको जला रही है। दोनोंकी जलकर राख होरही है। जब दोनों जलकर राख होगए तब अग्नि जहांसे उठी थी वहां समा गई। इस अग्नि धारणाका बारबार अभ्यास करनेसे ऐसा झलकता है कि मानो कर्म जल रहे हैं और मैं शुद्ध होरहा हूं।

(३) वायु धारणा—उसी तरह बैठा हुआ सोचे कि मेरे चारों तरफ बडे वेगसे पवन घूम रही है। इसका एक मण्डल बन गया है जिसमें कई जगह स्वाय स्वाय लिखा है। यह मण्डल घूमता हुआ कर्मरूपी रजको उडाता है और आत्माको शुद्ध करता है।

(४) जलधारणा—उसी स्थानपर बैठा हुआ सोचे कि मूसलधार पानी बरस रहा है, आत्मा पर एक अर्द्ध-चन्द्राकार पानीका मंडल बन गया है, इसपर पानीका बीजाक्षर प प प प प प लिखा हुआ है। यह जलवृष्टि आत्माके मैलको छुडानेवाली है।

(५) तत्वरूपवती धारणा—अब यह सोचे कि मेरा आत्मा सिद्ध सम शुद्ध होगया है। यथार्थ तत्वमें होगया है। (१) यही पिंडस्थ ध्यान है।

(२) पदस्थध्यान—मस्तकपर, भौंहोंके मध्यमें, नासिकाके अग्र भागपर आदि किसी भी स्थानपर मंत्रपदोंको विराजमान करना व उनके द्वारा पांचपरमेष्ठी व आत्माका चिंतवन करना। वे मंत्रपद हैं-ॐ, ह्रीं, श्रीं, सोहं, अर्हं आदि।

(३) रूपस्थध्यान—अरहंतके स्वरूपको विचार करके आत्माका ध्यान करना। समवसरणको याद कर लेना कि बारह सभाएं लगी हैं, भगवान अंतरीक्ष सिंहासनपर विराजमान हैं। दिव्यध्वनि

होरही है। भगवान पद्मासन हैं व ध्यानमग्न हैं, उनके आत्माको विचार कर अपने आत्माको उसरूप ध्याना।

(४) रूपातीत ध्यान—एकदमसे सिद्ध भगवानको विचार कर उनके स्वरूपमें अपने आपको जोड़ देना।

इन चार प्रकारके धर्मध्यान द्वारा आत्मध्यान होता है तथा श्रेणीपर चढनेसे शुक्लध्यान होता है। इस तरह धर्मध्यान व शुक्लध्यानके प्रतापसे आत्माको अवगाढ रूपसे ध्याना अवगाढ सम्यक्त परम कल्याणकारी है।

प्रवचन केवलि सम्यक्त।

प्रवचने केवलिनं, जं उत्तं केवलि नन्त दिष्टि संदिट्ठं।
तं वयन सुद्धं वयनं, असुद्ध वयनं पि सयल विवरीदो ॥ ५७० ॥

अन्वयार्थ—(केवलिनं प्रवचने) केवली भगवानकी दिव्यध्वनिमें (जं उत्तं) जो कहा गया है ऐसा प्रवचन केवलि सम्यक्त है (केवलि नन्त दिष्टि संदिट्ठं) जिसको केवली भगवानने अपनी अनन्त दर्शनकी दृष्टिसे अनुभव किया है (तं वयन सुद्ध वयनं) उनका वह वचन शुद्ध सम्यक्तका झलकानेवाला है (असुद्ध वयनं पि सयल विवरीदो) जो सर्व अशुद्ध वचनोंसे रहित है।

भावार्थ—केवली भगवानको जिस सम्यक्तका अनुभव है वह परमावगाढरूप प्रवचन केवली सम्यक्त है। यहां आत्माका प्रत्यक्ष अनन्त दर्शन व अनन्त ज्ञानके द्वारा दर्शन है। इसके पहले अमूर्तीक आत्माका परोक्ष श्रुतज्ञानके बलसे दर्शन था। उनकी दिव्यध्वनिसे जैसा उसका प्रकाश होता है वैसा प्रकाश अल्पज्ञानी नहीं कर सक्ते हैं। उनकी ध्वनिमें कोई दोष नहीं है, वह यथार्थ सम्यक्तको प्रगट करनेवाला है।

जं केवलि उवएसं, तं वयनं शुद्ध साधं निश्चय।
तं आलाप चवंतं, जं केवल ममल केवलं सुद्धं ॥ ५७१ ॥

अन्वयार्थ—(जं केवलि उवएसं) जो केवली भगवानने उपदेश दिया है (तं वयनं सुद्धं साद्धि निश्चय) वह वचन शुद्ध भावको लिये हुए है व वही निश्चय है, ठीक है (जं केवलं अमल केवलं सुद्धं) जो सम्यग्दर्शन परसे भिन्न निर्मल बिलकुल शुद्ध है (तं आलाप वयंनं) वही उनकी ध्वनिसे प्रकाशित होता है।

भावार्थ—केवली भगवान द्वारा कहा हुआ सम्यग्दर्शनका स्वरूप वही है जैसा उनके अनुभवमें प्रत्यक्ष आत्माका दर्शन है। उनके ज्ञानमें आत्मा आत्मारूप सर्व परद्रव्योंसे भिन्न एकाकार परम शुद्ध अमूर्तीक प्रत्यक्ष दिखलाई पडता है। क्योंकि आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन सिवाय केवलज्ञानके और कोई ज्ञान नहीं कर सक्ता है। मति श्रुत दो ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं, इन्द्रिय तथा मन द्वारा होते हैं। अवधि मनःपर्यय रूपी पदार्थ मात्रको प्रत्यक्ष जानते हैं। एक केवलज्ञान ही ऐसा है जो मूर्तीक अमूर्तीक सबको प्रत्यक्ष जानता है। जैसा निर्मल परमावगाढ सम्यग्दर्शन केवलीको है, वही प्रवचन केवलि सम्यक्त है, जो उनके वचनों द्वारा प्रकाशित होता है।

परम सम्यक्त।

परमं सम्मत्त उत्तं, परमं ज्ञानस्य परम भत्तीए।
परमं परमप्पानं, अप्पा परमप्प कवलं सुद्धं ॥ ५७२ ॥

अन्वयार्थ—(परमं सम्मत्त उत्त) उत्कृष्ट सम्यग्दर्शनको कहा जाता है। (परम भत्तीए परमं ज्ञानस्य) जो श्रेष्ठ भक्तिके साथ श्रेष्ठ ध्यानधारीके होता है। (परमं परमप्पानं) यह श्रेष्ठ सम्यक्त परमात्माके होता है। (अप्पा परमप्प केवलं सुद्ध) यह आत्मा परमात्मारूप केवल शुद्ध होता है।

भावार्थ—परम सम्यग्दर्शन आत्माका निर्मल एक स्वाभाविक गुण है। यह गुण श्री सिद्ध भगवानमें जैसाका तैसा प्रकाशमान है। आठों कर्मोंके वियोग होनेसे शरीर न रहनेसे; मन, वचन, काय न रहनेसे सिद्धात्मा परम शुद्ध आत्मारूप हैं। उनके भीतर सर्व गुण परम शुद्ध झलक रहे हैं। परम ध्यान शुक्लध्यान है। चौथे शुक्लध्यानके प्रतापसे सर्व कर्म जब झड़ जाते हैं तब आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है। उनके भीतर जो सम्यग्दर्शन गुण है वही परम सम्यक्त है।

परमं परमप्पानं, अप्प सरूवं च सुद्ध मप्पानं ।
रागादि दोस विरयं, झानं झायंति परम सम्मत्तं ॥ ५७३ ॥

अन्वयार्थ—(परमं परमप्पानं) श्रेष्ठ परमात्मा श्री सिद्ध भगवानके (अप्प सरूवं च सुद्ध मप्पानं) आत्माका स्वरूप शुद्ध आत्मारूप है वे (रागादि दोष विरयं झानं झायंति) रागादि दोष रहित वीतराग ध्यानमें तल्लीन हैं। (परम सम्मत्तं) उनहींके परम सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवानका आत्मा आत्माके यथार्थ स्वभावमें प्रकाशमान है। वे हलन-चलन रहित निश्चल समुद्रकी तरह परम वीतरागता सहित आप ही आपमें मगन हैं। कोई भी कारण आत्मस्वभावसे अन्यथा होनेका नहीं है। उनके भीतर सर्व गुण अपने स्वभावमें कल्लोल कर रहे हैं, वहीं परम सम्यग्दर्शन भी है।

सम्मत्तं उवएसं, दहविहि संमत्त अप्प अप्पानं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ५७४ ॥

अन्वयार्थ—(दहविहि सम्मत्तं उवएसं) इस तरह दश प्रकार सम्यग्दर्शन कहा गया है (अप्प अप्पानं संमत्तं) आपसे आपको आप रूप श्रद्धान करना सम्यक्त है (अप्पा सुद्धप्पानं) यह आत्मा शुद्ध आत्माको प्रतीति व ज्ञान सहित अनुभव करता हुआ (परमप्पा लहै निव्वानं) अर्हंत परमात्मा होकर फिर निर्वाणको प्राप्त करता है। अर्थात् सिद्ध परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—भिन्न २ अपेक्षासे सम्यग्दर्शनके दश भेद कहे गए हैं। वास्तवमें सम्यग्दर्शन अपने आत्माकी परसे भिन्न निर्मल गाढ प्रतीतिको कहते हैं। जो भव्यजीव इस प्रतीति सहित निजात्माको ध्याता है वह चार घातीय कर्मोंको काटकर अर्हंत परमात्मा होजाता है फिर वही चारों अघातीय कर्मोंको भी नाशकर सिद्ध परमात्मा होजाता है।

श्री आत्मानुशासनमें दश प्रकार सम्यक्तका स्वरूप नीचे भांति है—

आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञयैव । त्यक्तग्रन्थप्रपंचं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशांतेः ॥
मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता । या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशिदृष्टिः ॥ १२ ॥

भावार्थ—केवल वीतराग भगवानकी आज्ञासे ही तत्वोंपर जो रुचि होजाय सो आज्ञा सम्यक्त है ॥ १ ॥ दर्शन मोह कर्मके शांत होनेसे सर्व परिग्रह रहित कल्याणकारी मोक्षमार्गका श्रद्धान हो जाना सो मार्ग सम्यक्त है ॥ २ ॥ जो सम्यक्त तीर्थंकरादि श्रेष्ठ पुरुषोंके चारित्रके उपदेश द्वारा उत्पन्न हुआ हो उसे आगमके ज्ञाता आचार्योंने उपदेश सम्यक्त कहा है ॥ ३ ॥

आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः । सूक्तासौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः ॥
कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद्बीजदृष्टिः पदार्थात् । संक्षेपेणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान्साधुसंक्षेपदृष्टिः ॥ १३ ॥

भावार्थ—मुनियोंके चारित्रको बतानेवाले आचार सूत्रको सुनकर जो उत्पन्न हो वह सूत्र सम्यग्दर्शन है ॥ ४ ॥ गणित आदिके प्रकाशक करणानुयोगके ज्ञानके लिये जो बीज या मूल नियम कहे गए हैं, उनमेंसे कुछ नियमोंके जाननेसे तथा मोहकी अतिशय शांतिसे जो सम्यक्त हो, वह बीज सम्यक्त है ॥ ५ ॥ पदार्थोंको संक्षेप रूपसे जाननेपर ही जो तत्वोंमें यथार्थ रुचि हो वह संक्षेप सम्यक्त है ॥ ६ ॥

यः श्रुत्वा द्वादशांगीं कृतरुचिरथ तं विद्धि विस्तारदृष्टिं । संजातार्थात्कुतश्चित् प्रवचनवचनान्यंतरेणार्थदृष्टिः ।
दृष्टिः सांगांगबाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता यावगाढा । कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावादिगाढेति रूढा ॥ १४ ॥

भावार्थ—सर्व द्वादशांगको सुनकर जिसके तत्व रुचि हो, वह विस्तार सम्यक्त है ॥७॥ किसी पदार्थके देखनेसे व अनुभवनेसे तथा किसी शास्त्रके वचन अनुभवनेसे जो सम्यक्त हो वह अर्थ सम्यक्त है। ॥ ८ ॥ बारह अंग व अंगबाह्य सर्व श्रुतज्ञानके ज्ञानसे जो श्रुतकेवली अवस्थामें सम्यक्त हो वह अवगाढ सम्यक्त है ॥ ९ ॥ केवलज्ञानके द्वारा पदार्थोंको जाननेपर जो रुचि हो, सो परमावगाढ सम्यग्दर्शन है ॥१०॥ वास्तवमें सम्यक्त एक आत्माका अवक्तव्य गुण है। जब आत्मानुभूति होती है, तब सम्यक्तका होना अवश्य सिद्ध है। आत्मानुभवके कालमें ही भाव निक्षेपरूप सम्यक्त है। यही निश्चय सम्यक्त है। इसका स्वरूप समयसार कलशमें श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं—

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः । पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः पृथक् ।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम् । तन्मुक्त्वा नवतत्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥ ६ ।

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनयसे एक स्वभावमें निश्चल, पूर्णज्ञान घन, अपने गुणोंमें व्याप्त, ऐसे

निज आत्माको सर्व द्रव्योंसे भिन्न देखना ही सम्यग्दर्शन है। यही नियमसे आत्मा है। व यह आत्माके सर्वांशमें व्यापक है। जितना बडा आत्मा है, उतना सम्यक्दर्शन है। इस लिये नव तत्वोंकी परिपाटीको छोडकर हमें एक आत्मा ही प्राप्त हो।

इससे सिद्ध है कि जहां आत्मामें तन्मयता है, वहां ही सम्यग्दर्शनका राज्य है। आत्माका ज्ञान केवलज्ञानमें तो प्रत्यक्ष होता है। किन्तु श्रुतज्ञानमें आत्माका ज्ञान परोक्ष शास्त्रके अर्थके बोधसे होता है। अतएव अरहन्त व सिद्धभगवानका सम्यक्त विशद है-बहुत साफ है वैसा शास्त्र द्वारा आत्माका अनुभव स्पष्ट नहीं होता है। इसी ही सम्यक्तके दश भेद कहे गए हैं। प्रयोजन यह है कि हमें जिसतरह बने सम्यक्तका लाभ करना चाहिये।

बारह अविरत त्याग।

पंच इंद्री संवरनं, रागं दोसं च विषय संवरनं।
मन नरपति संवरनं, थावर रक्षा च संयमं सुद्धं ॥ ५७५ ॥

अन्वयार्थ—(पंच इंद्री संवरनं) पांचों इंद्रियोंको रोकना, (रागं दोषं च विषय संवरनं) राग द्वेष व विषयवासनाको रोकना, (मन नरपति संवरनं) मनरूपी इंद्रियोंके राजाको रोकना, (थावर रक्षा च संयमं सुद्धं) स्थावर त्रस जीवोंकी रक्षा करना शुद्ध संयम है।

भावार्थ—बारह प्रकार अविरत भावको त्यागकर अर्थात पांच इंद्रिय तथा मनकी स्वच्छंद प्रवृत्तिको और पांच स्थावर और त्रस छः प्रकारके प्राणियोंकी हिंसाको त्यागकर जो राग द्वेषादि विभावोंसे छूटकर निज आत्मामें संवर रूप व संयम रूप रहना सो ही बारह अविरत त्याग है।

जिह्वका स्वाद त्याग।

जिह्वा स्वाद असुद्धं, स्वादं पंचभेय विरयंमि।
विरयं असुद्ध भावं, स्वादं पंचज्ञान ममल विस्तरनं ॥ ५७६ ॥

अन्वयार्थ—(जिह्वा स्वाद असुद्धं) जबानका स्वाद अशुद्ध स्वाद है। (पंचभेय स्वादं विरयंमि) वह पांच भेदरूप स्वाद है। उससे विरक्त होकर (असुद्ध भावं विरयं) व अशुद्ध भावोंको त्यागकर (पंचज्ञानं ममल विस्तरनं स्वादं) पंचम केवलज्ञानका निर्मल विस्तार रूप स्वाद लेना जिह्वा स्वाद त्याग है।

भावार्थ—जिह्वा इंद्रिय बडी ही चंचल है। उसीके कारणसे और इंद्रियोंमें प्रवृत्ति होता है! इसलिए आत्म ज्ञानीको खट्टा, मीठा, चर्परा, तीखा, कषायला ऐसे पांच रसोंके अशुद्ध स्वादका मोह त्यागना चाहिये। क्योंकि यह पर द्रव्य पुद्गलका स्वाद है, आत्मरससे भिन्न है। रागभावके कारण ही पुद्गलके स्वादका स्वाद आता है। तथा इस स्वादसे कभी तृप्ति नहीं होती है। ज्ञानीको उचित है कि वह निज आत्माके निर्मल अनंत ज्ञानका स्वाद ले। जिसमें सर्व जगतके गुण पर्याय प्रतिबिम्बित होते हैं। ऐसा आत्माका अपूर्व सहज ज्ञान है। इसीका स्वाद ही शुद्ध स्वाद है। आत्म रस ही शुद्ध रस है।

कुज्ञान वयन तिक्तं, कुच्छिय आलाप मिच्छ विरयंमि।
वयनं जिन उवएसं, सुद्ध सरूवं च वयन उवएसं ॥ ५७७ ॥

अन्वयार्थ—(कुज्ञान वयन तिक्तं) जिह्वाको खोटे वचनोंके स्वादसे भी बचना चाहिये। इसलिये तारणस्वामी कहते हैं—मिथ्याज्ञानको पुष्ट करनेवाले वचनोंको त्याग करना चाहिये (कुच्छिय आलाप मिच्छ विरयंमि) कुत्सित आलाप, अनर्थकारी वातचीत व मिथ्या कथासे विरक्त रहना चाहिये (जिन उवएसं वयनं) जिनेन्द्रने जो धर्मका उपदेश किया है उसीका पोषक वचन कहना चाहिये (सुद्ध सरूवं च वयन उवएसं) तथा शुद्ध आत्म-स्वरूपको पुष्ट करनेवाले वचनोंका ही उपदेश करना चाहिये।

भावार्थ—जिह्वासे जैसे रसका स्वाद लिया जाता है वैसे वचनोंको भी उच्चारण किया जाता है। इसलिये जिह्वाको इसतरह वशमें रखना चाहिये कि इससे मिथ्याज्ञानका संसार-वर्द्धक उप-

देश न हो न यह वृथा वार्तालाप करे न स्त्री कथा, भोजन कथा आदि विकथाओंकी चर्चा की जावे। मौन रहना ही उचित है, यही तत्व ज्ञानीका गौरव है। यदि कभी कुछ कहना पडे तो श्री जिनेन्द्रके उपदेशके अनुसार वचन कहे। तथा शुद्ध आत्माकी तरफ प्रेरणा करनेवाले वचन कहे। यह भी जिह्वा इंद्रियके स्वादका त्याग है। वृथा आलाप करनेकी बुरी आदत जबानको पड जाती है उस स्वादको त्यागना भी संयम है।

असुद्धं न चवंतो, रागादि दोस असत्य विरयंमि।
इन्द्री विरय अतींद्री, अतींद्री ज्ञान स्वाद स सहावं ॥ ५७८ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्धं न चवंतो) अशुद्ध वचन न बोलना (रागादि दोस असत्य विरयंमि) रागादि दोषोंसे व मिथ्या आलापसे विरक्त होना (इन्द्री विरय अतींद्री) पांच इन्द्रियोंसे रहित अतीन्द्रिय आत्मापर लक्ष्य देकर (स सहावं अतींद्री ज्ञान स्वाद) अपने स्वाभाविक अतीन्द्रिय ज्ञानका स्वाद लेना जिह्वा स्वाद त्याग संयम है।

भावार्थ—वास्तवमें जिह्वाका संयम यही है जो मौन रहकर इन्द्रियोंके विषयके रसका मोह छोडकर अपने आत्माका अनुभव करते हुए अतीन्द्रिय आत्म-जन्य स्वाभाविक आनन्द रसका स्वाद लिया जावे। तथा यदि कुछ कहना पडे तो वीतरागता वर्द्धक वचनोंको ही कहे। यही तत्वज्ञानीका जिह्वा स्वाद संयम है।

स्पर्शन इन्द्रिय त्याग।

सरसन इन्द्रि असुद्धं, मयमत्त अबंभ भाव विरयंति।
विरयं परिनाम असुद्धं, सुद्धं भावं च अतींद्रियं सुद्धं ॥ ५७९ ॥

अन्वयार्थ—(सरसन इंद्रि असुद्धं) स्पर्शन इन्द्रियकी चाह अशुद्ध भावोंको रखनेवाली है इसलिये ज्ञानी (मयमत्त अबंभ भाव विरयंति) मदमत्त कुशीलके भावसे विरक्त हो जाते हैं (असुद्धं परिनाम विरयं)

अशुद्ध भावोंको त्याग देते हैं (अतींद्रिय सुद्धं सुद्धं भावं च) अपने आत्माके अतीन्द्रिय परम शुद्ध भावमें ही रमण करते हैं। यही स्पर्शन इन्द्रिय विषय त्याग है।

भावार्थ—स्पर्शन इन्द्रियका राग कुशील भोगको पैदा करके काम भावकी तीव्र लालसा पैदा कर देता है। प्राणी इस कुशील भावकी तीव्रतासे उन्मत्त होजाता है। फिर नानाप्रकारके अशुद्ध भावोंमें रातदिन रमा करता है। इसलिये तत्वज्ञानी इस इंद्रियके अनर्थकारी भावका सर्व राग छोड देते हैं। काम भाव रूपी रोगको स्पर्शन इंद्रियके भोगसे अमिट जानते हैं किंतु रोगवर्द्धक जानते हैं। इसी लिये परम संतोष देनेवाले आत्म जनित अतीन्द्रिय रसके स्वादी होकर शुद्ध भावमें ही रमण करते हैं वे सर्व स्त्री मात्रकी इच्छाको छोडकर निज आत्मानुभूति रमणीका ही रमण करते हैं। यही शुद्ध भाव मोक्ष साधक है। स्पर्शन इंद्रियका लोभ संसार वर्द्धक है।



घ्राण इन्द्रिय त्याग।

घ्रानेंद्री गंध सुगंधं, संसारे सरनि घ्रान विरयंमि।
घ्रानं अप्प सहावं, सुद्धं स सरूव घ्रान अति इन्द्री ॥ ५८० ॥

अन्वयार्थ—(घ्रानेंद्री गंध सुगंधं) घ्राण इन्द्रिय दुर्गंध तथा सुगंधको लेकर रागद्वेष पैदा करती है। इसलिये (संसारे सरनि घ्रान विरयंमि) संसारके मार्गमें पटकनेवाली घ्राण इंद्रियकी चाहसे विरक्त होकर तत्वज्ञानी (अप्प सहावं घ्रानं) आत्माके स्वभावकी गन्ध लेते हैं (सुद्धं ससरूव घ्रान अतिइन्द्री) शुद्ध आत्म स्वरूपकी गन्ध अतीन्द्रिय सुखका स्वाद लेना है।

भावार्थ—तत्वज्ञानी घ्राण इंद्रियके विषयको रोगवत् अतृप्तिकारी जानते हैं। अशुद्ध रागभावको बढानेवाला जानते हैं इस लिए घ्राण इंद्रियके विषयसे विरक्त होकर वे ज्ञानी निज आत्माको पर द्रव्योंसे भिन्न जानकर उसीमें तन्मय होकर अतींद्रिय आनन्दका स्वाद लेते हैं। घ्राण इंद्रियके विषयका त्याग कर देते हैं।

चक्षुइन्द्रिय त्याग।

दिट्ठदि असुद्ध भावं, दिट्ठदि पंचवरन असुह अवियारं।
तिक्तंति भाव असुहं, दिट्ठदि सुद्ध दंसनं अमलं ॥ ५८१ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध भावं दिट्ठदि) चक्षुइन्द्रियका वशीभूत प्राणी अपने आत्माकी ओरसे विमुख हो अशुद्ध पुद्गल पदार्थोंको देखा करता है (पंचवरन असुह अवियार दिट्ठदे) पांच वर्णकी वस्तुओंको देखा करता है उनमें कोई तो विकार करनेवाली अशुभ होती है, कोई विकार नहीं करनेवाली शुभ होती है। परन्तु जो चक्षुइन्द्रियके अविरत भावसे विरक्त होते हैं व (असुहं भाव तिक्तंति) अशुद्ध भावको पैदा करनेवाली दृष्टिको त्याग देते हैं (अमल सुद्ध दंसनं दिट्ठदि) निर्मल शुद्ध सम्यग्दर्शनको ही अन्तरङ्गमें देखते हैं।

भावार्थ—वास्तवमें देखनेवाला ज्ञानोपयोग है। अशुद्ध ज्ञानोपयोगरूप मति ज्ञान चक्षुइन्द्रिय द्वारा वर्तन करता हुआ पर पदार्थोंके शुक्ल, रक्त पीत, नील काले रंगोंको देखनेमें उपयुक्त होता है। कभी तो उनको देखकर यह विकारी हो जाता है। जैसे सुन्दर स्त्री, मकान आदि देखकर यह उसके भोगकी इच्छा करने लगता है। कभी मात्र देख लेता है विकार नहीं पैदा करता है। जैसे बाजारमें सैकड़ों वस्तुएं दीखती हैं। कुछेकमें इच्छा होती है, बहुतोंमें नहीं होती है। परन्तु यह ज्ञानोपयोग पर पदार्थकी ओर सन्मुख होकर अशुद्ध ही रहता है। तत्वज्ञानी महात्मा इस चक्षु-इन्द्रियके कार्यको रोक देते हैं और उस ज्ञानोपयोगको अपने भीतर अपनी शुद्ध आत्म-प्रतीतिमें लगा देते हैं। अर्थात् जैसा उन्होंने आत्माको शास्त्रके द्वारा व गुरुके द्वारा जाना था वैसा ही ध्यानमें लेकर उस आत्माका अनुभव करने लग जाते हैं, उपयोगको शुद्ध आत्मामें रमा देते हैं। यही आत्माका दर्शन है। इस तरह चक्षुइन्द्रियके विषयको जीतते हैं।

दिट्ठदि ज्ञान सहावं, दिट्ठदि ज्ञान पंच विज्ञानं।
दिट्ठदि चरन सरूवं, अप्पा परमप्प अतिन्द्रिया दिट्ठी ॥ ५८२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं दिट्ठदि) तत्वज्ञानी चक्षु इन्द्रियके विजयी अपने ज्ञान स्वभावी आत्माका

दर्शन करते हैं (दिट्ठदि ज्ञान पंच विज्ञानं) भेद विज्ञानके द्वारा पांचवें केवलज्ञान स्वरूप आत्माको देखते हैं (चरन सरूवं दिट्ठदि) तथा आत्माको चारित्र स्वरूप परम वीतराग देखते हैं (अप्पा परमप्प अतींद्रियां दिट्ठी) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करना ही अतीन्द्रिय दृष्टि कहलाती है।

भावार्थ—चक्षु इन्द्रियके विषयको निरोध कर अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टी जीव भेदविज्ञानके बलसे अपने ही आत्माको सर्व द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित परमात्मा स्वरूप देखने हुए व उसीको परम वीतराग स्वरूप अनुभव करते हुए अतीन्द्रिय दृष्टिके बलसे परमानन्दकी शोभाका लाभ पाते हैं। चक्षुइन्द्रिय आविरत भावसे विमुख हो निज स्वरूपमें ही तन्मय होजाना चक्षुइन्द्रियका विजयी होजाना है।

श्रोत्र इन्द्रिय त्याग।

स्रोत्रं स्रवन असुद्धं, सब्दं सप्तंमि असुद्ध विरयंमि।
सब्दं ज्ञान सरूवं, जिन उत्तं स्रवन सुद्ध सदहनं ॥ ५८३ ॥

अन्वयार्थ—(स्रोत्रं असुद्धं स्रवन) श्रोत्र या कर्णइन्द्रियके द्वारा वर्तन करता हुआ यह प्राणी संसारमें मोह उत्पन्न कारक गाना बजाना, आलाप कथा आदि अशुद्ध शब्दोंको सुना करता है, इससे ज्ञानी जीव (सप्तंमि असुद्ध सब्दं विरयंमि) सात स्वररूप अशुद्ध शब्द मात्रके सुननेसे विरक्त होजाते हैं (जिन उत्तं ज्ञान सरूवं सब्दं स्रवन) जिनेन्द्र भगवान कथित ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले शब्दोंको सुनते हैं (सुद्ध सदहनं) और शुद्ध आत्माका श्रद्धान दृढ करते हैं।

भावार्थ—जगतके प्राणी ज्ञानोपयोगको कर्ण इन्द्रियके द्वारा वर्तन करके रागद्वेष वर्द्धक बहुतसी बातें, कथा, नाटक, गाना, बजाना सुनकर शब्दके सात भेदोंमें रंजायमान होजाते हैं। सा, रे, गा, मा, पद, नी, सा इन सात स्वरोंके सुननेके भीतर राग कर लेते हैं जिससे संसारका मोह पढा लेते हैं। ज्ञानी जीव इस तरहके शब्दोंके सुननेसे विमुख होकर श्री जिनेन्द्रकी पवित्र वाणी सुनते हैं जिससे तत्वज्ञान होता है व शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान दृढ होता है। भगवन्‌के ज्ञानामृत पूर्ण शब्दोंकी प्रेरणासे वे ज्ञानी जीव अपने ही शुद्ध स्वरूपमें अनुरक्त होकर सात स्वरोंके विषयोंसे रहित निजानन्द रसका भोग करते हैं।

असुद्ध सव्द तिक्तं, संसारे सरनि सव्द तिक्तंती ।
सव्दं सुद्ध असुद्धं, ज्ञानमयं सव्द सुद्ध अति इन्द्री ॥ ५८४ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध सव्द तिक्तं) ज्ञानी जीव सर्व अशुद्ध भावकारक शब्दोंको सुनना छोड देते हैं (संसारे सरनि सव्द तिक्तंती) संसार मार्गमें लेजानेवाले शब्दोंका श्रवण त्याग कर देते हैं (सव्दं सुद्ध असुद्धं) शब्द दो प्रकारके होते हैं-एक शुद्ध शब्द, एक अशुद्ध शब्द (ज्ञानमयं सव्द सुद्ध अतिइन्द्री) ज्ञान उत्पन्न करानेवाले शब्दोंको शुद्ध शब्द कहते हैं जिनके ऊपर चलनेसे अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव होता है व निजानन्दका लाभ होता है ।

भावार्थ—जिन शब्दोंके सुननेसे शुद्ध आत्माकी तरफ लक्ष्य न जाकर पुद्गल सम्बन्धी अशुभ व शुभ क्रिया करनेमें लक्ष्य जावे वे सब शब्द अशुद्ध हैं। क्योंकि उन शब्दोंके श्रवणसे उपयोग अशुभ या शुभ होगा जिससे पाप या पुण्यका बंध होजायगा। ज्ञानी जीव ऐसे शब्दोंके सुननेसे उपयोग हटाकर उन अध्यात्म रस गर्भित शब्दोंको सुनते हैं, जो ज्ञानमई अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव कराते हैं। इन शुद्ध शब्दोंके द्वारा शुद्ध ज्ञानका लाभ पाकर अपने शुद्ध आत्माके अनुभवमें मगन होजाते हैं। सात स्वरोंका राग त्यागकर अध्यात्म रसमें तन्मय होजाते हैं वही कर्ण इंद्रियके अविरत भावका त्याग है ।

पंचेन्द्रि संवरनं, पंचविय भाव विषय संवरनं ।
पुग्गल सुभाव विरयं, ज्ञान सहावेन-अतींद्रिया सव्वे ॥ ५८५ ॥

अन्वयार्थ—(पंचेन्द्री संवरनं) पांचों इन्द्रियोंको निरोध करना यही है जो (पंचविय भाव विषय संवरनं) पांचों ही इंद्रियोंके विषय सम्बन्धी सत्ताईस भावोंका राग छोड दिया जावे (पुग्गल सुभाव विरयं) पांचों इंद्रियोंके सर्व विषय पुद्गलमय हैं उन सर्व पुद्गलोंकी अवस्थाओंसे विरक्त हुआ जावे (ज्ञान सहावेन सव्वे अतींद्रिया) तथा ज्ञान स्वभावमें तिष्ठनेके द्वारा सर्वकी इंद्रियोंसे उपयोगको हटाकर अतींद्रिय होकर निज आत्मामें ही रमण किया जावे ।

भावार्थ—पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें उपयोग रमकर अव्रती होता हुआ यह जीव नानाप्रकार

पाप कर्मोंको बांध लेता है। और संसारके भ्रमणको बढ़ा लेता है। अतएव मुमुक्षु जीव इन पांचों अविरत भावोंसे विरक्त होकर सर्व पुद्गलोंके विलाससे विमुख होजाते हैं और अपने ज्ञानोपयोगको ज्ञान स्वभावी अतीन्द्रिय आत्मामें जोड़कर अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद लेते हैं। यही पांच इन्द्रिय विजय संयम है।

मन नो इन्द्रिय त्याग।

पुग्गल विषयं जानदि, हलुवं गरुवं च रुक्ख चिक्कनयं।
तप्तं सीत सुभावं, कठिनं कोमल असुद्ध विरयंमि ॥ ५८६ ॥

अन्वयार्थ—(पुग्गल विषयं जानदि) यह मन पुद्गलके विषयोंको जानकर मनन करता रहता है व संकल्प विकल्प करता रहता है (हलुवं गरुवं च रुक्ख चिक्कनयं तप्तं सीत सुभावं कठिनं कोमल) स्पर्श इन्द्रियोंके द्वारा हलके, भारी, रुखे, चिकने, गर्म, ठण्डे, कठिन, कोमल पदार्थोंको जानकर (असुद्ध) अशुद्ध रागद्वेषमय भावोंमें मनन करता रहता है (विरयंमि) ऐसे मनसे विरक्त होजाना मनका संवर है।

भावार्थ—इन्द्रियोंके द्वारा जाने हुए विषयोंको याद न करके उनके सम्बन्धमें रागद्वेष वर्द्धक अनेक विचारोंको उत्पन्न करना मनका स्वभाव है। जैसे स्पर्श इन्द्रियके आठ विषयोंका विचार करता है वैसे अन्य चार इन्द्रियोंके विषयोंका भी विचार करता है। मैंने ऐसे रसीले पदार्थ खाए व ऐसे खाऊँगा व वे पदार्थ अच्छे नहीं बने थे। मैंने सुगन्ध बहुत अच्छी सूँघी व मैं सुगन्ध सूघूँगा, दुर्गंधसे बचूँगा। मैंने सुन्दर रूप देखे हैं व देखूँगा। असुन्दर रूप देखकर मनमें ग्लानि करना आज किसका रूप देख लिया। मैंने आज अच्छे २ गाने सुने हैं फिर भी मैं सुनूँगा इत्यादि। अशुद्ध विकल्पोंमें फँसकर अज्ञानी जीव कर्म बांध लेता है। ज्ञानी जीव इस मनकी चञ्चलताको संसार-वर्द्धक जानकर छोड देते हैं और अपने ज्ञानोपयोगको जो मनके द्वारा काम करता था, रोककर निज आत्मामें ही बिठा देते हैं। आत्मानन्दका स्वाद लेते हुए निज आत्मामें मगन रहना, मनके अविरत भावका त्याग है।

विज्ञानं जानंतो, हलुवं कम्मं विमुक्क संसारे ।
गरुवं च कम्म भारं, तं विरयं सुद्ध ज्ञान सहकारं ॥ ५८७ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं जानंतो) जो मन भेद विज्ञानको जानता है वह (संसारे हलुवं कम्मं विमुक्क) संसारमें हलके कर्मोंसे अर्थात् राग द्वेष वर्द्धक कर्मोंसे विरक्त होजाता है (गरुवं च कम्म भारं) जो आत्मापर भारी कर्मोंका भार है (सुद्ध ज्ञान सहकारं तं विरयं) शुद्ध ज्ञानकी सहायतासे उससे उदास होजाता है।

भावार्थ—भेद विज्ञानके द्वारा मन विचार करता है कि आत्माका यथार्थ स्वरूप परमात्माके समान शुद्ध निर्विकार है। राग द्वेषादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म सब इस आत्मासे भिन्न हैं। चार गतिरूप संसार आत्माको दुःखकारक है। मोक्ष ही हितकारक है। इस विचारसे यह मन सर्व सांसारिक कर्मोंसे व कर्मोंके बंधसे उदासीन होजाता है और यही दृढ निश्चय करता है कि निज शुद्ध आत्माके ज्ञानमें ही तल्लीन रहना योग्य है।

रूषन ज्ञान सहावं, चिक्कन घन कम्म सयल विरयंमि ।
ज्ञान सहावं जानदि, असरीरं ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ५८८ ॥

अन्वयार्थ—(रूषन ज्ञान सहावं) रूखा अर्थात् वीतरागमय ज्ञान स्वभावरूप आत्माको जानकर जो (चिक्कन घन कम्म सयल विरयंमि) सर्व साचिक्कन कर्मोंसे विरक्त होजाता है और (असरीरं ज्ञान निम्मलं सुद्धं ज्ञान सहावं जानदि) मनन करता है कि आत्मा शरीर रहित ज्ञानाकार कर्ममल शून्य रागादि रहित शुद्ध है।

भावार्थ—मनका काम मनन करनेका है। राग द्वेषकी चिकनइसे कर्मोंका बंध होता है तथा वह बंध भी ऐसा गाढ होता है कि कर्म आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह रूप दूध पानीकी तरह मिलकर ठहर जाते हैं। विवेकी मन आत्माके स्वभावको वीतरागमय ज्ञानाकार परम निर्मल जानकर सर्व कर्मबंधकी रचनासे विरक्त होजाता है और आत्माके ज्ञान स्वभावका ही मनन करता है।

उन्हं च कम्म डहनं, सीयं संसार सयल भान तिक्तं च ।
कठिनं परिनाम विलयं, कोमल परिनाम अप्प ससरूवं ॥ ५८९ ॥

अन्वयार्थ—मन विचारता है कि (उन्हं च कमम डहनं) ध्यान अग्निकी उष्णता ही सची उष्णता है जो कर्मोंको दग्ध कर देती है (सीयं संसार सयल तिक्तं च) शीतलता वही यथार्थ है जो सकल संसारके कारण भावोंको गला देवे (कठिनं परिनाम विलयं) कठिनपना वही ठीक है जो कठोर हिंसक भावोंको दूर कर दिया जावे (कोमल परिनाम अप्प ससरूवं) कोमलताका परिणाम वही है जो आत्माके स्वभावमें तन्मय हुआ जावे।

भावार्थ—मनमें जब सम्यग्ज्ञान पैदा होजाता है तब यह मन विचारता है कि कर्मोंके दग्ध करनेको ध्यानकी अग्निकी जरूरत है, सर्व संसारके कारण विकारी भावोंको शमन करनेके लिये परम शीतल भावोंकी जरूरत है, कठोर हिंसक भावोंको हठात् पास न आने देनेके लिये भावोंमें स्थिरतारूप कठिनताकी जरूरत है। तथा कोमलताका भाव या मार्दव गुण आत्माके स्वभावमें तन्मय होनेसे ही होता है।

गुनदोसं विज्ञानं, जानदि ज्ञानेन द्व्व पज्जायं।
विज्ञानं ज्ञान सहावं, असरीरं अमलअप्पनो सुद्धं ॥ ५९० ॥

अन्वयार्थ—मन (गुन दोसं विज्ञानं) पदार्थोंके गुण तथा दोषोंको जानता है (ज्ञानेन द्व्व पज्जायं जानदि) ज्ञानके बलसे द्रव्योंको व उनकी पर्यायोंको जानता है (विज्ञानं ज्ञान सहावं असरीरं अमल अप्पनो सुद्धं) भेद विज्ञानके द्वारा ज्ञान स्वभावी शरीर रहित निर्मल आत्माको शुद्ध रूप जानता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान द्वारा यह मन छःद्रव्योंको, उनके गुणोंको, उनकी स्वाभाविक व विभाविक पर्यायोंको जानता है। सर्व रागादि भावोंको व नर नारकादि पर्यायोंको जानता है। अशुद्ध सब पर्यायोंको त्यागने योग्य जानकर एक आत्माके शुद्ध वीतराग ज्ञानानन्दमय स्वभावको ही ग्रहण योग्य जानता है। यह सर्व भेद विज्ञानकी महिमा है।

पुग्गल सुभाव जाने, संवरनं सव्वममल ज्ञानस्य।
तम्हा मन संजमनं, अप्पा परमप्प सुद्ध मन धरनं ॥ ५९१ ॥

अन्वयार्थ—(पुग्गल सुभाव जाने) पुद्गलके स्वभावको पर जानके (संवरनं) जो उससे अपनेको रोके (सव्वं अमल ज्ञानस्य) सर्व प्रकारसे निर्मल ज्ञानमें अपनेको जोडे यही मनका सदुपयोग है (तम्हा)

इसीलिये (अप्पा परमप्प सुद्ध मन धरनं मन संजमनं) परमातम-स्वरूप आत्मामें शुद्धतापूर्वक मनको स्थिर करना ही मनका संयम है।

भावार्थ—मन मनन करते हुए भिन्न २ द्रव्योंके गुणोंको पहचानकर यह स्थिर करता है कि आत्माका स्वरूप परमात्मारूप निर्विकार है व रागादि सर्व कर्म पुद्गल कृत विकार है तब यह मन हेयसे हटकर उपादेयमें लग जाता है-ज्ञान स्वभावमें तन्मय होजाता है यही मनका संयम है।

मन संजमनं उत्तं, असुहं परिनाम सयल विरयंमि।
विरयं मिच्छ सुभावं, विरयं संसार सरनि दुक्खानं ॥ ५९२ ॥

अन्वयार्थ—(मन संजमनं उत्तं) मनका संयम उसे कहते हैं जो (असुहं परिनाम सयल विरयंमि) सर्व अशुभ भावोंसे विरक्त रहा जावे (मिच्छ सुभावं विरयं) मिथ्यात्वमय स्वभावसे दूर रहा जावे (संसार सरनि दुक्खानं विरयं) व संसारके भ्रमणके दुःखोंसे विरक्त रहा जावे।

भावार्थ—जहां मन सर्व मिथ्यात्वमय संसारासक्तिको छोड देता है-रागद्वेष मोहको संसारका कारण जानके उनसे विरक्त होजाता है-चारों गतिके भीतर जीवोंको अनेक शारीरिक तथा मानसिक दुःखोंकी प्राप्ति होती है ऐसा समझकर चारों गतिके वाससे उदासीन होता है। वहीं मनका संयम प्राप्त होजाता है।

रागादि दोस विरयं, विरयं ममत्त पुन्य पावं च।
परिनाम असुह विरयं, इंद्री विषयं च सव्व विरयं च ॥ ५९३ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि दोस विरयं) रागादि दोषोंसे विरक्त होजाना (पुन्य पावं च ममत्त विरयं) पुण्य पाप दोनोंकी ममतासे विरक्त होजाना (परिनाम असुह विरयं) सर्व अशुभ भावोंसे विरक्त होजाना (सव्व इंद्री विषयं च विरयं च) तथा सर्व ही इंद्रियोंकी इच्छाओंसे विरक्त होजाना मनका संयम है।

भावार्थ—जहां यह पक्का निश्चय कर लिया जावे कि रागादि भाव कर्मबंधकारक हैं व कर्मबंध संसारमें रुलानेवाला है। तथा पुण्य पाप दोनों ही प्रकारके बंध जीवकी स्वाधीनताके बाधक हैं, आत्मीक शुद्ध भावके सिवाय सर्व ही परिणाम जीवके अहितकारी अशुभ हैं। पांचों इंद्रियोंके

भोगोंकी अभिलाषा आत्मधर्मसे छुडाकर पर पदार्थोंमें भटकानेवाली और घोर आकुलताको उत्पन्न करनेवाली है वहां मन इन सबसे हटकर संयमरूप होजाता है।

रहयं सुद्ध सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ।
रहयं दंसन ज्ञानं, चरित्तं चरन रहय विविहं च ॥ ५९४ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्मा परमात्माके समान निर्मल और वीतराग है ऐसा जानकर (सुद्ध सहावं रहयं) शुद्ध स्वभावमें रंजायमान होना (दंसन ज्ञानं रहयं) आत्माके दर्शन ज्ञान स्वभावमें मगन होना (विविहं च चरित्तं चरन रहयं) तथा नानाप्रकार चारित्रके आचरणमें रुचिवान होजाना मनका संयम है।

भावार्थ—जहां मन परभावोंको पर जानकर आत्माको शुद्ध निर्विकार ज्ञानानन्दमय परमात्माके समान जानकर उस आत्मासे व उसके दर्शन ज्ञान स्वभावसे प्रेमी होकर उस आत्म-स्वरूपमें रमण करनेके लिये जो २ मुनि श्रावकके योग्य नानाप्रकार आचरण हैं उनके पालनमें रुचिवान होता है वहीं मनका संयम है।

सम्मत्त सुद्ध भावं, ज्ञान सहावेन विमल भावं च ।
मलमुक दंसन धरनं, ज्ञानं वर्तेय मनं व संवरनं ॥ ५९५ ।

अन्वयार्थ—(सम्मत्त सुद्ध भावं) आत्माके शुद्ध स्वभावकी रुचि करना (ज्ञान सहावेन विमल भावं च) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर निर्मल भावोंका प्रेमी होजाना (मलमुक दंसन धरनं) पचीस मल रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन पालना (ज्ञानं वर्तेय) तथा ज्ञानमें ही लीन होजाना (मनं च संवरनं) यही मनका संवर है।

भावार्थ—जिसका मन संयमित होगा, जो मनके संकल्प विकल्पोंका विजयी होगा वह आत्माके शुद्ध ज्ञानानन्दमय स्वभावका रुचिवान होकर आत्मामें ही ठहरेगा और आत्म-रसका पान करेगा। वह सर्व दोष रहित आत्म प्रतीतिमय सम्यक्तको व आत्मानुभूतिरूप ज्ञानको ग्रहण योग्य मानके उसीमें वर्तेगा। वास्तवमें आत्मतल्लीनता प्राप्त करना ही मनका संवर है या मनका संयम है।

प्राण अविरत त्याग।

थावर रष्या सहियं, असुहं भावं च सयल तिक्तं च।
मैत्री कृपा स उत्तं, षट्काय रष्यना सुद्धं ॥ ५९६ ॥

अन्वयार्थ—(असुहं भावं च सयल तिक्तं च) सर्व ही हिंसाकारी अशुभ भावोंको त्यागकर (थावर रष्या सहियं) स्थावर प्राणियोंकी भी जहां रक्षा है (स मैत्री कृपा उत्तं) उसीको सर्व प्राणियोंपर मैत्री-भाव व दयाका भाव कहते हैं (षट्काय रष्यना सुद्धं) छहों कायोंकी रक्षा करना ही शुद्ध प्राण संयम है।

भावार्थ—सर्व प्राणीमात्र पर मैत्रीभाव व दयाका भाव रखकर उनकी हिंसा करनेके पापमय भावोंको दूर कर देना तथा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक व त्रसकायिक इन छः प्रकारके प्राणियोंकी रक्षा करते हुए परम अहिंसामय शुद्ध भाव रखना प्राण अविरत त्याग है।

गुनवंतोय प्रमोदं, अवरे सव्वस्समित्ती कृपानं।
सुद्ध सहावं पिच्छदि, षटकाई रष्यना हुंती ॥ ५९७ ॥

अन्वयार्थ—(गुनवंतोय प्रमोदं) गुणवानोंपर प्रमोद भाव रखना (अवरे सव्वस्स मित्ती कृपानं) तथा और सर्वके ऊपर मैत्री भाव या दयाका भाव रखना (सुद्ध सहावं पिच्छदि) तथा शुद्ध आत्मीक स्वभावका अनुभव करना (षट् काई रष्यना हुंती) छःकायके जीवोंकी रक्षा है।

भावार्थ—जो धर्मात्मा हैं, शुद्ध स्वभावके रमण करनेवाले हैं, उनके ऊपर प्रसन्नभाव रखकर उनके गुणोंका अनुराग करना अपनेको शुभ भावोंमें रमण करानेका साधन है। उनके सिवाय सर्व ही त्रस व स्थावर प्राणियोंका सदा हित विचारना-उनपर करुणा भाव रखकर उनके प्राणोंको अपने प्राणोंके समान समझकर उनकी रक्षाका भाव रखना अथवा अपने ही शुद्ध आत्माके स्वभावमें रम जाना जिसमें स्वतः ही सर्व षट्कायके प्राणियोंकी रक्षा है, प्राण रक्षा संयम है।

बारह अव्रत कहियं, सुद्धं भावं च अमल ज्ञान संवरनं।
सुद्ध सरूवं पिच्छदि, ज्ञान सहावेन सयल संवरनं ॥ ५९८ ॥

अन्वयार्थ—(बारह अव्रत कहियं) इस तरह बारह प्रकार अविरत भाव कहा गया है (सुद्धं भावं च अमल ज्ञान संवरनं) उनको शुद्ध निर्मल ज्ञानमई भावमें तिष्ठकर रोकना चाहिये (सुद्ध सरूवं पिच्छदिं) जो कोई शुद्ध आत्मीक स्वभावका अनुभव करता है वह (ज्ञानसहावेन सयल संवानं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर सर्व अविरत भावोंका निरोध कर देता है।

भावार्थ—पांच इंद्रिय व मनके संचारका निरोध इंद्रिय संयम है। षट्कायके प्राणियोंकी रक्षा प्राण संयम है। जहां शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण होता है वहां ही उभय प्रकारका संयम है वहीं बारह अविरत भावोंका त्याग है। निश्चयनयसे आत्मानुभव ही संयम है या बारह अव्रतोंका त्याग है।

तेरा प्रकार चारित्र।

तेरह विहस्य चरनं, महावय गुत्ति पंच तेनोया।
समिदी पंच विहूवं, चारित्तं उवएसनं तंपो ॥ ५९९ ॥

अन्वयार्थ—(तेरह विहस्य चरनं) तेरह प्रकारका साधुका चारित्र है (महावय गुत्ति पंच तेनोया) पांच प्रकारका महाव्रत, तीन प्रकारकी गुप्ति (पंच विहूवं समिदी , पांच प्रकारकी समिति (चारित्तं उवएसनं तंपी) इस चारित्रका भी उपदेश किया जाता है।

भावार्थ—अब यहां साधुके तेरह प्रकारके चारित्रका उपदेश किया जाता है जो पांच समिति रूप है।



पंच महाव्रत।

हिंसा नृत अस्तेयं, वंभं परिग्रहं पंच वय सुद्धं।
जे पालंति ति सुद्धं, चारित्तं चरन सुद्ध संजुत्तं ॥ ६०० ॥

अन्वयार्थ—(हिंसा नृत अस्तेयं) अहिंसा, सत्य, अस्तेय (बंभ परिग्रहं न पंच वय सुद्धं) ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पांच शुद्ध व्रतोंको (जे ति सुद्धं पालंति) जो मन वचन काय तीनोंको शुद्ध कर पालते हैं (चारित्त चरन सुद्ध संजुत्तं) वेही शुद्ध चारित्रके आचरण करनेवाले हैं ।

भावार्थ—ऊपर कहे प्रमाण जिनके बारह प्रकार अविरत भावोंका त्याग है वेही साधुके तेरा प्रकार चारित्रको शुद्धतासे पालते हैं । व्यवहार नयसे सर्व हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म व परिग्रहके ममत्वको त्याग देते हैं, निश्चय नयसे अपने शुद्ध आत्मस्वरूपमें लीन होजाते हैं। शुद्ध स्वरूपमें तन्मयता करना वास्तवमें पांच महाव्रतोंको यथार्थ पालना है ।

हिंसा असत्य सहियं, अनृत ऋतं न जानदि सुद्धं ।
स्तेयं पद लोयं, बंभं च अबंभ तिक्तं च ॥ ६०१ ॥
पर पुग्गल परमानं, पुग्गल ग्रहनं असेष संवरनं ।
भाव दुतिय संजोय न, पिच्छंतो लहई निव्वानं ॥ ६०२ ॥

अन्वयार्थ—(हिंसा असत्य सहियं) हिंसा मिथ्यात्व सहित (अनृत ऋतं सुद्धं न जानदि) तथा असत्य सत्य शुद्ध आत्माको नहीं पहचानता है (स्तेयं पद लोयं) अपने आत्मीक पदको लोपकर पर पदमें (बंभं च तिक्तं च अबंभ) ब्रह्मचर्यको त्यागकर अब्रह्म भावको रखना कुशील है (पर पुग्गल परमानं) आत्मासे भिन्न शरीरादि पुद्गलोंको अपना मानना परिग्रह है । हिंसादिको त्यागकर पर पुद्गलको पर मानकर (असेष पुग्गल ग्रहनं संवरनं) सर्व पुद्गलके ग्रहणका निरोध करके (भाव दुतिय संजोय न पिच्छन्तो) जो अपने आत्मामें आत्माके सिवाय दूसरे भावका संयोग नहीं देखता है वही महाव्रती साधु (लहइ निव्वानं) निर्वाणको प्राप्त करता है ।

भावार्थ—रागादि भाव हिंसा, द्रव्य प्राण पीडन द्रव्य हिंसा दोनों हिंसाओंका त्याग अहिंसा महाव्रत है । शास्त्र विरुद्ध भावोंका व वचनोंका त्याग करके सत्य शास्त्रोक्त विचारना व कहना सत्य महाव्रत है । पर वस्तुका ग्रहण त्याग करना । तथा निज आत्माके पदमें सन्तुष्ट रहना, पर पदमें न रमना अचौर्य महाव्रत है । मन, वचन, कायसे कुशील सेवनका त्याग तथा निज स्वरूपमय

आत्माको त्यागकर पर पदार्थमें रमणरूप अब्रह्मको त्यागकर निज ब्रह्म स्वभावमें रमना ब्रह्मचर्य है । सर्व वस्त्रादि परिग्रहका त्याग करके व शरीरादि सर्व पदार्थोंसे ममता त्याग करके परके संयोगसे रहित निज आत्माको ही अपना मानना, परसे मूर्छा त्यागना परिग्रह त्याग है । जो इस तरह पांच महाव्रतोंको पालता है वह आत्मध्यानमें लीन होकर शीघ्र ही मोक्षको पाता है। मिथ्यादर्शन सहित प्राणी पर पीडा देनेसे व असत्य भाषणसे ग्लानि रहित होजाता है, उसके कठोर भावमें शुद्ध आत्माका श्रद्धान नहीं जमता है। इसलिये मिथ्यात्वको त्याग सम्यक्ती होकर पांच व्रतोंको पालना चाहिये। साधु पुर्ण पालते हैं, गृहस्थी एक देश पालता है ।

जं च महावय धरनं, तद्भव संसार कम्म विमुक्कं ।
पुग्गल प्रमाण सुद्धं, अप्पा परमप्प लहइ निव्वानं ॥ ६०३ ॥

अन्वयार्थ—(जं च महावय धरनं) जो कोई इन पांच महाव्रतोंको व्यवहारके द्वारा निश्चय रूपसे पालन करता है; वह (तद् भव संसार कम्म विमुक्कं) उसी भवसे संसार वर्द्धक कर्मोंसे मुक्त हो जाता है । वह (अप्पा) आत्मा (पुग्गलप्रमाण सुद्धं परमप्प) अपने शरीर प्रमाण आकार धारी शुद्ध सिद्ध परमात्मा होकर (निव्वानं लहइ) निर्वाणको प्राप्त कर लेता है ।

भावार्थ—इन पांच महाव्रतोंकी पूर्ति सामायिक चारित्र द्वारा होती है । सामायिक स्वरूप निर्विकल्प समाधिमें लीन साधु पांचों हिंसादि पापोंसे बिलकुल छुटा हुआ धर्मध्यानकी उत्कृष्टताको जब पाता है, तब क्षपकश्रेणी चढकर शुक्लध्यानको ध्याता है । शुक्लध्यानसे शीघ्र ही चार घातीय कर्मोंका नाश कर केवलज्ञानी अरहंत परमात्मा हो जाता है। फिर शेष चार अघातीय कर्मोंका भी नाश कर सिद्ध परमात्मा होजाता है। और तब अंतिम शरीर प्रमाण आत्मा सिद्धावस्थामें अनंत कालके लिये लोकाग्र विराजमान रहता है। महाव्रतोंके पालनका फल निर्वाण है।

मनोगुप्ति ।

मनगुत्ती उवएसं, मन असुहं च असुद्ध परसेसं ।
मन परिनै तिक्तं च, मन सुद्धप्पा प्रवेस मिलियं च ॥ ६०४ ॥

अन्वयार्थ—(मन गुत्ती उवएसं) अब मन गुप्तिका उपदेश करते हैं (असुद्धं मन च असुद्ध परवेसं) अशुद्धोपयोग धारी मन आत्माको छोडकर अशुद्ध पुद्गलमें व पुद्गल जनित रागादि भावोंमें प्रवेश करता है (मन परिनै तिक्तं च) इस मनकी अशुद्ध परिणतिको त्यागकर (मन सुद्धप्पा प्रवेस मिलियं च) मनका शुद्धात्मामें प्रवेश कर जाना और मनका आत्मामें ही मिल जाना मनोगुप्ति है।

भावार्थ—यह मन आत्मासे बाहर बाहर शरीर व इन्द्रियोंके सुखोंमें व सुखके कारणीभूत पदार्थोंमें व सुखके कारणोंके घातक पदार्थोंके भीतर द्वेष करनेमें तथा स्वर्गादिके हेतु व्यवहार धर्ममें लगा रहता है। अथवा तत्वज्ञानी होकर भी अपना उपयोग सांसारिक कार्योंमें व व्यवहार धर्मके पालनमें लगाए रखता है।

यह मन जब इस अशुद्ध परिणतिको रोककर एक अपने ही शुद्ध आत्माके स्वाद लेनेमें प्रवेशकर जाता है तब यह मन ऐसा आत्मासे मिल जाता है कि मिलकर एकमेक होजाता है। वास्तवमें ज्ञानोपयोग आत्माकी परिणति है। वह उपयोग जब मनके द्वारा काम करता है तब संकल्प विकल्पके कारण कार्यके विचार उठते हैं व पदार्थोंका मनन होता है, आत्मा व अनात्माका भेद विचारमें आता है। वही ज्ञानोपयोग जब मनकी सम्मुखताको छोडकर अपने स्वामी आत्मामें लय होजाता है तब परिणति परिणामधारी आत्मासे एकमेक होजाता है। इसीको आत्मानुभव कहते हैं व यही यथार्थ मनोगुप्ति है। जहां मनको निज आत्माके स्वरूपमें गुप्त कर दिया जावे, लोप कर दिया जावे वहां ही मनोगुप्ति है।

जहं जहं मन परवेसं, तहं तहं ज्ञान किरन संचरियं।
गुपितस्य चरन सुद्धं, अप्पा परमप्प विमल एकत्वं ॥ ६०५ ॥

अन्वयार्थ—(जहं जहं मन परवेसं) तत्वज्ञानीका मन जहां जहां जिस जिस पदार्थमें जाता है (तहं तहं ज्ञान किरन संचरियं) वहां वहां ज्ञानरूपी किरणका संचार होजाता है जिससे ज्ञानी आत्माके सिवाय किसी द्रव्य, गुण पर्यायको अपना नहीं देखता है (गुपितस्य सुद्धं चरन) मनोगुप्ति धारक महात्माके ही शुद्ध आचरण होता है (अप्पा परमप्प विमल एकत्वं) उसीका ही आत्मा परमात्माके निर्मल स्वभावके साथ एकताको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—भेदविज्ञानी महात्मा निश्चयनयसे या द्रव्यार्थिक नयसे जगतको देखता है तब उसे छः द्रव्य भिन्न २ दिखलाई पडते हैं। ऐसे ज्ञानीका मन जब जगतकी पर्यायोंमें जाता है, शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, मकान, राज्यादिमें जाता है तब यह ज्ञानी उनको भेद विज्ञानसे विचारता है तब इसे पुद्गल पुद्गल रूप तथा आत्मा आत्मा रूप दीखता है। द्रव्य दृष्टिसे देखते हुए राग द्वेष नहीं उपजता है, बीतरागता जमी रहती है। इसतरह मनको शुद्ध कर ज्ञानी उसे शुद्ध आत्माके चारित्रमें लीन कर देता है। तब उसका आत्मा परमात्माके साथ एकमेक होकर स्वानुभव रूप होजाता है। यही यथार्थ मनोगुप्ति है।

तम्हा मन गुत्तीए, जम्हा सुद्ध ज्ञान स सरूवं।
कम्मंधनानि डहनं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं॥ ६०६॥

अन्वयार्थ—(तम्हा मन गुत्तीए) इसीलिये मन गुप्ति रखना चाहिये (जम्हा) कि जिससे (सुध ज्ञान स सरूवं) शुद्ध ज्ञान अपने आत्म-स्वरूपका होजावे (कम्मंधनानि डहनं) कर्मरूपी ईंधनका जलना होजावे (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) तथा आत्मा परमात्माके समान निर्मल व शुद्ध होजावे।

भावार्थ—मनको सर्व संकल्प विकल्पोंसे हटाकर आत्माके शुद्ध स्वरूपमें जोडनेका अर्थात् आत्मध्यान करनेका यही प्रयोजन है कि कर्मोंके काष्ठको जला दिया जावे और आत्माको निर्मल करके परमात्मारूप कर दिया जावे। मनोगुप्ति ही आत्मानुभवकी सहायक है। आत्मानुभव ही मोक्षका मार्ग है।

वचन गुप्ति।

वयनं गुत्ति समासं, जं वयनं कहंपि नहु दिट्ठं।
तं वयन भावलद्धी, जिन उवएसं समायरहिं॥ ६०७॥

अन्वयार्थ—(वयनं गुत्ति समासं) वचन गुप्तिका यह संक्षेप स्वरूप है कि (जं वयनं कहंपि नहु दिट्ठं) जो वचनका प्रयोग कहीं भी न देखा जावे–मौन रहा जावे (तं वयन भावलद्धी) मात्र भाव वचनको प्राप्त किया जावे (जिन उवएसं समायरहिं) और जिनेन्द्रके उपदेशके अनुसार आचरण किया जावे।

भावार्थ—मौन रहकर कुछ भी प्रगट वचनोंका प्रयोग नहीं करना वचनगुप्ति है। केवल श्री जिनेन्द्रके अनुसार तत्वका विवेचन अंतरंगमें किया जासक्ता है। भावमें जिन वचनोंका मनन किया जासक्ता है। अथवा भाव वचनको भी रोककर आत्मानुभव करना वचनगुप्ति है, ये ही श्री जिनेन्द्रके अनुसार निश्चय चारित्रका पालन है।

वयनं सुद्ध सहावं, वयनं जं केवलज्ञान स सरूवं।
तं वयन गुत्ति जानदि, वयनं परवेस सुद्ध सम्मत्तं ॥ ६०८ ॥

अन्वयार्थ—(वयनं सुद्ध सहावं) जिन वचनके अनुसार जैसा कुछ शुद्ध स्वभाव आत्माका है (वयनं जं केवलज्ञान स सरूवं) जिन वचनके अनुसार जो कुछ केवलज्ञान मई निज स्वरूप है (तं वयन गुत्ति जानदि) उसको वचनगुप्ति धारके यह आत्मा अनुभव करता है (वयनं परवेस सुद्ध सम्मत्तं) वचन रुक करके उपयोग शुद्ध सम्यग्दर्शनमें प्रवेश कर जावे सोही वचनगुप्ति है।

भावार्थ—वचनोंको रोककर श्री जिनेन्द्रके वचनोंके अनुसार शुद्ध आत्माके स्वरूपको केवलज्ञान मय जानना तथा अनुभव करना। अर्थात् शुद्ध आत्मा मैं हूं इस प्रतीतिके अनुसार स्वरूपका ही आचरण करना। भाव निक्षेप रूप सम्यग्दर्शनका होजाना वचन गुप्ति है।

वयनं च अचल सुद्धं, वयनं भासेइ सुद्ध सम्मतं।
अवयनं च सहावं, अह वयनं च केवलं सुद्ध ॥ ६०९ ॥

अन्वयार्थ—(वयनं च अचल सुद्धं) भगवानका वचन यह है कि यह आत्मा निश्चल शुद्ध है (वयनं भासेइ सुद्ध सम्मत्तं) जिन वचन शुद्ध सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताता है (अवयनं च सहावं) आत्माका स्वभाव वचनोंसे रहित है (अह वयनं च केवलं सुद्धं) अथवा जिन वचन यह है कि यह आत्मा केवल शुद्ध स्वरूप है।

भावार्थ—भगवानकी दिव्यध्वनिसे यही प्रकाश हुआ है कि यह आत्मा हलन-चलन रहित निश्चल कर्मकलङ्क रहित व रागादि दोषोंसे शून्य परमात्मास्वरूप है। तथा यही प्रतीति स्वानुभवरूप होजाना निश्चल सम्यग्दर्शन है। यद्यपि जिन वचनोंसे यह प्रगट होता है कि यह आत्मा सर्व पर-

द्रव्योंके सम्बन्धसे रहित व सर्व गुण गुणीके भेदोंसे रहित अभेद एक रूप शुद्ध है तथापि उसका स्वरूप वचन अगोचर है। केवल वाणीके सुनने मात्रसे जाना नहीं जासक्ता है। जब उपयोगको वचनोंसे हटाकर व मनके विचारोंको रोककर भीतर निज आत्म-श्रद्धामें प्रवेश किया जायगा, तब ही निज आत्माका यथार्थ अनुभव होगा। यही वचन गुप्तिका फल है।

वय गुत्ती जं पिच्छदि, जानदि पिच्छेइ दंसनं सुद्धं।
वयनं पि सुद्ध ज्ञानं, वय गुत्ती चरन सुद्ध संजुत्तं ॥ ६१० ॥

अन्वयार्थ—(वय गुत्ती जं पिच्छदि) वचन गुप्ति जो कुछ देखती है वह (सुद्धं दंसनं जानदि पिच्छदे) शुद्ध सम्यग्दर्शनको देखती है व जानती है (वयनं पि सुद्ध ज्ञानं) अथवा वचन भी शुद्ध आत्माके ध्यानमें लवलीन होजाता है (सुद्ध चरन संजुत्तं वय गुत्ती) शुद्धात्मामें आचरण करना वचन गुप्ति है।

भावार्थ—वचनगुप्ति रखनेसे, उपयोग इधर उधर भ्रमण नहीं करता है। किन्तु वह मात्र शुद्ध सम्यग्दर्शन स्वरूप आत्माको ही देखता जानता है। वचनोंका प्रयोग बन्द होकर शुद्ध आत्माका ध्यान प्रगट होजाता है। वास्तवमें शुद्ध स्वरूपमें रमण करना ही वचनगुप्ति है। यदि कोई मौन है परंतु मनमें संसार सम्बन्धी विचार किया करें व पाप भाव घूमा करें तो वह सच्ची वचनगुप्ति नहीं है। स्वरूपमें आचरण करना ही यथार्थ वचनगुप्ति है।

कायगुप्ति।

काईगुत्ति विसुद्धं, कृत कारित विसुद्ध परिनामं।
कृतं च कम्म डहनं, कारित तं तिविह कम्म वित्तरीदं ॥ ६११ ॥

अन्वयार्थ—(काईगुत्ति विसुद्धं) निर्मल कायगुप्तिका स्वरूप यह है कि (कृत कारित विसुद्ध परिनामं) विशुद्ध परिणामको किया भी जावे व कराया भी जावे अथवा कृत कारित भावोंसे रहित, क्रिया रहित शुद्ध परिणाम रक्खा जावे (कृतं च कम्म डहनं) तथा किये हुए या बांधे हुए कर्मोंका क्षय किया जावे (कारित तं तिविह कम्म वित्तरीदं) अथवा कारित या कराए हुए कर्मोंसे वैराग्य रक्खा जावे तथा तीन प्रकार कर्मोंसे भिन्न शुद्ध आत्माका अनुभव किया जावे।

भावार्थ—शरीरको निश्चल एक आसनसे रखना व्यवहारमें कायगुप्ति है। यहां निश्चय नयकी प्रधानतासे कायगुप्तिका कथन है कि कायको रोककर ऐसा निश्चल आत्मध्यान किया जावे व उस ध्यानके द्वारा ऐसे निर्मल भाव किये जावें कि दूसरे प्राणी भी उस ध्यानकी मुद्राको देखकर वैसा ही ध्यान करने लग जावे अथवा जो कुछ कर्म स्वयं किये हुए हों व कराए हों उन सर्वसे रहित अपने भाव निर्मल किये जावे। भावोंमें कृत कारित कार्योंका विकल्प न किया जावे। तथा आत्म-ध्यानसे बांधे हुए कर्मोंका नाश किया जावे अन्यथा कार्य कराते हुए जो कर्मोंका बंध हुआ था उसका नाश किया जावे तथा भावकर्म रागादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि इनसे भिन्न शुद्ध आत्माके ध्यानमें कायको निश्चल रक्खा जावे सो कायगुप्ति है।

कृतं च सुद्ध ज्ञानं, ज्ञानं वचं कृतं मनः सुद्धं।
व्रत संजम तव यरनं, काया कृतं च सुद्ध सद्भावं ॥ ६१२ ॥

अन्वयार्थ—(कृतं च सुद्ध ज्ञानं) जहां शुद्ध आत्म-ध्यान किया जावे (मनः सुद्धं ज्ञानं वचं कृतं) मनको शुद्ध करके मतिश्रुत आदि पांचों ज्ञानोंको प्राप्त किया जावे (व्रत संजम तव यरनं) कायके द्वारा व्रत, संयम, तपका आचरण किया जावे (काया च सुद्ध सद्भावं कृतं) तथा कायको निश्चल रखकर शुद्ध आत्मिक भाव किया जावे सो काय गुप्ति है।

भावार्थ—कायको थिर रखके केवल श्वासको चढा लेनेको या प्राणायाम करनेको काय गुप्ति नहीं कहते हैं। किन्तु कायको निश्चल रखकर शुद्ध आत्माके ध्यानको कायगुप्ति कहते हैं। परिणामोंमें शुद्ध भाव रखकर यह भावना की जावे कि ज्ञान शुद्ध स्वरूपमें रहे, यही शुद्ध भावकी रमणता मतिश्रुत ज्ञानको बढाती है, अवधि व मनःपर्यय ज्ञान पैदा करती है। तथा केवलज्ञानके निकट तक ले जाती है। शरीरको निश्चल रखके हिंसादि पापोंसे विरक्त रहकर महाव्रत पालना व पांच इन्द्रिय व मनका व मनरूप इन्द्री संयम, षट्कायके प्राणियोंकी रक्षारूप प्राण संयम पालना व बारह तप साधना तथा शुद्ध आत्मामें निश्चल रहना काय गुप्ति है।

कारित सुद्ध उवएसं, जं कृत कारित जिनवरिं देहिं।
तं भाव सुद्ध करनं, कायगुत्ती च मुक्तिगमनं च ॥ ६१३ ॥

अन्वयार्थ—(कारित सुध उवएसं) स्वयं आत्मध्यान करते हुए दूसरोंसे आत्मध्यान करनेके लिये शुद्ध उपदेश देना (जं कृत कारित जिनवरिं देहिं) जैसा श्री जिनेन्द्रोंने या तीर्थंकरोंने स्वयं आत्मध्यान किया था और अपने उपदेशसे दूसरोंसे भी कराया था (तं भाव सुद्ध करनं) तथा अपने भावोंको शुद्धोपयोगमें लीन रखना (कायगुत्ती च मुक्तिगमनं च) कायगुप्ति है, यही मोक्षमें जानेका उपाय है।

भावार्थ—शरीरको निश्चल रखकर आत्मामें लीन होना काय गुप्ति है। इसको स्वयं पालना चाहिये व अवसर पाकर दूसरोंको भी इसका उपदेश करना चाहिये। तीर्थंकर भगवान स्वयं आत्मध्यान करके अरहंत होजाते हैं फिर जीवन पर्यन्त धर्मोपदेश देते हुए विहार करते हैं। इसी-तरह तत्वज्ञानी साधुओंका व श्रावकोंका भी कर्तव्य है। तथा शुभोपयोग और अशुभोपयोगको छोडकर शुभोपयोगमें तन्मय होना ही वास्तवमें काय गुप्ति है। यही मोक्षका साक्षात् उपाय है। यही कर्मोंको क्षय करनेवाला है। यही धर्मध्यान व यही शुक्लध्यान है। तत्वार्थसारमें कहा है—

योगानां निग्रहः सम्यग्गुप्तिरित्यभिधीयते। मनोगुप्तिर्वचोगुप्तिः कायगुप्तिश्च सा त्रिधा ॥ ४ ॥

तत्र प्रवर्तमानस्य योगानां निग्रहे सति। तन्निमित्तास्रवाभावात्सद्यो भवति संवरः ॥ ५-६ ॥

भावार्थ—मन, वचन, काय योगोंका भलेप्रकार रोकना गुप्ति कहलाती है। वह तीन प्रकार है—मनको वश करना मन गुप्ति है, वचनको वश करना वचन गुप्ति है, कायको वश करना काय गुप्ति है। योगोंके रोक लेनेपर आत्मामें प्रवर्तमान होते हुए, योगोंके निमित्तसे जो कर्मोंका आस्रव होता था वह बंद हो जाता है, उनका संवर होजाता है। वास्तवमें आत्मध्यानमय शुद्धोपयोग ही गुप्ति है, इससे संवर व निर्जरा दोनों होती है।

पंच समिति।

समिदी समदर्सीए, सम दंसन ज्ञान चरन समभावं।
सम अप्पा परमप्पा, सम्मत्तं सुद्ध समय दर्सीए ॥ ६१४ ॥

अन्वयार्थ—(समिदी समदर्सीए) समदर्शी होना समिति है (सम दंसन ज्ञान चरन समभावं) निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप होकर समता भावको पाना समिति है (सम अप्पा परमप्पा) आत्माको

परमात्माके समान अनुभव करना समिति है (समनं सुद्ध स्वदं दर्शिए) शुद्ध सम्यग्दर्शनके द्वारा आत्माका अनुभव करना समिति है।

भावार्थ—भलेप्रकार वर्तन करनेको समिति कहते हैं। इसी भावको लेकर यहां निश्चयनयसे कथन है कि रागद्वेष छोडकर समताभावमें रहना, जहां निश्चय रत्नत्रयकी एकता होकर सामायिक चारित्र प्राप्त होजावे। आत्मा व परमात्माका समान स्वभाव जाना जावे। आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय रहा जावे, सो समिति है।

ईर्यासमिति।

ईर्जासमिदि स उत्तं, ईर्ज भावेन दंसनं ज्ञानं।
चरनं पि थान सुद्धं, ति अर्थ ईर्ज पंच निव्वेदं ॥ ६१५ ॥

अन्वयार्थ—(ईर्जासमिदि स उत्तं) ईर्यासमिति उसे कहा गया है जो (ईर्जभावेन दंसनं ज्ञानं चरनं पि थान सुद्धं) समता या सरलभावसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमें चला जावे-शुद्ध स्थान जो आत्मा है उसमें रमण किया जावे (ति अर्थ ईर्ज पंच निव्वेदं) तीन पदार्थ रत्नत्रयको साम्यमार्ग द्वारा अनुभव करना ईर्यासमिति है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे चार हाथ भुमि आगे देखते हुए दिनमें रौंदी हुई प्राशुक भूमिपर चलना ईर्यासमिति है। यहां निश्चयसे कथन है कि रत्नत्रय स्वरूप निज आत्मामें सरल भावसे चलना, जिससे आत्मामें कर्मास्रवके कारण राग द्वेष न होने पावें ऐसी सम्हाल रखनी। अपने आत्माको हिंसासे बचाना। शुद्ध आत्माका अनुभव करना ही ईर्यासमिति है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

मार्गोद्योतोपयोगानामालम्बनस्य च शुद्धिभिः। गच्छतः सूत्रमार्गेण स्मृतेर्या समितिर्यतेः॥ ७–६ ॥

भावार्थ—जिनधर्मको प्रकाश करनेके उपयोगको धारनेवाले साधुका मन वचन काय तीनोंकी शुद्धता पूर्वक सूत्रके अनुसार गमन करना ईर्यासमिति है।

ॐ वंकारं ह्रियंकारं, श्रियं कारं ति अर्थ संजुत्तं ।
पदार्थं पदविंदं, ईर्जभावेन दर्सए मग्गं ॥ ६१६ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वंकारं ह्रियंकारं श्रियं कारं) ॐ ह्रीं श्रीं इन तीन मंत्र पदोंमें (ति अर्थ संजुत्तं) तीनों रत्नत्रय पदार्थ गर्भित हैं (पदविंदं पदार्थं) ॐ पदमें जो बिंदु है उससे शुद्ध पदार्थ या सिद्ध परमात्माका बोध होता है (ईर्जभावेन मग्गं दर्सए) सरलभावसे ऐसे आत्माके आराधनरूपी मार्गको देखना या अनुभव करना ईर्यासमिति है ।

भावार्थ—ईर्या समितिपर निश्चयनयसे चलनेवाले साधुका कर्तव्य है कि वह ॐ ह्रीं श्रीं मंत्रोंके द्वारा निश्चय रत्नत्रय स्वरूप सिद्ध परमात्माके समान अपने ही आत्माका ध्यानमग्न हो आराधन करे, यही मोक्षमार्गपर चलना है व यही ईर्या समिति है।

सम्यक्दर्सन सुद्धं, ॐ वंकारं विंद स्थान संदिट्ठं ।
ह्रियंकारं अरहंतं, ज्ञान मयो ज्ञान सुद्ध संमत्तं ॥ ६१७ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सम्यग्दर्सन) शुद्ध सम्यग्दर्शन (ॐ वंकारं विन्दस्थान संदिट्ठं) ॐ शब्दके बिंदु स्थानमें बिराजित सिद्ध स्वरूप आत्माको भलेप्रकार देखनेवाला है (ह्रियंकारं अरहंतं) ह्रीं मंत्र अर्हंतको बतानेवाला है (ज्ञान मयो ज्ञान सुद्ध संमत्तं) ज्ञान स्वरूपी अपने आत्माका ज्ञान शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—ॐ शब्दमें यद्यपि पांच परमेष्ठी गर्भित है, परन्तु मुख्यतासे उसके ऊपर चन्द्र बिंदुसे सिद्ध शिलामें बिराजित श्री सिद्ध भगवानका ज्ञान होता है। इसलिये मोक्षमार्गीको ॐके आलम्बनसे सिद्धात्माका ध्यान करना चाहिये। ह्रीं मंत्रमें ह से ४, व १ से २ इस तरह २४ तीर्थंकर अर्हंत भगवान गर्भित हैं। इस मंत्रके द्वारा अर्हंत भगवानका स्वरूप विचारना चाहिये। अर्हंत व सिद्ध परमात्माका आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है वैसा ही मेरा आत्मा है। ऐसा श्रद्धान करके अपने शुद्ध आत्माका अनुभव करना शुद्ध सम्यग्दर्शन है। व इसीका आराधन ईर्या समिति है।

श्रींकारं सुद्ध सुभावं, अवधि संजुत्त ज्ञान स सरूवं ।
मन पर्जय जानंतं, पद विंदं सुद्ध केवलं ईर्जं ॥ ६१८ ॥

अन्वयार्थ—(श्रींकारं सुद्ध सुभावं) परम ऐश्वर्यमय लक्ष्मीको प्रगट करनेवाला श्रीं पद है-वह आत्माका एक शुद्ध स्वभाव ही है (अवधि संजुत्त ज्ञान स सरूवं) अवधिज्ञान सहित आत्माका स्वाभाविक ज्ञान एक ऐश्वर्य है (मन पर्यय जानंतं) मनःपर्यय ज्ञानको जानना भी एक ऐश्वर्य है (पद विंदं सुद्ध केवलं) इस पदके बिंदुसे द्योतित शुद्ध केवलज्ञान भी एक महान ऐश्वर्य है (ईर्जं) इन ऐश्वर्योंका लाभ मोक्षमार्गमें गमन रूप ईर्या समितिसे होता है।

भावार्थ—जो कोई तत्वज्ञानी श्रीं पदके द्वारा आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय लक्ष्मीका ध्यान करते हैं उनको अवधिज्ञान तथा मनःपर्यय ज्ञानकी ऋद्धियें सिद्ध होजाती हैं तथा अंतमें परम ऐश्वर्यमय केवलज्ञानका लाभ होता है। अतएव शुद्ध आत्माके मननरूप सरल पथमें गमन करना चाहिये, यही ईर्यासमिति है।

पंचज्ञान संसुद्धं, कुज्ञानं मिच्छ भाव विलयंती।
ईर्जा पंच निवेदं, ईर्जा समिदी च अप्प परमप्पं ॥ ६१९ ॥

अन्वयार्थ—(पंचज्ञान संसुद्धं) जिसके प्रतापसे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल पांचों ही ज्ञानोंकी सिद्धि होसके (कुज्ञानं मिच्छ भाव विलयंती) मिथ्याज्ञान व मिथ्यात्वभाव नाशको प्राप्त होजावे (ईर्जा पंच निवेदं) ऐसे सरल शुद्ध मार्गपर चलना ईर्या पथ गमन (ईर्जासमिदी च) या ईर्यासमिति कहलाता है (अप्प परमप्पं) जहां आत्माको परमात्मारूप ज्ञानके स्वानुभव किया जाता है। यही स्वानुभव ही ईर्यासमिति है।

भावार्थ—शुद्ध स्वभावके अनुभव रूप सरल शल्य रहित जिन मार्गपर चलनेसे मतिश्रुत ज्ञान भी निर्मल होजाते हैं। श्रुतज्ञानका पूर्ण लाभ होसक्ता है। शेष तीन ज्ञान भी इसीसे प्राप्त होजाते हैं, मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञानका बिलकुल लोप होजाता है। आत्माका परमात्मारूप अनुभव करना ही ईर्यासमिति है।

भाषा समिति।

भाषा समिदि स उत्तं, जं उत्तं जिनंद केवलं ज्ञानं।
तं भाषा परमानं, ज्ञान सहावेन भाव संजुत्तं ॥ ६२० ॥

अन्वयार्थ—(भाषा समिदि स उत्तं) भाषा समिति वह कही गई है (जं जिनंद केवलं ज्ञानं उत्तं तं भाषा परमानं) कि जो कुछ जिनेन्द्रने केवलज्ञानसे जानकर कहा है उस भाषाको प्रमाण कर लेना–मान लेना (ज्ञान सहावेन भाव संजुत्तं) तथा ज्ञान स्वभावका मनन करते हुए शुद्ध भाषा कहना।

भावार्थ—जिनेन्द्र कथित तत्वोंके स्वरूपको यथार्थ मानकर उनका अनुभव करना, ज्ञान स्वभावमें वर्तन करना, शुद्ध आत्माका अनुभव करना व इसी स्वानुभव करानेवाले वचनोंका कहना सो भाषा समिति है। तत्वार्थसारमें कहा है—

व्यलीकादिविनिर्मुक्तं, सत्यासत्यामृषाद्वयम्। वदतः सूत्रमार्गेण, भाषासमितिरिष्यते ॥ ८–६ ॥

भावार्थ—असत्य व सत्य असत्य मिश्र तथा कठोर कर्कश भाषाको छोडकर सत्य व अनुभव इन दो प्रकारकी भाषाको सिद्धांत सूत्रके अनुसार कहना भाषा समिति है। आमंत्रणी आदि भाषाको अनुभय भाषा इसलिये कहते हैं कि न तो वह सत्य है न असत्य है, वहां कोई अभिप्राय सत्य या असत्यका नहीं है।

भाषा अविचल सुद्धं मय मिच्छात दोस परिहरनं।
भाषा जिन उवएसं, तं भाषा समिदि सुद्ध जाने हि ॥ ६२१ ॥

अन्वयार्थ—(अविचल सुद्धं भाषा) जो भाषा चञ्चलता रहित सरल शुद्ध मार्गको बतानेवाली है (मय मिच्छात दोस परिहरनं) जिससे मद व मिथ्यात्वका दोष न प्रगट हो अथवा जो दूसरोंके मद व मिथ्यात्वको हटानेवाली है ऐसी भाषा कहना अर्थात् (जिन उवएसं भाषा) जिनेन्द्रके उपदेशका प्रकाश करना (तं सुद्ध भाषा समिदि जानेहि) उसे शुद्ध भाषा समिति जानना चाहिये।

भावार्थ—संसारके पदार्थोंका सत्य मानना मिथ्यात्व है। उनमें घमण्ड करना मद है। इन दोषोंको छुडानेवाली व शुद्ध आत्माका अनुभव करानेवाली व जिनेन्द्रके उपदेशको यथार्थ प्रकाश

करनेवाली भाषाको कहना भाषा समिति है। जिनेन्द्रके कथनानुसार शुद्ध तत्त्वको अनुभव करना व इसीका भाषासे प्रकाश करना वास्तवमें भाषा समिति है।

एषणा समिति।

एषन समिदि स उत्तं, ईर्जं पंथ च एषनं सुद्धं।
विज्ञान ज्ञान रूवं, पिच्छंतो सुद्ध दंसनं अमलं ॥ ६२२ ॥

अन्वयार्थ—(स एषन समिदि उत्तं) वह एषना समिति कही गई है (सुद्धं ईर्जं पंथ च एषनं) जो शुद्ध सरल मोक्षमार्गकी चाहना की जावे (विज्ञान ज्ञान रूवं) वह सरल मार्ग भेदविज्ञान द्वारा प्राप्त आत्मज्ञान स्वभाव रूप है (सुद्ध अमलं दंसनं पिच्छंतो) जहां शुद्ध व निर्दोष सम्यग्दर्शनका अनुभव किया जाता है।

भावार्थ—व्यवहारनयसे भिक्षावृत्तिसे प्राप्त छ्यालिस दोष व बत्तीस अंतराय रहित मुनियोंके उद्देश्यसे न बनाया हुआ किन्तु कुटुम्ब हेतु बनाए हुए भोजनके भागको लेना-समताभावसे उदर भरना एषना समिति है। यहां निश्चय प्रधान कथन है कि आत्मा व अनात्माका भेदविज्ञान करके जहां शुद्ध आत्माकी भावना की जावे व अपने ही आत्माको शुद्ध आत्माके समान प्रतीतिमें लाकर उसीका ही अनुभव किया जावे। यही आत्माको शुद्ध भावका भोजन कराकर एषना समितिको पालना है। तत्वार्थसारमें कहा है—

पिंडं तथोपधिं शय्यामुद्गमोत्पादिनादिना। साधोः शोधयतः शुद्धा ह्येषणा समितिर्भवेत् ॥ ९-६ ॥

भावार्थ—जो साधु उद्गम उत्पादन आदि दोषोंसे रहित भोजन, पीछी, कमंडल, शैय्या आदि शोधते हैं उनहीके शुद्ध एषना समिति होती है। यह कथन व्यवहार नयसे है।

पिच्छै ज्ञान सरूवं, पिच्छै चरनं पि सुद्ध सम्मत्तं।
पिच्छै अप्प सहावं, अप्पा परमप्पं ममल पिच्छेइ ॥ ६२३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सरूवं पिच्छै) जो ज्ञानके यथार्थ स्वरूपको देखता है (चरनंपि सुद्ध सम्मत्त पिच्छै) चारित्रको तथा शुद्ध सम्यग्दर्शनको देखता है (अप्प सहावं पिच्छै) जो आत्माके स्वभावको देखता है (अप्पा परमप्पं अमल पिच्छेई) जो आत्माको परमात्माके समान निर्मल देखता है वह एषना समिति है।

भावार्थ—आत्मा स्वयं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र स्वरूप है। जो कोई भेद करके भिन्न २ तीनों गुणोंको विचारे फिर अभेद करके एक आत्माका ही मनन करें—आत्माको सिद्ध भगवानके समान देखें तथा एकाग्र होकर अनुभव करें वही तत्वज्ञानी महात्मा एषना समितिको पालन करनेवाला है। निश्चयसे आपसे आपको अनुभव करना ही एषना समिति है।

आदान निक्षेपन समिति।

आदानं निक्षेपं, आद सहावेन दंसए सुद्धं।
निक्खवइ कम्म तिविहं, आद सहावेन सयल दोष निक्षेपं ॥६२४॥

अन्वयार्थ—(आदानं निक्षेपं) आदान निक्षेपन समिति कहते हैं आदानके अर्थ हैं (आद सहावेन दंसए सुद्धं) जो आत्म-स्वभावको ग्रहण कर उसे शुद्ध अनुभव करना (तिविहं कम्म निक्खवइ) निक्षेपनके अर्थ हैं कि तीन प्रकार कर्मोंको क्षय करना अर्थात् (आद सहावेन सयल दोष निक्षेपं) आत्माका स्वभाव ग्रहण कर सर्व रागादि दोषोंका क्षय करना निश्चयसे आदान निक्षेपन समिति है।

भावार्थ—पीछी कमण्डल शरीर शास्त्रादि पदार्थोंको देखकर रखना उठाना आदान निक्षेपण समिति है जिससे प्राणियोंकी रक्षा हो यह कथन व्यवहारनयसे है। जैसा तत्वार्थसारमें कहा है—

सहसादृष्टदुर्मृष्टाप्रत्यवेक्षणदूषणम्। त्यजतः समितिर्ज्ञेयादाननिक्षेपगोचरा ॥ १०–६ ॥

भावार्थ—यकायक विना देखे विना झाडे जल्दीसे रखना, आदि दूषणोंको बचाकर जीव-जन्तुकी रक्षा करते हुए रखना उठाना सो आदाननिक्षेपण समिति है। यहां निश्चय प्रधान कथन है कि आत्माके निज स्वरूपको ग्रहण कर अर्थात् आत्माका अनुभव करते हुए भाव कर्म, द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि और नोकर्म शरीरादिके सम्बन्धको दूर करना आदान निक्षेपण समिति है।

आद सहावं झानं, अप्पं च अप्प दंसनं ज्ञानं ।
चरनं दुविह संजुत्तं, कम्मं निषवै लहै निव्वानं ॥ ६२५ ॥

अन्वयार्थ—(आद सहावं ज्ञानं) आत्माके स्वभावका ध्यान करना अर्थात् (अप्पं च अप्प दंसनं ज्ञानं) अपनेसे आपको ही देखना जानना (दुविह चरनं संजुत्तं) दो प्रकार चारित्रके साथ वर्तना (कम्मं निषवै लहै निव्वानं) कर्मोंको नाश करके निर्वाणको प्राप्त करनेवाला है ।

भावार्थ—जो कोई भव्यजीव अपने आत्माको दर्शन ज्ञानमई श्रद्धान कर व जानकर व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय चारित्रमें आरूढ़ होकर आत्माका ध्यान करता है वह अवश्य कर्मोंको क्षय कर मुक्त होजाता है। इस आत्माका ध्यान ही आदान निक्षेपन समिति है, जो कर्मोंको दूर करनेवाली है।



प्रतिष्ठापन समिति ।

प्रतिस्ठापन समिदिओ, ज्ञानं धम्मं च सुक्क ज्ञानं च ।
प्रतिस्ठापन संजुत्तं, ज्ञान समत्थेन अप्प संतुट्ठं ॥ ६२६ ॥

अन्वयार्थ—(प्रतिस्ठापन समिदिओ) प्रतिष्ठापन समिति यह है कि (धम्मं ज्ञानं च सुक्क ज्ञानं च प्रतिस्ठापन संजुत्तं) अपनेको धर्मध्यान और शुक्लध्यानसे प्रतिष्ठित किया जावे (ज्ञान समत्थेन) ध्यानके बलसे (अप्प संतुट्ठं) आत्माको सन्तोषित व आनन्दित किया जावे ।

भावार्थ—व्यवहारनयसे जन्तु रहित स्थानमें मलमूत्र करना प्रतिष्ठापना समिति है ।
जैसा तत्वार्थसारमें कहा है:—

समितिर्दर्शितानेन प्रतिष्ठापनगोचरा । त्याज्यं मूत्रादिकं द्रव्यं स्थंडिले त्यजतो यतेः ॥ ११–६ ॥

भावार्थ—साधुको निर्जंतु प्राशुक भूमिमें मूत्रादिका छोडना प्रतिष्ठापना समिति है। यहां निश्चयनयसे शब्दके अर्थको लेकर कहा गया है कि अपने आपको धर्मध्यानमें अथवा शुक्लध्यानमें स्थापित करके आत्मानन्दको लेते हुए आपमें परम सन्तोष पाना प्रतिष्ठापना समिति है ।

झाने ज्ञान जोतोः, मल रहिओ सयल दोस परिचत्तो।
गय संकप्प वियप्पो, पंचम समिदी च ज्ञान संजुत्तो ॥ ६२७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान जोतोः झाने) ज्ञान ज्योतिके ध्यानमें तिष्ठकर (मल रहिओ सयल दोस परिचत्तो) अतीचार रहित व सर्व रागादि दोषोंसे हटकर (गय संकप्प वियप्पो) तथा संकल्प विकल्पोंसे रहित होकर (ज्ञान संजुत्तो च पंचम समिदी) आत्माके ध्यानमें लीन होना पंचमी प्रतिष्ठापना समिति है।

भावार्थ—जहां सर्व मिथ्यात्व व रागादि भावोंको हटा दिया जावे और सर्व ही संकल्प विकल्पोंको त्याग दिया जावे व आपको आपसे आपमें स्थापित किया जावे-निज आत्मामें एकतासे लीन होकर आपमें आपको प्रतिष्ठित किया जावे, अपने आत्माके ही सिंहासन पर अपने परमात्मा देवको प्रतिष्ठित किया जावे, यही प्रतिष्ठापना समिति है।

निश्चय मोक्षमार्ग।

समिदी पंच विसुद्धं, तेरह विहि चरन संजमं भनियं।
सम्मत्त चरन चरनं, संजम संजुत्त लहइ निव्वानं ॥ ६२८ ॥

अन्वयार्थ—(पंच समिदी विसुद्धं) पांच समितियोंको शुद्ध निश्चय नयसे पालना (तेरह विहि चरन संजमं भनियं) तथा तेरह प्रकार चारित्र पालना सो संयम कहा गया है (सम्मत्त चरन चरनं) जो भव्य जीव सम्यग्दर्शनका आचरण करता है (संजम संजुत्त) तथा संयमी होता है वह (निव्वानं लहइ) निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—साधुका तेरा प्रकार चारित्र है उसीमें पांच समिति भी गर्भित हैं। निश्चय नयके द्वारा जो इनको समझकर अपने ध्यानमें लेता है और शुद्ध आत्माकी प्रतीति सहित निज आत्माके भीतर संयमित होकर आत्माका अनुभव करता है वह अवश्य निर्वाणका पात्र हो जाता है।

चरनं सुद्ध सहावं, चरनं संसार सरनि तिक्तं च।
चरनं पि सुद्ध अप्पा, परमप्पा परम मोक्षस्य ॥ ६२९ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं सुद्ध सहावं) निश्चय चारित्र शुद्ध स्वभावमें चलना है (चरनं संसार सविनिमुक्त च) निश्चय चारित्र संसारके मार्गसे दूर रहना है (चरनं पि सुद्ध अप्पा) निश्चय चारित्र शुद्ध आत्मा ही है (परमप्पा परमं मोक्खयं) निश्चय चारित्र पालनेवाला ही परम मोक्षका अधिकारी परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—निश्चय चारित्र रूप वास्तवमें आत्माका स्वभाव है। जब कोई तत्वज्ञानी संसारके कारणीभूत सर्व प्रकारके राग द्वेष मोह भावोंका परित्याग करके अपने आप ही ठहर जाता है व आपका ही शुद्ध अनुभव करता है तब वह सर्व कर्मोंसे छूटकर निश्चयसे सिद्ध परमात्मा होजाता है, यही निश्चय मोक्षमार्ग है।

एयं संजोगे नय, अवध्यं चिंतेइ लेइ गरु भारं।
अप्पा परमप्पानं, महावयं हुंति साहूनं ॥ ६३० ॥

अन्वयार्थ—(एयं संजोगे नय) इन तेरा प्रकार चारित्रका संयोग मिलाकर (अवध्यं चिंतेइ गरु भारं लेइ) पवित्र अविनाशी आत्माको चिन्तवन करता हुआ गुरुपनेके भारको लेता है अथवा अवधिज्ञानको चिंतवन करते हुए ज्ञानका विशेष भार प्राप्त कर लेता है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करता है (महावयं हुंति साहूनं) उसही साधुके महाव्रत होता है।

भावार्थ—गुरु वही है जो भारी भारको सहन कर सके। सबसे भारी भार परमात्मध्यान है। जो कोई साधु तेरा प्रकार चारित्र पालता हुआ आत्माको परमात्मा रूप निश्चय करके उसीके ध्यानमें लवलीन होजाता है वही महाव्रती साधु मोक्षमार्गके ऊपर चलता हुआ आत्मसंयमके भारी भारको ढोनेवाला है। अथवा जो कोई महाव्रतोंको यथार्थ पालके आत्माको ध्याता है उसको अवधिज्ञान प्राप्त होजाता है।

जंमन मरन विमुक्का, अप्पा अप्पेन अप्पयं सुद्धं।
परमप्पा परम पयं, परम सरूवं च चेयना सुद्धं ॥ ६३१ ॥

अन्वयार्थ—(जंमन मरन विमुक्का) जन्म मरणसे रहित यह अविनाशी (अप्पा अप्पेन अप्पयं सुद्धं) आत्मा अपने ही द्वारा आपको शुद्ध ध्याता है अर्थात् (परमप्पा परम पयं) परमात्माके श्रेष्ठ पदको

ध्याता है अर्थात् (परम सरूवं च चेयना सुद्धं) परम स्वरूपको ध्याता है या शुद्ध चेतनाको ध्याता है, यही निश्चय ध्यान है।

भावार्थ— निश्चय ध्यान ही मोक्षका साधक है। उस ध्यानमें आत्माको निश्चय नयसे देखा जाता है कि यह सदासे एकाकार चला आया हुआ एक अविनाशी पदार्थ है। जब ध्याता सर्व संकल्प विकल्प त्यागकर अपनेसे ही आपको शुद्ध भावनाके साथ ध्याता है, तब वही मानो परमात्माको ध्याता है या परम पदको ध्याता है या श्रेष्ठ आत्मस्वभावको ध्याता है या उसीका अनुभव कर्म चेतना व कर्मफल चेतनासे छूटकर शुद्ध ज्ञान चेतना रूप होजाता है, यही करने योग्य है।

सून्यं ज्ञान समत्थं, ज्ञानं ज्ञायंति निम्मलं सुद्धं ।
अप्पा परमप्पानं, मनपर्यय ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ६३२ ॥

अन्वयार्थ—(सून्यं ज्ञान समत्थं) रागादि विकल्पोंसे शून्य ध्यानकी सामर्थ्यसे जो (निम्मलं सुद्धं ज्ञानं ज्ञायंति) निर्मल शुद्ध आत्मध्यानको ध्याते हैं (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करते हैं उनको (निम्मलं सुद्धं मनपर्यय ज्ञान) निर्मल मनःपर्यय ज्ञानका लाभ होजाता है।

भावार्थ—निर्विकल्प आत्म रमण रूप ध्यानका यह बल है कि मनःपर्यय ज्ञानको आवरण करनेवाला कर्म कम होजाता है, उस कर्मका क्षयोपशम होजाता है। और निर्मल मनःपर्यय ज्ञान साधुको पैदा होजाता है जिसके प्रतापसे साधु परके मनके भीतर चिंतवनमें आए हुए सूक्ष्म-तत्वोंको भी जान सक्ता है।

रिजुमति मनःपर्यय ।

रिजुमति सुद्ध सरूवं, रूवातीतं च व्यक्त रूवेन ।
जम्बूदीव सुदिट्ठं, मनःपर्यय निम्मलं विमलं ॥ ६३३ ॥

अन्वयार्थ—(रिजुमति सुद्ध सरूवं) ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान शुद्ध आत्माका एक स्वभाव है (रूवातीतं च व्यक्त रूवेन) यह ज्ञान अतीन्द्रिय है, प्रत्यक्ष है (जम्बूदीप सुदिट्ठं) जम्बूद्वीपके भीतर इस ज्ञानका विषय है (मनपर्यय निम्मलं विमलं) यह मनःपर्यय ज्ञान अति निर्मल है।

भावार्थ—आत्माका ध्यान करनेसे ऋद्धिधारी मुनिके जब मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता है तब विशुद्ध भावोंसे ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान पैदा होता है। जो जम्बूद्वीपकी चौडाई एक लाख योजनके भीतर मनवाले प्राणियोंके भीतर जो वर्तमान कालमें पदार्थोंका चिंतवन होरहा है उसको जान लेता है। यह ज्ञान आत्मासे ही प्रत्यक्ष होता है, इसमें इन्द्रिय व मनकी सहायताकी जरूरत नहीं है। यह ज्ञान अवधिज्ञानकी अपेक्षा निर्मल है।

विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान।

विपुलमति सुद्ध सहावं, विमलं च सुद्ध केवलं ज्ञानं।
दीव अढाई सुद्धं, मनपर्ययज्ञान सुद्ध उववन्नं ॥ ६३४ ॥

अन्वयार्थ—(विपुलमति सुद्ध सहावं) विपुलमति मनःपर्यय शुद्ध आत्माका एक स्वभाव है (दीव अढाई सुद्धं) यह अढाई द्वीप तक जाननेकी शुद्धता रखता है (मनपर्ययज्ञान सुद्ध उववन्नं) ऋजुमतिकी अपेक्षा यह मनःपर्ययज्ञान विशेष शुद्धतासे उत्पन्न होता है (विमलं च केवलं ज्ञानं) सर्वसे निर्मल तो केवलज्ञान है, यह अकेला त्रिकालगोचर तीन लोकके पदार्थोंको सर्व गुण पर्याय सहित जानता है।

भावार्थ—आत्माके निर्मल ध्यानके प्रतापसे ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानसे अति निर्मल विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान पैदा होजाता है। यह ज्ञान अढाई द्वीपके पैंतालीस लाख योजनके भीतर तिष्ठे हुए मनवाले प्राणियोंके मनके भीतरके सूक्ष्म रूपी पदार्थोंको जानता है। आत्मध्यानका अन्तिम फल पूर्ण केवलज्ञानको प्राप्त करना है। यह ज्ञान पांचों ज्ञानावरण कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है।

मनःपर्यय ज्ञानका कथन गोम्मटसारमें ऐसा दिया है:—

मणपज्जवं च दुविहं उजुविउलमदित्ति उजुमदी तिविहा। उजुमणवयणे काए गदत्थविसयात्ति णियमेण ॥ ४३८ ॥
विउलमदीवि य छद्धा उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं। अत्थं जाणदि जम्हा सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥ ४३९ ॥
तियकालविसयरूविं चिंतितं वट्टमाणजीवेण। उजुमदिणाणं जाणदि भूदभविस्सं च विउलमदी ॥ ४४० ॥

भावार्थ—मनःपर्यय ज्ञान दो प्रकारका है-रिजुमति विपुलमति। रिजुमति तीन प्रकारका है।

सरल मनके द्वारा चिंतवन किये हुए पदार्थोंको जाने। सरल वचनसे किये हुए पदार्थको जाने। विपुलमति ज्ञान छःप्रकारका है। सरलतासे किये हुए मन, वचन, काय द्वारा पदार्थोंको तथा कुटिलतासे मन, वचन, काय द्वारा किए हुए पदार्थोंको जाने। दूसरेके मनमें रहनेवाले पहले तीन प्रकारके पदार्थोंको रिजुमति जानता है जब कि विपुलमति पहले व दूसरे तीन प्रकारके अर्थात् छहों प्रकारके पदार्थोंको जानता है जो दूसरेके मनमें हो। रिजुमति ज्ञान तीन कालके पदार्थोंको जो वर्तमानमें कोई चिन्तवन कर रहा है उसीको जानता है। विपुलमति ज्ञान वर्तमान चिंतवन किए हुएको व भूतकालमें चिंतवन किए हुएको व भविष्यमें जो चिंतवन करेगा उस सबको जान सक्ता है। तारणस्वामीने गाथा ६३१ में रिजुमति मनःपर्यय ज्ञानका क्षेत्र जम्बूद्वीप बताया है। जब कि श्री नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्तीने गोम्मटसारमें सात आठ योजनसे अधिक क्षेत्र नहीं बताया है, जब कि विपुलमतिका क्षेत्र ढाई द्वीप है, इसे दोनों ग्रंथकर्ताओंने बताया है। इसपर अन्य ग्रंथोंसे विचारना चाहिये। गोम्मटसारकी वह गाथा यह है—

गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं। विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं॥ ४५४॥

भावार्थ—रिजुमतिका जघन्य क्षेत्र दो तीन कोस व उत्कृष्ट सात आठ योजन है। विपुलमतिका जघन्य आठ नव योजन व उत्कृष्ट नरलोक है।

अरहंत स्वरूप।

अरहंतं सर्वज्ञं, केवल भावेन सुद्ध स सरूवं।
अप्पा परमानंदं, अठारह दोस विवज्जिओ विमलं॥ ६३५॥

अन्वयार्थ—(केवलभावेन सुद्ध स सरूवं) केवलज्ञान रूपसे शुद्ध अपने स्वरूपमें रहनेवाले (अरहंतं सर्वज्ञं) अरहंत सर्वज्ञ भगवान होते हैं (अप्पा परमानंदं) उनका आत्मा परमानन्दको अनुभव करता है। वे अरहंत (अठारह दोस विवज्जिओ विमलं) अठारह दोषोंसे रहित वीतराग होते हैं।

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रयके आराधन स्वरूप निर्मल शुक्लध्यानके प्रतापसे जब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय चारों घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है तब वह साधु अरहंत पर-

मात्मा होजाता है। इस शुद्ध अवस्थामें अरहंत भगवान सर्वज्ञ वीतराग होते हैं तथा अपने अतीन्द्रिय आनन्दका भोग करते हैं। उनमें क्षुधा तृषा आदि अठारह दोष नहीं होते हैं।

धम्मरसायणमें पद्मनंदि मुनि कहते हैं—

छुह तण्हा भय दोसो राओ मोहो य चिंतणं वाही। जा मरण जम्म णिद्दा खेदो सेदो विसादो य ॥ ११८ ॥

रइ विंमओ यदप्पो एए दोसा तिलोय सत्ताणं। सव्वेसिं सामण्णा संसारे परिभमंताणं ॥ ११९ ॥

एए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जंति छुह ति साईया। सोहोइ परमदेओ णिस्संदेहेण घेतव्वो ॥ १२० ॥

भावार्थ—१-क्षुधा, २-तृषा, ३-भय, ४-द्वेष, ५-राग, ६-मोह, ७-चिंता, ८ व्याधि, ९-जरा, १०-मरण, ११-जन्म, १२-निद्रा, १३-खेद, १४-स्वेद (पसीना), १५-विषाद, १६-रति, १७-जृम्भा, १८-दर्प। ये १८ दोष तीन लोकके प्राणियोंके पाए जाते हैं, सर्व संसारीयोंके हैं। जिनके ये नहीं हैं, वे निःसंदेह परम देव अरहंत हैं, उनको मानना चाहिये।

जृम्भा (जंभाई आना), विषाद, रतिके स्थानमें श्री रत्नकरंड श्रावकाचारकी टीकामें अरति, आश्चर्य व गर्व तीन दिये हैं।

चार घातीय कर्मोंके क्षयसे वे १८ दोष अरहंतमें नहीं होते हैं।

अठदह दोस वियानं दोसं गुन रूव भेय विज्ञानं।
रूवं रूव समत्थं, विज्ञानं ज्ञान जानि सद्भावं ॥ ६३६ ॥

अन्वयार्थ—(अठदह दोस वियानं) अठारह दोषोंको जानना चाहिये (दोसं गुन रूव भेय विज्ञानं) दोषोंका और गुणोंका भिन्न २ स्वरूप जानना भेदविज्ञान है (रूवं रूव समत्थं) पुद्गलका स्वरूप पुद्गलमई स्वरूपको समर्थन करता है (विज्ञानं ज्ञान सद्भावं जानि) ज्ञानीका स्वरूप ज्ञानमई जानना चाहिये।

भावार्थ—ये अठारह दोष उसीके होंगे जो शरीरादि पर पदार्थोंका मोही होगा। जिसका मोह शरीरसे हट गया है उसके पुद्गल जनित कोई चिंता नहीं होती है। अर्हंतका आत्मा निरन्तर ज्ञान स्वरूप वीतराग रहता है। कर्म जनित कोई विकार उनके निर्मल ज्ञानमें नहीं होता है इसलिये उनके ये दोष सम्भव नहीं हैं।

अठारह दोष रहित अरहंत ।

क्षुधा त्रषा परिहरणं, संसारे सरनि भाव तिक्तं च ।
ज्ञान सहावं सुद्धं, ज्ञान अहारेन अन्नपान सहकारं ॥ ६३७ ॥

अन्वयार्थ—(क्षुधा त्रषा परिहरणं) अर्हंत भगवानके भूख प्यासकी बाधा नहीं होती है (संसारे सरनि भाव तिक्तं च) क्योंकि उनके संसारके भ्रमणके कारणरूपी भावोंका अर्थात् सांपरायिक आस्रव भावोंका त्याग है (ज्ञान सहावं सुद्धं) शुद्ध ज्ञान स्वभाव प्रकाशमान है (ज्ञान अहारेन अन्नपान सहकारं) ज्ञानका आहार है, यही अन्नपानकी तरह सहकारी है ।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके मोहनीय कर्मका नाश होगया है इसलिये कोई इच्छा पैदा नहीं होसक्ती है । यदि इच्छा हो तो कषाय भाव पाया जावे । कषाय हो तो सांपरायिक आस्रव हो । ये मोहके नाशसे पूर्ण वीतराग होकर यथाख्यात चारित्रमें तथा ज्ञान चेतनाके अनुभवमें लीन हैं । उनके ज्ञानानन्दका ही आहार है । वे सांसारिक प्राणियोंकी तरह अन्नपान नहीं लेते, उनका शरीर भी रत्न–स्फटिककी तरह या कपूरकी तरह धातु उपधातु रहित शुद्ध होगया है । उनके अनंत लाभकी शक्ति प्रगट होगई है जिससे शरीरको पुष्ट करनेवाली आहारक वर्गणाएँ स्वयं योगोंके द्वारा आकर्षित होकर आती हैं व शरीरमें मिलती हैं । जैसे वृक्षोंके व खानके पाषाणोंके लेप आहार है, मुखसे आहार नहीं है वैसे ही केवली भगवान अर्हंतके नोकर्म वर्गणाओंका ग्रहणरूप आहार है ।

आप्तस्वरूप ग्रंथमें अरहंतका स्वरूप कहा है:—

तदा स्फटिक संकाशं तेजोमूर्ति मयं वपुः । जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातु विवर्जितम् । ॥ १२ ॥

भावार्थ—तब दोष रहित अरहंत भगवानके स्फटिकमणिकी तरह तेजमूर्ति व सात धातु रहित शरीर होजाता है । १–रस, २–रुधिर, ३–मांस, ४–मेद (चरबी), ५–हाड, ६–मिंजी (गूदा), ७–शुक्र या वीर्य ये सात धातु अरहंतके नहीं रहती हैं ।

भयं च दोषाईनं, भयं च संसार सरनि तिक्तं च ।
ज्ञान सहाव सरूवं, भय अभयं दोष तिक्त स सरूवं ॥ ६३८ ॥

अन्वयार्थ—(दोषाईनं भयं च) दोषोंके होनेपर भय होता है (भयं च संसार सरनि तिक्तं च) केवली भगवानके संसारके भ्रमणका कोई भय नहीं रहा है (ज्ञान सहाव सरूवं) वे ज्ञान स्वभावमें लवलीन हैं (भय दोष तिक्त अभयं स सरूवं) वे भय नामके दोषसे रहित अभय निजस्वरूपमें सावधान हैं।

भावार्थ—कोई हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील आदि पाप होनेपर या शरीर व धनादिका मोह होनेपर भय पैदा होजाता है, केवली अरहंत भगवानके कोई पापका कारण भाव ही नहीं है और न शरीरादिका मोह ही है, इससे उनके भय नोकषायका उदय संभव ही नहीं है, वे निरंतर अनंत-वीर्यकी सहायतासे अपने स्वभावमें तल्लीन परम निर्भय हैं।

रागो मोह सचित्तं, संसारे तजंति सुद्ध ससरूवं।
ज्ञानं राग सहावं, ज्ञानं मोहेन तजंति मोहं धं ॥ ६३९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध ससरूवं) अरहंतके शुद्ध आत्माका स्वरूप झलक रहा है इसलिये वहां (संसारे रागो मोह सचित्त तजंति) संसारके कारणीभूत राग व मोह सहित चित्तका अभाव है (ज्ञानं राग सहावं) वहां ज्ञानका ही स्वाभाविक राग है (ज्ञानं मोहेन तजंति मोहंधं) व अपने ज्ञानका ही मोह है इसीसे उन्होंने संसारके अंध व अज्ञानमय मोहको त्याग दिया हैं।

भावार्थ—अरहंत भगवानने दर्शनमोह व चारित्रमोहका सर्वथा क्षय कर डाला है इसलिये उनके भीतर राग या मोह कभी संभव नहीं है। वे परम वीतराग होकर शुद्ध स्वरूपमें लीन हैं, उनके संसारका अभाव है, अलङ्कार रूपसे यह कह सक्ते हैं कि वे प्रभु अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें ही रागी व मोही हैं। उनके पर पदार्थका अज्ञानमय राग व मोह नहीं हैं।

ज्ञान सहावे चित्तं, चिंता संसार तजंति परिनामं।
चिंतं अप्प सहावं, अप्पा परमप्प केवलं सुद्धं ॥ ६४० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावे चित्तं) केवली महाराजकी चिंता ज्ञान स्वभावमें लय होगई है उन्होंने (संसार परिनामं चिंता तजंति) संसारके भावोंकी या सांसारिक अवस्थाओंकी चिंता या फिकर छोड दी है (अप्प सहावं चिन्तं) वे आत्मीक स्वभावका ही अनुभव कर रहे हैं (अप्पा परमप्प केवलं सुद्धं) उनके अनुभवमें आत्मा परमात्मारूप केवल शुद्ध झलक रहा है।

भावार्थ—अर्हंत भगवानको चिंताका दोष भी सम्भव नहीं है, उनके वीतराग भाव प्रगट है। उनको किसी शरीरादि व धनादि पर पदार्थसे राग ही नहीं है। जिन हेतुसे कोई चिंता या फिकर पैदा होवे तो निश्चिंत होकर अपने शुद्ध परमात्म स्वभावमें तल्लीन हैं, सर्व चिंता रहित हैं।

वृद्धं तुं अल्प मृत्युं, चौगई भावेंन तजंति सद्‌भावे।
ज्ञाने ज्ञान सहावं, अजरामर सासयं ठानं ॥ ६४१ ॥

अन्वयार्थ—(वृद्धं तुं अल्प मृत्युं) बुढापा होना व थोडे कालके लिये मरण होना (चौगई भावेन) चार गति सम्बन्धी भावोंसे होता है (सद्‌भावे तजंति) केवलीने अपने स्वभावमें ठहरकर इन भावोंको त्याग दिया है (ज्ञाने अजरामर सासयं ठानं ज्ञान सहावं) उनके ज्ञानमें जरा व मरण रहित अविनाशी ज्ञान स्वभावी पदार्थ झलक रहा है।

भावार्थ—केवली भगवानका शरीर सात धातु रहित होनेसे उसमें जरा नहीं फैलती है, उनका शरीर चमकदार व तेजस्वी दीखना है। मरण उसे ही कहते हैं जहां फिर जन्म हो। केवली भगवानने चार गति बांधनेवाले भावोंका ही त्याग कर दिया है, उनके चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिका बंध नहीं है। इससे उनका फिर किसी शरीरमें जन्म नहीं है। जब जन्म नहीं है तब मरण भी नहीं है। वे तो निरंतर अजर अमर अविनाशी स्वाभाविक ज्ञानधारी परमात्मा होगए हैं। आयु कर्म हटते ही सिद्ध हो जायगे, जब शरीरका सम्बंध ही न रहेगा।

स्वेदं खेद संजुत्तं, भव कारनेन सयल तिक्तं च।
ज्ञान सहाव सरूवं, स्वादं च परम केवलं ज्ञानं ॥ ६४२ ॥

अन्वयार्थ—(स्वेदं खेद संजुत्तं) पसीना खेद या थकन सहित (भव कारनेन) संसारके कार्योंके निमित्तसे होता है (सयल तिक्तं च) उनको अरहंत भगवानने त्याग दिया है (ज्ञान सहाव सरूवं) वे तो एक ज्ञान स्वभावमई होरहे हैं (परम केवलं ज्ञानं च स्वादं) परम केवलज्ञानका ही स्वाद लेरहे हैं। उनको थकन न होनेसे न खेद है न स्वेद है।

भावार्थ—अरहंत भगवानके कोई इंद्रियोंके द्वारा कार्य नहीं है जिससे न उनको खेद होता है

न स्वेद होसक्ता है वे अतीन्द्रिय केवलज्ञानके धारी हैं जिससे वे सहज ही स्वपर ज्ञायक होरहे हैं। उनको अनन्त बल है इससे ज्ञानके कार्यमें कोई परिश्रम नहीं पड़ता है। वे निरन्तर ज्ञानानन्दका स्वाद लेते हुए परम निराकुल हैं।

मदो रति संजुत्तं, संसारे सरनि सयल तिक्तं च।

ज्ञानबलेन विसुद्धं, ममात्मा सुद्ध दंसनं अमलं ॥ ६४३ ॥

अन्वयार्थ—(मदो रति संजुत्तं) मद दोष व रति दोष सहित या अरति दोष सहित (संसारे सरनि सयल तिक्तं च) संसारमें जीवोंका भ्रमण होता है। अर्हंत भगवानने मोहका क्षय करके सर्व संसार भ्रमणके कारणोंको त्याग दिया है (ज्ञानबलेन) आत्माके यथार्थ ज्ञानके बलसे (विसुद्धं) वे परम वीतराग हैं तथा उनको यह अनुभव है कि (ममात्मा अमलं सुद्ध दंसनं) मेरी आत्मा रागादि मलसे रहित है व शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारी है।

भावार्थ—मोहका समूल क्षय कर देनेसे अर्हंत भगवानके मद या रति या अरति कोई मोह· कर्म जनित भावका होना सम्भव नहीं है। वे मोक्षरूप हैं–उनके संसारका कारण सब मिट गया है। वे अपने ज्ञानके बलसे ही अपने आपको शुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन रूप अनुभव कर रहे हैं।

विस्मय जननी निद्रा, संसारे सरनि तिक्त मन विचलं।

ज्ञान सहावे सुद्धं, जम्मन मरनं च उवसमं भनियं ॥ ६४४ ॥

अन्वयार्थ—(विस्मय जननि निद्रा) आश्चर्य, जन्म तथा निद्रा ये तीन दोष भी (संसारे सरनि) संसारके मार्गमें रहनेवालेके होते हैं। (मन विचलं तिक्त) अरहंत भगवानका मन चंचलता रहित थिर है। वहां कोई मनमें प्रमाद नहीं होसक्ता। उन्होंने संसार नाश कर दिया है इससे जन्म नहीं होसक्ता है। (ज्ञान सहावे सुद्धं) वे अपने ज्ञान स्वभावमें लीन हैं, परम वीतराग हैं। (जम्मन मरनं च उवसमं भनियं) उनका जन्म व मरण दोष सब शांत होगया है। क्योंकि आगेके लिये किसी आयुका बंध नहीं है।

भावार्थ—श्री अरहंत भगवानका मन चंचल नहीं है। इससे वहां कोई आश्चर्य नहीं होसक्ता है न वहां कोई आलस्यका कारण है। इससे निद्रा नहीं होती है। वे प्रमादको पहले ही जीत चुके

हैं। निद्रा प्रमादका एक भेद है। वे केवल मनुष्य आयु भोग रहे हैं। आगेकी आयुकी कोई सत्ता नहीं है। इसलिये फिर उनका किसी शरीरमें जन्म नहीं होगा। वे अरहंत परमात्मा अपने आत्म स्वभावमें परम वीतरागता सहित लीन हैं। अब उनके कोई संसारीक पर्याय नहीं होनेवाली है। इससे वे जन्म मरणादिसे रहित हैं।

अठ दह दोस विमुक्कं, ज्ञान सहावेन दोष परिचत्तो।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, उप्पनं विमल केवलं ज्ञानं ॥६४४॥

अन्वयार्थ—(अठ दह दोस विमुक्कं) अरहंत भगवान क्षुधा आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं (ज्ञान सहावेन दोष परिचत्तो) वे ज्ञान स्वभावमें लीन हैं, इससे उनमें कोई रागादि दोष नहीं हैं। (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) उनका ज्ञान सर्व ज्ञानावरण कर्मके उदयसे रहित होकर ज्ञान-स्वरूप होगया है (विमल केवलं ज्ञानं उप्पन्नं) उनको परम शुद्ध केवलज्ञान उत्पन्न होगया है।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके भीतर सर्वज्ञपना व वीतरागपना अवश्य होता है। इसलिये उनमें क्षुधादि १८ दोष नहीं होते हैं। ग्रन्थकर्ताने ६३७ गाथासे ६४४ तकमें क्षुधा, तृषा, भय, राग, मोह, चिंता, जरा, मरण, स्वेद, खेद, मद, रति (अरति), विस्मय, जन्म, निद्रा; इन पन्द्रह दोषोंको गिनाया है। रोग, द्वेष विषद क्रमसे जरा, भय तथा खेदमें गर्भित होसक्ते हैं।

सयोग केवली अर्हंत।

संजोगे केवलिनो, तेरहमे गुण ठान ज्ञान संजुत्तो।
अप्पा अप्प सरूवं, अरुहो देओ मुने अव्वा ॥ ६४६ ॥

अन्वयार्थ—(संजोगे केवलिनो) योग सहित सयोगी केवली भगवानके (ज्ञान संजुत्तो तेरहमे गुण ठान) केवलज्ञान सहित तेरहवां गुणस्थान होता है (अप्पा अप्प सरूवं) आत्माके घातक चारों कर्मोंके क्षयसे उनका आत्मा आत्म-स्वरूप मय निर्मल होगया है (अरुहो देओ मुने अव्वा) उनको ही पूजने योग्य अर्हंतदेव मानना चाहिये।

भावार्थ—अठारह दोष रहित परम वीतराग सर्वज्ञ देव श्री अर्हंत भगवान तेरहवें सयोग-केवली गुणस्थानमें होते हुए अपने निज शुद्ध स्वरूपमें लीन रहते हैं, उनमें कुदेवोंके कोई भी दोष नहीं हैं। इसलिये जिनको परमात्माका आदर्श सामने रखके मोक्षमार्गपर चलना है उनको उचित है कि ऐसे ही पूज्यनीय अर्हंतदेवको अपना देव माने।

आहारोय सरीरो, अतिन्द्री ज्ञान आहार संजुत्तो।
चौद्स प्रान सरूवं, अप्पा परमप्प लद्ध सद्भावं॥ ६४७॥

अन्वयार्थ—(आहारोय सरीरो) अर्हंत भगवानके आहारक वर्गणाओंसे बना हुआ परम शुद्ध औदारिक शरीर होता है (अतिन्द्री ज्ञान आहार संजुत्तो) उनके इन्द्रियोंके द्वारा ज्ञान न होकर अतीन्द्रिय केवलज्ञानका ग्रहण है, यही एक आहार है (चौदस प्राण सरूवं) उनके द्रव्येन्द्रिय व द्रव्य मन तो है, परन्तु उपयोग इनके द्वारा काम नहीं करता है इससे दस प्राण द्रव्य अपेक्षा लेनेपर भी कार्यकी अपेक्षा छः प्राण रहित मात्र चार प्राण हैं। वचन बल, काय बल, आयु और श्वासोच्छ्वास (अप्पा परमप्प लद्ध सद्भावं) उनकी आत्मा परमात्मारूप अपने स्वभावको प्राप्त किये हुए रहती है।

भावार्थ—केवली भगवानके परम शुद्ध औदारिक शरीर होता है। वाणी खिरती है इससे वचन बल प्राण है। विहार होता है इससे काय बल प्राण है। मंद श्वास होता है इससे श्वासोच्छ्वास प्राण है। आयु कर्मका उदय है इससे आयु प्राण है। पांच इन्द्रिय व द्रव्य मन है उनको भी लेकर दस प्राण कह सक्ते हैं। भाव इन्द्रिय व भाव मन नहीं है इससे चार प्राण ही कहे जाते हैं। अर्हंत भगवान सकल परमात्मा परम पूज्य हैं।

वाहि जर दोष रहिओ, आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो।
ज्ञान आहार संजुत्तो, ज्ञानेन ज्ञान अप्प परमप्पा॥ ६४८॥

अन्वयार्थ—(वाहि जर दोष रहिओ) अर्हंत भगवान बाहर जराके दोषसे रहित हैं (आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो) आहार व निहारसे रहित शुद्ध हैं (ज्ञान आहार संजुत्तो) ज्ञानरूपी आहारको करनेवाले हैं (ज्ञानेन ज्ञान अप्प परमप्पा) ज्ञानके द्वारा ज्ञानका वे अनुभव कर रहे हैं उनकी आत्मा परमात्मारूप है।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके बाहर शरीरपर बुढापेके चिन्ह नहीं दीखते हैं। युवान पुरुषके चिह्न दिखलाई पडते हैं। वे न तो साधारण मानवोंकी तरह भोजन करते हैं न उनके मल-मूत्रादिका नीहार होता है। वे निरन्तर ज्ञानके द्वारा ज्ञानका स्वाद लेते हुए परमात्मारूप रहते हैं। उन हीको आदर्श देव मानके पूजना व भजना चाहिये।

एरिय गुने हि सुद्धो, अयसय वर ज्ञान दंसनं समगं।
पडिहारं संजुत्तं, भावन भावंति अमल अरहंतं ॥ ६४९ ॥

अन्वयार्थ—(एरिस गुने हि सुद्धो) ऐसे गुणोंके धारी वीतराग (अयसय वर ज्ञान दंसनं समगं) चौंतीस अतिशय अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यमई (पडिहारं संजुत्तं) आठ प्रातिहार्य सहित (अमल अरहंतं) घाति मल रहित अर्हंत होते हैं (भावन भावंति) उनकी भावना भानी चाहिये।

भावार्थ—श्री तीर्थङ्कर अर्हंत भगवानकी अपेक्षा यहां अर्हंतकी महिमा कह रहे हैं। जैसे वे १८ दोष रहित होते हैं वैसे वे ४६ गुण सहित होते हैं। चौंतीस अतिशय + चार अनन्त चतुष्टय + आठ प्रातिहार्य। उनके नाम नीचे प्रकार हैं—

जन्मके १० अतिशय—(१) खेदरहितपना, (२) मलरहितपना, (नीहार नहीं), (३) दूध समान रुधिर, (४) वज्रवृषभनाराच संहनन, (५) समचतुरस्र संस्थान, (६) सुन्दर रूप, (७) सुगन्ध तन, (८) १००८ लक्षण, (९) अतुल वीर्य, (१०) प्रिय वैन।

केवलज्ञानके समय १० अतिशय—(१) ८०० कोस सब तरफ दुर्भिक्ष न होना, (२) आकाशमें प्रभुका गमन, (३) जीव वध न हो जहां समवशरण हो, (४) ग्रास रूप आहारका न होना, (५) उपसर्ग न होना, (६) चार मुख समवशरणमें दीखना, (७) सर्व विद्याका ईश्वरपना, (८) शरीरकी छाया न पडना, (९) नख केश नहीं बढना, (१०) पलकोंका न लगना।

देवकृत १४ अतिशय—(१) अर्ध मागधी वाणीका खिरना, (२) विरोधी जीवोंका समवशरणमें वैर न रहना, (३) षटरितुके फल फूल खिलना, (४) मंद सुगन्ध पवन चलना, (५) दर्पण रूप भूमि होना, (६) सुगन्धित जलकी वर्षा, (७) कंटक रहित भूमि, (८) सुवर्ण कमलोंपर प्रभुका विहार, (९) फलोंके भारसे नम्रीभूत धान्य, (१०) आकाशकी निर्मलता, (११) देवोंके जय जयकार शब्द,

(१२) धर्मचक्रका आगे चलना, (१३) आठ मंगल द्रव्यका रहना, (१४) सब प्राणियोंमें सुख रहना।

चार चतुष्टय—(१) अनन्त दर्शन, (२) अनन्त ज्ञान, (३) अनन्त सुख, (४) अनन्त वीर्य।

आठ प्रतिहार्य—धम्मरसायणमें पद्मनन्द मुनि कहते हैं—

सिंहासन छत्तत्तय दिव्वोधुणि पुप्फविट्ठि चमराइं। भामण्डल दुन्दुहिओ, वरतरु परमेट्ठि चिन्हूतथं ॥ १२१ ॥

भावार्थ—(१) अशोक वृक्ष, (२) सिंहासन, (३) तीन छत्र, (४) दिव्यध्वनि, (५) पुष्पवृष्टि, (६) चौसठ चमर ढरना, (७) भामण्डल, (८) दुन्दुभी वाजोंका बजना।

इन ४६ गुण सहित ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय चार घातीय कर्म मल रहित अरहन्त भगवान होते हैं। उनका ध्यान करना योग्य है।

अरहंतो अरुहो देओ, रहिओ संसार सरनि विगतोयं।
विगतं अज्ञानमयं, ज्ञान सहावेन तिलोय दर्संतो ॥ ६५० ॥

अन्वयार्थ—(अरहंतो अरुहो देओ) अरहन्त भगवान पूज्यनीय देव हैं (संसार सरनि रहिओ) वे संसारके भ्रमणसे छूट गए हैं (विगतोयं) चारों गतिके गमनसे रहित हैं (अज्ञानमयं विगतं) अज्ञानमई भाव जिनके नष्ट होगया है (ज्ञान सहावेन तिलोय दर्संतो) जो ज्ञान स्वभावसे तीन लोकको देखनेवाले हैं।

भावार्थ—श्री अरहन्त भगवान मोहादि कर्मोंसे रहित होनेके कारणसे संसारके भ्रमणसे मुक्त होगए हैं। उनमें न कोई अज्ञान है न मोह है। वे त्रिलोकदर्शी केवलज्ञानी वीतराग परमात्मा पूजने योग्य हैं।

अरुहं अरुह सरूवं, ज्ञानबलेन तिलोय सम सुद्धं।
सम्यक्दर्सन दर्सं, उत्पन्नं अमल केवलं ज्ञानं ॥ ६५१ ॥

अन्वयार्थ—(अरुहं अरुह सरूवं) अरहन्त भगवान पूज्यनीय स्वभावके धारी हैं (ज्ञानबलेन तिलोय सम शुद्धं) आत्मज्ञानके बलसे तीन लोकमें समताभावके धारी शुद्ध हैं (सम्यक्दर्सन दर्सं) क्षायिक सम्यग्दर्शनके अनुभव करनेवाले हैं (अमल केवलं ज्ञानं उत्पन्नं) उनको निर्मल केवलज्ञान पैदा होगया है।

भावार्थ—अरहन्त भगवान रागद्वेष रहित समदर्शी वीतराग, परम निर्मल सम्यक्तके धारी, केवलज्ञानी, पूज्यनीय देव हैं।

अरुहो देओ झायदि, ह्रींकारे सुद्ध दंसनं अमलं।
अमलं अमल सहावं, अरुहो देओ सुद्ध ज्ञानसंजुत्तो ॥ ६५२ ॥

अन्वयार्थ—(अरुहो देओ झायदि) अरहन्त देवका ध्यान करना चाहिये (ह्रींकारे सुद्ध दंसनं अमलं) ह्रीं मंत्रके द्वारा शुद्ध निर्दोष सम्यग्दर्शनके धारी (अमलं अमल सहावं) चार घाति कर्म मल रहित निर्मल स्वभाव धारी (सुद्ध ज्ञानसंजुत्तो अरुहो देओ) शुद्ध आत्मध्यान सहित अरहन्त देवको मानना चाहिये।

भावार्थ—ह्रीं मंत्रको हृदय-कमलमें या नाशिकाके अग्रभागमें विराजमान करके उसके द्वारा श्री चौवीस तीर्थंकर अरहन्तका स्वरूप विचारना चाहिये कि वे निर्मल वीतराग आत्मा हैं, शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित हैं, अपने स्वभावमें लीन हैं, परम पूज्यनीय हैं। उनका ध्यान अपने ही शुद्ध आत्मामें है। अरहन्तके स्वरूपको विचारकर उसी समान अपने आत्माको शक्तिरूप मानना चाहिये। यह भी पुरुषार्थ करके उस पदपर पहुंच सक्ता है। जैसी भावना भावे वैसा फल होता है। अरहन्त भगवानकी स्तुति मन लगाकर करना चाहिये। उनके गुणानुवाद तन्मय होकर गाना चाहिये। उनकी भक्तिमें अपनेको भूल जाना चाहिये। अरहन्तकी भक्ति परम कल्याणकारी है।

सिद्ध परमेष्ठी।

सिद्धं सिद्धि संपत्तं, अट्ठ गुनं ज्ञान केवलं सुद्धं।
अट्ठमि पुहमि समियं, सिद्ध सरूवं च सिद्धि संपत्तं ॥ ६५३ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धि संपत्त सिद्धं) सिद्ध भगवानने सिद्धपनेकी संपत्तिको सिद्ध कर लिया है (अट्ठ-गुनं) आठ गुण सहित है (केवलं सुद्धं) पर वस्तुके सम्बन्ध रहित केवल शुद्ध स्वरूप हैं (अट्ठमि पुहमि समियं) आठवीं पृथ्वीपर विराजित हैं (सिद्ध सरूवं च सिद्ध संपत्तं) ऐसी सिद्धिको प्राप्त श्री सिद्ध स्वरूप आत्मा है।

भावार्थ—अब श्री सिद्ध भगवानका स्वरूप बताते हैं। जो कुछ सिद्ध करना था उसको जो सिद्ध कर चुके उनको सिद्ध कहते हैं। जब सर्व आठों कर्म व उनके फलस्वरूप भावकर्म व शरीरादि

नोकर्म छूट जाते हैं तब केवल एक आत्मा परसे भिन्न रह जाता है, उसहीको सिद्ध कहते हैं। वे सर्वज्ञ वीतराग हैं, उनमें अनंत गुण होते हैं, जिनमें आठ गुण प्रसिद्ध हैं। वे सिद्ध भगवान ऊर्ध्वगमन स्वभावसे ऊपरको जाकर तीन लोकके अग्रभागमें तनू वातवलयमें सिद्ध-शिलाकी सीधमें तिष्ठते हैं। सिद्ध-शिला पैतालीस योजन चौडी नीचे रह जाती है। इसको आठमी पृथ्वी कहते हैं। रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वी मध्यलोकसे लेकर सातवें नर्क पर्यंत चली गई हैं।

सम्मत्त ज्ञान दंसन, बलवीरिय सुहम धम्म सहियं च।
अवगाहन गुणसमिधं, अगुरुलघु तिलोय निम्मलं विमलं ॥६५४॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्त ज्ञान दंसन) सम्यग्दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, (बलवीरिय) अनंतवीर्य, (सुहम धम्म सहियं च) सूक्ष्मपना धर्म सहित (अवगाहन गुणसमिधं) अवगाहन गुण सहित (अगुरुलघु तिलोय निम्मलं विमलं) अगुरुलघु गुण सहित तीन लोक द्वारा बाधा रहित ऐसे शुद्ध आत्मा सिद्ध भगवान हैं।

भावार्थ—यहां सिद्ध भगवानके आठ मुख्य गुण बताएँ हैं-मोहनीय कर्मके नाशसे कषाय रहित निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रगट है। ज्ञानावरणके नाशसे अनन्तज्ञान, दर्शनावरणके नाशसे अनन्त दर्शन, अंतरायकर्मके नाशसे अनंतवीर्य, नामकर्मके नाशसे सूक्ष्मता, आयुकर्मके नाशसे अवगाहन गुण, गोत्रकर्मके नाशसे अगुरु लघु, वेदनीयके नाशसे अव्याबाध गुण ऐसे आठ गुणधारी शुद्ध आत्मा है।

सिद्धं सहाव सुद्धं, केवलदंसन च ज्ञान संपन्नं।
केवल सुकिय सुभावं, सिद्धं सुद्धं मुनेयव्वा ॥ ६५५ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं) श्री सिद्ध भगवान (सहाव सुद्धं) स्वभावसे शुद्ध हैं (केवलदंसन च ज्ञान संपन्नं) केवलदर्शन व केवलज्ञानसे पूर्ण हैं (केवल सुकिय सुभावं) केवल अपने ही स्वभावमें हैं (सुद्धं सिद्धं मुनेयव्वा) ऐसे शुद्ध आत्माको सिद्ध जानना चाहिये।

भावार्थ—श्री सिद्ध महाराज उस आत्माको कहते हैं जहां कोई पर द्रव्यका सम्बन्ध नहीं है, जहां आत्माका अपना ही स्वभाव झलक रहा है, निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव द्वारा सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हुए भी आत्मामें ही रममाण हैं, परमानन्दका भोग कर रहे हैं।

षट् दव्व दव्व सुद्धं, काया पंचात्थि विमल सुपसिद्धं ।
तत्वं सप्त सरूवं, पदार्थ पदविंदं केवलं ज्ञानं ॥ ६५६ ॥

चौदस पाण विसुद्धं, अतिन्द्रिय ज्ञान सयल संमिद्धं ।
नंत चतुष्टय सहियं, सिद्धं सुद्धं च सिद्धि संपत्तं ॥ ६५७ ॥

अन्वयार्थ—(षट् दव्व दव्व सुद्धं) छःद्रव्योंमेंसे शुद्ध आत्म-द्रव्य सिद्ध हैं (काया पंचात्थि विमल सुपसिद्धं) पांच अस्ति कायोंमें निर्मल शुद्ध जीव अस्तिकाय हैं (तत्वं सप्त सरूवं) सात तत्वोंमेंसे शुद्ध जीव तत्व स्वरूप हैं (पदार्थ) नौ पदार्थोंमें शुद्ध जीव पदार्थ हैं (पदविंदं) ॐ मंत्रमें बिंदु स्वरूप है (केवलं ज्ञानं) केवलज्ञानाकार है (चौदस पाण विसुद्धं) न वहां चार प्राण हैं न दश प्राण हैं (अतिंद्रिय ज्ञान सयल संमिद्धं) पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञानसे समृद्ध हैं (नन्त चतुष्टय सहियं) अनन्त चतुष्टय सहित हैं (सुद्धं च सिद्धि संपत्तं) शुद्ध हैं ऐसे सिद्धिको प्राप्त श्री सिद्ध भगवान हैं।

भावार्थ—यहां बताया है कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश इन छः द्रव्योंमेंसे सिद्ध भगवान पांच अजीवोंसे रहित शुद्ध जीव द्रव्य हैं। कालको छोडकर पांच द्रव्योंको पंचास्तिकाय कहते हैं क्योंकि ये पांच बहु प्रदेशी हैं। इनमें शुद्ध जीवास्तिकाय सिद्ध भगवान हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंमें एक शुद्ध आत्म-तत्व सिद्ध भगवान हैं। पुण्य पाप सहित नौ पदार्थोंमें भी शुद्ध आत्मपदार्थ सिद्ध हैं। ॐके चंद्राकारमें चिन्हसे लक्षित हैं शरीरका सम्बन्ध न रहनेसे इंद्रिय, बल, आयु, श्वासोछ्वास ये चार प्राण या इनके दस भेदरूप प्राण जो शरीराश्रित हैं वे सिद्ध भगवानमें नहीं हैं इसीसे अमूर्तीक हैं। इंद्रियोंकी सहायता रहित अतीन्द्रिय ज्ञानके धारी, अनंत सुखी, अनंत बली, परम शुद्ध सर्वसिद्धिको प्राप्त श्री सिद्ध भगवान हैं उनका ध्यान करना चाहिये। अपने आत्माको सिद्धवत् अनुभव करके परमानन्द प्राप्त करना चाहिये।

चौदह गुणस्थान ।

मिथ्या सासन मिस्सो, अविरे देसव्रत सुद्ध समिद्धं ।
प्रमत्त अप्रमत्त भनियं, अपूर्वकरन सुद्ध संसुद्धं ॥ ६५८ ॥
अनिवर्त सूक्ष्मवतो, उवसंत कषाय क्षीण सुसमिदो ।
सजोग केवलिनो, अजोग केवली हुंति चौदसमो ॥ ६५९ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या सासन मिस्सो) १–मिथ्यात्व, २–सासादन, ३–मिश्र (अविरे देसव्रत सुद्ध समिद्धं) ४–अविरत सम्यग्दर्शन, ५–देशव्रत जो शुद्धता सहित है (प्रमत्त अप्रमत्त भनियं) ६–प्रमत्तविरत, ७–अप्रमत्तविरत कहा गया है (अपूर्वकरन सुद्ध संसुद्धं) ८–अपूर्वकरन जो परम शुद्ध है (अनिवर्त सूक्ष्मवतो) ९–अनिवृत्तिकरन, १०–सूक्ष्म लोभ (उवसंत कषाय क्षीन सु समिद्धो) ११–उपशांत कषाय, १२–क्षीण कषाय जहां कषाय भलेप्रकार क्षय होगई हैं (सजोग केवलिनो) १३–सयोग केवली जिन (अजोग केवली चौदसमो हुंति) १४–अयोग केवली जिन चौदहवां गुणस्थान है ।

भावार्थ—मोहनीयकर्म और योगके सम्बन्धसे चौदह गुणस्थान हैं । दसवें गुणस्थान तक मोह और योग दोनोंका सम्बन्ध है। ग्यारहवेंसे तेरहवेंका योगका ही सम्बन्ध है । चौदहवेंमें योग भी चंचल नहीं है ।

पहले पांच गुणस्थान परिग्रह धारियोंके होते हैं, छठेमे बारहवें तक परिग्रह त्यागी निर्ग्रंथ साधुओंके होते हैं। तेरहवां व चौदहवां गुणस्थान अरहंत केवली भगवानके ही होते हैं। सिद्ध भगवान सर्व गुणस्थानोंसे बाहर हैं ।

श्री गोमटसार जीवकांडमें कहा है—

जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु सम्भवेहिं भावेहिं । जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥ ८ ॥

भावार्थ—दर्शन मोहनीयादि कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाके होनेपर होनेवाले परिणामोंसे युक्त जो जीव होते हैं, उन जीवोंको सर्वज्ञ देवने उसी गुणस्थानवाला और

परिणामोंको गुणस्थान कहा है। इन गुणस्थानोंसे जीवके परिणामोंकी अशुद्ध व शुद्ध अवस्थाएँ मालूम पडती हैं।

मोहनीय कर्मके २८ भेद हैं–तीन दर्शन मोहनीय कर्म, मिथ्यात्व, सम्यक्त मिथ्यात्व ३ सम्यक्प्रकृति,। चारित्र मोहनीयके २५ भेद हैं–१६ कषाय, ९ नोकषाय। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद ये नौ नौ या इषत् या कम कषाय हैं। अनन्तानुबन्धी व मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। केवल अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे सासादन गुणस्थान होता है। मिश्र दर्शनमोहनीयके उदयसे तीसरा होता है। मिथ्यात्व एक या तीनों दर्शनमोहनीयके उपशम, क्षय, या क्षयोपशमसे तथा अनन्तानुबन्धीके उदय न होनेसे चौथा अविरत गुणस्थान होता है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यग्दर्शनकी व स्वरूपाचरणकी घातक हैं। श्रावक व्रतको रोकनेवाले अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदय न होनेसे पांचमा देशव्रत गुणस्थान होता है। सर्व त्यागको रोकनेवाले प्रत्याख्यानावरण कषायके उदय न होनेसे प्रमत्तविरत साधुका गुणस्थान होता है। संज्वलन चार कषाय तथा नौ नोकषायका मंद उदय होनेसे अप्रमत्त गुणस्थान होता है। इन्हींके अति मंद उदयपर अपूर्वकरण गुणस्थान होता है। जब चार संज्वलन कषाय व तीन वेदका ही उदय रह जाता है तब अनिवृत्तिकरण गुणस्थान होता है। जब केवल सूक्ष्म लोभका उदय रहता है तब दसवां गुणस्थान होता है। सर्व चारित्रमोहके उपशमसे ग्यारहवां व उसके क्षयसे बारहवां गुणस्थान होता है। चार घातीय कर्मोंके क्षयसे तेरहवां व योगोंके न रहनेपर चौदहवां गुणस्थान होता है।

ए चौदस गुनठानं, हुंति स सहाव सुद्ध मप्पानं।
अप्प सरूवं पिच्छदि, अप्पापरमप्प केवलं ज्ञानं ॥ ६६० ॥

अन्वयार्थ—(ए चौदस गुनठानं) ये ऊपर कहे प्रमाण चौदह गुणस्थान (स सहाव सुद्ध मप्पानं हुंति) अपने स्वभावसे शुद्ध आत्माके ही होते हैं (अप्पा अप्प सरूवं पिच्छदि) जब आत्मा अपने आत्माके स्वभावका अनुभव करता है तब (केवलं ज्ञानं परमप्पा) केवलज्ञानको पाकर परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा स्वभावसे शुद्ध है तथापि संसार अवस्थामें कर्मोंके मैलके निमित्तसे ये चौदह श्रेणिया जीवोंके भावोंकी होजाती हैं। इनमेंसे जिस श्रेणीसे यह आत्मा अपने आत्मस्वरूपको अनुभव करने लगता है उस श्रेणीसे चढ़ता हुआ बारहवेके अंतमें केवलज्ञानको पाकर परमात्मा होजाता है।

तत्वं च दव्व कायं, पदार्थ सुद्ध परम मप्पानं।
हेय उपादेय च गुनं, वर दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं ॥ ६६१ ॥

अन्वयार्थ—(तत्वं च दव्व कायं) सात तत्व, छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय (पदार्थ सुद्ध परम मप्पानं) नव पदार्थ तथा शुद्ध परमात्माको जानकर (हेय उपादेय च गुनं) जो आत्मासे भिन्न तत्व है वह त्यागने योग्य हेय है। आत्माका जो गुण है वह ग्रहण करने योग्य उपादेय है (वर दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं) श्रेष्ठ व शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्र ही उपादेय हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवका कर्तव्य है कि सात तत्व आदिको समझकर उसमें भेदविज्ञानके द्वारा विचार करे तो विदित होगा कि सात तत्व व नौ पदार्थ जीव और कर्म पुद्गलके बन्ध व मोक्षकी अपेक्षासे ही बने हैं। कर्मोंका आना आस्रव है, कर्मोंका बन्ध बन्ध है। कर्मका रुकना संवर है, कर्मका झडना निर्जरा है, सर्व कर्मोंका छूट जाना मोक्ष है। पुण्य कर्म प्रकृति पुण्य है, पाप कर्म प्रकृति पाप है तब कर्म पुद्गल हेय है, एक शुद्धात्मा उपादेय है। छः द्रव्य व पांच अस्तिकायोंमें भी एक शुद्ध जीव द्रव्य या जीव अस्तिकाय ही ग्रहण करने योग्य है। आत्माके स्वभावका श्रद्धान ज्ञान व चारित्र ही निश्चय रत्नत्रय है। जो आत्मानुभवरूप है यही मोक्षका मार्ग है, ऐसा सम्यक्ती समझता है।

टंकोत्कीर्न अप्पा, दंसन मल मूढ़ विरय अप्पानं।
अप्पा परमप्प सरूवं, सुद्धं ज्ञानमय ममल परमप्पा ॥ ६६२ ॥

अन्वयार्थ—(टंकोत्कीर्न अप्पा) टांकीसे उकेरी हुई मूर्तिके समान अविनाशी, स्वभावसे अमिट यह आत्मा है (दंसन मल मूढ विरय अप्पानं) दर्शन मोहनीय कर्ममलकी मूढ़तासे रहित यह आत्मा है (अप्पा परमप्प सरूवं) आत्मा परमात्म स्वरूप है (सुद्धं ज्ञान मयं) शुद्ध ज्ञानमई है (ममल परमप्पा) कर्ममलरहित परमात्मा है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी आत्माको शुद्ध निश्चयनयके द्वारा ऐसा अनुभव करता है कि यह सदा रहनेवाला है। त्रिकाल एकरूप द्रव्यस्वरुप है, द्रव्यका स्वभाव कभी मिटता नहीं। दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे जो मिथ्यात्वभाव होता है वह मिथ्यात्वभाव आत्मामें नहीं है। सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है। जिससे इस आत्माको अपने आत्माके सच्चे स्वरूपकी यथार्थ प्रतीति है। यह आत्मा निश्चयसे परमात्मा स्वरूप है, शुद्ध है, ज्ञानमई है, वीतराग है, कर्ममलरहित निरंजन स्वयं परमात्मारूप ही है।

रूवं भेय विज्ञानं, नय विभागेन सद्दहं सुद्धं।
अप्पसरूवं पिच्छदि, नय विभागेन सार्द्ध दिट्ठं ॥ ६६२ ॥

अन्वयार्थ—(भेयविज्ञानं) भेदविज्ञान (नयविभागेन सुद्धं रूवं सद्दहं) निश्चयनयके द्वारा परसे विभाग करके अपने शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान रखता है (नयविभागेन सार्द्ध दिट्ठं) नय विभागके साथ जो निर्मल दृष्टि है वह (अप्पसरूवं पिच्छदि) आत्माके स्वरूपको यथार्थ देखती है।

भावार्थ—जैन सिद्धांतमें निश्चयनय तथा व्यवहारनयके द्वारा आत्माके जाननेका उपदेश है। व्यवहारनय पर्याय दृष्टि है-नैमित्तिक अवस्था या भावोंको आत्माकी हैं ऐसा बतानेवाली है इसलिये यह नय अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। द्रव्यका सत्य निजस्वरूप नहीं बताती है जबकि निश्चयनय द्रव्य दृष्टि है। द्रव्यके मूल स्वरूपको अर्थात् उसके स्वभावको परसे भिन्न बतानेवाली है। व्यवहारनयसे देखनेपर यह आत्मा वर्तमानमें अशुद्ध है, रागी द्वेषी है, कर्ममलसहित है, ऐसी झलकती है।

निश्चयनयसे यह आत्मा शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप है, वीतराग है, विकार रहित है, परमानन्द स्वरूप है, परमात्मारूप है। दोनों नयोंसे पदार्थको जानकर निश्चयनयके द्वारा आत्माको अनात्मासे भिन्न जानना भेदविज्ञान है। जैसे धान्यको निश्चयनयसे देखनेपर चावल अलग भूसी अलग दिखलाई देगी। गंदे जलको देखनेसे जल अलग व मिट्टी अलग दिखलाई देगी। तिलोंमें तेल अलग व छिलका अलग दिखलाई देगा, इसी तरह अपने ही आत्माको देखनेसे निश्चयनय आत्माको अलग और कर्मोंको व शरीरको अलग दिखाएगा। इस तरह जो भेदविज्ञानसे अपने आत्माको शुद्ध देखता है, श्रद्धान करता है तथा अनुभव करता है वही सम्यग्दर्शनका धारी है।

मिथ्यात्व गुणस्थान ।

उग्गवत तवादि जुत्तं, तववय क्रिया श्रुतं च अज्ञानं ।
मिच्छात दोस सहियं, मिच्छात गुनस्थान व्रत संजुतं ॥ ६६४ ॥

अन्वयार्थ—(उग्गवत तवादि जुत्तं) बहुत कठिन व्रत तप आदि सहित हो परन्तु (मिच्छात दोस सहियं) मिथ्यात्वके दोष सहित हो तो (तव वय क्रिया श्रुतं च अज्ञानं) तप, व्रत, क्रिया व शास्त्र ज्ञान सब मिथ्या ज्ञान सहित हैं (व्रत संजुत्तं मिथ्यात गुनस्थानं) वह व्रती होकर भी मिथ्यात्व गुणस्थान वाला है।

भावार्थ—ऊपर कही गाथाओंमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया है जिसके आपा परका भेद विज्ञान नहीं है जो आत्माको परसे भिन्न अनुभव नहीं कर सक्ता है वही मिथ्यात्व गुणस्थानका धारी पर्याय बुद्धि बहिरात्मा है उसके मिथ्यात्व कर्म व अनन्तानुबन्धी कषायका उदय विद्यमान है। वह चाहे बहुत बड़े तपस्वी हो-महाव्रत या अणुव्रतका धारी है। बहुत क्रियाकांडमें मगन हो या बहुत शास्त्रोंका ज्ञाता हो तथापि मिथ्यात्व सहित उसका यह सब कार्य अज्ञानमय हैं। क्योंकि उसको न तो मोक्षका न तो मोक्षमार्गका सच्चा श्रद्धान है। उसके भीतर विषय कषायका कोई अभिप्राय अवश्य मौजूद है जिसके वशीभूत होकर वह व्यवहार चारित्र पाल रहा है। वह आत्मीक रसके स्वादसे बाहर है।

श्री गोम्मटसारमें इस गुणस्थानका स्वरूप यह कहा है—

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विपरीयदंसणो होदि। ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खुरसं जहा जरिदो ॥ १७ ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वभावको अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धान सहित होता है। उसको आत्मीक सच्चा धर्म उसी तरह नहीं रुचता है जैसे ज्वरसे पीडित मानवको मधुर रस नहीं रुचता है। अनादिकालसे जो जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें पड़े हैं उनके मिथ्यात्वकर्म व अनंतानुबंधी कषायका उदय है वे अनादि मिथ्यादृष्टी हैं। जो सम्यक्तको पाकर फिर मिथ्यात्व गुणस्थानमें आते हैं उनके किसीके दर्शनमोहकी तीनों प्रकृति व अनंतानुबन्धी कषाय सात प्रकृतिका व किसीके पांचका ही उदय रहता है। मिथ्यात्व गुणस्थान ही संसारके भ्रमणका मूल है।

सासादन गुणस्थान।

एवं च गुन विसुद्धं, असुह कुभाव संसार सरनि मोहंधं।
अप्प गुनं नहु पिच्छदि, संसय रूवेन दुभाव संजुत्तं ॥ ६६५ ॥
अप्पा परु पिच्छंतो, संसय रूवेन भावना जुत्तो।
अंतराल व्रतीओ, न भुवनि न सिहरि वे संतो । ६६६ ॥

अन्वयार्थ—(एवं च गुन विसुद्ध अप्प गुनं नहु पिच्छदि) जो कोई ऊपर कथित शुद्ध गुणोंके धारी आत्माके स्वभावको नहीं अनुभव करता है किंतु (असुह कुभाव संसार सरनि मोहंधं) अशुभ खोटे भाव मई संसारके मार्गके मोहमें अन्धा होजाता है (संसय रूवेन दुभाव संजुत्तं) अथवा संशय करता हुआ दुकोटि भावमें फंस जाता है अर्थात् (अप्पा परू पिच्छंतो) आत्मा व पर पदार्थको जानता हुआ (संसय रूवेन भावना जुत्तो) संशयमय होकर निर्णय रहित भावोंमें उलझ जाता है (अंतराल व्रतीओ) वह सम्यग्दर्शनका व्रतधारी सम्यग्दर्शनसे गिरकर मिथ्यात्वमें आते हुए बीचकी अवस्थाका धारी है (न भुवनि न सिहरि वे संतो) न तो वह जमीनपर है न वह शिखरपर है, बीचमें है। यही सासादन गुणस्थानका स्वरूप है।

भावार्थ—जब किसी उपशम सम्यग्दर्शनके धारी चौथे गुणस्थानवर्ती जीवके मिथ्यात्वका उदय तो न आया हो किंतु अनन्तानुबन्धी किसी कषायका उदय आगया हो तो वह सम्यग्दर्शनके शिखरसे गिरता है और मिथ्यात्वकी भूमिपर आरहा है, बीचके परिणामोंको सासादन गुणस्थान कहते हैं। न यहां सम्यक्त है न वहां मिथ्यात्व है। बीचमें कैसे भाव होते हैं सो यहां बताया है कि अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे या तो किसी इन्द्रिय विषयकी तीव्र इच्छामें, या किसी अभिमानमें या किसी विरोधीके साथ द्वेष भावमें या किसी विषय प्राप्तिके लिये मायाचारमें फंस जाता है। खोटे संसारके मार्गके मोहमें अंधा हो जाता है या उसके भीतर संशय पैदा हो जाता है कि आत्मा है या नहीं या अनात्मा ही आत्मा है क्या, या आत्माका स्वरूप जैन सिद्धांत कहता है वह ठीक है या वेदांतादि कहता है वह ठीक है। यद्यपि न तो विपरीत

मिथ्यात्व न संशय मिथ्यात्व ही होता है। किंतु विपरीत या संशय मिथ्यात्वकी तरफ गिरता हुआ कोई न कहने योग्य भाव होता है। इसका काल अधिकसे अधिक छः आवली व कमसे कम एक समय होता है। यह नियमसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें गिर पडता है। गोम्मटसारमें कहा है—

आदिम सम्मत्तद्धा समयादो छावलित्ति वा सेसे। अण अण्णद रुदयादो णासिय सम्मोति सासणक्खो सो ॥ १९ ॥

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादोमिच्छभूमि समभिमुहो। णा सियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥ २० ॥

भावार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त या द्वितीयोपशम सम्यक्तकालमें जब एक समयसे लेकर छः आवली तक काल बाकी रहता है तब अनन्तानुबन्धी चार कषायोंमेंसे किसी एकका उदय आनेपर सम्यग्दर्शनसे गिर जाता है। सम्यक्तके रत्नमय पर्वतके शिखरसे गिरकर मिथ्यात्वकी भूमिमें आ-रहा है बीचके परिणामोंको सासादन गुणस्थान कहते हैं। आंखकी टिमकारसे भी कम काल एक आवलीमें लगता है। समय बहुत ही सूक्ष्म काल है, एक आंखकी टिमकारमें असंख्यात समय होजाता है।

मिश्र गुणस्थान।

मिश्रं मिश्र सहावं, षट्दर्सन सुभाव संजुत्तो।
अप्पा परु जानंतो, जैनोक्तं दंसनं ज्ञान बुझंतो ॥ ६६७ ॥

अन्वयार्थ—(मिश्रं मिश्र सहावं) मिश्र गुणस्थानका सम्यक्त मिथ्यात्वका मिला हुआ स्वभाव है (षट् दर्सन सुभाव संजुत्तो) ऐसा मिश्र गुणस्थानधारी छहों दर्शनोंके स्वभावोंको जानता है (जैनोक्तं दंसनं ज्ञान बुझंतो) तथा जैन शास्त्रमें कहे हुए जैनदर्शनके ज्ञानको भी रखता है (अप्पा परु जानंतो) आत्मा और परको भी जानता है परंतु उसका श्रद्धान मिला हुआ होता है।

न्याइक बौद्ध संजुत्तो, चारवाक सिव भट्ट पिच्छंतो।
षट्दर्सन मिश्रंतो, तव वयं काय तत्त जानंतो ॥ ६६८ ॥

अन्वयार्थ—(न्याइक बौद्ध संजुत्तो) मिश्र गुणस्थान धारी जैन दर्शनके साथ २ नैयायिक, बौद्ध, दर्शनको जानता है (चारवाक सिव भट्ट पिच्छन्तो) चारवाक दर्शन, शिव मत या सांख्य दर्शन, तथा भट्टके मीमांसक मतको जानता है (षट् दर्सन मिश्रतो) छहों दर्शनोंमेंसे छहोंके या किसी दो, तीन, चार, पांचके मिश्र भावको रखता हुआ (तव वयं काय तत्त जानंतो) तप, व्रत, पालता है व पंचास्तिकाय व सात तत्व जानता है। या छः कायोंके जीवोंको पहचानता है।

व्रत क्रिया संजुत्तो, तव संजम मिच्छ भाव संजुत्तो।
कुऔधि कुरिधि संजुत्तो, दधिगुड मिश्र भाव मिश्रंतो ॥ ६६९ ॥

अन्वयार्थ—(व्रत क्रिया संजुत्तो) व्रत व चारित्र पालता है (तव संजम) तप व संयम धारण किए हुए हैं तथापि (मिच्छ भाव संजुत्तो) मिथ्यात्वके भाव सहित है (कुऔधि कुरिधि संजुत्तो) उसे कुअवधि-ज्ञान व कुरिद्धियां भी होती हैं (दधि गुड मिश्र भाव मिश्रतो) दही गुडके मिश्र स्वादके अनुसार उसका भाव सम्यक्त व मिथ्यात्वसे मिला हुआ होता है।

रागमय मोह सहिओ, मिच्छा कुज्ञान सयल संजुत्तो।
पुन्य सहावे जुत्तो, रागमय मिश्र गुणस्थान संजुत्तो ॥ ६७० ॥

अन्वयार्थ—(रागमय मोह सहिओ) वह राग और मोह सहित होता है (मिच्छा कुज्ञान सयल संजुत्तो) मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान सहित होता है (पुन्य सहावेन जत्तो) पुण्यमई शुभ कार्योंमें लीन होता है (रागमय मिश्र गुणस्थान संजुत्तो) रागमई होता है, ऐसा मिश्र गुणस्थानधारी होता है।

भावार्थ—यहां चार गाथाओंमें मिश्र गुणस्थानका स्वभाव बताया है। वर्तमान कालके मानवोंकी अपेक्षा मिश्र भावको दिखलाते हुए तारणस्वामीने कहा है कि जो कोई जैन दर्शनके साथ२ बौद्ध, नैयायिक, चारवाक, सांख्य तथा पूर्व या उत्तर मीमांसाका भी श्रद्धान रखता है-जैनके साथ अन्य पांचका या चारका या तीनका या दोका या किसी एकका श्रद्धान हो वह मिश्र गुणस्थान है।

जैन शास्त्रानुसार व्रत, तप, क्रिया पालते हुए पर्यायबुद्धि रूपी मिथ्यात्व भाव भी सम्यक्तके साथ हो वह मिश्र गुणस्थान है। अवधि ज्ञानी व रिद्धि धारी कोई साधु चौथे या छठे या पांचवे

गुणस्थानसे गिरकर मिश्रमें आजाता है तब उसका अवधिज्ञान व रिद्धि लाभ भी मिश्र श्रद्धान सहित होजाता है। तब सुअवधि व सुरिद्धि लाभ नहीं रहता है। जैसे दही व गुडका स्वाद मिला हुआ रहता है, वैसे सम्यक्त व मिथ्यात्वका मिला हुआ कोई अनुभवगम्य श्रद्धान होता है, कोई जैन धर्मानुसार शुभ कार्य करता हो, परन्तु संसारका राग या मोहभाव, वैराग्यके साथमें आजावे व सच्चे ज्ञानके साथ मिथ्याज्ञान हो यह सब मिश्रगुणस्थानका स्वरूप जानना चाहिये। इस गुणस्थानमें मिश्र दर्शनमोहका उदय होता है। अनन्तानुबन्धी कषाय तथा मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता है। गोमटसारमें इसका स्वरूप बताया है—

दहिगुडमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं। एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छोत्तिणादव्वो ॥ २२ ॥

सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं। सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ २३ ॥

भावार्थ—जैसे दही और गुडको मिलानेपर मिला हुआ स्वाद आता है, अलग २ दोनोंका स्वाद नहीं आसक्ता है, उसी तरह सम्यक्त और मिथ्यात्वका मिला हुआ भाव मिश्र भाव है, यह तीसरा गुणस्थान एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं रहता है। यह मुनिव्रत व श्रावकके व्रतको नहीं ग्रहण करता है, यदि बाहरीमें पहलेसे हो तो वे यथार्थ नहीं होते हैं। इस गुणस्थानमें किसी आयु कर्मका भी बन्ध नहीं होता है न वहां मरण ही होता है। सम्यग्दर्शन या मिथ्या दर्शनमें आकर ही यह जीव मरता है। सादि मिथ्यात्वी भी चढकर मिश्र गुणस्थानी होसक्ता है और चौथे, पांचवें, छठेसे गिर करके भी यह गुणस्थान होता है। अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदय न होनेसे इसकी प्रवृत्ति तीव्र अन्याय रूप या तीव्र राग रूप या तीव्र पापरूप नहीं होती है। यह भद्र परिणामी होता है। परिणामोंकी जाति शुद्ध नहीं रहती है। निर्मल पानीमें कुछ मिट्टी मिला दी जाय ऐसी गंदली परिणति होजाती है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान।

अविरै सम्माइट्ठी जानै विच्छेद सुद्ध संमत्तं।

षट् दव्व पंच कायं, नव पयथ सप्त तत्त पिच्छंतो ॥ ६७१ ॥

अन्वयार्थ—(अविरै सम्माइट्ठी) अविरत सम्यक्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थानवर्ती (सुद्ध संमत्तं पिच्छेद) शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शनको अनुभव करता है (षट् दव्व पंच कायं नव पयथ सप्त तत्त पिच्छंतो) छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थ तथा सात तत्वपर श्रद्धान रखता है।

भावार्थ—चौथे गुणस्थानका स्वरूप यह है कि व्रत श्रावकके व मुनिके न होते हुए भी, संयमका नियम न होते हुए भी, जहां शुद्ध सम्यग्दर्शन हो वह अविरत सम्यग्दर्शन है। इस गुणस्थानधारीको आत्मा और अनात्माका सच्चा भेदविज्ञान होता है। वह शुद्ध आत्माको पहचानता है। आत्माके रसका स्वाद भी लेता है। व्यवहारमें उसको छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थ व जीवादि सात तत्वोंका जिनेंद्रके आगमके अनुसार दृढ पक्का श्रद्धान होता है।

अप्पसरूवं, पिच्छदि, वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छंतो।

सहकारे तव सुद्धं, हेय उपादेय जानए निश्चं ॥ ६७२ ॥

अन्वयार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव (अप्प सरूवं पिच्छदि) आत्माके स्वरूपको अनुभव करता है (वर दंसन ज्ञान चरन पिच्छंतो) निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका अनुभव करता है (सहकारे तव सुद्धं) सम्यग्दर्शनकी सहायतासे शुद्ध तप करता है (हेय उपादेय निश्चं जानए) त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्वको निश्चयसे यथार्थ जानता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवको भेदविज्ञान होता है इसलिये वह निज आत्माके स्वभावको ग्रहण कर लेता है और उसके सिवाय सर्व पर द्रव्य पर गुण पर पर्यायका त्याग कर देता है। वह जानता है कि निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही है। इसलिये सर्व पर पदार्थोंसे रागद्वेष त्यागकर परम समताभावमें लीन होकर निश्चिन्त होकर निज आत्माका ही अनुभव करता है। वह तप भी आत्मशुद्धिके लिये ही करता है। वह भूलकर भी निदान नहीं करता है।

सुद्धं सुद्ध सहावं, देवं देवाधि सुद्ध गुरु धम्मं ।
जानै निव अप्पानं, मल मुक्कं विमल दंसनं सुद्धं ॥ ६७३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सुद्ध सहावं देवाधिदेवं) सम्यग्दृष्टी जीव वीतराग व शुद्ध स्वभावधारी देवोंके देव श्री अर्हंत सिद्ध भगवानको देव (सुद्ध गुरु धम्मं) शुद्ध निर्दोष परिग्रह त्यागीको गुरु और वीतराग विज्ञानमई शुद्ध धर्मको धर्म निश्चय रखता है (निव अप्पानं जानै) अपने आत्माको पहचानता है (मल-मुक्कं विमल सुद्धं दंसनं) उसके ही पचीस मल दोष रहित निर्मल शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव ही सच्चे देव गुरु धर्मको पहचानता है। आत्मामें आत्मारूप रहनेवाले अर्हंत सिद्धको देव, आत्मरमी निर्ग्रंथको साधु, आत्मानुभवको धर्म जानता है। अपने आत्माको परमात्माके समान निर्विकार ज्ञातादृष्टा अनुभव करता है-सम्यक्तके २५ दोषोंको बचाता है। शुद्ध सम्यग्दर्शनका आचरण करता है।

पंचाचार विया नदि, परिनय सुद्ध भाव सम्मत्तं ।
जिन वयनं सद्दहनं, सद्दहनं सुद्ध अमल सम्मत्तं ॥ ६७४ ॥

अन्वयार्थ—(पंचाचार विया नदि) सम्यग्दृष्टी जीव पांच प्रकारके आचारको समझता है (परिनय सुद्ध भाव सम्मत्तं) शुद्ध भावकी श्रद्धामें परिणमन करता है (जिन वयनं सद्दहनं) श्री जिनेन्द्रकी वाणीका श्रद्धान रखता है (सुद्धं अमल सम्मत्त सद्दहनं) आत्मानुभूति रूप निश्चय निर्मल सम्यक्तका वह श्रद्धानी होता है।

भावार्थ—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पांच व्रतोंके आचरणसे जीवका हित होता है या दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य इन पांच आचारोंको पालना चाहिये। ऐसा दृढ श्रद्धान सम्यग्दृष्टीको होता है। उसके श्री जिनेन्द्रके आगमका पक्का विश्वास होता है। वह शुद्ध आत्माके रमणमें रुचि रखता हुआ उसीका अनुभव करता रहता है। वह यह भलेप्रकार समझता है कि निश्चय सम्यग्दर्शन वहींपर है जहां निर्मल आत्माके आनन्दका स्वाद लिया जावे।

रागादि दोस विरयं, असुद्धं परिनाम भाव विरयंतो ।
विरइ पमाई सव्वं, विरयं संसारसरनि मोहंधं ॥ ६७५ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि दोस विरयं) सम्यग्दृष्टि अन्तरंगमें सर्व औपाधिक रागादि दोषोंसे विरक्त होता है। (असुद्ध परिनाम भाव विरयंतो) शुद्धोपयोगके सिवाय सर्व अशुद्ध परिणामोंसे उदासीन होता है। (सव्वं पमाई विरइ) सर्व प्रमाद भावोंसे वैरागी होता है। (संसार सरनि मोहंधं विरयं) संसार मार्गमें पटकनेवाले अज्ञानमय मोहसे शून्य होता है।

भावार्थ—मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायके उदय न होनेसे सम्यग्दृष्टिको अपने शुद्ध आत्माकी व मोक्षकी ऐसी दृढ रुचि होजाती है कि उसको कर्म जनित सर्व रागादि दोष रोगके समान झलकते हैं। शुद्ध आत्मीक स्वभावकी परिणतिमें रमण करना ही उसका क्रीडा वन होजाता है। वह संसारकी किसी भी पर्याय इंद्र चक्रवर्ती आदिका मोही नहीं रहता है। वह सर्व प्रमाद भावोंसे विरक्त रहता है। मूल भेद प्रमादके पन्द्रह हैं—चार विकथा-स्त्री, भोजन, देश, राजा, पांच इंद्रिय, चार कषाय, निद्रा व स्नेह। इसके उत्तर भेद अस्सी होजाते हैं। ४×५×४×१×१=८० हरएक प्रमाद भावमें पांच भावोंका संयोग होता है। एक कोई कथा, एक कोई इंद्रिय, एक कोई कषाय, निद्रा तथा स्नेह। जैसे किसीने पुष्प सूंघनेका भाव किया, इस प्रमाद भावमें भोजन कथा, घ्राण इंद्रिय, लोभ कषाय, निद्रा तथा स्नेह गर्भित हैं। इंद्रियोंके विषय व कषायके विकारोंसे पूर्ण अरुचिको रखनेवाला सम्यक्ती जीव होता है।

मिच्छात समय मिच्छा, समय प्रकृति मिच्छ सदभावं ।
कषायं अनंतानं, तिक्तंति प्रकृति सप्त सद्भावं ॥ ६७६ ॥

अन्वयार्थ—(मिच्छात समय मिच्छा समय प्रकृति मिच्छ सदभावं) मिथ्यात्व कर्म, सम्यक्त मिथ्यात्व कर्म, व सम्यक्त प्रकृति कर्म इनके उदयको (कषायं अनंतानं) व चार अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयको (सप्त प्रकृति सदभावं तिक्तंति) इस तरह सात प्रकृतियोंके उदयको सम्यक्ती त्याग देता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनकी घातक सात कर्मकी प्रकृतियां हैं। उपशम सम्यक्तीके इनका उपशम रहता है। क्षायिक सम्यक्ती इनका क्षय करता है। क्षयोपशम सम्यक्तीके केवल सम्यक्त प्रकृतिका उदय होता है। शेष छःका उपशम या चारका क्षय, दोका उपशम, या पांचका छः एकका उपशम, या छःका क्षय एकका उदय होता है। इसीलिये अविरत सम्यक्ती मोक्षका पक्का श्रद्धावान होता

है। क्षयोपशम सम्यक्तीके सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे केवल कुछ मलीनता सम्यक्त भावमें रहती है। क्षायिक व औपशमिक सम्यक्त निर्मल होते हैं। उपशम सम्यक्तकी स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ही है। क्षयोपशमकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट छासठ सागर है। क्षायिककी अनन्तकाल है। मोक्ष जानेकी अपेक्षा वह अधिकसे अधिक और तीन भव लेकर मोक्षको चला जायगा।

जिन वयनं सद्दहनं, सदहै अप्प सुद्ध सद्भावं।
मतिज्ञान रूव जुतं, अप्पा परमप्प सदहैं सुद्धं॥ ६७७॥

अन्वयार्थ—(जिन वयनं सद्दहनं) सम्यग्दृष्टीको जिनवाणीका दृढ श्रद्धान होता है (सदहै अप्प सुद्ध सद्भावं) वह आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान रखता है (अप्पा परमप्प सुद्धं सदहै) आत्माको परमात्माके समान शुद्ध श्रद्धानमें लेता है (मतिज्ञान रुव जुतं) वह मतिज्ञान श्रुतज्ञान व कोई २ साथ ही रूपी पदार्थोंको जाननेवाले अवधिज्ञान सहित भी होता है।

भावार्थ—व्यवहारमें जिनवाणीके द्वारा कथन किये हुए तत्वोंका सम्यक्ती दृढ़ श्रद्धानी होता है। निश्चयसे वह अपने ही आत्माके शुद्ध स्वरूपका श्रद्धानी होता है। सम्यक्ती चारों गतियोंमें होता है। देव व नारकी सर्व तीन ज्ञानधारी सम्यक्ती होते हैं। मानव व पशुओंके साधारणतया मतिश्रुत दो ज्ञान होते हैं। किसी किसीके अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे अवधिज्ञान भी पैदा होजाता है या तीर्थंकर जन्मसे ही तीन ज्ञानधारी होते हैं। इस तत्वज्ञानीके भीतर मिथ्याज्ञान बिलकुल नहीं रहता है-वह इन्द्रियोंके द्वारा व मनके द्वारा जो कुछ जानता है उसके भीतर हेय उपादेय बुद्धि करके मात्र एक निज आत्माको ही उपादेय मानता है।

आरति रौद्रं च विरयं, धम्मध्यानं च सद है सुद्धं।
अविरय सम्माइट्ठी, अविरय गुनठान अव्रती सुद्धं॥ ६७८॥

अन्वयार्थ—(आरति रौद्रं च विरयं) सम्यक्ती भव्य जीव चार प्रकार आर्तध्यान व चार प्रकार रौद्र ध्यानसे जो संसारके कारण हैं व परिणामोंको मलीन रखनेवाले हैं, विरक्त रहता है (सुद्धं धम्म ध्यानं च सद है) शुद्धोपयोगरूप धर्मध्यानकी ही रुचि रखता है। (अविरय सम्माइट्ठी) ऐसा पांच व्रतोंकी प्रतिज्ञा

रहित सम्यक्दृष्टी (सुद्धं अव्रती) भावोंकी अपेक्षा शुद्ध परंतु व्रत रहित होता है (अविरय गुनठान) क्योंकि अविरत गुणस्थानमें है।

भावार्थ—अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका उदय होता है जिससे वह चारित्र धारनेको उत्सुक होनेपर भी चारित्रको धार नहीं सक्ता है। वह संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होता है इससे शारीरिक व मानसिक कष्टोंके भीतर उलझता नहीं और न सांसारिक सम्पत्तिके लिये हिंसादि पाप कर्मोंकी अन्याय पूर्वक भावना करता है। वह आर्तध्यान व रौद्रध्यानसे विरक्त होता है। उसको धर्मकी चर्चा सुहाती है, वह धर्मध्यानका प्रेमी होता है। शुद्ध आत्माको अनुभवमें लाकर आत्मरस पीनेका दृढ़ रुचिवान होता है। श्रद्धानापेक्षा शुद्ध है, चारित्र अपेक्षा प्रतिज्ञारहित है, इसीसे अविरत सम्यग्दर्शनका धारी होरहा है।

गोम्मटसारमें कहा है—

णो इंदियेसु बिरदो णो जीवे थावरे तसे वापि। जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो इंद्रियोंके विषयोंका न तो त्यागी है और न त्रस स्थावर प्राणियोंकी हिंसाका त्यागी है परन्तु जो जिनेन्द्रकथित तत्वोंका दृढ़ श्रद्धानी है वही अविरत सम्यग्दृष्टी है। अपि शब्दसे यह सूचित होता है कि वह निरर्थक न तो इंद्रियोंकी प्रवृत्ति करता है न हिंसादि पाप करता है। तथा उसमें चार गुण भीतर झलकते हैं—

(१) प्रशम-शांतभाव, (२) संवेग-धर्मसे प्रेम, संसारसे वैराग्य, (३) अनुकम्पा-प्राणीमात्रपर दया, (४) आस्तिक्य-तत्वोंपर पूर्ण विश्वास, लोक परलोक पुण्य पापकी श्रद्धा। यद्यपि वह व्रती नहीं है तथापि व्रती होनेकी भावना रखता हुआ बहुत सम्हालके प्रवृत्ति करता है।

देशविरत गुणस्थान।

देस व्रत संजुत्तं, एको उदेस वय गहै सुद्धं।
अविरय गुन संजुत्तं, श्रुतज्ञानं च भाव उववन्नं ॥ ६७९ ॥

अन्वयार्थ—(देस व्रत संजुत्तं) जो सम्यक्ती जीव अणुव्रतोंको धारता है, (एको उदेस वय सुद्दं गहै)

एकोदेश शक्तिके अनुसार व्रतोंको निर्दोष पालता है (अविरय गुन संजुत्तं) तथापि व्रत रहित श्रावकको भी साथमें लिये हुए है। (सुतज्ञानं च भाव उवत्तं) परन्तु जो भाव श्रुतज्ञान विशेषपने प्राप्त किये हुए हैं। अर्थात् जिसका आत्मानुभव बढ गया है, वही पंचम गुणस्थानवर्ती देशव्रती श्रावक है।

भावार्थ—जब अप्रत्याख्यानावरण कषायका उपशम हो जाता है तब सम्यक्ती प्रतिज्ञावान होता है। वह अहिंसादि पांचों व्रतोंको पूर्ण न ग्रहण करके एकदेश पालने लगता है। जितने अंश पांच पापोंका त्यागी होता है उतने अंश व्रती है। जितने अंश त्यागी नहीं होता है उतने अंश अव्रती है। कषायोंकी मलीनता विशेष दूर हो जानेसे यह सम्यक्ती जीव चौथे दरजेकी अपेक्षा अधिक शुद्धात्माका अनुभव कर सक्ता है।

दंसन वय सं भाई, पोसह सचित्त राय भत्तीए।
वंभारंभ परिग्गह, अनुमतु उद्दिस्ट देस विरदोय ॥ ६८० ॥

अन्वयार्थ—(दंसन वय सं भाई) ग्यारह प्रतिमाएं या श्रेणियां इस पंचम गुणस्थानमें होती हैं। १-दर्शन प्रतिमा, २-व्रत प्रतिमा, ३-सामायिक प्रतिमा, (पोसह सचित्त राय भत्तीए), ४-प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५-सचित्त त्याग प्रतिमा, ६-रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा (वंभारंभ परिग्गह), ७-ब्रह्मचर्य प्रतिमा ८-आरंभ त्याग प्रतिमा, ९-परिग्रह त्याग प्रतिमा (अनुमतु उद्दिस्ट देस विरदोय), १०-अनुमति त्याग प्रतिमा, ११-उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा। ये सर्वादेशव्रती हैं।

भावार्थ—दर्शन प्रतिमासे चारित्रका धारना प्रारंभ होता है। फिर प्रत्येक श्रेणीमें चारित्र पहला बना रहता है। और कुछ बढ जाता है। इस तरह बढते बढते ग्यारहवी प्रतिमामें वह साधुके निकट पहुंच जाता है। ऐलक एक लंगोटी मात्र रखते हैं, उसके त्याग देनेसे निर्ग्रंथ मुनि हो जाते हैं। इन प्रतिमाओंका विस्तारपूर्वक कथन उन गाथासे ३१७ पर्यंत पहले किया जाचुका है—

पंच अनुव्वयाइं, व्रत तप क्रियं च सुद्ध सदभावं।
ज्ञान सहाव ति सुद्धं, सुद्धं च अप्प परम पदविंदं ॥ ६८१ ॥

अन्वयार्थ—(पंच अनुव्वयाइं) श्रावक पांच अणुव्रतोंका धारी होता है। (व्रत तप क्रियं च सुद्ध सदभावं)

शुद्ध भावोंके साथ यह श्रावक व्रत, तप, व क्रिया आचरण पालता है। (ज्ञान सहाव ति सुद्धं) उसका ज्ञान स्वभाव व रत्नत्रय मई भाव शुद्ध होता है। (सुद्धं च अप्प परम पद विंदे) वह शुद्ध आत्माको व परम पद मोक्षको अनुभव करता है।

भावार्थ—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इनको एकोदेश पालना अणुव्रत है। संकल्पी हिंसा त्यागना स्थूल असत्य व चोरी त्यागना, स्वस्त्रीमें संतोष रखना व सम्यक्तका प्रमाण कर लेना। ऐसे पांच अणुव्रतोंको यह श्रावक शुद्ध सम्यक्तभावसे पालता है, किसी लौकिक फलकी इच्छा नहीं रखता है। उसका सर्व व्रत, उपवास, खानपानादि आचरण शुद्ध भावोंके साथ माया-शल्य रहित होता है। रत्नत्रय धर्ममई शुद्ध आत्माका वह प्रेमी होता है और मोक्षके हेतुसे आत्मध्यानका अभ्यास बढाता रहता है।

अप्पा अप्प सरूवं, विरइय मिच्छात दोस संकाई।
अवयास सुद्ध धरनं, मनरोहो निई अप्पानं ॥ ६८२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा अप्प सरूवं) आत्माको आत्मीक स्वरूपमय निश्चय करना (विरइय मिच्छात दोस संकाई) मिथ्यात्वादि दोष व शंका आदिसे विरक्त रहना (अवयास सुद्ध धरनं) अपने आत्माके क्षेत्रको संकल्प विकल्पोंसे रहित शुद्ध धारण करना (मनरोहो निई अप्पानं) मनको रोककर अपने आत्माको अनुभवना यह देशव्रतीका मुख्य कार्य है।

भावार्थ—देशव्रती श्रावक जब बाहरसे बारह व्रतोंका साधन करता है तब अंतरंगमें वह अपने भीतरसे सर्व राग द्वेषको व सर्व शंकादि दोषोंको दूर कर शुद्ध आत्माका ध्यान करनेका दृढतासे अभ्यास करता है।

मनवयनकाय सुद्धं, उक्त सभावे सुनिश्च जिनवयनं।
दत्तं पत्त विसेषं, एको उद्देस देसव्रत ग्रहनं ॥ ६८३ ।

अन्वयार्थ—(मनवयनकाय सुद्धं) मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक (उक्त सभावे सुनिश्च जिनवयनं) जो जिनवचनोंके कहे अनुसार आत्माका स्वभाव निश्चय करके भावना करता है (दत्तं पत्त विषेपं) जो दातार भी है व पात्र भी है (एको उद्देस देसव्रत ग्रहनं) ऐसा श्रावक एकोदेश व्रतोंका धारी है।

भावार्थ—पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक जिनवचनोंको भलेप्रकार श्रद्धापूर्वक माननेवाला है अर्थात् जिनवाक्यानुसार स्वतत्व परतत्वको जानकर निश्चय करनेवाला है। पांच अणुव्रत व सात शीलोंको पालता है। ग्यारह प्रतिमाद्वारा चारित्रकी उन्नति व आत्मानुभवकी उन्नति करता है। यह श्रावक जहांतक परिग्रहका स्वामी है–आरंभ कार्यमें लीन है वहांतक दान भी पात्रोंको देता है इसलिये दातार है, तथा यह मध्यम पात्र है, दान लेनेके योग्य है। पहली प्रतिमासे लेकर छठी प्रतिमा तक मध्यम पात्रमें जघन्य पात्र है–सातमी आठमी नौमी प्रतिमाधारी मध्यममें मध्यम पात्र हैं। दशमी ग्यारहमी प्रतिमाधारी मध्यममें उत्तम पात्र हैं।

आरंभत्यागी श्रावकसे क्षुल्लक ऐलक तक मुख्यतासे ज्ञानदान व अभयदान करते हैं। शेष सर्व श्रावक चारों ही प्रकारका दान करते हैं। गोम्मटसारमें इस गुणस्थानका स्वरूप यह है:—

जो तसवहाउविरदो अविरदओ तहय थावरवहादो। एक्कसमयह्मि जीवो विरदाविरदो जिणेक्कमई ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो जिनेन्द्रदेवमें व उनके वाक्योंमें अपूर्व श्रद्धाको रखनेवाला है, त्रसकी हिंसासे विरक्त है उसी समय स्थावरकी हिंसासे विरक्त नहीं है इसलिये उसको विरताविरत कहते हैं। यह श्रावक संकल्पी हिंसाका त्यागी है। आरंभी हिंसाका त्यागी सातमी तक नहीं है। आगे आरम्भीका भी त्यागी है। जहांतक वस्त्रका पूर्ण त्याग नहीं है वहांतक पूर्ण आरम्भी हिंसाका त्याग नहीं है। इसीलिये इसको देशव्रती कहते हैं।

प्रमत्तविरत गुणस्थान।

अविरय भाव विजुत्तं, अनुवय भाव सुद्ध संघरनो।
धम्म झानं झायदि, मतिश्रुत ज्ञान संजुदं सुद्धं ॥ ६८४ ॥

अन्वयार्थ—(अविरय भाव विजुत्तं) प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती साधु अविरतभावसे विरक्त हैं-महा व्रती हैं (अनुवय भाव सुद्ध संघरनो) बाहरी व्रतोंके अनुकूल शुद्ध अहिंसक व निर्ममत्व भावको भलेप्रकार धरनेवाला है (सुद्धं मतिश्रुत ज्ञान संजुदं) शुद्ध मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञानको रखता है (धम्मझानं झायदि) और धर्मध्यानको ध्याता है।

भावार्थ—छठा गुणस्थानवर्ती साधु प्रत्याख्यानावरण कषायोंके उपशमसे सर्व परिग्रह रहित निर्ग्रंथ है। हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म व परिग्रह इन पांच पापोंका पूर्ण त्यागी है। पांच इन्द्रिय व मन सम्बन्धी तथा त्रस स्थावरके वध सम्बन्धी, ऐसे बारह प्रकारका अविरत भाव जिसके परिणामोंसे चला गया है, जो अंतरंगमें शुद्ध आत्माके रमणमें वर्तता है, जिसका मतिज्ञान व श्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध है व जो निरंतर धर्मका ध्यान करता है।

अवहि उवन्नो भाओ, वयगहनं भाव संजदो सुद्धो।
विरओ संसार सरीरो, भोगं त्यजंति भोग उवभोगं ॥ ६८५ ॥

अन्वयार्थ—(अवहि भाओ उवन्नो) जिसको अवधिज्ञान उत्पन्न होसक्ता है (वयगहनं भाव संजदो सुद्धो) जो महाव्रतोंको ग्रहण करता हुआ शुद्ध भाव संयमी है (विरओ संसार सरीरो भोगं) जो संसार, शरीर तथा पंचेंद्रियके भोगोंसे विरक्त है (भोग उवभोगं त्यजंति) अतएव सर्व भोग व उपभोगोंका त्यागी है।

भावार्थ—यह महाव्रती साधु व्यवहारमें पांच महाव्रतोंको पालता हुआ अन्तरंगमें भावोंकी शुद्धता पूर्वक स्वरूपाचरण चारित्रमें लवलीन रहता है। जैसा इसका भेष है वैसा ही इसका भाव है। यह संसारका लोभ त्यागकर मुक्तिका प्रेमी है। शरीरको अपवित्र नाशवंत जानकर आत्माको ऐसे शरीरके वाससे छुडाना चाहता है। इसने इन्द्रियोंके भोगोंको अतृप्तिकारी जानकर उनका सम्बन्ध त्याग दिया है। ऐसे पूर्ण वीतरागी साधुके ही अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होकर अवधिज्ञानकी प्राप्ति होसक्ती है।

संमत्त सुद्ध चरनं, अवहिं चिंतेइ सुद्ध स सरूवं।
अप्पा परमप्पानं, परमप्पा निम्मलं सुद्धं ॥ ६८६ ॥

अन्वयार्थ—(संमत्त सुद्ध चरनं) यह साधु शुद्ध सम्यग्दर्शनके आचरणको करनेवाला है (अवहिं चिंतेइ सुद्ध स सरूवं) अवधिज्ञानका चिंतवन करनेवाला है तथा शुद्ध आत्माके स्वरूपका अनुभव करनेवाला है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मा रूप जानकर (परमप्पा निम्मलं सुद्धं) निर्मल शुद्ध परमात्माका अनुभव करता है।

भावार्थ—यह साधु निश्चय सम्यग्दर्शनसे विभूषित होता है। कभी अवसर पाकर अवधिज्ञानको जोडकर पूर्व व आगामी भवोंकी बातें दूसरोंको बता देता है, शुद्ध आत्मस्वरूपका भलेप्रकार अनुभव करनेवाला है, अपने आत्मीक रसमें लीन हैं।

ग्रंथं बाहिर भिंतर, मुक्का संसार सरनि सद्भावं।
महावय गुन धरनं, मूलगुनं धरन्ति सुद्ध भावेन ॥ ६८७ ॥

अन्वयार्थ—(संसार सरनि सद्भावं) संसारके मार्गमें भ्रमण करानेवाले (बाहिर भिंतर ग्रंथ मुक्का) बाहरी भीतरी परिग्रहको त्यागकर (महावय गुन धरनं) महाव्रतोंके गुणोंको धरनेवाले हैं तथा (सुद्ध भावेन मूलगुनं धरंति) शुद्ध भावोंसे मूलगुणोंको पालते हैं।

भावार्थ—यह साधु संसारसे पूर्ण विरक्त हैं तब ही संसारके कारण ऐसे ग्रन्थ अर्थात् परिग्रहको त्यागकर निर्ग्रंथ होगए हैं। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेद यह चौदह प्रकार अन्तरंग परिग्रह हैं व क्षेत्र, मकान, गोधन, धान्य, चांदी, सोना, दासी, दास, कपडे, वर्तन यह दश प्रकार बाहरी परिग्रह हैं ऐसे २४ प्रकारके परिग्रहके त्यागी हैं। तथा शुद्ध भावोंसे पांच महाव्रतोंको आदि लेकर अठारह मूलगुणोंको पालनेवाले हैं। पांच महाव्रत + पांच समिति + पांच इन्द्रिय दमन + छः आवश्यक कर्म + स्नान त्याग + दंतधावन त्याग + भूमिशयन + खडे भोजन + एकवार भोजन + केशलोंच, ये अट्ठाईस मूलगुण हैं।

दंसन दहविहि भेयं, ज्ञानं पंच भेय उवएसं।
तेरह विहस्य चरनं, ज्ञान सहावेन महावयं सुद्धं ॥ ६८८ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन दहविहि भेयं) सम्यग्दर्शन दश भेदरूप है तथा (पंच भेय ज्ञानं उवएसं) ज्ञान पांच प्रकार है ऐसा उपदेश साधुजन देते हैं। (तेरह विहस्य चरनं) तेरा प्रकार चारित्र पालते हैं। (ज्ञान सहावेन सुद्धं महावयं) आत्मज्ञानके स्वभावमें तिष्ठना यह जिनके शुद्ध महाव्रत है।

भावार्थ—निर्ग्रंथ साधु स्वयं पांच महाव्रत, पांच समिति व तीन गुप्ति ऐसे तेरह प्रकार चारित्र पालते हुए अपने उपदेशमें बताते हैं कि सम्यग्दर्शन दश प्रकारका है। उनका स्वरूप पहले कह

चुके हैं तथा यह भी बताते हैं कि ज्ञानके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल ऐसे पाच भेद हैं। वे साधु शुद्ध आत्माके ध्यानमें नित्य मगन रहते हैं, यही उनका निश्चय महान व्रत है।

ध्यानं च धम्म सुक्कं, आरति रौद्रं न दृष्टि दिस्टंतो।
अप्पा परमप्पानं, ज्ञान सहावेन महावयं हुंति ॥ ६८९ ॥

अन्वयार्थ—(ध्यानं च धम्म सुक्कं) जो धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानको ही मोक्षमार्ग जानते हैं (आरति रौद्रं दृष्टि न दिस्टंतो) आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान पर अपनी दृष्टि नहीं देते हैं। (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप जानकर ध्याते हैं (ज्ञान सहावेन महावयं हुंति) ज्ञान स्वभावसे उनके महाव्रत होता है।

भावार्थ—यह छठे प्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु अन्तरङ्गसे ज्ञानपूर्वक महाव्रतोंको पालते हैं। धर्मध्यानका तो अभ्यास करते हैं परन्तु शुक्लध्यानके पानेकी भावना भाते हैं। शुक्लध्यान आठवें गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है। आर्त व रौद्रध्यानसे अपनी रक्षा करते हैं। आत्माको परमात्मारूप जानकर निरन्तर आत्माका ही अनुभव करते हैं। निर्ग्रन्थ पद छठे गुणस्थानसे प्रारम्भ है।

गोम्मटसारमें कहा है—

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा। मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥ ३२ ॥

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि। सयलगुणशीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो ॥ ३३ ॥

भावार्थ—सकल संयमको रोकनेवाली प्रत्याख्यानावरण कषायके उपशमसे जिसके पूर्ण संयम है परन्तु साथमें चार संज्वलन कषाय तथा नौ नोकषायके उदयसे संयममें मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद भी है इसलिये इस गुणस्थानको प्रमत्तविरत कहते हैं। यह महाव्रती सम्पूर्ण मूलगुण और शीलभावसे युक्त होते हुए भी प्रगट (अनुभवगोचर) व अप्रगट प्रमादको रखनेवाले हैं। इनका आचरण चित्रल होता है अर्थात् कभी तो यह ध्यानमग्न होजाते हैं, कभी यह आहार विहार करते हैं–या धर्मोपदेश देते हैं। सातवेंसे लेकर सर्व गुणस्थान ध्यानमई ही है। इस छठे गुणस्थानमें ही मुनिके प्रवृत्ति रूप चारित्र होता है। इस गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्त है, फिर सातवां होजावे। सातवेंसे छठा होजावे ऐसा वारवार होसक्ता है। पंचम गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्त भी है व जीवन-

पर्यंत भी है। आगेके सर्व गुणस्थानोंका काल अंतर्मुहूर्त है, मात्र तेरहवेंका जीवनपर्यंत है उसमें चौदहवें गुणस्थानका काल रह जाता है। प्रमादोंका विशेष स्वरूप गोम्मटसारसे जानना चाहिये।

अप्रमत्त विरत गुणस्थान।

अप्रमत्त अप्रमानं, धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलं सुद्धं।
अवहिदिधि संजुत्तो, खय उवसम भाव संसुद्धं ॥ ६९० ॥

अन्वयार्थ—(अप्रमत्त अप्रमानं) अप्रमत्त गुणस्थान प्रमाण नय आदिकी कल्पनासे रहित है (धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलं सुद्धं) वहां शुक्लध्यानकी भावना सहित व शुक्लध्यानका कारण निर्दोष शुद्ध धर्मध्यान है (अवहिदिधि संजुत्तो) किसीको अवधिज्ञान प्राप्त होता है (खय उवसम भाव संसुद्धं) यहां शुद्ध क्षयोपशम भाव है।

भावार्थ—सातवां अप्रमत्त गुणस्थान उसे कहते हैं कि जहां अपने आत्मस्वरूपमें किंचित् भी प्रमाद नहीं है, इसीलिये यहांपर साधु बिलकुल ध्यानमग्न रह ते हैं-निर्विकल्प होकर आत्माका ध्यान करते हैं। उसके मनमें प्रमाण व नयका विचार नहीं आता है। आगम द्वारा द्रव्योंका विचार व शास्त्रोंका चिंतवन छठे प्रमत्तविरत गुणस्थानमें है, सातवेंमें नहीं है। यहां निर्मल धर्मध्यान है। जिससे शुक्लध्यान उत्पन्न होसक्ता है। कोई२ मुनि अवधिज्ञानको धारनेवाले होते हैं। यहां अभी चारित्रकी अपेक्षा न उपशम भाव है न क्षायिक भाव है किंतु क्षयोपशिक भाव है। बारह कषायोंका उदयाभाव रूप क्षय तथा उपशम है। शेष चार कषाय व नौ नोकषायका अति मंद उदय है।

त्यक्तं रूव सुदिट्ठी, विगतं संसार सरनि सद्भावं।
सुद्धं परमानंदं, ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं ॥ ६९१ ॥

अन्वयार्थ—(त्यक्तं रूव सुदिट्ठी) अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु आत्माके प्रगट रूपको भले प्रकार अनुभव करता है (विगतं संसार सरनि सद्भावं) वह संसारके मार्गमें लेजानेवाले भावोंसे रहित हैं (सुद्धं

परमानंदं) शुद्ध परम आनन्दका स्वाद लेता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध तव यरनं) ज्ञान स्वभावी आत्मामें ठहरकर शुद्ध आत्म तपन रूप तपश्चरण करता है।

भावार्थ—सातवें गुणस्थानमें मन, वचन, काय तीनों स्थिर रहते हैं। ध्यानमग्न साधु शुद्धोपयोगमें ठहरकर अपने आत्माको स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा जानकर उसीमें तल्लीन होकर निश्चय तपका साधन करता है और कर्मोंकी निर्जरा करता है। गोम्मटसारमें इसका स्वरूप यह है—

णट्ठासेसपमादो वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी। अणुवसमओ अखवओ झाणणिलीणोहु अपमत्तो ॥ ४६ ॥

भावार्थ—सर्व प्रमादोंसे रहित–महाव्रत, मूलगुण व शील स्वभावसे मंडित ज्ञानी जबतक उपशम या क्षपकश्रेणी न चढ़े तबतक ध्यानमें तल्लीन रहता है, यही अप्रमत्तविरत साधु है।

अपूर्वकरण गुणस्थान।

अपूर्वकरण अपूर्वं, अवधिं संजुत्त निम्मलं सुद्धं।
ज्ञान सहावं नित्यं, अप्पा परमप्प संजुत्तं ॥ ६९२ ॥

अन्वयार्थ—(अपूर्वकरण) अपूर्वकरण गुणस्थान धारी साधुके (अपूर्वं) पहले कभी नहीं हुए ऐसे अपूर्व उज्वल भाव होते हैं (अवधिं संजुत्त निम्मलं सुद्धं) कोई २ अवधिज्ञान सहित निर्दोष शुद्ध भावके धारी होते हैं (ज्ञान सहावं नित्यं) वे सदा ज्ञान स्वभावमें मग्न रहते हैं (अप्पा परमप्प संजुत्तं) आत्माको परमात्मारूप अनुभव करते हैं।

भावार्थ—चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृतिको उपशम करनेवाला साधु उपशम श्रेणी व क्षय करनेवाला साधु क्षपकश्रेणी चढता है। द्वितीयोपशम सम्यक्ती अनन्तानुबन्धी कषायको उपशम या उनको अप्रत्याख्यानावरण आदिमें विसंयोजन (पलटन) करके उपशम श्रेणी चढता है। क्षायिक सम्यक्ती भी उपशम श्रेणी चढ सक्ता है। क्षपक श्रेणीपर तो क्षायिक सम्यग्दृष्टी ही चढता है। श्रेणीका पहला गुणस्थान अपूर्वकरण है। यहां समय समय अपूर्व अनन्तगुणी विशुद्धता बढती जाती है। यहां पृथक्त्ववितर्कविचार नामका पहला शुक्लध्यान प्रारम्भ होजाता है। इस ध्यानमें साधु

एकाग्र रहता है तथापि अबुद्धि पूर्वक योग, शब्द व पदार्थका पलटन होजाता है। यहां शुद्धोपयोग उन्नतिरूप है। आत्मानुभवकी छटा भी अपूर्व है। गोम्मटसारमें कहा है—

एदह्मि गुणट्ठाणे विसरिससमयट्ठियेहिं जीवेहिं। पुव्वमपत्ता जह्मा होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥ ९१ ॥

भावार्थ—इस गुणस्थानमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम अपूर्व २ होते हैं। भिन्न २ समयवर्ती ध्यानियोंके परिणाम कभी नहीं मिलते। एक ही समयमें चढनेवाले जीवोंके परिणाम सदृश व विसदृश दोनों प्रकारके होते हैं। इस गुणस्थानमें चढनेवाला सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानमें अधःकरण लब्धि द्वारा परिणामोंको समय २ अनन्तगुणा उज्वल करता है। ये परिणाम इस जातिके होते हैं कि भिन्न समयवर्ती जीवोंके मिल भी जावें व न भी मिलें। दूसरी लब्धि शुरू करते ही अपूर्वकरण गुणस्थान होता है तब भिन्न समयवर्तीके परिणाम कभी मिलते नहीं हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान।

अनिवरतं ससहावं, सुद्ध सहावं च निम्मलं भावं।
षय उवसम सद अर्थं, ज्ञान सहावेन अनिवर्तयं सुद्धं ॥ ६९३ ॥

अन्वयार्थ—(अनिवरतं ससहावं) अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें साधु आत्मस्वभावमें रहता है (सुद्ध सहावं च निम्मलं भावं) शुद्ध स्वभावमें मग्न रहता है, निर्मल भावोंका धारी होता है (षय उवसम सद अर्थं) यातो क्षपकश्रेणीपर होता है या उपशम श्रेणीपर होता है, सत्य अस्तिरूप आत्म पदार्थको (ज्ञान सहावेन) ज्ञान स्वभावमें ही तिष्ठकर ध्याता है (सुद्धं अनिवर्तयं) तब यह शुद्ध अनिवृत्तिकरणके परिणामोंको पाता है।

भावार्थ—जहां शरीर, आयु, इत्यादिमें भेद होनेपर भी एक समयवर्ती नानाजीवोंके परिणामोंमें समान समय समय विशुद्धताकी उन्नति हो—एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम समान रहे सो अनिवृत्तिकरण लब्धिधारी नौवां गुणस्थान है। यहां भी उपशम या क्षपकश्रेणी होती है।

प्रथम शुक्लध्यानसे यह साधु आत्मध्यानकी ऐसी अग्नि जलाता है जिससे सिवाय सूक्ष्मलोभके सर्व मोहनीय कर्मका उपशम या क्षय कर डालता है। गोम्मटसारमें कहा है—

एक्कह्मि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति। ण णिवट्टंति तहावि य परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥ ५६ ॥

भावार्थ—जहां शरीरके आकार आदिके भेद होनेपर भी एक समयवर्ती सर्व जीवोंके विशुद्ध परिणामोंमें जहां कोई भेद न पाया जावे वह अनिवृत्तिकरण गुणस्थान है।

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान।

सूक्ष्म भाव संजुत्तं, क्षय उवसम भाव संजदो सुद्धो।
निम्मल सुद्ध सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ६९४ ॥

अन्वयार्थ—(सूक्ष्मभाव संजुत्तं) सूक्ष्म लोभ भाव सहित साधु (क्षय उवसम भाव संजदो सुद्धो) क्षपक श्रेणीपर या उपशम श्रेणीपर होनेवाले भावोंका धारी शुद्ध संयमी (निम्मल सुद्ध सहावं) निर्दोष शुद्ध आत्मस्वभावको ध्याता है (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्माको परमात्मारूप मलरहित व रागादि दोष रहित शुद्ध ध्याता है।

भावार्थ—जहां मात्र सूक्ष्म लोभका उदय इतना अल्प हो कि ध्याताको ध्यानमें न झलक सके ऐसे ध्यानमई साधुके दसमा सूक्ष्म लोभ नामका गुणस्थान होता है। यह प्रथम शुक्लध्यानमें मग्न होता हुआ शुद्धात्माका ही अनुभव करता है, अंतर्मुहूर्तमें ही लोभको उपशम या क्षय कर डालता है।

घाय चवक्कय विरयं, नंतचतुष्टय भावना सुद्धं।
कम्ममल पयडि तिक्तं, ज्ञान सहावेन सूक्ष्मं परमं ॥ ६९५ ॥

अन्वयार्थ—यह साधु (घाय चवक्कय विरयं) चार घातीय कर्मोंसे विरक्त है (नंतचतुष्टय भावना सुद्धं) अनंतज्ञानादि चतुष्टयकी शुद्ध भावनामें लीन है (कम्ममल पयडि तिक्तं) सर्व कर्म प्रकृतियोंके उदयसे ममता रहित है (ज्ञान सहावेन परमं सूक्ष्मं) आत्मज्ञानके स्वभावमें ठहरकर परम सूक्ष्म आत्माका अनुभव करता है।

भावार्थ—दशवें गुणस्थानवर्ती साधुके अन्तरंगमें पूर्व अभ्याससे यह भावना बनी रहती है कि किसी तरह घातीय कर्मोंका नाश होकर आत्माके स्वाभाविक अनंतज्ञानादि गुणोंका विकास हो। वह सर्व कर्मोंके उदयको नहीं चाहता है, केवल शुद्ध आत्माका प्रेमी है। वह निश्चल ध्यानमें तिष्ठकर अतीन्द्रिय आत्माका स्वाद लेता है। गोम्मटसारमें कहा है—

धुदकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहमरायसंजुत्तं। एवं सुहमकसाओ सुहमसरागोत्ति णादव्वो ॥ ५९ ॥

भावार्थ—जैसे धुले हुए कसूमी वस्त्रके लालपना बहुत सूक्ष्म रह जाता है वैसे जो साधु अत्यंत सूक्ष्म राग सहित है वह सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवाला जानने योग्य है। यह साधु वीतराग चारित्रके अनुभवमें किंचित् ही कम है।



उपशान्त मोह गुणस्थान।

उवसंतोयकषायं, दर्सन मोहंध उवसमं सुद्धं।
संसार सरनि तिक्तं, उवसंतो पुन्य सव्वहा सव्वे ॥ ६९६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध उवसमं सुद्धं) जहां दर्शन मोहनीय कर्म बिलकुल उपशम या क्षय होगया है (उव सन्तोय कषायं) तथा चारित्र मोहनीय कर्म बिलकुल उपशम होगया है (संसार सरनि तिक्तं) जो संसारके कारण भावोंसे रहित होगए हैं (सव्वहा सव्वे पुन्य उवसंतो) जहां सर्वथा सर्व शुभ भावोंकी भी शांति होगई है, एक वीतराग यथाख्यात चारित्र है, वह उपशांत मोह नामका ही ग्यारहवां गुणस्थान है।

भावार्थ—उपशम श्रेणीपर चढनेवाला साधु दशवें गुणस्थानसे ग्यारहवेंमें आता है। यह साधु या तो द्वितीयोपशम सम्यक्ती या क्षायिक सम्यक्ती होता है। इसलिये सम्यक्त घातक सातों प्रकृतियां उपशम होरही हैं। तथा चारित्र मोहनीय सम्बन्धी इक्कीस कषायोंका यह शुक्लध्यानके बलसे उपशम कर चुका है। सर्व प्रकार मोहनीय कर्मके उदय न रहनेसे यहां यथाख्यात चारित्र या नमूनेदार वीतरागता प्रगट है। यहां न अशुभ भाव है न कोई शुभ भाव है मात्र शुद्धोपयोग है,

शुक्ललेश्या है। यहां सिवाय साता वेदनीयके और किसी कर्मका आस्रव नहीं होता है। यह भी ईर्यापथ आस्रव है। दूसरे ही समयमें उसकी निर्जरा होजाती है। कषायोंके न होनेसे स्थिति व अनुभाग नहीं पडता है। यह दशा अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं रहती है। आत्मबलकी कमीसे फिर लोभका उदय आजाता है और यहांसे गिरकर दशवेंमें या धीरे २ सातवें तक आजाता है। सातवेंसे फिर एक दफे उपशम श्रेणी चढ सक्ता है या तद्भव मोक्षगामी क्षपकश्रेणी चढ सक्ता है। यदि संसार अधिक हो तो और भी नीचेके गुणस्थानोंमें यहांतक कि मिथ्यात्वमें भी जासक्ता है।

सुद्धो सुद्धादेसो, सुद्धो परमप्प लीन संजुत्तो।
षय उवसम संजुत्तो, ज्ञान सहावेन चरन्ति तवयरनं॥ ६९७॥

अन्वयार्थ—(सुद्धो सुद्धादेसो) उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती साधु वीतराग हैं व शुद्ध शासन या श्रुतज्ञानके धारी हैं। (सुद्धो परमप्प लीन संजुत्तो) शुद्ध परमात्म स्वभावमें लीनतारूप शुक्लध्यानके धारी हैं। (षय उवसम संजुत्तो) क्षायिक या द्वितीयोपशम सम्यक्त सहित है (ज्ञान सहावेन तवयरनं चरन्ति) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर निश्चय तपश्चरण कर रहे हैं।

भावार्थ—उपशांत मोह भावके धारी निर्ग्रन्थ साधु निर्मल श्रुतज्ञानके धारी होकर अपने शुद्ध स्वभावमें लीन होते हुए शुक्लध्यानको ध्याते हैं-आत्माके स्वभावमें वीतरागता सहित तपश्चरण या रमण कर रहे हैं। गोम्मटसारमें कहा है—

कदकफलजुदजलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलयं। सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि॥ ६१॥

भावार्थ—निर्मली फल सहित जलकी तरह या शरदऋतुमें सरोवरके पानीकी तरह जहां सर्व मोहका उपशम होगया है ऐसे वीतराग परिणामके धारीके उपशान्त कषाय गुणस्थान होता है। जैसे कतकफलसे मिट्टी नीचे बैठ जाती है पानी ऊपर निर्मल है या शरदऋतुमें मिट्टी नीचे बैठ जाती है, ऊपर सरोवरका पानी निर्मल होता है, वैसे जहां मोहका उदय दबा हुआ है, ऊपर भाव मोह रहित है सो उपशान्त मोह गुणस्थान है।

क्षीणमोह गुणस्थान।

षीन कसायं उत्तं, षीनं घाय कम्ममल मुक्कं।
षीयंति षीन मोहो, ज्ञान सहावेन संजुत्त तवयरनं ॥ ६९८ ॥

अन्वयार्थ—(षीन कसायं उत्तं) अब क्षीणकषायके बारहवें गुणस्थानको कहते हैं जहां (षीन मोहो षीयंति) सूक्ष्म मोह भी नष्ट होगया है (ज्ञान सहावेन तवयरनं संजुत्त) जो ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध आत्मतपनरूप तपश्चरण करते हैं (षीनं घाय कम्ममल मुक्कं) तथा जो अनन्त क्षीणताको प्राप्त घातीय कर्मोंके मलको छुडा रहे हैं वे क्षीणमोह गुणस्थान धारी है।

भावार्थ—क्षपकश्रेणीपर चढनेवाला साधु दशवें गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्म लोभका भी क्षय करके सर्व मोहनीय कर्मकी वर्गणाओंसे रहित होकरके इस गुणस्थानमें आकर पूर्ण वीतराग होजाता है और दूसरे शुक्लध्यानको ध्याता हुआ एकत्ववितर्क अवीचार परिणतिसे ध्यानमग्न होजाता है। इस शुक्लध्यानके अन्तर्मुहूर्त चलनेसे ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातीय कर्मोंका बल क्षीण होता चला जाता है। जब इनका बिलकुल क्षय होजाता है तब तेरहवां गुणस्थान प्रारम्भ हो जाता है। क्षय करनेकी क्रिया इसी गुणस्थानमें होती है।

मनपर्यय उववन्नं, धम्मं सुक्कं च निम्मलं रूवं।
रूवातीत सहावं, ज्ञान सहावेन अप्प परमप्पं ॥ ६९९ ॥

अन्वयार्थ—(मन पर्यय उववन्नं) कोई २ साधु मनःपर्यय ज्ञानके धारी होते हैं (धम्मं सुक्कं च निम्मलं रूवं) वे पहले निर्मल आत्म स्वभावरूप धर्मध्यानको सातवें गुणस्थान तक फिर आठवेंसे शुक्लध्यानको ध्याते हुए इस गुणस्थानमें आते हैं (रूवातीत सहावं) यहां अमूर्तीक आत्माके स्वभावमें लीन हैं (ज्ञान सहावेन अप्प परमप्पं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर आत्माको परमात्मारूप ध्याते हैं।

भावार्थ—किन्हीं साधुओंको मतिश्रुत दो ही ज्ञान होता है और बारहवेंमें चढ जाते हैं, कोई मतिश्रुत अवधि तीन ज्ञान धारी कोई मनःपर्यय ज्ञान सहित चार ज्ञान धारी होकर यहां आते हैं।

पहले निर्मल धर्मध्यान किया था उसीके बलसे यहां निर्मल शुक्लध्यानको ध्या रहे हैं। दूसरा शुक्लध्यान अति निश्चल है जिसके प्रतापसे बिलकुल थिर आत्मामें लीन हैं।

श्री गोम्मटसारमें कहा है—

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो। खीणकसाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहिं ॥ ६२ ॥

भावार्थ—सर्व मोहके क्षय होजानेसे जिस साधुके परिणाम स्फटिकके निर्मल वर्तनमें रक्खे हुए जलकी तरह अति निर्मल हैं, उसी निर्ग्रंथ साधुको क्षीण कषाय वीतराग देवोंने कहा है।

सयोग केवलि जिन गुणस्थान।

सजोग केवलिनो, आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो।
केवलज्ञान उवन्नो, अरहंतो केवली सुद्धो ॥ ७०० ॥

अन्वयार्थ—(सजोग केवलिनो) सजोग केवली भगवान (आहार निहार विवज्जिओ सुद्धो) आहार व निहार दोनोंसे रहित शुद्ध वीतराग होते हैं (केवलज्ञान उवन्नो) जिनको केवलज्ञान उत्पन्न होगया है (अरहंतो केवली सुद्धो) वे ही पूज्यनीय अरहंत परमात्मा केवली शुद्धोपयोगी सयोग केवलि जिन गुणस्थान धारी हैं।

भावार्थ—जब चारों घातीय कर्म क्षय होजाते हैं तब निर्ग्रंथ साधु बारहवेंसे तेरहवेंमें आकर केवलज्ञानी अर्हंत परमात्मा सयोगी जिन कहलाते हैं। यहां अभी योगोंका हलन चलन है। इससे उपदेश होता है व विहार होता है। आत्मामें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य प्रकाशमान हैं। इसीसे शरीर सहित सकल या जीवन्मुक्त परमात्मा कहलाते हैं। केवली भगवानके क्षुधाकी बाधा नहीं सताती है न वे भिक्षाके लिये जाते हैं न वे कवलाहार करते हैं। उनके मात्र शरीरको पोषण करनेवाली नोकर्म वर्गणाओंका आहार स्वतः शरीरमें उसी तरह हो जाता है जैसे वृक्षोंके लेपाहार होता है। न उनके मलमूत्रका नीहार होता है। उनका शरीर शुद्ध कपूरकी तरह धातु उपधातु रहित होता है। वे स्फटिक रत्नकी तरह तेजस्वी शरीरधारी होते हैं,

वे शुद्धोपयोगमें लीन हैं, परम वीतराग हैं। उनकी शांत मुद्राका दर्शन करके देव, मानव, पशु सब तृप्त होजाते हैं। उनको सर्व ही भव्यजीव भद्र परिणामी पूजते हैं व नमन करते हैं।

श्री गोम्मटसारमें कहा है—

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो। णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥ ६३ ॥

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण। जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणइणिहणारिसे उत्तो ॥ ६४ ॥

भावार्थ—जिनके केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे अज्ञानका सर्वथा नाश होगया है, जिनके नव केवललब्धियां प्राप्त हैं उसीसे उन्होंने परमात्मा नाम पाया है। वे नव गुण हैं-क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य। वे भगवान अतीन्द्रिय असहाय ज्ञान व दर्शनके धारी हैं। योगोंसे युक्त होनेके कारण सयोगी हैं। घातीय कर्मोंके जीतनेसे जिन हैं। ऐसा अनादि निधन ऋषि-प्रणीत आगममें कहा है।

अयोग केवलि जिन गुणस्थान।

अजोग केवलिनो, परमप्पा निम्मलो सुद्धं।
आनन्दं परमानन्दं, नन्त चतुष्टय मुक्ति संपत्तो ॥ ७०१ ॥

अन्वयार्थ—(अजोग केवलिनो) अयोग केवली जिन चौदहवें गुणस्थान धारी (परमप्पा निम्मलो सुद्धं) मल रहित शुद्ध परमात्मा है। योगोंका हलन चलन भी नहीं है (परमानन्दं आनन्दं) स्वाभाविक परमानन्दमें मग्न हैं (नंतचतुष्टय मुक्ति संपत्तो) अनन्त चतुष्टय सहित मुक्तिको पहुंचनेवाले हैं।

भावार्थ—जब आयुकर्ममें इतना काल बाकी रह जाता है जितना काल अ इ उ ऋ ऌ इन पांच लघु अक्षरोंके उच्चारणमें लगता है तब अरहन्त परमात्माका योग बिलकुल निश्चल होजाता है योग रहित होनेसे वे अयोगी जिन कहलाते हैं। यहां चौथा शुक्लध्यान होता है। इसीसे शेष अघातीय कर्मोंका भी क्षय कर यह मुक्तिको प्राप्त कर लेते हैं। गोम्मटसारमें कहा है—

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो । कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि ॥ ६९ ॥

भावार्थ—जो १८००० शीलोंके स्वामी होगए हैं-जिनके पूर्ण सहकारसे कर्मोंका आस्रव नहीं है, जिनके कर्मरूपी रज निर्जराको प्राप्त होरहा है, जिससे वे शीघ्र मुक्त होंगे ऐसे अयोगकेवली होते हैं।

गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान।

सिद्धं सिद्ध सरूवं, सिद्धं सिद्धि सौख संपत्तो।
नंदो परमानंदो, सिद्धो सुद्धो मुनेअव्वा ॥ ७०२ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं सिद्ध सरूवं) सिद्ध भगवान अपने स्वरूपको सिद्ध कर चुके हैं (सिद्धि सौख संपत्तो सिद्धं) सिद्ध भगवानके होनेवाले अनन्त सुखको प्राप्त होकर जो सिद्ध भए हैं (परमानंदो नंदो) जो परमानन्दमें आनन्दित हैं। (सुद्धो सिद्धो मुनेअव्वा) वेही शुद्ध निरंजन सिद्ध हैं, ऐसा जानना योग्य है।

भावार्थ—जब आठों कर्म क्षय होजाते हैं तब कर्मजनित सर्व रचना भी दूर होजाती है इसलिये सिद्ध महाराज रागादि भावकर्म व शरीरादि नोकर्म रहित हैं, सर्व बाधासे रहित हैं, स्वाभाविक परमानन्दमें नित्य मगन हैं, जो साध्य था उसको सिद्ध कर चुके हैं, इसीसे सिद्ध कहलाते हैं। यही परमात्माका वास्तविक स्वरूप है।

ए चौदस गुन ठानं, रूवं भेयं च किंचि उवएसं।
ज्ञान सहावे निपुनो, कमेनय विमल सिद्ध नायव्वो ॥ ७०३ ॥

अन्वयार्थ—(ए चौदस गुन ठानं) ऊपर कहे प्रकार चौदह गुणस्थानोंके (रूवं भेयं च किंचि उवएसं) स्वरूपका व भेदका कुछ उपदेश किया गया है (ज्ञान सहावे निपुनो) जो भव्य जीव अपने ज्ञान स्वभावमें लीन होनेमें प्रवीण हैं वह (कमेनय विमल सिद्ध नायव्वो) उसीको गुणस्थानोंके क्रमसे निर्मल सिद्धपना होता है ऐसा जानना योग्य है।

भावार्थ—जो कोई भव्य जीव मोक्ष गए हैं व जानेवाले हैं व अब जारहे हैं उनके लिये मोक्ष-मार्गपर चलनेका एक ही मार्ग है। जबतक इन गुणस्थानोंको क्रमसे पार करके शुद्ध भावोंकी उन्नति

न की जायगी तथा बाधक कर्मोंका क्षय न किया जायगा तबतक कोई भी शुद्ध सिद्ध परमात्मा नहीं होसक्ता है। गोम्मटसारमें कहा है—

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा। अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥ ६८ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंसे रहित हैं, जो परमानन्दके अनुभवमें लीन होकर परम शान्त हैं, जो कर्मोंके आस्रवके कारण भावोंसे रहित निरंजन हैं, जो अविनाशी हैं, कृतकृत्य हैं, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघु, अव्याबाधत्व इन आठ गुणोंके धारी हैं तथा लोकके अग्रभागमें सिद्धक्षेत्रमें तिष्ठते हैं वे ही सिद्ध हैं।

बावन अक्षर निरूपण।

ॐ नमः सिद्धं-अक्षर पांच।

ॐ वंकारं च ऊर्ध, ऊर्ध सहावेन परमेष्ठि संजुत्तो।
अप्पा परमप्पानं बिंदस्थितं जान परमप्पा ॥ ७०४ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वंकारं च ऊर्ध) ॐ मंत्र श्रेष्ठ पद है (ऊर्ध सहावेन परमेष्ठि संजुत्तो) इसमें श्रेष्ठ स्वभावधारी सिद्ध परमेष्ठी गर्भित हैं (अप्पा परमप्पानं) आत्मा या परमात्मारूप हैं (बिन्द स्थितं परमप्पा जान) ॐमें बिन्दु चिह्नमें स्थित परमात्माको जानो।

भावार्थ—ॐ नमः सिद्धं पांच अक्षरी मंत्रमें ॐ शब्द श्रेष्ठपद इसीलिये है कि इसमें सिद्ध परमात्मा गर्भित हैं जो स्वाभाविक शुद्ध गुणोंके धारी हैं। यही द्रव्य दृष्टिसे आत्माका भी स्वभाव है। ॐमें अर्द्ध-चन्द्राकारमें जो बिंदु है वह सिद्ध परमात्माका द्योतक है।

ज्ञानं सुद्ध सहावं, ज्ञानमयं परमप्प संसुद्धं।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, अप्पा परमप्प सुद्धमप्पानं ॥ ७०५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं सुद्ध सहावं) सिद्ध भगवान ज्ञानमई शुद्ध स्वभावके धारी हैं (ज्ञानमयं परमप्प संसुद्धं) वे ही ज्ञानमई परम शुद्ध परमात्मा हैं (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) वे अपने ज्ञान स्वरूपका अनुभव करते हैं (अप्पा परमप्प सुद्धमप्पानं) वे आप ही अपने शुद्ध आत्माको परमात्मारूप ध्याते हैं।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा शरीर रहित व सर्व मूर्तीक पुद्गलोंके सम्बन्ध रहित अमूर्तीक ज्ञानाकार अपने शुद्ध स्वभावमें तल्लीन हैं। वे आपसे ही आपमें अपने आपका अनुभव करते हुए आत्मीक रसका पान कररहे हैं। उनका उपयोग अपने स्वरूपमें ही घुल रहा है।

ममात्मा अमलं सुद्धं, सुद्ध सहावेन तिअर्थ संजुत्तं।
संसार सरनि विगतं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७०६ ॥

अन्वयार्थ—(ममात्मा अमलं सुद्धं) सिद्ध भगवानके समान ही निश्चयनयसे मेरा आत्मा कर्ममल रहित शुद्ध है (सुद्ध सहावेन तिअर्थ संजुत्तं) शुद्ध स्वभावमें तन्मय है तथा रत्नत्रय स्वरूप है (संसार सरनि विगतं) संसारके भ्रमणसे रहित है (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) यह आत्मा ही वास्तवमें परमात्मा है, परम वीतराग व निर्दोष है।

भावार्थ—इस पांच अक्षरी मंत्रसे सिद्धोंको नमस्कार करता हुआ, उनका शुद्ध स्वरूप विचारता हुआ अपने आत्माको देखे, तब यह अनुभव करे कि मेरा आत्मा द्रव्य स्वभावसे या निश्चयनयसे सिद्धके समान सर्व कर्मरहित व सर्व रागादि दोष रहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई सदा ही मुक्त रूप संसारभ्रमणसे रहित परमात्मा देव है।

ॐ वं नम एकत्वं, पद अर्थं नमस्कार उत्पन्नं।
ॐ वंकारं च विंदं, विंदस्थं नमामि तं सुद्धं ॥ ७०७ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वं नम एकत्वं) ॐ नमः जो एक पद है (पद अर्थं नमस्कार उत्पन्नं) इस पदका अर्थ यह है कि ॐको नमस्कार किया जावे (ॐ वंकारं च विंदं) ॐका भाव अनुभव किया जावे (विंदस्थं तं सुद्धं नमामि) ॐ के बिंदुमें स्थित शुद्ध सिद्धको मैं भाव नमस्कार करता हूं ऐसा अनुभव किया जावे।

भावार्थ—ॐ नमः पांच अक्षरी संयुक्त पदसे पांच परमेष्ठीको नमस्कार हो ऐसा लिया जाता है, परन्तु इसमें जो बिंदु है उससे सिद्धका बोध होता है, इससे सिद्धको मुख्यतासे नमस्कार किया

गया है। यहां भाव नमस्कारसे प्रयोजन है कि सिद्धके समान अपने आत्माको शुद्ध रूप अनुभव किया जावे, यही सिद्धोंको भाव नमस्कार है। ॐ में जो पांच परमेष्ठी गर्भित हैं उनके भीतर भी जो निश्चयनयसे शुद्धात्मापना है वही शुद्धात्मापना मेरेमें है ऐसा अनुभव किया जावे, यही वास्तवमें ॐ नमः पदका अर्थ है। अपने आत्माको श्री सिद्ध भगवानके समान जानकर उसीमें तन्मय होजाना यही वास्तवमें भाव नमस्कार है। जो भावोंको शुद्ध करनेवाली है। शब्दोच्चारण करना व मस्तक झुकाना आदि द्रव्य नमस्कार है। इसका महत्व तब ही है जब भाव नमस्कार किया जावे। जिसको नमस्कार करना हो उसके गुणोंमें तन्मय होजाना ही सच्चा नमस्कार है। नमस्कारका प्रयोजन ही नमस्कार योग्यके गुणोंमें सच्चा प्रेम भाव है। ऐसा प्रेमभाव सिद्ध परमात्मामें करना अपनेको रागद्वेषसे मुक्तकर शुद्ध वीतराग भावमें जम जाना है। अर्थात् स्वानुभवको पाकर शुद्ध आत्मीक रसका पान करना है।

सिद्धं सिद्धि सदर्थं, सिद्धं सुद्धं च निम्मलं विमलं।
दरसन मोहंध विमुक्कं, सिद्धं सुद्धं समायरहि ॥ ७०८ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं सिद्धि सदर्थं) "ॐ नमः सिद्धं" मंत्रसे सिद्ध उन्हें कहते हैं जो सद्मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध कर चुके हैं (सिद्धं सुद्धं च निम्मलं विमलं) वे सिद्ध शुद्ध हैं, कर्ममल रहित हैं। रागद्वेषादि रहित वीतराग हैं (दरसन मोहंध विमुक्कं) दर्शन मोह व अज्ञानसे रहित हैं (सिद्धं सुद्धं समायरहि) ऐसे शुद्ध सिद्ध भगवानका अनुभव करना चाहिये।

भावार्थ—सिद्ध करने योग्य मोक्ष पुरुषार्थ है जिसकी सिद्धि होनेपर यह जीव कृतकृत्य व पूर्ण होजाता है। जिस भव्यजीवने ऐसे मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध कर लिया है उसको सिद्ध भगवान कहते हैं। वे केवल शुद्ध परम वीतराग आत्मा हैं। उनके समान अपने आत्माको जानकर अनुभव करना योग्य है।

धम्मं च चेयनत्वं, चेतना लक्षने हि संजुत्तं।
अचेत असत्य विमुक्कं, धम्मं संसार मुक्ति सिवपंथं ॥ ७०९ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मं च चेयनत्वं) धर्म आत्माका चेतनपना है। अर्थात् आत्माका आत्मारूप अनुभव करना है (चेतना लक्षने हि संजुत्तं) धर्मका लक्षण ही चेतना है (अचेत असत्य विमुक्कं) जहां न तो अज्ञान है न कोई मिथ्याभाव है (धम्मं संसार मुक्ति शिवपंथं) ऐसा आत्माका धर्म या स्वभाव संसारसे छुडानेवाला और मोक्षका मार्ग है।

भावार्थ—वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। आत्माका जो स्वभाव है वह आत्माका धर्म है। आत्मा स्वभावसे चेतना लक्षण है, यही आत्माका धर्म है। जहां आत्मा कर्म चेतना तथा कर्मफल-चेतनासे रहित हो ज्ञान चेतनाका अनुभव करता है वहीं वह अपने धर्ममें है। ऐसा ज्ञानानुभवरूप या आत्मानुभवरूप धर्म ही वीतरागताके भावको लिये हुए है। अतएव कर्मोंकी निर्जराका कारण है। नवीन कर्मोंका संवर करता है। इसीके वारम्वार अभ्याससे यह आत्मा एकदम संसारसे छूटकर मुक्त होजाता है।

पंच अक्षर उत्पन्नं, पंचम ज्ञानेन सम संजुत्तं।
रागादि मोह त्यक्तं, संसारे तरंति सुद्ध सद्भावं ॥ ७१० ॥

अन्वयार्थ—(पंच अक्षर उत्पन्नं) इस पांच अक्षरी "ॐ नमः सिद्धं" मंत्रके वाच्य परम शुद्ध सिद्धात्माके अनुभवसे उत्पन्न (पंचम ज्ञानेन सम संजुत्तं) पंचम केवलज्ञान तथा साम्य भाव सहित यह भव्य-जीव (रागादि मोह त्यक्तं) राग द्वेषादि मोह भावोंसे छूटकर (सुद्ध सदभावं) शुद्ध आत्मीक भावरूप होकर (संसारे तरंति) संसारसे पार उतर जाता है।

भावार्थ—ॐ नमः सिद्धं मंत्रके जपनेसे व ध्यानेसे, सिद्ध भगवानको भाव नमस्कार करनेसे, सिद्धरूप अपने ही आत्माको अनुभव करनेसे धर्मध्यान होता है, फिर शुक्लध्यान होता है, जिससे चार घातीय कर्मोंका नाश होकर केवलज्ञानका व पूर्ण वीतरागताका लाभ होजाता है। सर्व राग, द्वेष, मोहादि छूट जाता है। फिर चार अघातीय कर्म भी नष्ट होजाते हैं और यह आत्मा संसारसे पार हो मुक्त होजाता है। यहां तारणस्वामीने यह प्रेरणा की है कि मोक्षके इच्छुकको उचित है कि इस पांच अक्षरी मंत्रके द्वारा सिद्धोंका स्वरूप विचारकर अपने आत्माको सिद्ध स्वरूपमय ध्यावे।

चौदह स्वर निरूपण।

अप्प सहावं सुद्धं, अप्पा सुद्धप्प सद्दहइ सुद्धं।
संसार भाव मुक्कं, अप्पा परम पयं च संसुद्धं ॥ ७११ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) आत्मा (सुद्धं अप्प सहावं) शुद्ध आत्माके स्वभावको (सुद्धप्प सुद्धं सद्दहइ) शुद्धात्मा रूप शुद्ध श्रद्धानमें लाता है। (संसारभाव मुक्कं) संसारके रागादि भावोंसे छूट कर (अप्पा संसुद्धं परम पयं च) आत्मा परम शुद्ध श्रेष्ठ मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—यहां प्रथम अ स्वरको लेकर विचार किया गया है। आत्मा जब अपनेको द्रव्य-दृष्टिसे शुद्ध सिद्ध सम श्रद्धानमें लाता है और सर्व राग द्वेषादि व संकल्प विकल्पोंसे छूटकर-अपने ही शुद्ध आत्माके ध्यानमें एकाग्र होकर आत्मानुभव करता है तब स्वयं ही परम पद रूप मोक्षको पा लेता है।

आदि अनादि सुद्धं, सुद्ध सचेयन अप्प सद्भावं।
मिथ्या राग विमुक्कं, आकारे विमल निम्मलं सुद्धं ॥ ७१२।

अन्वयार्थ—(आदि अनादि सुद्धं) कर्मका सम्बन्ध जो प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है व नवीन बंधकी अपेक्षा सादि है उस सर्व कर्म बन्धसे जो रहित होगए हैं (मिथ्याराग विमुक्कं) संसार सम्बन्धी मिथ्या-राग जिनके नहीं रहा है (सुद्ध सचेयन अप्प सद्भावं) जो शुद्ध चेतनामय आत्माका सत्तारूप हैं (आकारे विमल निम्मलं सुद्धं) जिनके आत्माके प्रदेश सब अतिशय निर्मल व शुद्ध हैं। ऐसे ही सिद्धात्मा ध्यानके योग्य हैं।

भावार्थ—यहां आ अक्षरको विचारा गया है। आत्मा और कर्मका परस्पर सम्बन्ध अनादि प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है। तथापि कर्म अपनी एक स्थितिको लिये हुए बन्धते हैं व उसी स्थितिके भीतर वे झड जाते हैं इस अपेक्षा कर्मका सम्बन्ध आत्मासे सादि है। ऐसे सर्व द्रव्य कर्मोंसे, रागादि पाप कर्मोंसे व शरीरादि नोकर्मोंसे रहित होकर जो शुद्ध चेतनामय स्वभावमें लीन हैं, जिनके आत्माके सर्व प्रदेश स्फटिकमणि सम शुद्ध झलक रहे हैं, वे ही सिद्ध भगवान हैं। उनका ध्यान सदाकाल करना योग्य है।

इस्ट संजोयं सुद्धं, इय दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, अप्पा परमप्पयं च जानेहि ॥ ७१३ ॥

अन्वयार्थ—(इस्ट संजोयं सुद्धं) जहां शुद्ध इष्ट संयोग है (इय दंसन ज्ञान चरन सुद्धानं) जहां शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकताका लाभ है (मिथ्या सल्य विमुक्कं) जहां मिथ्यात्वकी शल्य नहीं है (अप्पा परमप्पयं च जानेहि) वहीं आत्माको परमपदका होना जानना चाहिये।

भावार्थ—यहां इ अक्षरपर विचार है-वज्रवृषभ नाराच संहनन आदि मुक्तिके योग्य शुभ सामग्रीका मिलना इष्ट संयोग है तब यथार्थ मोक्षका साधक निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मानुभवका होना परम इष्ट संयोग है। मिथ्या माया निदान तीन शल्य रहित जो भव्य-जीव निश्चय मोक्ष-मार्गको भलेप्रकार साधन करता है वह परमपदको शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

ईर्जा पंथ निवेदं, तिअर्थं संजुत्त ज्ञान संपन्नं।
कुज्ञान मोह विरयं, ईर्जा पन्थ सु निम्मलं सुद्धं ॥ ७१४ ॥

अन्वयार्थ—(ईर्जा पंथ निवेदं) ईर्जा पंथ अर्थात् मोक्षगमनके यथार्थ शुद्ध मार्गका जो अनुभव करते हैं वे (तिअर्थं संजुत्त ज्ञान संपन्नं) रत्नत्रय सहित आत्मज्ञानके धारी होते हैं। (कुज्ञान मोह विरयं) वे मिथ्या ज्ञान व मिथ्या श्रद्धानमें कभी रचते नहीं हैं (सु निम्मलं सुद्धं ईर्जा पंथ) वे परम निर्मल शुद्ध मोक्षमार्गपर चलते हैं।

भावार्थ—यहां ई स्वर पर विचार है। चार हाथ भूमि देखकर चलना ईर्या समिति है। यहां मोक्षमार्गमें मन, वचन, कायकी गुप्ति सहित चलना ईर्यापंथ है ऐसा झलकाया है। जहां रत्नत्रयकी एकता होती है, आत्मानुभव होता है, वहां यथार्थ मोक्षमार्ग है। वहां सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मिथ्याश्रद्धान व मिथ्याज्ञान अवकाश नहीं पाता है। भव्यात्मा इसी मार्गपर चलकर परम पदको पाते हैं।

उत्पन्न ज्ञान सुद्धं, ज्ञानमई निश्च तत्त ससरूवं।
तत्त अतत्त निवेदं, मल मुक्कं च दंसनं अमलं ॥ ७१५ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्न सुद्धं ज्ञान) जहां शुद्ध ज्ञान उत्पन्न होगया है, (ज्ञानमई निश्च तत्त ससरूवं) जहां ज्ञानमई निश्चय तत्व निज आत्माके स्वरूपका अनुभव है, (तत्त अतत्त निवेदं) जहां तत्व अतत्वका भेदविज्ञान है, (मल मुक्तं च दंसनं अमलं) वह मल रहित निर्मल सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—यहां तीन स्वरपर विचार है। निश्चय सम्यग्दर्शनका धारी वही आत्मा है जिसको आत्मा व परका भेदविज्ञान पैदा होकर निर्मल ज्ञान होगया है जिसको अपना स्वरूप ज्ञानमई रागादिसे भिन्न झलक गया है। जहां निज आत्म तत्वका परसे भिन्न यथार्थ अनुभव है।

ऊर्ध ऊर्ध सभावं, ऊर्ध संजुत्त दिट्ठि दंसनं अमलं।
विषय कषाय विमुक्कं, ऊर्ध सम्मत्त सुद्ध संवरनं ॥ ७१६ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध ऊर्ध सभावं) श्रेष्ठमें श्रेष्ठ श्री सिद्ध भगवानका स्वभाव है (ऊर्ध संजुत्त दिट्ठि दंसनं अमलं) जहां सिद्ध स्वरूप पर दृष्टि है वहीं निर्मल सम्यग्दर्शन है (विषय कषाय विमुक्कं) वहां पांच इंद्रियोंके विषयोंका व क्रोधादि कषायोंका त्याग है (ऊर्ध सम्मत्त सुद्ध संवरनं) वहां श्रेष्ठ था उत्तम या निश्चय सम्यक्त है जो शुद्ध है व संवररूप है, कर्मोंके आस्रवोंको रोकनेवाला है।

भावार्थ—तीन जगतमें सबसे महान् आत्मा श्री सिद्ध परमात्मा है। जो कोई सिद्धोंको पहचान कर उनके स्वरूपके समान अपने आत्माके स्वरूपको ध्याता है, वह विषय कषायोंसे पराङ्मुख होकर निज आत्माके स्वभावमें तन्मय होता है, वही निश्चय सम्यक्तका अनुभव करनेवाला यथार्थमें संवररूप है। वह वीतराग भावसे कर्मोंके आस्रवोंको रोक रहा है। यहां ऊ स्वपर विचार किया गया है।

ऋजु विपुलं च सहावं, सुद्ध ज्ञानेन ज्ञान संजुत्तं।
संसार सरनि विरयं, अप्पा परमप्प सुद्ध सद्भावं ॥ ७१७ ॥

अन्वयार्थ—(ऋजु विपुलं च सहावं) जिस साधुके आत्म-स्वभावमें रमण करनेसे ऋजुमति तथा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गए हैं (सुद्धं ज्ञानेन ज्ञान संजुत्तं) जो शुद्धात्माके ध्यानमें तन्मय होकर ज्ञानका आराधन कर रहे हैं (संसार सरनि विरयं) संसारके मार्गसे विरक्त हैं (अप्पा परमप्प सुद्ध सद्भावं) उनका ही आत्मा परमात्माके शुद्ध स्वभावको प्राप्त करता है।

भावार्थ—यहां ऋ अक्षरपर विचार है। विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी ऋद्धिधारी साधु उसी भवसे मोक्षको जाते हैं। ऐसे साधु शुक्लध्यानकी अग्नि जलाकर शुद्धोपयोगमें रमण करते हुए घातिया कर्मोंका क्षय करके अर्हंत परमात्मा होजाते हैं। और फिर चारों अघातियोंका भी क्षय करके सिद्ध होजाते हैं। यह सब शुद्ध ध्यानकी महिमा है।

दीनं कर्म कलंकं, दीनं संसार सरनि मोहंधं।
रुचियंति अमल ज्ञानं, धम्मं सुक्कं च अमल अप्पानं ॥ ७१८ ॥

अन्वयार्थ—(दीनं कर्मकलंकं) जिन्होंने कर्मके कलंकको धोडाला है (दीनं संसार सरनि मोहंधं) तथा संसारमें भ्रमण करानेवाले मिथ्यात्वको दूर वहा दिया है (रुचियंति अमल ज्ञानं) जिनको निर्मल ध्यानकी रुचि होगई है (धम्मं सुक्कं च अमल अप्पानं) वेही निर्मल आत्माका अनुभव करते हुए धर्म तथा शुक्लध्यानको ध्याते हैं।

भावार्थ—यहां ऋ अक्षर पर विचार है। मिथ्यात्वका क्षय करनेवाले क्षायिक सम्यक्ती जीव निरन्तर कर्मोंकी निर्जरा करते हुए निर्मल रुचि रखते हैं, वे ही साधुपदमें पहले धर्मध्यानका अभ्यास करते हैं फिर शुक्लध्यानको ध्याकर निर्मल आत्माका अनुभव करते हुए सर्व कर्म-कलंकको धोकर परमात्मा होजाते हैं।

लिंगं च जिन वरिंदं, छिन्नं परभाव कुमय अज्ञानं।
अप्पा अप्प संजुत्तं, परमप्पा परम भावेन ॥ ७१९ ॥

अन्वयार्थ—(लिंगं च जिन वरिंदं) जो जिनेन्द्र भगवानके समान भाव व द्रव्यलिंगके धारी हैं वे (छिन्नं परभाव कुमय अज्ञानं) रागादि परभाव तथा मिथ्यामति व मिथ्या श्रुतज्ञानके क्षय करनेवाले हैं (अप्पा अप्प संजुत्तं परम भावेन परमप्पा) उनका आत्मा आत्माके स्वभावमें लीन होकर उत्कृष्ट ध्यानके प्रतापसे परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—यहां लृ अक्षरपर विचार है। मोक्षका मार्ग वही भावलिंग व द्रव्यलिंग है जिसे श्री जिनेन्द्र भगवानने तपके समय धारण किया था। भावलिंग रत्नत्रयकी एकता है। द्रव्यलिंग

दिगंबर नग्न बालकके समान सहज स्वभावी है। ऐसे निर्ग्रंथ साधु मिथ्यात्वके अभावसे सर्व मिथ्याज्ञानसे रहित होकर सम्यग्ज्ञानमें लीन हैं तथा अपने आत्माको परमात्मा स्वरूप ध्याते हुए कर्मोंका नाश कर परमात्मा होजाते हैं। यहां यह साफ बता दिया है कि बाहरी लिंग अंतरंग भावोंके लिये निमित्त कारण है। जब बाहरी सर्व वस्त्रादि परिग्रहका त्याग होगा तब ही अंतरंगमें ऐसा निर्ममत्व भाव जागृत होगा जिसके प्रतापसे प्रमत्तादि साधुके गुणस्थान होसकें और आत्मा मोक्षपथपर चढता चला जावे।

लीला अप्प सहावं, पर दव्वं च वै सव्वहा सव्वे।
अप्पा परमप्पानं, लीला परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७२० ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं लीला) जो अपने आत्माके स्वभावमें क्रीडा करते हैं (सव्वे पर दव्वं सव्वहा च वै) सर्व पर द्रव्योंको जिन्होंने सर्वथा त्याग दिया है (अप्पा परमप्पानं लीला) आत्माको परमात्म स्वरूपमें क्रीडा करनेसे (निम्मलं सुद्धं परमप्प) आत्मा कर्म रहित वीतराग परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—यहां लृ अक्षरको विचार किया गया है। जो महात्मा सर्व परद्रव्योंमें क्रीडा करना छोडकर एक अपने आत्माके स्वभावमें ही क्रीडा करते हैं–रमण करते हैं–आत्मानुभव करते हैं वे अवश्य कर्मोंसे रहित हो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा होजाते हैं।

एयं सुद्ध सहावं, एयं संसार सरनि विगतो य।
एयं च सुद्ध भावं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसनं सुद्धं ॥ ७२१ ॥

अन्वयार्थ—(एयं सुद्ध सहावं) एक शुद्ध स्वभावमें जहां रमण है, (एयं संसार सरनि विगतो य) जो एक आप ही संसारके मार्गसे रहित है, (एयं च सुद्ध भावं) एक ही शुद्ध भावको धारकर जो (ज्ञान दंसनं सुद्धं) शुद्ध ज्ञान व दर्शनमें लीन होता है, वही (सुद्धप्पा) शुद्ध आत्मा हो जाता है।

भावार्थ—यह आत्मा एक अकेला ही संसारमें भ्रमण करता है व आप अकेला ही मोक्षमार्गपर चलकर मुक्त हो जाता है। जब यह संसारके कारणीभूत राग, द्वेष, मोह भावोंसे रहित होकर एक अपने ज्ञान दर्शन स्वभावमें ठहरकर स्वात्म रमण करता है तब यह आप ही शुद्धात्मा होजाता है। यहां ए अक्षरका विचार किया गया है।

ऐयं इय अप्पानं, अप्पा परमप्प भावना सुद्धं ।
रागं विषय विमुक्कं, सुद्धं समहाव सुद्ध सम्मत्तं ॥ ७२२ ॥

अन्वयार्थ—(इय अप्पानं ऐयं) जहां एक अपने आत्मासे ही एकपना होरहा है (अप्पा परमप्प भावना सुद्धं) आत्मा परमात्माकी शुद्ध भावनामें लीन है (रागं विषय विमुक्कं) पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें रागसे जो मुक्त है (सुद्धं समहाव सुद्ध सम्मत्तं) और शुद्ध अपने स्वभावमें रत है वहीं शुद्ध सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—यहां ऐ अक्षरपर विचार किया गया है । अपने ही शुद्ध स्वभावसे एकमेक होकर व सर्व विषयवासनाके रागसे मुक्त होकर जो शुद्ध स्वभावमें तल्लीन है, वही निश्चय सम्यग्दर्शनका धारी है ।

ओं वं ऊर्ध सहावं, अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य ।
मिथ्या कुज्ञान विरयं, सुद्धं च अमल केवलं ज्ञानं ॥ ७२३ ॥

अन्वयार्थ—(ओं वं ऊर्ध सहावं) ॐ अक्षरमें सिद्ध भगवानका श्रेष्ठ स्वभाव झलक रहा है, (अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य) जब आत्मा ॐ के द्वारा परमात्माके निर्मल ज्ञानमें एकाग्र होता है । (मिथ्या कुज्ञान विरयं) मिथ्या श्रद्धान और मिथ्या ज्ञानसे विरक्त हो जाता है, तब इसे (सुद्ध च अमल केवलं ज्ञानं) शुद्ध निर्मल केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ—यहां ओ अक्षरका विचार किया गया है । ओं के भीतर परमात्माके निर्मल स्वभावका दर्शन होता है । जो कोई मिथ्यात्वको त्याग कर इस निर्मल आत्म स्वभावमें लीन होजाता है, वह शीघ्र ही केवलज्ञानको पालेता है ।

औकासं उवएसं, औकासं विमल केवलं ज्ञानं ।
संसार विगत रूवं, औकासं लहन्ति निव्वानं ॥ ७२४ ॥

अन्वयार्थ—(औकासं उवएसं) अभ्यन्तर आत्मा सम्बन्धी यही उपदेश है कि(औकासं विमल केवलं ज्ञानं) निर्मल केवल आत्माका ध्यान ही अभ्यन्तरमें जिसके रहता है वह (संसार विगत रूवं) संसारके विभावोंसे छूटकर (औकासं निव्वानं लहंति) अभ्यन्तरमें ही निर्वाणको पाता है ।

भावार्थ—यहां औ अक्षरका विचार किया गया है। निर्वाण और निर्वाणका मार्ग दोनों भीतर आत्मामें ही हैं। जो कोई बहिरात्मापना छोडकर तथा अन्तरात्मा होकर शुद्धात्माको ध्याता है वही निर्वाणको पाता है। केवल बाहरी क्रियाकांडसे मुक्ति नहीं होती है। आत्माका पूर्ण स्वभाव मोक्ष है तथा अपूर्ण स्वभाव मोक्षमार्ग है।

अप्पा परमप्पानं घाय चवक्कय विमुक्क संसारे।
रागादि दोस विरयं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७२५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) आत्मा (संसारे) संसारमें (रागादि दोस विरयं) रागादि दोषोंसे विरक्त होकर (परमप्पानं) व परमात्मामई स्वरूपमें लय होकर (घाय चवक्कय विमुक्क) चार घातीय कर्मोंसे छूटकर (अप्पा) आप ही (निम्मलं सुद्धं परमप्प) निर्मल शुद्ध परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—आत्माके शुद्ध होनेका उपाय आत्माका ही वीतराग विज्ञानमय होकर ध्यान करना है। जब शुद्धोपयोग रूप शुक्लध्यान प्रकाशित होता है तब ज्ञानावरणादि चारों घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है और यह आत्मा स्वयं अर्हत् परमात्मा होजाता है।

अह अप्पा परमप्पा, ज्ञानं संजुत सुदंसनं सुद्धं।
संसार सरनि विमुक्कं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ७२६ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) यह आत्मा (ज्ञानं संजुत सुदंसनं सुद्धं) शुद्ध सम्यग्दर्शन व शुद्ध ज्ञान सहित होकर जब (संसारे सरनि विमुक्कं) संसारके मार्गसे वैरागी होकर (अह परमप्पा) निरन्तर परमात्मा रूप अपनेको ध्याता है तो यही (परमप्पा लहै निव्वानं) परमात्मा होकर निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—रत्नत्रय व्यवहार तथा निश्चय उभयरूप है। जो कोई व्यवहार रत्नत्रय द्वारा निश्चय रत्नत्रय स्वरूप अपने आत्माका वारवार अनुभव करता है-संसारके रससे विरक्त होकर आत्मीक रसका पान करता है तो वह अवश्य कर्मबंधसे छूटकर सिद्ध परमात्मा होजाता है।

सुर चौदस संसुद्धं, नंत चतुस्टैं विमल सुद्धं च।
सुद्धं ज्ञान सरूवं, सुरविंदं अमल ज्ञान स सहावं ॥ ७२७ ॥

अन्वयार्थ—(सुर चौदस संसुद्धं) चौदह स्वरोंके द्वारा परम शुद्ध (नंत चतुस्टै विमल सुद्धं च) अनन्त चतुष्टय विराजमान कर्ममल रहित निर्दोष आत्माके (सुद्धं ज्ञान सरूवं) शुद्ध ज्ञान स्वरूपका ध्यान करना चाहिये (सुर अमल ज्ञान ससहावं विंदं) अर्थात् इन स्वरोंके द्वारा निर्मल ज्ञान स्वभावी अपने आत्माका अनुभव करना चाहिये।

भावार्थ—यहां चौदह स्वरोंको लेकर आत्माके तत्वका विचार किया है-अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। इन चौदह स्वरोंकी अपेक्षासे परमात्माके स्वरूपका मनन किया गया है। अर्थात् आत्माके शुद्ध स्वभावका स्वयं स्वाद लिया गया है। मुमुक्षु जीवको उचित है कि एक२ स्वरका मनन करते हुए उसके सहारेसे आत्माका ध्यान करे।

तेतीस व्यंजन निरूपण।

विंजन स एन सुद्धं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसनं परमं।
परमं परमानन्दं, ज्ञान सहावेन विंजनं अमलं ॥ ७२८ ॥

अन्वयार्थ—(स सुद्धं विंजन) वही शुद्ध व्यंजन है (एन सुद्धप्पा ज्ञान दंसनं परमं) जिसके द्वारा शुद्ध ज्ञान दर्शन गुणोंका बोध हो (परमं परमानन्दं) श्रेष्ठ परमानन्दका लाभ हो (ज्ञान सहावेन अमलं विंजनं) तथा ज्ञान स्वभावके अनुभव द्वारा निर्मल आत्माका प्रकाश हो।

भावार्थ—अब आगे तेतीस क ख आदि व्यंजनोंके आलम्बनसे विचार करेंगे। वे ही शब्द व वे ही अक्षर सार्थक हैं जिनके द्वारा अपना आत्मा यथार्थ द्रव्यरूप अविनाशी ज्ञाता दृष्टा परमानन्दमई झलके व अपना उपयोग निजात्मीक स्वभावमें लवलीन होजावे। और निजानन्दका स्वाद मिल सके। तथा यह संसारीसे सिद्ध होजावे।

कक्का कम्म षिपनं, कक्का वर ज्ञान केवलं ज्ञानं।
कक्का कमल सुवन्नं, कम्मं षिपति सुद्ध ज्ञानस्थं ॥ ७२९ ॥

अन्वयार्थ—(कक्का कम्म षिपनं) क अक्षर बताता है कि कर्मोंका क्षय कर देना चाहिये (कक्का वर ज्ञान केवलं ज्ञानं) क अक्षर सुझाता है कि श्रेष्ठ ज्ञान जो केवलज्ञान है उसको प्राप्त करना चाहिये (कक्का कमल सुवन्नं) क अक्षर उन सुवर्णमई कमलोंकी स्मृति कराता है जिनको तीर्थंकर भगवानके अर्हंत अवस्थाके समय विहार करते हुए देवतागण रचते हैं (कम्मं षिपति सुद्ध ज्ञ नत्थं) क अक्षर बताता है कि निर्मल ध्यानमें जमकर कर्मोंका नाश कर देना चाहिये।

भावार्थ—यहां क अक्षरपर विचार किया गया है। इसके द्वारा अपना भाव आत्माकी शुद्धावस्थापर खींचा गया है कि जिन कर्मोंने आत्माका स्वभाव रोक रक्खा है उन कर्मोंका क्षय कर देना चाहिये। और केवलज्ञानको प्रकाश करना चाहिये।

षषा षिपति सुकम्मं, षिपक श्रेनि षवं संसारे।
मिथ्या कुज्ञान षिपनं, अप्प सरूवं च ज्ञान सहकारं ॥ ७३० ॥

अन्वयार्थ—(षषा षिपति सुकम्मं) ष अक्षर द्वारा अपने कर्मोंको क्षय करनेका विचार करना चाहिये (षिपक श्रेनि षवं संसारे) क्षपकश्रेणीके गुणस्थानोंपर चढनेसे ही संसारका क्षय होता है (मिथ्या कुज्ञान षिपनं) मिथ्यादर्शन व मिथ्या ज्ञानका क्षय करना योग्य है (अप्प सरूवं च ज्ञान सहकारं) इस कार्यके हेतु आत्माके स्वरूपका ज्ञान सहकारी है।

भावार्थ—ष अक्षरपर विचारते हुए यही भावना की गई है कि मिथ्यात्वका व मिथ्याज्ञानका क्षय किया जावे। तथा चारित्रकी वृद्धि करके क्षपकश्रेणीपर आरूढ होकर चार घातीय कर्मोंको, जो संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं, क्षय किया जावे और आत्माको परमात्मामें बदल दिया जावे। इस सब कामके लिये निश्चय सम्यग्दर्शनके लाभकी आवश्यक्ता है। जिससे आत्माका स्वभाव द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्मसे भिन्न सिद्ध सम शुद्ध ज्ञानाकार झलके। यही आत्मानुभव आत्माको शुद्ध करनेवाला है व सर्व कर्मोंके क्षयका अमोघ बाण है।

गग्गा गमन सहावं, ज्ञानं ज्ञानं च अप्पयं विमलं।
तिक्तं ति सयल मोहं, त्रिक्तं रूवेन भावना निश्चं ॥ ७३१ ॥

अन्वयार्थ—(गगा गमन सहावं) ग अक्षरसे गमन स्वभावी अर्थात् परिणमन स्वभावी और ज्ञान स्वभावी आत्मापर लक्ष्य देना चाहिये (ज्ञानं ज्ञानं च अप्पयं विमलं) निर्मल आत्माका ही ज्ञान व उसीका ही ध्यान करना चाहिये (तिंकं ति सयल मोहं) सर्व मोहको त्याग देना चाहिये (विंकं रूवेन निश्चं भावना) प्रगट आत्माके स्वभावपर लक्ष्य देकर निश्चय स्वरूपकी भावना करनी चाहिये।

भावार्थ—यहां ग अक्षरपर विचार है। गमन शब्दका अर्थ परिणमन भी है और ज्ञान भी है। इससे आत्माका बोध होता है। आत्मा द्रव्य है, इससे परिणमनशील भी और ज्ञान स्वरूप भी है। आत्माके सच्चे स्वभावका ज्ञान प्राप्त करके हमको अपना उपयोग और सब संसारके मोहजनित कर्मोंसे हटा करके बिलकुल निर्मोही तथा निस्पृही होकर निज आत्माका ही ध्यान करना चाहिये। निश्चय निज आत्माकी ही प्रगट रूपसे भावना करना चाहिये अर्थात् मैं ही आत्मा हूं ऐसा जानकर स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा उसीका ही अनुभव करना चाहिये।

घन घाय कम्म मुक्कं, घनअ समूह कम्म निदलनं।
घन ज्ञान ज्ञान सुद्धं, सुद्धसरूवं च सुद्ध मप्पानं ॥ ७३२ ॥

अन्वयार्थ—(घन घाय कम्म मुक्कं) आत्माके साथ गाढ रूपसे अनादिसे प्रवाह रूप बंधे चल आए हुए इन ज्ञानावरणादि घातीय कर्मोंका नाश करना चाहिये, (घनअ समूह कम्म निदलनं) अत्यन्त गाढे बन्ध हुए अनन्त कर्मोंके समूहका क्षय कर देना चाहिये, (घन ज्ञान ज्ञान सुद्धं) दृढतासे निश्चय पूर्वक आत्माका ज्ञान प्राप्त करके शुद्ध आत्माका ही दृढतासे ध्यान करना चाहिये, (सुद्ध सरूवं च सुद्ध मप्पानं) जिससे शुद्ध आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकाशमान हो जावे।

भावार्थ—यहां घ अक्षरपर विचार है। इस अक्षरके द्वारा अनादि कालसे आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाह रूप गाढ सम्बन्ध रखनेवाले घाति तथा अघाति अनन्त कर्म समूहको क्षय करनेके लिये अपने ही आत्माका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके उसीका ही ध्यान करना चाहिये। आत्मध्यानकी अग्निमें ही यह शक्ति है जो कर्मोंको जला देवें और आत्माका शुद्ध स्वरूप झलका देवें।

नानाप्रकार सुद्धं, ज्ञानं ज्ञानं च सुद्ध ससरूवं।
निदलंति कम्म मलयं, नन्तानन्त चतुस्टयं अमलं ॥ ७३३ ॥

अन्वयार्थ—(नानाप्रकार सुद्धं) अनेक प्रकारसे शुद्ध अर्थात् संशय विमोह विभ्रम रहित (ज्ञानं ज्ञानं च सुद्ध ससरूवं) सम्यग्ज्ञानके द्वारा अपने ही शुद्ध स्वरूपका ध्यान (कम्म मलयं निदलंति) कर्मरूपी मैलको नाशकर डालता है (नंतानंत चतुष्टयं अमलं) तथा निर्मल अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य तथा अनन्त सुखका प्रकाश कर देता है।

भावार्थ—यहां ङ अक्षरपर विचार किया गया है। जिसको नकार ध्यानमें लेकर नानाप्रकारके मिथ्या ज्ञान संशयादि पर लक्ष्य दिया गया है कि इन सर्व विकारोंसे रहित आत्मा व परका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके आत्माका स्वभाव यथार्थ जान करके उसीका ही ध्यान करना चाहिये। आत्मध्यानमें ही यह शक्ति है कि जिससे कर्म मैल कट जावे और आत्माके केवलज्ञानादि गुण प्रकाशमान होजावे।

चेयन गुन संजुत्तं, चित्तं चिंतयन्ति तिय लोयं।
गय संकप्प वियप्पं, चेयन संजुत्त अप्प ससरूवं ॥ ७२४ ॥

अन्वयार्थ—(चेयन गुन संजुत्तं चित्तं) चेतन गुण सहित आत्मा या मन (तिय लोयं चिंतयंति) तीन लोकके स्वरूपका विचार करता है परन्तु (गय संकप्प वियप्पं) जब उस मनके सर्व संकल्प विकल्प मिट जाते हैं तब (चेयन संजुत्त अप्प ससरूवं) चेतन गुण सहित आत्माका निज स्वरूप ही अनुभवमें आता है।

भावार्थ—यहां च अक्षर पर विचार किया गया है। चित्त या भावमन आत्माके अशुद्ध चंचल उपयोगको कहते हैं। इस मनका ही यह काम है जो तीनलोकके स्वरूपका या तीनलोक जिनसे भरा है उन जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छः द्रव्योंके स्वरूपका गुणपर्याय रूप विचार कर जब यह मन थम जाता है तब सर्व संकल्प विकल्प मिट जाते हैं। अहंकार, ममकार, राग, द्वेष, नयोंके भेदरूप विचार सब बंद होजाते हैं तब आत्मा स्वयं निज निश्चल चेतन स्वरूपमें वीतरागता सहित आपको झलक जाता है अर्थात् आत्माका अनुभव होजाता है। समाधिशतकमें कहा है—

रागद्वेषादि कल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्। स पश्यत्यात्मनस्तत्वं स तत्वं नेतरो जनः ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जिसका मनरूपी जल रागद्वेषादि तरंगोंसे चलायमान नहीं है वही आत्माके तत्वको अनुभव कर सक्ता है, दूसरा मनुष्य कोई नहीं कर सक्ता है।

छ काय क्रिया जुत्तं, क्रिया ससहावं सुद्ध परिनामं।
संसार विषय विरयं, मल मुक्कं दंसनं अमलं ॥ ७२६ ॥

अन्वयार्थ—(छकाय क्रिया जुत्तं) जो छःकायके प्राणियोंपर दयावान हैं (क्रिया ससहावं सुद्ध परिनामं) अहिंसामय आत्मीक स्वभाव रूप शुद्ध परिणामोंके धारी हैं (संसार विषय विरयं) संसारके विषय-भोगोंसे विरक्त हैं (मल मुक्कं दंसनं अमलं) दोष रहित निर्मल सम्यग्दर्शनके धारी हैं वे ही मोक्षगामी हैं।

भावार्थ—दयावान साधु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस इन छः काय धारी प्राणियोंके ऊपर करुणाभावसे वर्तते हुए इनकी रक्षा करते हैं। उनका परिणाम ही अहिंसामई वीतराग निज स्वभावमें आसक्त होता है। वे सर्व विषय-भोगोंके रागसे पूर्णतया विरक्त हैं। उनहीके शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन होता है जिसके प्रतापसे वे आत्मानुभव करते हुए मोक्षमार्गके पथिक होरहे हैं। यहां छ अक्षरपर विचार है।

जैवंतं जिनवयनं, जैवंतं विमल अप्प सहावं।
कम्ममल पयडि मुक्कं, अप्प सहावेन ज्ञान सहकारं ॥ ७२६ ॥

अन्वयार्थ—(जिनवयनं जैवंतं) जिनवाणीकी जय हो (विमल अप्प सहावं जैवंतं) उस वाणी द्वारा प्रगट निर्मल आत्माका स्वभाव जयवन्त हो (अप्प सहावेन ज्ञान सहकारं) जिस आत्माके स्वभावमें ठहरनेसे आत्मज्ञानकी सहायतासे (कम्ममल पयडि मुक्कं) कर्ममलकी प्रकृतियोंसे आतमा छूट जाता है।

भावार्थ—यहां ज अक्षरका विचार किया गया है। श्री जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित आगम परम वन्दनीय व प्रशंसनीय है, जिसके अभ्यास करनेसे भव्यजीवको अपने निर्मल आत्माका ज्ञान सर्व द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नोकर्मसे रहित झलक जाता है। वे भव्यजीव इसी आत्म-स्वभावका अनुभव करते हुए आत्मज्ञानके बलसे ऐसी प्रबल ध्यानकी अग्नि जलाते हैं जिससे कर्मोंका मैल उड़ जाता है और आतमा पवित्र होजाता है।

ज्ञान सहावं सुद्धं, धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलयं।
कम्मकलंक विमुक्कं, ज्ञानमय ज्ञान रूढ संजुत्तो ॥ ७२७॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं सुद्धं) आत्मध्यानका स्वरूप वीतराग मय है (धम्मं सुक्कं च ज्ञान निम्मलयं) ऐसे निर्मल ध्यान धर्म तथा शुक्ल हैं (ज्ञानमय ज्ञान रूढ़ संजुत्तो) जो कोई सम्यग्दर्शनके साथ ध्यानारूढ होते हैं वे (कम्म कलंक विमुक्कं) कर्मोंके कलंकसे छूट जाते हैं।

भावार्थ—यहां ज्ञ अक्षरका विचार किया गया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक ध्यान ही सच्चा शुद्ध ध्यान है। इसहीको धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान कहते हैं। जो कोई इन दोनों ध्यानोंका क्रमशः अभ्यास करते हैं, वे सर्व कर्मोंसे शुद्ध होकर सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं।

नंतानंत सुदिट्ठी, नंतं संसार सरनि विलयन्ति।
विलयंति कम्म मलयं, ज्ञान सहावेन सुद्ध सद्भावं॥ ७३८॥

अन्वयार्थ—(नंतानंत सुदिट्ठी) अनन्तानन्त ज्ञानादि गुणोंके धारी आत्माका जो भले प्रकार अनुभव करनेवाला है, उसके (नंतं संसार सरनि विलयंति) अनन्त संसारका मार्ग विला जाता है, (ज्ञान सहावेन सुद्ध सद्भावं) वह आत्मीक ज्ञानके स्वभावसे शुद्ध स्वरूपमें वर्तन करता हुआ, (कम्म मलयं विलयंति) कर्म मलका क्षय करता है।

भावार्थ—यहां च वर्गका पांचवां अक्षर ञ है उसके स्थानपर न का विचार किया गया है। आत्मा अनंत ज्ञानादि गुणोंका समुदाय है। जो कोई भव्यजीव परम श्रद्धा सहित अपने आत्माको जान करके उसीका मनन तथा अनुभव करते हैं, उनका संसार कारणीभूत मिथ्यात्व नष्ट होजाता है। वे सम्यग्दृष्टी जीव अपनी ज्ञान चेतनाका विलास लेते हुए परम वीतरागताके प्रभावसे सर्व कर्मोंका क्षय करके परमात्मा हो जाते हैं।

टंकोत्कीर्नं अमलं, मल संसार सरनि विलयं च।
अप्प सहाव सुदीठं, निदिट्ठं संजदो रूवं॥ ७३९॥

अन्वयार्थ—(टंकोत्कीर्नं अमलं) आत्माका स्वभाव टांकीसे उकेरी हुई मूर्तिके समान अविनाशी और शुद्ध है। (मल संसार सरनि विलयं च) जहां संसारके भीतर भ्रमण करानेवाला कर्म मल बिलकुल नहीं है, (अप्प सहाव सुदिट्ठं) जिसने ऐसे आत्माके स्वभावको भले प्रकार अनुभव किया है, (संजदो रूवं निदिट्ठं) उसीको संयमी साधुका स्वरूप कहा गया है।

भावार्थ—यहां ट अक्षरका विचार है। यह आत्मा अपने स्वभावसे ध्रुव है। जितने शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि गुणोंका धारी है, उतने गुण सदा बने रहते हैं। कोई भी गुण न तो कम होता है, न कोई गुण कहींसे नया आकर मिलता है। द्रव्यके स्वभावकी अपेक्षा देखा जावे तो आत्मामें न तो कभी कर्म थे न अब हैं न आगामी कर्म संयोग पाएँगे। ऐसे सिद्धवत् शुद्ध आत्माके स्वभावका जो साधु अनुभव करनेवाले हैं वे ही सच्चे संयमी, यति, अनगार हैं।

ठानं झानं झायदि, झायदि सुद्धं च अमल ज्ञानस्य।
झायंति सुद्ध भावं, कम्ममल तिक्त असुह संसार ॥ ७४० ॥

अन्वयार्थ—(ठानं झानं झायदि) हरएक गुणस्थानमें या हर स्थानमें साधु आत्मध्यानको ध्याते हैं (सुद्धं च अमल ज्ञानस्य झायदि) शुद्ध वीतराग ज्ञानका ही ध्यान करते हैं (सुद्ध भावं झायंति) अर्थात् शुद्ध आत्मीक भावका ही ध्यान लगाते हैं जिससे (कम्ममल तिक्त असुह संसारे) कर्म-मलोंको छुड़ाकर इस आत्माके अहितकारी संसारसे पृथक् होजाते हैं।

भावार्थ—यहां ठ अक्षरका विचार किया गया है। साधुओंके गुणस्थान छः से बार तक होते हैं। छठे सातवेंमें साधु निर्मल ज्ञानस्वभावी आत्माका ध्यान करते हुए धर्मध्यानको ध्याते हैं फिर आठवेंसे बारहवें तक शुक्लध्यानको ध्याते हैं, यहां शुद्धोपयोगकी निर्मलता होती है। इसीसे घातीय कर्मका नाश कर अरहन्त होजाते हैं। फिर तीसरे चौथे शुक्लध्यानके बलसे चार अघातीय कर्मोंको भी क्षय कर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं-इस भ्रमणरूप-जन्म मरणरूप संसारके चक्रसे हमेशाके लिये छूट जाते हैं।

डंड कपाटं दिट्ठं, दिट्ठं विमल दंसनं सुद्धं।
मिथ्यातराग विलयं, संसारे तजंति मोहंधं ॥ ७४१ ॥

अन्वयार्थ—(डंड कपाटं दिट्ठं) केवल समुद्घात दंड कपाट प्रतर लोक पूर्ण करनेवाले अरहन्तको जिसने जाना है (विमल सुद्ध दंसनं दिट्ठं) निर्दोष शुद्ध सम्यग्दर्शनका जिसने अनुभव किया है (मोहंधं मिथ्यातराग विलयं) मोहमें अन्धा करनेवाले मिथ्यात्वके रागका जहां नाश होगया है वे ही (संसारे तजंति) संसारसे छूट जाते हैं।

भावार्थ—मिथ्यात्व रहित सम्यग्दृष्टी जीवको श्री अरहन्त भगवान ही सच्चे देव हैं ऐसा दृढ श्रद्धान है, वह शुद्धात्माको श्रुतज्ञानके बलसे जानकर अनुभव करते हैं। इसी स्वात्मानुभवके प्रतापसे धीरे २ सर्व कर्मोंसे मुक्त होकर संसार रहित होजाते हैं। यहां ड अक्षरका विचार किया गया है।

ढं परमप्पा झांनं, ज्ञान सरूवं च अप्प सद्भावं।
विकहा कषाय विरयं, अप्पा परमप्प भावना सुद्धं ॥ ७४२ ॥

अन्वयार्थ—(ढं) निर्गुण-अर्थात् औपाधिक गुण रागादिसे रहित (परमप्पा झानं) परमात्माका ध्यान है सोई (ज्ञान सरूवं च अप्प सद्भावं) ज्ञान स्वरूपी आत्माकी सत्तामें निवास है (विकहा कषाय विरयं) न जहां कोई स्त्री भोजनादि विकथाका विचार है न वहां क्रोधादि कषाय हैं, वहां (अप्पा परमप्प भावना सुद्धं) आत्मा परमात्माकी शुद्ध भावनामें लीन है।

भावार्थ—यहां ढ अक्षरका विचार किया गया है। ढ का अर्थ निर्गुण है। अर्थात् जहां कोई रागादि विकार नहीं है, ऐसे परमात्माका जो ध्यान है वही निज शुद्ध आत्माका ध्यान है। स्त्री, भोजन, देश व राजा कथाके भावोंको व क्रोध, मान, माया, लोभके विकारोंको दूर रखकर जो वीतराग भावसे शुद्धात्माकी भावना करते हैं वे ही मोक्षमार्गी हैं।

नाना प्रकार दिट्ठं, ज्ञानं ज्ञानेन सुद्ध परमेष्ठि।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, ज्ञान सहावेन सुद्ध स सहावं ॥ ७४३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध परमेष्ठि ज्ञानेन) शुद्ध परमेष्ठी अर्हंत सिद्धके ध्यान करनेसे (नानाप्रकार ज्ञानं दिट्ठं) अनेक प्रकारका ज्ञान प्रकाशित होता है (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) ध्यानके द्वारा ही ज्ञान शुद्ध होता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध स सहावं) ज्ञान स्वभावमें लीन होने हीसे शुद्ध आत्माका स्वभाव झलक जाता है।

भावार्थ—शुद्ध आत्मापर लक्ष्य देते हुए अर्हंत सिद्ध परमेष्ठीके आलम्बनसे जब उपयोगको थिर करके आत्मध्यान किया जाता है तब भावोंकी शुद्धता होनेसे ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होता है जिससे ज्ञानका विकाश होने लगता है। ध्यान हीसे पूर्ण श्रुतज्ञान होजाता है, नानाप्रकार देशावधि परमावधि व सर्वावधि ज्ञान झलकता है। ऋजुमति, विपुलमति, मनःपर्यय ज्ञान होजाता है। ध्यानके ही प्रतापसे सर्व ज्ञानावरण कर्मका क्षय होनेसे केवलज्ञान झलक जाता है। आत्माके

ज्ञान स्वभावमें लीन होना ही ध्यान है। इसी आत्मीक ध्यानसे आत्मा परमात्मारूप होजाता है। यहां ण के स्थानपर न अक्षरपर विचार किया गया है।

तारंति सुद्ध भावं, तिक्कंति भाव सयल मिच्छत्तं।
अप्पा परु पिच्छन्तो, तरन्ति संसार सायरे घोरे ॥ ७४४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध भावं तारंति) शुद्ध भाव ही प्राणियोंको संसार सागरसे तारनेवाला है (सयल मिच्छत्तं भाव तिक्कंति) जहां सर्व मिथ्यात्व भावका त्याग कर दिया जाता है (अप्पा परु पिच्छंतो) आत्मा और परको भेदज्ञानसे भिन्न१ देखा जाता है वहीं शुद्ध भाव झलकता है। इसी शुद्ध भावके धारी सम्यग्दृष्टी जीव (घोरे संसार सायरे तरंति) भयानक संसाररूपी समुद्रको तरके पार होजाते हैं।

भावार्थ—यहां त अक्षरपर विचार किया गया है। शुभ अशुभ दोनों ही प्रकारके उपयोग पुण्य तथा पापकर्मके बांधनेवाले हैं, एक शुद्धोपयोग ही कर्मोंकी निर्जराका कारण है। यह भवसागरसे पार करनेको जहाज है। पर्याय बुद्धि मिथ्यात्व है, इसको छोडके जो शुद्ध आत्मीक आनन्दमें रुचि रखके अपने आत्माको सर्व कर्मोंसे भिन्न जानके अनुभव करता है वही शुद्धोपयोगको पाता है। शुद्धोपयोगी साधु ही अरहन्त व सिद्ध परमात्मा होते हैं।

थानं च सुद्ध ज्ञानं, ति अर्थं पंच दीप्ति थान सुद्धं च।
मिथ्या कुज्ञान तिक्कं, ज्ञान सहावेन थान संसुद्धं ॥ ७४५ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध ज्ञानं च थानं) शुद्ध आत्मध्यान ही वह स्थान है जहां (तिअर्थं) रत्नत्रय धर्म है (च पंच दीप्ति सुद्धं थान) तथा पांचों ज्ञानोंके प्रकाशका शुद्ध स्थान है या पांच परमेष्ठी पदोंके प्रकाशका शुद्ध स्थान है (मिथ्या कुज्ञान तिक्कं) उस शुद्ध ध्यानमें मिथ्यादर्शन तथा मिथ्याज्ञान नहीं है (ज्ञान सहावेन संसुद्धं थान) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेहीसे परम शुद्ध स्थान जो मोक्ष है वह प्राप्त होना है।

भावार्थ—यहां प अक्षर पर विचार किया गया है। रागद्वेष रहित वीतरागता सहित तथा मिथ्यात्वभाव और मिथ्या ज्ञानकी वासनासे मुक्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रमई रत्नत्रयसे भूषित जो आत्मध्यानका अभ्यास करना है वही मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय तथा केवल-

ज्ञानको प्रकाश करनेवाला है अथवा इसी ध्यानसे अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुके पांच पद प्राप्त होजाते हैं। मोक्षका साधक ज्ञानमई ध्यान ही है।

दर्सन सुद्धि निमित्तं, भावं सुद्धं च निम्मलं सुद्धं।
ज्ञानेन ज्ञान रूवं, जिन उत्तं ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ७४६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन सुद्धि निमित्तं) सम्यग्दर्शनकी शुद्धताके कारणसे (सुद्धं भावं) शुद्ध भाव होता है (च निम्मलं सुद्धं) और आत्मा कर्ममलसे रहित शुद्ध होता है (ज्ञानेन ज्ञान रूवं) ज्ञानके द्वारा ज्ञान स्वभावी आत्माका अनुभव करना चाहिये, इसी ध्यानके प्रतापसे (जिन उत्तं निम्मलं सुद्धं ज्ञान) श्री जिनेन्द्रके कहेके अनुसार कर्ममल रहित शुद्ध केवलज्ञान प्रकाशमान होजाता है।

भावार्थ—यहां द अक्षरका विचार किया गया है। दर्शनविशुद्धि भावना सोलहकारण भावनाओंमें प्रथम इसीलिये दी है कि सम्यग्दर्शनकी शुद्धता सर्व भावनाओंकी जड है। इसीसे भावोंकी शुद्धता होती है। इसीसे शुद्ध आत्मध्यान होता है व इसीसे केवलज्ञानका प्रकाश होता है व इसीसे आत्मा कर्ममलसे रहित शुद्ध होता है। इसीके प्रतापसे आत्मा परसे हटकर निज स्वभावमें लीन होकर निजानन्दका स्वाद लेता है।

धरयंति धम्म जुत्तं, मन पसरन्त ज्ञान सह धरनं।
झायं सुद्ध सहावं, ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं ॥ ७४७ ॥

अन्वयार्थ—(धरयंति जुत्तं धम्म) जो संसार-समुद्रमें पडनेसे उद्धार करे वही योग्य धर्म है (मन पसरन्त ज्ञान सह धरनं) वह धर्म आत्मज्ञान है जिसकी सहायतासे पर पदार्थोंमें फैलनेवाले मनको रोक लिया जाता है (सुद्ध सहावं झायं) तथा शुद्ध आत्मीक स्वभावका ध्यान धर्म है (ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं) ज्ञान स्वभावमें लीन होने हीसे यह चेतन स्वरूप आत्मा कर्ममल रहित शुद्ध होजाता है।

भावार्थ—जो उद्धार करे-पतन होनेसे बचावे, संसार सागरसे उद्धार करे, मोक्षमें स्थापन करे वह धर्म है। वह धर्म निश्चय रत्नत्रयमई एक आत्मानुभूति है, जहां शुद्ध आत्माका ज्ञान भी है व ध्यान भी है। इसी आत्मानुभूतिके होते हुए संकल्प विकल्परूपी मन थम्भ जाता है, उपयोग

निर्विकल्प होजाता है। यही शुद्ध आत्माका ध्यान है। इस ध्यानसे ही आत्मा कर्मोंके मैलसे छूट-कर परमात्मा होजाता है। यहां ध अक्षरपर विचार किया गया है।

न्यानमयं अप्पानं छिंदंति दुट्ठ कम्म मिच्छत्तं।
छिन्नं कषाय विषयं, अप्प सरूवं च निम्मलं भावं ॥ ७४८ ॥

अन्वयार्थ—(न्यानमयं अप्पानं) ज्ञानमई आत्माको ध्यानेसे (मिच्छत्तं दुट्ठ कम्म छिंदंति) मिथ्यात्व कर्म तथा दुष्ट आठों ही कर्म नष्ट होजाते हैं (कषाय विषयं छिन्नं) क्रोधादि कषाय तथा पांचों इन्द्रियोंके विषय भोगके भाव दूर होजाते हैं (अप्प सरूवं च निम्मलं भावं) आत्माका स्वाभाविक निर्मल स्वभाव झलक जाता है।

भावार्थ—यहां न अक्षर पर विचार है। आत्माका स्वभाव ज्ञान दर्शनमय परम ज्योतिस्वरूप निर्विकार है। जो सर्व विकल्पोंसे मुंह मोडकर एक निज आत्माका ध्यान लगाते हैं उनका मिथ्यात्व कर्म क्षय होजाता है। वे क्षायिक सम्यक्ती होजाते हैं। फिर विशेष आत्मध्यानसे ही विषयवासनाका सर्व भाव नष्ट होजाता है। चारित्र मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे यथाख्यात चारित्र या वीतराग-भाव पैदा होजाता है। तथा उसी आत्मध्यान स्वरूप शुक्लध्यानसे चारों घातीय कर्मोंका नाश होकर केवलज्ञान होजाता है। शेष चारों अघातीय कर्मोंके भी नाशसे आत्माका स्वाभाविक सिद्ध पद झलक जाता है।

परमप्पय चिंतवनं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं।
कुज्ञान सल्य विरयं, तिक्कं संसार सरनि मोहंधं ॥ ७४९ ॥

अन्वयार्थ—(परमप्पय चिंतवनं) परमात्माका चिंतवन करनेसे (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्मा परमात्मारूप मल रहित शुद्ध होजाता है (कुज्ञान सल्य विरयं) मिथ्याज्ञान व तीन शल्यसे रहित हो जाता है (तिक्कं संसार सरनि मोहंधं) संसारके चक्रमें भ्रमण करनेवाला अन्ध मोह नष्ट होजाता है।

भावार्थ—यहां प अक्षरपर विचार किया गया है। परमात्मारूप मैं हूँ, मेरे आत्मामें परमात्मासे कई भी तरह भिन्नता नहीं है। प्रदेशोंका भेद होनेपर भी स्वभाव दोनोंका एक है। इस तरह श्रद्धा लाकर जो कोई परमात्माके शुद्ध ज्ञानानन्दमय स्वभावको आत्मामें आरोपण करता है

अर्थात् भेदविज्ञानसे आपको ही कर्म-बन्धसे रहित परमात्मा देखता है, उसका सर्व मिथ्याज्ञान व माया मिथ्या निदान शल्य भाव तथा सर्व ही मोहनीय कर्म नष्ट होजाता है। वह इसी आत्माके शुद्ध ध्यानसे सर्व कर्मोंसे छूटकर परमात्मा होजाता है।

फटिक सरूवं अप्पा, चेयनगुन सुद्ध निम्मलं भावं ।
कम्ममल पयडि विरयं, संसार सरनि मोहन्धं ॥ ७५० ॥

अन्वयार्थ—(फटिक सरूवं अप्पा) यह आत्मा स्फटिकमणिके समान (चेयनगुन सुद्ध निम्मलं भावं) चेतना गुणधारी शुद्ध वीतराग भावरूप है (कम्ममल पयडि विरयं) यह सर्व कर्मरूपी मैलकी विभाव परिणतिसे रहित है (विरयं संसार सरनि मोहन्धं) यह संसारमें भ्रमण करानेवाले अन्ध मोहभावसे रहित है। इसीका ध्यान करना चाहिये।

भावार्थ—यहां फ अक्षरपर विचार किया गया है। आत्माका स्वभाव स्फटिक समान निर्मल है। यदि लाल पीले हरे रंगकी उपाधि लग जाती है तो फटिकके रंगका परिणमन लाल, पीले, हरे रंगरूप होजाता है परन्तु यदि उपाधि न लगे तो स्फटिक सदा निर्मल रहता है। इसी तरह आत्मा स्वभावसे शुद्ध वीतराग ज्ञानानन्दमय है। अनादिकालके प्रवाहसे कर्ममलकी उपाधिके कारणसे संसारमें राग द्वेष मोह करता हुआ भ्रमण किया करता है। परन्तु उपाधि पर पदार्थ है। स्वभावसे यह सर्व उपाधि रहित है। न इसके संसारका भ्रमण है न इसके कर्म मैलका सम्बन्ध है। निश्चयनयसे आत्माको स्फटिकसम शुद्ध ही ध्याना चाहिये।

वर सुद्ध ज्ञान निश्चं, बंभ चरनं अबंभ तिक्तं च ।
तिक्तं असुद्ध भावं, सुद्ध सहावं च भावना सुद्धं ॥ ७५१ ॥

अन्वयार्थ—(वर सुद्ध ज्ञान निश्चं) जिसने निश्चय शुद्ध आत्मध्यानको स्वीकार किया है (बंभ चरनं) जो ब्रह्मचर्यमें चलता है (अबंभ तिक्तं च) तथा अब्रह्म भावसे अलग है (असुद्ध भावं तिक्तं) उसने अशुद्ध भाव त्याग दिया है (सुद्ध सहावं च भावना सुद्धं) वह शुद्ध स्वभावमें ठहरकर शुद्ध भावना करता है।

भावार्थ—यहां ब अक्षरपर विचार किया गया है। निश्चयनयसे आत्माका ही ध्यान करता है। जो इस निश्चय आत्मध्यानका अभ्यास करता है वही ब्रह्मचर्य पालता है और अब्रह्मसे अलग है।

निश्चयसे आत्मा परब्रह्म है। अनात्मा अब्रह्म है व्यवहारसे कामभाव त्याग ब्रह्मचर्य है, कामभाव अब्रह्म है। जो आत्मध्यानमें अनुरक्त हैं वह व्यवहार व निश्चय दोनों ही प्रकारके अब्रह्मसे अलग होकर व्यवहार व निश्चय दोनों ही प्रकारके ब्रह्मचर्यमें लीन हैं। वही सर्व अशुद्धोपयोगसे छुटा हुआ व शुद्धोपयोगमें तिष्ठा हुआ मोक्षका सच्चा पथिक है।

भद्रं मनोज्ञ सुद्धं, भद्रं जाती च निम्मलं सुद्धं।
संसार विगत रूवं, अप्प सहावं च निम्मलं भावं ॥ ७५२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं च निम्मलं भाव) आत्माका स्वभाव निर्मल भावरूप है (भद्रं) मङ्गलरूप है (मनोज्ञ) सुन्दर तथा (सुद्धं) शुद्ध है (भद्र जाती च निम्मलं सुद्धं) आत्माकी जाति भी श्रेष्ठ निर्मल तथा शुद्ध है (संसार विगत रूवं) यह संसारके भ्रमणके स्वभावसे रहित है।

भावार्थ—यहां भ अक्षरपर विचार किया गया है। निश्चयनयसे विचारा जाय तो यह आत्मा परम शुद्ध है। इसी तरह सर्व ही आत्माएँ निश्चयसे शुद्ध हैं। अर्थात् आत्माकी जातिमें सर्व ही आत्माएँ एकरूप शुद्ध हैं। उनमें कोई कर्मका मैल नहीं है, न उनका कहीं चारों गतिमें भ्रमण है। यह आत्मा बहुत ही सुन्दर है, शांत है, आनन्दरूप है तथा यही भद्र है, परम मंगलरूप है। जो आत्माका ध्यान करते हैं वे कर्ममलको दूर कर परमानन्दको पाते हैं।

मम आत्मा सुद्धानं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं।
रागादि दोष रहियं, ज्ञान सहावेन सुद्ध सद्भावं ॥ ७५३ ॥

अन्वयार्थ—(मम आत्मा सुद्धानं) मेरा आत्मा निश्चयसे शुद्ध है (सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं) यही शुद्धात्मा ज्ञान दर्शन गुणोंसे पूर्ण है। (रागादि दोष रहियं) राग द्वेषादि विकारोंसे रहित है (ज्ञान सहावेन सुद्ध सद्भावं) ज्ञान स्वभावमें थिर होनेके कारणसे यही शुद्ध सत्ताको धरनेवाला है।

भावार्थ—यहां म अक्षर पर विचार किया गया है। ज्ञानीको यह विचारना चाहिये कि मेरा आत्मा निश्चय नयसे सिद्धके समान शुद्ध है, यह परम वीतराग है, पूर्ण ज्ञान व दर्शन गुणोंसे भरपूर है, इसकी शुद्ध सत्ता इसीमें है। इसतरह ध्यानमें लाकर जो शुद्ध आत्माका ध्यान करता है वही मोक्षमार्गी सम्यग्दृष्टी है।

जयकारं जिन उत्तं, जयवंतो सुद्ध निम्मलं भावं ।
मिच्छात राग मुक्कं, ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं ॥ ७५४ ॥

अन्वयार्थ—(जयकारं जिन उत्तं) श्री जिनेन्द्र कथित वाणीकी जय हो (सुद्ध निम्मलं भावं जयवंतो) इस वाणी द्वारा प्रगट शुद्ध निर्मल भावकी जय हो। जो भाव (मिच्छात राग मुक्कं) मिथ्यात्वसे व रागसे मुक्त है (ज्ञान सहावेन निम्मलं चित्तं) इसी ज्ञान स्वभावमें तिष्ठनेसे आत्मा निर्मल होता है।

भावार्थ—यहां य अक्षरके स्थानपर ज का विचार किया गया है। इस जगतमें द्वादशांगवाणी धन्य है, जो स्याद्वादनयसे अनेकांत स्वरूप पदार्थोंको झलकानेवाली है, जो व्यवहारनयसे पर्यायोंको व निश्चयनयसे द्रव्यके स्वभावको झलकाती है। इसी वाणीके प्रतापसे अपने आत्माका बोध होता है कि यही निश्चयसे परमात्मा है, न इसमें मिथ्यात्व है न संसारका राग है। इस आत्माके ज्ञान स्वभावमें तिष्ठनेसे ही आत्मा कर्म-मल रहित शुद्ध होजाता है।

रयनत्तय संजुत्तं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ।
मयमान मिच्छ विरयं, संसारे तरंति निम्मलं भावं ॥ ७५५ ॥

अन्वयार्थ—(रयनत्तय संजुत्तं) जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र सहित हैं (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) आत्माको परमात्मारूप दोष रहित शुद्ध अनुभव करते हैं (मयमान मिच्छ विरयं) मान माया व मिथ्यात्व भावसे विरक्त हैं वे (निम्मलं भावं संसारे तरंति) निर्मल भावोंके द्वारा संसारसे पार उतर जाते हैं।

भावार्थ—यहां र अक्षरपर विचार किया गया है। व्यवहार रत्नत्रयके आलम्बनसे जो निश्चय रत्नत्रयमें स्थिर होकर अपने आत्माको सिद्धके समान शुद्ध ध्याते हैं। तथा राग, द्वेष, मोहसे रहित वे अपने शुद्धोपयोगके बलसे संसारसे पार होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

लंकृत ज्ञान सहावं, कुज्ञानं त्यजंति सयल मिच्छातं ।
परमानन्द सरूवं, ज्ञानमयं परम भाव सिद्धीए ॥ ७५६ ॥

अन्वयार्थ—(कंकृत ज्ञान सहावं) तत्वज्ञानी ज्ञान स्वभावसे विभूषित होकर (कुज्ञानं सयल मिच्छातं त्यजंति) मिथ्याज्ञान व सर्व मिथ्या श्रद्धानको त्याग देते हैं (परमानन्द सरूवं ज्ञानमयं परम भाव सुद्धोए) जिससे कि वे परमानन्दमई ज्ञान स्वरूपी उत्तम भावकी सिद्धि कर सकें।

भावार्थ—यहां ल अक्षर पर विचार किया गया है। मोक्षमार्गपर चलनेवाले साधुजन मिथ्या-दर्शन मिथ्याज्ञान व मिथ्या चारित्रको त्यागकर आत्माके स्वभावमें ही रमण करते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य यही है कि अपने आत्माका शुद्ध स्वभाव जो परमानन्दमई व वीतराग है वह प्रकाशित होजावे।

बारापार महोर्म्म, तरंति गे ज्ञान ज्ञान संजुत्तं।
भावंति सुद्ध भावं, ज्ञान सहावेन संजमं सुद्धं ॥ ७५७ ॥

अन्वयार्थ—(बारापार महोर्म्म) वे ही महान अपार संसाररूपी बडे समुद्रको तर जाते हैं (तरंति गे ज्ञान ज्ञान संजुत्तं) जो आत्मज्ञान व आत्मध्यान सहित (सुद्ध भावं भावंति) शुद्ध भावकी भावना भाते हैं (ज्ञान सहावेन सुद्धं संजमं) तथा ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध संयमके आराधक हैं।

भावार्थ—यह संसाररूपी महान समुद्र है जहां राग द्वेष मोहकी तरंगे उठा करती हैं। जो तत्वज्ञानी शुद्ध आत्माका ध्यान करते हैं-शुद्धोपयोगमें जमते हैं अर्थात् निज आत्मामें ही संयमरूप होजाते हैं वे ही कर्मोंको काटकर भवसागरसे पार होजाते हैं। यहां व अक्षरपर विचार किया गया है।

सहकारे जिन उत्तं, सुतं संसार तारने नित्यं।
संसार सरनि विरयं, ज्ञान सहावेन भावना सुद्धं ॥ ७५८ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं सुतं) जिनेन्द्र कथित श्रुतज्ञान (संसारतारने नित्यं सहकारे) संसारसे पार होनेमें सदा ही सहकारी है। इस जिनवाणीकी सहायतासे जो (संसार सरनि विरयं) संसारके मार्गसे विरक्त होजाते हैं वे (ज्ञान सहावेन सुद्धं भावना) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध भावना करते रहते हैं।

भावार्थ—यहां श के स्थानमें स अक्षर विचार किया गया है। केवलज्ञानका साधक वास्तवमें आत्मानुभवरूप भावश्रुत ज्ञान है। जो कोई जिनवाणीके अभ्याससे इस भावश्रुत ज्ञानको पाकर

संसारके भ्रमणसे वैरागी होजाते हैं वे ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्धात्माकी भावना भाते हुए संसारसे पार होजाते हैं।

षिपिनिक भाव निमित्तं, षिपिओ संसार सरनि मोहंधं ।
षय उवसम संजुत्तं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं ॥ ७५९ ॥

अन्वयार्थ—(षिपिनिक भाव निमित्त) क्षायिक भावरूप मोक्षके लिये (संसार सरनि मोहंधं षिपिओ) जो संसारके भ्रमणके कारण दर्शनमोहको क्षय करके क्षायिक सम्यक्ती होजाते हैं, वे (षय उवसम संजुत्तं) क्षपकश्रेणी या उपशम श्रेणीपर चलते हुए (अप्पा परमप्प निम्मलं सुद्धं) अपने आत्माको परमात्मारूप निर्मल शुद्ध अनुभव करते हैं।

भावार्थ—यहां ष अक्षरपर विचार किया गया है। मोक्ष आत्माका निज स्वभाव है। इस स्वभावकी प्रगटताके लिये भव्यजीव दर्शनमोहकी तीन प्रकृति और अनन्तानुबन्धी चार कषाय इन सात प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यक्ती होजाते हैं। फिर चारित्रकी उन्नतिके लिये साधु पदमें यदि तद्भव मोक्षगामी हुए तो क्षपकश्रेणीपर चढ जाते हैं, नहीं तो उपशम श्रेणीपर चढते हैं, दोनों ही श्रेणियोंपर जाकर शुद्ध आत्माका ही ध्यान शुक्लध्यानके द्वारा करते हुए चारित्र मोहका क्षय या उपशम करते हैं। कोई २ क्षायिक सम्यक्ती पहले उपशम श्रेणीपर चढकर फिर लौटकर क्षपकश्रेणी उसी शरीरसे चढ सक्ते हैं। ऐसे महात्मा शीघ्र ही परमात्मा होजाते हैं।

सहकार धम्म धरनं, सहजोपनीत सहज नन्द आनन्दं ।
संसार विगत रूवं, अप्पा परमप्प सुद्ध मप्पानं ॥ ७६० ॥

अन्वयार्थ—(सहकार धम्म धरनं) मोक्षका साधक धर्मका पालना यह है जो (सहजोपनीत सहज नंद आनंदं) स्वाभाविक आनन्दको अपने स्वभावके द्वारा ही स्वादा जावे (संसार विगत रूवं) यह संसारके सुखसे विलक्षण है (अप्पा परमप्प सुद्ध मप्पानं) यहां आत्मा परमात्मारूप अपने शुद्ध आत्माका ही अनुभव करता है।

भावार्थ—यहां स अक्षर पर विचार किया गया है। मोक्ष आत्माका एक ऐसा स्वभाव है जहां निरन्तर सहजानन्दका विलास है। इसलिये मोक्षका मार्ग भी उसीके समान सहजानन्दका

भोग है। यह इंद्रियोंके सुखोंसे विलक्षण स्वाधीन है। जब आत्मा शुद्ध निश्चयनयके द्वारा अपनेको परमात्मारूप जानकर आपसे ही आपमें मगन होजाता है तब यह आनन्द प्रकाशित होता है।

ह्रींकारं अरहंतं, तेरह गुन ठान संजदो सुद्धं।
चौतीस अतिसय जुत्तो, केवल भावे मुने अव्वो॥ ७६१॥

अन्वयार्थ—(ह्रींकारं अरहंतं) ह्रीं मंत्रसे अर्हंतका ध्यान करना चाहिये (तेरह गुन ठान संजदो सुद्धं) जो सयोग केवली नामके तेरहवें गुणस्थान धारी स्नातक संयमी वीतराग हैं (चौतीस अतिसय जुत्तो) चौतीस अतिशयसे अलँकृत हैं (केवल भावे मुने अव्वो) वे केवल ज्ञानादि भावोंके धारी हैं ऐसा जानने योग्य है।

भावार्थ—यहां ह अक्षरपर विचार किया गया है। अर्हंतके स्वरूपका ध्यान ह्रीं मंत्रको नाशिकाके अग्रभाग आदि किसी स्थानपर बिराजमान करके करना चाहिये। अर्हंतका स्वरूप भी विचारना चाहिये कि वे सयोग केवली जिन हैं। उनका विहार होता है। वे भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देते हैं। वे चौतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य व केवलज्ञानादि चार चतुष्टय युत बिराजमान हैं। इन अतिशयोंका स्वरूप ६४९ वीं गाथामें किया गया है।

षिपतं कम्म सभावं, षिपियं संसार सरनि सद्भावं।
अप्पा परमानंदं, परमप्पा मुक्ति संजुत्तं॥ ७६२॥

अन्वयार्थ—(षिपतं कम्म सभावं) जिन्होंने कर्मकी सब प्रकृतियोंका क्षय कर डाला है (षिपियं संसार सरनि सद्भावं) व जिन्होंने संसार मार्गके प्रेरक सर्व रागादि भावोंका क्षय कर डाला है (अप्पा परमानन्दं) जिनका आत्मा परमानन्द स्वरूप है (परमप्पा मुक्ति संजुत्तं) वे ही सिद्ध परमात्मा मोक्षरूप हैं।

भावार्थ—यहां चौदह स्वर, तेतीस व्यंजन व पांच अक्षरी "ॐ नमः सिद्धं" मंत्र इन बावन अक्षरोंके मननका सार यह है कि हम सिद्ध परमात्माको पहचाने, जो रागादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि आठों द्रव्य कर्म, व शरीरादि नोकर्मसे रहित हैं, परमानन्दमें निरन्तर मग्न हैं। मोक्ष स्वरूप अमूर्तीक ज्ञानाकार तथा पुरुषाकार विकल परमात्मा निरंजन देव हैं। सिद्ध सम आपका ध्यान ही मोक्षका साधन है।

अक्षर स्वर विंजन रूवं, पदविंद सुद्ध केवलं ज्ञानं ।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, अप्पानं लहंति निव्वानं ॥ ७६३ ॥

अन्वयार्थ—(अक्षर स्वर विंजन रूवं) पांच अक्षर, चौदा स्वर तथा तैतीस व्यंजनोंके द्वारा (पदविंद सुद्ध केवलं ज्ञानं) शुद्ध केवलज्ञानके धारी पद अरहंत तथा सिद्धका मनन करना चाहिये (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) अपने ज्ञानमई आत्माको ज्ञानमय (अप्पानं लहंति निव्वानं) आत्मारूप ध्यायकर निर्वाणको प्राप्त करना चाहिये ।

भावार्थ—ऊपर लिखित बावन अक्षरोंकी जापका अभिप्राय यह है कि हम अरहन्त तथा सिद्ध परमात्माके शुद्ध गुणोंपर लक्ष्य देकर अपने आत्माको परमात्मारूप निश्चयसे जानकर निज आत्माके ध्यानमें तल्लीन होजावें, इसी उपायसे आत्मा कर्मोंसे छूटकर मुक्तिका लाभ कर सक्ता है ।

तत्व पदार्थ निरूपण ।

तत्वं तत्तु सहावं, जीवाजीवं च तत्तु जाने हि ।
आस्रव बंध निरोधं, संवर निज्जर विमल भावस्य ॥ ७६४ ॥
मोक्षं षिपति ति कम्मं, तत्वं जाने हि सयल विज्ञानं ।
पदार्थं पदविंदं, जीवाजीवस्थ विंद विज्ञानं ॥ ७६५ ॥
पुन्य पाप आस्रवनं, बंधं संवर ति ज्ञान सहकारं ।
निज्जर मोक्ष सुभावं, पदार्थं ज्ञान सहाव निम्मलयं ॥ ७६६ ॥

अन्वयार्थ—(तत्तु सहावं तत्वं) मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत वस्तुका जो स्वभाव है वही तत्व है । वे तत्व सात हैं (जीवाजीवं च तत्तु जाने हि) मुख्य तत्व जीव अजीवको जानो इनहीसे शेष पांच तत्व बने हैं (आश्रव बंध निरोधं संवर) तीसरा तत्व कर्मोंका आना सो आस्रव है, चौथा कर्मोंका बंधना सो बंध है । आस्रव बन्धका रोकनेवाला पांचवा तत्व संवर है (विमल भावस्य निज्जर) शुद्ध भावोंसे कर्मकी

निर्जरा होती है यह छठा तत्व है (ति कम्मं षिपति मोक्षं) तीन प्रकार कर्म अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्मका नाश होना सातवां तत्व मोक्ष है (तत्वं जाने हि सयल विज्ञानं) इन सात तत्वोंसे मोक्षमार्गका सर्व विज्ञान जाना जाता है (पदार्थं पदविंदं) पदोंके द्वारा वस्तुको जनावे सो पदार्थ है। वे पदार्थ नौ हैं (जीवाजीवस्य विंद विज्ञानं) पहले मुख्य दो पदार्थ जीव और अजीवका ज्ञान अनुभव करना चाहिये (पुन्य पाप आस्रवनं) तीसरा पदार्थ पुन्य है, चौथा पाप है, पांचवा उनका आना आस्रव है (बन्धं संवर ति ज्ञान सहकारं) छठा पदार्थ कर्मोंका बन्ध है। सातवां पदार्थ कर्मोंका संवर है जो अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञानका सहकारी है (निज्जर मोक्ष सुभावं) आठवां पदार्थ कर्मोंकी निर्जरा है, नौमा पदार्थ आत्माका निज भाव रूप मोक्ष है (पदार्थ ज्ञान सहाव निम्मल यं) ये नौ पदार्थ ज्ञान स्वभावी आत्माके शुद्ध करनेके उपाय हैं।

भावार्थ—यहां तारणस्वामीने जैन सिद्धान्तानुसार सात तत्व व नौ पदार्थोंकी नामावली बता दी है। हरएक मोक्षमार्गीको सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिये उनको जानकर श्रद्धान करना योग्य है।

द्रव्य निरूपण।

दव्वं दव्व सरूवं, जीव दव्व अजीव दव्व विज्ञानं।
धम्मं अहम्मं जाने, आकासं काल दव्व दव्वार्थं ॥ ७६७ ॥

अन्वयार्थ—(दव्वं सरूवं दव्वः) जो अपने गुणोंमें द्रवणको परिणमन करे उसे द्रव्य कहते हैं, वे छः हैं (जीव दव्व अजीव दव्व विज्ञानं) उनमेंसे मुख्यतासे जीव द्रव्यको तथा पुद्गल द्रव्यको जानना चाहिये, (धम्मं अहम्म जाने) तीसरे धर्म द्रव्यको, चौथे अधर्म द्रव्यको, (आकासं काल दव्व दव्वार्थं) पांचवे आकाश-द्रव्यको, छठे काल द्रव्यको आत्म द्रव्यके हितके लिये जानना योग्य है।

भावार्थ—जिनसे लोकालोक भरा है व जिनको छोडकर कोई और द्रव्य लोकमें नहीं है, वे सर्व छः द्रव्य हैं-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। यहां अजीवके स्थान पुद्गलको ही लेना

योग्य है। क्योंकि जीवके सिवाय पांचो ही अजीव हैं। द्रव्यका लक्षण सत्, उत्पाद व्यय ध्रौव्य है तथा गुण पर्यायवान है। ये तीनों लक्षण इन द्रव्योंमें सिद्ध होते हैं। ये सब द्रव्य न कभी पैदा हुए न कभी नाश होंगे। इनकी सत्ता सदासे है व सदा रहेगी। इसलिये ये द्रव्य सत् हैं। सत् होकरके भी कूटस्थ नित्य नहीं हैं। किंतु द्रवणशील या परिणामनशील हैं। इनमें सदा स्वभाव या विभाव पर्यायें हुआ करती हैं। पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं–एक पर्यायका नाश होता है तब दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है तथापि जिसमें परिणमन हुआ वह बना रहता है। इसीलिये द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है।

जैसे एक सुवर्णकी कण्ठीको तोडकर माला बना ली। कण्ठीकी पर्याय नष्ट हुई, मालाकी पर्याय पैदा हुई, परन्तु सुवर्ण द्रव्य दोनोंमें है, बना हुआ है। द्रव्यमें सदा गुण पर्याय पाए जाते हैं। जो सदा द्रव्यके साथ रहें वे गुण हैं, जो क्रमसे वर्तें वे पर्याय हैं। हरएक द्रव्य अपने २ साधारण तथा विशेष गुणोंका समुदाय है। साधारण गुण अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व हैं। विशेष गुण जीवके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र आदि है पुद्गलके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हैं। धर्मका जीव पुद्गलको गमन हेतुपना है। अधर्मका जीव पुद्गलको स्थिति हेतुपना है। आकाशका सर्व द्रव्योंको स्थान देना है। कालका सर्व द्रव्योंको पलटाना है। गुणोंके परिणमनको पर्यायें कहते हैं। शुद्ध द्रव्योंमें सदृश स्वाभाविक पर्यायें क्षीरसमुद्रमें कल्लोलवत् हुआ करती हैं। उन पर्यायोंसे कोई अशुद्धता नहीं आती है। संसारी जीव तथा पुद्गल द्रव्यमें विभाव पर्यायें हुआ करती हैं। जैसे कोई जीवका ज्ञान गुण, मतिज्ञान रूप था सो श्रुतज्ञान रूप होगया या अवधिज्ञान रूप होगया या चारित्र गुण क्रोधरूप था सो शांतरूप होगया। या मानव पर्याय थी, सो पलटकर देव पर्याय होगई। पुद्गलका एक स्कन्ध मिट्टीका डला था सो पलटकर घडा बन गया। या हरा पत्ता पलटकर पीला पत्ता होगया। यहां वर्ण गुण बना रहा, वर्णकी अवस्था हरेसे पीली होगई।

अस्तिकाय निरूपण ।

काया जीवास्ति सुद्धं, अजीवास्ति अतीन्द्रियं च सभावं ।
धम्मास्ति धम्म चेयनयं, अहमास्ति सयलकाल ठिदिकरनं ॥ ७६८ ॥
अवकास्ति दान अवयासं, कालं कायन संजदो हुंती ।
पंचास्तिकाय कहियं, सुद्ध सहावेन अमल उववन्नं ॥ ७६९ ॥

अन्वयार्थ—(काया जीवास्ति सुद्धं) पांच अस्तिकायोंमें प्रथम शुद्ध जीवास्तिकाय है (अतींद्र पंच सभावं) जिसका स्वभाव अतीन्द्रिय है, इन्द्रियोंके गोचर नहीं है (अजीवास्ति) दूसरा पुद्गलास्तिकाय है (धम्मास्तिकाय धम्म चेयनयं) तीसरा धर्मास्तिकाय है जो जीव पुद्गलके गमनमें सहकारी है (अहमास्ति सयल काल ठिदि करनं) चौथा अधर्मास्तिकाय है, जो सर्व काल द्रव्यकी स्थितिमें सहकारी है (अवकास्ति दान अवयासं) पांचमां आकाश अस्तिकाय है जो सर्व द्रव्योंको जगह देता है । (कालं काय संजदो न हुन्ती) काल द्रव्य काय संयुक्त नहीं है, (पंचास्तिकाय कहियं) ये पांच अस्तिकाय कहलाते हैं । काल अस्तिकाय नहीं है । (सुद्ध सहावेन अमल उववन्नं) ये सब अपने शुद्ध स्वभावसे शुद्ध परिणमन किया करते हैं ।

भावार्थ—जो सदा काय रूपसे पाए जावें, उनको अस्तिकाय कहते हैं। बहु प्रदेशवाले पिंडको काय कहते हैं । एक प्रदेशीको काय नहीं कहते हैं । जितने आकाशको एक अविभागी पुद्गलका परमाणु रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं । काल कालाणुरूप द्रव्य रत्नोंकी राशिके समान लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें अलग २ व्याप्त है । एक एक प्रदेशोंपर एक २ कालाणु है, वे कभी मिलते नहीं, इसलिये वे काय नहीं हैं। शेष पांच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। जीव असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशके बराबर अखण्ड है । संकोच विस्तार शक्तिके कारण प्राप्त हुए शरीरके प्रमाण दीपकके प्रकाशकी तरह हो जाता है । सिद्ध जीवका आकार भी अंतिम शरीरमें जैसा था, वैसा रहता है । कर्मोंके उदयसे संकोच विस्तार होता है । कर्मोंके क्षयपर जैसाका तैसा रहता है । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, भी जीवके बराबर असंख्यात असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश भरमें व्याप्त अखण्ड एक एक द्रव्य है ।

जीव पुद्गलोंके गमनमें उदासीन कारण धर्म है, तब उनके स्थिति होनेमें उदासीन कारण अधर्म है।

आकाश अनन्त है, इससे उसके अनन्त प्रदेश हैं। पुद्गलके पिंड तीन प्रकारके बनते हैं। कोई संख्यात परमाणुओंके, कोई असंख्यात परमाणुओंके, कोई अनन्त परमाणुओंके, इसलिये पुद्गलमें तीन प्रकार संख्यात असंख्यात अनन्त प्रदेश होते हैं। परमाणु यद्यपि एकप्रदेशी है, परन्तु उसमें मिलनेकी शक्ति है, कालाणुमें नहीं है इससे परमाणु भी कायवान है।

तत्तुपय दव्व कहियं, काया स सरूव उवएसनं सुद्धं।
गुन रूव भेय विज्ञानं, एको उदेस ज्ञान सहकारं ॥ ७७० ॥

अन्वयार्थ—(तत्तुपय दव्व काया कहियं) इस तरह सात तत्व, नौ पदार्थ, छः द्रव्य, पांच आस्तिकाय कहे गए हैं (स सरूव उवएसनं सुद्धं) जीवादि छः द्रव्य अपने स्वभावमें रहनेसे शुद्ध कहे गए हैं। (गुन रूव भेय विज्ञानं) इन सब तत्वादिके गुण स्वभावके भेदोंको विशेष जानना चाहिये (एको उदेष ज्ञान सहकारं) इनका जानना केवलज्ञानकी प्रगटतामें एकोदेश अर्थात् कुछ अंशमें सहकारी है।

भावार्थ—मोक्षमार्गके समझनेके लिये इन तत्वादिका स्वरूप भलेप्रकार जानकर निश्चय करना चाहिये। निश्चय सम्यक्तके लिये इनका श्रद्धान आवश्यक है। जब कि निश्चय सम्यक्तका अनुभव केवलज्ञानकी प्रगटताका साधन है।

जीव तत्व।

जीओ जीवंपि जीवं, जीवन्तो ज्ञान दंसन समग्गं।
वीजं सुद्ध सु चरनं, ज्ञानमयोपिऽनन्त सुह निलयं ॥ ७७१ ॥

अन्वयार्थ—(जीओ-जीवंपि जीवंतो जीवं) जो जीता था, जीवेगा व जी रहा है सो जीव है (ज्ञान दंसन समग्गं) यह जीव ज्ञान दर्शन गुणोंसे पूर्ण है। (वीजं सुद्ध सु चरनं) यह आत्मवीर्यका धारी है, शुद्ध स्वभावमें आचरण करनेवाला वीतरागी है। (ज्ञानमयोपि अनन्त सुह निलयं) ज्ञानाकार होकर भी अनंत सुखका भंडार है।

भावार्थ—यहां शुद्ध जीव तत्वका निरूपण है। जो त्रिकाल सदा जीता है वही जीव है। यह कोई तथा द्रव्य कभी पैदा नहीं हुआ। यह पहलेसे है, आगे भी रहेगा, इससे यह नित्य है। यह जीव अपने सर्व प्रदेशोंमें पूर्ण ज्ञान ध्यान गुणोंसे पूर्ण कलशकी तरह भरा है। यह अनंतवीर्यका धनी है, परम निर्विकार निज स्वरूपमें ही रमण करनेवाला है, ज्ञानाकार अमूर्तीक है, अनन्त सुखका भंडार है।

जीवो उड्ढगमओ जीव सहाओ सुनिम्मलो सुहमो।
अतिंद्री ज्ञान सहाओ, चौ दस प्राण अतीन्द्रिया सुहमो॥ ७७२॥

अन्वयार्थ—(जीवो उड्ढगमओ) जीवका स्वभाव ऊर्ध्वगमन है (जीव सहाओ सुनिम्मलो सुहमो) जीवका स्वभाव अत्यन्त निर्मल तथा सूक्ष्म है (अतिंद्री ज्ञान सहाओ) वह इंद्रियोंके अगोचर ज्ञानस्वभावी है (चौ दस प्राण) चार तथा दश प्राणधारी है (अतीन्द्रिया सुहमो) तौभी निश्चयसे अतीन्द्रिय सूक्ष्म है।

भावार्थ—जीवका स्वभाव ऊपरको जानेका है। जब कर्म सहित होता है, तब कर्मकी प्रेरणासे जो गति बांधी होती है, उधर चार दिशाओं व ऊपर नीचे छः दिशाओं द्वारा जाता है। परन्तु जब कर्म रहित हो जाता है, तब दीपककी लौके समान ऊपरको लोकके अग्रभाग तक जाता है और ठहर जाता है। क्योंकि वहींतक गमन सहकारी धर्मास्तिकाय द्रव्य है। जीवका स्वभाव सर्व रागादि रहित परम निर्मल है तथा वह इतना सूक्ष्म है कि पांचों इंद्रियां उसको नहीं जान सक्ती हैं। मन भी मात्र विचार कर सकता है, मन भी ग्रहण नहीं कर सकता। जब मन और इंद्रियोंसे उपयोगको हटाया जाता है और आप आपमें तन्मय हुआ जाता है, तब ही आत्माका स्व संवेन ज्ञान द्वारा ग्रहण होता है। इसका स्वभाव स्वपरज्ञायक है। यह एक समयमें त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्योंको सर्व पर्यायोंको जाननेको समर्थ है। व्यवहारनयसे संसारावस्थामें संसारी जीवोंके बाहरी शरीरमें स्थितिके कारण चार मुख्य प्राण होते हैं-इंद्रिय, बल, आयु, स्वासोछ्वास। इसीके उत्तर भेद ५ इन्द्रिय + ३ बल + १ आयु + १ श्वासोछ्वास=१० हैं। पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन इंद्रिय, कायबल, आयु, स्वासोछ्वास ऐसे चार प्राण होते हैं। लट आदि द्वेंद्रिय प्राणियोंके रसना इंद्रिय और वचन बल अधिक लेकर छः प्राण होते हैं। चींटी आदि तेंद्रिय जीवके घ्राण

इंद्रिय जोडकर सात प्राण होते हैं। मक्खी आदि चौंद्री जीवोंके चक्षु जोडकर आठ प्राण होते हैं। पानीके कोई सर्प आदि असैनी पंचेन्द्रियके मन बल विना नौ प्रमाण होते हैं। सैनी पंचेंद्रिय गाय, भैंस, बकरा, घोडा, मछली, मच्छ, कबूतर, काग आदि, सर्व मनुष्य, सर्व देव, सर्व नारकी इन सबके दसों प्राण होते हैं। ये प्राण तो इंद्रियगोचर हो सकते हैं। परन्तु शुद्ध आत्मा तो अत्यन्त सूक्ष्म अतीन्द्रिय है।

जीओ जयं च रूवं, जाता उत्पन्न ज्ञान ससहावो।
आदि अनादि असंख्यं, उववन्नं ज्ञान दंसन समग्गं ॥ ७७३ ॥

अन्वयार्थ—(जीओ जयं च रूवं) यह जीव सदा जय स्वभाव है अर्थात् यह कर्मोंका विजय कर सक्ता है (जाता उत्पन्न ज्ञान ससहावो) संसार अवस्थामें एकेन्द्रिय आदि जातिसे उत्पन्न होता रहता है तथापि ज्ञानमई अपने स्वभावसे अविनाशी है। (आदि अनादि असंख्यं) गतिमें जन्म लेनेकी अपेक्षा आदि सहित है तथापि स्वभावसे अनादि है तथा प्रदेशोंकी अपेक्षा लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है (उववन्नं ज्ञान दंसन समग्गं) संसारमें उत्पन्न होते हुए भी ज्ञान दर्शन स्वभावसे पूर्ण रहता है।

भावार्थ—यह जीव जब अपने स्वभावको पहचानता है तब आत्माके ध्यानके बलसे कर्मोंको जीतकर जिन होजाता है। संसारकी गतियोंमें जन्म लेनेकी अपेक्षा उत्पन्न होता है व आदि सहित है। तथा शरीर प्रमाण आकार रखता है। परन्तु स्वभावसे यह जीव सदा ज्ञान स्वभाव बना रहता है। यह स्वभावमें स्वाभाविक ज्ञान दर्शनसे पूर्ण है, असंख्यात प्रदेशी है तथा अनादि अनंत नित्य है।

नादु न बिंदु नकारं, न हि उप्पत्ति बिपति धुव सुद्धं।
सुद्धं सुद्ध सरूवं, सुद्धं तियलोय मत्त निम्मलयं ॥ ७७४ ॥

अन्वयार्थ—(नादु न विन्दु नकारं) शुद्ध निश्चयनयसे जीवमें न तो कोई शब्द है न कोई चिह्न है जिससे इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किया जासके न उसमें कोई क्रिया है, हलन-चलनादि है (न हि उप्पत्ति बिपति धुव सुद्धं) न उसमें निश्चयसे कोई उत्पत्ति है न कोई व्यय है। वह तो ध्रुव शुद्ध है (सुद्धं सुद्ध

सरूवं) वह परम शुद्ध स्वरूप है (सुद्धं तिलोय मत्त निम्मलयं) शुद्ध अर्थात् निश्चल तीन लोक मात्र असंख्यात प्रदेशी है व सर्व कर्म मल रहित है।

भावार्थ—यहां परम शुद्ध निश्चयनयसे जीवके स्वरूपका विचार है। शुद्ध जीवमें कोई शब्द नहीं है। क्योंकि शब्द जड है व जडसे ही उत्पन्न होता है, न कोई जडमई चिह्न या लिंग है जिससे वह इन्द्रियोंका विषय हो, न उसमें कोई क्रिया है। जहांतक कर्मोंका सम्बन्ध है व योगोंका हलन-चलन है वहांतक संसारी जीवोंमें क्रिया पाई जाती है। द्रव्य स्वभावकी अपेक्षा यह जीव सर्व क्रिया रहित निष्क्रिय है। पर्यायार्थिकनयसे इसमें स्वाभाविक पर्यायोंका विचार होता है। पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद व्यय कहते हैं, द्रव्यकी अपेक्षा वह न उपजता है न विनशता है, वह सदा ही अविनाशी व स्फटिक मणिमय शुद्ध है। इसका स्वभाव रागादि भावोंसे रहित परम वीतराग है। यह निश्चयसे लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है। और सर्व कर्म मल व शरीरसे रहित है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें शुद्ध निश्चयनयसे जीवका स्वभाव कहते हैं—

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं। अविसेसमसंजुत्तं, तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १६ ॥

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनय आत्माको कर्मोंसे बन्धा व स्पर्शा नहीं देखता है। जैसे कमलका पत्ता जलसे अलग रहता है वैसे जीव कर्मोंसे अलग है। शुद्ध निश्चयनय जीवको सदा एकरूप देखता है। नर नारकादि पर्यायोंमें घुमा तथापि वही जीव है जैसे मिट्टीके घडे, प्याले, मटकैने आदि अनेक वर्तन बनाए जावें परन्तु यह मिट्टी रूपमें मिट्टी ही है-अन्य कुछ नहीं है। शुद्ध निश्चयनय जीवको निश्चल देखता है। जैसे पवनद्वारा तरंगोंसे रहित निश्चल समुद्र है वैसे यह क्रिया रहित निश्चल है। शुद्ध निश्चयनय जीवको अखंड एक सामान्य अभेद देखता है। जैसे सोना अपने भारीपने, चिकनेपन, पीलेपन आदि गुणोंसे अभेद है वैसे आत्मा अपने गुणोंसे अभेद है। शुद्ध निश्चयनय जीवको परके संयोग रहित वीतराग देखता है। जैसे जल अग्निके सम्बन्ध विना उष्ण नहीं होता है, स्वभावसे शीतल है वैसे यह आत्मा मोहनीय कर्मके उदय विना सदा वीतराग रहता है।

जीओ रूव विमुक्को, विगतं रूवं च चेयना अमलं।
लोयं लोयपमानं, नंत सरूवं च विमल ज्ञानस्य ॥ ७७५ ॥

अन्वयार्थ—(जीओ रूव विमुक्को) जीव स्पर्श, रस, गंध, वर्णसे रहित अमूर्तीक है (विगतं रूवं च चेयना ममलं) तथापि अरूपी चेतनाके निर्मल आकारको रखनेवाला है (लोयपमानं लोयं) लोकाकाश प्रमाण प्रदेशोंका धारी देखनेयोग्य है (विमल ज्ञानस्य नंत ममरूवं च) तथा अनंत केवलज्ञान स्वरूप है।

भावार्थ—यह जीव पुद्गल द्रव्यके विशेष गुणोंसे रहित है इसलिये अमूर्तीक है परन्तु एक वस्तु है इससे आकार अवश्य है। वह आकार अरूपी ज्ञानाकार है तथा लोकाकाश प्रमाण है। प्रदेशोंकी अपेक्षा जीव असंख्यात प्रदेशी है। ज्ञानकी अपेक्षा सर्वव्यापी है, अनन्त है। ज्ञानमें अनन्त पदार्थोंके द्रव्य गुण पर्याय एक समय झलक रहे हैं तौभी इसके निर्मल ज्ञानमें अनन्त ऐसे विश्वोंको झलकानेकी शक्ति है।

अजीव तत्व।

मन सुभाव उववन्नं, तत्वं पंचमि परिनाम संजुत्तं।
षिदि जल मरुं च पवनं, आकासं सुक्र श्रोनि मूर्छनयं ॥७७६॥

अन्वयार्थ—यहां अजीवतत्वसे मुख्यतासे अपने शरीर व कर्म सम्बन्धको लेकर कथन किया गया है, (मन सुभाव उववन्नं) जो हमारे पास मन है, वह सूक्ष्म मनोवर्गणासे उत्पन्न हुआ है। अतएव द्रव्य मन पुद्गल अजीव है। (षिदि जल मरुं च पवनं आकासं पंचमि तत्वं परिनाम संजुत्तं) पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा, आकाश इन पांच तत्वोंके परिणमनसे उत्पन्न हुआ यह शरीर है। (सुक्र श्रोनि मूर्छनयं) जो पिताका वीर्य तथा माताके रुधिरके संयोगसे जन्मा है, अतएव पुद्गल अजीव है।

भावार्थ—यहां भेदविज्ञानकी दृष्टिसे विचार रहे हैं कि कौन कौन अजीवका इस जीवके साथ सम्बन्ध है। पहले तो मनको विचार किया गया है कि यह मन जो हृदयस्थानमें आठ पांखडीके कमलके आकार द्रव्य मन है जिसके होते हुए संकल्प विकल्प रूप भाव मन काम करता है, वह मनोवर्गणारूपी पुद्गलसे रचित है अतएव जीव नहीं है, अजीव है। तथा यह औदारिक शरीर मलमें रजोवीर्यके संयोगसे जन्मा है तथा इसकी रचना पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशके

द्वारा हुई है। यह भी अजीव है। पांच तत्वोंमें चार तो पुद्गल हैं, एक आकाश अजीव है। इस शरीरको भी जीव मत जानो।

मन लेस्सा उत्पन्नं, इन्द्री बुध प्रान सुह असुहं।
पुग्गल सहाव उवनं, कम्म निबंध जीव संचरनं ॥ ७७७ ॥

अन्वयार्थ—(मन लेस्सा) मनके संकल्प विकल्पोंसे तथा लेश्याओंसे (सुह असुहं बुध इंद्री प्रान उत्पन्नं) शुभ अशुभ ज्ञानोपयोग तथा पांच इंद्रिय रूपी प्राणोंका कार्य उत्पन्न हुआ है। (पुग्गल सहाव उवनं कम्म) पुद्गलोंके स्वभावसे ही कर्म उत्पन्न हुए हैं। (निबंध जीव संचरनं) जिनसे बन्धा हुआ यह जीव चार गतियोंमें भ्रमण किया करता है।

भावार्थ—द्रव्य मन तो बिलकुल पुद्गलसे रचा हुआ है, भाव मन संकल्प विकल्प रूप मति ज्ञान व श्रुत ज्ञानसे काम करता है। ये दो ज्ञान शुद्ध आत्माके नहीं हैं, ये विभाव भाव हैं। कर्मोंके क्षयोपशमसे हुए हैं। इनके होते हुए क्रमवर्ती ज्ञानोपयोग काम करता है जिसमें कर्मके उदयकी निर्बलता है। इसलिये वे दोनों ज्ञान भी पौद्गलिक हैं। अर्थात् भाव मन भी शुद्ध जीवका स्वरूप नहीं है, अजीव है। योगोंका हलन चलन शरीर नामकर्मके उदयसे तथा मन, वचन, कायके आलम्बनसे होता है। क्रोधादि कषायोंके उदय रूप रंगसे रंजित योगोंको लेश्या कहते हैं।

अतएव कृष्ण नील कापोत अशुभ भावोंको झलकानेवाली तथा पीत, पद्म, शुक्ल शुभ भावोंको झलकानेवाली लेश्याएँ भी शुद्ध जीवसे भिन्न अजीव हैं। शुद्ध आत्मामें न योग है, न कषाय हैं, लेश्याएँ तेरहवें गुणस्थान तक ही हैं। भाव मनका भी परिणमन बारहवें गुणस्थान तक है क्योंकि तेरहवेंमें मतिश्रुत ज्ञान नहीं हैं। इन्द्रियोंके द्वारा जो पदार्थोंका ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है, यह भी शुद्ध जीवमें नहीं है अतएव अजीव है, जीवका स्वभाव नहीं है। ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका रचित जो यह कार्मण शरीर है, जिसके कारण यह जीव चारों गतियोंमें भ्रमण किया करता है वह भी कार्मण वर्गणारूप पुद्गलोंसे बना है अतएव अजीव है। प्रयोजन यह है कि रागद्वेषादि अशुभ व शुभ भाव आदि भाव कर्म कर्मोदय जनित सर्व भाव तथा आठ कर्ममय द्रव्य कर्म तथा शरीरादि नोकर्म सर्व अजीव तत्वमें डालकर जीवको इनसे रहित विचारना चाहिये।

सहकारेन संजुत्तं, रचियं पुग्गल सहाय संजुत्तं।
सरीरं अवभासं, परिनै सहाव वृद्धि संप्रष्ठं ॥ ७७८ ॥

अन्वयार्थ—(सहकारेन संजुत्तं) कर्म शरीरके उदयके संयोगसे तथा (पुग्गल सहाव संजुत्तं रचियं) पुद्गलके स्वभावके संयोगसे रचा हुआ (सरीरं अवभासं) यह स्थूल शरीर प्रकाशमान होरहा है (परिनै सहाव वृद्धि संप्रष्ठं) जो परिणमन स्वभाव है, बढता है, पुष्ट होता है।

भावार्थ—स्थूल शरीरको फिर यहां विचार किया गया है कि यह शरीर तब ही तक बनता है जबतक कर्मोंका उदय है। कर्मोंके उदयके साथ जीवके साथ इसका सम्बन्ध है। कर्मोंके नाश होते ही यह शरीर छूट जाता है। आहारक वर्गणाओंके परिणमन स्वभावसे यह शरीर रचा हुआ है। यह हमेशा बदलता रहता है, नए परमाणु आते हैं पुराने झडते हैं। यह बालकसे युवान व पुष्ट होता है फिर युवानसे वृद्ध होजाता है। कभी रोगी, कभी निरोगी, कभी भूखा, कभी तृप्त, कभी निर्बल, कभी सबल अनेक अवस्थाओंमें परिणमन करता हुआ प्रगट झलक रहा है। अतएव इस शरीरको जो एक दिन छूट जानेवाला है अपना न मानना चाहिये। यह पुद्गलसे रचा हुआ पौद्गलिक है, अजीव तत्वमें गर्भित है।

कम्म उवनं भावं, इन्द्री मन विषय बुद्धि सद्भावं।
अप्प सहाव न सुद्धं, कम्म निवन्धो य जीव तं भनियं ॥ ७७९ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म उवनं भावं) कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हुए ये सब पदार्थ या भाव हैं जैसे (इन्द्री मन विषय बुद्धि सदभावं) पांच इन्द्रिय और उनकी इच्छाएं-मन और उसके द्वारा होनेवाले संकल्प विकल्प-मतिज्ञान व श्रुतज्ञान रूपी बुद्धि (अप्प सुद्धं सहाव न) ये कोई भी आत्माके शुद्ध स्वभावमें नहीं हैं। जबतक ये हैं तबतक (कम्म निबंधो य जीव तं भनियं) कर्मोंसे बन्धा हुआ इस जीवको कहते हैं।

भावार्थ—आठ कर्म पुद्गल हैं-अजीव हैं-सर्व ही संसारी जीवोंकी रचना इन्हीं आठ कर्मोंसे बनी है। अन्तरंगमें अज्ञान, रागद्वेष, अशुभ व शुभ परिणाम ये सब चार घातीय कर्मोंके कार्य हैं। बाहरमें शरीर आदि अघातीय कर्मोंके कार्य हैं। जब कर्म आत्मासे भिन्न है तब ये सब इन्द्रिय व

मनसे होनेवाले भाव व सर्व रागादि भाव भी आत्मासे भिन्न है। इन सबको अजीव तत्वमें गिनना चाहिये।

श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थसूत्रमें पुद्गलका जीवके साथ क्या क्या काम होता है इन सूत्रोंसे स्पष्ट कह दिया है।

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २०-५ ॥

भावार्थ—शरीर, वचन, मन श्वासोश्वास तथा सांसारिक सुख दुःख, जीना, मरना सब पुद्गलोंके द्वारा जीवोंमें होता है। अजीवका सम्बन्ध जीवसे अलग कर लें तो जीव अपने स्वभावसे सिद्धके समान शुद्ध ही दिखलाई पड़ेगा।

जीव सहाव अजीवं, कम्म निबन्धोय सक्ति रूवेन।
गुनदोसं मइओनं जा मन मुंचनं च कम्म बन्धानं ॥ ७८० ॥

अन्वयार्थ—(जीव सहाव अजीवं) जीवका स्वभाव अजीवके समान होरहा है (कम्म निबन्धोय सक्ति रूवेन) क्योंकि जीवमें कर्मोंके बांध लेनेकी शक्ति है (गुनदोसं मइओनं) इसमें अनेक क्षयोपशम भाव सम्बन्धी गुण दोष दिखलाई पडते हैं, कभी गुणी कभी दोषी होरहा है (जामन मुंचनं च कम्म बन्धानं) यह दशा तबतक ही है जबतक जीव कर्मोंके बन्धसे न छुटे।

भावार्थ—जैसे पानी स्वभावसे शीतल है परन्तु अग्निके संयोगसे उष्ण होकर अग्निका काम करता है-शरीरको जला देता है इसी तरह यह जीव कर्मोंके संयोगसे अजीवके समान होरहा है। शुद्ध जीवका जो शुद्ध परिणमन है, निजानन्दका प्रत्यक्ष विलास है उससे छूटा हुआ है। रागादि भावोंमें, निर्बलतामें, जन्म-मरणमें परिणमन कर रहा है। कभी गुणी, कभी दोषी, कभी सज्जन, कभी दुर्जन, कभी साधु, कभी गृहस्थ कहलाता है। इस जीवमें कर्मोंसे बन्धनेकी भी शक्ति है। जब इसकी योग शक्ति शरीरनामकर्मके उदयसे चंचल होती है, कर्मोंको यह शक्ति खींच लेती है, जब घातीय कर्मोंका उदय होता है, ज्ञान दर्शन गुण अज्ञान भावमें चारित्र गुण कषायोंमें सम्यक्त गुण मिथ्यात्वमें परिणमन कर रहा है। यह विभाव भावमें परिणमन करनेकी एक वैभाविक शक्ति भी आत्मामें है। जैसे जलमें गर्म होनेकी शक्ति है, यदि अग्निका निमित्त न मिले वह गर्म न

होगा निमित्त मिलनेपर गर्म होगा, वैसे हरएक जीवमें विभाव रूप होनेकी व योगोंके द्वारा कर्मोंके खींचनेकी शक्ति है। जब कर्मोदयका निमित्त होता है तब विभाव रूप परिणमन या कर्मोंका बन्ध होता है। यदि कर्मोदयका निमित्त नहीं होता है तो जीव सदा अपने शुद्ध स्वभावमें ही कल्लोल करता है।

अचेतं असुहावं, असत्यं असास्वतं विजानेहि।
अजीव तत्तु भनियं, पुग्गल भावेन सरनि संसारे ॥ ७८१ ॥

अन्वयार्थ—(अचेतं असुहावं) जो ज्ञान शून्य है, जीवका स्वभाव नहीं है, (असत्यं असास्वतं विजानेहि) जो सत्य परमात्म स्वभावसे भिन्न असत्य है जिसका कार्य क्षणिक है ऐसा जाना जाता है, (अजीव तत्तु भनियं) उसको अजीव तत्व कहा गया है, (पुग्गल भावेन संसारे सरनि) इन्हीं रागादि पौद्गलिक भावोंके द्वारा, कर्म पुद्गलोंके द्वारा यह जीव संसारमें भ्रमण कर रहा है।

भावार्थ—जिससे सुख शांति मिले, वही सत्य पदार्थ है। पुद्गलमें सुख शांति नहीं इससे असत्य है। शरीर, वचन, मन, रागादि भाव ये सब पुद्गलकी रचना नित्य नहीं है क्षणिक है। पुद्गलमें ज्ञान नहीं है, जीवमें ज्ञान है। इससे पुद्गलको बिलकुल जीवसे भिन्न अजीव जानो। कर्म पुद्गलोंके सम्बन्धसे ही यह जीव संसारमें भ्रमण कर रहा है। इससे वैराग्य रखना ही हितकर है।

समयसार कलशमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये वर्णादिमान् नटति पुद्गल एव नान्यः।
रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीवः ॥ (२–१) ॥

भावार्थ—इस अनादि कालसे चले आए हुए महान अज्ञानके नाटकमें यह वर्णादि गुणधारी पुद्गल ही नृत्य कर रहा है। जीव तो निश्चयसे रागादि पुद्गलके विकारोंसे रहित शुद्ध चेतनामई स्वभावका धारी है।

इन्द्री सरीर सुभावं, अतिंद्री ज्ञान जीव सहकारं।
गुन दोसं न विजानइ, अजीव तत्वं च मनंपि सहकारं ॥ ७८२ ॥

अन्वयार्थ—(इन्द्री सरीर सुभावं) ये पांचों इन्द्रियें शरीरके स्वभावके साथ (अतिंद्री ज्ञान जीव सहकारं) व जीवके अतीन्द्रिय ज्ञानके साथ एकमेक वर्तन करती हुई (गुन दोसं न विनांनइ) आत्माके हित-अहितको नहीं समझती हैं। इन्द्रियोंके द्वारा विषयकी चाहनाएँ सब अजीव हैं (मनंपि सहकारं मनीव तत्वं च) मन भी इन्द्रियोंके कार्यमें सहकारी है, यह भी अजीव तत्व ही है।

भावार्थ—पांचों इन्द्रिय और मन ये छः ही संसारके प्रपंच-जालमें फँसानेवाले हैं। मन राग भावसे इन्द्रियोंके भोगोंका विचार करता है। उसकी प्रेरणासे सैनी जीवोंकी पांचों इन्द्रियां अपने विषयोंके भोगनेमें लग जाती हैं। उन छहोंके कार्यमें शरीर और जीवका ज्ञान दोनों सहकारी है। यदि अतीन्द्रिय ज्ञानका धारी जीव शरीरमें न हो तो इन इन्द्रियोंसे व मनसे कोई काम नहीं हो सक्ता है। परन्तु ये सब कार्य कर्म पुद्गलोंके उदयकी प्रेरणासे होते हैं। कर्म पुद्गल अजीव है। अतएव उनके सर्व कार्य भी अजीव हैं। पांच इन्द्रिय व मनके विषयोंमें लुब्धायमान होकर यह संसारी जीव अज्ञानी बन जाता है। अपने हित तथा अहितका विचार भूल जाता है। संसारके प्रपंचमें फँसकर कर्म बांधकर भव भवमें भ्रमण करता है। अतएव मुमुक्षु जीवको उचित है कि इन छहोंको अपने आधीन करके जितेन्द्रिय बने और निज आत्माके भीतर प्रवेश करनेकी चेष्टा करें। आत्मानुभवसे ही जीवका हित है। वह तब ही होगा जब सर्व अजीवकी रचनासे वैराग्य होगा।

आस्रव बन्ध तत्व।

जीव अजीवं एकं, कम्म निबंधाइ सरनि संसारे।
पुन्यं पाव उत्पन्नं, मन सहकारं आस्रवे कम्मं ॥ ७८३ ॥

अन्वयार्थ—(जीव अजीवं एकं) अनादि कालसे जीव और अजीव एकसे होरहे हैं (कम्म निबंधाइ संसारे सरनि) इसीसे यह जीव कर्मोंको बांधकर संसारमें भ्रमण करता है (पुन्यं पाव उत्पन्नं) तथा पुण्य पापको उत्पन्न करता है (मन सहकारं आस्रवे कम्मं) भावोंके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव होता है।

भावार्थ—यह जीव पुद्गलके साथ अनादि कालसे संयोग किये हुए है। भूल यह होरही है कि यह जीव अपनेको भूले हुए पुद्गलको ही अपना मानता चला आरहा है, इस मिथ्या भावके कारण

रागद्वेष होते हैं। रागद्वेष मोहके कारणसे कर्मोंका आस्रव होता है। कभी कुछ शुभ भाव होते हैं तब पुण्य कर्मका आस्रव होता है, जब अशुभ भाव होते हैं तब पाप कर्मका आस्रव होता है। परिणामों हीसे कर्म आते हैं। यहां गाथामें मन शब्दसे परिणाम लेने चाहिये। इन्हीं कर्मोंके उदयसे यह जीव संसारमें भ्रमण करता रहता है, वारम्वार नवीन कर्म बांधता है और पिछले कर्मोंका फल भोगता रहता है।

देव गुरुं नवि जानै, नहु धम्मं च सुद्ध चेयना सुद्धं।
कुगुरुं कुदेव दिट्ठं, कुधम्मं विकहा राग संबन्धं ॥ ७८४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं देव गुरुं नवि जानै) मिथ्यात्वके अधिकारमें यह प्राणी सच्चे देव व सच्चे गुरुको नहीं समझता है (नहु धम्मं च सुद्ध चेयना) न यह समझना है कि शुद्ध ज्ञान चेतना ही धर्म है (कुगुरुं कुदेव कुधम्मं विकहा राग सम्बन्धं दिट्ठं) कुगुरु, कुदेव व विकथाओंमें राग भावरूप कुधर्मको ही यथार्थ धर्म माना करता है।

भावार्थ—अनादि कालसे मोहके नशेमें गाफिल प्राणी सर्वज्ञ वीतराग ऐसे निर्दोष देवको, परिग्रह रहित निर्ग्रंथ साधुको तथा निश्चय रत्नत्रयमई शुद्ध चेतनाके अनुभवरूप धर्मको नहीं समझता है। किन्तु सांसारिक प्रयोजनके लोभसे रागी, द्वेषी, कल्पित देवोंको देव, परिग्रहासक्त संसार मोहीको साधुको गुरु तथा स्त्री, भोजन, देश, राजाके सम्बन्धमें प्रीति बढानेवाले भावोंको ही धर्म मान लेता है। अथवा जिस धर्मके नियमोंपर चलनेसे सुन्दर स्त्री, भोजन, राज्य, धन धान्य आदि सांसारिक विभूति प्राप्त हों उनको धर्म मान लेता है। यही मिथ्यात्व कर्मोंके आस्रवका कारण है।

अनृत अचेतं सहियं, मिथ्या कुज्ञान असंजदो भावं।
परिनै असुह सुहावं, मनः सहायेन सयल संजुत्तं ॥ ७८५ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत अचेतं सहियं) मिथ्यात्व व अज्ञान सहित होनेसे (मिथ्या कुज्ञान असंजदो भावं) मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान, व मिथ्या चारित्र सम्बन्धी भावोंको करता हुआ (असुह सहावं परिनै) यह अशुद्ध स्वभावमें परिणमन करता रहता है। (मनः सहायेन सयल संजुत्तं) परिणामोंकी सहायतासे ही सर्व कर्मोंका संयोग होता है।

भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादिकालसे मिथ्यादर्शन तथा ज्ञानावरण कर्मका ऐसा उदय है जिससे यह जीव मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या ज्ञान व मिथ्या चारित्रमें रहता हुआ सदा संसारवर्द्धक अशुद्ध भावोंको किया करता है और उनही भावोंसे नानाप्रकार कर्मोंका आस्रव करके कर्मोंसे बन्धता है।

जीवो कम्म निबद्धं, आस्रवै कम्म विविह भावेन।
आस्रव तत्तु समिद्धं, मन सहकारेन आस्रवो भनियं ॥ ७८६ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म निबद्धं जीवो) पूर्वके कर्मोंसे बन्धा हुआ जीव (विविह भावेन कम्म आस्रवै) नाना-प्रकारके भावोंसे कर्मोंका आस्रव करता है (आस्रव तत्तु समिद्धं) यही आस्रव तत्व है (मन सहकारेन आस्रवो भनियं) परिणामोंके निमित्तसे ही आस्रव कहा गया है।

भावार्थ—शुद्ध जीवके कर्मोंका आस्रव नहीं होता है। क्योंकि आस्रवका मूल कारण मन, वचन, काय द्वारा आत्माका परिस्पंद होते हुए योगशक्तिका परिणमन है सो शुद्ध जीवके सम्भव नहीं है किन्तु कर्मबद्ध अशुद्ध जीवके सम्भव है। इस अशुद्ध जीवके आस्रवके कारणीभूत भाव मिथ्यादर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय तथा योग होते हैं। इन ही भावोंको भावास्रव कहते हैं। कर्मोंके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं। भावास्रवोंके भेद द्रव्यसंग्रहमें इस प्रकार कहे हैं—

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ सविण्णेया। । पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥ ३० ॥

भावार्थ—पांच मिथ्यात्व–एकांत, विपरीत, संशय, अज्ञान, विनय। पांच अविरति–हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह। पंद्रह प्रमाद–स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राजा कथा, स्पर्शन इन्द्रियादि पांच इन्द्रि व चार कषाय और स्नेह तथा निद्रा। चार क्रोधादि कषाय। तीन मन वचन कायके योग ये ३२ भेद भावास्रवके जानने चाहिये। नय प्रमादके ८० भेद होजाते हैं—
४ विकथा × ५ इन्द्रिय × ४ कषाय × १ निद्रा × १ स्नेह = ८०।

इन्हींको भावबन्ध भी कहते हैं। बन्ध और आस्रवके भाव समान हैं, एक ही अशुद्ध परिणामसे दो कार्य होते हैं। कर्मोंका बन्धके निकट होना सो आस्रव है, उनका बन्ध कार्माण शरीरसे हो जाना बन्ध है। तत्वार्थसूत्रमें बन्धके कारण यही बताए हैं—

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १-८ ॥

जीवो अप्प सहावं, मन सुद्धं सुद्ध दिष्टि अप्पानं ।
मन चेयन सद्भावं, बन्धं आस्रव सुहं च असुहं च ॥ ७८७ ॥

अन्वयार्थ—(जीवो अप्प सहावं) जीवका अपना स्वभाव (मन सुद्धं) शुद्ध परिणाम है (सुद्ध दिष्टि अप्पानं) जहां शुद्ध आत्मामें ही दृष्टि है (मन चेयन सद्भावं) जब चेतन मनके द्वारा काम करने लगता है तथा अशुद्ध परिणाम होते हैं तब (सुहं च असुहं च आस्रव बन्धं) शुभ तथा अशुभ कर्मोंका आस्रव तथा बन्ध होता है।

भावार्थ—जब जीव आप अपने शुद्ध स्वभावका श्रद्धान ज्ञान तथा अनुभव करता हुआ शुद्धोपयोगमें रमण करता है तब कर्मोंका आश्रव तथा बन्ध नहीं होता है, परन्तु जब अनेक प्रकारके संकल्प विकल्पोंमें परिणाम उलझ जाते हैं-शुद्ध आत्माके मननसे विरुद्ध सांसारिक कामोंमें परिणाम रत होजाते हैं तब शुभ भावोंसे पुण्यकर्मोंका तथा अशुभ भावोंसे पापकर्मोंका आस्रव तथा बन्ध होता है।

देव गुरु धम्मं सुद्धं, अप्प सरूवं च निम्मलं विमलं ।
मिथ्या कुज्ञान विरयं, बंधतत्वं न चेयना भावं ॥ ७८८ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं देव गुरु धम्मं) जहां निश्चयनयसे शुद्ध आत्मा ही देव है, गुरु है, धर्म है (अप्प सरूवं च निम्मलं विमलं) ऐसा जो कर्म मल व रागादि मल रहित आत्माका स्वरूप है (मिथ्या कुज्ञान विरयं) जहां न मिथ्या श्रद्धान है न मिथ्याज्ञान है (चेयना भाव) एक ज्ञान चेतनाका ही अनुभवरूप भाव है वहां (बंधतत्वं न) बन्ध तत्व नहीं है, वहां कर्मोंका बन्ध नहीं होता है।

भावार्थ—बन्धके कारण वास्तवमें रागद्वेष मोह हैं। जहां रागद्वेष मोह नहीं है, एक शुद्ध आत्मामें ही परिणति रमण कर रही है। शुद्ध ज्ञानका ही जहां स्वाद आरहा है। आत्मीक परमानन्दमें जहां मगनता है वह भाव कर्मोंकी निर्जराका कारण है, बन्धका कारण नहीं है। मुमुक्षुको बंधसे बचनेके लिये शुद्धोपयोगका प्रकाश करना चाहिये।

संवर तत्व।

चिंतइ अप्प सहावं, दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानं ।
अप्पा परमप्पानं, संवर तत्वं च सुद्ध जाने हि ॥ ७८९ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं चिंतइ) आत्माके स्वभावका जहां अनुभव है (दंसन ज्ञानेन सुद्ध चरनानं) जहां शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान, तथा शुद्ध सम्यक्चारित्र है (अप्पा परमप्पानं) आत्मा परमात्मा रूप होरहा है (सुद्ध संवर तत्वं च जाने हि) वहीं शुद्ध संवर तत्वको पहचानना चाहिये ।

भावार्थ—कर्मोंके आस्रवको रोकना संवर है। जिन२ भावोंसे कर्म आते हैं उनको रोकना भाव संवर है। सम्यग्दर्शन, व्रत भाव, आमोद भाव, वीतराग भाव, मन, वचन, कायकी गुप्ति संवरके भाव हैं। यहां निश्चय संवरको बताया है कि रत्नत्रय स्वरूप धारी अपने ही आत्माको शुद्ध आत्मा-रूप परम शुद्ध अनुभव करना ही संवर है। इससे वास्तवमें प्रचुर कर्मोंका संवर होता है।

पंच इन्द्री संवरनं, अतिंद्री भाव सुद्ध परिनामं ।
मिथ्या राग निरोधं, अप्पा ज्ञान दंसन समग्गं ॥ ७९० ॥

अन्वयार्थ—(पंच इन्द्री संवरनं) पांचों इन्द्रियोंका रोकना (मिथ्या राग निरोधं) संसारके मिथ्या नाशवन्त पदार्थोंका राग छोडना (अप्पा ज्ञान दंसन समग्गं) आत्मा ज्ञान दर्शनसे पूर्ण है उसकी ओर लक्ष्य देकर (अतिंद्री भाव सुद्ध परिनामं) अतीन्द्रिय शुद्ध भावोंमें परिणमना संवर है।

भावार्थ—संसारकी चारों गतियोंमें जितनी पर्यायें हैं वे सब वारवार छूट जानेवाली मिथ्या हैं कर्मजनित हैं, उनसे मनको रोककर तथा पांच इन्द्रियोंसे मनको रोककर जो ज्ञाता दृष्टा परमानन्दमई निज आत्मामें उपयोगको लगाकर अतीन्द्रिय शुद्ध भावोंमें रमण करना अर्थात् आत्माका अनुभव करना संवर तत्व है। शुद्ध भावोंमें ठहरनेसे कर्मोंका संवर होता है। जितना २ गुणस्थान चढता जायगा उतना २ संवर होता जायगा। आस्रवके पांच कारण हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग। मिथ्यात्वका उदय दूसरे आदिके गुणस्थानोंमें नहीं इससे मिथ्यात्वके उदयसे जो कर्म आते थे वे आगे नहीं आएंगे। अनन्तानुबन्धी कषायका उदय दूसरे गुणस्थान तक है उसके

आगे अनन्तानुबन्धी द्वारा आनेवाले कर्म न आएंगे। मिश्र प्रकृतिका उदय तीसरेमें है, उसके उदयसे जो कर्म बंधेंगे वेही वहां बन्ध प्राप्त होंगे। चोथे गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी व दर्शनमोहनीयकी तीनोंका उदय नहीं है व वेदक सम्यक्तीके केवल एक सम्यक्त प्रकृतिका उदय है, ऐसी दशामें जितने कर्म आएंगे उससे अधिक न आएंगे। पांचवें देशविरतिमें अविरति भाव कुछ चला गया। अप्रत्याख्यानावरण कषायका उदय नहीं है इससे इस कषाय सम्बन्धी कर्म न आवेंगे। छठे प्रमत्तविरतमें प्रत्याख्यानावरण कषाय भी उदयमें न रहा तब उस सम्बन्धी कर्म नहीं आएंगे। सातवेंसे लेकर दशवें तक प्रमाद नहीं रहा, संज्वलन कषायका उदय है वहांतक कषाय जनित कर्म आएंगे, आगे कषाय नहीं है। केवल तेरहवें तक योग है, इससे एक सातावेदनीय कर्म एक समयका स्थितिवाला ही आयगा अन्य कर्म नहीं आएंगे। इसतरह जैसे जैसे भाव चढते जायंगे कर्मोंका संवर होता जायगा।

निर्जरा तत्त्व।

निज्जरइ भाव सुद्धं, सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं।
अप्पा परमप्पानं, सुद्ध सहकारेन केवलं ज्ञानं॥ ७९१॥

अन्वयार्थ—(भाव सुद्धं निज्जरइ) शुद्ध भावोंसे कर्मोंकी निर्जरा होती है (सुद्धप्पा ज्ञान दंसन समग्गं) अपना ही आत्मा शुद्ध स्वरूप ज्ञान दर्शनसे परिपूर्ण है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप समझ ध्यान करना (सुद्ध सहकारेन केवलं ज्ञानं) इसी शुद्धोपयोगके प्रतापसे केवलज्ञान होता है।

भावार्थ—निर्जरा दो प्रकारकी है–सविपाक निर्जरा, अविपाक निर्जरा। कर्मोंका अपनी स्थिति पूरी होनेपर झडना सो सविपाक निर्जरा है। यह सब संसारी जीवोंके होती है। स्थितिके पकनेके पहले ही वीतराग भावसे कर्मोंको दूर करना अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा अविरत सम्यग्दृष्टीके होना प्रारम्भ होजाती है। क्योंकि तत्वज्ञानी आत्माका अनुभव करने लग जाता है। आत्मानुभवके कारण जितनी वीतरागता होती है उतनी कर्मकी निर्जरा होती है। फिर आगे २ गुणस्थानोंमें जितना २ अधिक आत्मानुभव बढता है, कर्मकी निर्जरा अधिक २ होती जाती है। ॥४३८॥

आत्मानुभवरूप धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ही तप है। उसके प्रतापसे आठों ही कर्मकी निर्जरा हो-जाती है और यह आत्मा अपनेको परमात्मारूप ध्याता हुआ स्वयं परमात्मा होजाता है।

मोक्ष तत्व।

मोक्षं मुक्ति सुभावं, संसारे सरनि सयल तिक्तं च।
अप्पा अप्प सहावं, मोक्षं विमल ज्ञान ज्ञानत्थं ॥ ७९२ ॥

अन्वयार्थ—(मोक्षं मुक्ति सुभावं) मोक्षतत्व सर्व परसे छूटा हुआ आत्माका स्वभाव है (संसारे सरनि सयल तिक्तं च) संसारमें भ्रमण करानेवाले भावोंसे व कर्मोंसे पूर्णपने मुक्ति होजाना है। (अप्पा अप्प सहावं) आत्माका अपने स्वभावको प्राप्त कर लेना है तथा (विमल ज्ञान ज्ञानत्थं मोक्षं) निर्मल ज्ञानके ध्यानमें तिष्ठना मोक्ष है।

भावार्थ—आत्मा और कर्मोंका अनादि सम्बन्ध प्रवाहकी अपेक्षा चला आता था। शुक्लध्यानके बलसे जब सर्व कर्म गिर जाते हैं तब कर्मोंके कारणसे रहनेवाले तैजस व औदारिक शरीर भी गिर जाते हैं। आत्मा अकेला शुद्ध निज स्वभावमें रह जाता है। कर्मोंके उदय विना कोई चंचल भाव या रागादि भाव नहीं होता है। तब आत्मा अपने शुद्ध ज्ञानमें ही आनन्दामृतको पान करता हुआ रहता है। अनन्तकाल तक स्वरूप मग्न रहता है, निराकुल रहता है, अतिन्द्री आनन्दका भोग करता है, यही मोक्षतत्व है। मोक्ष प्राप्त कर आत्मा अपनी सत्ताको नहीं खोता है। अन्तिम शरीरके आकार आत्मा शुद्ध भावोंमें रहता है। परम कृतकृत्य परम सुखी अनन्तकाल तक बना रहता है।

तत्वस्य भाव निरूपं, एको उदेस्त किंचितं कहियं।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, तत्व सरूवं च दंसनं अमलं ॥ ७९३ ॥

अन्वयार्थ—(तत्वस्य भाव निरूपं) सात तत्वोंका भाव कहा गया है (एको उदेस किंचित कहियं) यहां कुछ एकोदेश थोडासा कहा है—सातों तत्वोंका सार (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञान स्वभावी ज्ञानी आत्मा है (तत्व सरूवं च दंसनं अमलं) वही वास्तविक तत्वमय निर्मल सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—सात तत्वोंका विस्तारसे कथन और ग्रन्थोंसे जानना योग्य है। यहां कुछ कथन किया गया है। इनमें मुख्य तत्व एक अपना आत्मा है, जो निर्मल ज्ञान दर्शनसे पूर्ण सिद्धवत् परमात्मा है। इसीका दृढ विश्वास करना सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। जब कि सात तत्वोंका श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। व्यवहारके मथनसे निश्चय सम्यक्त उसी तरह प्राप्त होता है जैसे दूधके मथनेसे मक्खन निकलता है।

जीव पदार्थ।

पदार्थ पद विंदं, जीव पदार्थ पद विंद संजुत्तं।
ॐ नमः विंद संजुत्तं, ज्ञानमयं च दंसनं चरनं ॥ ७९४ ॥

अन्वयार्थ—(पदार्थ पद विंदं) पदार्थ वह है जो पदके द्वारा वस्तुको जनावे (जीव पदार्थ पद विंद संजुत्तं) जीव पदके द्वारा जीव वस्तु या पदार्थका ज्ञान होता है (ॐ नमः विंद संजुत्तं) ॐ नमः पदके द्वारा शुद्ध जीवका ज्ञान होता है वह जीव (ज्ञानमयं च दंसनं चरनं) ज्ञानमई सम्यग्दर्शनमई तथा सम्यक्चारित्रमई अर्थात् स्वात्मानुभवमई है।

भावार्थ—शब्दके द्वारा जो निश्चय किया जावे सो पदार्थ है। जीव पदार्थमें त्रिकाल जीनेवाला जीव जाना जाता है। शुद्ध जीव पदार्थ रत्नत्रय स्वरूप शुद्धोपयोग मय सिद्ध भगवान या अर्हंत परमेष्ठी है या शुद्धात्माका अनुभव करनेवाले आचार्य, उपाध्याय, तथा साधु परमेष्ठी हैं। ॐ नमः पदमें इन पांचोंको नमस्कार किया गया है। ॐ मंत्र पांच प्रथम अक्षरोंसे बना है। अर्हंतका अ सिद्ध या अशरीरका अ, आचार्यका आ, उपाध्यायका उ, साधु या मुनिका म्। इस तरह अ + अ + आ + उ + म् मिलानेसे ओम् या ॐ होजाता है।

अक्षर सुर विंजनयं, पदार्थ सुद्ध ज्ञान निम्मलयं।
अप्पा परमप्पानं, नंत चतुस्टय सरूव निम्मलयं ॥ ७९५ ॥

अन्वयार्थ—(सुरविंजनय अक्षर पदार्थ) स्वर, व्यंजन अक्षरोंसे पद बनता है। पदसे अर्थका बोध होता है सो पदार्थ है। जीव शब्दसे (सुद्ध ज्ञान निम्मलयं) शुद्ध ज्ञान स्वरूपी निर्मल आत्माका ज्ञान होता है, (अप्पा परमप्पानं) आत्मा परमात्मा स्वरूप है, (नंत चतुष्टय सरूव निम्मलयं) अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय स्वरूप शुद्ध है, ऐसा ज्ञान होता है।

भावार्थ—जीव पदार्थसे अपने आत्माको आत्मारूप या परमात्मा रूप शुद्ध वीतराग ज्ञान दर्शनसे पूर्ण जानना योग्य है।

ज्ञान सरूव सुभावं, अप्पा विमल निम्मलं सुद्धं।
ज्ञानं ज्ञान सहावं, ज्ञान सहावेन पदार्थं सुद्धं ॥ ७६६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सरूव सुभावं) जीवका स्वभाव ज्ञान स्वरूप है, (अप्पा विमल निम्मलं सुद्धं) यही आत्मा कर्ममल व रागादि दोष रहित शुद्ध कहलाता है, (ज्ञानं ज्ञान सहावं) यही ज्ञानमई है व ज्ञान स्वभाव है। (ज्ञान सहावेन सुद्धं पदार्थं) तथा यही ज्ञान स्वभावमें ठहरनेसे शुद्ध जीव पदार्थ है।

भावार्थ—ज्ञान जीव पदार्थका मुख्य गुण है इसीके द्वारा अन्य गुणोंका बोध होता है। ज्ञान सिवाय आत्माके और किसी पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश अजीव द्रव्योंमें नहीं पाया जाता है। यह ज्ञान इसका असाधारण लक्षण है। इस जीवको सर्व कर्ममल व रागादि मल रहित शुद्ध अपने ही निज स्वभावमें कल्लोल करनेवाला जानना यथार्थमें जीव पदार्थका ज्ञान है।

अजीव पदार्थ।

अजीवं अचेतं, इन्द्री विषय राग दोष संजुत्तं।
मन सुद्धं ज्ञान सहावं, अतिन्द्री विषय पदार्थं सुद्धं ॥ ७६७ ॥

अन्वयार्थ—(अजीवं अचेतं) अजीव पदार्थ वह है जिसमें चेतना न हो। वे अजीव पांच हैं–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल (इन्द्री विषय राग दोष संजुत्तं) इन्द्रियोंके भोगने योग्य विषय सब पुद्गल अजीव हैं तथा राग दोष भाव भी पुद्गल हैं क्योंकि मोहनीय कर्म पुद्गल जनित विकार हैं (मन सुद्धं

ज्ञान सहावं) जहां परिणाम रागादि दोष रहित वीतराग हैं व ज्ञान स्वभाव ही हैं (अतिन्द्री विषय पदार्थं सुद्ध) जो इन्द्रियोंके द्वारा जानने योग्य नहीं है ऐसा शुद्ध पदार्थ आत्मा है उससे रहित जो कुछ है सो अजीव पदार्थ है।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि शुद्ध जीव पदार्थको छोडकर बाकी सर्व प्रपंचजाल अजीव पदार्थमें समझ लेना चाहिये। जीवके साथ कार्माण, तैजस, औदारिक या वैक्रियिक या आहारक शरीर संयोग करते हैं। ये सब पुद्गल अजीव हैं। कर्मोंके निमित्तसे जितने रागादि विभाव होते हैं वे भी शुद्ध जीव नहीं हैं, इसलिये उनको भी अजीव समझना चाहिये। अजीवसे वैराग्य भजकर शुद्ध जीव पदार्थसे प्रेमालु होना योग्य है।



पुन्य पाप तथा आस्रव पदार्थ।

आस्रवै पुन्य पावं, भावं असुहं च विविह कम्मानं।
चेयन सुद्ध स उत्तं, पदार्थ तंपि पुन्य पावं च॥ ७९८॥

अन्वयार्थ—(असुहं भावं च विविह कम्मानं पुन्य पावं आस्रवै) अशुद्ध भाव ही नानाप्रकार पुन्य पाप कर्मोंका आस्रव करता है (चेयन सुद्ध स उत्तं) जो शुद्ध चेतन पदार्थ कहा गया है (तंपि पुन्य पावं च) वही पुन्य पाप रूप होजाता है।

भावार्थ—आत्मा निश्चयसे शुद्ध है परन्तु व्यवहारसे कर्मोंके बन्ध तथा उदयके कारण अशुद्ध है। अशुद्ध आत्मामें अशुद्ध भाव होते हैं। योगोंके और कषायोंके परिणाम होते हैं, इन्हींको लेश्या कहते हैं। जब पीत पद्म शुक्ल लेश्या होती है तब शुभ परिणाम कहाते हैं, जब कृष्ण, नील, कापोत लेश्या होती है तब अशुभ परिणाम कहाते हैं। शुभ परिणामोंको भाव पुण्य, अशुभ परिणामोंको भाव पाप कहते हैं। दोनोंको भाव आस्रव कहते हैं। शुभ भावोंसे सातावेदनीय आदि पुण्य-कर्मोंका तथा अशुभ भावोंसे असातावेदनीय आदि पापकर्मोंका आस्रव होता है। इनको द्रव्य पुण्य द्रव्य पाप व कर्मोंके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं। यहां पुन्य, पाप, आस्रव तीनोंका संक्षेप कथन किया गया है। पुण्य पाप पदार्थ वास्तवमें आस्रवमें गर्भित हैं।

बंध पदार्थ ।

पदार्थ पद विंदंतो, सुद्ध सहावेन निम्मल सरूवं ।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, संसारे सरनि बन्ध जानेहि ॥ ७९९ ॥

अन्वयार्थ—(पदार्थ पद विंदंतो) जो जीव पदार्थके द्वारा अपने आत्मीक पदका अनुभव करता है (सुद्ध सहावेन निम्मल सरूवं) शुद्ध स्वभावमें ठहरकर निर्मल स्वरूपका ध्यान करता है (मिथ्या सल्य विमुक्कं) जहां बहिरात्मपना रूप मिथ्यात्वकी कोई शल्य नहीं है वही मोक्षका मार्ग है, उसके विरुद्ध (संसारे सरनि बन्ध जानेहि) जितना भी संसार भ्रमणका कारण है उसे कर्मका बन्ध जानना चाहिये ।

भावार्थ—शुद्ध जीव पदार्थका श्रद्धा व ज्ञान व चारित्र सहित अनुभव करना सर्व शल्य व इच्छा रहित होजाना मोक्षका मार्ग है । इसके विरुद्ध कर्मोंके प्रपंचजालमें राग द्वेष करना बन्धका मार्ग है । कर्मका बन्ध ही संसारमें भव भवके भीतर भटकानेवाला है । बन्धन कभी भी सुखदाई नहीं होसक्ता है इसलिये बन्ध पदार्थको हेय समझकर मोक्षमार्गपर चलना चाहिये ।

संवर पदार्थ ।

संवरन राय दोसं, मिथ्या संसार सरनि संवरनं ।
ज्ञानमई अप्पानं, ज्ञान सहावेन संवरं भनियं ॥ ८०० ॥

अन्वयार्थ—(राय दोसं संवरन) राग द्वेषको रोकना (मिथ्या संसार सरनि संवरनं) मिथ्या संसारके मार्गके भ्रमणको रोकना (ज्ञानमई अप्पानं) ज्ञानमई आत्माको (ज्ञान सहावेन) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकरके ध्याना (संवरं भनियं) संवर पदार्थ कहा गया है ।

भावार्थ—इस मिथ्या नाशवन्त चार गतिरूप संसारमें भ्रमण करानेका कारण कर्मोंका बन्ध है जो मिथ्यात्वभाव तथा राग द्वेष भावोंके कारणसे होता है । इसलिये राग द्वेष मोहको रोककर ज्ञानमई अपने शुद्धात्माका अनुभव करना ही कर्मोंके रोकनेका उपाय है । यही संवर पदार्थ कहा गया है ।

निर्जरा पदार्थ ।

निज्जरइ पुन्य पावं, भावं असुहं च विविह कम्मानं ।
अप्प सहावं पिच्छदि, परमप्पा निज्जरं अमलं ॥ ८०१ ॥

अन्वयार्थ—(पुन्य पावं निज रइ) जिससे पुन्य तथा पाप दोनों कर्मोंकी निर्जरा हो, (विविह कम्मानं असुहं भावं च) तथा नाना प्रकार कर्मोंके बन्धके कारण अशुद्ध भावोंका अभाव हो, (अप्प सहावं पिच्छदि) जहां आत्माके स्वभावका अनुभव हो, (परमप्पा अमलं निज्जरं) परमात्मा स्वरूपमें तन्मय रूप निर्मल भाव हो, वही निर्जरा पदार्थ है ।

भावार्थ—भाव निर्जरा द्रव्य निर्जराका कारण है। वीतराग भावोंके साथ अपने शुद्ध आत्माके स्वभावमें तन्मय होजाना, आत्म ध्यानमय होना, आत्माहीमें तपना, यही निश्चय तप रूप भाव भाव निर्जरा है। इसके प्रतापसे अशुद्ध भाव नहीं होने पाते हैं। तथा पाप कर्मोंकी निर्जरा हो जाती है। तथा पुण्य कर्मोंकी स्थिति घटकर तथा अनुभाग बढकर वे शीघ्र ही रस देकर गिर पडते हैं। इस तरह कर्मोंकी निर्जराका कारण निज आत्मानुभव ही निर्जरा पदार्थ है।

मोक्ष पदार्थ ।

मोक्ष पदार्थ सुद्धं, अविगत रूवेन विगत भावेन ।
अप्पा परमानन्दं, परमप्पा ज्ञान निम्मलं सुद्धं ॥ ८०२ ॥

अन्वयार्थ—(मोक्ष पदार्थ सुद्धं) मोक्ष पदार्थ शुद्ध आत्मा है (अविगत रूवेन) जिसमें कोई पौद्गलिक रूप रस गन्ध स्पर्श नहीं है (विगत भावेन) जिसमें कोई औपशमिक, क्षयोपशमिक तथा औदयिक ऐसे तीन प्रकार विभाव नहीं हैं (अप्पा परमानन्दं) जहां शुद्धात्मा परमानन्दमें मगन रहता है (परमप्पा ज्ञान निम्मलं सुद्धं) वही परमात्मा है जहां कर्ममल रहित वीतरागमय ज्ञान है।

भावार्थ—सर्व द्रव्य कर्म ज्ञानावरणादि, भाव कर्म रागद्वेषादि, नोकर्म शरीरादिसे छूटकर आत्माका अपने अमूर्तीक ज्ञानमई शुद्ध स्वभावमें होजाना मोक्ष है। यही परमात्माका स्वभाव है।

यहां कोई कर्मजनित भाव नहीं होते हैं। अनन्त ज्ञानादि क्षायिक भाव हैं या जीवत्व नामका पारिणामिक भाव है। मोक्षरूप सिद्ध परमात्मा सदा अपने स्वाभाविक आनन्दमें मगन रहते हैं।

पदार्थं संसुद्धं, सुद्धं ससहाव चेयना सहियं।
संसार विगत रूवं, ज्ञान सहावेन सुद्ध पद विंदं ॥ ८०३ ॥

अन्वयार्थ—(संसुद्धं पदार्थं) मोक्ष परम शुद्ध आत्मा पदार्थ है (सुद्धं ससहाव चेयना सहियं) वह कर्म-मल रहित शुद्ध है तथा अपने स्वाभाविक चेतना गुण सहित है (संसार विगत रूवं) संसारकी सर्व विभाव परिणतियोंसे व सर्व विभाव भावोंसे व संसारके सर्व नर-नारकादि रूपोंसे रहित है (ज्ञान सहावेन सुद्ध पद विंदं) ज्ञान स्वभावमें तिष्ठकर शुद्ध आत्मीक पदका जहांपर अनुभव है।

भावार्थ—मोक्ष पदार्थरूप आत्मा अपनी स्वाभाविक ज्ञान चेतनारूप रहता है वहां अशुद्ध चेतना अर्थात् कर्मफल या कर्म चेतना नहीं होती है। कर्मोंके निमित्तसे जितने विभाव भाव होते हैं-ज्ञानकी पर्यायें या असंख्यात लोक प्रमाण कषायके भाव व शरीरके अनेक रूप जीव समास, भावोंकी श्रेणियां चौदह गुणस्थान तथा जीवकी परिणतियां चौदह मार्गणा स्थान इत्यादि कोई भी संसार सम्बन्धी विभाव या रूप उस शुद्ध आत्मामें नहीं है। वे शुद्धात्मा ज्ञानाकार अपने शुद्ध सिद्ध पदका निरन्तर भोग किया करते हैं।

पदार्थं परम ध्रुवं, परमप्पा ज्ञान निम्मल सरूवं।
पदं पदार्थं सुद्धं, सुद्धं ससहाव चेयना भावं ॥ ८०४ ॥

अन्वयार्थ—(पदार्थं परम ध्रुवं) मोक्ष पदार्थ परम ध्रुव है, निश्चय अविनाशी है (परमप्पा ज्ञान निम्मल सरूवं) वहां परमात्मा अपने ज्ञानमई निर्मल स्वभावमें रहता है (सुद्धं पदं पदार्थं) वही पदार्थ शुद्ध पद है (सुद्धं ससहाव चेयना भावं) वही शुद्ध अपने स्वाभाविक चेतनाके भावमें मगन हैं।

भावार्थ—मोक्ष प्राप्त आत्मा कभी मोक्ष अवस्थाको त्यागते नहीं हैं। वे सदा सिद्ध पदमें ध्रुव निश्चल बने रहते हैं। वे अपने स्वाभाविक अनन्त गुणोंमें तन्मय रहते हैं। शुद्ध ज्ञान चेतनाका वे निरन्तर अनुभव करते हैं। आत्मानन्दका अपूर्व रस भोगते हैं।

पद सुद्धं मन सुद्धं, अप्पा परमप्प सुद्ध निम्मलयं ।
पदविंदं ससहावं, ज्ञान सरूवं च लहैं निव्वानं ॥ ८०५ ॥

अन्वयार्थ—(पद सुद्धं मन सुद्धं) वह मोक्षपद शुद्ध है वहां परिणाम भी शुद्ध हैं (अप्पा परमप्प सुद्ध निम्मलयं) वहां आत्मा शुद्ध वीतराग निरंजन रूप परमात्मा रूप है। (ससहावं पद विंदं) वे अपने स्वाभाविक पदका अनुभव करते हैं (ज्ञान सरूवं च लहैं निव्वानं) वास्तवमें जो ज्ञानस्वरूप होजाता है, जिसका परसे सम्बन्ध छूट जाता है वही निर्वाणको प्राप्त करता है।

भावार्थ—मोक्षको ही निर्वाण कहते हैं, जहां संसारकी अवस्थासे आत्माकी निर्वृत्ति होजाती है। इस मोक्षपदमें केवल शुद्ध आत्मा अपने स्वभावका विलास करता हुआ सदा आनन्दमग्न रहता है। पांचों परमेष्ठीके पदोंमें यही शुद्ध पद है।

जीव द्रव्य ।

दव्वं दव्व सहावं, जीव दव्वं तिलोय संसुद्धं ।
छह गुन निवास सुद्धं, दो गुन अनाइ एक संजुत्तं ॥ ८०६ ॥

अन्वयार्थ—(दव्वं दव्व सहावं) द्रव्य उसे कहते हैं जिसका द्रवण या परिणमन स्वभाव हो (जीव दव्वं तिलोय संसुद्धं) जीव द्रव्य तीन लोकके भीतर भरे हुए छः द्रव्योंमेंसे एक शुद्ध द्रव्य है (छह गुन निवास सुद्धं) छः गुणोंको रखनेवाला शुद्ध पदार्थ है (दो गुन) उनमेंसे दो गुण मुख्य हैं (एक संजुत्तं) संग्रह नयसे एक जीवत्व गुण सहित है।

भावार्थ—जो सदा परिणमन करे उसको द्रव्य कहते हैं। जीव भी परिणमनशील है इसलिये द्रव्य है। इसमें छः शुद्ध प्रसिद्ध गुण हैं, जिनका वर्णन आगेकी गाथाएं हैं, वे हैं-(१) अस्तित्व, (२) वस्तुत्व, (३) प्रमेयत्व, (४) अगुरुलघुत्व, (५) चेतनत्व, (६) अमूर्तत्व। इनमेंसे चेतनत्व और अमूर्तत्व दो मुख्य गुण हैं। ये दोनों किसी अपेक्षा विशेष गुण हैं। अस्तित्व आदि चार गुण सामान्य सब द्रव्योंमें पाए जाते हैं। चेतनत्व जीवमें ही है। अमूर्तत्व पुद्गलमें नहीं है। यद्यपि धर्म अधर्म आकाश ॥४४८॥

कालमें है। चेतनत्वके साथ अमूर्तत्व ये दो गुण तो जीवमें ही है, और किसी द्रव्यमें नहीं। यदि संग्रहनयसे देखें तो जीवमें एकत्व जीवत्व गुण है।

आलापपद्धतिमें श्री देवसेनाचार्यने जीव द्रव्यमें आठ गुण बताए हैं—

(१) अस्तित्व, (२) वस्तुत्व, (३) द्रव्यत्व, (४) प्रमेयत्व, (५) अगुरु लघुत्व, (६) प्रदेशत्व, (७) चेतनत्व, (८) अमूर्तत्व। यहां छःकी संज्ञा दी है। द्रव्यत्व गुण द्रव्य स्वभावमें गर्भित है। तथा प्रदेशत्व गुण अस्तित्वमें गर्भित है, ऐसा समझमें आता है। प्रमेयत्वके स्थानमें यहां अप्रमेयत्व लिया है। सो भी किसी अपेक्षासे ठीक है जो आगे कहेंगे। इन गुणोंका धारी जीव अनादिसे ही है, कभी इन गुणोंसे शून्य न था न होवेगा। अथवा यह भी अर्थ होसक्ता है कि जीवमें सद्भाव गुण छ हैं–अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, द्रव्यत्व। दो विशेष गुण हैं–चेतनत्व, अमूर्तित्व।

अस्तित्व गुण।

अस्ति अस्ति तिलोकं, वर दंसन ज्ञान चरन संजुत्तं।
दंसेइ तिहु वनग्गं, ज्ञानमयो ज्ञान ससरूवं ॥ ८०७ ॥
अस्ति चरन संजुत्तं अस्ति, सरूवेन सहाव निम्मलं सुद्धं।
विगतं अविगत रूवं, चेयन संजुत्त निम्मलो सुद्धो ॥ ८०८ ॥

अन्वयार्थ—(अस्ति अस्ति तिलोकं) जीवद्रव्य है तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशोंका धारी है, (वर दंसन ज्ञान चरन संजुत्तं) निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान तथा निश्चय सम्यक्चारित्र सहित है, (तिहु वनग्गं दंसेइ) तीन भुवनके अन्त तक सर्व लोकको देखनेवाला है (ज्ञानमयो ज्ञान ससरूवं) ज्ञानमई है तथा ज्ञान ही जिसका अपना स्वरूप है (चरन संजुत्तं अस्ति) चारित्र अर्थात् वीतरागता सहित है। (सरूवेन सहाव निम्मलं सुद्धं अस्ति) यह जीव अपने स्वरूपसे स्वभावमई निर्मल शुद्ध अस्तित्वको रखनेवाला है (विगतं अविगत रूवं) स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णके न होनेसे जीव अरूपी अर्थात् अमूर्तीक है तथापि

प्रदेशत्व गुणके रखनेसे प्रदेशी है अर्थात् असंख्यात प्रदेशी है (चेयन संजुत्त निम्मलो सुद्धो) चेतना सहित परम शुद्ध निरंजन है।

भावार्थ—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो उसको अस्तित्व गुण कहते हैं। इन दो गाथाओंको इसीका व्याख्यान कहते हुए प्रदेशत्व गुणको भी साथ साथ कह दिया है। क्योंकि द्रव्यके अस्तित्वका ज्ञान उसके आकार पर ही निर्भर है। जिसका कोई आकार नहीं वह वस्तु अपना अस्तित्व नहीं रख सक्ती है। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं। यह जीव है, क्योंकि मैं जानता हूं ऐसा अनुभव होरहा है। यह प्रदेशोंकी अपेक्षा लोकाकाश व्यापी असंख्यात प्रदेशी है। शरीरमें संकोच विस्तार स्वभावके कारण छोटे या बडे आकारका शरीर प्रमाण होजाता है, मुक्त अवस्थामें पूर्व शरीरके प्रमाण उससे कुछ कम आकार रखता है, यह निश्चय रत्नत्रय स्वरूप है। तथा यह छहों द्रव्योंको देखने जाननेवाला है। जिनसे लोकालोक भरा है। गाथामें तिहुवनग्गं शब्द है उससे तीन लोकके अंत तकका बोध होता है। परन्तु वास्तवमें यहां सर्व लोकालोकसे प्रयोजन है। इसका आकार ज्ञानमई है, यह चारित्र गुणसे परिपूर्ण भरा परम शांतिमय है। इसका स्वभाव शुद्ध कभी मिटता नहीं। यही अस्तित्व गुणका काम है। यह अमूर्तीक होनेपर भी ज्ञानाकार मूर्ति है। वह जीव स्वभावसे द्रव्य कर्म, भाव कर्म तथा नोकर्मसे शुद्ध है, शुद्ध ज्ञान चेतनाका विलासी है।

वस्तुत्व गुण।

वस्तुत्वं वसति भुवने, वस्तुत्वं ज्ञान दंसन अनन्तो।
नन्तानन्त चतुष्टं, वस्तुत्वं तिलोय निम्मलो सुद्धो ॥ ८०९ ॥

अन्वयार्थ—(वस्तुत्वं वसति भुवने) इस जीवका वस्तुपना यह है कि यह लोकमें वसता है–कोई वस्तु है (वस्तुत्वं ज्ञान दंसन अनन्तो) इसका वस्तुपना यह है कि इसके भीतर अनन्त ज्ञान तथा अनन्त दर्शन वसते हैं (नन्तानन्त चतुष्टं) तथा अनन्त चतुष्टय रहते हैं (वस्तुत्वं तिलोय निम्मलो सुद्धो) इसका वस्तुपना यह हैं कि तीन लोकमें निर्मल शुद्ध पदार्थ है।

भावार्थ—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो अर्थात् जो कुछ कार्य कर सके उसको वस्तुत्व गुण कहते हैं।

यह जीव वस्तुत्व गुणको रखता है क्योंकि यह निश्चयसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यको रखता हुआ परम वीतराग स्वभावके अनुभवसे प्राप्त परमानन्दका विलास करता रहता है। यदि व्यवहार नयसे देखे तो यह जीव संसारावस्थामें रागी द्वेषी मोही होकर आप ही पाप बांधकर दुःख उठाता है, आप ही पुण्य बांधकर सुख उठाता है, आप ही कर्मोंका नाश करके मुक्त होजाता है। आप ही सुखी दुखी होता है। कभी अहितकारी कभी हितकारी होता है। जीवमें वस्तुत्वके रहनेसे ही वह संसार अवस्थामें अशुद्ध कार्यको मुक्तावस्थामें शुद्ध आनन्दमें मगनरूप कार्यको करता है।

अप्रमेयत्व (प्रमेयत्व) गुण।

अप्रमेयं अप्रमानं, अप्पा परमप्प दिट्ठि अप्रमेयं।
सुद्ध सरूवं रूवं, ज्ञानं विमल केवलं सुद्धं ॥ ८१० ॥

अन्वयार्थ—(अप्रमेयं अप्रमानं) यह जीव न प्रमेय है न प्रमाण है (अप्पा परमप्प दिट्ठि अप्रमेयं) आत्मा परमात्माके द्वारा देखने योग्य है, अन्य प्रकारसे जानने योग्य नहीं है (सुद्ध सरूवं रूवं) इसका शुद्ध स्वभाव इसका रूप है (ज्ञानं विमल केवलं सुद्धं) इसमें निर्मल वीतराग केवलज्ञान भरा हुआ है।

भावार्थ—यहां एक अपेक्षा प्रमेयत्व गुण व एक अपेक्षा अप्रमेयत्व गुणको कहा है। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं। यह गुण भी जीवमें है। यह जीव निश्चयसे आप आपको जानता है। अथवा सिद्ध परमात्मा या अरहंत परमात्मा द्वारा जानने योग्य है, क्योंकि केवलज्ञानी प्रत्यक्ष मूर्तीक अमूर्तीक सर्व द्रव्योंको जानते हैं। तथापि इसमें अप्रमेयपना भी है। क्योंकि इसको तर्कके द्वारा या परोक्ष ज्ञानके द्वारा स्पष्ट

नहीं जान सक्ते हैं। यह निश्चयसे किसी प्रमाणके विकल्पोंसे जानने योग्य नहीं है। इसलिये अप्रमाण है। जो कोई प्रमाण व नयकी कल्पनाओंको उलँघ जाता है ऐसा स्वानुभवी या तो स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा जानते हैं या फिर पूर्ण स्पष्ट श्रुतके विकल्पोंसे रहित केवलज्ञानी जानते हैं। इसका स्वभाव शुद्ध निर्मल केवलज्ञानमय है यह केवलज्ञान द्वारा प्रमेय है जब कि मति श्रुत अवधि मनःपर्यय चार ज्ञानके द्वारा अप्रमेय है।

अगुरुलघुत्व गुण।

गुरु तियलोय पमानो, लघु वित करित अप्प सुद्ध सद्भावो।
गुरुत्वं लघु स उत्तं, ज्ञानमयो सुद्ध दंसनं अमलो ॥ ८११ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु तियलोय पमानो) तीन लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी आत्मा है ऐसा गुरु है (लघु वित करित अप्प सुद्ध सद्भावो) लघु या हलका ऐसा है कि अपने शुद्ध स्वभावको लिये हुए है, परम सूक्ष्म है, (गुरुत्वं लघु स उत्तं) यही गुरुपना या लघुपना कहा गया है, (ज्ञानमयो सुद्ध दंसनं अमलो) वह ज्ञानमई शुद्ध निर्मल सम्यग्दर्शनका धारी है।

भावार्थ—अगुरु लघुत्व गुण उसको कहते हैं जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य अपनी मर्यादा या स्वभावको स्थिर रक्खे। कभी अन्य द्रव्यरूप न हो न उसके गुण उसमेंसे छूटें, न कोई गुण उसमें नया आकर मिले। यही भाव ऊपरकी गाथामें बताया है कि आत्मा असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशके बराबर है, इससे कभी कम या अधिक नहीं होता है तथा इसका स्वभाव निरंजन निर्विकार ज्ञाता दृष्टा है उसको कभी त्यागता नहीं है। सदा ही अपने स्वभावमें बना रहता है। यह कभी जीवसे अजीव नहीं होता है। अनादिकालसे कर्मोंके सम्बन्धमें है तथापि इस शक्तिके निमित्तसे जैसाका तैसा ही रहा, कभी अजीव नहीं हुआ, न कोई अपना गुण छोड़ा न परका गुण ग्रहण किया।

चेतनत्व गुण ।

चेयन सुद्ध सहावं, चेयन संसार विगत रूवेन ।
कम्ममल पयडि षयंतो, चेयन रूवेन निम्मलो सुद्धो ॥ ८१२ ॥

(चेयन सुद्ध सहावं) चेतनपना जीवका शुद्ध स्वभाव है। (चेयन संसार विगत रूवेन) यह चेतन प्रभु संसार सम्बन्धी रूपोंसे या अचेतन पर्यायोंसे रहित है (कम्ममल पयडि षयंतो) सारी कर्मोंकी प्रकृतियोंको क्षय किये हुए है (चेयन रूवेन निम्मलो सुद्धो) यह चेतनरूप होकर निरंजन निर्विकार है।

भावार्थ—आलापपद्धतिमें कहा है कि 'चैतन्यं अनुभूतिः स्यात्' कि चेतनपना अपने आपकी अनुभूति है अर्थात् अपनेसे आपको लवलीन होकर जानना या स्वाद लेना है। यह निश्चयसे जीवका अपना स्वभाव है। यह चेतनपनेको रखता हुआ संसार सम्बन्धी अशुद्ध भावोंका अनुभव नहीं करता है। क्योंकि इसमें अशुद्ध भावोंके कारण सर्व कर्म प्रकृतियोंके सम्बन्धका अभाव है। यह निरंजन निर्विकार रहकर आपसे आपका ही स्वाद लिया करता है। यही चेतनपना जीवद्रव्यका गुण है।

अमूर्तत्व या अरूपत्व (रूपत्व) गुण ।

रूवं अविगत रूवं, अविगत रूवेन निम्मलो सुद्धो ।
अप्पा परमप्पमओ, ज्ञानमई रूव निम्मलो सुद्धो ॥ ८१३ ॥

अन्वयार्थ—(रूवं अविगत रूवं) इसका स्वभाव अमूर्तीक होनेपर भी अरूपी नहीं है। अर्थात् अपने ज्ञानमई आकारका धारी है, (अविगत रूवेन निम्मलो सुद्धो) तथा ज्ञान रूपी निर्मल शुद्ध है, (अप्पा परमप्पमओ) यह आत्मा परमात्मा रूप है, (ज्ञानमई रूव निम्मलो सुद्धो) यह ज्ञानमई रूपका धारी, रागादि मल व कर्मादि मल रहित परम शुद्ध है।

भावार्थ—स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णमई मूर्ति या रूप जिसमें न हो उसको अरूपत्व या अमूर्तत्व कहते हैं। इस गुणका धारी होकर भी जीव द्रव्य आकार रहित सर्वथा शून्य नहीं है। यह ज्ञानमई शुद्ध आकारका धारी है, अनन्त गुणोंका धारी है, परमात्माके समान ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुणोंका धनी है। इसमें कोई पुद्गलका सम्बन्ध नहीं है। न पुद्गलमई कोई आकार है न विकार है।

दो मुख्य गुण कथन।

ऊर्ध ऊर्ध सहावं, सुद्धं सर्वज्ञ चेयना सहियं।

अर्ध अविगत रूवं, सुद्धं सुयमेव परम आनंदं ॥ ८१४ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ध ऊर्ध सहावं) यह जीव द्रव्य सब द्रव्योंमें श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ स्वभावका धारी है, (सुद्धं सर्वज्ञ चेयना सहियं) यह निश्चयसे शुद्ध है, सर्वज्ञ है व चेतनामई अनुभूति सहित है (ऊर्ध अविगत रूवं) अमूर्तीक होकर भी ज्ञानाकार श्रेष्ठ पदार्थ है (सुद्धं सुयमेव परम आनंदं) यह रागादि रहित शुद्ध है तथा स्वयं ही स्वाधीनतासे परम आनन्दका धारी है।

भावार्थ—ऊपरकी गाथाओंमें छः गुणोंको बताकर यहां दो मुख्य गुणोंको बताया है अर्थात् चेतनत्व व अरूपत्वका संकेत किया है। यह जीव द्रव्य सर्व द्रव्योंमें इसलिये श्रेष्ठ है कि और द्रव्य तो जानने योग्य हैं परन्तु वे न आप अपनेको जानते हैं न परको जानते हैं। जीव द्रव्य अपनेको भी जानता है, परको भी जानता है यह स्वपर ज्ञायक है। इसका स्वभाव सर्व द्रव्योंसे महान है। यह कर्ममल रहित होनेपर सर्वको एक समयपर जानता है इसलिये सर्वज्ञ है तथापि अपनी स्वानुभूतिमें तन्मय है इससे ज्ञान चेतनामई अमूर्तीक होकर भी ज्ञानाकार है तथा पराधीनता रहित अपनेसे ही अपने सुखका भोग करता हुआ परमानन्दमई बना रहता है।



एक गुण कथन।

एकेन एकवंतो, एको संसार सरनि विगतोय।

एको तिय लोय स उत्तो, परमानंद नंद संजुत्तं ॥ ८१५ ॥

अन्वयार्थ—(एकेन एकवंतो) संग्रह नयसे देखें तो जीव द्रव्य एकरूप ही जीवत्व गुणका धारी है (एको संसार सरनि विगतोय) यह अकेला है निराला है, संसारके भ्रमणसे रहित है (एको तिय लोय स उत्तो)

वह एक ही तीन लोक प्रमाण आकार धारी कहा गया है (परमानंद नंद संजुत्तं) यही परमानन्दमें मगनता सहित है।

भावार्थ—यहां एक जीवत्व नामके पारणामिक गुणको बताया गया है। यह एक जीवत्वको रखता हुआ सदा ही एकरूप शुद्ध निर्विकार कर्म रहित, संसार भ्रमण रहित, असंख्यात प्रदेशी, परमानन्दमें मग्न सदा बना रहता है। शुद्ध निश्चयनयसे कभी इस एक जीवत्व स्वभावसे अन्यथा नहीं होता।

भावार्थ—यहां एक जीवत्व नामके पारणामिक गुणको बताया गया है। यह एक जीवत्वको रखता हुआ सदा ही एक रूप शुद्ध निर्विकार कर्मरहित, संसार भ्रमण रहित, असंख्यात प्रदेशी परमानन्दमें मग्न सदा बना रहता है। शुद्ध निश्चयनयसे कभी इस एक जीवत्व स्वभावसे अन्यथा नहीं होता।

जीवं दव्व स उत्तं, संसारे विषय राग परिचत्तो।
दंसन ज्ञान सहावो, चरनंपि जीव दव्व चेयना जुत्तो ॥ ८१६ ॥

अन्वयार्थ—(जीवं दव्व स उत्तं) वही जीव द्रव्य कहा गया है (संसारे विपय राग परिचत्तो) जो इस संसार सम्बन्धी इन्द्रियोंके विषयोंके रागसे रहित है (दंसन ज्ञान सहावो) जो दर्शन ज्ञान स्वभावधारी है या जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान स्वभावमई है (चरनंपि जीव दव्व चेयना जुत्तो) तथा सम्यक्चारित्र रूप भी है, परम वीतराग है और यह जीवद्रव्य ज्ञानचेतना सहित है।

भावार्थ—जीव द्रव्यका असली स्वरूप सर्व तृष्णा रहित परम वीतराग है, वह रत्नत्रयमई है, अपने स्वरूपमें लीन है। तथा अपने ज्ञानानन्दका नित्य अनुभव करनेवाला है। यह सिद्धके समान शुद्ध है। जब इस जीव द्रव्यको स्वभावसे देखा जायगा तो शुद्ध ही झलकेगा। छः द्रव्योंके भिन्न २ स्वभावोंको देखते हुए जीव द्रव्य परमात्मारूप ही विदित होगा। पर्यायापेक्षा संसारमें जीव द्रव्य कर्मोंकी संगतिसे नाना रूपमें दिखता है। तथापि एक तत्वज्ञानीको द्रव्यकी दृष्टिसे वही जीव नाना शरीरोंमें रहते हुए भी एक शुद्ध जीवरूप या परमात्मारूप ही दिखता है।

तात्पर्य यह है कि भव्यजीवको उचित है कि शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षाको सदा सामने

रखकर अपने आत्माको शुद्ध स्वरूप श्रद्धा सहित व ज्ञान सहित अनुभव करनेका अभ्यास करना चाहिये। यही स्वानुभव ही जीवनका सार है। यही पवित्र कार्य है। यही मोक्षका मार्ग है।

पुद्गल अजीव द्रव्य।

अज्जीवं पिच्छंतो, अनृत अचेत इंदिया सहिओ।
मन सुभाव संचरतो, अतिंद्री प्रानदव्व संजुत्तो ॥ ८१७ ॥

अन्वयार्थ—(अज्जीवं पिच्छंतो) अजीव पुद्गलको देखा जावे तो (अनृत अचेत इंदिया सहिओ) इस जीवके साथ ही जो कुछ मिथ्या तत्व कर्मादि हैं व अज्ञानरूप शरीरादि हैं व इंद्रियादि हैं ये सब जड पुद्गल हैं। (मन सुभाव संचरतो) यह भ्रमण करनेवाले चंचल मनके स्वभावको भी पुद्गल जानना चाहिये (अतिंद्री प्रानदव्व संजुत्तो) इनके साथमें अतीन्द्रिय प्राणोंका धारी जीव द्रव्य है।

भावार्थ—पुद्गल द्रव्यसे परमाणु लेना चाहिये जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये विशेष गुण रहते हैं। इन परमाणुओंसे अनेक स्कंध बनते हैं। उनही स्कंधोंमेंसे आहारक वर्गणाओंसे यह स्थूल औदारिक शरीर बना है या वैक्रियिक या आहारक शरीर बनता है। तैजस वर्गणाओंसे तैजस शरीर बनता है। कार्माण वर्गणाओंसे कार्माण शरीर बनता है। भाषा वर्गणाओंसे भाषा बनती है। मनोवर्गणासे मन बनता है। जिसके निमित्तसे तर्क वितर्क संकल्प विकल्प चंचलपना होता है। ये सब शरीर भाषा मन पुद्गल द्रव्य हैं। इनसे भिन्न उनके साथ रहा हुआ इंद्रियोंके द्वारा न जानने योग्य एक शुद्ध जीव द्रव्य है। प्रयोजन यह है कि शुद्ध जीव द्रव्यको अलग छांटकर शेष जो कुछ रागादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म व शरीरादि नोकर्म जीवमें हैं वे सब पौद्गलिक हैं। इनको अपनेसे भिन्न अनुभव करना चाहिये। यही पुद्गल द्रव्यकी सच्ची पहचान है।

समयसार कलशमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः। तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नोदृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५-२॥

भावार्थ—वर्णादि तथा रागादिक ये सब इस जीव द्रव्यसे भिन्न हैं। इसलिये तत्वदृष्टिसे यदि अन्तरंगमें देखा जावेगा तो एक श्रेष्ठ पदार्थ जीव द्रव्य ही दिखलाई पड़ेगा।

धर्म द्रव्य।

धम्मं चेयन रूवं, अचेयन भाव सयल विवरीदो।
चेयन सहाव सुद्धो, धम्म झाने हि अप्प परमप्पो ॥ ८१८ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मं चेयन रूवं) धर्म चेतन स्वरूप आत्माका स्वभाव है (अचेयन भाव सयल विवरीदो) यह सर्व ही अचेतन भावोंसे विपरीत है (चेयन सहाव सुद्धो) यह चैतन्य स्वभावी शुद्ध है (धम्म झाने हि अप्प परमप्पो) धर्मध्यानके द्वारा अनुभव किया जावे तो यही आत्मा परमात्मारूप अनुभवमें आता है।

भावार्थ—यहां ग्रन्थकर्ताने धर्म द्रव्यको कहते हुए उसका स्वरूप आत्मापर घटाकर कहा है। यह ग्रन्थकर्ताके आध्यात्मिक ज्ञानकी एक तरंग है। सिद्धांतमें धर्म द्रव्य उसे कहते हैं जो एक अमूर्तीक लोकव्यापी धर्मास्तिकायरूप द्रव्य है जिसमें चेतनपना नहीं है, जिसका काम जीव पुद्गलोंको स्वयं गमन करते हुए गमनमें सहकारीपना है। जैसे—मछलीको स्वयं गमन करते हुए जल सहकारी है। यहां अध्यात्मदृष्टिसे कहा है कि धर्म इस जीवका स्वरूप है। अर्थात् धर्ममयी आत्मा ही है जिसमें न तो कर्म है, न रागादि है, न संकल्प विकल्प है, न कोई अज्ञान है, न कोई शरीरादि है। यह ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय परम शुद्ध है। जो कोई धर्मध्यान करते हैं उनको यह अपना जीव द्रव्य परमात्माके समान अनुभवमें आता है।

अधर्म द्रव्य।

अहमं असुद्ध भावो, संसारे सरनि सयल संजुत्तो।
स्थिति बन्ध संजुत्तो, ठिदि करनोय अस्थिरी भूतो ॥ ८१९ ॥

अन्वयार्थ—(अहमं असुद्ध भावो) अधर्म जीवका अशुद्ध भाव है (संसारे सरनि सयल संजुत्तो) जिसके कारण संसारमें सर्व प्रकारका भ्रमण होता है (स्थितिबन्ध संजुत्तो) इसीसे कर्मोंका स्थितिबन्ध पडता है (ठिदि करनोय अस्थिरी भूतो) यह कर्मबन्ध अपनी स्थितिभर रहता हुआ पतनशील अस्थिर है।

भावार्थ—अधर्म द्रव्यका सैद्धांतिक स्वरूप यह है कि एक अमूर्तीक लोकव्यापी अचेतन द्रव्य है। जीव पुद्गलोंकी स्थिति करनेमें यह सहकारी है। यहां आत्मापर घटाकरके कहा है कि धर्म जब जीवका शुद्ध भाव है तब अधर्म जीवका अशुद्ध भाव है। संसारके भ्रमणके कारणभूत कर्मोंका बन्ध होजाता है। कषाय भावोंसे कर्मोंमें स्थिति पडती है। जहांतक मर्यादा पडती है वह कर्म बिलकुल नहीं झडता है, किन्तु वहांतक झड़ता रहता है, तथा स्थिति पूरे ही सर्व झड जायगा। यह अधर्म हेय है।

अहं म सुद्ध सहाओ, चित्तं चिंतंति अप्प सद्भावं।
ज्ञान ज्ञान थिर सुद्धो, स्थिर मुक्ति नन्त काल संजुत्तो ॥ ८२० ॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं (म) शिवरूप (सुद्ध सहाओ) शुद्ध स्वभावका धारी हूं। (चित्तं चिंतंति अप्प सद्भावं) मेरा चित्त आत्माके यथार्थ स्वरूपका मनन करता है (ज्ञान ज्ञान थिर सुद्धो) यह मेरा आत्मा अपने आत्मज्ञानके ध्यानमें स्थिर है वीतराग है (थिर मुक्ति नन्त काल संजुत्तो) इसीमें अनन्तकाल स्थिर रहनेवाली मुक्ति भी है।

भावार्थ—यहां अहं म शब्दके अर्थ लेकर कहा है कि अधर्मद्रव्य मैं ही शिवरूप हूं। मैं ही अपने आपका ज्ञान रखना हुआ अपने ध्यानमें मगन हूं। मुक्ति मेरा स्वभाव है। वह कभी नाश नहीं होसक्ती। अनन्तकाल मेरेमें रहनेवाली है।

काल द्रव्य।

काल दव्व स सहावं, अन्तर गर्भओ परिनमै असंख्यं।
परिनाम अनन्तानन्तु, निश्चै व्यवहार काल स सहावं ॥ ८२१ ॥

अन्वयार्थ—(काल दव्व स सहावं) काल द्रव्य अपने स्वभावमें रहता है (अन्तर गर्भओ परिनमै असंख्यं) अपनेमें लीन असंख्यात कालाणु परिणमन किया करते हैं (परिनाम अनन्तानन्तु) काल द्रव्यके पर्याय समय है सो भूत भविष्य वर्तमान कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त है (निश्चै व्यवहार काल स सहावं) यह निश्चय तथा व्यवहार कालका अपना स्वभाव है।

भावार्थ—कालाणु रूप काल द्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें भिन्न २ रत्नके ढेरके समान व्यापक है। येही असंख्यात काल द्रव्य है। ये सदा परिणमन किया करते हैं। इनके परिणामोंको या पर्यायोंको समय कहते हैं। इन्हीं समयोंसे पल, विपल, दिन, रात, घडी, घण्टा आदि बने हैं। जब एक कालाणु परसे एक परमाणु दूसरे निकट कालाणु पर उल्लंघता है तब समय पर्याय पैदा होती है। यही व्यवहार काल है। यदि इस गाथाका अर्थ आत्मामें घटाकर करे तो ऐसा कर सक्ते हैं कि अपना आत्मीक स्वभाव असंख्यात प्रदेशोंमें सदा परिणमन किया करता है। यह परिणमन होना ही आत्माका स्व काल है या निश्चय काल है। अनन्त कालकी जो अनन्त परिणतियें होती हैं उनको व्यवहार काल कहते हैं। दोनों ही आत्माके स्वभाव हैं।

आकाश द्रव्य।

अवयास दान सुद्धो, सुद्धं अवयास दिस्टि नन्त दर्सतो।
ज्ञानं अनंत रूवं, चरनं सुद्ध चेयना अवयासो ॥ ८२२ ॥

अन्वयार्थ—(अवयास दान सुद्धो) आकाश द्रव्य सिद्धांतकी अपेक्षा सर्व द्रव्योंको जगह देनेवाला शुद्ध एक अमूर्तीक अनन्त पदार्थ है। इसीको आत्मापर घटाके कहे तो यह आत्माका शुद्ध द्रव्य आकाश गुण धारी सर्वव्यापक है (सुद्धं अवयास दिस्टि नन्त दर्सतो) इसके शुद्ध दर्शन प्रकाशके भीतर अनन्त पदार्थ दिखलाई पडते हैं (ज्ञानं अनन्त रूवं) इसका ज्ञान अनन्त है जिसमें अनन्त पदार्थ जाने जाते हैं (चरनं सुद्ध चेयना अवयासो) इसके वीतराग चारित्रमें शुद्ध चेतना विराजती है अर्थात् शुद्ध आत्माका अनुभव होता है।

भावार्थ—सिद्धांतकी अपेक्षा सब द्रव्योंको अवकाश देनेवाला आकाश द्रव्य अमूर्तीक अनन्त है। जैसे आकाश अनन्त व सर्वव्यापी है वैसे यह जीव द्रव्य भी सर्वव्यापक है। इसके अनंत दर्शन व अनन्त ज्ञानमें तीन लोक व अलोकके सर्व द्रव्य अपनी त्रिकालवर्ती अनन्त गुण व अनन्त पर्यायोंके साथमें एक ही साथ झलकते हैं। इसमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान चेतना बिराजमान है। अर्थात् यह शुद्धात्मा निरन्तर अपने ज्ञानानन्द स्वभावका आनन्द लिया करता है।

दव्व भाव उवएसं, दव्व सहावेन सरूव पिच्छंतो।
अप्पा अप्प सरूवं, दव्व सहावेन जीव संसुद्धो ॥ ८२३ ॥

अन्वयार्थ—(दव्व भाव उवएसं) छः द्रव्योंका स्वरूप उपदेश किया गया (दव्व सहावेन) जो द्रव्यके स्वभावकी तरफ लक्ष्य देकर (सरूव पिच्छन्तो) अपने स्वभावको देखता है उसको (अप्पा अप्प सरूवं) अपना आत्मा आत्मारूप ही दिखलाई पडता है (दव्व सहावेन जीव संसुद्धो) द्रव्यके स्वभावकी दृष्टिसे यह जीव अत्यन्त शुद्ध है।

भावार्थ—छः द्रव्योंका स्वभाव जानकर मुमुक्षु जीवको योग्य है कि समस्त परद्रव्योंसे उपयोगको हटाकर एक अपने जीवको द्रव्यार्थिक नयसे देखनेका अभ्यास करे तो यह अपना ही आत्मा परम शुद्ध सिद्धसम दिखलाई पडेगा। ऐसा ही अनुभव करना मोक्षका मार्ग है।

जीवास्तिकाय।

काया काय प्रमानो, जीवास्तिकाय जिनवरे उवएसो।
चौविहि बंध विमुक्को, जीओ तियलोय मंत सुपएसो ॥ ८२४ ॥
नंत चतुस्टय सहिओ, नंतानंत दिस्टि सुद्ध दर्संतो।
परभाव मुक्क समओ, ज्ञान संजुत्तोय काय उवएसो ॥ ८२५ ॥

अन्वयार्थ—(काया काय प्रमानो) पांच द्रव्योंको अस्तिकाय इसलिये कहते हैं कि वे काय या शरीरके समान बहु प्रदेशी हैं। उनमेंसे (जिनवरे जीवास्तिकाय उवएसो) जिनेन्द्र भगवानने जीवास्तिकायका उपदेश किया है कि यह (जीओ चौविहि बंध विमुक्को) जीव चार प्रकारके बंधसे रहित है (तियलोय मंत सुपएसो) तथा तीन लोकके प्रदेशोंके बराबर इसके असंख्यात शुद्ध प्रदेश हैं (नंत चतुस्टय सहिओ) यह अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य सहित है (नंतानंत दिस्टि सुद्ध दर्संतो) यह अपनी शुद्ध अनन्त दृष्टिसे अनन्तानन्त पदार्थोंको देखनेवाला है (परभाव मुक्क समओ) यह रागादि

परभावोंसे रहित समय है। अर्थात् अपने स्वभावमें परिणमनेवाला व स्वपरको जाननेवाला है (ज्ञान संजुत्तोय काय उवएसो) यह ज्ञान संयुक्त भी है, इसतरह जीवास्तिकाय कहा गया है।

भावार्थ—जितने आकाशके सूक्ष्म अंशको एक पुद्गलका वह परमाणु जिसका भाग न हो, रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं। यह एक प्रकारकी माप है। इस मापसे जब छः द्रव्योंको मापा जाता है तब पांच द्रव्योंके तो बहुत प्रदेश आते हैं। जब कि कालका एक ही प्रदेश आता है। इसलिये काल अस्तिकाय नहीं है, पांच अस्तिकाय हैं। इनमेंसे जीवास्तिकाय एक एक स्वभावसे लोकके बराबर असंख्यात प्रदेशी है। शुद्ध निश्चयसे इसमें प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग ये चार प्रकारके कर्मबंध नहीं हैं। यह अनन्तज्ञानादि चतुष्टयका धारी है। सर्व रागादि भावोंसे व कर्मजनित सर्व ही अशुद्ध अवस्थाओंसे रहित है, सिद्धसम शुद्ध है।

पुद्गल अजीवास्तिकाय।

अजीव काय भनियं, इन्द्रो बल प्राण अतींद्रिया जुत्तो।
सहकारे इन्द्रि उत्तो, अतिंद्री सहाव अजीव काय संजुत्तो॥ ८२६॥

अन्वयार्थ—(अजीव काय भनियं) अब अजीव अस्तिकायको कहते हैं (इंद्री बल प्राण अतीन्द्रियां जुत्तो) पाच इंद्रिय प्राण तथा मन वचन काय बल प्राण अतीन्द्रिय जीव सहित अजीव हैं (सहकारे इंद्री उत्तो) पांच इन्द्रियें जीवके मतिज्ञानमें सहकारी हैं (अतिन्द्री सहाव अजीव काय संजुत्तो) अतीन्द्रिय स्वभावधारी जीव अजीव कायके साथमें हैं।

भावार्थ—यहां जीवके साथ पुद्गलास्तिकायके सम्बन्धको लेकर कहा गया है। जीव स्वभावसे शुद्ध है इन्द्रियातीत है। इसके साथ जो कार्माण तैजस औदारिकादि शरीरोंका सम्बन्ध है वह सब पुद्गलास्तिकाय है। शरीरमें जो पांच इन्द्रियां हैं व मन, वचन, काय बल हैं, ये प्राण भी पौद्गलिक हैं। द्रव्यापेक्षा तो पौद्गलिक हैं ही, परन्तु भावापेक्षा भाव इन्द्रिय व भाव मन, वचन काय, प्राण

भी पुद्गल कृत हैं। क्योंकि कर्मोंके क्षयोपशमसे काम करते हैं व शरीर नाम कर्मके व अंगोपांग व स्वर नाम कर्मके उदयसे रचित हैं। इसलिये इन सबको पुद्गलास्तिकाय जानकर एक शुद्ध जीवका ही अनुभव करना योग्य है।



धर्मास्तिकाय।

धमास्ति धम्म संजुत्तो, चेयन परिनाम सरूव सहकारो।
चेयन सुद्ध सहाओ, संजुत्तो धम्मास्तिकायममलोय ॥ ८२७ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मास्ति धम्म संजुत्तो) धर्मास्तिकाय रूप जीव अपने धर्म या स्वभाव सहित है (चेयन परिनाम सरूव सहकारो) यह जीव चेतनमय स्वभाव परिणति सहित है (चेयन सुद्ध सहाओ संजुत्तो) चेतन रागादि रहित शुद्ध स्वभाव सहित है (धर्मास्तिकायं अमलोय) ऐसा यह जीव ही निर्मल धर्मास्तिकाय है।

भावार्थ—यहांपर भी धर्मास्तिकायको जीव पर घटाकर कहा है। यह जीव ही अपने धर्मको रखनेसे धर्मास्तिकाय है। इसका स्वभाव शुद्ध ज्ञान चेतनामय है। यह अपने ज्ञानानन्दमें मगन परम शुद्ध निर्विकार है।

अर्हं मास्तिकाय।

अहं म काय संजुत्तो, ठिदिकरन सयल असुह सुह सुद्धं।
सुद्धं काये बंधं, ज्ञान ज्ञान तव दंसनं दिट्ठं ॥ ८२८ ॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं (म) शिवरूप या आनन्दरूप (काय संजुत्तो) काय सहित हूं (ठिदिकरन सयल असुह सुह सुद्धं) मैं सर्व ही अशुभ तथा शुभ भावोंको ठहराकर शुद्ध भावोंमें परिणमन कर रहा हूं। (सुद्धं काये बंधं) शुद्ध असंख्यात प्रदेशी अमूर्तीक ज्ञानाकार कायमें बद्ध हूं (ज्ञान ज्ञान तव दंसनं दिट्ठं) मेरेमें ज्ञान, आत्मध्यान, आत्मीक तप व शुद्ध सम्यग्दर्शन दिखलाई पडते हैं।

भावार्थ—यहां अधम्म शब्दको अहं म मानकर आत्मापर घटाकर आत्माका ही मनन किया है। यह आत्मा सदा आनन्द रूप है। इसके असंख्यात प्रदेशोंमें आनन्द गुण भरा है, वीतरागभाव भरा है, न शुभ राग है न अशुभ राग है। यह जीव अखण्ड है, इसके प्रदेशोंका कभी खण्डन नहीं होसकता है। यह शुद्ध ज्ञानमय है, आत्म ध्यानरूप है, आत्मीक तप रूप है व शुद्ध सम्यक्-दर्शन रूप है। यही परमात्मा है।

आकाशास्ति काय।

अवयासं उवएसं, अप्पा परमय अवयास संसुद्धं।
विलसैं परमानंदं, ज्ञान सरूवं च अवयास संसुद्धं॥ ८२९॥

अन्वयार्थ—(अवयासं उवएसं) अब आकाशका उपदेश करते हैं, (अप्पा परमय अवयास संसुद्धं) आत्मा ही परमात्मा है जिसके सब प्रदेश परम शुद्ध हैं (विलसै परमानंदं) यह परमानन्दका स्वाद लेरहा है। (ज्ञान सरूवं च अवयास संसुद्धं) यह ज्ञान स्वरूपी है व परम शुद्धताका स्थान है।

भावार्थ—यहां आकाशको जीवपर घटाकर कहा है। यह जीव ही आकाशतुल्य ज्ञानापेक्षा सर्वव्यापक है। इसके लोकाकाशके सर्व प्रदेश कर्म व नोकर्मके संयोग रहित परम शुद्ध हैं। यह परमात्माके समान परमानंदका विलास करनेवाला है तथा परम वीतराग है, ऐसा ध्याना ही कार्यकारी है।

काल अकाय।

कालं काय न जुत्तं, अनंत परिनमै बन्ध नहु जुत्तं।
परिनमै अनंतानंतं, कालं काया नत्थि उवएसं॥ ८३०॥

अन्वयार्थ—(कालं काय न जुत्तं) कालद्रव्यके बहुप्रदेशीपना नहीं है (अनंत परिनमै बंध नहु जुत्तं) कालाणु अनन्त समयोंमें परिणमन करते हैं परन्तु परस्पर बंधको प्राप्त नहीं होते हैं (परिनमै अनंतानंतं) तीन काल सम्बन्धी अनन्तानन्त समयोंमें परिणमते हैं (कालं काया नत्थि उवएसं) इसलिये कालद्रव्यके काय नहीं है ऐसा उपदेश है।

भावार्थ—कालाणु लोकाकाशमें भिन्न २ रत्नराशिके समान एक प्रदेशमें एक एक व्यापक हैं। यही निश्चय कालद्रव्य है। यह समय समय परिणमनशील हैं तथापि कोई कालाणु दूसरे कालाणुसे मिलकर बंधते नहीं हैं, जब कि पुद्गलके परमाणु अपने रूखे चिकने गुणोंके कारण बन्धकर स्कन्ध बन जाते हैं। ऐसी शक्ति कालाणुमें नहीं है। उनके परिणमनसे समय नामकी पर्याय होती है जिसको व्यवहार काल कहते हैं। तीन कालकी अपेक्षा यह समय अनन्तानन्त हैं। अनन्त समय बीत गया है व अनन्त ही भविष्यमें है। कालाणुके एक ही प्रदेश होता है, इसलिये काय नहीं है। दूसरा अर्थ इस गाथाका जीव द्रव्यपर घटा कर कहें तो ऐसा अर्थ कर सक्ते हैं कि जीव द्रव्य शरीरके साथ संसारमें अनन्त कालसे एक साथ रह कर नाना पर्यायोंमें चार गतियोंके भीतर परिणमन कर रहा है, अनन्तानन्त पर्याय धारण की है, तथापि कभी भी कार्माण, तेजस आदि किसी भी शरीरके साथ एकमेक नहीं हुआ है, न हो सकता है। इसलिये जीव द्रव्यके कभी कायका स्वाभाविक बन्ध नहीं होसक्ता। इस लिये जीव सदा काल काय रहित है।

तत्तु पदार्थ उत्तं दव्वं काय भाव उत्तं च।
अप्प सरूवं पिच्छदि, अप्पा परमप्प सुद्ध सुह निलयं ॥ ८३१ ॥

अन्वयार्थ—(तत्तु पदार्थ उत्तं) सात तत्व नौ पदार्थोंको कहा गया, (दव्वं काय भाव उत्तं च) छः द्रव्य पांच आस्तिकायोंका भाव कहा गया, (अप्प सरूवं पिच्छदि) इनके द्वारा भेदविज्ञानसे तत्वज्ञानी आत्माके स्वरूपको अनुभवमें लेता है। वह अनुभव करता है कि (अप्पा परमप्प सुद्ध सुह निलयं) यह आत्मा परमात्मारूप शुद्ध सुखका निधान है।

भावार्थ—इन सप्त तत्वादिका श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्त है। इनके द्वारा निश्चय नयसे यह विचारना चाहिये कि मेरा जीव भिन्न है, और सर्व अजीव भिन्न हैं। जीव अजीवके ही ये सब तत्व पदार्थादि विशेष भेद हैं। इनमेंसे अजीव त्यागने योग्य है क्योंकि मेरा स्वरूप नहीं है, केवल एक जीव ग्रहण करने योग्य है। जीवका असल स्वभाव सिद्ध परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा वीतराग अनन्त सुखका भंडार है। इसतरह आत्मा व अनात्माका विवेक करके जो आत्मापर दृढ

प्रतीति लाकर आत्माके रसका स्वाद पाता है वही निश्चय सम्यग्दर्शनसे विभूषित होजाता है। वह फिर अतीन्द्रिय सुखका प्रेमी होजाता है, विषयसुखसे विरक्त होजाता है।



चार आर्त ध्यान।

इस्टं अरूव रूवं, कम्म विमुक्क निम्मलं भावं।
इस्टविओयं दिस्टदि, आरति पाए सुदुग्गए जाए ॥ ८३२ ॥

अन्वयार्थ—(इस्टं अरूव रूवं) आत्माका इस्ट अपना अमूर्तीक स्वभाव है, (कम्म विमुक्क निम्मलं भावं) जो सर्व कर्मोंसे मुक्त शुद्ध भाव है, (इस्ट विओयं दिस्टदि) जिसके इस परम हितकारी शुद्ध भावका वियोग है वह (आरति पाए सुदुग्गए जाए) इस्ट वियोग आर्त ध्यानको पाकर परिणामोंके अनुसार शुभ गति या अशुभ गतिमें जाता है।

भावार्थ—यहां प्रथम आर्त ध्यानका स्वरूप बहुत ही बढिया बताया है। सिद्धांतमें प्रसिद्ध तो यही अर्थ है कि अपने स्त्री, पुत्र, बन्धु या धन सम्पदा आदि इष्ट सामग्रीका वियोग होनेपर, उसकी प्राप्तिके लिये चिन्तातुर होना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। यहां आत्म तत्वपर घटाकर कहते हैं कि इस जीवका सच्चा प्यारा अपना एक वीतराग निर्मल शुद्धोपयोग है। जो किसी प्रकार कर्मोंके उदयसे मलीन नहीं है। जिनको इस शुद्धोपयोगका वियोग है वे रात दिन शुद्धात्म तत्वके अश्रद्धानी व अजानकार रहते हुए शरीर व शरीराश्रित विषयोंमें व उनकी प्राप्तिकी वासनामें लीन रहते हुए जीवन विताते हैं। इस इष्ट वियोगज आर्त ध्यानसे कभी पुण्य बांध कर देव, मनुष्य शुभ गतियोंमें जाते हैं, कभी पाप बांधकर नरक व तिर्यंच अशुभ गतियोंमें जाते हैं। अपने इष्ट मोक्ष गतिको प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

अनिस्ट मिथ्या भावं, संसारे सरनि सरनि सद्भावं।
रागादि दोष जुत्तं, आरति पाएन सरनि संसारे ॥ ८३३ ॥

अन्वयार्थ—(अनिस्ट मिथ्या भावं) इस जीवका अहितकारी मिथ्यात्व भाव है (संसारे सरनि सरनि

सद्भावं) जिससे संसारके मार्गमें भ्रमण ही रहा करता है (रागादि दोष जुतं) जिसके प्रभावसे रागादि दोषोंसे मलीन रहता हुआ यह जीव (आरति पाएन संसारे सरनि) अनिष्ट संयोगज आर्तध्यानसे संसारमें भ्रमण किया करता है।

भावार्थ—सिद्धांतमें अप्रिय स्त्री पुत्र बन्धु आदिके संयोग होनेपर या असुहावने मकान, वस्त्र, देश, नगरके संयोग होनेपर उनके साथ किस तरह वियोग हो ऐसी चिन्ता करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान दूसरा है। यहां और भी गम्भीर अर्थमें जाकर तारणस्वामी कहते हैं कि जीवका अनिष्ट करनेवाला एक मिथ्यात्व भाव है। जिसके कारण यह अपने शुद्ध आत्माके स्वभावपर श्रद्धान नहीं कर पाता है। अपने परम इष्ट आत्मीक सुन्दर घरको न पहचान कर यह अपने भीतर परमानन्द होते हुए भी सुखकी तृष्णामें आकुलव्याकुल होकर इंद्रियोंके विषयोंमें बार बार जाता है। उनके लाभमें राग व उनके वियोगमें द्वेष करता है। विषयोंके सहकारी स्त्री बन्धु आदिसे राग व उनके विरोधियोंसे शत्रुता करता है। इसतरह राग, द्वेष, मोहमें पडा हुआ घोर कर्म बांध कर संसारमें भ्रमण कर रहा है। मिथ्यात्व सहित तप करके भी अनिष्टके संयोगसे नौ ग्रैवयक जाकर भी संसारसे कभी दूर होनेका मार्ग नहीं पाता है। मिथ्यात्वकी संगति ही जीवकी अनिष्ट संगति है। इसकी संगतिमें उलझे रहना ही अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है।

पीडा अमृत दिट्ठं, असत्य असास्वतेन सद्भावं।
मिथ्या सल्य संजुत्तं, आरति पाएन दुग्गए गमनं ॥ ६३४ ॥

अन्वयार्थ—(पीडा अमृत दिट्ठं) मिथ्यादृष्टिपना ही पीडा या कष्ट है, (असत्य असास्वतेन सद्भावं) जहां भाव मिथ्या व क्षणभंगुर भोग्य व उपभोग्य पदार्थोंमें फँसा रहता है, (मिथ्या सल्य संजुत्तं) जो भाव मिथ्यात्वकी शल्य सहित है वह (आरति पाएन दुग्गए गमनं) पीडा, चिंतवन तीसरा आर्त ध्यानका पाया है। इसीसे मोक्षगतिमें न जाकर चतुर्गतिमें भ्रमण करता है। चारों ही दुर्गति हैं नाशवंत हैं।

भावार्थ—सिद्धांतमें शरीरादिमें रोगादि होनेपर उसकी पीडाका बार बार चिंतवन करके दुःखित भाव करना पीडा चिंतवन आर्त ध्यान कहा है। यहां गम्भीरतासे विचारते हुए तारणस्वामी कहते हैं कि जीवको भव भवमें कष्ट देनेवाला मिथ्यात्व रूपी रोग है। जिस रोगकी पीडासे

यह विषयातुर होकर विषय भोगोंके भीतर लोलुपी रहता है। उनके मिलनेपर रागी न मिलनेपर वियोगी हो जाता है। विषय वासना व कषायकी वासनाको उपादेय समझना ही मिथ्या शल्य है। जबतक आत्मानन्दकी प्रतीति रूप सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं होता है, तबतक जप तप व्रतादि पालते हुए भी अशुद्ध संसारकी वासना नहीं मिटती है। इस शल्यसे उसी तरह पीडित रहता है, जैसे कोई कांटा लगजानेपर पीडित होता है। इस मिथ्यात्वकी शल्य रख कर संसारमें दुःखित रहना यही तीसरा पीडा चिन्तवन आर्तध्याम दुर्गतिका कारण है।

निदान बंध संसारे, संसारे सरनि सरइ मोहंधं।
मन मक्कड पसरंतो, आरति संजोय निगोय वासंमि ॥ ८३५ ॥

अन्वयार्थ—(निदान बन्ध संसारे) संसारमें बन्धे रहना निदान है। (मोहंधं संसारे सरनि सरइ) संसारके मोहमें अन्धा प्राणी संसारके मार्गमें भ्रमण किया करता है। (मन मक्कड पसरंतो) उसके मन रूपी मर्कट या बन्दर संसारके विषय भोगोंमें ही बडी चंचलतासे भ्रमण किया करता है। (आरति संजोय निगोय वासंमि) इस संसारकी तृष्णा रूप निदान आर्त ध्यानके कारण यह जीव नीच तिर्यंच आयु बांधकर एकेंद्रिय साधारण वनस्पति रूप निगोदमें जाकर जन्म धारण करता है।

भावार्थ—संसारके विषय भोगोंकी तृष्णा रखना, भोगोंके लिये आतुर रहना निदान आर्तध्यान है। संसारके मोहमें या मिथ्यात्वमें अन्धा होकर प्राणी अपने निज तत्वको न पहचानता हुआ पर तत्वका मोही बना रहता है। उसका मन रूपी बन्दर पांचों इंद्रियोंके भोगोंमें बार बार भ्रमण किया करता है। मनकी चंचलताके कारण वह कभी मनको थिर करके निज आत्माकी तरफ लक्ष्य नहीं दे सकता है। उसका संसारका भ्रमण इसी मिथ्या मोहसे अनादिसे चलता आया है व चलता रहेगा। संसारासक्त अज्ञानी जीव तिर्यंच आयु बांधकर तीव्र ज्ञानावरण कर्मके उदयसे अति अल्प ज्ञानवाले निगोदके भवमें चला जाता है, जहां बार बार जन्म मरण करता रहता है। फिर निगोदसे निकलना कठिन होजाता है।

आरति ध्यान स उत्तं, आरतिं संसार वीय संजुत्तं।
आरति कुज्ञान सहावं, आरति संसार भावना हुन्ती ॥ ८३६ ॥

अन्वयार्थ—(आरति ध्यान स उत्तं) आर्तध्यान वही कहा गया है जो (संसार बीय संजुत्तं आरति) संसारके बीजरूप मिथ्यात्व सहित आर्तभाव हो या दुःखित भाव हो (आरति कुज्ञान सहावं) आर्तध्यान मिथ्याज्ञानके स्वभावको धरनेवाला है (आरति संसार भावना हुंती) संसारकी भावना ही आर्तध्यान है।

भावार्थ—इस गाथामें चारों आर्तध्यानका संक्षेप है कि संसारासक्तिके कारण ही आर्तध्यान होता है। मोक्षकी भावना न पाकर उससे विपरीत संसारके सुखोंकी भावना रखना ही आर्तध्यान है। यही विषयवासना ही मिथ्यात्व है। यही संसारके भ्रमणका बीज है। यही मिथ्याज्ञान है। सम्यग्ज्ञानी आत्मारूपी निर्मल बागमें क्रीडा करना ही अपना कर्तव्य समझता है। इस यथार्थ ज्ञानको न पाकर मिथ्याज्ञानी विषयवासनाके भयानक वनमें रमता हुआ आत्मानन्दको न पाकर दुःखित रहता हुआ आर्तध्यान किया करता है जिससे संसारमें भ्रमता है।

आरति शुद्ध प्रयोजन।

आरति अप्प सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं भावं।
आरति ज्ञान अवयासं, ज्ञान सहावेन निव्वुए जंती ॥ ८३७ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं आरति) आत्माके स्वभावमें भले प्रकार सब तरफसे तन्मय होजाना (अप्पा परमप्प निम्मलं भावं) आत्माको परमात्मारूप निर्मल भावोंसे अनुभवना (ज्ञान अवयासं आरति) आत्मज्ञानके भीतर भलेप्रकार लीन होना आरति ध्यान है (ज्ञान सहावेन) इस ज्ञानस्वभावी आत्मध्यानके द्वारा (निव्वुए जंती) भव्य जीव निर्वाण प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—रतिका अर्थ रमण करनेका है। आ का अर्थ है चारों ओरसे। अर्थात् सर्व तरफसे रमना सो आरति है।

आत्माका स्वभाव शुद्ध निश्चय नयके द्वारा देखते हुए सिद्ध परमात्माके समान वीतराग निरंजन शुद्ध परमानन्दमई है, इसी स्वभावमें एकमेक होजाना, आसक्त होना, अपने ही ज्ञानके भीतर मगन होजाना, एक अद्वैत निर्विकल्प आत्मानुभवमें पहुंच जाना, यही आरति ध्यान है। यही ध्यान मोक्षको लेजानेवाला परम आदरणीय है।

चार रौद्रध्यान।

हिंसानन्द सुभावं, पर पुग्गल उत्पाद पुन्य सहकारं।
पुन्य पाव उववन्नं, मिथ्या कुज्ञान संजदो होई ॥ ८३८ ॥

('हिंसानन्द सुभावं) हिंसानन्द रौद्रध्यानका यह स्वभाव है कि (पर पुग्गल उत्पाद पुन्य सहकारं) आत्मासे भिन्न शरीरादि पुद्गलोंके उत्पन्न करनेवाले पुन्य कर्मकी मदद चाहना (पुन्य पाव उववन्नं) जिससे पापका बंध करता है। यह हिंसानन्दी (मिथ्या कुज्ञान संजदो होई) मिथ्यात्व व मिथ्याज्ञान सहित संयमी भी होजाता है।

भावार्थ—अपने इष्ट प्रयोजनमें बाधा देनेवालोंकी हिंसा करने कराने व हिंसा होनेपर आनन्द माननेके लिये जो ध्यान करना सो हिंसानन्दी रौद्रध्यान है। यहां गंभीरतासे बताया है। आत्माकी हिंसा सर्व प्रकारके कर्मोंसे होती है। कर्मके बंधनमें पड़ा हुआ यह निज शुद्ध वीतराग अहिंसक भावको नहीं पासक्ता है। इसलिये यदि कोई संयमी या साधु होकर नानाप्रकारके तप करे, भीतर मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान हो तो वह आत्मासे भिन्न नानाप्रकार देवादिके शरीरको पानेवाले पुन्यकी प्राप्तिकी ही भावना करता है जिससे साता वेदनीयादि पुन्य तथा मिथ्यात्वादि पाप कर्म दोनोंको बांधकर संसारमें ही अपनेको गिराता है। जिस संसारमें आत्माकी हिंसा हो, उस संसारकी भावना ही हिंसानंदी रौद्रध्यान है।

अनृत दिस्टि सहावं, अनृत पिच्छंति ऋतं तिक्तं च।
अनृत नंद स रौद्रं, रौद्र झानेन नरय वासंमि ॥ ८३९ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत दिस्टि सहावं) जिसका स्वभाव मिथ्यादृष्टिपनेसे भरपूर है वह (अनृत पिच्छंति ऋतं तिक्तं च) मिथ्या संसारके पदार्थोंके उपभोगमें ही श्रद्धान रखता है। सत्य आत्मानन्दको त्याग देता है। (अनृत नंद स रौद्रं) मिथ्या संसारके सुखमें आनन्द मानना मृषानन्द रौद्रध्यान है। (रौद्र झानेन नरय वासंमि) इस रौद्र ध्यानसे प्राणी नरकमें चला जाता है।

भावार्थ—अपने प्रयोजन सिद्ध करनेको असत्य बोलना, असत्य बुलवाना व असत्य वचनोंकी

अनुमोदना करना, इन तीन प्रकारसे आनंदित होना मृषानंद रौद्रध्यान है। यहां गंभीरतासे बताया है कि जगमें मिथ्यात्व ही मृषा है। सम्यक्त ही सत्य है। जो मिथ्यादृष्टि आत्मानन्दका प्रेम नहीं पाते हुए विषयानन्दमें मगन रहते हैं वे मिथ्या संसारके क्षणिक सुखोंमें आनन्द मानते हुए मृषानन्द रौद्र ध्यानके कर्ता हैं। उनका पतन नरक धरामें होता है।

स्तेयानंद नंदितं, पद लोपन विकह भाव संजुत्तो।
मिथ्या असुह सुभावं, सल्यं विषयं च रौद्र ज्ञानत्थं ॥ ८४० ॥

अन्वयार्थ—(स्तेयानंद नंदितं) चौर्यानन्दमें आनंदित होना चौर्यानन्द रौद्र ध्यान है। (पद लोपन) अपने आत्मीक पदको लोप करनेवाले (विकह भाव संजुत्तो) स्त्री भोजनादि विकथा सम्बन्धी भावोंमें रमण करना, (मिथ्या असुह सुभावं) मिथ्यात्वसे भरा हुआ अशुद्ध स्वभाव रखना (विषयं सल्यं च) तथा विषय भोगोंकी चाह रूपी शल्य रखना, (रौद्र ज्ञानत्थं) चौर्यानन्द रौद्र ध्यानमें तिष्ठना है।

भावार्थ—दूसरेका माल हरनेमें, हरानेमें व चोरी हुई सुनकर आनन्द माननेमें रंजायमान होना स्तेयानन्द या चौर्यानन्द रौद्रध्यान है।

यहां गम्भीरतासे बताया है कि निज आत्माके शुद्ध पदमें रमण करना ही अचौर्यव्रत है, साधुपना है या साहूकारी है। जो अपने आत्माके पदकी तरफसे हट कर पर वस्तु या परभावको अपनाते हैं, वे ही चोर हैं व अपराधी हैं। वे स्त्री, भोजन, देश व राजा कथा सम्बन्धी भावोंमें रागी रहते हैं। संसारके प्रेम रूप अशुद्ध भावसे शुद्ध भावका लोप करते हैं। पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी चाह रूपी शल्यसे अपने आत्मानंदको लोप करते हैं। इसलिये वे चोर हैं और वे ही चौर्यानन्द रौद्रध्यानी महा अपराधी हैं।

पर भावोंको अपनाना ही चोरी है। यही बडा भारी अपराध है जिससे तीव्र कर्मोंका बंध होता है। समयसार कलशमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान्। बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥ ७–९ ॥

भावार्थ—जो परद्रव्यको अपना मानता है वही अपराधी है व बंधको प्राप्त होता है। जो मुनि अपने आत्मद्रव्यमें संतोषी हैं वे संवर रूप हैं, वह निरपराधी है, वही बन्ध रहित है।

अबम्भ भाव जुत्तो, मिथ्या कुज्ञान असुह परिनम्य ।
चिंतंति विषय रागं, मन सहकारेन रौद्र नरयंमि ॥ ८४१ ॥

अन्वयार्थ—(अबंभ भाव जुत्तो) अब्रह्म भावमें लीन प्राणी (मिथ्या कुज्ञान असुह परिनम्य) मिथ्यादर्शन मिथ्या ज्ञान मिथ्या चारित्रमें परिणमन करके (विषय रागं चिंतंति) पांच इन्द्रियोंके पदार्थोंमें राग-भावका ही चिंतवन करते हैं (मन सहकारेन रौद्र नरयंमि) यह मन सम्बन्धी विषयानंद रौद्रध्यान नरक-गतिका कारण है ।

भावार्थ—आत्मामें लीन भाव ब्रह्मभाव है, इस ब्रह्मभावको न पाकर संसारासक्त प्राणी मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र सम्बंधी अशुद्ध भावोंमें रहते हुए सदा ही मनसे पांच इंद्रियोंके भोगोंकी चिंता, धनादि संग्रहकी तीव्र लालसा करके परिग्रहानंद व विषयानन्द रौद्रध्यानमें फंसकर तीव्र कषायसे नरकायु बांध लेते हैं ।

रौद्रध्यान सुभावं, नरयं तिरियं कुदेव दुह सहनं ।
अज्ञान मूढ भावं, रौद्र ज्ञानंमि नरय वीयंमि ॥ ८४२ ॥

अन्वयार्थ—(रौद्रध्यान सुभावं) जिनका स्वभाव चार प्रकार रौद्रध्यानमेंसे एकका व अनेकका पड जाता है वे (नरयं तिरियं कुदेव दुह सहनं) पाप बांधकर नरक, तिर्यंच अथवा भवनत्रिक देवोंमें हीन देव होकर दुःखोंको सहते हैं । (अज्ञान मूढ भावं) यह अज्ञान व मूर्खताका भरा भाव है (रौद्र ज्ञानंमि नरय वीयंमि) वास्तवमें रौद्रध्यान नरकका बीज है ।

भावार्थ—रौद्रध्यानसे अति दुष्ट, हिंसक, परको पीडाकारी, विषयलम्पटी परिणाम होते हैं। परिणामोंकी तीव्रता मंदताके अनुसार कोई नरकायु, कोई तिर्यंच आयु, कोई हीन देवायु बांधकर नारकी या पशु या हीन जातिके भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवोंमें पैदा होकर शारीरिक व मानसिक कष्ट भोगते हैं। विषय वांछाके प्रेरे हुए ही हिंसानन्द आदि रौद्रध्यान करते हैं। वे प्राणी आत्मज्ञानसे विमुख अत्यन्त मूढ मिथ्याज्ञानी हैं। बहुधा रौद्रध्यानी नरक आयु बांधकर नरक जाते हैं। जिनको नरकोंके भयानक दुःखोंसे बचना हो उनको उचित है कि जिनधर्मको भलेप्रकार समझकर चारों ही प्रकारके रौद्रध्यानोंसे अपनेको बचावें ।

रौद्र शुद्ध प्रयोजन।

अप्पा अप्प सरूवं, कम्म निकन्दंति तिविह जोएन।
ज्ञान सहाव स रौद्रं, मिथ्यामय कम्म निदले साहू ॥ ८४३ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा अप्प सरूवं) आत्मा आत्माके स्वभावमें रत होकर (तिविह जोएन कम्म निकन्दंति) मन वचन कायकी गुप्ति सहित होकर कर्मोंको नाश करते हैं (ज्ञान सहाव स रौद्रं साहू) ज्ञान स्वभावमई अपने रौद्रभावसे साधु (मिथ्यामय कम्म निदले) मिथ्यामई संसारके भ्रमणके कारण कर्मोंका नाश करते हैं यही शुद्ध रौद्रध्यान है।

भावार्थ—हिंसक भावोंको रौद्रध्यान कहते हैं। कर्मोंकी हिंसा करनेवाला भाव भी रौद्रध्यान है। यह शुद्ध रौद्रध्यान एक शुद्ध आत्मज्ञानमें परिणमन रूप आत्मामें तल्लीन भाव है। शुद्धोपयोगके द्वारा जली हुई वीतरागतामई अग्निसे साधुजन कर्मोंको विध्वंश कर डालते हैं और अपने आत्माको शुद्ध कर लेते हैं।

चार धर्मध्यान।

आज्ञा अप्प सहावं, अप्पा परमप्प भाव संजुत्तं।
जिनवयनं सद्दहनं, ज्ञान सहावेन अज्ञ संजुत्तं ॥ ८४४ ॥

अन्वयार्थ—(आज्ञा अप्प सहावं) आज्ञाविचय धर्मध्यान आत्माके स्वभावका ध्यान है (अप्पा परमप्प भाव संजुत्तं) आत्माको परमात्माके स्वभावमें जोडना ध्यान है (जिनवयनं सद्दहनं) वहां जिनेन्द्रके वचनोंका श्रद्धान रखना है (ज्ञान सहावेन अज्ञ संजुत्तं) ज्ञान स्वभावसे रहना ही आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

भावार्थ—जिनेन्द्रकी आज्ञाके अनुसार जीवादि तत्वोंका श्रद्धान करके व शुद्ध निश्चय नयसे अपने आत्माको परमात्माके समान ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमई जानकरके अपने स्वभावमें तिष्ठकर आत्मानुभव करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

अप्पा परमप्पानं, चेयन रूवेन धम्म झानत्थं ।

मल मुक्क दंसन धरं, ज्ञान ज्ञानेन धम्म सहकारं ॥ ८४५ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मारूप जानकर व (चेयन रूवेन धम्म झानत्थं) चेतनरूपमें रहकर धर्मध्यानमें तिष्ठना (मल मुक्क दंसन धरं) दोष रहित सम्यग्दर्शनको धरना (ज्ञान ज्ञानेन धम्म सहकारं) आत्मज्ञानका ध्यान करना धर्म सहित होनेसे धर्मध्यान है ।

भावार्थ—दूसरा धर्मध्यान अपायविचय है । इसमें यह विचारना चाहिये कि हमारे मिथ्यात्वका नाश व दूसरोंके मिथ्यात्वका नाश कैसे हो । यह विकल्परूप ध्यान है । इसीका निश्चल ध्यान यह है कि पचीस दोषोंको टालकर निश्चल शुद्ध सम्यग्दर्शनको रखते हुए अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें तन्मय होकर ध्यान करना अपायविचय धर्मध्यान है ।

विसुद्ध सुद्ध भावं, मिथ्या रागादि सयल विरयंमि ।

रयनत्तय ज्ञान सहावं, कम्मानि डहै धम्म झानत्थं ॥ ८४६ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या रागादि सयल विरयंमि) मिथ्या राग द्वेषादि सर्व विभावोंसे विरक्त होकर (विसुद्ध सुद्ध भावं) अति निर्मल वीतराग स्वभावमई (रयनत्तय ज्ञान सहावं) रत्नत्रय स्वरूप आत्मज्ञानके स्वभावमें रहकर (धम्म झानत्थं) धर्मध्यान करता हुआ (कम्मानि डहै) कर्मोंको जला देता है ।

भावार्थ—तीसरा विपाकविचय धर्मध्यान है। इसका व्यवहार स्वरूप यह है कि कर्मोंके फलको विचार कर दुःख सुखकी अवस्थामें समताभाव रखना । निश्चय स्वभाव यह है कि राग द्वेषादिको त्यागकर निश्चय रत्नत्रयमई आत्माके अति विशुद्ध स्वभावमें रमण करना–आत्मध्यानकी अग्निको जलाना, जिससे बहुतसे कर्म अविपाक अवस्थामें नाश होजावें । समताभावसे कर्मोंका फल भोग लेनेसे सविपाक निर्जरा होती है, नवीन बंध नहीं होता है। परंतु आत्मानुभव करनेसे कोटि भवोंके बन्धे कर्म झड जाते हैं ।

संस्थानं पंच सुभावं, चिंतइ वरज्ञान दंसनं सुद्धं ।

ज्ञान उवन्नं पिच्छदि, पदविंदं केवलं ज्ञानं ॥ ८४७ ॥

अन्वयार्थ—(संस्थानं पंच सुभावं) संस्थानविचय धर्मध्यान पाच परमेष्ठीके स्वभावोंको तथा (वरज्ञान सुद्ध दंसनं चिंतइ) शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शनका चिंतवन करता है। (ज्ञान उवसं पिच्छदि) आत्मज्ञानकी वृद्धिको अनुभव करता है (पदविंदं केवलं ज्ञानं) आत्माके स्वभावको अनुभव करते हुए केवलज्ञान प्राप्त होजाता है।

भावार्थ—संस्थानविचय धर्मध्यानका स्वरूप यह है कि तीन लोकका आकार चिंतवन किया जावे या आत्माका स्वरूप ध्यानमें लिया जावे। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पांच पापोंके द्योतक ॐ आदि मंत्रोंके द्वारा शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव धारी आत्माका अनुभव करना संस्थानविचय धर्मध्यान है। इसके द्वारा अवधिज्ञानादि प्राप्त होते २ केवलज्ञान भी झलक जाता है।

धम्मज्झानं झायदि, अविगत रूवेन दंसनं सुद्धं।
अप्पा परमानन्दं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ८४८ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मं ज्झानं अविगत रूवेन दंसनं सुद्धं झायदि) धर्मध्यान अमूर्तीक तथापि ज्ञानाकार शुद्ध सम्यग्दर्शनमई आत्माको ध्याता है (अप्पा परमानन्दं) जब आत्मा परमानन्दमें मग्न होजाता है तब (परमप्पा लहै निव्वानं) परमात्मा होकर निर्वाणको पालेता है।

भावार्थ—धर्मध्यान आत्माकी उन्नति करके श्रेणीके निकट पहुँचा देता है। आठवें गुणस्थानके नीचे तक धर्मध्यान है। इसी ध्यानके बलसे साधु अधःकरण लब्धिको सातिशय प्रमत्त गुणस्थानमें प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त पीछे अपूर्वकरण लब्धिको पाता हुआ आठवां गुणस्थानवाला होकर शुक्लध्यानको ध्याता है।

चार शुक्लध्यान या शून्य ध्यान।

गय संकप्प वियप्पं, अप्पा परमप्प अमल ज्ञानस्य।
विगतं अविगत रूवं, सुन्य सहावेन अप्प परमप्पं ॥ ८४९ ॥

अन्वयार्थ—(गय संकप्प वियप्पं) जहां संकल्प विकल्प नहीं रहे हैं (अप्पा परमप्प अमल ज्ञानस्य) आत्मा परमात्माके निर्मल ज्ञानमें लीन है (विगतं अविगत रूवं) जहां अमूर्तीक ज्ञानाकार आत्माका अनुभव

है (सुन्य सहावेन अप्प परमप्पं) शून्य अर्थात् रागादि विकल्पोंसे शून्य होकर आत्माका परमात्मारूप ध्यान ही प्रथम शुक्लध्यान है।

भावार्थ—प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार है। जहां अबुद्धिपूर्वक पूर्व अभ्यासके बलसे श्रुतके आलम्बन द्वारा योगसे योगांतर, शब्दसे शब्दांतर, ध्येय अर्थसे अर्थांतर पलटन हो तथा बुद्धिपूर्वक शुद्धोपयोगमें विना किसी विकल्पके लीनता हो सो पहला शुक्लध्यान है। मन, वचन, काय योगोंका पलटना, श्रुतके किसी एक शब्दसे दूसरे शब्दपर पलट जाना व आत्मा ध्येयसे किसी ज्ञान गुणपर चले जाना या किसी पर्यायपर चले जाना ऐसी पलटन होती है। यह ध्यान है तो परम विशुद्ध, संज्वलनका अति मंद उदय है। आत्मा अपने शुद्ध स्वभावमें एकतान होकर आत्मानन्दका भोग कर रहा है। यह ध्यान बारहवें गुणस्थानके प्रारम्भ तक रहता है। यही मोहका सर्वथा क्षय कर डालता है।

एकं जिनं सरूवं, मल मुक्कं अनंतदंसनं सुद्धं ।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, ज्ञान सहावेन निव्वुए जंती ॥ ७५० ॥

अन्वयार्थ—(एकं जिनं सरूवं) जहां एक जिनेन्द्रके स्वभावमें लीनता है (मल मुक्कं अनंतदंसनं सुद्धं) दोष रहित परम वीतराग अनन्त क्षायिक सम्यग्दर्शनमें एकतानता है (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञान ज्ञान स्वरूपमें थम्भ गया है। ऐसा एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान है (ज्ञान सहावेन निव्वुए जंती) इस ज्ञान स्वभावमें ठहरनेसे निर्वाण होजाता है।

भावार्थ—दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्क अवीचार है। जहां किसी एक योग द्वारा व किसी एक शब्द द्वारा व किसी एक ध्येय द्वारा पलटन रहित स्वरूपमें एकाग्रता है। आत्मा परम क्षायिक निश्चय आत्मप्रतीति रूप भावमें जमा हुआ आपसे आपमें आप रूप होजाता है। इस निर्मल ध्यानका लाभ क्षीणमोह गुणस्थानमें होता है। इसके प्रतापसे ध्यानी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके जीवन्मुक्त अरहन्त परमात्मा होजाता है।

सूक्षम भाव स उत्तं, सूक्षमं प्रतिपात सूक्षमं चरनं ।
सूक्षम धम्मज्झानं, ज्ञान सहावेन ज्ञान संजुत्तं ॥ ७५१ ॥

अन्वयार्थ—(सूक्षम भाव स उत्तं) सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान उसे कहा गया है जहां (सुक्ष्मं प्रतिपात) सूक्ष्म काय योग रह जाता है (सुक्षमं चरनं) जहां अति सूक्ष्म कायका हलन चलन है। (सुक्षम धम्मज्झानं) यहां अति सूक्ष्म स्वाभाविक ध्यान है (ज्ञान सहावेन ज्ञान संजुत्तं) यहां ज्ञान स्वभावमें ठहरना यही ध्यान है।

भावार्थ—तीसरा शुक्लध्यान सयोगकेवली जिन तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें होता है, जब काय योगका परिस्पंदन या हलन चलन रह जाता है। केवली भगवानका विहार आदि नहीं होता है। वे स्वरूपमें मग्न रहते हैं, कुछ ध्यान यहां करना नहीं पडता है। स्वाभाविक आत्म-तल्लीनता तो केवलज्ञानीके सदा रहती ही है।

पिरियो अप्प संजुत्तं, विप्रिय मुक्कस्य सुद्ध स सहावं।
ज्ञान ज्ञान संजुत्तं, अविगत रूवेन सिद्धि संपत्तं ॥ ८५२ ॥

अन्वयार्थ—(पिरियो अप्प संजुत्तं) जहां अत्यन्त प्रिय निज आत्मा है (विप्रिय मुक्कस्य सुद्ध स सहावं) सर्व अप्रिय जो आत्मासे परभाव हैं उनसे मुक्ति है, शुद्ध आत्मीक स्वभावमें लीनता है (ज्ञान ज्ञान संजुत्तं) निज ज्ञान व निजके ध्यान सहित है (अविगत रूवेन) निज ज्ञानाकार रूपसे (सिद्धि संपत्तं) जिसके द्वारा सिद्ध गति प्राप्त होती है, ऐसा चौथा शुक्लध्यान है।

भावार्थ—चौथा शुक्लध्यान व्युपरतक्रियानिवर्ति है। यह अयोग केवली जिनके चौदहवें गुणस्थानमें होता है जहां सर्व क्रियाओंसे निवृत्ति होजाती है, न श्वास चलता है न शरीरका कुछ भी सकम्प होता है। आत्मा आप आपमें लीन निश्चल रहता है। केवलज्ञान व केवल ध्यानका यह एक साध है। इस ध्यानके अन्तर्मुहूर्त रहनेसे चार अघातीय कर्म, आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय क्षय हो जाते हैं और आत्मा सर्व पुद्गलके सम्बन्धसे छूटकर शुद्ध केवल आत्मारूप होकर जैसा था वैसा ही विना संकोच विस्तारके ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकाग्र जाकर विराजमान होजाता है। इसीको सिद्ध परमात्मा कहते हैं, पुरुषाकार ज्ञानमई अमूर्तीक रूप रह जाता है।

ज्ञानं चौविहि उत्तं, विन्यानं जानंति सुद्ध स सहावं।
विन्यान ज्ञान सुद्धं, कम्म विमुक्कं लहै निव्वानं ॥ ८५३ ॥

अन्वयार्थ—(चौविहि झानं उत्तं) चार प्रकारके ध्यानका स्वरूप कहा गया (विज्ञानं जानंति सुद्ध स सहावं) भेदविज्ञान शुद्ध आत्माके स्वभावको पहचानता है (विज्ञान ज्ञान सुद्धं) भेदविज्ञानके द्वारा ज्ञान शुद्ध अनुभवमें आता है। (कम्म विमुक्कं लहै निव्वानं) इसी शुद्ध ज्ञानके अनुभवसे सर्व कर्मोंसे छूट कर निर्वाणको यह भव्य जीव प्राप्त करता है।

भावार्थ—आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल चार प्रकारका ध्यान कहा गया। इनमें आर्त, रौद्र छोडने योग्य हैं। तथा धर्म, शुक्ल ध्याने योग्य हैं। परसे मैं भिन्न हूं, मेरा स्वभाव परमात्मा रूप है ऐसा विवेक या भेदविज्ञान होनेसे आत्माका यथार्थ स्वभाव ज्ञानमें झलकता है। तब इसी आत्माके ध्यान करनेसे धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान प्राप्त होते हैं। शुक्लध्यानसे भव्य जीव सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

ध्यानका विशेष कथन।

आरति दितिव सुभावं, आरति संसार कारनं निश्चै।
आरति कुज्ञान सुभावं, दंसन मोहंध आरति असुद्धं ॥ ८५४ ॥

अन्वयार्थ—(आरति दितिव सुभावं) आर्तध्यानका स्वभाव दुःखित भाव है, (आरति संसार कारनं निश्चै) यह आर्तध्यान निश्चयसे संसारका कारण है, (आरति कुज्ञान सुभावं) आर्तध्यानमें मिथ्या ज्ञान भरा है। (दंसन मोहंध आरति असुद्धं) मिथ्यात्वके उदयसे अन्ध प्राणी अशुद्ध दुःखित परिणाम करके आर्तध्यान किया करता है।

भावार्थ—'ऋतं दुःखं तत्र भवं आर्तं' (सर्वार्थसिद्धि) अर्थात् जो दुःख या पीडा या शोक या चिंताके कारणसे पैदा हो वह आर्तध्यान है। इससे घोर असाता वेदनीयका बन्ध होजाता है। तथा जो मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी है वही पर पदार्थको अपनाता है, वही इष्टके वियोगमें शोक मानेगा, वही अनिष्टके सम्बन्धमें दुःख करेगा, वही शरीरकी पीडासे चिंतित होगा, वही आगामी भोगोंके लिये आकुलित होगा। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पर पदार्थसे निर्मोही है। शरीरसे भी निस्पृही है। भोगोंसे उदास है। वह किसी प्रकारके शुभ या अशुभ संयोगमें कर्मके उदयको विचार करके समभाव रखेगा।

वह अतीन्द्रिय आनन्दका प्रेमी है, वह विषयोंको विषवत् जानता है वह कभी निदान नहीं, करेगा। यद्यपि आर्तध्यान तत्त्वार्थसूत्रमें छठे प्रमत्त विरत तक बताया है तथापि उसकी मुख्यता मिथ्यादृष्टीके ही है। सम्यग्दृष्टीके चारित्र मोहके उदयसे कभी कोई तरंगसी आसक्ती है, इसलिये कहा है।

तंबोलं तवजुत्तं, आरति सभाव सयल परिनामो ।
कुसुमं कुज्ञान जुत्तं, ज्ञान सहावेन कदापि उववन्नं ॥ ८५५ ॥
लेपं लिपत सुभावं, लिप्तं कम्मान राग विषयं च ।
भूषन पुन्य सहावं, सल्यं संजुत्त आरति भनियं ॥ ८५६ ॥

अन्वयार्थ—(तंबोलं तव जुत्तं) तप करते हुए आर्तध्यान होना, पान खानेके समान मिश्रित स्वादको पाना है, (आरति संभाव सयलं परिनामो) उस तपमें आर्तध्यानको लिये हुए सर्व परिणाम होते हैं। (कुसमं कुज्ञान जुत्तं) उसमें मिथ्या ज्ञानको पुण्यकी गन्ध आती है, (ज्ञान सहावेन कदापि उववन्नं) ज्ञान स्वभावमें चलनेवालेके भी कदाचित ऐसा आर्तध्यान होसक्ता है, (लेपं लिपत सुभावं) आर्तध्यानको लेप भी कह सक्ते हैं। क्योंकि इसका लिपना स्वभाव है, (राग विषयं च कम्मान लिप्तं) राग विषयमें अन्ध होनेके कारण इससे कर्मोंका बन्ध होता है, (भूषन पुन्य सहावं) पुण्यकी बांछा रूप निदान एक आभूषण है, (सल्य संजुत्तं आरति भनियं) वहां पुण्यकी वांछाकी शल्य सहित आर्तध्यान कहा गया है।

भावार्थ—यहां आर्तध्यानके लिये चार दृष्टांत दिये हैं। पान खानेका, पुष्पकी गन्धका, लेपका तथा आभूषणका। जिनका भाव जो समझमें आया सो लिखा जाता है। विशेष ज्ञानी विचार लेवें। तांबूलमें पानपत्ता, कत्था, चूना, सुपारी, इलायची आदिका मिला हुआ स्वाद आता है वैसे ही जो किसी शोकके कारण व घरमें कलहके कारण व दारिद्रके दुःखके कारण या आगामी भोगोंकी वांछाके कारण तपस्वी होकर तप करते हैं वे धर्मका चिंतवन करते हुए भी आर्तध्यानके परिणामोंसे मिले हुए रहते हैं। यद्यपि वे शास्त्रज्ञानी हैं व तत्वके ज्ञाता हैं, तथापि उनके भीतर यदि किसी प्रकारकी चिन्ता घर कर रही हो तो वह पुण्यकी गन्धके समान उनके भावोंमें आया करती है। इस आर्तध्यानकी गन्धसे व आर्तध्यानके मिले हुए भावसे कर्मोंका लेप होता है। अशुभ

कर्मोंका बन्ध होता है, पुण्यके हाथ पापका भी बन्ध होता है। क्योंकि भीतर विषयोंका राग है या दुःखित परिणाम संबंधी दोष है। जो यह वांछा करें कि हमें तपके द्वारा पुन्य बंध हो जिससे हम मोक्षके कारण वज्रवृषभनाराच संहननादि प्राप्त करें और शीघ्र मोक्ष जावें। यह एक प्रशंनीय या शोभनीय निदान है। तथापि उस तपस्वीके लिये आभूषण पहननेके समान एक परिग्रह है। इसलिये उचित नहीं है। सम्यग्दृष्टी तत्वज्ञानी पुन्यकी भी वांछा नहीं करते हैं। वे केवल आत्मानन्दके रसमें मग्न हो धर्मध्यान करते हैं। उनको मोक्षकी भी वांछा नहीं होती है क्योंकि वे मोक्षको भी अपने पास समझते हैं। वे निर्विकल्प होकर शुद्ध भावसे ध्यान करके आर्तध्यानकी गंधसे भी अलिप्त रहते हैं।

रौद्रं रौद्र स दिट्ठं, रौद्रं परिनाम कठिन संजुत्तं।
असत्त्य अनृत भावं, उदमाद परमाद रौद्र झानत्थं ॥ ८५७ ॥

अन्वयार्थ—(रौद्रं रौद्र स दिट्ठं) रौद्रध्यान वह है जहां दुष्ट परिणाम देखे जावें (रौद्रं परिनाम कठिन संजुत्तं) कठोर परिणामोंको रौद्रध्यान कहते हैं (असत्त्य अनृत भावं) जहां मिथ्या श्रद्धान व मिथ्याज्ञान सहित भाव हों (उदमाद परमाद रौद्र झानत्थं) रौद्रध्यानीके मनमें घबड़ाहट तथा असावधानता रहती है।

भावार्थ—" रुद्रः क्रूराशयः यस्तस्य कर्म तत्र भवं वा रौद्रम् " (सर्वार्थसिद्धि) जो ध्यान दुष्ट आशय या दुष्ट आशयसे किये हुए कार्यके द्वारा हो वह रौद्रध्यान है। इसमें कठोर परिणाम होते हैं। रौद्रध्यानी मिथ्या संसारमें लिप्त होता हुआ अपने सांसारिक प्रयोजनके वश हो हिंसा करनेमें, असत्य बोलनेमें, चोरी करनेमें, परिग्रह बढानेमें आनन्द मानता है। परको पीडा देकर भी धनादिका संचय करना चाहता है। रौद्रध्यानीके मनमें सदा आकुलता रहती है कि जल्दी ही अपना स्वार्थ साधन करलूं। उसके कर्तव्य अकर्तव्य, न्याय अन्यायके विचारकी सावधानी नहीं होती है। यह रौद्रध्यान अधिकतर मिथ्यादृष्टीके होता है। सिद्धांतमें पांचवें गुणस्थानतक इसलिये कहा है कि वहांतक परिग्रहका सम्बन्ध है। चारित्र मोहके तीव्र उदयसे कभी कभी कुछ कालके लिये ऐसा दुष्ट ध्यान होजाना सम्भव है।

बन्धं असुद्ध बन्धं, असुहं भावं च असुह परिनामं ।
बन्धंति विविह भावं, बन्धं कम्मान तिविह संजुत्तं ॥ ८५८ ॥

अन्वयार्थ—(बन्धं असुद्ध बन्धं) यह रौद्रध्यानी अशुद्ध भावोंके बन्धनमें पडा रहता है (असुहं भावं च असुह परिनामं) इसके अशुभ भाव व अशुभ ही वचन तथा कायका परिणमन होता है (विविह भावं बन्धंति) यह रौद्रध्यानी नानाप्रकारके दुष्ट कषायके भावोंको किया करता है (तिविह संजुत्तं कम्मान बन्धं) मन, वचन, कायकी दुष्टताके कारण कर्मोंको बांधता है ।

भावार्थ—हिंसा आदि पापोंमें फंसा हुआ रौद्रध्यानी दूसरोंको दुःख देनेमें कुछ भी ग्लानि नहीं करता है । उसका आशय अपना कषाय पोषण है, दूसरेके दुःखोंकी परवाह उसको नहीं होती है । उसकी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति कुटिल हिंसात्मक होती है । संसारासक्त रौद्रध्यानी घोर अशुभ भावोंसे कृष्ण लेश्याके होते हुए सातवें नर्क तककी आयु बांध लेता है ।

जलनंति सुद्धभावं, अहिओ सुह कम्म सयल भावं च ।
षट्काई जीवानं, विराहनं विदारनं भनियं ॥ ८५९ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धभावं जलनंति) रौद्रध्यानीके शुद्ध भावोंका नाश होजाता है (सयल भावं च सुह कम्म अहियो) मलीन भावोंके होते हुए उसके शुभ कर्म नष्ट होजाता है (षट्काई जीवानं विराहनं विदारनं भनियं) उसके छःकायके प्राणियोंका नाश व छेदन भेदन होता रहता है, ऐसा कहा गया है ।

भावार्थ—रौद्रध्यानीके धर्मध्यान होना असम्भव है । उसके दुष्ट आशयके होते हुए उससे दान पूजा जप तपादि शुभ कार्य शुभ परिणामोंसे नहीं होसक्ते हैं । यदि कदाचित् शुभ काम करना भी है तो मलीन आशयसे–किसीकी हानिके लिये व परिग्रह बढानेके लिये करता है । उसके व्यवहारमें दया नहीं होती है । वह निरर्थक प्रवृत्ति करता हुआ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस छः प्रकारके प्राणियोंका घात करता है, पशुओंपर भारी बोझा लादकर सताता है, मानवोंको ठगता है, पशुबलि कर देता है, स्वार्थवश मनुष्योंकी भी हत्या कर डालता है ।

मारन जीव अभावं, अजीव असुद्धस्य सहाव संजुत्तं।
रौद्रभाव स सहावं, रौद्रध्यानं च संजदो भनियं ॥ ८६० ॥

अन्वयार्थ—(मारन जीव अभावं) जहां प्राणियोंके वधका तो अभाव है परन्तु (अजीव असुद्धस्य भाव संजुत्तं) अशुद्ध शरीर व धन, व स्त्री आदिकी ममतामें फंसा हुआ भाव है (रौद्रभाव स सहावं) वहां भी रौद्रध्यान सहित आत्माका परिणाम होता है (रौद्र झानं च संजदो भनियं) ऐसा रौद्रध्यान संयमीके भी होना सम्भव है।

भावार्थ—कभी कभी व्रती श्रावकोंके भी रौद्रध्यान होजाता है। यद्यपि वे हिंसासे विरक्त हैं परन्तु उनका राग स्त्रीके, व धनके व कुटुम्ब परिवारके मोहमें चारित्र मोहके उदयसे ऐसा उलझ जाता है कि वे परिग्रहानन्द या विषयानन्द रौद्रध्यानमें लिप्त होकर पापका बन्ध करते हैं। कभी २ अन्यायके दमन करनेके लिये, न्यायके प्रचार करनेके लिये उनको हिंसानन्दी रौद्रध्यान कुछ अंशोंमें हो जाता है। वे अन्यायीके विध्वंशमें प्रयत्नशील होते हैं। जैसे श्री रामचन्द्रजीने अन्यायी रावणको शिक्षा देकर ही चैन ली, धर्मात्मा सीताजीकी रक्षा करी। युद्धादि करते हुए श्रावक गृहस्थको हिंसामई भावोंका होजाना संभव है। यहां संकल्पी हिंसा नहीं है, किन्तु आरम्भी हिंसा है। आशय शुभ है तथापि कषायकी प्रबलतासे व शांतभाव न होनेसे रौद्रध्यान ही कहा जायगा इसी लिये देशविरत पांचवें गुणस्थानतक रौद्रध्यान बताया है।

धरयंति धम्म झानं, चेयन रूवेन मनुव संवरनं।
सुद्ध सहावं उत्तं, चेयन चेयंति धम्म झानत्थं ॥ ८६१ ॥

अन्वयार्थ—(धम्म झानं धरयंति) जो धर्मध्यान धरते हैं वे (चेयन रूवेन मनुव संवरनं) चैतन्य स्वभावमें तिष्ठ कर मनको रोकते हैं (सुद्ध सहावं उत्तं) धर्मध्यानीका स्वभाव शुद्ध कहा गया है (धम्म झानत्थं चेयन चेयंति) धर्मध्यानी आतमाका ही अनुभव करते हैं।

भावार्थ—"धर्मादनपेतं धर्म्यम्, इष्टे स्थाने धत्ते इति धर्मः" (सर्वार्थसिद्धि) अर्थात् धर्म सहित ध्यानको धर्मध्यान कहते हैं। जो इष्ट जो मोक्ष उसमें धारण करे वह धर्म है। इसलिये जहां मनको

निरोध कर अपने आत्माके स्वभावका अनुभव करते हुए शुद्ध भावोंमें लीन होना सो धर्मध्यान है। यह निर्विकल्प धर्मध्यान है। सविकल्प धर्मध्यान शुद्ध भावोंके आशयसे जप, तप, पूजा, पाठ, स्वाध्याय, दान, श्रावक व मुनिव्रतका आचरण, दशलाक्षणी धर्म व बारह भावनाओंका चिंतवन, आपापरका विवेक, परोपकार आदि हैं।

पदस्तं पद विंदन्तो, अक्षर स्वर विंजनस्य स सरूवं।
पदं पदार्थं सुद्धं, अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं ॥ ८६२ ॥
सुध सरूव चिंतवनं, असुहं मिच्छात राग विरयंमि।
विषयं तिसल्य तिक्तं, पदविंद सुद्ध निम्मल स सरूवं ॥ ८६३ ॥

अन्वयार्थ—(पदस्तं पद विंदन्तो) पदस्थ ध्यान वह है जहां पदके द्वारा अर्हंतादि पदोंका अनुभव किया जावे (अक्षर स्वर विंजनस्य स सरूवं) अक्षर स्वर व्यंजनोंके द्वारा आत्माके स्वरूपका चिन्तवन किया जावे (सुद्धं पदार्थ पदं) शुद्ध आत्मा पदार्थ ही पद है उसको विचारा जावे (अप्पा परमप्प निम्मलं विमलं) आत्माको परमात्माके समान वीतराग व कर्म रहित अनुभव किया जावे (सुध सरूव चिन्तवनं) जहां शुद्ध आत्म-स्वरूपका चिंतवन किया जावे (असुहं मिच्छात राग विरयंमि) अशुद्ध मिथ्यात्वका राग छोड दिया जावे (विषयं तिसल्य तिक्तं) इन्द्रियोंके विषयोंकी चाह व माया मिथ्या निदान तीन ही शल्योंको छोडा जावे (सुद्ध निम्मल स सरूवं पदविंद) शुद्ध निर्मल आत्म-स्वरूप रूपी पदका अनुभव किया जावे।

भावार्थ—यहां धर्मध्यानमें पदस्थ आदि चार ध्यानका वर्णन है जिनका कुछ स्वरूप हम ६६९ गाथाके भावार्थमें दिखा चुके हैं। ॐ, ह्रँ, अर्हं, ह्रीं, श्रीं इत्यादि अनेक पदोंको नाशिकाके अग्र भागमें हृदय कमलमें भौंहोंके बीचमें, मस्तकपर, नाभिकमलमें स्थापित करके चमकता हुआ देखे, कभी भी पांच परमेष्ठीके गुणोंको व कभी २ अपने आत्माके शुद्ध गुणोंको विचारते हुए अपने स्वरूपमें लय होजावे, जब ध्यान हटे तब इन अक्षरोंपर चित्त जमादे या गुणोंका विचार करने लग जावे। इसका विशेष स्वरूप श्री ज्ञानार्णव ग्रन्थसे जानना योग्य है।

पिंडं ज्ञान सपिंडं, ज्ञान सहावेन पिंड सद्भावं।
तिक्कंति असुह पिंडं, अनृत असरन असत्य तिक्कंति ॥ ८६५ ॥
पिंड सरूवं सुद्धं, रूवं संजुत्त पिंड विरयंमि।
ज्ञानमयो पिंडस्थं, श्रुत सास्वतेन पिंड चितनं अमलं ॥ ८६६ ॥

अन्वयार्थ—(पिंडं ज्ञान सपिंडं) ज्ञानमई पिंड स्वरूप आत्मा इस शरीर सहित है, (ज्ञान सहावेन पिंड सद्भावं) यह आत्मा ज्ञान स्वभाव होकरके भी अनेक प्रदेशोंका एक अखण्ड पिंड अस्तिकाय है, (तिक्कंति असुह पिंड) इसके अशुद्ध रागादिका व कर्मादिका पिंड नहीं है, (अनृत असरन असत्य तिक्कंति) इसने मिथ्या स्वरूप व शरण रहित सर्व जगतकी क्षणिक पर्यायोंका ममत्व त्याग दिया है, (पिंड सरूवं सुद्धं) यह आत्मा सर्वांग शुद्ध है, (रूवं संजुत्त पिंड विरयंमि) रूपादि सहित पिंडसे भिन्न है, (ज्ञानमयो पिंडस्थं) ज्ञानमई आत्मा इस पिंड अर्थात् शरीरमें विराजित है, (श्रुत सास्वतेन पिंड चितनं अमलं) वही सत्य नित्य एक अखण्ड पदार्थ है-सर्व मल रहित है, उसका ध्यान करना पिंडस्थ ध्यान है।

भावार्थ—यहां ग्रन्थकर्तोने पिंडस्थ शब्दके कई अर्थ कहकर आत्माका ध्यान सिद्ध किया है। प्रथम अर्थ यह है कि पिंड नाम शरीरका है। इस शरीरमें विराजित आत्माका ध्यान पिंडस्थ ध्यान है। दूसरा अर्थ है कि यह आत्मा असंख्यात ज्ञानमई प्रदेशोंका एक अखण्ड पिण्ड है। इसका ध्यान पिण्डस्थ ध्यान है। तीसरा अर्थ यह है कि यह अस्तिकाय रूप आत्मा सर्व भावकर्म व द्रव्यकर्म व नोकर्मके पिण्डसे रहित है, न इसमें कोई भी वैभाविक नाशवन्त चार गति रूप पर्यायें व औदयिक, क्षयोपशम, औपशमिक भावकी क्षणिक पर्यायें हैं। यह आत्मा सर्व स्पर्श, रस, गन्ध वर्णमई पुद्गलोंसे भिन्न एक सत्य, अविनाशी, अखण्ड, निर्मल, ज्ञाताद्दष्टा पदार्थ है। इसीका एकाग्र होकर ध्यान करना पिंडस्थ ध्यान है। इस पिण्डस्थ ध्यानमें पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल तथा तत्वरूपवती पांच धारणाओंका विचार किया जाता है, जिनका संक्षेप स्वरूप गाथा ५६९ के भावार्थमें है। विशेष ज्ञानार्णव ग्रन्थसे जानना योग्य है।

रूवस्तं चेयन रूवं, चिद्रूपं विमल निम्मलं सुद्धं ।
वर्न रूव विरयंतो, स सरीरं रूव चिंतनं सुद्धं ॥ ८६६ ॥

रूवं रूव स सुद्धं, असुह परिनाम सयल विरयंतो ।
सुद्धं सरूवं पिच्छदि, रूवस्तं विमल निम्मलं सुद्धं ॥ ८६७ ॥

अन्वयार्थ—(रूवस्तं चेयन रूवं) रूपस्थ ध्यानमें चैतन्य स्वरूपका ध्यान है (चिद्रूपं विमल निम्मलं सुद्धं) जो चेतना स्वरूप, भाव कर्म, द्रव्य कर्म व नोकर्म रहित शुद्ध है (वर्न रूव विरयन्तो) जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शमई मूर्तिसे रहित है (स सरीरं रूव चिंतनं सुद्धं) अर्हंतके शरीरमें विराजित शुद्धात्माका ऐसा चिंतवन करना चाहिये (रूवं रूव सुद्धं) उस शुद्धात्माका रूप परम शुद्ध स्वरूप है (असुह परिनाम सयल विरयन्तो) उसमें सर्व अशुद्ध भावोंकी शून्यता है (सुद्धं सरूवं पिच्छदि) ऐसे शुद्ध आत्म-स्वरूपको जो देखता है वह (रूवस्तं विमल निम्मलं सुद्धं) अपने स्वरूपमें स्थित निरंजन निर्विकार शुद्ध आत्माको अनुभव करता हुआ रूपस्थ ध्यानका धारी है ।

भावार्थ—रूपस्थ ध्यानमें श्री अर्हंत परमेष्ठीके ध्यान द्वारा अपने शुद्धात्माका ध्यान है। ध्याता अपने भावोंमें समवसरणमें स्थित श्री अर्हंत परमेष्ठीको अन्तरीक्ष सिंहासनपर विराजित देखता है, जो पद्मासन ध्यानाकार हैं। उनकी शांत मुद्रा परम आकर्षक है, फिर उनके शरीरके भीतर जो आत्मा विराजित है उधर लक्ष्य लेजाकर देखता है कि अर्हंतका आत्मा घाति कर्म रहित है। रागादि विकारोंसे रहित है। आत्मामें शरीरका भी कोई स्वाभाविक संयोग नहीं है। आत्मा स्पर्शादि गुणोंसे रहित अमूर्तीक है। सर्व संकल्प विकल्प रहित है, परमानन्द निमग्न है। इस तरह देखकर फिर अपने आत्माको भी निश्चयसे उसी स्वरूप देखकर अपने निर्विकार शुद्ध आत्माका ध्यान करता है यही रूपस्थ ध्यान है।

रूवातीत स उत्तं, तिक्तं रूवेन विगत रूवं च ।
अविगत परमानन्दं, विगतं संसार सरनि मोहंधं ॥ ८६८ ॥

गय संकप्प वियप्पं, मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि ।
चेयन सहाव सुद्धं, रूवातीतं च धम्म ध्यान स सहावं ॥८६९॥

अन्वयार्थ—(रूवातीत स उत्तं) रूपातीत ध्यान वह कहा गया है जहां सिद्धात्माका ध्यान किया जावे जो (तिक्तं रूवेन विगत रूवं च) शरीरादि व कर्मादि रूपी पुद्गलको त्याग कर चुके हैं व स्वयं अमूर्तीक हैं (अविगत परमानन्दं) जो परमानन्दसे कभी रहित नहीं होते हैं (विगत संसार सरनि मोहं) जहां संसारमें भ्रमणका कारण कोई मोहांधपना नहीं है (गय संकप्प वियप्पं) जहां कोई संकल्प विकल्प नहीं है (मिच्छा कुज्ञान सयल विरयंमि) वहां सर्व मिथ्यात्व व अज्ञानसे शून्यता है (चेयन सहाव सुद्धं) जहां एक शुद्ध चेतन स्वभाव है वही (रूवातीतं च धम्म ध्यान स सहावं) रूपातीत धर्म-ध्यान अपना ही स्वभाव है।

भावार्थ—सिद्ध भगवानके स्वरूपका विचार करके उनके समान अपने आत्माको ध्याना रूपातीत धर्मध्यान है। अरहन्त भगवान जब शरीर सहित होनेसे रूपस्थ हैं तब सिद्ध भगवान शरीर रहित होनेसे रूपातीत हैं। वे सर्व सांसारिक भावोंसे रहित, कर्मकलंकसे रहित, निर्विकार परम शुद्ध निर्विकल्प आत्मसमाधिमें लीन शुद्ध ज्ञानमई व आनन्दमई परमात्मा हैं, वे पुरुषाकार लोकाग्रस्थित हैं, निरन्तर आत्मानन्दका भोग कर रहे हैं, उनके समान निश्चय नयसे अपने आत्माको विचारकर ध्याना रूपातीत धर्मध्यान है।

सून्यं सुद्ध सहावं, सून्यं संसार सरनि मिच्छातं ।
विषय रागमइ सून्यं, अप्पा परमप्प भाव निम्मलयं ॥ ८७० ॥

अन्वयार्थ—(सून्यं सुद्ध सहावं) शून्य या शुक्लध्यान शुद्ध स्वभावरूप है (संसार सरनि मिच्छातं सून्यं) उसमें संसारका भ्रमण करानेवाला मिथ्यात्व भाव नहीं है (रागमई विषय सून्यं) तथा उसमें राग द्वेषमय कोई विषय नहीं है (अप्पा परमप्प भाव निम्मलयं) वहां आत्मा परमात्मा रूप परम शुद्ध भावधारी झलक रहा है।

भावार्थ—शून्य ध्यानको शुक्लध्यान भी कहते हैं क्योंकि वहां बुद्धिपूर्वक रागभावकी शून्यता

है। दसवें गुणस्थान तक इतना मन्द कषायका उदय है कि ध्याताके ध्यानमें कषायकी मलीनता नहीं झलकती है। ध्याता एक निर्विकल्प शुद्धोपयोगमें लीन रहता है। ग्यारहवेंसे चौदहवें तक तो कषायोंका उदय ही नहीं है। परमात्माका जो कुछ शुद्ध स्वभाव है वही इस ध्यानीके ध्यानमें आरहा है। यहां शुक्ललेश्या ही होती है। यह धर्मध्यानकी अपेक्षा अधिक शुद्ध है। धर्मध्यान तो सातवें अप्रमत्तविरत गुणस्थान तक ही होता है। यह आठवें अपूर्वकरणसे प्रारम्भ होता है। यह शुक्लध्यान ही परम अद्वैत आत्मध्यान है, यही घातीय कर्मोंका नाशक है।

आज्ञा आकीर्णत्वं, अनृत तिक्कंति अशुद्ध परिणामं।
आज्ञा सुद्ध सहावं, जिन उवएस विमल निम्मलं भावं ॥ ८७१ ॥

अन्वयार्थ—(आज्ञा आकीर्णत्वं) जहां जिनेंद्रकी आज्ञानुसार ज्ञान फैला हुआ है, (अनृत अशुद्ध परिणामं तिक्कंति) मिथ्या व अशुद्ध परिणामोंका त्याग है, (आज्ञा सुद्ध सहावं) आज्ञानुसार शुद्ध आत्म स्वभावका जहां अनुभव है, (जिन उवएस विमल निम्मलं भावं) वह जिनेन्द्रके द्वारा उपदेशित अति शुद्ध भाव रूप आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

भावार्थ—यहां फिर आज्ञाविचय धर्मध्यानकी अपेक्षा उपदेश है कि श्री जिनेन्द्र भगवानके उपदेशके अनुसार तत्वज्ञानको प्राप्त कर व राग, द्वेष, मोहको त्यागकर शुद्ध आत्माके स्वरूका जो ध्यान है, वही आज्ञा विचय धर्म ध्यान है।

अपायं परमं ज्ञानं, अप्पानं परम सुद्ध सद्‌भावं।
विरयं मूढ सुभावं, सुद्धं स सरूव निम्मलं सुद्धं ॥ ८७२ ॥

अन्वयार्थ—(अपायं परमं ज्ञानं) अपाय अर्थात् संसारका नाशक आत्माका उत्तम ज्ञान है, (अप्पानं परम सुद्ध सदभावं) अपने आपको परम शुद्ध सत्ता रूप विचार करना, (मूढ सुभावं विरयं) मिथ्यात्व भावसे विरक्त होना, (सुद्धं स सरूव निम्मलं सुद्धं) कर्मांजन रहित परम निर्मल शुद्ध अपने स्वरूपका ध्यान करना अपायविचय धर्मध्यान है।

भावार्थ—राग, द्वेष, मोहसे रहित अपने शुद्ध स्वभावका ध्यान ही वास्तवमें अपायविचय धर्मध्यान है। इसीसे संसारका नाश होता है।

विचयं विमल सुहावं, विमल ज्ञानेन केवलं निश्चै ।
केवल दंसनं सुद्धं, अप्पा परमप्प जंति निव्वानं ॥ ८७३ ॥

अन्वयार्थ—(विमल सहावं विचयं) निर्मल आत्मस्वभावका विचारना विचय धर्मध्यान है, (विमल ज्ञानेन केवलं निश्चै) निर्मल ज्ञानसे केवल आत्माका निश्चय करके (केवल सुद्धं दंसनं) निश्चय शुद्ध सम्यक्-दर्शनको धार कर (अप्पा परमप्प) आत्माको परमात्मा रूप अनुभव करनेवाला (निव्वानं जंति) निर्वाणको जाता है ।

भावार्थ—सर्वार्थसिद्धिमें विचय विवेक व विचारनेको कहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि तारण-स्वामीने विचय धर्मध्यानकी अपेक्षा यहां गाथामें विचार किया है। भेदविज्ञानके द्वारा अपने आत्माको रागादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म; शरीरादि नोकर्मसे भिन्न विचार करके अपने शुद्ध स्वरूपकी प्रतीति सहित निज आत्माका अनुभव करना विचय धर्मध्यान है। यह निर्वाणका उपाय है।

धम्म रयन संजुत्तं, धम्मं धरयंति अमल सहकारं ।
ज्ञानं ज्ञान सहावं, परमप्पा परम जोएहिं ॥ ८७४ ॥

अन्वयार्थ—(रयन धम्म संजुत्तं) रत्नत्रय धर्म सहित (अमल धम्मं सहकारं धरयंति) जो निर्मल ध्यानको सहकारी जानकर धारण करते हैं (परम जोएहिं) ऐसे परम योगियोंके द्वारा (परमप्पा ज्ञान सहावं ज्ञानं) अपना आत्मा परमात्मारूप ज्ञान स्वभावी अनुभव करने योग्य है ।

भावार्थ—इस गाथामें ध्यानका सार बता दिया है कि जो मोक्षको साधन करना चाहें ऐसे योगीश्वरोंको सर्व चिंता छोडकर तथा निर्विकल्प होकर अपने ही आत्माको परमात्मारूप निश्चय करके उसे ज्ञानानन्दमय वीतरागरूप ध्याना चाहिये। यही वास्तवमें धर्मध्यान है व यही शुक्लध्यान है।

पाँच प्रकार सम्यक्दर्शन।

आज्ञा सम्यक्त।

आज्ञा समय जिनुत्तं, जिन दिट्ठं परम केवलं ज्ञानं।
ज्ञान दिस्टि उवएसं, निश्चय रूवेन विमलज्ञान सद्दहनं ॥ ८७५ ॥

अन्वयार्थ—(जिनुत्तं आज्ञा समय) जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहा हुआ उपदेश सो ही आगम है (जिन परम केवलं ज्ञानं दिट्ठं) जिसको जिनेन्द्रने परम केवलज्ञानके द्वारा देखा था (ज्ञान दिस्टि उवएसं) ज्ञान दृष्टिसे उस उपदेशको ग्रहण करना फिर (निश्चय रूवेन विमलज्ञान सद्दहनं) निश्चयसे अपने निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्माका श्रद्धान करना आज्ञा सम्यक्त है।

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनिसे जो उपदेश प्रगट हुआ है। तदनुसार गणधरोंने द्वादशांग वाणीकी रचना की है उसीके अनुसार परम्परागत आचार्योंने जैन शास्त्र लिखे हैं। उन शास्त्रोंके द्वारा सात तत्वोंका यथार्थ स्वरूप समझकर व्यवहार सम्यक्तके द्वारा फिर आत्म-प्रतीति-रूप निश्चय सम्यक्तको प्राप्त करना आज्ञा सम्यक्त है।

जिन उत्तं अप्पानं, मिच्छा भावं च तिक्त कुज्ञानं।
उत्तं चेयन भावं, विज्ञान अप्प सुद्ध सहकारं ॥ ८७६ ॥
आज्ञा सुद्ध सरूवं, सुद्धं देवं च सुद्ध गुरु धम्मं।
मिच्छा अनृत तिक्तं तं, आज्ञा सम्मत्त निम्मलं भावं ॥ ८७७ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं अप्पानं) जिनेन्द्रके कहे प्रमाण अपने आत्माको जाने (मिच्छा भावं च कुज्ञानं तिक्त) मिथ्यात्व व मिथ्याज्ञानको छोड़कर (चेयन भावं) चैतन्यका जो परिणाम है (विज्ञान) उसे भेदविज्ञानसे अपना जाने। यही श्रद्धान (सुद्ध अप्प सहकारं) शुद्धात्माका साधक है (आज्ञा सुद्ध सरूवं) जिनेन्द्रकी आज्ञानुसार शुद्ध स्वरूपको पहचाने (सुद्धं देवं च सुद्ध गुरु धम्मं च) निर्दोष वीतराग देवको

देव, परिग्रह रहित निर्ग्रंथको गुरु व वीतराग विज्ञानमई धर्मको यथार्थ जाने (मिच्छा अनृत तिक्तं तं) मिथ्या भाव व असत्य ज्ञानको छोड देवें (निम्मलं भावं) अपने श्रद्धानको निर्मल रक्खे सो ही (आज्ञा सम्मत्त) आज्ञा सम्यग्दर्शन है।

भावार्थ—सच्चे देव गुरु धर्मका श्रद्धान करे। रागी द्वेषी देव, परिग्रहधारी गुरु, हिंसामय व सराग भावरूप धर्मको यथार्थ देव, गुरु, धर्म न माने। आत्माके शुद्ध ज्ञाता दृष्टा आनन्दमई स्वरूपको पहचाने। संसारको असार मिथ्या व क्षणभंगुर जाने। आत्मानन्दको ग्रहण योग्य व विषय सुखको त्यागने योग्य जाने। भेदविज्ञानके बलसे भाव कर्म, द्रव्य कर्म, नोकर्मको भिन्न व आत्माको भिन्न जाने। निज स्वरूपकी दृढ प्रतीति लावे सो आज्ञा सम्यक्त है। यहां आज्ञानुसार तत्वोंके ऊपर श्रद्धा हुई है इस अपेक्षासे इस सम्यक्तको आज्ञा सम्यक्त कहते हैं। वास्तवमें सम्यक्त तो एक आत्माका अनिर्वचनीय गुण है। तथा एक ही प्रकार है। इसको किसी अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त भी कह सक्ते हैं। क्योंकि यहां देव, गुरु, धर्मका व सात तत्वोंका सविकल्प श्रद्धानकी मुख्यता है। यही निश्चय सम्यक्तका कारण है।

वेदक वेद संजुत्तं, वेद वेदांत वेदतो नित्यं।
अप्पा पर वुज्झंतो, परचवे वि अप्प सुद्ध सद्भावं ॥ ८७८ ॥
पदविंजन विंदंतो, असरन संसार सयल दोस विवरीदो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, अप्पा परमप्प निव्वुए जंति ॥ ८७९ ॥

अन्वयार्थ—(वेदक वेद संजुत्तं) वेदक सम्यक्ती वह है जो आत्मज्ञान सहित हो, (नित्यं वेद वेदांत वेदतो) जो सदा द्वादशांगवाणीके सारको जानता हो, (अप्पा पर वुज्झंतो) आत्मा व परको अलग २ समझता हो, (सुद्ध सद्भावं अप्प परचवे वि) तथा शुद्ध सत्तारूप अपने आत्माका परिचय रखता हो, (पद विंजन विंदंतो) जिनवाणीके अक्षर व शब्दोंका भाव जानता हो, (असरन संसार सयल दोस विवरीदो) जो इस अशरण संसारके सर्व दोषोंसे विपरीत हो, (अप्पा अप्पम्मि रओ) जिसका आत्मा आत्मामें रत हो, (अप्पा परमप्प निव्वुए जंति) ऐसा वेदक सम्यक्ती आत्मा परमात्मा रूप होकर निर्वाणको जाता है।

भावार्थ—यहां वेदक सम्यक्तका शब्दार्थ लेकर स्वरूप कहा है। वेदक जाननेवाले व अनुभव करनेवालेको कहते हैं। जो जिनवाणीके रहस्यका ज्ञाता होकर आत्माको अनात्मासे भिन्न जाने तथा आत्माको स्वभावसे शुद्ध ज्ञाताद्दृष्टा वीतराग सिद्धसम जानके श्रद्धान करे, मोक्षको प्राप्त करने योग्य व संसारका क्षणभंगुर राग, द्वेषादि प्रपंचोंसे पूर्ण जाने। सबसे मोह त्यागकर आत्माका सच्चा प्रेमी हो जावे। उपयोगको आत्माके स्वरूपके अनुभवमें जमाकर आत्मानन्दका स्वाद लेवे। ऐसा वेदक सम्यक्ती कर्मबन्धसे छूटकर अवश्य निर्वाणको पाता है।

सिद्धांतके अनुसार इतना विशेष है कि वेदक सम्यक्तके दर्शनमोहकी तीसरी प्रकृति सम्यक्प्रकृतिका उदय रहता है, जिससे सम्यग्दर्शन तो रहता है परन्तु इसमें कुछ मलिनता रहती है। इसीलिये इसको क्षयोपशम सम्यक्त भी कहते हैं। इसके कई भेद हैं। एक तो यह है कि चार अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्व, तथा मिश्र छहोंका उपशम हो, एकका उदय हो। दूसरा यह है कि अनन्तानुबन्धीका अन्य कषाय रूप परिणमन होकर विसंयोजन हो गया हो, अर्थात् क्षय होगया हो और दोका उपशम हो, एकका उदय हो। तीसरा यह है कि चार अनंतानुबंधीके साथ मिथ्यात्वका क्षय हो, एकका उपशम एकका उदय हो। चौथा यह है कि चार अनंतानुबंधीके साथ मिथ्यात्व व मिश्रका भी क्षय हो एक सम्यक्तका उदय हो। सम्यक्त प्रकृतिको अर्थात् कुछ मलीन सम्यक्तभावको यह वेदक सम्यक्ती अनुभव करता है इसलिये इसको वेदक सम्यक्त कहते हैं। गोम्मटसारमें कहा है—

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं। चलमलिनमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥ २९ ॥

भावार्थ—देशघाति सम्यक्त प्रकृतिके उदयसे वेदक सम्यक्त होता है यह चंचल है, मलीन है व अगाढ या अदृढ है तथापि आत्मानुभव रूप होकर कर्मोंके क्षयका कारण है।

उपशम सम्यक्त।

उवसम उवसन्त कषायं, उवसम रागदोष विषयकषायं।
मिच्छा कुज्ञान तिक्तं, उवसमनं सुह असुहस्य परिनामं ॥ ८० ॥

क्षय उवसम संजुत्तु, क्षपनक रूवेन अप्प सद्भावं।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा सुद्ध निम्मलं चित्तं ॥ ८८१ ॥

अन्वयार्थ—(उवमम उवसंत कषायं) उपशम सम्यक्त वह है जहां अनन्तानुबन्धी कषायोंका उपशम होगया हो (उवमम रागदोष विषय कषायं) जिसके बलसे अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी अन्याय युक्त राग-द्वेषका, इन्द्रियोंके विषयोंकी चाहनाका व क्रोधादि कषाय भावोंका उपशमन होगया हो (मिच्छा कुज्ञान तिकं) मिथ्या श्रद्धान व मिथ्या ज्ञानका त्याग होगया हो (सुह असुहस्य परिनामं उवममनं) शुभ या अशुभ भावोंका उपशम होगया हो, शुद्ध भावोंका ही प्रेम होगया हो (क्षय उवसम संजुत्तु) क्षयो-पशम भाव सहित हो (क्षपनक रूवेन अप्प सद्भावं) आपके स्वभावको कर्म रहित क्षायिक जानता हो (अप्पा सुद्धप्पानं) आत्माको शुद्धात्मा रूप मानता हो (परमप्पा सुद्ध निम्मलं चित्तं) जिसका भाव श्रद्धा-नापेक्षा परमात्माके समान निर्मल हो वह उपशम सम्यक्ती है।

भावार्थ—चार अनन्तानुबन्धी कषाय तथा मिथ्यात्व ऐसी पांच प्रकृतियोंका अथवा मिश्र और सम्यक्त प्रकृति लेकर सात प्रकृतियोंका उपशम होनेसे जो शुद्धात्माकी प्रतीति रूप भाव हो उसको उपशम सम्यक्त कहते हैं। चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा यहां क्षयोपशम भाव है क्योंकि अनन्तानुबन्धीका उपशम या उदयाभावी क्षय है। तथा अन्य कषायोंका उदय है। यह सम्यक्त निर्मल है। यहां अपने आत्माकी प्रतीति परमात्माके समान शुद्ध है। इसके मिथ्यात्व व संसारा-सक्त भाव नहीं रहा है। अन्यायरूप प्रवृत्ति मिट गई है। अन्यायके विषयोंसे व कषायोंसे यह उदासीन होगया है। परिणामोंमें परम वैरागी है। प्रथमोशम सम्यक्त सातवें तक फिर श्रेणी चढते हुए इसीको श्रेणीपर द्वितीयोपशम सम्यक्त कहते हैं। इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। फिर बदल जाता है। वेदक सम्यक्त होजाता है या मिथ्यात्वादिके उदयसे नीची श्रेणीमें भी आसक्ता है।



क्षायिक सम्यक्त।

क्षायिक क्षपनक रूवं, क्षिपियो संसार सरनि मोहंधं।
रागदोष मिच्छातं, कम्ममल पयडि सयल क्षयऊनं ॥ ८८२ ॥
क्षय उवसम सुद्ध सहावं, अप्पा अप्पेन अप्पनो निश्चं।
गय संकप्प वियप्पं, क्षायिक सम्मत सुद्ध धुव निश्चं ॥ ८८३ ॥

अन्वयार्थ—(क्षायिक क्षपनक रूवं) क्षायिक सम्यक्त वह है जो सम्यक्त विराधक कर्मोंके क्षयसे हुआ हो (क्षिपियो संसार सरनि मोहंधं) यहां संसारके भीतर भ्रमण करानेवाले अन्ध मोहका नाश हो गया है (रागदोष मिच्छातं कम्ममल पयडि सयल क्षयऊनं) रागद्वेष मोहको उत्पन्न करनेवाली अनन्तानुबन्धी कषायकी चार व दर्शन मोहनीयकी तीन ऐसी सात कर्म प्रकृतियोंका बिलकुल क्षय होगया है। (क्षय उवसम सुद्ध सहावं) यहां चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा क्षय, उपशम तथा क्षयोपशम तीनों शुद्ध स्वभाव हैं (अप्पा अप्पेन अप्पनो निश्चं) यहां आत्माको अपनेसे अपना निश्चय है (गय संकप्प वियप्पं) संकल्प विकल्पोंका यहां अभाव है (क्षायिक सम्मत सुद्ध धुव निश्चं) क्षायिक सम्यक्तको ही शुद्ध, ध्रुव या निश्चय सम्यक्त कहते हैं।

भावार्थ—क्षायिक सम्यक्त वही है जो असली, शुद्ध, अविनाशी आत्माका एक स्वभाविक सम्यक्त गुण है। सात प्रकृतियोंके क्षयसे हुआ है इसलिये इसको क्षायिक कहते हैं। यह अनन्त काल तक रहता है। चारित्र मोहनीयके कारण चौथेसे सातवें तक इस क्षायिक सम्यक्तके साथ क्षयोपशम भाव, उपशम श्रेणीकी अपेक्षा उपशम भाव व क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्षायिक भाव रहता है। जब यह सम्यक्त भाव निश्चेर रूप उपयोगात्मक होता है तब वहां सर्व संकल्प विकल्प व सर्व विचार मिट जाते हैं। आत्मा, आत्मामें आत्माके द्वारा ही लीन होजाता है। आत्मानन्दका लाभ होने लगता है। यही शुद्ध क्षायिक सम्यक्त है।

गोम्मटसार जीवकांडमें कहा है—

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य। विदियकषायुदयादो असंजदो होदि सम्मो य ॥ २६ ॥

भावार्थ—सातों प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्यक्त व सातोंके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त होता है। चौथे गुणस्थानमें अप्रत्याख्यान कषायके उदयसे यह सम्यक्ती भी असंयमी होता है।

शुद्ध सम्यक्त।

सुद्धं सुद्ध सहावं, सुद्ध सरूवं च निम्मलं भावं।
अप्पा परमप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ॥ ८८४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं सुद्ध सहावं) शुद्ध सम्यग्दर्शन आत्माका शुद्ध स्वभाव है (सुद्ध सरूवं च निम्मलं भावं) यह शुद्ध स्वभाव रागादि मल रहित वीतराग भाव है (अप्पा परमप्पानं) आत्माको परमात्मा स्वरूप ध्याता हुआ (परमप्पा लहै निव्वानं) यह परमात्मा होकर निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—यहां शुद्ध या वीतराग सम्यग्दर्शनकी मुख्यतासे कथन है जो सराग भाव रहित सातवें या आठवें गुणस्थानसे होता है। शुद्ध सम्यक्तमें परम वीतरागताके साथ आत्माको एकाग्रभावसे ध्याता हुआ शुद्धोपयोगमें लीन हुआ कर्म काटकर परमात्मा होकर निर्वाणके पदका भागी होता है।



पंचाचार कथन।

दर्शनाचार।

दरसन सुद्ध सहावं, दर्संति लोय ज्ञान सहकारं।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, दरसन चरनस्य निम्मलं विमलं ॥ ८८५ ॥
दर्सन अनन्त रूवं, अनन्त दर्सन विमल सुद्ध दरसेई।
मिच्छात कम्म विलयं, दरसन चरनस्य जन्ति निव्वानं ॥८८६॥

अन्वयार्थ—(दरसन सुद्ध सहावं) सम्यग्दर्शन आत्माका एक शुद्ध स्वभाव है (दर्संति लोय ज्ञान सहकारं) जो लोकके पदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान करता है वह सम्यग्दर्शन ज्ञानका सहकारी है (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं)

सम्यग्ज्ञानसे ही ज्ञान शुद्ध होता है। (दरसन चरनस्य निम्मलं विमलं) यह दर्शनाचरण दोष रहित व वीतराग है (मिच्छात कम्म विलयं) इस सम्यग्दर्शनके होते हुए मिथ्यात्व कर्मका लोप होगया है। (दर्शन अनन्त रूवं अनन्त दर्शन विमल सुद्ध दासेई) यह सम्यग्दर्शन अनन्त स्वभावरूप अनन्त दर्शनधारी वीतराग कर्ममल रहित आत्माका श्रद्धान करनेवाला है। (दरसन चरनस्य जनित निव्वानं) दर्शनाचारसे मोक्ष होता है।

भावार्थ—आचार्य महाराज दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, तपाचार, चारित्रचारको पालते हैं उन्हींका यहां कथन है। दर्शनाचारका भाव यह है कि सम्यग्दर्शन स्वभावधारी आत्माका श्रद्धान करते हुए अनुभव करना। मिथ्यात्वके दोषसे शून्य सम्यक्तभावमें परिणमन करते हुए अनन्तदर्शन गुणधारी आत्माका श्रद्धान करना। इसीसे ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यक्त सहित ज्ञानके वारवार अनुभव करनेसे ज्ञानावरण कर्मका नाश होकर केवलज्ञानका लाभ होजाता है। इस सम्यक्तके आचारसे अन्य चार आचारकी सफलता है और इसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

ज्ञानाचार।

ज्ञानचरन संसुद्धं, ज्ञानं आचरण केवलं अमलं।
विषयं च राग विरयं, अप्पा परमप्प ज्ञान आचरनं ॥ ८८७ ॥
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, कुज्ञानं तजंति मिच्छ सद्भावं।
अप्प सरूव सहावं, परमप्पा सुद्ध ज्ञान आचरनं ॥ ८८८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानचरन संसुद्धं) ज्ञानाचार परम शुद्ध (केवलं अमलं ज्ञानं आचरण) केवल निर्मल स्वाभाविक आत्मज्ञानका अनुभव या रमण है (विषयं च राग विरयं) जहां इंद्रियोंके विषयोंका राग नहीं है (अप्पा परमप्प ज्ञान आचरनं) आत्माको परमात्माके ज्ञानमें आचरण कराना है। (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) ज्ञानका ज्ञान स्वरूप रहना है (मिच्छ सद्भावं कुज्ञानं तजंति) जहां मिथ्यात्व भाव व मिथ्या ज्ञानका त्याग होगया है (अप्प सरूव सहाव) आत्माका स्वभाव आत्मारूप है (परमप्पा सुद्ध ज्ञान आचरनं) या परमात्मा रूप है। ऐसा जानकर अपने शुद्ध ज्ञानमें रमना ही ज्ञानाचार है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान श्रद्धा सहित आत्माको सर्व आत्माओंसे भिन्न जानता है। वहां न मिथ्यात्व है न मिथ्या ज्ञान है न विषयोंका राग है। आत्माका द्रव्य स्वभाव परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा वीतराग परमानन्दमई है। सर्व संकल्प विकल्प मिटाकर व निश्चिन्त होकर अपने शुद्ध आत्मस्वरूपमें ज्ञानका परिणमना, रमना, तन्मय रहना, आत्मानुभव करना ज्ञानाचार है।

वीर्याचार।

वीर्जं वीर्जं सुद्धं, वीर्जं अंकुरन ज्ञान सहकारं।
चरनं अप्प सरूवं, चरनं वीर्जं च सुद्धमप्पानं ॥ ८८९ ॥
अप्पानं अप्पानं, अप्पा सुद्ध ज्ञान निरू निश्चं।
परमपयं सुध रूवं, वीर्जं आचरन निव्वुए जंति ॥ ८९० ॥

अन्वयार्थ—(वीर्जं वीर्जं सुद्धं) वीर्य आत्माका स्वभाव वीर्य गुण है (वीर्जं अंकुरन ज्ञान सहकारं) यह वीर्य ही ज्ञानके अंकुर फूटनेका साधन है (चरनं अप्प सरूवं) चारित्र आत्माका स्वरूप है (चरनं वीर्जं च सुद्धमप्पानं) शुद्ध आत्मामें आचरण करना भी वीर्याचार है (अप्पानं अप्पानं) अपनेसे अपनेको जानना (अप्पा सुद्ध ज्ञान निरू निश्चं) आत्माको शुद्ध स्वभावरूप भलेप्रकार निश्चय करना (परमपयं सुध रूवं) परम पद शुद्ध स्वभाव है ऐसा जानकर अनुभव करना (वीर्जं आचरन निव्वुए जंति) वीर्याचरण है, इसीके प्रभावसे भव्यजीव निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—आत्माके भीतर अनन्त बल है। इसी बलके प्रभावसे सर्व मन, वचन, कायकी क्रिया होती है। उत्साह होना इस वीर्यका एक प्रकाश है। जब उत्साहपूर्वक तत्त्वज्ञानका अभ्यास किया जाता है। आत्मबलके द्वारा अपने उपयोगको विषय कषायोंसे रोककर आत्मा व अनात्माके भेद विज्ञानके मननमें लगाया जाता है तब ही आत्माके यथार्थ ज्ञानका या श्रद्धा सहित ज्ञानका या आत्मानुभवका अंकुर फूटता है। अपने शुद्धात्माके स्वभावमें रमण करना भी वीर्याचार है। आत्म-बलसे ही अपनी परिणति परात्मासे रोककर शुद्ध स्वरूपमें जोडी जाती है। शुद्ध स्वभावमें भले-प्रकार निश्चय करनेमें, जाननेमें व उसीका स्वाद लेनेमें जो कुछ आत्मबलकी सहायता ली जाती

है वही वीर्याचार है। यदि वीर्याचारको काममें न लिया जावे तो श्रद्धानकी उज्वलता, ज्ञानकी निर्मलता व चारित्रकी शुद्धता नहीं होसक्ती है।

तपाचार।

तव आचरन सहावं, अप्प सहावेन सुद्ध तव यरनं।
सुद्धं सुद्ध सरूवं, तव आचरनं निम्मलं भावं ॥ ८९१ ॥
कम्ममल मुक्क रागं, मिथ्या विषयं च तिक्त कषायं।
अप्पा अप्प सरूवं, सहकारेन चरन तव यरनं ॥ ८९२ ॥

अन्वयार्थ—(तव आचरन सहावं) तपाचारका स्वभाव यह है कि (अप्प सहावेन सुद्ध तवयरनं) आत्माके स्वभावमें ठहरकर शुद्ध तपश्चरण करना (सुद्धं सुद्ध सरूवं) शुद्ध भावोंसे शुद्ध स्वरूपका अनुभव करना (निम्मलं भावं तव आचरनं) निर्मल भाव ही तपाचार है (कम्ममल मुक्क रागं) जहां कर्मरूपी मैलका राग छोड़ दिया गया हो (मिथ्या विषयं कषायं च तिक्तं) मिथ्या पांच इंद्रियोंके विषयोंको तथा कषायोंको त्याग कर दिया हो (अप्पा अप्प सरूवं) आत्मा आत्मारूप अनुभवमें आवे सोही (तवयरनं चरन सहकारेन) तपश्चरण चारित्रका सहकारी है।

भावार्थ—इच्छाओंको रोकना सो तपाचार है। सर्व प्रकारके इंद्रियोंके विषयोंसे चाह रोककर, व क्रोधादि कषायोंको वशकर आत्माके शुद्ध ज्ञानानन्दमय स्वभावमें जमकर आप आपमें तपना सो तपाचार है। यही स्वरूपाचरण चारित्रका सहकारी है। अनशन ऊनोदर्य आदि व्यवहार तपोंके द्वारा मन वचन कायको अपने वशमें करके निश्चय रत्नत्रयमई स्वस्वभावमें जम जाना तपोचार है।

चारित्राचार।

चरनंपि सुद्ध भावं, चरनं अप्पान निम्मलं रूवं।
थिर दिठि दंसनममलं, चारित्र चरन सुद्ध संजमं रूवं ॥८९३॥
चरनं अप्प सहावं, चरनं परम परभाव सुद्धानं।
घाय चवक्कय मुक्कं, चरनं चारित्र परम निव्वानं ॥ ८९४ ॥

अन्वयार्थ—(चरनंपि सुद्ध भावं) शुद्ध भाव ही चारित्र है (चानं अप्पान निम्मलं भावं) आत्माका निर्मल भाव चारित्र है (अमलं दंसनं थिर दिठि) निर्मल सम्यग्दर्शनको स्थिरतासे अनुभव करना चारित्र है (सुद्ध संजमं रूवं चरन चारित्र) शुद्ध आत्म संयमके स्वभावमें चलना चारित्र है (अप्प सहावं चरनं) आत्माका स्वभाव चारित्र है (परभाव सुद्धानं परम चरनं) रागादि परभावोंसे शुद्ध होकर उत्कृष्ट वीतराग भावमें चलना चारित्र है (चवक्कय घाय मुक्कं) जिमसे चार घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है (चरनं चारित्र परम निव्वानं) यही चारित्राचार परम मोक्षको प्राप्त कराता है। अथवा चारित्राचार ही परम निर्वाण है।

भावार्थ—चारित्र वास्तवमें आत्माके परम शांत या वीतराग भावको कहते हैं। यह आत्माका निज स्वभाव है। इस चारित्रकी प्राप्तिके लिये जो आचरण किया जावे वह चारित्राचार है। व्यवहार चारित्रकी सहायतासे मन वचन कायको थिर करके व बुद्धिपूर्वक सर्व रागादिसे उपयोगको हटाकर जैसी श्रुतज्ञानके बलसे शुद्ध आत्मप्रतीति प्राप्त की है, इस आत्मप्रतीतिमें इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त होकर जम जाना, शुद्ध आत्माके स्वभावमें विहार करना, यही सामायिक आदि चारित्राचार है। इसीके अभ्याससे यथाख्यात चारित्र होजाता है व इसीके प्रतापसे चारों घातीय कर्मोंका क्षय कर आत्मा अरहन्त परमात्मा होजाता है। अनन्त केवलज्ञान केवल दर्शन अनन्तवीर्यके प्रतापसे यथाख्यात चारित्र रूपी चारित्राचार अति विशुद्ध होता हुआ व अति विशद होता हुआ शेष चार अघातीय कर्मोंका भी क्षय कर डालता है। और इस आत्माको निर्वाण लाभ कर देता है। मोक्षावस्थामें भी यह स्वात्मामें ही आचरण करता हुआ अपने चारित्रगुणके पूर्ण विकासमें रहता हुआ परमानन्दका स्वाद लेता है।

पंचाचार स उत्तं, पञ्चाचरन तिक्त संसारे।
गय संकप्प वियप्पं, पञ्चाचरनं च सुद्ध निव्वानं ॥ ८९५ ॥

अन्वयार्थ—(पंचाचार स उत्तं) पंच प्रकार आचार वही कहा गया है। (पंचाचरन तिक्त संसारे) जिस पंच प्रकार आचारसे संसारसे राग छोडकर (गय संकप्प वियप्पं) व संकल्प विकल्प भावोंको मिटाकर स्वात्माका अनुभव किया जावे (सुद्ध पंचाचरनं च निव्वानं) यही निश्चय पंचाचार निर्वाणको प्राप्त करा देता है। अथवा निर्वाण रूप है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्वीर्य, सम्यक्तप, सम्यक्चारित्र इन पांच प्रकार आचारको निश्चय नयके द्वारा जो पालेगा वह शुद्ध आत्माके अनुभवमें तल्लीन होजायगा। उसका सांसारीक राग व उसके सर्व संकल्प विकल्प मिट जायंगे। वह शुद्धोपयोगी होकर सिद्ध होजायगा। वहां सिद्ध गतिमें भी अपने आत्मस्वभावमें मगन रहता हुआ पांचों ही प्रकारके आचारका स्वामी अनन्तकाल तक बना रहेगा।

ज्ञानसमुच्चयसारका महात्म्य।

ज्ञान समुच्चय सारं, उवइट्ठं जिनवरेहि जं ज्ञानं।
जिन उत्तं ज्ञान सहावं, सुद्धं ध्यानं च ज्ञान समुच्चय सारं ॥ ८९६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय सारं) यह ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थ ज्ञान समूहका सार है (जिनवरेहि जं ज्ञानं उवइट्ठं) जिनेन्द्रोंने जो ज्ञान उपदेश किया है वही है (जिन उत्तं ज्ञान सहावं सुद्धं ध्यानं च ज्ञान समुच्चय सारं) जिनेन्द्रने जो आत्म-ज्ञानके स्वभावमें रमनको शुद्ध ध्यान कहा है वही इस सर्व द्वादशांगका सार है।

भावार्थ—इस ग्रन्थका नाम जो ज्ञान समुच्चयसार है वह यथार्थ है। श्री जिनेन्द्र द्वारा प्रकाशित दिव्यध्वनिके अनुसार जो द्वादशांगकी रचना गणधरोंने की है, उसी सर्व श्रुतज्ञानका सार जो शुद्धात्माका अनुभव है या शुद्ध ध्यान है वह प्राप्त होगा। वास्तवमें जो शुद्धात्माका अनुभव करता है वही श्रुतकेवली निश्चयसे होता है।

ऐसा ही श्री कुन्दकुन्दाचार्यने श्री समयसारमें कहा है—

जो हि सुएणहिगच्छई, अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं। तं सुयकेवलिमिमिणो, भणंति लोयप्पईवयरा ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो कोई श्रुतज्ञानके द्वारा इस केवल शुद्ध अपने आत्माको अनुभव करता है वही श्रुत केवली है ऐसा लोकके प्रकाशक ऋषिगण कहते हैं।

ज्ञान समुच्चय भनियं, सद्दहनं रूव भेदविज्ञानं।
ज्ञानं ज्ञान सरूवं, षवइ संसार सरनि मोहंधं ॥ ८९७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय भनियं) इस ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थको कहा गया है; जो कोई (सद्दंसन रूव भेदविज्ञानं) भेदविज्ञानको पाकर अपने आत्माके स्वभावका श्रद्धान करेगा (ज्ञानं ज्ञान सरूवं) जिसका ज्ञान, ज्ञान स्वभावमें तन्मय होजायगा वही (संसार सरनि मोहंध षबइ) संसारके भ्रमणके कारण अन्ध मोहको क्षय कर डालेगा।

भावार्थ—इस ग्रन्थको भलेप्रकार पढ़कर जो आत्मा और अनात्माको भिन्न२ परखकर भेदविज्ञान प्राप्त करेगा, परसे मोह छोड़कर आत्माके स्वभावमें श्रद्धापूर्वक लय होगा। अर्थात् ज्ञान चेतनाका स्वाद लेगा वही निर्मल भावोंसे मोहरूपी शत्रुका संहार करेगा। जिस मोहके नशेमें चूर होकर यह प्राणी इस संसारमें भटकता हुआ वारवार जन्म मरण करता हुआ अनेक प्रकारके मानसिक तथा शारीरिक कष्ट उठाता है उस मोहको नाश करके वीतराग परमात्मा होजायगा।

ज्ञानेन ज्ञान जोयं, जोयं थिर दिट्ठि दंसनं अमलं।
जोइ य निय अप्पानं, अप्पा परमप्प सुद्ध निव्वानं ॥ ८९८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन ज्ञान जोयं) ज्ञानके द्वारा ही ज्ञानका प्रकाश होता है या ज्ञान योग होता है (अमलं दंसनं थिर दिट्ठि जोयं) निर्मल सम्यग्दर्शनमें स्थिर दृष्टि रखना योग है (निय अप्पानं जोइ य) निज आत्माका ही ध्यान करनेसे (अप्पा परमप्प सुद्ध निव्वानं) आत्मा परमात्मा व शुद्ध होकर निर्वाणको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—ज्ञान योग ही मोक्षका द्वार है। परम शुद्ध सम्यग्दर्शनके साथ निज आत्माके शुद्ध स्वभावमें लीन होनेसे ही धर्मध्यान व शुक्लध्यान होता है। यही योगाभ्यास है, यही ज्ञानका ज्ञानमें परिणमन है। इसीसे आत्मा परमात्मा होकर मुक्त होजाता है।

जानै दिट्ठै समतं, पिच्छै विमल दंसनं सुद्धं।
तं थिर भाव सवन्नं, चरनं चारित्र सुद्धमप्पानं ॥ ८९९ ॥

अन्वयार्थ—(समतं जानै दिट्ठै) जो सम्यग्दर्शनको जानेगा, मनन करेगा (विमलं सुद्धं दंसनं पिच्छै) (तं थिर भाव सवन्नं) उसीको ही स्थिर भाव कहा गया है (सुद्धं अप्पानं चरनं चारित्र) वही शुद्ध आत्मामें आचरण करना चारित्र है।

भावार्थ—इस ग्रन्थको जाननेका फल यही है जो सम्यग्दर्शनके विषयभूत छः द्रव्य सात तत्व आदिको समझा जावे, उनपर श्रद्धा लाई जावे। फिर निश्चय सम्यक्तको प्राप्त किया जावे, फिर शुद्धात्मामें स्थिरता पाकर शुद्ध आत्मामें आचरण रूप चारित्रको पाला जावे जिससे मोक्षका लाभ हो।

दव्वकाय पिच्छंतो, तत्त पदार्थ च सुद्ध संजुत्तो।
संसार सहाव विमुक्को, अप्पा परमप्प केवलो सुद्धो ॥ ९०० ॥

अन्वयार्थ—(दव्वकाय तत्त पदार्थ च पिच्छन्तो) छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थोंको जानकर निश्चय करता हुआ व (सुद्ध संजुत्तो) निश्चयसे शुद्ध भावसे संयुक्त होता हुआ (संसार सहाव विमुक्को) संसारके स्वभावसे छूट जाता हुआ (अप्पा केवलो सुद्धो परमप्प) आत्मा परभावोंसे रहित व कर्मोंसे रहित शुद्ध परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—इस ग्रन्थके द्वारा तत्वोंका स्वरूप समझकर जो शुद्ध आत्माका श्रद्धान ज्ञान तथा आचरण पालता हुआ सर्व रागादिसे विरक्त हो वीतराग होजाता है वही सर्व कर्मोंसे छूटकर परमात्मा होजाता है।

ज्ञान समुच्चय सारं, असरन अभाव सयल तिक्तं च।
सारं सुद्ध सहावं, सारं स स्वरूव निम्मलं सुद्धं ॥ ९०१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय सारं) इस सर्व ज्ञानका सार यही है जो (असरन अभाव सयल तिक्तं च) सर्व ही नाशवन्त क्षणिक सांसारीक पर्यायोंसे विरक्त होकर (सारं सुद्ध सहावं) शुद्ध स्वभावका सार समझा जावे (स स्वरूव निम्मलं सुद्धं सारं) अपने ही आत्माके रागादि रहित व कर्ममल रहित स्वभावको सार या उपादेय समझा जावे।

भावार्थ—इस ग्रन्थके द्वारा प्राप्त सर्व ज्ञानका प्रयोजन यह है कि मुमुक्षु जीवोंको देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक चारों ही गतियोंकी दशाओंको नाशवन्त व अशरण मिट जानेवाली समझना चाहिये। तथा एक अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावको ही सार व उपादेय समझना चाहिये। संसार पुद्गल और जीवकी मिश्रित पर्यायरूप है। इसी अशुद्धतामें संसार नाटक चलता है। और जीव

भव भवमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव परिवर्तनोंमें भ्रमण किया करता है। जब यह जीव पुद्गलके संयोगसे मुक्त होजावे और आप अकेला रहकर अपने स्वभावमें रमण करे तब इसका संसार भ्रमण मिटे और यह शुद्ध द्रव्य स्वभावमें सदाकाल शोभायमान हो।

ज्ञानेन ज्ञान सहावं, कुज्ञानं तजंति सयल मिच्छातं।
ज्ञान समुच्चय सुद्धं, ज्ञान सहावेन जंति निव्वानं ॥ १०२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन ज्ञान सहावं) ज्ञानके द्वारा ज्ञान स्वभावका अनुभव होता है (कुज्ञानं सयल मिच्छातं तजंति) जब मिथ्या ज्ञानको व सर्व मिथ्या श्रद्धानको त्याग कर दिया जाता है (ज्ञान समुच्चय सुद्धं) तब ज्ञान समूह आत्मा शुद्ध होता है। (ज्ञान सहावेन निव्वानं जंति) ज्ञान स्वभावके द्वारा भव्य जीव निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानकी अपूर्व महिमा है। जब सम्यग्दृष्टी जीवके श्रद्धानमें व ज्ञानमें मिथ्या श्रद्धान तथा मिथ्या ज्ञान बिलकुल नहीं रहता है और यह रागादि भावोंको त्यागकर वीतराग भावसे ज्ञानमें अपने उपयोगको थिर करके ज्ञान स्वभावका ही अनुभव करता है तब शुद्धोपयोगके बलसे कर्मकी निर्जरा होजाती है और यह भव्य जीव मोक्षका लाभ करता है।

सयल जन बोहनत्थं, जिनमग्गे जिनवरेंद्र जं उत्तं।
जिन उत्तं सहकारं, ज्ञान संजुत्त लहइ निव्वानं ॥ १०३ ॥

अन्वयार्थ—(सयल जन बोहनत्थं) सर्व जनोंके समझानेके लिये (जिन मग्गे) जिन मार्गके सम्बंधमें (जिनवरेन्द्र जं उत्तं) जिनेन्द्रोंने जो कुछ कहा है। (जिन उत्तं सहकारं) उसी जिनवाणीकी सहायतासे (ज्ञान संजुत्त निव्वानं लहइ) जो सम्यग्ज्ञानसे भूषित होता है वह निर्वाणको पाता है।

भावार्थ—श्री अरहन्त तीर्थंकरोंने भव्योंके कल्याणके लिये जो कुछ मोक्षका मार्ग बताया है वही जिनवाणीमें प्रतिपादित है। जो कोई जिनवाणीका या इस ग्रन्थको भलेप्रकार पढ़ेगा, मनन करेगा, फिर भेदविज्ञानके द्वारा आत्माका अनुभव प्राप्त करेगा वह अवश्य मुक्त होजायगा।

दंसेइ मोक्ष मग्गं, ज्ञान सहावेन दंसनं अमलं।
चरनं संजम जुत्तं, संजुत्तो लहै निव्वानं ॥ ९०४ ॥

अन्वयार्थ—(मोक्ष मग्गं दंसेइ) यह जिनवाणी मोक्षमार्गको दिखलाती है। (ज्ञान सहावेन अमलं दंसनं) इसे जानकर अपने ज्ञानमई स्वभावसे निर्मल सम्यग्दर्शनको जो पाते हैं (संजम जुत्तं चरनं) फिर संयम लेकर चारित्र पालते हैं। (संजुत्तो निव्वानं लहै) ऐसे संयमी साधु निर्वाणको पाते हैं।

भावार्थ—निर्वाण लाभका सरल मार्ग यह है कि जिनवाणीको भलेप्रकार अभ्यास करके अपने आत्माके ज्ञानमई स्वभावको पहचानना। इसी विवेकके वारवार अभ्याससे निर्मल या निश्चय सम्यग्दर्शनका लाभ होता है। फिर वही सम्यग्दृष्टी संसार शरीर भोगोंसे उदास होकर जब सर्व परिग्रह त्यागकर संयमी साधु होता है और व्यवहार चारित्रके द्वारा निश्चय आत्मरमण रूप चारित्रको पालता है तब वह कर्मोंसे छूटकर मुक्त होजाता है।

ज्ञान समुच्चय सारं, जिन उवएस कहिय सहकारं।
एको उद्देस उत्तं, कम्म क्षय कारन निमित्तं ॥ ९०५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान समुच्चय सारं) इस ज्ञान समुच्चयसार ग्रंथको (जिन उवएस कहिय सहकारं) जिनेन्द्रके उपदेशसे कहे हुए आगमकी सहायतासे (कम्म क्षय कारन निमित्तं) कर्मोंके क्षयके साधनके लिये (एको उद्देस उत्तं) एकोदेश कुछ कहा गया है।

भावार्थ—ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि मैंने श्री जिनेन्द्र कथित आगमका अभ्यास करके जो कुछ जाना है उसीका कुछ कथन इस ग्रन्थमें इसलिये किया है कि शुद्ध आत्माकी भावना करनेसे मेरे कर्मोंका क्षय हो तथा पढनेवालोंके भी कर्मोंका क्षय हो। जो कोई इसका मनन करेगा उसके कर्मोंका नाश होगा।

जिन उवएसं सारं, किंचित् उवएस कहिय सद्भावं।
तं जिन तारन रइयं, कम्म क्षय मुक्तिकारनं सुद्धं ॥ ९०६ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उवएसं सारं) जो श्री जिनेन्द्रने सार उपदेश किया है (सदभावं किंचित् उवएस कहिय) उसका कुछ भाव यथार्थ भावसे इस ग्रन्थके उपदेशमें कहा गया है (तं जिन तारन रइयं) इसको जिन तारण (स्वामी) ने रचा है (कम्मक्षय मुक्ति कारनं सुद्धं) जिससे कर्मोंका क्षय होनेके लिये शुद्ध मोक्षमार्गका अनुभव हो।

भावार्थ—इस ग्रन्थको श्री जिन तारणस्वामीने श्री जिन आगमके अनुसार रचा है। इसमें थोडासा उपदेश अपने निर्मल सरल भावसे इसी लिये किया है कि उसको मनन करनेसे मुझे भी शुद्ध आत्माका अनुभव रूप निश्चय मोक्षमार्गका लाभ हो तथा और जो कोई पढे उनको भी इस मोक्षमार्गका लाभ हो। जिससे यह आत्मा कर्मके बन्धनोंसे छूटकर कभी न कभी मोक्षलाभ कर सके।

भावेन भाव सुद्धं, अप्पा परमप्प विमल स सहावं।
तं भव्वजीव सरनं, आराहन जुत्त निव्वुए जन्ती ॥ ९०७ ॥

अन्वयार्थ—(भावेन भाव सुद्धं) भावसे भावोंकी शुद्धि होती है। वह भाव यह है कि (अप्पा परमप्प विमल स सहावं) यह अपना आत्मा निश्चयसे परमात्मा रूप निर्मल अपने स्वभावमें रहनेवाला है (तं भव्वजीव सरनं) यही भाव भव्यजीवोंके लिये शरण है (आराहन जुत्त निव्वुए जंती) जो इस आत्मानुभव रूपी भावकी आराधना करते हैं वे निर्वाणको जाते हैं।

भावार्थ—इस ग्रन्थका सार यह है कि भावोंसे ही आत्माके भावोंकी शुद्धि होती है। बाहरी मन वचन कायकी क्रिया केवल निमित्त कारण है। अंतरंग आत्माका शुद्ध परिणाम ही आत्माकी शुद्धिका साधन है। निश्चय नयसे यह आत्मा परमात्माके समान बिलकुल शुद्ध स्वभावका धारी है ऐसा निश्चय करके व उसका संशय रहित ज्ञान प्राप्त करके इसी ही शुद्ध भावमें तन्मय होना या आत्माका अनुभव करना ही मोक्षमार्ग है।

हरएक भव्यजीवको इसीकी शरणमें जाना चाहिये। इसीकी आराधना करके भव्यजीव मोक्ष गए हैं, जाते हैं व जावेंगे, यही इस ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थका सार है।

श्री समयसार कलशमें श्री अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं—

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं । स्वद्रव्ये रतिमेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः ॥
बन्धध्वंसमुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल- । चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते ॥ ११-९ ॥

भावार्थ—जो कोई अशुद्धताके कारण सर्व परद्रव्यको स्वयं छोड करके अपने आप ही अपने ही आत्मद्रव्यमें प्रेम करके लीन रहता है वह सर्व अपराधसे छूटा हुआ बन्धका नाश करके नित्य प्रकाशमान अपनी आत्मज्योतिमें तिष्ठकर चैतन्यरूपी अमृतसे पूर्ण महिमा सहित होकर शुद्ध होता हुआ मोक्षको प्राप्त कर लेता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य श्री समयसारमें कहते हैं—

मुक्खपहे अप्पाणं ठवेहि वेदयहि झायहि तं चेव । तत्थेव विहर णिच्चं माविहरसु अण्णदव्वेसु ॥ ४१४ ॥

भावार्थ—आत्मानुभव रूपी मोक्षमार्गमें अपनेको स्थापित कर उसीका अनुभव कर, उसीका ध्यान कर, उसीमें नित्य विहार कर, आत्माके सिवाय अन्य द्रव्योंमें विहार मत कर।

इति ज्ञान समुच्चयसार ग्रंथ जिन तारनतरन विरचितसमुत्तरलिता ।

इसप्रकार श्री जिन तारणतरण विरचित यह श्री ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थ समाप्त हुआ। इसकी भाषा टीका रची मिती आश्विन सुदी ४ शनिवार वीर संवत् २४५९ विक्रम संवत् १९९० तारीख २३ सितम्बर १९३३।

दोहा-मंगल श्री जिन आदि हैं, मंगल वीर जिनेश। मंगल गौतम गुरु नमो, मंगल श्री परमेश ॥ १ ॥
मंगल हैं सिद्धात्मा, परम ज्ञान भंडार। परमानन्द निमग्न प्रभु, वन्दूं वारम्वार ॥ २ ॥
कुन्दकुन्द आचार्य हैं, आत्मतत्व भंडार। वारवार सुमरण करूँ, कटैं कलेश अपार ॥ ३ ॥
तिनहीके अनुसार शुचि, ज्ञान सार प्रगटाय। तारणतरण सु जिन लिखो, ग्रंथ सार सुखदाय ॥ ४ ॥
वंदन तिनको करत हूं, धन्य अध्यातम ज्ञान। पद पदपर आतम छटा, दरशाई गुण खान ॥ ५ ॥
श्री जिनवाणी नमन कर, धर्म जिनेश्वर ध्याय। मंगल हो सब भविनके, निज सुखको प्रगटाय ॥ ६ ॥
अल्पबुद्धिसे ग्रंथकी, भाषा लिखी स्वप्रेम। भूलचूक हो शुद्धि जन, क्षमा करहु धर प्रेम ॥ ७ ॥

इटारसी (सी० पी०)
दिगम्बर जैन चैत्यालय (तारण समाज)
ता० २३-९-१९३३।

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

टीकाकारकी प्रशस्ति।

दोहा।

लक्ष्मणपुर अवधि हि बसै, अग्रवाल कुल जान। गोयल गोत्र मंझानमें, मंगलसैन सुजान॥
आतमरमी ज्ञाना बडे, धर्म सुवक्ता जान। समयसार अभ्यासमें, रहत सदा सुख मान॥ १॥
तिन सुत मक्खनलालजी, गृही कार्य लवलीन। संतलाल तिम ज्येष्ठ सुत, सीतल तृतिय अदीन॥
कुछ विद्या लौकिक पढी, किया जगत व्यापार। बत्तिस वय अनुमानमें, श्रावक व्रत हिय धार॥ २॥
गृह तज देशाटन करत, करत धर्म अभ्यास। संवत विक्रम उन्नीसैं, नव्वै धरि हुल्लास॥
मध्यप्रांतका मध्य थल, इटारसी शुभ ग्राम। वर्षाकाल बिताइयो, कर सुमरण जिन नाम॥ ३॥
जैन दिगम्बर वसत हैं, तारण पंथ सुहाय। चैत्यालय सुन्दर बना, जिनवाणी पधराय॥
ताहीमें विश्राम कर, संगति श्रावक पाय। ज्ञान समुच्चय सारकी, टीका लिखी स्वभाय॥ ४॥
सिंहई गुरुप्रसाद युत, शाला पाठ सुहाय। धर्मज्ञान बालक सबैं, लेवें चित्त लगाय॥
शामलालजी सेठ हैं, सिंहई भरोसेलाल। फूलचन्द भाई लसैं, और फदालीलाल॥ ५॥
पांडे नाथूरामजी विज्ञ सु चुन्नीलाल। दुर्गाप्रसाद विराजते, श्री ठाकुरसीलाल॥
रामलाल पांडे लसैं, दुलीचन्दजी जान। घासीलाल विराजते, दमरूलाल अमान॥ ६॥
गृह हैं लगभग बीस दो, तारण पंथ सुजान। मंदिर दो प्रतिमा सहित, राजत हैं इस थान॥
ता पूजक गृह तीस हैं, साधत धर्म बनाय। वैद्य सु सुन्दरलालजी, दलिपचन्द वृषभाय॥ ७॥
बाई कस्तूरी लसैं, सेठानी वृष लीन। पण्डित छोटेलालजी, मन्नूलाल प्रवीन॥
सर्व दिगम्बर मेलसे, रहत प्रेम हिय धार। श्रद्धा भक्ति सु ज्ञान धर, करत धर्म संचार॥ ८॥
पण्डित श्री मूलचन्दजी, वंश तिवारी जान। धर्म रसिक आतम सुविद, हितू जैन गुण खनें॥
इत्यादिक संयोगमें, धर आनन्द अपार। थिरता धर टीका रची, निज अनुभव चित धार॥ ९॥

अध्यातम ज्ञाता बडे, जिन सिद्धांत प्रवीण। श्री जिन तारण तरण हैं, परम धर्म लवलीन।
ज्ञान समुच्चय सारमें, अद्भुत ज्ञान दिखाय। आतम अनुभव रस दिया, जो पीवै सुख पाय ॥१०॥
तिनके चरण प्रतापसे, अल्प बुद्धि अनुसार। प्रचलित भाषामें लिखा, भाव अर्थ सुविचार ॥
पण्डितजन बांचैं पढैं, मनन करैं दिनरात। पावैं आतम ज्ञानको, परमानन्द लखात ॥११॥
यदि प्रमादसे भूल कुछ, कहीं होय गुणवान। क्षमा धारके शोध लैं, कहूं जोड जुग पान ॥
आगासोद निवासि हैं, मन्नूलाल उदार। चन्द गुलाब ललितनगर, धर्म रसिक गुण धार ॥१२॥
श्री मथुरापरसाद बुध, सागरवासी जान। इन तीननकी प्रेरणा, भयो ग्रन्थ सुख दान ॥
मंगल श्री जिनराज हैं, मंगल सिद्ध महान। मंगल आचारज गुरू, मंगल साधु सुजान ॥१३॥
आश्विन शुक्ला चौथको, शनीवार सुखकार। उल्था यह पूरण भयो, श्री जिनका उपकार ॥१४॥

ब्र० सीतलप्रसाद।



श्री ज्ञानसमुच्चयसार

समाप्त ।